※ प. पू. श्री १०८ आचार्य शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाद्वारा प्रकाशित
श्री श्रुतभांडार व ग्रंथप्रकाशन समिति, फलटण.

श्री भगवान पुष्पदंत–भूतबलीप्रणीत

षट्खंडागम

–: संपादन :–
ब्र. पं. सुमतिबाई शहा, न्यायतीर्थ
संचालिका,
श्रु. राजुलमती दि. जैन श्राविकाश्रम, शोलापुर.

प्रकाशक :

श्री. वालचंद देवचंद शहा, बी. ए.

श्री. माणिकचंद मलुकचंद दोशी, बी. ए., एल एल. बी.

मंत्री

श्री श्रुतभांडार व ग्रंथप्रकाशन समिति, फलटण (सातारा).

वीर संवत २४९१

सन १९६५

मुद्रक :

श्री. प्रकाशचंद्र फुलचंद शहा

मेसर्स वर्धमान छापखाना,

५१९, शुक्रवार पेठ, शोलापुर.

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय जगद्वंद्य
श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ति आचार्य श्री शांतिसागर महाराज

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रात:स्मरणीय पूज्य आचार्य शांतिसागरजी महाराजने जिनवाणी माताकी सेवा एवं उसके प्रसारके जिस कार्यको हमें सौंपा था, उसका हम यथाशक्ति निर्वाह करते आ रहे हैं। जैसा कि आचार्य महाराजका आदेश था, हम उच्च कोटिके सिद्धान्तग्रन्थोंके प्रकाशनके लिये यथासम्भव प्रयत्नशील अवश्य हैं और यह उसी प्रयत्नका सुन्दर फल है जो षट्खण्डागम जैसा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तग्रन्थ इस संस्था द्वारा प्रकाशित होकर आज पाठकोंके हाथोंमें पहुंच रहा है। इसमें हम कहां तक सफल हुये हैं, यह तो स्वाध्यायप्रेमी ही निश्चित करेंगे, किंतु फिर भी हमारा ख्याल है कि अब तकके प्रकाशनोंमें यह अपनी अलग ही विशेषता रखता है।

तीनों सिद्धान्तग्रन्थोंके ताम्रपत्रोंके ऊपर उत्कीर्ण हो जानेपर आचार्य महाराजने उनके मूल मात्रको हिंदी अनुवादके साथ प्रकाशित करानेकी इच्छा व्यक्त की थी और तदनुसार उन्होंने प्रथम सिद्धान्तग्रन्थ षट्खण्डागमके कार्यको सम्पन्न करनेका आदेश भी श्री. नेमचन्द देवचन्द शाह सोलापुरकी सुपुत्री बाल ब्र. श्री. सुमतिबाईजी न्याय-काव्यतीर्थ, संचालिका श्री रा. दि. जैन श्राविकाश्रम सोलापुर, को दे दिया था। हमें इसका विशेष हर्ष है कि उसके इस रूपमें पूर्ण हो जानेपर आचार्य महाराजकी उपर्युक्त इच्छा पूर्ण हो रही है।

इस ग्रन्थके प्रकाशनार्थ श्री. शेट हिराचन्द तलकचन्दजी बारामतीने ४००१ की आर्थिक सहायता प्रदान की है। इसके लिये हम उनके अतिशय आभारी हैं। ग्रन्थके सम्पादन और प्रकाशनमें जिन विद्वानों एवं संस्थाओंका हमें सहयोग प्राप्त हुआ है उन सबका हम हृदयसे आभार मानते हैं।

वालचन्द देवचन्द शाह बी. ए.
(संस्थाके ट्रस्टियोंकी ओरसे)

श्री आ. शां. जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, फलटणका
संक्षिप्त परिचय

श्रेयःपद्मविकासवासरमणिः स्याद्वादरक्षामणिः
संसारोरगदर्पगारुडमणिर्भव्यौघचिन्तामणिः ।
आशान्ताक्षयशान्तिमुक्तिमहिषीसीमन्तमुक्तामणिः
श्रीमद्देवशिरोमणिर्विजयते श्रीवर्धमानो जिनः ॥

आचार्य श्री शान्तिसागर महाराजके जीवन-चरित्र और जीवन--सन्देशसे सकल दिगम्बर जैन समाज भलीभांति परिचित है । आचार्यश्रीका तपोमय पवित्र जीवन परम गौरवशाली रहा है । उनके जीवन-कालमें अगणित धर्मकार्योंकी सम्पन्नता और विविध संस्थाओंकी स्थापना हुई है । उन्होंने अपने समाधि-कालमें स्वात्मानुभव तथा आगमके अनुसार जीवनकी सफलताके लिए अपूर्व उपदेश देकर संसारको सुख-शान्तिका मार्ग-दर्शन किया है, जिसमें पहला आत्म-चिन्तनका और दूसरा निरन्तर आगम-रक्षा तथा ज्ञान-दानका पावन सुलभ मार्ग बतलाया है । आत्म-चिन्तनका मार्ग व्यक्तिगत है, फिर भी इस मार्गपर चलनेके पहले आत्मविश्वासके लिए आगमका अध्ययन आवश्यक है । सर्व साधारणको आगमकी प्राप्ति सुलभ हो, इसके लिए आचार्यश्रीने समय-समयपर अपने उपदेशों द्वारा अमूल्य शास्त्रप्रदान करनेकी प्रेरणा की और उसके फल-स्वरूप परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाका जन्म हुआ ।

इसी समय आचार्यश्रीको ज्ञात हुआ कि दिगम्बर सम्प्रदायके महामान्य और प्राचीनतम ग्रन्थराज श्री षट्खण्डागम (धवल), कसायपाहुड (जयधवल) और महाबंध (महाधवल) की एक मात्र मूडबिद्रीमें उपलब्ध ताडपत्रीय प्रतियां जीर्ण-शीर्ण होती जा रही हैं, उनमेंसे एक ग्रन्थके तो पांच हजार श्लोक नष्ट हो गये हैं, और शेषके पत्र हाथमें उठाते ही टूटकर बिखरने लगे हैं । यह ज्ञात होते ही आचार्यश्रीका हृदय द्रवीभूत हो उठा और अहर्निश यह विचार मनमें चक्कर लगाने लगा कि किस प्रकार इस अमूल्य आगम-निधिकी रक्षा की जाय, जिससे कि ये ग्रन्थराज युग-युगान्त तक सुरक्षित रह सकें । उन्होंने अपना आशय समाजके कुछ प्रमुख लोगोंके सामने व्यक्त किया कि यदि इन ग्रन्थराजोंको ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण करा दिया जाय, तो यह अमूल्य श्रुत-निधि युग-युगके लिए सुरक्षित हो जाय । तदनुसार उक्त कार्यको सम्पन्न करनेके लिए " प. पू. चा. च. श्री १०८ आ. शान्तिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक " संस्थाकी स्थापना वीर सं. २४७० के पर्युषण पर्वपर श्री सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरिपर हुई ।

तत्पश्चात् वीर सं. २४७१ के फाल्गुन मासमें आचार्यश्रीके बारामती पदार्पण करनेपर उक्त संस्थाकी नियमावली बनवाकर कानूनके अनुसार रजिष्ट्री करा दी गई। अधिकारी व अनुभवी विद्वानोंकी देख-रेखमें तीनों सिद्धान्तग्रन्थोंको ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण कराया गया। उत्कीर्ण ताम्रपत्रोंका आकार ८×१३ इंच है। तीनों सिद्धान्तग्रन्थोंके ताम्रपत्रोंकी संख्या २६६४ है, जिनका वजन लगभग ५० मन है। साथ ही साथ तीनों ग्रन्थोंकी पांच-पांच सौ प्रतियां भी मुद्रित करायी गई हैं, जिनका उपयोग अधिकारी विद्वान् और स्वाध्याय प्रेमी पाठक चिरकाल तक करते रहेंगे। ऐसा महान् कार्य जैन समाजमें तो क्या, अन्य भारतीय या विदेशीय समाजमें भी अभी तक नहीं हुआ है।

उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तग्रन्थ हिन्दी अनुवादके साथ विभिन्न संस्थाओंसे प्रकाशित हो चुके हैं, और प्रस्तुत ग्रन्थ षट्खण्डागम हिन्दी अनुवादके साथ अपने मूल रूपमें पाठकोंके समक्ष उपस्थित है, जिसकी प्रस्तावनामें इन ग्रन्थराजोंका परिचय दिया ही गया है, अतः उसे यहां देना पुनरुक्त ही होगा।

वीर सं० २४८० में आचार्यश्रीका चातुर्मास फलटणमें हुआ था। इस समय आचार्यश्रीने आगमसंरक्षण और ज्ञानदानकी एक रचनात्मक योजना समाजके सामने रखी। फलस्वरूप ताम्रपत्रोत्कीर्ण ग्रन्थराजोंकी सुरक्षाके लिए श्री १००८ चन्द्रप्रभके मंदिरजीमें आचार्यश्रीके हीरक-महोत्सवके समय संकलित निधिमेंसे बचे हुए करीब बीस हजार रुपयोंसे नया भवन बनवाया गया, जिसमें यह समस्त श्रुतनिधि अत्यन्त सुरक्षित रूपसे रखी गई है।

सल्लेखना अंगीकार करते ही आचार्यश्रीके उपदेशोंमें एक महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। अब तक आचार्यश्री गृहस्थोंके कल्याणके लिए जिनबिंब, जिनागार और पूजादि पुण्यकार्यके लिए अधिकतर उपदेश देते थे। किन्तु अब आपने अनुभव किया कि शास्त्र-स्वाध्यायके विना धर्म-श्रद्धान दृढ नहीं रहेगा और शास्त्रोंकी सुलभताके विना स्वाध्याय नहीं हो सकेगा, अतः प्रत्येक ग्रामके जिनमंदिरोंमें आगमोंकी सुलभता होनी चाहिए। स्वाध्यायके साधनभूत शास्त्र यदि सानुवाद हों, तो जनताको भारी लाभ होगा। अतः स्वाध्यायप्रेमियोंको शास्त्र विना मूल्य मिलना चाहिए। आचार्यश्रीके उक्त उद्गारोंसे प्रेरणा पाकर फलटण-निवासी दि. जैन समाजने पूर्व संस्थापित प. पू. चा. च. श्री १०८ आ. शान्तिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थासे प्रमाणित श्रुतभाण्डार और ग्रन्थप्रकाशन-समितिकी स्थापना की। इस संस्थाके निर्माणमें तथा विकासकार्यमें फलटणके सभी भाइयोंने उत्साहपूर्वक सहयोग दिया। जिन उद्देश्योंको लेकर यह संस्था स्थापित हुई, वे इस प्रकार हैं-

(१) प्राचीन तथा जीर्णोद्धार किये गये श्री धवलादि ग्रन्थराज इस संस्थाके द्वारा सुरक्षित रक्खे जांय और उनकी सुरक्षाका कार्य निरन्तर फलटण-वासियोंकी ओरसे उन्हींकी जिम्मेदारीपर किया जाय।

(२) श्री धवल ग्रन्थके ताम्रपत्र तथा अन्य छपे ग्रन्थोंकी छपी हुई प्रतियोंकी सुरक्षा तथा ज्ञानदानके योग्य प्रबन्धका कार्य होवे।

(३) इन दोनों उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए योग्य और अच्छे भवनका प्रबन्ध।

(४) आगम-ग्रन्थोंके स्वाध्यायके लिए प्रचलित भाषाओंमें अनुवाद-सहित मूल गाथा-सूत्रोंके साथ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ छपानेका और ज्ञानदानका साक्षात् प्रबन्ध करना।

उक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए इस अवधिमें जो कार्य हुआ है, वह समाजके सम्मुख है। ज्ञानदानके शुद्ध ध्येयको दृष्टिमें रखकर जो ग्रन्थरत्न मुद्रित होकर वितरण करनेके लिए तैयार हो गये हैं, उनकी सूची तथा केवल छपाईमें लगे हुए खर्चके लिए जिन्होंने दान दिया है उनके शुभ नाम इस प्रकार हैं -

ग्रन्थ-नाम	दातार-नाम
१ श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार	श्री गंगाराम कामचंद दोशी, फलटण
२ श्री समयसार	श्री हिराचंद केवलचंद दोशी, फलटण
३ श्री सर्वार्थसिद्धि	श्री शिवलाल माणिकचंद कोठारी, बुध
४ श्री मूलाचार	श्री गुलाबचंद जीवन गांधी, दहिवडी
५ श्री उत्तरपुराण	श्री जीवराज खुशालचंद गांधी, फलटण
६ श्री अनगारधर्मामृत	श्री चंदूलाल कस्तूरचंद, मुंबई
७ श्री सागारधर्मामृत	श्री पद्मराज वैद्य, निमगांव
८ श्री धवल ग्रन्थराज	श्री हिराचंद तलकचंद, बारामती

आचार्य महाराजके संकेत और आज्ञानुसार सब ग्रन्थोंके लिए कागज संस्थाकी ओरसे दिया गया है। ग्रन्थोंका वितरण प्रत्येक शहर तथा ग्राममें जहां पर दि. जैन भाई और दि. जिन-मन्दिर विद्यमान है, वहां पर प्रत्येक ग्रन्थकी एक एक प्रति पहुंचे, ऐसी योजना की गई है। संस्थाके सभी सदस्योंको भी एक एक प्रति विना मूल्य दी जाती है।

समाजके जिन श्रीमानोंका संस्थाकी स्थापना और विकासमें हमें आर्थिक सहयोग प्राप्त है और जिसके कारण संस्थाके द्वारा महान् कार्य हो रहे हैं, तथा जो आचार्य महाराजकी अमूर्त आज्ञाको साकार एवं कार्यान्वित करनेमें प्रधान कारण हैं ऐसे उन सभी श्रीमानों और उदारतापूर्वक ग्रन्थोंकी छपाई आदिमें आर्थिक सहायता पहुंचानेवाले दातारोंको उनके धर्म-प्रेमके लिए हार्दिक धन्यवाद है।

आशा है कि समाजके अन्य दानी धर्म-प्रेमी महानुभाव इस परम पवित्र विश्व-पावनी जिनवाणीके प्रसारके महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए सक्रिय सहयोग देकर और अपनी उदारता प्रकट कर महान् पुण्यका संचय करेंगे, ताकि संस्थाका कार्य उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता रहे।

आज आचार्यश्री हमारे सामने नहीं हैं, तथापि उनकी पवित्र आज्ञाको शिरोधार्य कर हम जितना कार्य उनके सम्मुख कर सके थे, उससे उन्होंने परम सन्तोषका अनुभव अपने सल्लेखना-कालमें किया था और उनकी ही आज्ञा और इच्छाके अनुसार हम भगवान् पुष्पदन्त और भूतबलि विरचित षट्खण्डागमको हिन्दी अनुवादके साथ मूलरूपमें पाठकोंके कर-कमलोंमें स्वाध्यायार्थ भेट करते हुए परम हर्षका अनुभव कर रहे हैं।

आचार्यश्री प्रशान्तचित्त, गाढ तपस्वी, जिनधर्म-प्रभावक, श्रेयोमार्ग-प्रवर्तक, बालब्रह्मचारी और जगद्हितैषी थे। उनके द्वारा इस परमागमस्वरूपिणी भगवती जिनवाणी माताके ग्रन्थरूप द्रव्य-शरीरका जीर्णोद्धार और प्रसाररूप महान् कार्य हुआ है। ऐसे महान् आचार्यके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनेकी किंचिदपि शक्ति समाजके लिए किसी भी शब्द या अर्थमें नहीं है। सच्ची कृतज्ञता तो उनके उपदेश और आदेशके अनुसार धर्ममें प्रगाढ श्रद्धा, चारित्रमें अचल निष्ठा, स्वाध्याय और आत्म-चिन्तनमें प्रवृत्ति तथा तदनुकूल आचरण-द्वारा ही व्यक्त की जा सकती है। स्वर्गीय परम श्रद्धेय आचार्यश्रीके विना इस महान् कार्यका प्रारम्भ होना असम्भव था। यह सब कार्य उनके असाधारण उपदेश, आदेश, मार्ग-दर्शन और सतत प्रेरणाका सुफल है। हम परम श्रद्धा और भक्ति-भावसे उनका स्मरण करते हुए उन्हें परोक्ष होनेपर भी प्रत्यक्षवत् शत-शत वन्दन करते हैं और सद्भाव करते हैं कि सद्धर्म-प्रसारकी भावना-पूर्तिके लिए सर्व जैन समाजके साथ हम लोग सतत सावधान और जागरूक रहें।

दर्शं दर्शं सूरिशान्तस्वरूपं पायं पायं वाक्यपीयूषधाराम्।
स्मारं स्मारं तद्-गुणान् स्पृष्टपादाः जाताः शान्ताः साधवोऽक्षेष्वरक्ताः॥

फाल्गुन शुक्ला ११ वीर सं. २४९० दि. २३-२-६४.

अध्यक्ष— श्री १०५ जिनसेन भट्टारक पट्टाचार्य महास्वामी मठाधीश

वालचंद देवचंद शहा
मंत्री— 'प. पू. चा. च. श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर दि. जैन जि. जीर्णोद्धारक संस्था'

माणिकचंद मलुकचंद दोशी
मंत्री— 'श्रुतभाण्डार व ग्रन्थप्रकाशन समिति फलटण.'

श्री. हिराचंद तलकचंद शाहका परिचय

कमलेश्वर गोत्री शेठ हिराचन्द तलकचंद शहा डोरलेवाडीकरके पूर्वज ईडर (गुजरात) जिलेके अन्तर्गत भिलवडे ग्रामके रहनेवाले थे। आपके प्रपितामह (पडदादा) व्यापारके निमित्त महाराष्ट्रमें आये। वे चार भाई थे— रूकचंद, ताराचंद, देवचंद और खेमचंद। इनमेंसे रूकचंदके पुत्र दलुचंद हुए। उनके दो पुत्र हुए तलकचंद और मगनलाल। इनमेंसे तलकचंदके तीन पुत्र हुए— हिराचंद, माणिकचंद और मोतीचंद। इनमेंसे हिराचंद शहाने इस ग्रन्थके छपानेका भार उठाया है। आपके चार सुपुत्र हैं- चन्द्रकांत, सूर्यकांत, किरण और श्रेणिक। तथा दो सुपुत्री हैं- विमल और सुरेखा। इनकी मातुश्रीका नाम रतनबाई है। उनकी आयु इस समय ७५ वर्षकी है। वे इस वृद्धावस्थामें भी धार्मिक कार्यके करनेमें सदा तत्पर रहती हैं।

सेठ हिराचंदके पडदादा चारों भाइयोंने फलटणके जिनमन्दिरमें रत्नत्रय प्रभुका मन्दिर निर्माण कराया और उसकी नित्य पूजन-अर्चनके लिए ३०००) का दान दिया।

सं० १९६४ में सेठ हिराचंदके पिता तलकचंदजीने बारामतीमें दुकान खोली, जिसे आज हिराचंदजी चला रहे हैं। बारामतीमें ऐलक पन्नालाल जैन पाठशालाके ध्रौव्य फंडमें रूकचंद कस्तूरचंदके स्मरणार्थ शेठ तलकचंदने १५००) प्रदान किये। इसी प्रकार बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम कुंभोजको आपने पिताजीके स्मरणार्थ एक कमरा बनवानेके लिए २५००) प्रदान किये। बोरीवली बम्बईमें आचार्य भूतबलिकी मूर्ति-निर्माणके लिए आपने १०००) प्रदान किये। तथा ५००) सेठ तलकचंदके नामसे प्रदान किये हैं। आपने बाहुबली स्वामीकी मूर्तिके निर्माणार्थ १०००) दिये हैं। इस प्रकार आप निरन्तर धर्मार्थ दान करनेमें तत्पर रहते हैं। इसके सिवाय धवल ग्रन्थके ताम्रपटके लिए तलकचंद दलूचंद शहा और हिराचंद तलकचंद शहा इनके नामसे भी आपने २००२) प्रदान किये हैं।

सं. २०११ में जब आ० शान्तिसागर महाराज लोणंदमें विराजमान थे, तब महाराजके उपदेशसे प्रभावित होकर शेठ हिराचंदने धवल ग्रन्थको मूल सूत्र व हिन्दी अनुवादके साथ छपानेके लिए ४००१) प्रदान किये थे, यह आचार्य महाराजके आशीर्वादका ही फल है।

शेठ हिराचंदके पिता श्री शेठ तलकचंदजी बहुत धैर्यवान्, नीतिमान् और योग्य सलाह देनेवाले थे। सं. २०१९ के पौष मासमें आपने बारामतीमें सल्लेखना धारण की और पंचपरमेष्ठीका स्मरण करते हुए देहका परित्याग कर स्वर्गवासी हुए।

शेठ हिराचंदकी तृतीय पत्नी हीरामती भी अपने पतिके समान धर्म-कार्य करनेमें और गुरु-सेवामें सदा तत्पर रहती हैं। इस प्रकार आपका सारा परिवार धर्मपरायण है।

हम आपके परिवारकी मंगल-कामना करते हैं।

— प्रकाशक

प्राक् कथन

लगभग ११-१२ वर्ष हुए होंगे जब मैं श्री. १०८ परमपूज्य आचार्य शांतिसागरजी महाराजके दर्शनार्थ बारामती गई थी तब उनके साथ जो तत्वचर्चा हुई उसके प्रसंगमें उन्होंने मुझे हिंदी अनुवादके साथ षट्खण्डागमके मूल मात्रको सम्पादित कर उसे आ. शा. जि. जीर्णोद्धारक संस्थासे प्रकाशित करानेकी आज्ञा दी थी। उस समय मैंने ग्रन्थकी गम्भीरता और अपनी अल्पज्ञताको देखकर उनसे प्रार्थना की थी कि महाराज, यह महान् कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हो सकेगा, इसमें मुझे सन्देह है। इसपर महाराजने दृढतापूर्वक यह कहा कि इसमें सन्देह करनेका कुछ काम नहीं है, आचार्य वीरसेन स्वामीकी धवला टीका तथा हिन्दी अनुवादके साथ उसका बहुत-सा भाग अमरावतीसे प्रकाशित हो चुका है, उसकी सहायतासे यह कार्य सरलतापूर्वक किया जा सकता है। तब मैंने यह कहते हुए उसे स्वीकार कर लिया था कि महाराज, मैं तो अपनेको इस योग्य नहीं समझती, पर जब आपका वैसा आदेश है तो मैं उसे स्वीकार करती हूं। फिर भी यह निश्चित है कि इस गुरुतर कार्यके सम्पन्न होनेमें आपका आशीर्वाद ही काम करेगा।

तत्पश्चात् मैंने उसे प्रारम्भ किया और यह काम निर्दोष और अच्छी तरहसे होनेके लिये और संशोधन करनेके लिये किसी सुयोग्य विद्वान्की खोजमें थी। इस बीच सोलापुरमें श्री ब्र. जीवराज गौतमचन्द्रजी दोशीके द्वारा स्थापित जैन संस्कृति-संरक्षक संघमें श्री. पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीकी नियुक्ति हुई और वे यहां आ भी गये। उनका अमरावतीसे प्रकाशित षट्खण्डागमके सम्पादनमें महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। अतः मैंने उनसे मिलकर इस कार्यके सम्पादन करा देने बाबत निवेदन किया, जिसे उन्होंने न केवल सहर्ष स्वीकार ही किया, बल्कि यथावकाश उसके लिये सक्रिय सहयोग भी देना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार कार्य प्रगतिके पथपर चलने लगा। अन्तमें मुद्रणके योग्य हो जानेपर उसे प्रेसमें भी दे दिया गया। इस प्रकार मुद्रणकार्यके समाप्त हो जानेपर उसे आज स्वाध्यायप्रेमियोंके हाथोंमें अर्पित करती हुई मैं एक अभूतपूर्व प्रसन्नताका अनुभव करती हूं व उसे प्रातःस्मरणीय पूज्य आ. शान्तिसागरजी महाराजके उस आशीर्वादका ही फल मानती हूं, जिसके प्रभावसे मुझे प्रस्तुत कार्यकी पूर्तिके लिये उत्तरोत्तर अनुकूल साधन-सामग्री प्राप्त होती गई।

इस कार्यकी पूर्तिका पूरा श्रेय मेरे गुरुतुल्य पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीको है। यदि उनका ग्रन्थके सम्पादन कार्यमें सक्रिय सहयोग न मिला होता तो मेरे द्वारा उसका सम्पादन यदि असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य तो अवश्य था, यह मैं निःसंकोच कह सकती हूं। इसके लिये मैं उनका हृदयसे अभिनन्दन करती हूं।

दूसरे विद्वान् साढूमर (झांसी) निवासी श्री. पं. हिरालालजी सिद्धान्तशास्त्री हैं, जिनको मैं नहीं भूल सकती हूं। आपने सोलापुर आकर प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रस्तावनामें समाविष्ट करनेके

लिये 'महाबन्धका विषय-परिचय' शीर्षक लिख दिया तथा साथ ही उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवार्तिक, गोम्मटसार, कर्मप्रकृति और जीवसमास जैसे ग्रन्थोंके साथ प्रकृत ग्रन्थकी तुलना करके जो निबन्ध लिखकर दिया है उसे भी भविष्यमें संशोधनकार्यके लिये उपयोगी समझ प्रस्तावनामें गर्भित कर लिया है। इसके अतिरिक्त कुछ परिशिष्टोंके तैयार करनेमें भी आपका सहयोग रहा है। इसके लिये मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूं।

ग्रन्थके सम्पादनकार्यमें अमरावतीसे १६ भागोंमें प्रकाशित धवला-टीकायुक्त षट्खण्डागमका पर्याप्त उपयोग किया गया है। इसके लिये मैं उक्त ग्रन्थकी प्रकाशक संस्था और सम्पादकोंकी अतिशय ऋणी हूं।

आ. शा. जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था फलटणकी प्रबन्धसमितिका, जिसने प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनकी व्यवस्था करके मुझे अनुगृहीत किया है, मैं अतिशय आभार मानती हूं। साथ ही ग्रन्थके प्रकाशन कार्यके लिये श्री. शेठ हिराचन्द तलकचन्द शहा डोरलेवाडीकरने जो ४००१ की आर्थिक सहायता की है वह भी विस्मृत नहीं की जा सकती है।

अन्तमें वर्धमान मुद्रणालयके मालिक श्री. प्रकाशचन्द्र फुलचन्द शाहको भी मैं धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकती हूं, जिन्होंने ग्रन्थके मुद्रणकार्यमें यथासम्भव तत्परता दिखलायी है।

खेद इस बातका है कि जिन आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके शुभ आशीर्वादसे यह गुरुतर कार्य सम्पन्न हुआ है वे आज यहां नहीं हैं। फिर भी उनकी स्वर्गीय आत्मा इस कृतिसे अवश्य सन्तुष्ट होगी।

श्राविकाश्रम, सोलापुर.
महावीर-जयन्ती
वी. नि. सं. २४९०

सुमतिबाई शाह

प्रस्तावना

भ० महावीरके निर्वाणके पश्चात् गौतम, सुधर्मा और जम्बूस्वामी ये तीनों पहले समस्त श्रुतके धारक और पीछे केवलज्ञानके धारक केवली हुए। इनका काल ६२ वर्ष है। पश्चात् १०० वर्षमे १ विष्णु, २ नन्दि मित्र, ३ अपराजित, ४ गोवर्धन और ५ भद्रबाहु ये पांच आचार्य पूर्ण द्वादशाङ्गके वेत्ता श्रुतकेवली हुए। तदनंतर ग्यारह अङ्ग और दश पूर्वोंके वेत्ता ये ग्यारह आचार्य हुए — १ विशाखाचार्य, २ प्रोष्ठिल, ३ क्षत्रिय, ४ जय, ५ नाग, ६ सिद्धार्थ, ७ धृतिसेन, ८ विजय, ९ बुद्धिल, १० गंगदेव और ११ धर्मसेन। इनका काल १८३ वर्ष है। तत्पश्चात् १ नक्षत्र, २ जयपाल, ३ पाण्डु, ४ ध्रुवसेन और ५ कंस ये पांच आचार्य ग्यारह अङ्गोंके धारक हुए। इनका काल २२० वर्ष है। तदनन्तर १ सुभद्र, २ यशोभद्र, ३ यशोबाहु और ४ लोहार्य ये चार आचार्य एकमात्र आचाराङ्गके धारक हुए। इनका समय ११८ वर्ष है। इसके पश्चात् अङ्ग और पूर्ववेत्ताओंकी परम्परा समाप्त हो गई और सभी अङ्गो और पूर्वोंको एकदेशका ज्ञान आचार्य परम्परासे धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ। ये दूसरे अग्रायणी पूर्वके अन्तर्गत चौथे महाकर्म-प्रकृतिप्राभृत विशिष्ट ज्ञात थे।

श्रुतावतारकी यह परम्परा धवला टीकाके रचयिता स्वामी आ० वीरसेन और इन्द्रनन्दिके अनुसार है। नन्दि संघकी जो प्राकृत पट्टावली उपलब्ध है, उसके अनुसार भी श्रुतावतारका यही क्रम है। केवल आचार्यों के कुछ नामोंमें अन्तर हैं। फिरभी मोटे तौर पर उपर्युक्त कालगणनाके अनुसार भ० महावीर के निर्वाण से ६२ + १०० + १८३ + २२० + ११८ = ६८३ वर्षोंके व्यतीत होने पर आचार्य धरसेन हुए, ऐसा स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है। नन्दि संघकी पट्टावलीके अनुसार धरसेनाचार्यका काल वी. नि. से ६१४ वर्ष पश्चात् पडता है। बृहट्टिप्पणिका— जो कि एक श्वेताम्बर विद्वान्‌की लिखी हुई है ओर जो बहुत प्रामाणिक मानी जाती है— धरसेनका काल वी.नि. से ६०० वर्ष बाद पडता है।

आ. धरसेन काठियावाडमें स्थित गिरिनगर (गिरनार पर्वत) की चान्द्र गुफामें रहते थे। जब वे बहुत वृद्ध हो गये और अपना जीवन अत्यल्प अवशिष्ट देखा, तब उन्हें यह चिन्ता हुई कि अवसर्पिणी कालके प्रभावसे श्रुतज्ञानका दिन पर दिन ह्रास होता जाता है। इस समय मुझे जो कुछ श्रुत प्राप्त है, उतना भी आज किसीको नहीं है, यदि मैं अपना श्रुत दूसरेको नहीं संभलवा सका, तो यह भी मेरे ही साथ समाप्त हो जायगा। इस प्रकारकी चिन्तासे और श्रुत-रक्षणके

---

१ 'योनिप्राभृतं वीरात् ६०० धारसेनम्'। (बृहट्टिप्पणिका जै. सा. सं. १, २ परिशिष्ट) अर्थात् आ. धरसेनने वी. नि. के ६०० वर्ष बाद योनिप्राभृतकी रचना की। योनिप्राभृतका उल्लेख धवला-कारने भी किया है।

वात्सल्यसे प्रेरित होकर उन्होंने उस समय दक्षिणापथमें हो रहे साधु सम्मेलनके पास एक पत्र भेज-कर अपना अभिप्राय व्यक्त किया। सम्मेलनमें समागत प्रधान आचार्योंने आचार्य धरसेनके पत्रको बहुत गम्भीरतासे पढ़ा और श्रुतके ग्रहण और धारणमें समर्थ, नाना प्रकारकी उज्ज्वल, निर्मल विनयसे विभूषित, शीलरूप-मालाके धारक, देश, कुल और जातिसे शुद्ध, सकल कलाओंमें पारंगत ऐसे दो योग्य साधुओंको धरसेनाचार्यके पास भेजा।

जिस दिन वे दोनों साधु गिरिनगर पहुंचनेवाले थे, उसकी पूर्व रात्रिमें आ. धरसेनने स्वप्नमें देखा कि धवल एवं विनम्र दो बैल आकर उनके चरणोंमें प्रणाम कर रहे हैं। स्वप्न देखनेके साथ ही आचार्यश्रीकी निद्रा भंग हो गई और वे 'श्रुतदेवता जयवन्ती रहे' ऐसा कहते हुए उठ कर बैठ गये। उसी दिन दक्षिणापथसे भेजे गये वे दोनों साधु आ. धरसेनके पास पहुंचे और अति हर्षित हो उनकी चरण-वन्दनादिक कृतिकर्म करके और दो दिन विश्राम करके तीसरे दिन उन्होंने आचार्यश्रीसे अपने आनेका प्रयोजन कहा। आचार्य भी उनके वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा आशीर्वाद दिया।

आचार्यश्रीके मनमें विचार आया कि पहिले इन दोनों नवागत साधुओंकी परीक्षा करनी चाहिए कि ये श्रुत ग्रहण और धारण आदिके योग्य भी हैं अथवा नहीं ? क्योंकि स्वच्छन्द विहारी व्यक्तियोंको विद्या पढ़ाना संसार और भयकाही बढ़ानेवाला होता है। ऐसा विचार करके उन्होंनें इन नवागत दोनों साधुओंकी परीक्षा लेनेका विचार किया। तदनुसार धरसेनाचार्यने उन दोनों साधुओंको दो मन्त्रविद्याएं साधन करनेके लिये दीं। उनमेंसे एक मन्त्रविद्या हीन अक्षरवाली थी और दूसरी अधिक अक्षरवाली। दोनोंको एक एक मन्त्र विद्या देकर कहा कि इन्हें तुम लोग षष्ठोपवास (दो दिनके उपवास) से सिद्ध करो। दोनों साधु गुरुसे मन्त्र-विद्या लेकर भ. नेमिनाथ के निर्वाण होनेकी शिलापर बैठकर* मन्त्रकी साधना करनें लगे। मन्त्र साधना करते हुए जब उनको वे विद्याएं सिद्ध हुईं, तो उन्होंने विद्याकी अधिष्ठात्री देवताओंको देखा कि एक देवीके दांत बाहिर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। देवियोंके ऐसे विकृत अंगोंको देखकर उन दोनों साधुओंने विचार किया कि देवताओंके तो विकृत अंग होते नहीं हैं, अतः अवश्यही मन्त्रमें कहीं कुछ अशुद्धि है ! इस प्रकार उन दोनोंने विचार कर मन्त्र-सम्बन्धी व्याकरण शास्त्रमें कुशल उन्होंने अपने अपने मन्त्रोंको शुद्ध किया और जिसके मन्त्र में अधिक अक्षर था, उसे निकाल कर, तथा जिसके मन्त्रमें अक्षर कम था, उसे मिलाकर उन्होंने पुनः अपने-अपने मन्त्रोंको सिद्ध करना प्रारम्भ किया। तब दोनों विद्या-देवताएं अपने स्वाभाविक सुन्दर रूपमें प्रकट हुईं और बोलीं– 'स्वामिन् आज्ञा दीजिए, हम क्या करें। तब उन दोनों साधुओंने कहा, आप लोगोंसे हमें कोई ऐहिक या पारलौकिक प्रयोजन नहीं है। हमने तो गुरुकी आज्ञासे यह मन्त्र-साधना की है। यह सुनकर

---

* 'श्रीमन्नेमिजिनेश्वरसिद्धिशिलायां विधानतो विद्यासंसाधनं विदधतोस्तयोश्च पुरतः स्थिते देव्यौ ॥ ११६ ॥ (इन्द्रनन्दि श्रुतावतार)

वे देवियां अपने स्थानको चली गई। मन्त्र-साधनाकी सफलतासे प्रसन्न होकर वे आ. धरसेनके पास पहुंचे और उनके पाद-वन्दना करके विद्या-सिद्धि-सम्बन्धी समस्त वृत्तांत निवेदन किया। आ. धरसेन अपने अभिप्रायकी सिद्धि और समागत साधुओंकी योग्यताको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा' कह कर उन्होंने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वारमें ग्रन्थका पढ़ाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार क्रमसे व्याख्यान करते हुए आ. धरसेनने आषाढ शुक्ला एकादशीके पूर्वाह्न कालमें ग्रन्थ समाप्त किया। विनय-पूर्वक इन दोनों साधुओंने गुरुसे ग्रन्थका अध्ययन सम्पन्न किया है, यह जानकर भूतजातिके व्यन्तर देवोंने उन दोनोंमेंसे एककी पुष्पावलीसे शंख, तुर्य आदि वादित्रोंको बजाते हुए पूजा की। उसे देखकर धरसेनाचार्यने उसका नाम 'भूतबलि' रक्खा। तथा दूसरे साधुकी अस्त-व्यस्त स्थित दन्त-पंक्तिको उखाड़ कर समीकृत करके उनकी भी भूतोंने बड़े समारोहसे पूजा की। यह देखकर धरसेनाचार्यने उनका नाम 'पुष्पदन्त' रक्खा।

अपनी मृत्युको अति सन्निकट जानकर, इन्हें मेरे वियोगसे संक्लेश न हो यह सोचकर और वर्षाकाल समीप देखकर धरसेनाचार्यने उन्हें उसी दिन अपने स्थानको वापिस जानेका आदेश दिया। यद्यपि वे दोनोंही साधु गुरुके चरणोंके सान्निध्यमें कुछ अधिक समयतक रहना चाहते थे, तथापि 'गुरुके वचनोंका उल्लंघन नहीं करना चाहिए' ऐसा विचार कर वे उसी दिन वहांसे चल दिये और अंकलेश्वर (गुजरात) में आकर उन्होंनें वर्षाकाल बिताया। वर्षाकाल व्यतीतकर पुष्पदन्त आचार्य तो अपने भानजे जिनपालित के साथ वनवास देशको चले गये और भूतबलि भट्टारक भी द्रमिल देशको चले गये।

तदनंतर पुष्पदन्त आचार्यने जिनपालितको दीक्षा देकर, गुणस्थानादि वीस-प्ररूपणा-गर्भित सत्प्ररूपणाके सूत्रोंकी रचना की और जिनपालितको पढ़ाकर उन्हें भूतबलि आचार्यके पास भेजा। उन्होंने जिनपालितके पास वीस-प्ररूपणा-गर्भित सत्प्ररूपणाके सूत्र देखे और उन्हींसे यह जानकर कि पुष्पदन्त आचार्य अल्पायु हैं, अतएव महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका विच्छेद न हो जाय, यह विचार कर भूतबलिने द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर आगेके ग्रन्थकी रचना की। जब ग्रन्थ-रचना पुस्तकारूढ हो चुकी तब ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीके दिन भूतबलि आचार्यने चतुर्विध संघके साथ बड़े समारोहसे उस ग्रन्थकी पूजा की। तभीसे यह तिथि श्रुतपंचमीके नामसे प्रसिद्ध हुई। और इस दिन आज तक जैन लोग बराबर श्रुत-पूजन करते हुए चले आ रहे हैं[1]। इसके पश्चात् भूतबलिने अपने द्वारा रचे हुए इस पुस्तकारूढ षट्खण्डरूप आगमको जिनपालितके हाथ आचार्य पुष्पदन्तके पास भेजा। वे इस षट्खण्डागमको देखकर और अपनेद्वारा प्रारम्भ किये कार्यको भलीभांति सम्पन्न हुआ जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने भी इस सिद्धान्त ग्रन्थकी चतुर्विध संघके साथ पूजा की।

---

१ ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः। तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥१४३॥ श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप। अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥ १४४ ॥

(इन्द्रनन्दि श्रुतावतार)

षट्खण्डागमका उद्गम

द्वादशाङ्गश्रुतके बारहवें दृष्टिवाद अंगके जो पांच भेद बतलाये गये हैं, उनमेंसे चौथे भेद पूर्वगत के चौदह भेदोंमेंसे दूसरे अग्रायणीय पूर्वकी १४ वस्तुओंमेंसे पांचवीं चयनलब्धिके २० प्राभृतोंमेंसे चौथे कर्मप्रकृतिप्राभृतके २४ अनुयोगद्वारोंमेंसें किस प्रकार किस अनुयोगद्वारमेंसे प्रस्तुत ग्रन्थका कौनसा खण्ड निकला है, इसके लिए निम्नलिखित संदृष्टि देखिए—

ऊपरकी संदृष्टिसें स्पष्ट है कि चौथे कर्मप्रकृतिप्राभृतके जो २४ अनुयोगद्वार हैं, उनमेंसे पहले और दुसरे अनुयोगद्वारसे प्रस्तुत षट्खण्डागमका चौथा वेदना खंड निकला है। बन्धननाम छठे अनुयोगद्वारके चार भेदोंमेंसे प्रथम भेद बन्धसे तथा तीसरे, चौथे और पांचवें अनुयोगद्वारसे पांचवां वर्गणाखंड निकला है। बन्धन अनुयोगद्वारके तीसरे बन्धकभेदसे दूसरा खंड खुद्दाबन्ध

निकला है, और इसी अनुयोगद्वारके बन्धविधाननामक चौथे भेदसे महाबन्ध नामका छठा खण्ड निकला है।

बन्धन नामक छठे अनुयोगद्वारके बन्धविधान नामक चौथे भेदसे बन्धस्वामित्वविचय नामका तीसरा खंड और जीवस्थान नामक प्रथम खण्डके अनेक अनुयोगद्वार निकले हैं। यथा—
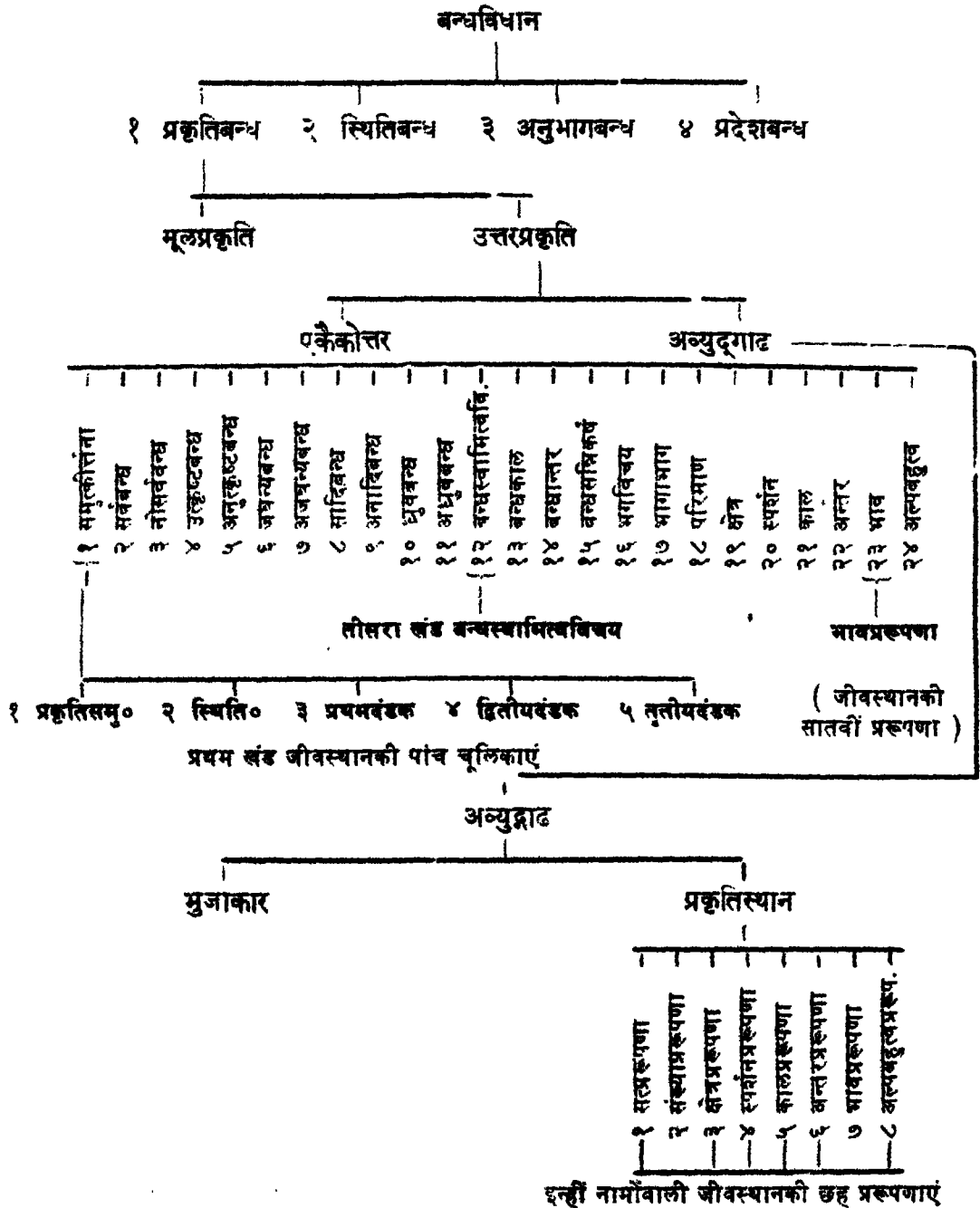
इस प्रकारसे सिद्ध है कि बन्ध विधानके उत्तरप्रकृतिगत अभ्युद्गाढ भेदके प्रकृतिस्थान-सम्बन्धी आठ प्ररूपणाओंमेंसे जीवस्थान नामक प्रथम खण्डकी पहली सत्प्ररूपणा, तीसरी क्षेत्रप्ररूपणा, चौथी स्पर्शनप्ररूपणा, पांचवीं कालप्ररूपणा, छठी अन्तरप्ररूपणा और आठवीं अल्पबहुत्व-प्ररूपणा निकली है। सातवीं भावप्ररूपणाका उद्गम एकैकोत्तर प्रकृतिस्थानके तेईसवें भाव-अनुयोगद्वारसे हुआ है। दूसरी संख्याप्ररूपणाका उद्गम स्थान बन्धक ११ अनुयोगद्वारोंमेंसे पांचवां द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वार है।

जीवस्थानकी शेष जो चार चूलिकाएं हैं उनका उद्गम इस प्रकार हुआ है-

पांचवां व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग
|
गति–आगति
(नवमी चूलिका)
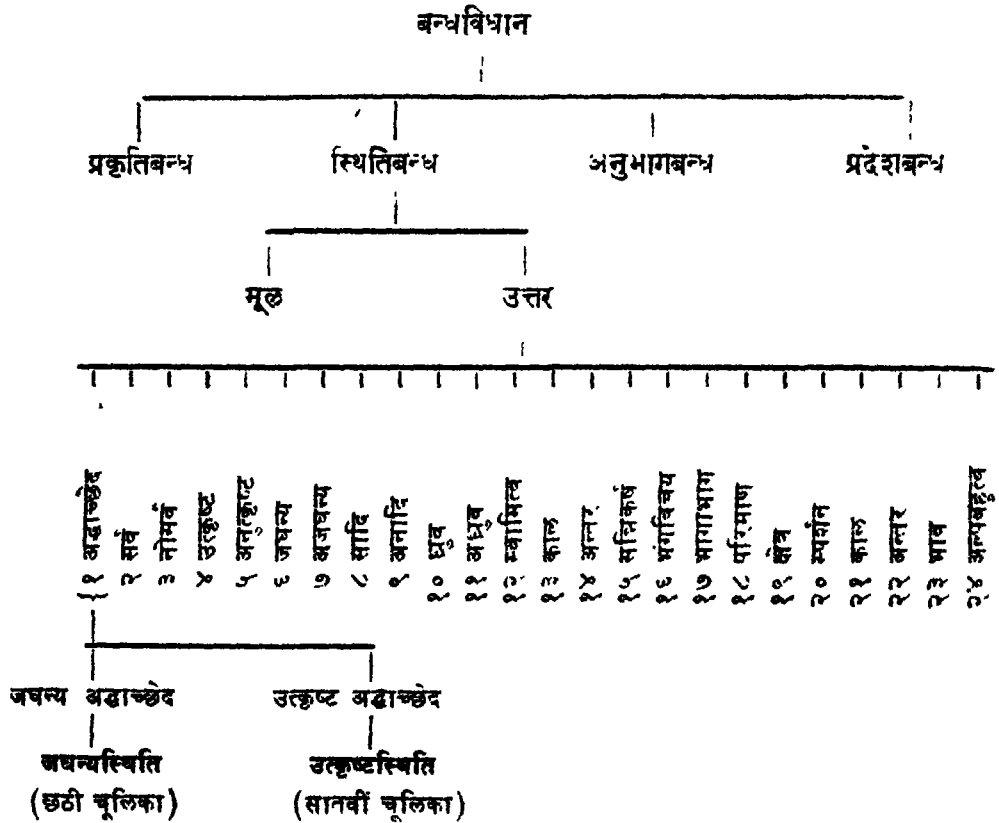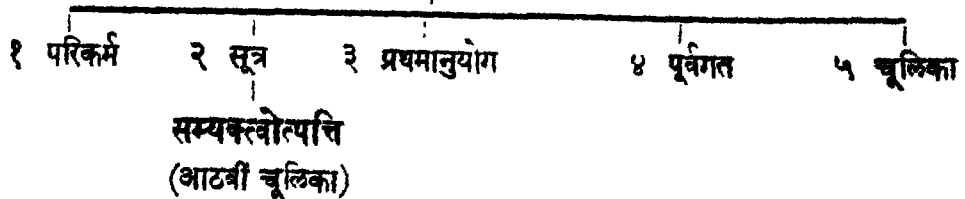
इस प्रकार जीवस्थान नामक प्रथम खण्डमें जो नौ चूलिकाएं दी हुई हैं, उनके उद्गम स्थान उपर्युक्त प्रकारसे जानना चाहिए।

उक्त सर्व विवेचनसे पाठक दो निश्चयोंपर पहुंचेंगे– पहला यह कि द्वादशांग श्रुतका क्षेत्र कितना विशाल है। और दूसरा यह कि षट्खण्डागमका उस द्वादशांग श्रुतसे उद्गम होनेके कारण भ. महावीरकी वाणीसे उसका सीधा सम्बन्ध है। इससे प्रस्तुत सिद्धान्त ग्रन्थकी महत्ता स्वयं सिद्ध है।

षट्खण्डागमका विषय–परिचय

यह बात तो ऊपर किये गये विवेचनसेही स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थका उद्गम किसी एक अनुयोगद्वारसे नहीं है; किन्तु महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे भिन्न भिन्न अनुयोगद्वार एवं उनके अवान्तर अधिकारोंसे षट्खण्डागमके विभिन्न अंगोंकी उत्पत्ति हुई है, अतः इसका नाम खण्ड-आगम पड़ा। और यतः इस आगमकें छह खण्ड हैं, अतः षट्खण्डागमके नामसे यह प्रसिद्ध हुआ। इसके छह खण्ड इस प्रकार हैं — १ जीवस्थान, २ खुद्दाबन्ध (क्षुद्रबन्ध), ३ बन्धस्वामित्वविचय, ४ वेदना, ५ वर्गणा और महाबन्ध।

१ जीवस्थान– इस खंडमें गुणस्थान और मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगद्वारोंसे, तथा प्रकृतिसमुत्कीर्त्तना, स्थानसमुत्कीर्त्तना, तीन महादण्डक, जघन्यस्थिति, उत्कृष्टस्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति इन नौ चूलिकाओंके द्वारा जीवकी विविध अवस्थाओंका वर्णन किया गया है।

राग, द्वेष और मिथ्यात्व भावको मोह कहते हैं। मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्म-प्रदेशोंके चंचल होनेको योग कहते हैं। इन्हीं मोह और योगके निमित्तसे दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप आत्मगुणोंकी क्रम-विकासरूप अवस्थाओंको गुणस्थान कहते हैं। वे गुणस्थान १४ हैं– १ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरतसम्यग्दृष्टि, ५ देशसंयत, ६ प्रमत्तसंयत, ७ अप्रमत्तसंयत, ८ अपूर्वकरणसंयत, ९ अनिवृत्तिकरणसंयत, १० सूक्ष्मसांपरायसंयत, ११ उपशान्तमोह छद्मस्थ, १२ क्षीणमोह छद्मस्थ, १३ सयोगिकेवली और १४ अयोगिकेवली।

१ मिथ्यात्वगुणस्थान– यद्यपि जीवका स्वरूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप या दूसरे शब्दोंमें सत्–चित्–आनन्दरूप है। तथापि यह आत्मा अपने इस स्वरूपको मोहकर्मके

प्रबल उदयके कारण अनादिकालसे भूला हुआ परिभ्रमण करता आ रहा है। मोहकर्मकी प्रबलतासे यह अपने स्वरूपको प्राप्त करनेका तो प्रयत्न नहीं करता, किन्तु संसारके पर पदार्थ जो अपने नहीं हैं, उनको प्राप्त करनेके लिए आकुल-व्याकुल रहता है। जीवका यही मिथ्या भाव या अन्यथा परिणमन मिथ्यात्व कहलाता है। यह मिथ्यात्व जिन जीवोंके पाया जाता है, उन्हें मिथ्या-दृष्टि कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्रवृत्ति सदा विषय कषायों में रहती है और उन्हें धर्म-अधर्मकी कुछ भी पहिचान नहीं होती है। संसारके बहुभाग प्राणी इसी मिथ्यात्व स्थानमें अवस्थित हैं। इस गुणस्थानका काल तीन प्रकारका है - १ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त और ३ सादि-सान्त जिन जीवोंके मिथ्यात्व भाव अनादि कालसे चला आरहा है और आगे अनन्त काल रहनेवाला है, अर्थात् जिन्हें सच्ची यथार्थ दृष्टि न आज तक प्राप्त हुई है और न आगे कभी प्राप्त होनेवाली है, ऐसे अभव्य मिथ्यादृष्टियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानका काल अनादि-अनन्त जानना चाहिए। जिन जीवोंके मिथ्यात्व अनादिकालसे तो चला आया है, किन्तु जो पुरुषार्थ करके उसे दूर कर और यथार्थ दृष्टि प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि बन उपरके गुणस्थानोंमें चढ़नेवाले हैं उनका मिथ्यात्व चूंकि अन्त-सहित है, अतः उसका काल अनादि-सान्त कहलाता है। जिन जीवोंकी मिथ्यादृष्टि दूर होकर एक वार भी सच्ची दृष्टि प्राप्त हो गई है और ऊपर के गुणस्थानोंमें चढ़ चुके हैं। किन्तु कर्मोदयके वशसे पुनः मिथ्यात्वगुणस्थानमें आ गये हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त कहलाता है। अर्थात् उनके मिथ्यात्वकी आदि भी है और आगे चलकर नियमसे वह छूटनेवाला है अतः अन्त भी है। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों प्रकार के जीव पाये जाते हैं।

२ सासादन गुणस्थान– जब यह जीव आत्म-स्वरूपको पानेके लिए पुरुषार्थ करता है और उस पुरुषार्थ के द्वारा उसे सच्ची दृष्टि-प्राप्त हो जाती है तब वह पहले गुणस्थानसे एकदम चौथे गुणस्थानमें जा पहुंचता है। किन्तु उपशान्त हुई अनन्तानुबन्धी कषायके उदयमें आ जानेसे वह नीचे गिरता है और इस गिरती हुई दशामें ही जीवसे दूसरा गुणस्थान होता है। आसादन नाम सम्यग्दर्शनकी विराधनाका है, उससे सहित होनेके कारण इस गुणस्थानका नाम सासादन पड़ा है। इस गुणस्थान का काल कमसे कम एक समय है और अधिक से अधिक छह आवली काल है। इससे अधिक समय तक कोई भी जीव इस गुणस्थानमें नहीं रह सकता है। इसके पश्चात् गिरकर वह नियमसे पहले गुणस्थानमें ही आ जाता है।

३ मिश्र या सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान– चौथे गुणस्थानवाले जीवके जब सम्यक्-मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीय कर्मका उदय आता है, तो वह जीव चौथे गुणस्थानसे गिरकर तीसरे मिश्र गुणस्थानमें आ जाता है। इस गुणस्थानमें जीवके परिणाम सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनों प्रकारके भावोंसे मिले हुए होते हैं, इसी लिए इसका नाम मिश्र या सम्यग्मिथ्यात्व है। इस गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है। इस कालके समाप्त होनेपर यदि वह

ऊपर चढ़नेका पुरुषार्थ करे, तो चौथे गुणस्थानमें चढ़ सकता है, अन्यथा नीचे गिरता हुआ पहले गुणस्थानमें जा पहुंचता है।

४ अविरतसम्यग्दृष्टि - प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव जब पुरुषार्थ करके अपनी अनादि-कालीन मिथ्या दृष्टिको छोड़ कर सच्ची दृष्टिको प्राप्त करता है, तब वह चौथे गुणस्थानको प्राप्त होता है। इस सच्ची दृष्टिको जैन परिभाषामें सम्यग्दर्शन या सम्यक्त्व कहते हैं। आत्माका यथार्थ स्वरूप राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि विकारी भावोंसे रहित शुद्ध, बुद्ध एवं शान्तिरूप है, अर्थात् सत्-चित्-आनन्दमय है। मिथ्यात्वी जीवको आत्माके इस शुद्ध स्वरूपके अभीतक दर्शन नहीं हुए थे, अतः वह अपनी वैभाविक वर्तमान परिणतिकोही अपना स्वरूप समझ रहा था। जब जीवके वह मिथ्यात्वभाव छूट कर सम्यक्त्व भाव प्रकट होता है, तब जैसे जन्मान्ध पुरुषके नेत्र खुल जाने पर प्रत्येक वस्तुके रूपका यथार्थ दर्शन होने लगता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवको अपनी आत्माके शुद्ध रूपका यथार्थ दर्शन हो जाता है। आत्मदर्शन होनेके साथही वह एक अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव करता है और जिन सांसारिक वस्तुओंको अभीतक अपनी मानकर उनकी प्राप्तिके लिए आकुल-व्याकुल हो रहा था, उससे विमुक्त होकर निराकुलतारूप स्वाधीन सुखके सागरमें गोते लगाता है। उस समय उसके कषायके अभावसे प्रशमभाव प्रकट होता है, यथार्थ ज्ञानसे उसके हृदयमें संसारसे संवेग और निर्वेद भाव उत्पन्न होता है। प्राणिमात्रपर कारुण्य-भाव जागता है और मैं अपनी इसी परिणतिमें स्थिर रहूं - निमग्न रहूं, इस प्रकारका आस्तिक्यभाव प्रकट होता है। इसी भावके कारण उसकी जिन-भाषित तत्त्वोंपर दृढ़ प्रतीति होती है। वह अपने भीतर विद्यमान ज्ञान, दर्शन, सुख, बल, वीर्य आदि गुणोंकोही अपना मानने लगता है और अंतरात्मा बनकर बहिरात्म दृष्टि छोडकर अपनेमें स्थित शुद्ध, नित्य, त्रैकालिक ज्ञायक परमात्माकी आराधना करता है। संसारके कार्योंसे उदासीन रहता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके परिणाम सदा विशुद्ध रहने लगते हैं। उसकी अन्यायरूप प्रवृत्ति छूट जाती है और न्यायपूर्वक आजीविकादि कार्य करने लगता है। मोहनीय कर्मके दो भेद बतलाये गये हैं - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। इस गुणस्थानवालेके चारित्रमोहनीयका उदय रहनेसे व्रत, शील, संयम आदि पालन करनेके भाव तो जीवके नहीं होते हैं। किन्तु चारित्रमोहके अनन्तानु-बन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम, क्षय और क्षयोपशम इस गुणस्थानमें होता है। उक्त कर्मोंके कुछ काल तक उदयमें नहीं आनेको उपशम कहते हैं। उनके सर्वथा विनष्ट हो जानेको क्षय कहते हैं। तथा उन्हीं सर्वघाती प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशमके साथ देशघाती सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय होनेको क्षयोपशम कहते हैं। दर्शन मोहके उपशमसे जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। क्षयसे जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसे क्षायिकसम्यग्दर्शन कहते हैं और क्षयोपशमसे जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसे क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयकी प्रधानतासे अर्थात्

उसके उदयको वेदन (अनुभवन) करनेसे उसे वेदक सम्यग्दर्शन भी कहते हैं। इनमें जिस जिस जीवको क्षायिकसम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, वह जीव कभी भी नीचे नहीं गिरता, अर्थात् मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता है, उसे जिनभाषित तत्त्वोंमें किसी प्रकारका सन्देह भी नहीं होता और न वह मिथ्यादृष्टियोंके अतिशयोंको देखकर आश्चर्यको ही प्राप्त होता है। औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव भी इसी प्रकारका है, किन्तु परिणामोंके निमित्तसे उपशम सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यात्व गुणस्थानमें जा पहुंचता है, कभी सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त करता है, कभी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमे भी जा पहुंचता है और कभी वेदकसम्यग्दर्शनको भी प्राप्त कर लेता है। जो क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है, वह शिथिल श्रद्धानी होता है। जैसे वृद्ध पुरुषके हाथकी लकड़ी भूमिमें स्थिर रहनेपर भी ऊपरसे हिलती रहती है, उसी प्रकार वेदक सम्यग्दृष्टि जीवका श्रद्धान भी आत्माके ऊपर दृढ़ होनेपर भी तत्त्वार्थके विषयमें शिथिल होता है। अतः कुहेतु और कुदृष्टान्तोंसे उसके सम्यक्त्वकी विराधना होनेमें देर नहीं लगती।

इन तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंमेंसे उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक अन्तर्मुहूर्त ही है। क्षायिकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल संसार-वासकी अपेक्षा कुछ कम दो पूर्व-कोटि वर्षसे अधिक तेत्तीस सागर है, तथा मोक्ष-निवासकी अपेक्षा अनन्त-काल है। वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है। कहनेका भाव यह है कि कोई जीव यदि औपशमिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर चौथे गुणस्थानमें आता है तो उसकी अपेक्षा उसका काल अन्तर्मुहूर्त ही है। और यदि क्षायिक या वेदक सम्यक्त्वके साथ चौथे गुणस्थानमें रहता है तो ऊपर इन दोनोंका जो उत्कृष्ट काल बतलाये हैं, उतने काल तक वह जीव चौथे गुणस्थानमें बना रहता है।

५ देशसंयत गुणस्थान— सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके पश्चात् जब जीवके अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायोंका क्षयोपशम होता है, तब जीवके भाव श्रावक व्रत-धारण करनेके होते हैं और वह अपनी शक्तिके अनुसार श्रावककी ११ प्रतिमाओं (कक्षाओं) मेंसे यथा संभव प्रतिमाओंके व्रतोंको धारण करता है। इस गुणस्थानवाला जीव भीतरसे सकलसंयम अर्थात् सम्पूर्ण चारित्र को धारण करनेके भाव रखते हुए भी प्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र उदयसे उसे धारण नहीं कर पाता है, अतः यह स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहरूप पंच पापोंका यावज्जीवनके लिए त्याग करता है। दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डविरत इन तीन गुणव्रतों को भी धारण करता है। प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें कमसे कम दो घड़ी (४८ मिनिट) काल बैठकर सामायिक करता है, अर्थात प्राणिमात्रके साथ समताभावकी उपासना करता हुआ इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेषका परित्याग करता है। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको अन्न-जलका और व्यापारादि कार्योंका परित्याग करके उपवास अंगीकार कर दिन-रातका सारा समय धर्म साधनमें व्यतीत करता है। खान-पान और दैनिक-व्यवहारकी वस्तुओंमेंसे आवश्यकोंको

रखकर अनावश्यकोंका यावज्जीवनके लिए त्याग करता है। तथा उसमें भी दैनिक आवश्यकताओंको दृष्टिमें रख कर कुछके सेवनको रख कर शेषके त्यागका नियम करता रहता है। तथा नियमपूर्वक प्रतिदिन अतिथि (साधु-श्रावक या असंयत सम्यग्दृष्टि) को आहारदान देता है, रोगियोंको औषधिदान देता है, जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको ज्ञानदान देता है, तथा भय-भीतों, अनाथों और निर्बलोंकी सहायता कर उन्हें अभयदान देता है। कहनेका सारांश यह कि इस गुणस्थानवाला जीव एक श्रेष्ठ नागरिक व्यक्तिका आदर्श जीवन व्यतीत करता है। इस गुणस्थानका दूसरा नाम संयतासंयत है, इसका कारण यह है कि वह त्रस जीवोंकी हिंसाका सर्वथा त्यागी होनेसे तो संयत (संयमी) है और स्थावर जीवोंकी हिंसाका त्यागी न होनेसे असंयत (असंयमी) है। इस प्रकार एकही समयमें संयत और असंयतके दोनों रूपोंको धारण करनेसे संयतासंयत कहलाता है। यह संयतासंयत धीरे धीरे अपने असंयत भावको घटाता और संयत भावको बढ़ाता हुआ ग्यारहवीं प्रतिमाकी उस उच्चश्रेणी पर पहुंचता है, जहां उसकी निजी आवश्यकताएं अत्यल्प रह जाती हैं। वह वस्त्रोंमें एक कौपिन (लंगोट) को रखता है, निरुद्दिष्ट आहार लेता है और घर-भार छोड़कर साधु-आवासोंमें रहने लगता है। इस गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्तसे कम एक पूर्व कोटी वर्ष है। यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि जो जीव उपशम सम्यक्त्वके साथ श्रावकके व्रत-धारण करनेरूप संयमासंयमको प्राप्त होता है, वह अन्तर्मुहूर्तके भीतर भी यदि वेदक या क्षायिक सम्यक्त्वको नहीं धारण करता है, तो वह इस गुणस्थानसे गिरकर नीचेके गुणस्थानोंमें चला जाता है।

६ **प्रमत्तसंयतगुणस्थान**- चारित्रमोहनीयका तीसरा भेद जो प्रत्याख्यानावरण कषाय है, उसका क्षयोपशम होनेपर जीव सकलसंयमको अंगीकार करता है; अर्थात् सर्व सावद्ययोगका सूक्ष्म और स्थूलरूप-हिंसादि पांचों पापोंका मन, वचन, कायसे और कृत, कारित, अनुमोदनासे यावज्जीवनके लिए त्याग कर महाव्रतोंको अंगीकार करता है। शौचका साधन कमण्डलु, ज्ञानका साधन शास्त्र और संयमका साधन मयूर पिच्छी इन तीन उपकरणोंको छोड़ वह सभी प्रकारके बाह्य परिग्रहोंका त्यागी होता है। फिरभी संज्वलन और नोकषायोंके उदयसे इसके प्रमादरूप अवस्था होती है। ये प्रमाद १५ हैं-- चार विकथा, चार कषाय, पांच इंद्रियां, एक निद्रा और एक प्रणय (स्नेह)। इन पंद्रह प्रकारके प्रमादोंमेंसे जिस किसी समय जिस किसी प्रमादरूप परिणती होती रहनेसे इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम प्रमत्त संयत है। **इस गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है**। जिसका अभिप्राय यह है कि प्रमत्तसंयत साधु अन्तर्मुहूर्त कालके भीतरही अपनी प्रमत्त दशाको छोड़कर अप्रमत्त होता है और आत्म-स्वरूपके चिन्तनमें लग जाता है। पर आत्म-स्वरूपका चिन्तन भी तो स्थायी नहीं रह सकता और उससे उपयोग हटते ही वह पुनः किसी प्रमादरूपसे परिणत हो जाता है। जिस प्रकार जागृत दशा रहनेपर भी आंखोका

उन्मीलन और निमीलन होता रहता है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती साधुकी भी आत्मोन्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्ति होती रहती है।

७ अप्रमत्तसंयतगुणस्थान– ऊपर जिस आत्मोन्मुखी प्रवृत्तिका उल्लेख किया गया है उसमें वर्तमान साधुको अप्रमत्तसंयत कहते हैं। जब तक वह सकलसंयमी साधु आत्मस्वरूपके चिन्तनमें निरत (तल्लीन) रहता है, तब तक उसके सातवां गुणस्थान जानना चाहिये। यद्यपि **इस गुणस्थानका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है,** तथापि छठे गुणस्थानके कालसे सातवां गुणस्थानका काल स्थूल मानसे आधा जानना चाहिए। इसका कारण यह है कि आत्मस्वरूपके चिन्तवनरूप परम समाधिकी दशामें कोई भी जीव अधिक कालतक नहीं रह सकता। कहनेका अभिप्राय यह है कि साधुकी प्रवृत्ति या चित्त-परिणतिमें हर अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् परिवर्तन होता रहता है और वह छठे गुणस्थानसे सातवेंमें और सातवेंसे छठे गुणस्थानमें आता जाता रहता है और इस प्रकार परिवर्तनका यह क्रम उस मनुष्य के जीवनपर्यन्त चलता रहता है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि जो उपशम सम्यक्त्व के साथ सकलसंयम को प्राप्त होते हैं और उपशम सम्यक्त्वका काल समाप्त होने के साथ ही वेदक या क्षायिक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त हो पाते हैं, वे साधु अन्तर्मुहूर्त कालतक संयमी रहकर उससे च्युत हो जाते हैं और नीचे के गुणस्थानोंमें चले जाते हैं।

सकलसंयमके धारण करनेवाले सप्तम गुणस्थानवर्ती जीवोंमें कुछ विशिष्ट व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो आगेके गुणस्थानोंमें चढ़नेका प्रयास करते हैं। जो ऐसा प्रयास करते हैं, उन्हें सातिशय अप्रमत्तसंयत कहते हैं। वे जीव इसी गुणस्थानमें रहते समय चारित्रमोहनीय कर्मके उपशम या क्षयके लिए अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप विशिष्ट परिणामोंकी प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं। उनमेंसे अधःकरणरूप परिणामोंकी प्राप्ति तो सातवें ही गुणस्थानमें हो जाती है। किन्तु अपूर्वकरणरूप परिणामविशेषकी प्राप्ति आठवें गुणस्थानमें और अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम-विशेषकी प्राप्ति नवें गुणस्थानमें होती है।

१ अधःकरण परिणाम– जब जीव चारित्र मोहनीयके उपशम या क्षयके लिए उद्यत होता है, तब अन्तर्मुहूर्त काल तक उसके परिणाम यद्यपि उत्तरोत्तर विशुद्ध होते रहते हैं, तथापि उसके परिणामोंकी यदि तुलना उसके पीछे अधःकरण परिणामोंको मांडनेवाले जीवके साथ की जाय तो कदाचित् किसी जीवके परिणामोंके साथ सदृशता पाई जा सकती है। इसका कारण यह है कि इस जातिके परिणामोंके असंख्य भेद हैं। पहिला जीव मध्यम जातिकी जिस विशुद्धिके साथ चढ़ता हुआ तीसरे या चौथे समय में जिस जातिकी विशुद्धिको प्राप्त करता है, दूसरा जीव उतनीही विशुद्धिके साथ पहलेही समयमें चढ़ सकता है। अतः उस पहलेवाले जीवके परिणाम इस अधस्तन समयवर्ती जीवके परिणामोंके साथ समानता रखते हैं, अतः उन्हें अधःकरण परिणाम कहते हैं।

कहनेका अभिप्राय यह कि जो परिणाम किसी एक जीवके प्रथम समयमें हो सकता है, वही परिणाम किसी दूसरे जीवके दूसरे समयमें, तीसरे जीवके तीसरे समयमें और चौथे जीवके चौथे समयमें हो सकता है। इस प्रकार उपरितन समयवर्ती जीवोंके परिणाम अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता रखते हुए अधःप्रवृत्त करणके कालमें पाये जाते हैं। यद्यपि इस करणके मांडनेवाले प्रत्येक जीवके परिणाम आगे आगेके समयोंमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिको लिए हुए ही होते हैं, तथापि उसके साथ उन्हीं समयोंमें वर्तमान अन्य जीवोंके परिणाम कदाचित् सदृश भी हो सकते हैं और कदाचित् विसदृश भी हो सकते हैं। यही बात उसके पीछे इस करणके मांडनेवाले जीवोंके परिणामोंके विषयमें जानना चाहिए। अधःकरण परिणामका काल समाप्त होते ही सातिशय अप्रमत्तसंयतगुणस्थानका काल समाप्त हो जाता है और वह जीव आठवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है।

यहां यह ज्ञातव्य है कि आगेके पांच गुणस्थान दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं– एक उपशमश्रेणी और दूसरी क्षपकश्रेणी। जो जीव मोहनीयकर्मके उपशमनके लिए उद्यत होता है, वह उपशमश्रेणीपर चढ़ता है और जो कर्मोंके क्षय करनेके लिए उद्यत होता है, वह क्षपक श्रेणीपर चढ़ता है। उपशमश्रेणीके चार गुणस्थान हैं– आठवां, नवां, दशवां और ग्यारहवां। क्षपकश्रेणीके भी चार गुणस्थान हैं- आठवां, नववां, दशवां और बारहवां। इन दोनों ही श्रेणियोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा प्रत्येक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानका कालभी अन्तर्मुहूर्त है। आगे दोनों ही श्रेणियोंके गुणस्थानोंका एक साथ ही वर्णन किया जायगा। यहाँ एक बात और भी जानने के योग्य है कि वेदकसम्यक्त्व सातवेंसे आगे के गुणस्थानोंमें नहीं होता है। अतः जो भी जीव ऊपर चढ़ना चाहता है, उसका द्वितीयोपशमसम्यक्त्व या क्षायिकसम्यक्त्वको यहीं धारण करना आवश्यक है। क्षायिकसम्यक्त्वी जीव तो दोनोंही श्रेणीयोंपर चढ़ सकता है, किन्तु द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी केवल उपशमश्रेणीपर ही चढ़ता है।

८ **अपूर्वकरणसंयतगुणस्थान** - अधःप्रवृत्तकरणके कालमें वर्तमान जीव किसीभी कर्मका उपशम या क्षय नहीं करता है, किन्तु प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता रहता है। आठवें गुणस्थानमें प्रवेश करतेही अधःकरणकी अपेक्षा उसके परिणामोंकी विशुद्धि और भी अनन्तगुणी हो जाती है। इस प्रकारकी विशुद्धिवाले परिणाम इसके पूर्व कभी नहीं प्राप्त हुए थे, इस लिए इन्हें अपूर्वकरण (परिणाम) कहते हैं। जिसप्रकार अधःकरणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश और विसदृश दोनोंही प्रकारके होते हैं, वैसा अपूर्वकरणमें नहीं है। किन्तु यहांपर भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम अपूर्व ही अपूर्व होते हैं, अर्थात् विसदृश ही होते हैं, सदृश नहीं होते। इस गुणस्थानमें प्रवेश करनेके प्रथम समयसे ही चार कार्य प्रत्येक जीवके प्रारम्भ हो जाते हैं– १ गुणश्रेणीनिर्जरा, २ गुणसंक्रमण, ३ स्थितिकांडकघात और ४ अनुभागकांडकघात। प्रतिसमय

असंख्यात गुणित श्रेणीके क्रमसे कर्म-प्रदेशोंकी निर्जरा करनेको गुणश्रेणीनिर्जरा कहते हैं। यहांपर जिन अप्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, उनकी सत्तामें स्थित कर्म-वर्गणाओंको उस समय बंधनेवाली अन्य प्रकृतियोंमें असंख्यात गुणितश्रेणीके रूपसे संक्रमण करनेको गुणसंक्रमण कहते हैं। विद्यमान कर्मोंकी स्थितियोंके सहस्रों कांडकोंके घातको स्थितिकांडकघात और उन्हीं कर्मोंके सहस्रों ही अनुभाग-काण्डकोंके घातको अनुभागकांडकघात कहते हैं। इस प्रकार इन चारों ही कार्योंको करते हुए वह अपूर्वकरणका काल समाप्त करता है। यद्यपि इस गुणस्थानमें भी जीव किसी भी कर्मका उपशम या क्षय नहीं करता है, तथापि वह उक्त चारों क्रिया-विशेषोंके द्वारा अपने कर्म भारको बहुत कुछ हल्का कर देता है।

९ अनिवृत्तिकरणगुणस्थान— इस गुणस्थानमें प्रवेश करनेवाले जीवके परिणामभी प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ते रहते हैं और यहांपर भी अपूर्वकरणके समानही उक्त चारों कार्य होते हैं। इस प्रकार इस गुणस्थानके कालका बहुभाग व्यतीत होनेपर उपशम श्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव अप्रत्याख्यानादि बारह कषाय और नव नोकषाय इन इक्कीस मोह-प्रकृतियोंका अन्तर-करण करता है। इन प्रकृतियोंकी विवक्षित स्थलसे नीचे और ऊपरकी कितनीही स्थितियोंको छोड़कर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण मध्यवर्ती स्थितियोंके निषेकोंके द्रव्यको ऊपर और नीचेकी स्थितियोंके द्रव्यमें निक्षेपण करके वहांके निषेकोंके अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं। अन्तरकरणके पश्चात् उपशामक जीव सर्वप्रथम नपुंसकवेदका उपशम करता है, तदनन्तर स्त्रीवेदका और उसके पश्चात् हास्यादि छह नोकषायोंका और पुरुषवेदका उपशम करता है। तत्पश्चात् अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठों मध्यम कषायोंका उपशम करता है। इसके अनन्तर क्रमसे संज्वलन, क्रोध, मान, माया और बादर लोभका उपशम करके नवमें गुणस्थानके कालको समाप्त करता है। किन्तु जो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़कर इस गुणस्थानमें आया है, वह नवमें गुणस्थानके बहुभाग व्यतीत होनेपर सर्वप्रथम १ स्त्यानगृद्धि, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचलाप्रचला, ४ नरकगति, ५ नरकगत्यानुपूर्वी, ६ तिर्यग्गति, ७ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, ८ एकेन्द्रियजाति, ९ द्वीन्द्रियजाति १० त्रीन्द्रियजाति, ११ चतुरिन्द्रियजाति, १२ आतप, १३ उद्योत, १४ स्थावर, १५ सूक्ष्म, और १६ साधारण इन सोलह प्रकृतियोंका क्षय करता है। तदनन्तर आठ मध्यम कषायोंका क्षय करता है। तदनन्तर चार संज्वलन और नव नोकषायोंका अन्तर करके सर्वप्रथम नपुंसकवेदका क्षय करता है, पुनः स्त्रीवेदका क्षय करता है और तत्पश्चात् छह नोकषायोंका और पुरुषवेदका क्षय करता है। इसके पश्चात् क्रमसे संज्वलन क्रोध, मान, माया और बादर लोभका क्षय करके नवमें गुणस्थानका काल समाप्त करता है।

१० सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान— इस गुणस्थानमें यतः सूक्ष्मसाम्पराय अर्थात् सूक्ष्म लोभकषाय विद्यमान है, अतः इसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं। जो उपशमश्रेणीसे चढ़ता हुआ यहां आया है, वह एक अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्म लोभका वेदन (अनुभवन) करके अन्तिम समयमें

उसका भी उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है। किन्तु जो क्षपकश्रेणीपर चढ़ता हुआ इस गुणस्थानको प्राप्त हुआ है, वह अन्तर्मुहूर्त तक सूक्ष्म लोभका वेदन करता और प्रतिसमय उसके द्रव्यका असंख्यातगुणश्रेणीरूपसे निर्जरा करता हुआ अन्तिम समयमें उसका क्षय करके बारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है।

११ उपशान्तमोहगुणस्थान– इस गुणस्थानमें वर्तमान जीवके मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियां उपशान्त हो चुकी हैं, अतः उसे उपशान्त मोह या उपशान्तकषाय कहते हैं। जिसप्रकार गंदले जलमें कतक (निर्मली) फल या फिटकरी डाल देनेपर उसका गंदलापन उपशान्त हो जाता है और ऊपर एकदम स्वच्छ जल रह जाता है, अथवा जैसे शरदृतुमें सरोवरका जल गंदलापन नीचे बैठ जानेसे एकदम स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण मोहकर्मके उपशान्त हो जानेसे इस गुणस्थानवर्ती जीवके परिणामोंमें एकदम निर्मलता आ जाती है और वह छद्मस्थ (अल्पज्ञ) रहते हुए भी यथाख्यात चारित्रको प्राप्त कर वीतराग संज्ञाको प्राप्त कर लेता है। किन्तु इस गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके समाप्त होते ही उपशान्त हुई कषाय पुनः उदयमें आ जाती हैं और यह ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरकर वापिस नीचेके गुणस्थानोंमें चला जाता है।

१२ क्षीणमोहगुणस्थान– क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हुए जिस जीवने दशवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म लोभका क्षय कर दिया है, वह मोहके सर्वथा क्षय हो जानेसे दशवेंसे एकदम बारहवें गुणस्थानमें पहुंचता है और छद्मस्थ होते हुए भी यथाख्यातचारित्रको पाकर वीतराग संज्ञाको प्राप्त करता है। इस गुणस्थानका काल भी अन्तर्मुहूर्त है। जब उस कालमें दो समय शेष रह जाते हैं, तब निद्रा और प्रचला इन दो कर्मोंका एक साथ क्षय करता है। तत्पश्चात् अन्तिम समयमें ज्ञानावरणीयकर्मकी पांच प्रकृतियां, दर्शनावरणकी शेष रही चार प्रकृतियां और अन्तरायकी पांच प्रकृतियां इन चौदह प्रकृतियोंका एक साथ क्षय करके सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बनता हुआ तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है।

१३ सयोगिकेवलीगुणस्थान– दशवें गुणस्थानके अन्तमें मोहकर्मके और बारहवें गुणस्थानके अन्तमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तरायकर्मके सर्वथा क्षय हो जानेसे जिनके क्षायिकअनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्यरूप, अनन्तचतुष्टय, तथा इनके साथ क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग और क्षायिक उपभोग, ये नौ लब्धियां प्रकट हो गई है और केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे जिनका अज्ञानरूपी अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है, अतः जिन्होंने परमात्मपदको प्राप्त कर लिया है, जो योगसेसहित होनेके कारण सयोगी कहलाते हैं और असहाय केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित होनेके कारण केवली कहलाते हैं, ऐसे अरिहन्त परमेष्ठीकी सर्वज्ञत्व और सर्वदर्शित्व अवस्था इस गुणस्थानमें प्रकट हो जाती है। ये सयोगिकेवली भगवान् एक भी कर्मका क्षय नहीं करते है; किन्तु अवशिष्ट रहे

हुए चार अघातिया कर्मोंमेंसे आयुकर्मको छोड़कर शेष नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन कर्मोंके सत्त्वकी प्रतिसमय असंख्यातगुणी निर्जरा करते हुए संसारमें जीवन-पर्यंत विहार करते हैं और प्राणिमात्रको धर्मका उपदेश देते रहते हैं। इस गुणस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्तसे कम एक पूर्वकोटी वर्ष है।

१४ अयोगिकेवलीगुणस्थान— जब उपर्युक्त सयोगिकेवली जिनकी आयु अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण शेष रह जाती है, तब वे योग-निरोध करके अयोगि-केवली बनकर इस गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। योगका अभाव हो जानेसे उनके कर्मास्रवका सर्वथा अभाव हो जाता है और इसी कारण वे नवीन कर्म बन्धसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं, तथा सत्तामेंस्थित सर्व कर्मोंके क्षयके उन्मुख हैं। वे शीलके अठारह हजार भेदोंके स्वामी हो जाते हैं, चौरासीलाख उत्तर गुणोंकी पूर्णता भी उनके हो जाती है और योगके अभावसे आत्म-प्रदेशोंके निष्कम्प हो जानेके कारण वे शैल (पर्वत) के समान अचल, स्थिर, शान्त दशाको प्राप्त हो जाते हैं। इस गुणस्थानका काल लघु अन्तर्मुहूर्त मात्र है, अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ऌ, इन पांच ह्रस्व स्वरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है, उतना है। जब इस गुणस्थानका दो समय प्रमाण काल शेष रहता है, तब ये अयोगि-केवली जिन वेदनीयकर्मकी दोनों प्रकृतियोंमेंसे अनुदयरूप कोई एक, देवगति, पांच शरीर, पांच संघात, पांच बन्धन, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त-विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, सुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र इन बहत्तर प्रकृतियोंका एक साथ क्षय करते हैं। तत्पश्चात् अन्तिम समयमें उदयको प्राप्त एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और यदि तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व है, तो वह इस प्रकार तेरह प्रकृतियोंका क्षय करके वर्तमान शरीरको छोडकर सर्व कर्मोंसे विप्रमुक्त होते हुए निर्वाणको प्राप्त होते हैं, अर्थात् सिद्ध परमात्मा बनकर सिद्धालयमें जा पहुंचते हैं और सदाके लिए संसारके आवागमन और परिभ्रमणसे मुक्त हो जाते हैं।

इन चौदह गुणस्थानोंके द्वारा संसारी आत्मा अपने ऊपर आच्छादित राग, द्वेष, मोहादि भावोंको दूर कर आत्म-विकास करके आत्मासे परमात्मा बन जाता है।

मार्गणास्थान

मार्गणा शब्दका अर्थ अन्वेषण (खोज) करना होता है। अतएव जिन नारकादिरूप पर्यायोंके और ज्ञानादि धर्मविशेषोंके द्वारा जिन नारकादिरूप स्थानों में जीवोंका अन्वेषण किया जाता है, उन्हें मार्गणास्थान कहते हैं। ये मार्गणास्थान चौदह हैं— १ गति, २ इन्द्रिय,

३ काय, ४ योग, ५ वेद, ६ कषाय, ७ ज्ञान, ८ संयम, ९ दर्शन, १० लेश्या, ११ भव्यत्व, १२ सम्यक्त्व, १३ संज्ञित्व और १४ आहार मार्गणा।

१ गतिमार्गणा– एक भवसे निकलकर दूसरे भवमें जानेको गति कहते है। अथवा गति नामक नामकर्मके उदयसे जीवकी जो चेष्टाविशेष उत्पन्न होती है, अर्थात् नारक, तिर्यञ्च आदि रूपसे परिणमन होता है, उसे गति कहते हैं। गति चार प्रकारकी है– नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति। संसारके समस्त प्राणियोंका इन चारों ही गतियोंमें निवासस्थान है। जो संसारके परिभ्रमणसे मुक्त हो गये हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं और वे सिद्धालयमें रहते हैं, जिसे कि पांचवी सिद्धगति कही जाती है। इस प्रकार गतिमार्गणाके द्वारा सर्व प्राणियोंका अन्वेषण या परिज्ञान हो जाता है।

२ इन्द्रियमार्गणा– इन्द्र नाम आत्माका है, उसके अस्तित्वकी सूचक अविनाभावी शक्ति, लिंग या चिन्ह विशेषको इन्द्रिय कहते हैं। ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशम-विशेषसे संसारी जीवोंके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्दरूप अपने अपने नियत विषयोंको ग्रहण करनेकी शक्तिकी विभिन्नतासे इन्द्रियोंके पांच भेद हैं– स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय। जातिनाम कर्मके उदयसे जिन जिवोंके एकमात्र स्पर्शनेन्द्रिय पाई जाती है, ऐसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीवोंको एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। जिनके स्पर्शन, रसना ये दो इन्द्रियां पाई जाती हैं, ऐसे लट, केंचुआ आदि जीवोंको द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं। जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां पाई जाती हैं, ऐसे कीड़ी, मकोड़ा, खटमल, जूं इत्यादि जीवोंको त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं। जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियां पाई जाती हैं, ऐसे भौंरा, मक्खी, मच्छर आदि जंतुओंको चतुरिन्द्रिय जीव कहते हैं। जिनके पांचोंही इन्द्रियां पाई जाती हैं, ऐसे मनुष्य, देव, नारकी और गाय, भैंस आदि पशु और कबुतर, मयूर, हंस आदि पक्षियोंको पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। पंचेन्द्रिय जीवोंमें जो तिर्यग्गतिके जीव है, उनमें कुछके मन पाया जाता है और कुछके नहीं। जिनके मन होता है, उन्हें संज्ञी और जिनके नहीं होता है, उन्हें असंज्ञी कहते हैं। इस प्रकार संसारके समस्त प्राणियोका संग्रह या अन्वेषण इन पांचों इन्द्रियोंके द्वारा हो जाता है। जो इन्द्रियोंके सम्पर्कसे रहित हो गये हैं, ऐसे सिद्धोंको अतीन्द्रिय कहते हैं।

३ कायमार्गणा– आत्माकी योगरूप प्रवृत्तिसे संचित हुए औदारिकादिशरीररूप पुद्गलपिण्डको काय कहते हैं। त्रस और स्थावर नामकर्मके उदयसे समस्त जीवराशि त्रसकायिक और स्थावरकायिक इन दो भागोंमें समाविष्ट हो जाती है। पृथ्वीकायिक आदि पांच एकेन्द्रिय जीवोंको स्थावरकायिक कहते हैं और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंको त्रसकायिक कहते हैं। जो जीव कर्मक्षय करके मुक्त हो चुके हैं, उन्हें अकायिक जीव जानना चाहिए।

४ योगमार्गणा– प्रदेश-परिस्पन्दरूप आत्माकी प्रवृत्तिके निमित्तसे कर्मोंके ग्रहण करनेमें कारणभूत शक्तिकी उत्पत्तिको योग कहते हैं। अथवा आत्म-प्रदेशोंके संकोच और विस्तार-रूप क्रियाको योग कहते हैं। योगके तीन भेद हैं– मनोयोग, वचनयोग और काययोग। वस्तु-स्वरूपके विचारके कारणभूत भावमनकी उत्पत्तिके लिए जो आत्म-प्रदेशोंमें परिस्पन्द होता है, उसे मनोयोग कहते हैं। वचनोंकी उत्पत्तिमें जो योग कारण होता है, उसे वचनयोग कहते हैं और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे काययोग कहते हैं। इन तीनों योगोंमेंसे एकेन्द्रिय जीवोंके केवल एक काययोग पाया जाता है। द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंके वचनयोग और काययोग ये दो योग पाये जाते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके तीनोंही योग पाये जाते हैं। इस प्रकार इन तीनों योगोंके द्वारा सर्व तेरहवें गुणस्थान तकके सर्व जीवोंको अनुमार्गणा हो जाता है। जो योगोंसे रहित हैं, ऐसे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली और सिद्ध जीवोंको अयोगी जानना चाहिए।

५ वेदमार्गणा– चारित्रमोहनीयकर्मका भेद जो वेद नोकषायवेदनीय है, उसके उदयसे स्त्री, पुरुष या उभयके विषय सेवनरूप भावोंको वेद कहते हैं। वेदके तीन भेद हैं– स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। स्त्रियोंको पुरुषोंके साथ रमनेकी जो इच्छा होती है, उसे स्त्रीवेद कहते हैं। पुरुषोंको स्त्रियोंके साथ रमनेकी अभिलाषाको पुरुषवेद कहते हैं। स्त्री और पुरुष दोनोंके साथ रमनेकी अभिलाषाको नपुंसकवेद कहते हैं। अथवा उक्त दोनों वेदोंकी अभिलाषारूप प्रवृत्तिसे भिन्न जिस किसीभी प्राणी या उसके अंग-उपांगोंके साथ रमनेके भावको नपुंसकवेद कहते हैं। एकेन्द्रियोंसे लेकर असंज्ञीपंचेन्द्रियों तकके सर्व जीव नपुंसकवेदीही होते हैं। संज्ञीपंचेन्द्रियोंमें तीनों-वेदी जीव होते हैं। उनमें भी नारकियोंके केवल नपुंसकवेद होता है और देवोंके स्त्री वा पुरुष ये दो वेद होते हैं। मनुष्य और संज्ञीपंचेन्द्रियोंमें तीनों वेदवाले जीव पाये जाते हैं। गुणस्थानोंकी अपेक्षा ये तीनों वेद नवमें गुणस्थानके सवेद भाग तक पाये जाते हैं, उससे ऊपरके शेष गुणस्थान-वर्ती मनुष्य और सिद्धोंको अवेदी जानना चाहिए।

६ कषायमार्गणा- जो सुख-दुःखको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी क्षेत्रका कर्षण करे, आत्माके सम्यग्दर्शन, संयमासंयम, सकलसंयम और यथाख्यातचारित्रको न होने दे, उसे कषाय कहते हैं। कषायके चार भेद हैं– क्रोध, मान, माया और लोभ। संसारके क्षुद्रसे क्षुद्र एकेन्द्रिय प्राणीसे लेकर चारों गतियोंके पंचेन्द्रिय प्राणियोंतक सभीके ये चारों कषाय पाई जाती है। यहां तक कि आत्म-विकास करनेवाले जीवोंके भी नवमें गुणस्थान तक चारों कषाय पाई जाती हैं। नवमें गुणस्थानमें क्रोध, मान, माया कषायका क्षय होता है। लोभकषाय दशवें गुणस्थानतक पाया जाता है, उसके अन्तमें ही लोभ कषायका क्षय होता है। इसके ऊपर कषायोंका अभाव होनेसे ग्यारहवें आदि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंको और सिद्धोंको अकषाय अर्थात् कषाय-रहित

जानना चाहिए। इस प्रकार कषाय मार्गणाके द्वारा समस्त प्राणियोंका अन्वेषण किया जाता है।

७ **ज्ञानमार्गणा**– जिसके द्वारा वस्तु-स्वरूप जाना जाता है, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानके पांच भेद हैं– आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। अभिमुख स्थित नियमित वस्तुका इन्द्रिय और मनकी सहायतासे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं। आभिनिबोधिकज्ञानसे जानी हुई वस्तुका आश्रय लेकर उससे सम्बद्ध किन्तु भिन्न ही पदार्थके जाननेको श्रुतज्ञान कहते है। जैसे किसी स्थानसे निकलते हुए धूमको देख कर रसोईघर आदिमें स्थित अग्निका ज्ञान करना और धूम शब्दको सुनकर उसके कारणभूत अग्निका ज्ञान होना। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा लेकर इन्द्रियोंकी सहायताके विनाही रूपी पदार्थोंके साक्षात् जाननेको अवधिज्ञान कहते हैं। भूतकालमें मनके द्वारा विचारी गई, वर्तमानमें मनःस्थित और आगामी कालमें मनके द्वारा सोची जानेवाली बात जानलेनेको मनःपर्ययज्ञान कहते है। त्रिलोक और त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्योंको तथा त्रैकालिक अनन्तगुण और पर्यायोंके साक्षात् युगपत् जाननेवाले ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। इनमेसे प्रारम्भके तीन ज्ञान मिथ्यारूपभी होते हैं, जिन्हे क्रमशः मति-अज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंगाज्ञान कहते हैं। सम्यग्दर्शन होनेके पूर्वतक प्रारम्भके तीन गुणस्थानोंमें संसारीजीवोंके जो मति, श्रुत, अवधिज्ञान होते हैं, उन्हें मिथ्याज्ञानही जानना चाहिए। चौथे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके गुणस्थानोंमें जो ज्ञान होते हैं, वे सब सम्यग्ज्ञानही होते हैं। मनःपर्ययज्ञान छठें गुणस्थानसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक होता है। केवलज्ञान तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानोंमें और सिद्धोंके होता है।

८ **संयममार्गणा**– पंच महाव्रतोंके धारण करना, पंच समितियोंका पालन करना, क्रोधादि कषायोंका निग्रह करना, मन-वचन-कायरूप तीन दण्डोंका त्याग करना और पांच इन्द्रियोंके विषयोंका जीतना संयम है। संयमके पांच भेद हैं– सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात। इनके अतिरिक्त देशसंयम और असंयमभी इसी मार्गणाके अन्तर्गत आते हैं। सर्व सावद्ययोगके त्यागकर अभेदरूप एक संयमको धारण करना सामायिक-संयम है। उसी अभेदरूप एक संयमको दो, तीन, चार, पांच महाव्रतोंके भेदरूपसे धारण करना छेदोपस्थापना संयम है। तीस वर्षतक गृहस्थाश्रममें रहकर और अपनी इच्छानुसार सर्व प्रकारके भोगोंको अच्छी तरहसे भोगकर तदनन्तर मुनिदीक्षा लेकरके जो तीर्थंकरके पादमूलमें वर्षपृथकत्व (तीनसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचेकी संख्याको पृथकत्व कहते हैं) कालतक रहकर प्रत्याख्यानपूर्वका भलीभांति अध्ययन करना इस प्रकारकी साधनाको प्राप्त करता है कि उसके गमनागमन, आहार-विहार और शयनासन आदि क्रियाओंको करते हुए किसीभी प्रकार जीवको रंचमात्र भी बाधा नहीं होती है। इस प्रकारकी साधनाविशेषके साथ जो संयमका अभेदरूपसे या भेदरूपसे पालन होता है, उसे परिहारविशुद्धि संयम कहते हैं। जिनकी समस्त कषायें नष्ट हो

गई हैं, केवल एक अतिसूक्ष्म लोभ शेष रह गया है, ऐसे दशम गुणस्थानवर्ती साधुके जो संयम होता है, उसे सूक्ष्मसाम्परायसंयम कहते हैं। कषायोंके सर्वथा अभाव होनेसे जो वीतराग परिणतिरूप चारित्र होता है, उसे यथाख्यातसंयम कहते हैं। श्रावकके व्रत पालनेको देशसंयम कहते हैं। और किसीभी प्रकारके संयम नहीं पालनेको असंयम कहते हैं। प्रारम्भके चार गुणस्थान असंयमरूप ही हैं। देशसंयम पांचवें गुणस्थानमें होता है। सामायिक और छेदोपस्थापनासंयम छठे गुणस्थानसे नववें गुणस्थानतक होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयम दशवें गुणस्थानमें होता है। यथाख्यातसंयम ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थानतक होता है। इस प्रकार संयमके द्वारा जीवोंके अन्वेषण करने को संयममार्गणा कहते हैं

९ दर्शनमार्गणा— सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विशेष अंशका ग्रहण न करके केवल सामान्य अंशके ग्रहण करनेको दर्शन कहते हैं। अथवा पदार्थको जाननेके लिए उद्यत आत्माको जो आत्म-प्रतिभास होता है, उसे दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं— चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। चक्षुरिन्द्रियसे सामान्य प्रतिभासरूप अर्थके ग्रहण करनेको चक्षुदर्शन कहते हैं। चक्षुकेसिवाय शेष इन्द्रिय और मनसे जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधिज्ञानके पूर्व उसके विषयभूत पदार्थके सामान्य प्रतिभासको अवधिदर्शन कहते हैं। केवलज्ञानके साथ त्रैकालिक और त्रैलोक्यवर्त्ती अनन्त पदार्थोंके सामान्य प्रतिभासको केवलदर्शन कहते हैं। अचक्षुदर्शन एकेन्द्रियोंसे लगाकर बारहवें गुणस्थानतक होता है। चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रियोंसे लगाकर बारहवें गुणस्थान तक होता है। अवधिदर्शन चौथे गुणस्थानसे बारहवें तक होता है। केवलदर्शन तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंके तथा सिद्धोंके होता है। इस प्रकारसे दर्शनके द्वारा जीवोंके मार्गण करनेको दर्शनमार्गणा कहते हैं।

१० लेश्यामार्गणा— कषायसे अनुरंजित योगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। लेश्याके छह भेद हैं— कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। तीव्र क्रोध करना, बदला लिये विना वैरका न छोड़ना, लड़ाकू स्वभाव होना, दया-धर्मसे रहित दुष्ट प्रवृत्ति करना, सदा रौद्र ध्यानरूप परिणत होना कृष्णलेश्याके चिन्ह हैं। विषय-लोलुपि होना मानी, मायावी होना, आलसी और बुद्धि-विहीन होना, धन-धान्यमें तीव्र तृष्णा होना, दूसरेको ठगनेमें तत्पर रहना नीललेश्याके चिन्ह हैं। दूसरोंसे जरासी बातमें रुष्ट होना, परनिन्दा और आत्म-प्रशंसा करना, दूसरेका विश्वास न करना, अपनी प्रशंसा या चापलूसी करनेवालेको धनादिका देना, अपनी हानि-वृद्धि, लाभ-अलाभ और कार्य-अकार्यका विचार न रखना, कापोतलेश्याके चिन्ह हैं। ये तीनों अशुभलेश्याएं कहलाती हैं। हानि-लाभ और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका विचार रखना, दया-दानमें तत्पर रहना, सबपर समान दृष्टि रखना और कोमल परिणामी होना पीत या तेजोलेश्याके चिन्ह हैं। भद्र परिणामी होना, त्यागी होना, किसीकेद्वारा उपद्रव और उपसर्गादिके

करनेपर भी क्षमाभाव धारण करना, गुरुजनोंकी सेवा-सुश्रूषा करना और व्रत-शीलादिको पालन करना पद्मलेश्याके चिन्ह हैं। किसीके प्रति पक्षपात न करना, किसीसे राग-द्वेष नहीं रखना, अपनी प्रवृत्तिको शान्त रखना, निरन्तर प्रसन्न चित्त रहना, धर्म-सेवन करते हुए भी निदान (फलकी इच्छा) न करना और सर्व प्राणियोंपर समभाव रखना ये शुक्ल लेश्याके चिन्ह हैं। पहले गुणस्थानसे लेकर चौथे गुणस्थान तकके जीवोंके यथासंभव छहों लेश्याएं होती हैं। आगे सातवें गुणस्थान तक पीत आदि तीन शुभ लेश्याएं पाई जाती हैं और आठवेंसे लेकर तेरहवें गुणस्थानतक शुक्ललेश्या होती है। चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्धजीव लेश्याओंके लेपसे रहित होनेके कारण अलेश्य कहलाते हैं। इस प्रकारसे लेश्याओंके द्वारा जीवोंके अन्वेषण करनेको लेश्यामार्गणा कहते हैं।

११ भव्यत्वमार्गणा– जिन जीवोंमें मोक्ष जानेकी योग्यता पाई जाती है, अवसर पाकर जिनके भीतर सम्यग्दर्शनादि गुण कभी न कभी अवश्य प्रकट होनेवाले हैं, उन्हें भव्य कहते हैं। किन्तु संसारमें कुछ ऐसे भी जीव हैं, जिन्हें बाहिरी उत्तमसे उत्तम निमित्त मिलनेपर भी उनके आत्मिक गुणोंका न कभी विकास होनेवाला है और न कभी सम्यग्दर्शनादि गुण भी प्राप्त होने-वाले हैं, उन्हें अभव्य कहते हैं। अभव्य जीवोंके एकमात्र पहिला मिथ्यात्वगुणस्थान ही रहता है इससे उपर वे कभी नहीं चढ़ सकते और न कभी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। भव्योंके सभी गुणस्थान होते हैं। सिद्धजीव भव्यत्व और अभव्यत्व भावसे रहित होते हैं। इस प्रकारसे इस मार्गणाद्वारा सर्व जीवोंका अनुमार्गण किया जाता है।

१२ सम्यक्त्वमार्गणा– तत्त्वार्थ श्रद्धानको सम्यक्त्व कहते हैं। तत्त्वार्थनाम आप्त, आगम और पदार्थका है, इसके विषयमें दृढ़श्रद्धा, रुचि या प्रतीतिको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह व्यवहारनयकी अपेक्षा लक्षण है। निश्चयनयकी अपेक्षा अन्य समस्त परद्रव्योंसे आत्म-स्वरूपको भिन्न समझकर बहिर्मुखी दृष्टि हटाकर अन्तर्मुखी दृष्टि करके आत्माके यथार्थ स्वरूपका अनुभव कर उसमें स्थिर होनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यक्त्वके तीन भेद हैं– औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक या वेदक सम्यक्त्व। इन तीनोंका स्वरूप पहले बतला आये हैं। औपशमिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थानतक पाया जाता है। क्षायोपशमिक चौथेसे सातवें गुणस्थानतक होता है और क्षायिकसम्यक्त्व चौथेसे चौदहवें गुणस्थान-तकके जीवोंके तथा सिद्धोंके पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जिनका सम्यक्त्व छूट जाता है और जिनकी श्रद्धा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनोंसे सम्मिश्रित रहती है उन्हें सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। ऐसे जीवोंके तीसरा गुणस्थान होता है। जिनका सम्यक्त्व अनन्तानु-बन्धी कषायके उदयसे नष्ट हो गया है, किन्तु जो अभी मिथ्यात्व गुणस्थानमें नहीं पहुंचे हैं, ऐसे जीवोंको सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं। उनके दूसरा गुणस्थान पाया जाता है। मिथ्यात्वकर्मके उदयवाले जीवोंको मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इनके पहिला गुणस्थान होता है। इस प्रकारसे सम्यक्त्वका

आश्रय लेकर त्रैलोक्यके प्राणियोंके अन्वेषण करनेको सम्यक्त्वमार्गणा कहते हैं।

१३ संज्ञिमार्गणा– नोइन्द्रिय- (मन-) आवरण कर्मके क्षयोपशमको या तज्जनित ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। इस प्रकारकी संज्ञा जिनके पाई जाती है, ऐसे शिक्षा, क्रिया, आलाप (शब्द) और उपदेशको ग्रहण करनेवाले मन-सहित जीवोंको संज्ञी कहते हैं। जिनके इस प्रकारकी संज्ञा नहीं पाई जाती है, ऐसे मन-रहित जीवोंको असंज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके समस्त जीव असंज्ञीही हैं। पंचेन्द्रियोंमें देव, मनुष्य और नरकगतिके समस्त जीव संज्ञीही होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रियों में कुछ जलचर, थलचर और नभचर जीव ऐसे होते हैं, जिनके मन नहीं होता, उन्हें भी असंज्ञी जानना चाहिए। असंज्ञी जीवोंके केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। संज्ञी जीवोंके पहिलेसे लेकर बारहवें तकके बारह गुणस्थान होता है। सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध भगवान् को संज्ञी-असंज्ञीके नामसे अतीत या परवर्ती जानना चाहिए। इस प्रकार संज्ञा और असंज्ञाके द्वारा जीवोंके अन्वेषण करनेको संज्ञीमार्गणा कहते हैं।

१४ आहारमार्गणा– औदारिकादि तीन शरीर और छह पर्याप्तियोंके योग्य नोकर्म-वर्गणाओंके ग्रहण करनेको आहार कहते हैं। इस प्रकारके आहार ग्रहण करनेवाले जीवोंको आहारक कहते हैं और जो इस प्रकारके आहारको ग्रहण नहीं करते हैं, उन्हें अनाहारक कहते हैं। जब जीव एक शरीरको छोड़कर अन्य शरीरको ग्रहण करनेके लिए दूसरी गतिमें जाता है, तब बीचमें यदि विग्रह (मोड़) लेकर जन्म लेना पड़े तो उसके अनाहारक दशा रहेगी। इस विग्रह गतिमें एक मोड़ लेनेपर एक समय, दो मोड़ लेनेपर दो समय और तीन मोड़ लेनेपर तीन समयतक जीव अनाहारक रहता है। तदनन्तर वह नियमसे आहारक हो जाता है। केवली भगवान् जब केवलि समुद्घात करते हैं, तब चढ़ते और उतरते प्रतर समुद्घातमें तथा लोकपूरण समुद्घातमें इस प्रकार तीन समयतक वे भी अनाहारक रहते हैं। इन उक्त प्रकारके जीवोंको छोड़कर शेष सब संसारी जीवोंको आहारक जानना चाहिए। अयोगिकेवली और सिद्ध जीवभी अनाहारक ही हैं। विग्रहगतिकी अनाहारक दशा पहिले, दूसरे और चौथे गुणस्थानमें होती है। केवली भगवान्के केवलिसमुद्घात तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें होता है। इस प्रकार आहारक-अनाहारकके रूपसे त्रैलोक्यके सर्व जीवोंके मार्गण करनेको आहारमार्गणा कहते हैं।

१ सत्प्ररूपणाका विषय

सत्प्ररूपणा– सत् नाम अस्तित्वका है। तीन लोकमें जीवोंका अस्तित्व कहां कहां है। और किस प्रकारसे है ? इस प्रश्नका उत्तर देनाही सत्प्ररूपणाका विषय है। उक्त प्रश्नका उत्तर सत्प्ररूपणामें दो प्रकार से दिया गया है– ओघसे और आदेशसे। ओघ नाम सामान्य, संक्षेप या गुणस्थानका है और आदेश नाम विस्तार, विशेष या मार्गणा स्थानका है। उक्त प्रश्नका

उत्तर यदि संक्षेपसे दिया जाय तो यह है कि त्रिलोकवर्ती सर्व संसारी जीव चौदह गुणस्थानोंमें रहते हैं। और जो संसार-परिभ्रमणसे छूट गये हैं, ऐसे सिद्ध जीव सिद्धालयमें रहते हैं। यदि उक्त प्रश्नका उत्तर विस्तारसे दिया जाय तो यह है कि वे चौदह मार्गणा स्थानोंमें रहते हैं। प्रत्येक मार्गणा अपने अन्तर्गत उत्तर भेदोंके द्वारा और भी विस्तारसे उक्त प्रश्नका उत्तर देती है, जैसा कि ऊपर गति आदि मार्गणाओंका परिचय देते हुए बतलाया गया है।

ग्रन्थ आरम्भ करते हुए आचार्य पुष्पदन्तने मंगलाचरणके पश्चात् जीवसमासोंके अनुमार्गणाके लिए दो सूत्रोंके द्वारा गति आदि १४ मार्गणाएं ज्ञातव्य बतलाई हैं और उनकी प्ररूपणाके लिए सत्, संख्यादि आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य कहकर उनके नामोंका निर्देश किया है। इतना कथन समस्त जीवस्थानसे सम्बन्ध रखता है। इसके पश्चात् आठवें सूत्रमें ओघ और आदेशसे निरूपणका निर्देश कर ९ वें सूत्रसे २३ वें सूत्र तक १४ गुणस्थानोंका नाम-निर्देश कर सिद्धोंका निर्देश किया गया है। जिसका भाव यह है कि यदि संक्षेपमें जीवोंके अस्तित्वकी प्ररूपणा की जाय तो यही है कि वे चौदह गुणस्थानोंमें रहते हैं और उनके अतिरिक्त सिद्ध जीव भी होते हैं। इसके पश्चात् २४ वें सूत्रसे लेकर १७७ वें सूत्र तक आदेशसे जीवोंके अस्तित्वका विस्तारसे निरूपण किया गया है। जिसका बहुत कुछ दिग्दर्शन हम मार्गणाओंके परिचयमें करा आये हैं और विशेषकी जानकारीके लिए प्रस्तुत ग्रन्थके सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वारको देखना चाहिए।

२ संख्याप्ररूपणा अथवा द्रव्यप्रमाणानुगम

दूसरे अनुयोगद्वारका नाम संख्याप्ररूपणा या द्रव्यप्रमाणानुगम है। समस्त जीवराशि कितनी है और किस किस गुणस्थान, तथा मार्गणास्थानमें जीवोंका प्रमाण कितना कितना है, यह बात इस अनुयोगद्वारमें बतलाई गई है। जीवोंका प्रमाण द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा चार प्रकारसे बतलाया गया है। इस संख्याप्ररूपणाका स्वाध्याय करनेवालोंको द्रव्य--क्षेत्रादि प्रमाणोंका स्वरूप जान लेना अत्यावश्यक है, अन्यथा इस प्ररूपणामें वर्णित विषय समझमें नहीं आ सकता। अतः यहां संक्षेपसे उनका वर्णन किया जाता है।

१ द्रव्यप्रमाण-- मूलभूत द्रव्यकी गणना या संख्याको द्रव्यप्रमाण कहते हैं। इसके तीन भेद हैं-- संख्यात, असंख्यात और अनन्त। जो प्रमाण दो, तीन, चार आदि संख्याओंसे कहा जा सके, उसे संख्यात कहते हैं। जो राशि इतनी बढ़ी हो कि जिसे संख्याओंसे कहना संभव नहीं, उसे असंख्यात कहते हैं। जो राशि इससे भी बहुत बढ़ी हो और जिसकी सीमाका अन्त न हो, उसे अनन्त कहते हैं। इनमेंसे संख्यात राशि हमारे इन्द्रियोंका विषय है, हम अंक-गणनाके द्वारा उसे गिन सकते हैं और शब्दोंके द्वारा उसे संज्ञा-विशेषसे कह सकते हैं। अतः वह श्रुतज्ञानका विषय है। किन्तु असंख्यात राशिको न हम शब्दोंके द्वारा कह ही सकते हैं और न

जाती है। आगे बतलाये जानेवाले जघन्य युक्तानन्तमेंसे एक कम करनेपर उत्कृष्ट परीतानन्तका प्रमाण आता है। इन दोनोंके मध्यवर्ती सब भेदोंको मध्यमपरीतानन्त जानना चाहिए।

जघन्य परीतानन्तको वर्गित-संवर्गित करनेपर जघन्य युक्तानन्त होता है। आगे बतलाये जानेवाले जघन्य अनन्तानन्तमेंसे एक अंक कम करनेपर उत्कृष्ट युक्तानन्तका प्रमाण आता है। दोनोंके मध्यवर्ती भेदोंको मध्यम युक्तानन्त कहते हैं।

जघन्य युक्तानन्तका वर्ग करनेपर जघन्य अनन्तानन्तका प्रमाण प्राप्त होता है। इस जघन्य अनन्तानन्तको तीन वार वर्गित-संवर्गित करके उसमें सिद्धजीव, निगोदराशि, वनस्पतिराशि, पुद्गलराशि, कालके समय और अलोकाकाश इन छह राशियोंका प्रमाण मिलाकर उत्पन्न हुई महाराशिको पुनः तीन वार वर्गित-संवर्गित करके उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य-सम्बन्धी अगुरुल-लघुगुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाना चाहिए। इस प्रकार उत्पन्न हुई राशिको पुनः तीन वार वर्गित-संवर्गित करके उसे केवलज्ञानके प्रमाणमेंसे घटावे और फिर शेष केवलज्ञानमें उसे मिला देवे। इस प्रकार प्राप्त हुई राशिको, अर्थात् केवलज्ञानके प्रमाणको उत्कृष्ट अनन्तानन्त जानना चाहिए। जघन्य और उत्कृष्ट अनन्तानन्तकी मध्यवर्ती सर्व भेदोंको मध्यम अनन्तानन्त कहते हैं।

इस प्रकारके द्रव्य प्रमाणसे सर्व जीवराशिका गुणस्थान और मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर प्रमाणके जाननेको द्रव्यप्रमाण कहते हैं।

२ कालप्रमाण—जीवोंका परिमाण जाननेके लिए दूसरा माप कालका है। कालका सबसे छोटा अंश समय है। एक परमाणुको अत्यन्त मन्दगतिसे एक आकाश-प्रदेशसे दूसरे आकाश-प्रदेशमें जानेके लिए जो काल लगता है उसे समय कहते हैं। जघन्य युक्तासंख्यातप्रमाण समयोंकी एक आवली होती है। संख्यात आवलियोंका एक उच्छ्वास या प्राण होता है। सात-उच्छ्वासोंका एक स्तोक, सात स्तोकोंका एक लव और साढ़े अड़तीस लवोंकी एक नाली होती है। दो नालीका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तका एक अहोरात्र या दिवस होता है। वर्तमान काल-गणनाके अनुसार चौवीस घण्टोंका एक दिन-रात माना जाता है। तदनुसार उक्त काल प्रमाणकी तालिका इस प्रकार बैठती है—

अहोरात्र	=	३० मुहूर्त	=	२४ घण्टे
मुहूर्त	=	२ नाली	=	४८ मिनिट
नाली	=	३८॥ लव	=	२४ मिनिट
लव	=	७ स्तोक	=	३७ ३१/७७ सेकिण्ड
स्तोक	=	७ उच्छ्वास	=	५ १८५/५३९ सेकिण्ड
उच्छ्वास (प्राण)	=	संख्यात आवली	=	२८८०/३७७३ सेकिण्ड

होती है। आगे बतलाये जानेवाले जघन्य युक्तानन्तमेंसे एक कम करनेपर उत्कृष्ट परीतानन्तका प्रमाण आता है। इन दोनोंके मध्यवर्ती सब भेदोंको मध्यमपरीतानन्त जानना चाहिए।

जघन्य परीतानन्तको वर्गित-संवर्गित करनेपर जघन्य युक्तानन्त होता है। आगे बतलाये जानेवाले जघन्य अनन्तानन्तमेंसे एक अंक कम करनेपर उत्कृष्ट युक्तानन्तका प्रमाण आता है। दोनोंके मध्यवर्ती भेदोंको मध्यम युक्तानन्त कहते हैं।

जघन्य युक्तानन्तका वर्ग करनेपर जघन्य अनन्तानन्तका प्रमाण प्राप्त होता है। इस जघन्य अनन्तानन्तको तीन बार वर्गित-संवर्गित करके उसमें सिद्धजीव, निगोदराशि, वनस्पतिराशि, पुद्गलराशि, कालके समय और अलोकाकाश इन छह राशियोंका प्रमाण मिलाकर उत्पन्न हुई महाराशिको पुनः तीन बार वर्गित-संवर्गित करके उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य-सम्बन्धी अगुरुल-लघुगुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाना चाहिए। इस प्रकार उत्पन्न हुई राशिको पुनः तीन बार वर्गित-संवर्गित करके उसे केवलज्ञानके प्रमाणमेंसे घटावे और फिर शेष केवलज्ञानमें उसे मिला देवे। इस प्रकार प्राप्त हुई राशिको, अर्थात् केवलज्ञानके प्रमाणको उत्कृष्ट अनन्तानन्त जानना चाहिए। जघन्य और उत्कृष्ट अनन्तानन्तकी मध्यवर्ती सर्व भेदोंको मध्यम अनन्तानन्त कहते हैं।

इस प्रकारके द्रव्य प्रमाणसे सर्व जीवराशिका गुणस्थान और मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर प्रमाणके जाननेको द्रव्यप्रमाण कहते हैं।

२ कालप्रमाण—जीवोंका परिमाण जाननेके लिए दूसरा माप कालका है। कालका सबसे छोटा अंश समय है। एक परमाणुको अत्यन्त मन्दगतिसे एक आकाश-प्रदेशसे दूसरे आकाश-प्रदेशमें जानेके लिए जो काल लगता है उसे समय कहते हैं। जघन्य युक्तासंख्यातप्रमाण समयोंकी एक आवली होती है। संख्यात आवलियोंका एक उच्छ्वास या प्राण होता है। सात-उच्छ्वासोंका एक स्तोक, सात स्तोकोंका एक लव और साढ़े अड़तीस लवोंकी एक नाली होती है। दो नालीका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तका एक अहोरात्र या दिवस होता है। वर्तमान काल-गणनाके अनुसार चौबीस घण्टोंका एक दिन-रात माना जाता है। तदनुसार उक्त काल प्रमाणकी तालिका इस प्रकार बैठती है—

अहोरात्र	=	३० मुहूर्त	=	२४ घण्टे
मुहूर्त	=	२ नाली	=	४८ मिनिट
नाली	=	३८॥ लव	=	२४ मिनिट
लव	=	७ स्तोक	=	३७ $\frac{३१}{७७}$ सेकिण्ड
स्तोक	=	७ उच्छ्वास	=	५ $\frac{१८५}{५३९}$ सेकिण्ड
उच्छ्वास (प्राण)	=	संख्यात आवली	=	$\frac{२८८०}{३७७३}$ सेकिण्ड

आवली　　　=　　　असंख्यात समय　　　=

समय　　　=　　　एक परमाणुका एक आकाशके प्रदेशसे दूसरेपर मन्दगतिसे जानेका काल ।

एक स्वस्थ मनुष्यके एक वार श्वास लेने और निकालनेमें जितना समय लगता है, उसे उच्छ्वास कहते हैं । एक मुहूर्तमें इन उच्छ्वासोंकी संख्या ३७७३ कही गई है जो ऊपर बतलाये गये प्रमाण के अनुसार इस प्रकार आती है– २×३८½×७×७=३७७३ । एक अहोरात्र (२४ घण्टे) में ३७७३×३०=१,१३,१९० उच्छ्वास होते हैं । इसका प्रमाण एक मिनिटमें ३७७३/४८ ७८.६ आता है, जो आधुनिक मान्यताके अनुसार ठीक बैठता है ।

एक समय कम मुहूर्तको भिन्न मुहूर्त कहते हैं । भिन्न मुहूर्तमें से भी एक समय और कम करनेपर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्तका प्रमाण होता है । कुछ आचार्योंकी मान्यताके अनुसार भिन्न मुहूर्त और अन्तर्मुहूर्त्त पर्यायवाची ही हैं । आवलीकालमें एक समय और जोड़ देनेपर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त होता है । इस सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तके ऊपर एक एक समय बढ़ाते हुए उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त्तके प्राप्त होने तक मध्यवर्ती सर्व भेद मध्यम अन्तर्मुहूर्त्तके जानना चाहिए ।

पन्द्रह दिनका एक पक्ष, दो पक्षका एक मास, दो मासकी एक ऋतु, तीन ऋतुओंका एक अयन, दो अयनका एक वर्ष, पांच वर्षका एक युग, चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग, चौरासी-लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है । इससे आगे चौरासी लाख चौरासी लाखसे गुणा करते जानेपर नयुतांग-नयुत; कुमुदांग-कुमुद, पद्मांग-पद्म, नलिनांग-नलिन, कमलांग-कमल, त्रुटितांग-त्रुटित, अटटांग-अटट, अममांग-अमम, हाहांग-हाहा, हूहांग-हूहू, लतांग-लता और महालतांग-महालता आदि अनेक संख्या-राशियां उत्पन्न होती हैं जो सभी मध्यम संख्यातके ही अन्तर्गत जानना चाहिए ।

ऊपर जो पूर्वके ऊपर नयुतांग आदि संख्याएं बतलाई गई हैं, उनसे प्रकृतमें कोई सम्बन्ध नहीं हैं । हां, प्रस्तुत ग्रन्थमें पूर्व कोडी और कोडाकोडी आदिके नामवाली संख्याओंका अवश्य उपयोग हुआ है । एक करोड़ पूर्व वर्षोंको एक पूर्वकोटी वर्ष कहते हैं । कर्म भूमिज मनुष्य और तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटी वर्ष ही बतलाई गई है । एक कोटी प्रमाण संख्याके वर्गको कोड़ाकोड़ी कहते हैं । कोटीसे ऊपर और कोडाकोडीके नीचेकी मध्यवर्ती संख्याको अन्तःकोडाकोडी कहते हैं । इन तीन संख्याओंका और इनसे ही सम्बद्ध कोडाकोडाकोडी आदि संख्याओंका प्रस्तुत ग्रन्थमें प्रयोग देखा जाता है ।

आगे क्षेत्रप्रमाण में बतलाये जानेवाले एक महायोजन (दो हजार कोश) प्रमाण लम्बे, चौड़े और गहरे कुंडको बनाकर उसे उत्तम भोगभूमिके सात दिनके भीतर उत्पन्न हुए मेंढेके ऐसे

रोमाग्रोंसे भरे जिनके और खंड कैंचीसे न हो सकें। पुनः उस कुंडमेंसे एक एक रोमखंडको सौ सौ वर्षके पश्चात् निकाले। इस प्रकार उन समस्त रोम-खंडोंके निकालनेमें जितना काल लगेगा, वह व्यवहारपल्य कहलाता है। इस व्यवहारपल्यको असंख्यातकोटि वर्षोंके समयोंसे गुणित करनेपर उद्धारपल्यका प्रमाण आता है। इसके द्वारा द्वीप-समुद्रोंकी गणना की जाती है। इस उद्धारपल्यको असंख्यात कोटि वर्षोंके समयोंसे गुणित करनेपर अद्धापल्यका प्रमाण आता है। शास्त्रोंमें कर्म, भव, आयु और कायकी स्थितिका वर्णन इसी अद्धापल्यसे किया गया है। अर्थात् जहां कहीं भी 'पल्योपम' ऐसा शब्द आये तो उससे अद्धापल्य प्रमाण कालका ग्रहण करना चाहिए। इस संख्याप्ररूपणामें इसी पल्योपमका उपयोग हुआ है। दश कोडाकोडी अद्धापल्योपमोंका एक अद्धासागरोपम होता है जिसे प्रस्तुत ग्रन्थ में तथा अन्य ग्रन्थों में साधारणतः सागरोपम या सागरके नामसे उपयोग किया गया है। दशकोड़ाकोडी अद्धासागरोपमोंकी एक उत्सर्पिणी और इतनेही कालकी एक अवसर्पिणी होती है। इन दोनोंको मिलाकर बीस कोडाकोडी सागरोपमोंका एक कल्पकाल होता है।

२ क्षेत्रप्रमाण— पुद्गलके सबसे छोटे अविभागी अंशको परमाणु कहते हैं। यह परमाणु एक प्रदेशी होनेसे इतना सूक्ष्म है कि उसका ग्रहण इन्द्रियोंसे तो क्या, बड़े से बड़े सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रसे भी सम्भव नहीं है। वह आदि, मध्य और अन्तसे रहित है। वह अविभागी परमाणु जितने आकाशको रोकता है, उतने आकाशको एक क्षेत्रप्रदेश कहते हैं। दो या दोसे अधिक परमाणुओंके समुदायको स्कन्ध कहते हैं। अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायवाले स्कन्धको अवसन्नासन्न कहते हैं। आठ अवसन्नासन्नों का एक सन्नासन्न स्कन्ध, आठ सन्नासन्नोंका एक तृटरेणु, आठ तृटरेणुओंका एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओंका एक रथरेणु, आठ रथरेणुओंका उत्तम भोग भूमिज जीवका बालाग्र, ऐसे आठ बालाग्रोंका एक मध्यम भोगभूमिज जीवका बालाग्र, ऐसे आठ बालाग्रोंका एक जघन्यभोगभूमिज बालाग्र, ऐसे आठ बालाग्रोंका एक कर्मभूमिज जीवका बालाग्र, आठ कर्मभूमिज बालाग्रोंकी एक लिक्षा (बालोंमें उत्पन्न होनेवाली लीख) आठ लिक्षाओंका एक जूं, आठ जूंओंका एक यवमध्य (जौके बीचका भाग) और आठ यवमध्योंका एक अंगुल होता है। यह अंगुल तीन प्रकारका है— उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल। आठ यवमध्योंके बराबर जो अंगुल होता है, उसे उत्सेधांगुल कहते हैं। पांच सौ उत्सेधांगुलोंका एक प्रमाणांगुल होता है। अर्थात् पांचसौ धनुषके ऊंचे शरीरवाले अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्ती या तत्सम ऊंचे शरीरवाले यहांके या विदेहोंके मनुष्योंके अंगुलको प्रमाणांगुल कहते हैं। कालके परिवर्तनके साथ भरत और ऐरावत क्षेत्रमें उत्तरोत्तर हीन-हीन अवगाहनावाले मनुष्योंके अंगुलका जिस समय जितना प्रमाण होता है, उसे आत्मांगुल कहते हैं। मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारकियोंके शरीरकी अवगाहना, तथा देवोंके निवास और नगरादिका माप उत्सेधांगुलसे ही किया जाता है। द्वीप, समुद्र, पर्वत, वेदी, नदी, कुंड, क्षेत्र आदिका माप प्रमाणांगुलसे किया जाता है। विभिन्न

समयोंमें होनेवाले कलश, दर्पण, हल, मूसल, रथ, गाड़ी छत्र, चमर, सिंहासन, धनुष, बाण आदि काममें आनेवाली वस्तुओंका, तथा तात्कालिक मनुष्योंके रहनेके मकान, उद्यान, नगर ग्रामादिका माप आत्मांगुलसे किया जाता है। छह अंगुलोंका एक पाद, दो पादोंकी एक विहस्ति (बिलस्त या बेथिया), दो विहस्तियोका एक हस्त (हाथ), दो हाथोंका एक किष्कु, दो किष्कुओंका एक दंड, युग, धनुष, नाली या मूसल होता है। दो हजार धनुषोंका एक कोश और चार कोशका एक योजन होता है।

अद्धापल्यका प्रमाण ऊपर बतला आये हैं, उस अद्धापल्यके अर्धच्छेद[1] प्रमाण अद्धापल्योंका परस्पर गुणा करनेपर सूच्यंगुलका प्रमाण आता है। सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल और घनको घनांगुल कहते हैं। अद्धापल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण[2], अथवा मतान्तरसे[3] अद्धापल्यके जितने अर्धच्छेद हों, उसके असंख्यातवें भागप्रमाण घनांगुलोंके परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं। जगच्छ्रेणीके सातवें भागको राजु या रज्जु कहते हैं। इस राजुका प्रमाण मध्यलोकके विस्तार बराबर है। जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और घनको घनलोक कहते हैं।

ये ऊपर बतलाये गये पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और घनलोक ये आठोंही उपमा प्रमाणके भेद हैं। इनका उपयोग प्रस्तुत ग्रन्थकी द्रव्य, क्षेत्र और कालकी अपेक्षासे बतलायें गये प्रमाणोंमें किया गया है।

४ भावप्रमाण— उपर्युक्त तीनों प्रकारके प्रमाणोंसे वस्तुकी वास्तविक संख्याके अधिगम अर्थात् जाननेको ही भावप्रमाण कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जहां जिस गुणस्थान और मार्गणास्थानका द्रव्य, काल वा क्षेत्रकी अपेक्षासे जो प्रमाण बतलाया गया है, वहां उस प्रमाणके यथार्थ जाननेको ही भावप्रमाण समझना चाहिए।

संख्या प्ररूपणामें जीवोंकी संख्याका निरूपण पहिले गुणस्थानोंकी अपेक्षा और पीछे मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा किया गया है। सूत्रकारने पहिलें पृच्छा सूत्र-द्वारा प्रश्न उठाकर उत्तर सूत्रके द्वारा संख्याका निर्देश किया है। यथा— ' मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ' उत्तर दिया- ' अनन्त हैं। ' अब यहां शंका होती है कि अनन्तके तो स्थूल रीतिसे अनेक भेद हैं और सूक्ष्म दृष्टिसे अनन्त भेद हैं। यहांपर अनन्तसे कितने प्रमाणवाली राशिका ग्रहण किया जाय ? इस शंकाका समाधान आचार्यनें काल प्रमाणका आश्रय लेकर किया कि अतीत कालमें जितनी अनन्ती उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी बीत चुकी हैं, उनके समयोंका जितना प्रमाण है, उससे भी

---

१. किसी भी विवक्षित राशिके आधे आधे भाग करनेपर एककी संख्याप्राप्त होने तक जितने टुकडे या भाग होते हैं, उन्हें अर्धच्छेद कहते है।　२. देखो राजवार्तिक अ. ३. सू. ३८ की टीका।　३. देखो त्रिलोकप्रज्ञप्ति अ. १, गा. १३१।

मिथ्यादृष्टि जीव अपहृत नहीं होते, अर्थात् उससे अधिक हैं। यहां अपहृतका अभिप्राय ऐसा समझना चाहिए कि एक ओर मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिको रखा जाय और दूसरी ओर भूतकालमें जितनी अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी बीत गई हैं, उनके समयोंका ढेर रखा जावे। पुनः मिथ्यादृष्टि जीवराशिमेंसे एक जीव और अतीत कालके समयोंमेंसे एक समयको साथ साथ निकालकर कम करे। इस प्रकार उत्तरोत्तर कम कम करते हुए अतीत कालके समस्त समय तो समाप्त हो जाते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीवराशि समाप्त नहीं होती है। यदि इतनेपर भी जिज्ञासुकी जिज्ञासा उसके और भी स्पष्ट रूपसे प्रमाण जाननेकी बनी रही तो उसके स्पष्टीकरणके लिए आचार्यने क्षेत्र-प्ररूपणाका आश्रय लेकर उत्तर दिया कि अनन्तानन्त लोकोंके जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने मिथ्यादृष्टि जीव हैं। इस प्रकार द्रव्य, काल और क्षेत्र प्रमाणोंके द्वारा मिथ्यादृष्टि जीवोंकी यथार्थ संख्याको जाननेका ही नाम भावप्रमाण है।

दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें गुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण यद्यपि सामान्यसे पल्योपमके असंख्यातवे भाग बतलाया है, तथापि उनके प्रमाणमें हीनाधिकता है। तदनुसार पांचवें गुणस्थान-वाले जीवोंकी जितनी संख्या है, उससे दूसरे गुणस्थानवाले जीव अधिक है, उनसे तीसरे गुणस्थान-वाले जीव अधिक है और उससे भी चौथे गुणस्थानवाले जीव अधिक हैं। छठे गुणस्थानवाले जीवोका प्रमाण सूत्रकारनें यद्यपि कोटिपृथकत्व कहा है, पर धवलाकारनें गुरुपरंपराके उपदेशानुसार पांच करोड़ तेरानवै लाख अट्ठानवै हजार दो सौ छह (५९३९८२०६) बतलाया है। सातवें गुणस्थानका प्रमाण सूत्रकारनें यद्यपि संख्यात ही बतलाया है, तथापि धवलाकारने उसका अर्थ कोटि पृथक्त्वसे नीचेकी ही राशिको ग्रहण करनेका व्यक्त किया है और गुरुपदेशके अनुसार दो करोड़ छयानवे लाख निन्यानवें हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३) बतलाया है। अर्थात् यतः छठे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थानका काल आधा है, अतः उसके जीवोंकी संख्या भी छठेकी अपेक्षा आधी है। इससे ऊपर उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीमें जीवोंकी संख्या सूत्रकारनें प्रवेशकी अपेक्षा एक, दो, तीन को आदि लेकर क्रमशः ५४ और १०८ बतलाई गई है और दोनों श्रेणियोंके कालकी अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थानमें संख्यात बतलाई है, तथापि धवलाकारने बहुत से आचार्योंके मतोंका उल्लेखकर सबसे अन्तमें दी हुई गाथाके मतको प्रधानता देकर उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें संचित जीवोंकी संख्या २९९ और क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें संचित जीवोंकी संख्या ५८८ बतलाई है। तदनुसार उपशम और क्षपकश्रेणी-सम्बन्धी आठवें, नवमें और दशवें गुणस्थानमें प्रत्येककी जीवसंख्या ८९७ – ८९७ जानना चाहिए। ग्यारहवेंकी जीवसंख्या २९९ और बारहवें गुणस्थानकी जीवसंख्या ५९८ बतलाई गई है। तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेशकी अपेक्षा एक, दो, तीनको आदि लेकर एक सौ आठ बतलाई गई है और तेरहवें गुणस्थानमें संचित होने-वाले सर्व सयोगिकेवली जिनोंका प्रमाण सूत्रकारने शतसहस्रपृथक्त्व बतलाया है, जिसका अर्थ

धवलाकारने विभिन्न मान्यताओंके अनुसार विभिन्न संख्याओंका उल्लेख करते अन्तमें आचार्य-परम्परासे प्राप्त उपदेशके अनुसार आठ लाख अट्ठानवे हजार पांच सौ दो (८९८५०२) बतलाया है। चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण प्रवेशकी अपेक्षा एक, दो, तीनको आदि लेकर एक सौ आठ (१०८) और संचय कालकी अपेक्षा पांच सौ अट्ठानवें (५९८) बतलाया है।

संक्षेपमें गुणस्थानोंकी सर्व जीवराशिका अल्पबहुत्वके रूपसे उपसंहार इस प्रकार जानना चाहिए– ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवसे सबसे थोड़े (संख्यात) हैं। उनसे बारहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव संख्यातगुणित अर्थात् दूने हैं। उनसे दोनोंहि श्रेणियोंके आठवें, नववें और दशवें गुणस्थानवर्ती जीव परस्परमें समान होते हुए भी विशेष अधिक है। उनसे तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीव संख्यातगुणित हैं। उनसे सातवें गुणस्थानवर्ती जीव संख्यातगुणित हैं। उनसे छठे गुणस्थानवर्ती जीव संख्यातगुणित अर्थात् दूने हैं। छठे गुणस्थानवर्ती जीवोंसे पांचवें गुणस्थानवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे दूसरे गुणस्थानवाले जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे तीसरे गुणस्थानवाले जीव संख्यात गुणित हैं और उनसे चौथे गुणस्थानवाले जीव असंख्यात गुणित हैं। उनसे सिद्धजीव अनन्तगुणित हैं और सिद्धोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंसे सर्व जीवराशि कुछ अधिक हैं।

ओघसे अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करनेके बाद सूत्रकारने आदेश अर्थात् चौदह मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण किया है। मार्गणास्थानोंकी संख्याभी द्रव्य, काल और क्षेत्रकी अपेक्षा बतलाई गई है, सो ऊपर जिस प्रकार काल और क्षेत्र प्रमाणका निरूपण किया गया है, तदनुसारही मार्गणाओंमें बतलाई गई संख्याका यथार्थ अर्थ समझ लेना चाहिए। सूत्रमें जहां पदर या प्रतर शब्द आया हो, वहां उससे जगत्प्रतरका, अंगुल शब्दसे सूच्यंगुलका, सेढी या श्रेणी शब्दसे जगच्छ्रेणीका और लोक शब्दसे घनलोकका अर्थ लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूत्रोंमें कुछ और भी विशेष संज्ञाएं आई हैं उनका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए–

आयाम– किसी क्षेत्रकी लम्बाई।

विष्कम्भ– किसी क्षेत्रकी चौड़ाई।

विष्कम्भसूची– किसी गोलाकार क्षेत्रके मध्यकी चौड़ाई।

वर्ग– किसी विवक्षित संख्याको उसी संख्यासे गुणित करना। जैसे ४ को ४ से गुणित करनेपर १६ राशि प्राप्त होती है, यह ४ का वर्ग है।

वर्गमूल– वर्ग करनेकी मूल राशि। जैसे १६ का वर्गमूल ४ है।

घन– किसी राशिको उसीसे दो बार गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो। जैसे ४ का घन (४ × ४ × ४ =) ६४ है।

घनमूल– जिस राशिके गुणाकारसे घनराशि उत्पन्न हुई है, उसकी मूलराशि। जैसे ६४ का घनमूल ४ है।

सातिरेक– विवक्षित राशिसे कुछ अधिक, इसेही साधिक कहते हैं।

विशेषाधिक– विवक्षित राशिके दूने परिमाणसे नीचेतक की सर्व राशियां।

संख्यातगुणित– दूनी राशि और उससे ऊपर तिगुनी, चौगुनी आदि वे सब राशियां जो संख्यातके अन्तर्गत होती है।

असंख्यातगुणित– यथासंभव मध्यम असंख्यातसे गुणित राशि लेना।

अनन्तगुणित– यथासंभव मध्यम अनन्तसे गुणित राशि।

द्वितीय वर्गमूल– विवक्षित राशिका दूसरा वर्गमूल। जैसे– १६ का प्रथम वर्गमूल ४ है और दूसरा वर्गमूल २ है। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि वर्गमूलोंको समझना चाहिए।

भागहार– जिस राशिसे विवक्षित राशिमें भाग दिया जावे।

अवहारकाल– भागहाररूप कालात्मकराशि।

द्रव्यप्रमाणानुगममें मार्गणाओंके भीतर जीवोंकी जो संख्या बतलाई गई है, उसके अनुसार अनन्त, असंख्यात और संख्यात राशिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना चाहिए–

अनन्त राशिवाले जीव– १ अभव्य, २ सिद्ध, ३ मान कषायी, ४ क्रोध कषायी, ५ माया कषायी, ६ लोभ कषायी, ७ कापोत लेश्यावाले, ८ नील लेश्यावाले, ९ कृष्ण लेश्यावाले, १० अनाहारक, ११ आहारक, १२ भव्य, १३ वनस्पति कायिक, १४ एकेन्द्रिय, १५ काययोगी, १६ असंज्ञी, १७ तिर्यंच, १८ नपुंसकवेदी, १९ मिथ्यादृष्टि, २० कुमति ज्ञानी, २१ कुश्रुतज्ञानी, २२ अचक्षुदर्शनी, २३ असंयमी।

असंख्यात राशिवाले जीव– १ देशसंयत, २ सासादन सम्यग्दृष्टि, ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ४ औपशमिक सम्यक्त्वी, ५ क्षायिक सम्यक्त्वी, ६ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी, ७ शुक्ललेश्यिक, ८ अवधि दर्शनी, ९ अवधिज्ञानी, १० मतिज्ञानी, ११ श्रुतज्ञानी, १२ पद्मलेश्यिक, १३ पीतलेश्यिक, १४ मनुष्य, १५ पुंवेदी, १६ नारकी, १७ स्त्रीवेदी, १८ देव, १९ विभंग ज्ञानी, २० मनोयोगी, २१ संज्ञी, २२ पंचेन्द्रिय, २३ चक्षुदर्शनी, २४ चतुरिन्द्रिय, २५ त्रीन्द्रिय, २६ द्वीन्द्रिय, २७ वचनयोगी, २८ त्रसजीव, २९ तेजस्कायिक, ३० पृथ्वीकायिक, ३१ जलकायिक, ३२ वायु कायिक।

संख्यात राशिवाले जीव– १ सूक्ष्मसाम्परायसंयमी, २ मनःपर्ययज्ञानी, ३ परिहारसंयमी ४ केवलज्ञानी, ५ केवलदर्शनी, ६ यथाख्यातसंयमी, ७ सामायिकसंयमी, ८ छेदोपस्थापनासंयमी।

अनन्तराशिवालोंमें अभव्य जीव सबसे कम हैं और आगे आगे की राशिवाले जीव उत्तरोत्तर अधिक हैं। असंख्यातसंख्यावालों में देशसंयत जीव सबसे कम हैं और आगेकीराशियां उत्तरोत्तर अधिक हैं। संख्यातराशिवाले जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायसंयमी सबसे कम हैं, और आगेकी राशिवाले जीव उत्तरोत्तर अधिक है। इसप्रकार द्रव्यप्रमाणानुगमके द्वारा जीवोंकी संख्याका भलीभांति ज्ञान हो जाता है।

३ क्षेत्रप्ररूपणा

सत्प्ररूपणाके द्वारा जिनका अस्तित्व जाना और संख्याप्ररूपणाके द्वारा जिनकी संख्याको जाना है, ऐसे वे अनन्तानन्त जीव कहां रहते हैं, यह शंका स्वभावतः उठती है और उसीके समाधानके लिए आचार्यने तत्पश्चात्‌ही क्षेत्रकी प्ररूपणा की। जीवोंके वर्तमानकालिक निवासको क्षेत्र कहते हैं। यह क्षेत्र कहां है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि हम जहांपर रहते हैं, इसके सर्वओर अर्थात् दशों दिशाओं अनन्त आकाश फैला हुआ है, उसके ठीक मध्य भागमें लोकाकाश है, जिसमें अनन्तानन्त जीव तथा अनन्तानन्त पुद्गलादि अन्य द्रव्य रहते हैं। द्रव्योंके रहने और नहीं रहनेके कारण ही एक आकाशके दो विभाग हो जाते हैं। जितने आकाशमें जीवादि द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं और उससे परे दशों दिशाओंमें अनन्त आकाश है, उसे अलोकाकाश कहते हैं। इस अलोकाकाशमें एक मात्र आकाशको छोड़कर और कोई द्रव्य नहीं पाया जाता।

लोकाकाशका आकार उत्तरकी ओर मुख करके खड़े हुए उस पुरुषके समान है जो अपने दोनों पैरोंको फैलाकर और कमरपर हाथ रख करके खड़ा है। इस आकारवाले लोकके
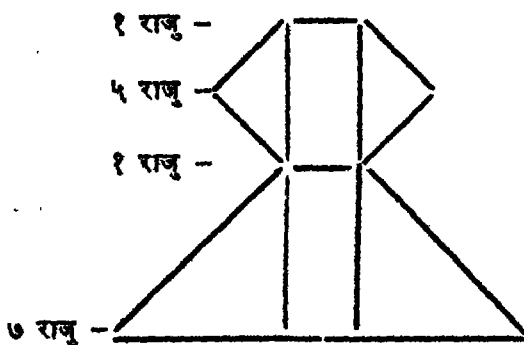
स्वभावतः तीन भाग हो जाते हैं– कमरसे नीचेके भागको अधोलोक कहते हैं, कमरसे ऊपरके भागको ऊर्ध्वलोक कहते हैं और कमरवाले बीचके भागको मध्यलोक कहते हैं। मध्यलोकसे नीचे जो अधोलोक है, उसकी ऊंचाई सात राजु है। सबसे नीचे उसकी चौड़ाई सात राजु है। ऊपर क्रमसे घटते हुए मध्यलोकमें चौड़ाई एक राजु रह जाती है। मध्यलोकसे ऊपर जो ऊर्ध्वलोक है उसकी ऊंचाई सात राजु है। किन्तु चौड़ाई सबसे नीचे अर्थात् मध्यलोकमें एक राजु है। फिर क्रमसे बढ़ती हुई वह हाथकी कोहनियोंके पास– जहांकि ब्रह्मलोक है– पांच राजु हो जाती है। पुनः क्रमसे घटती हुई वह सबसे ऊपर– जहां सिद्धलोक है– एक राजु रह जाती है। यह उतार-चढ़ाववाला विस्तार पूर्व और पश्चिम दिशाके क्षेत्रका है। उत्तर-दक्षिण दिशामें लोकका विस्तार

नीचेसे लेकर ऊपरतक सर्वत्र सात राजु ही है।

इस चौदह राजुकी ऊंचाईवाले लोकके ठीक मध्यभागमें एक राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और चौदह राजु ऊंची एक लोक नाड़ी है, जिसे त्रस जीवोंका निवास होनेके कारण त्रसनाड़ी भी कहते हैं। अधोलोकमें इसी त्रसनाड़ीके भीतर सात नरक है, जहांपर नारकी जीव रहते हैं। मध्यलोकमें इसी त्रसनाड़ीके भीतर असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं जो परस्परमें एक दूसरेको घेरकर अवस्थित हैं। उन सबके बीचमें जम्बू द्वीप है, जो एक लाख योजन विस्तारवाला है। इसके ठीक मध्यभागमें सुमेरू पर्वत है, जो एक लाख योजन ऊंचा है। इस सुमेरूके तलसे लेकर नीचेके सर्व लोकको अधोलोक कहते हैं। और सुमेरूकी चूलिकासे ऊपरके लोकको ऊर्ध्व लोक कहते हैं। इस ऊर्ध्व लोकमें ही सोलह स्वर्ग, नौग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर हैं, जिनमें देव रहते हैं। वस्तुतः सुमेरु ही तीनों लोकोंका विभाजन करता है। एक राजु विस्तारवाला और एक लाख योजनकी ऊंचाईवाले क्षेत्रको मध्यलोक कहते हैं। यतः इस मध्यमें ही मनुष्य और तीर्यंच जीव रहते हैं, अतः इसका दूसरा नाम नर-तिर्यग्लोक भी है। जम्बू द्वीपको घेर कर उसके चारों ओर दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। उसे चारों ओरसे घेरे हुए चार लाख योजन चौड़ा धातकी-खंड द्वीप है। उसे चारों ओरसे घेरे हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है। उसे चारों ओरसे घेरे हुए सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्करवर द्वीप है। इस द्वीपके ठीक मध्यभागमें मानुषोत्तर पर्वत है। इस पर्वतसे आगे न कोई मनुष्य रहता ही है और न जा ही सकता है, इस कारण इसका नाम मानुषोत्तर पड़ा है। इस प्रकार एक जम्बू द्वीप, दूसरा धातकीखंड द्वीप और आधा पुष्करवर द्वीप इन अढ़ाई द्वीपवाले क्षेत्रको मनुष्य लोक कहते हैं। इसकी चौड़ाई मध्यभागमें सूची व्यासकी अपेक्षा पैंतालीस लाख योजन है। इससे आगे के जितने भी असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, उन सबके अन्तमें स्वयम्भूरमण समुद्र है। मध्यलोककी समाप्ति इसीके साथ हो जाती है। इन असंख्यात द्वीप और समुद्रोंमें एक मात्र तिर्यंच जीवोंके पाये जानेसे उसे तिर्यग्लोक भी कहा जाता है। मनुष्य लोकका घनफल पैंतालीस लाख योजन है। तिर्यग्लोकका घनफल घनात्मक एक राजु है, यही मध्यलोकका भी घनफल है। अधोलोकका घनफल १९६ घनराजु है, और उर्ध्व लोकका घनफल १४७ घनराजु है। सम्पूर्ण लोकाकाशका घनफल (१९६+१४७=३४३) तीन सौ तेतालीस घनराजु है।

लोकके विभागकी इतनी सामान्य व्यवस्था जान लेनेके पश्चात् यह बात तो सामान्य-रूपसे समझमें आ जाती है कि नारकी अधोलोकमें, देव उर्ध्व लोकमें और मनुष्य-तीर्यंच मध्य-लोकमें रहते हैं। परन्तु चौदह गुणस्थानों और मार्गणा स्थानोंकी अपेक्षा किस जातिके जीव लोकाकाशके कितने क्षेत्रमें रहते हैं? इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थके प्रथम जीवस्थान खंडकी क्षेत्र प्ररूपणामें किया गया है, जिसे पाठक उसका स्वाध्याय करते हुए जान सकेंगे। यहां

संक्षेपमें इतना जान लेना आवश्यक है कि किसीभी गतिका कोईभी छोटा या बड़ा एक जीव लोकाकाशके असंख्यातवें भागमेंही रहता है। किन्तु जब सामान्यसे पहिले गुणस्थानको लक्ष्यमें रख कर पूछा जायगा कि मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? तो इसका उत्तर होगा— सर्व लोकमें रहते हैं; क्योंकि ३४३ राजु घनाकार यह लोकाकाश स्थावर जीवोंसे ठसाठस भरा हुआ है। हालांकि त्रस जीव कुछ अपवादोंको छोड़कर त्रस नाडीके भीतर ही रहते हैं। दूसरे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तकके जीव लोकके असंख्यातवें भागमें ही रहते हैं। केवल केवलि समुद्घातको प्राप्त सयोगिकेवलिजिन दंड और कपाट समुद्घातकी अवस्थामें लोकके असंख्यातवें भागमें, प्रतर समुद्घातके समय लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और लोकपूरणसमुद्घातके समय सर्व लोकमें रहते हैं।

मार्गणाओंकी अपेक्षा किस मार्गणाका कौनसा जीव कितने क्षेत्रमें रहता है, इसका विस्तृत विवेचन इस प्ररूपणामें किया गया है। संक्षेपमें इतना जान लेना चाहिए कि जिस मार्गणामें अनन्त संख्यावाली एकेन्द्रिय जीवोंकी राशि आती हो, उस मार्गणावाले जीव सर्वलोकमें रहते हैं, और शेष मार्गणावाले लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यातसंयम आदि जिन मार्गणाओंमें सयोगि जिन आते हैं, वे साधारण दशामें तो लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, किन्तु प्रतर समुद्घातकी दशामें लोकके असंख्यात बहुभागोंमें, तथा लोकपूरणसमुद्घातकी दशामें सर्व लोकमें रहते हैं। बादर वायुकायिक जीव लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं।

४ स्पर्शनप्ररूपणा

क्षेत्रप्ररूपणामें जीवोंके वर्तमानकालिक क्षेत्रका निरूपण किया गया है, किन्तु स्पर्शन प्ररूपणामें वर्तमान कालके साथ अतीत और अनागतकालके क्षेत्रका विचार किया जाता है। जीव जिस स्थानपर उत्पन्न होता है, या रहता है, वह उसका स्वस्थान कहलाता है और उस शरीरके द्वारा जहां तक वह आता-जाता है, वह विहारवत्स्वस्थान कहलाता है। प्रत्येक जीवका स्वस्थान की अपेक्षा विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र अधिक होता है। जैसे सोलहवें स्वर्गके किसी भी देवका क्षेत्र स्वस्थानकी अपेक्षा तो लोकका असंख्यातवां भाग है। किन्तु वह विहार करता हुआ नीचे तीसरे नरक तक जा आ सकता है, अतः उसके द्वारा स्पर्श किया हुआ क्षेत्र आठ राजु लम्बा हो जाता है। इसका कारण यह है कि मध्य लोकसे नीचे तीसरा नरक दो राजुपर है और ऊपर सोलहवां स्वर्ग छह राजुकी ऊंचाईपर है। इस प्रकार छह और दो राजु मिलकर आठ राजुकी लम्बाईवाले क्षेत्रका भूतकालमें सोलहवें स्वर्गके देवोंने स्पर्श किया है। विहारके समान समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा भी जीवोंका क्षेत्र बढ जाता है। वेदना, कषाय आदि किसी निमित्तविशेषसे जीवके प्रदेशोंका मूल शरीरके साथ सम्बन्ध रहते हुए भी बाहिर फैलना समुद्घात कहलाता है।

समुद्घातके सात भेद हैं— वेदना समुद्घात, २ कषायसमुद्घात, ३ वैक्रियिक समुद्घात, ४ आहारक समुद्घात, ५ तैजस समुद्घात, ६ मारणान्तिक समुद्घात और ७ केवलि समुद्घात। शरीरमें रोगादिकी वेदनाके कारण जीवके प्रदेशोंका बाहिर निकलना वेदना समुद्घात है। क्रोधादि कषायोंके कारण जीवके प्रदेशोंका बाहिर निकलना कषायसमुद्घात है। देवादिकोंका मूल शरीरके अतिरिक्त अन्य शरीर बनाकर उत्तर शरीररूप विक्रिया कालमें आत्म-प्रदेशोंका मूल शरीरसे बाहिर फैलना वैक्रियिक समुद्घात है। प्रमत्त संयत साधुके शंका-समाधानार्थ जो आहारक पुतलाके रूपमें आत्म-प्रदेश बाहिर निकलते है, उसे आहारक समुद्घात कहते हैं। साधुके निग्रह या अनुग्रहका भाव जागृत होनेपर जो शुभ या अशुभ तैजस पुतलाके रूपमें आत्म-प्रदेश बाहिर निकलते हैं, उसे तैजस समुद्घात कहते हैं। मरण-कालके अन्तर्मुहूर्त पूर्व जिस जीवके आत्म-प्रदेश निकलकर जहां आगे जन्म लेना है, वहां तक फैलते हुए चले जाते हैं और उस स्थानका स्पर्श करके वापिस लौट आते हैं, इस प्रकारके समुद्घातको मारणान्तिकसमुद्घात कहते हैं। केवली भगवान्के आत्म-प्रदेशोंका शेष अघातिया कर्मोंकी निर्जराके निमित्त दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके रूपमें त्रैलोक्यमें फैलना केवलि समुद्घात कहलाता है। इन सात समुद्घातोंकी दशामें जीवका क्षेत्र शरीरकी अवगाहनाके क्षेत्रसे अधिक हो जाता है। इसके अतिरिक्त उपपाद कालमें भी जीवोंके प्रदेशोंका शरीरसे बाहिर प्रसार देखा जाता है। जीवका अपनी पूर्व पर्यायको छोड़कर अन्य पर्यायमें जन्म लेनेको उपपाद कहते हैं। इस प्रकार १ स्वस्थानस्वस्थान, २ विहारवत्स्वस्थान, ३ वेदना, ४ कषाय, ५ वैक्रियिक, ६ आहारक, ७ तैजस, ८ मारणान्तिक, ९ केवलि समुद्घात और १० उपपाद। इन दश अवस्थाओंकी अपेक्षा करके किस गुणस्थानवाले और किस मार्गणावाले जीवोंने भूतकालमें कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है, यह विवेचन इस स्पर्शन प्ररूपणामें विस्तारसे किया गया है। फिर भी यहांपर उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

मिथ्यादृष्टि जीव तो सर्व लोकमें रहते ही हैं, अतः उनका स्वस्थानगत क्षेत्र ही सर्व लोक है। उसीको उन्होंने विहारवत्स्वस्थान आदि जो पद इस गुणस्थानमें संभव हैं, उनकी अपेक्षा भी सर्व लोकका स्पर्श भूतकालमें भी किया है और भविष्यकालमें भी करेंगे।

यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि आहारक समुद्घात और तैजस समुद्घात छट्ठे गुणस्थानवर्ती साधुके ही होते हैं; अन्यके नहीं। केवलि समुद्घात तेरहवें गुणस्थानमें ही सम्भव है, अन्यत्र नहीं। वैक्रियिक समुद्घात प्रारंभके चार गुणस्थानवर्ती देव, नारकी, या ऋद्धिप्राप्त साधुओंके होता है। भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंचोंके भी अपृथक् विक्रियारूप समुद्घात होता है। वेदना, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात चारोंही गतिवाले जीवोंके उनमें संभव पहिले, दूसरे और चौथे आदि गुणस्थानोंमें होता है।

दूसरे गुणस्थानवर्ती सासादनसम्यग्दृष्टि जीव वर्तमान काल में तो लोकके असंख्यातवें भागमें ही रहते हैं। किंतु भूतकाल में उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह [$\frac{१२}{१४}$] राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया हैं। इसका अभिप्राय यह है विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्‍घात इन चार पदोंकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंने पूर्वमें बतलाई हुई त्रसनाड़ी के चौदह भागोंमेंसे आठ भागोंका स्पर्श किया हैं, अर्थात् आठ घनराजुप्रमाण त्रसनाडी के भीतर ऐसा एक भी प्रदेश नहीं है जिसे कि भूतकाल में चारों गतियों के सासादनसम्यग्दृष्टियोंने स्पर्शन किया हो। यह आठ घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनाड़ी के भीतर जहां कहीं नहीं लेना चाहिए, किन्तु नीचे तीसरे नरकसे लेकर ऊपर सोलहवें स्वर्गतक का लेना चाहिए। इसका कारण यह है कि भवनवासी देव स्वयं तो नीचे तीसरे नरक तक जाते-आते हैं और ऊपर पहले स्वर्ग के शिखर ध्वजदंड तक। किन्तु ऊपर के स्वर्गवाले देवों के प्रयोग से सोलहवें स्वर्ग तक भी विहार कर सकते हैं। उनके इतनें क्षेत्र में विहार करनेके कारण उस क्षेत्रका ऐसा एक भी आकाश-प्रदेश नहीं बचा है, जिसका कि दूसरे गुणस्थानवाले उक्त देवोंने अपने शरीर द्वारा स्पर्श न किया हो। इस प्रकार इस स्पर्श किये गये क्षेत्र को लोकनाड़ी के चौदह भागोंमेंसे आठ भाग प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्रको कुछ कम कहनेका कारण यह है कि वे भवनवासी देव तीसरे नरक में वहां तक ही जाते हैं, जहां तक कि नारकी रहते हैं। किन्तु मध्यलोक से तीसरी पृथ्वी का तलभाग दो राजु नीचा है। इस पृथ्वी का तलभाग एक हजार योजन मोटा है, ठोस है। उसमें नारकी नहीं पाये जाते, किन्तु उसके ऊपर ही रहते हैं। अतः विहार करनेवाले देव तीसरी पृथ्वी के तलभाग तक नहीं जाते हैं, किन्तु उपरिम भागतक ही जाते हैं। इस एक हजार योजनको कम करने के लिए ही कुछ कम (देशोन) पदका प्रयोग यहां किया गया है। इसी प्रकार जहां कहीं भी देशोन पदका प्रयोग किया गया हो, वहां पर सर्वत्र यथा संभव इसी प्रकार का अर्थ लेना चाहिए। मारणान्तिक समुद्‍घात की अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती जीवों ने लोकनाली के चौदह भागोंमें से बारह भाग का भूतकाल में स्पर्श किया है। इसका अभिप्राय यह है कि छठी पृथ्वी के सासादन गुणस्थानवाले नारकी यतः मध्य लोक में उत्पन्न होते हैं, अतः यहां तक मारणान्तिक समुद्‍घात करते हैं। तथा इसी गुणस्थानवाले भवनवासी आदि देव ऊपर लोक के अन्त में अवस्थित आठवीं पृथ्वी के पृथिवीकायिक जीवों में मारणान्तिक समुद्‍घात करते हैं। इस प्रकार सुमेरु तल से नीचे छठी पृथिवी तक के पांच राजु, और ऊपर लोकान्त तक के सात राजु ये दोनों मिलकर बारह राजु हो जाते हैं। इस कुछ कम बारह घनराजु प्रमाण क्षेत्र का दूसरे गुणस्थानवाले जीवों ने अतीत काल में स्पर्शन किया है और आगे भी करेंगे, इस अपेक्षा उनका उक्त प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र कहा गया है। यहांपर भी कुछ कम का अर्थ बतलाये गये प्रकार से लेना चाहिए।

इस प्रकार इस स्पर्शन प्ररूपणा में चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणास्थानोंवाले जीवों का उपर्युक्त स्वस्थानादि दश पदों की अपेक्षा अतीत काल में स्पर्शन किये हुए क्षेत्र का निरूपण किया गया है।

५ कालप्ररूपणा

किस गुणस्थान और किस मार्गणास्थानमें जीव कमसे कम कितने काल तक रहते हैं और अधिकसे अधिक काल तक रहते हैं, इसका विवेचन, कालानुगम नामके अनुयोगद्वारमें किया गया है। सूत्रकारने कालका यह विवेचन एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षासे किया है। यथा– मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वगुणस्थानमें कितने काल तक रहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें सदा ही रहते हैं, अर्थात् तीनों कालों में ऐसा एक भी समय नही है, जब कि मिथ्यादृष्टि जीव न पाये जाते हों। किन्तु एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका काल तीन प्रकारका है–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अभव्य जीवोंके मिथ्यात्वका काल अनादि-अनन्त जानना चाहिए। क्योंकि उनके मिथ्यात्वका न आदि है और न अन्त। जो अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव हैं, उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त है; अर्थात् अनादि कालसे आज तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति न होनेसे उनका मिथ्यात्व अनादि है, किन्तु आगे जाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति और मिथ्यात्वका अन्त होनेसे उनका मिथ्यात्व सान्त है। जिन जीवोंने एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया, तथापि परिणामोंके संक्लेशादि निमित्तसे जो फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त जानना चाहिए। सूत्रकारने इन तीनों प्रकारके मिथ्यात्व-कालोंका निर्देश करके एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य सादि-सान्त काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, या प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके पतनसे मिथ्यात्वको प्राप्त हो और मिथ्यात्व दशामें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुनः असंयत सम्यग्दृष्टि, या संयतासंयत, या अप्रमत्तसंयत हो जाय; तो ऐसे जीवके मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण पाया जाता है। इस प्रकारके मिथ्यात्वको सादि-सान्त कहते हैं; क्योंकि उसका आदि और अन्त दोनों पाये जाते हैं। इसी सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम [1]अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव पहिली वार सम्यक्त्व प्राप्त कर अतिशीघ्र मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाता है, तो वह अधिकसे अधिक भी मिथ्यात्व गुणस्थान में रहेगा, तो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन में जितना काल लगता है, कुछ कम उतने काल तक ही रहेगा, उसके अनन्तर यह नियमसे सम्यक्त्वको प्राप्त कर और संयमको धारण कर मोक्ष चला जाता है।

---

१. अर्धपुद्गलपरिवर्तनका स्वरूप जानने के लिए इस प्रकरणवाली धवला टीका, गो. जीवकांडकी भव्यमार्गणा और सर्वार्थसिद्धि अ० २ सू० ८ की टीका देखना चाहिए।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणाओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालका वर्णन एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रकृत प्ररूपणामें किया गया है। इस काल प्ररूपणाका स्वाध्याय करनेपर पाठकगण कितनी ही नवीन बातोंको जान सकेंगे।

६ अन्तर प्ररूपणा

अन्तर नाम विरह, व्युच्छेद या अभावका है। किसी विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीवका उस गुणस्थानको छोड़ कर अन्य गुणस्थानमें चले जाने पर पुनः उसी गुणस्थानकी प्राप्तिके पूर्व तकके कालका अन्तरकाल या विरहकाल कहते हैं। सबसे छोटे विरहकालको जघन्य अन्तर और सबसे बढ़े विरह कालको उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं। इस प्रकारके अन्तरकालका प्ररूपणा करनेवाली इस अन्तर प्ररूपणा में यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान और मार्गणास्थानसे कमसे कम कितने काल तकके लिए और अधिकसे अधिक कितने काल तकके लिए अन्तरको प्राप्त होता है।

जैसे– ओघकी अपेक्षा किसीने पूछा कि मिथ्यादृष्टिजीवोंका अन्तरकाल कितना है? इसका उत्तर दिया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, वे निरन्तर हैं। अर्थात् संसारमें सदा ही मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं, अतः उनका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। किन्तु एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। यह जघन्य अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंकी विशुद्धिके निमित्तसे सम्यक्त्व को प्राप्त कर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। वह इस चौथे गुणस्थानमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर संक्लेश आदिके निमित्तसे गिरा और मिथ्यादृष्टि हो गया। इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानको छोड़कर और अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर पुनः उसी गुणस्थानमें आनेके पूर्व तक जो अन्तर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपर्यायसे रहित रहा, यही उस एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानका जघन्य अन्तरकाल है।

मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक जीवकी अपेक्षा कुछ कम दो छयासट सागर अर्थात् एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोपम है। यह उत्कृष्ट अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई जीव चौदह सागरकी आयुवाले लान्तव-कापिष्ठ स्वर्गके देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां एक सागरके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त किया। पुनः तेरह सागरतक वहां रहकर सम्यक्त्वके साथ ही च्युत हो मनुष्य हो गया। यहांपर संयमासंयम या संयमको धारण कर मरा और बाईस सागरकी आयुवाले सोलहवें स्वर्गमें देव उत्पन्न हो गया। वहां अपनी पूरी आयुपर्यंत सम्यक्त्वके साथ रहकर च्युत हो पुनः मनुष्य हो गया। इस भवमें संयमको धारण कर मरा और इकतीस सागरकी आयुवाले नौवें ग्रैवेयकमें जाकर उत्पन्न हो गया। वहांपर जीवन पर्यन्त सम्यग्दृष्टि रहा, किन्तु जीवनके अन्त में छयासठ सागर पूरे हो जानेपर मिश्र प्रकृतिका उदय आ जानेसे तीसरे गुणस्थानको प्राप्त

हो गया। वहां अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः सम्यग्दृष्टि बन गया और कुछ समय विश्राम कर वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हो गया। पुनः इस भवमें भी संयमको धारण कर मरा और बीस, बाईस या चौबीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह मनुष्य और देवोंके भवमें सम्यक्त्वके साथ तब तक परिभ्रमण करता रहा– जब तककि दूसरी-बारभी छयासठ सागर पूरे नहीं हुए। दूसरी बार छयासठ सागरतक सम्यक्त्वके साथ रहनेका काल पूरा होनेपर परिणामोंमें संक्लेशकी वृद्धिसे वह गिरा और मिथ्यात्वी बन गया। इस प्रकार वह लगातार दो छयासठ अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरतक सम्यक्त्वी बना रहकर मिथ्यात्वगुणस्थानसे अन्तरित रहा। यह उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि उक्त जीव जितनेवार मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ, उतनेवार मनुष्य भवकी आयुसे हीन ही देवायुका धारक बना है। यदि मनुष्यभवसम्बन्धी आयुको देवायुमें कम न किया जाय, तो अन्तर काल एक सौ बत्तीस सागर से अधिक हो जायगा। यहां इतना और भी विशेष ज्ञातव्य है कि यह जो एक सौ बत्तीस सागरतक मनुष्य और देवोंमें परिभ्रमणकाल बतलाया गया है, वह तो मन्द बुद्धियोंको समझानेके लिए कहा है। यथार्थतः जिस किसी भी स्वर्ग या ग्रैवेयकादिमें उत्पन्न होते हुए वह एक सौ बत्तीस सागर पूरा कर सकता है।

कालप्ररूपणा के पश्चात् अन्तरप्ररूपणा करनेका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक गुणस्थान या मार्गणास्थानके कालके साथ उसके अन्तरका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। कालप्ररूपणामें जिन जिन गुणस्थानों का नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल बतलाया गया है, उन उन गुणस्थानवर्ती जीवों का नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। उनके अतिरिक्त शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीवों का नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर होता है। इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर-रहित छह गुणस्थान हैं– १ मिथ्यादृष्टि, २ असंयतसम्यग्दृष्टि, ३ संयतासंयत, ४ प्रमत्त-संयत, ५ अप्रमत्तसंयत और ६ सयोगिकेवली। इन गुणस्थानों में सदा ही अनेक जीव विद्यमान रहते हैं। हां, इन गुणस्थानोंमें से सयोगिकेवली को छोड़कर शेष पांच गुणस्थानों में एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर होता है, जिसे कि ग्रन्थका स्वाध्याय करनेपर पाठकगण भली-भांति जान सकेंगे।

मार्गणाओंमें आठ मार्गणाएं ही ऐसी हैं, जिनका अन्तर होता है। शेष सब निरन्तर रहती हैं। जिनका अन्तरकाल संभव है, ऐसी मार्गणाओंको सान्तरमार्गणा कहते हैं। उन आठ में पहली है– उपशम सम्यक्त्वमार्गणा। इसका उत्कृष्ट अन्तर काल सात अहोरात्र (दिन-रात) है। इसका अर्थ यह है कि संसार में उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंका अधिकसे अधिक सात अहोरात्र तक अभाव रह सकता है। उनके पश्चात् तो नियमसे कोई न कोई जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करेगा ही। दूसरी सान्तरमार्गणा सूक्ष्मसाम्पराय संयममार्गणा है। इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह

मास है। तीसरी सान्तरमार्गणा आहारककाय योगमार्गणा है। इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। चौथी आहारकमिश्रकाययोगमार्गणा है। इसका भी उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। पांचवीं वैक्रियिकमिश्रकाययोगमार्गणा है। इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। छठी लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यगतिमार्गणा है, सातवीं सासादन सम्यक्त्वमार्गणा है और आठवीं सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणा है। इन तीनों ही मार्गणाओंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पृथक्-पृथक् पल्यका असंख्यातवां भाग है। इन सब सान्तरमार्गणाओंका जघन्य अन्तरकाल एक समयप्रमाण ही है। इन सभी सान्तरमार्गणाओंका अन्तरकाल पूरा होती ही उस-उस मार्गणावाले जीव नियमसे उत्पन्न हो जाते हैं। इन आठ मार्गणाओंके सिवाय शेष सभी मार्गणाओंवाले जीव सदा ही पाये जाते हैं।

एक जीवकी अपेक्षा किस गुणस्थान और मार्गणास्थानका कितना जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर सम्भव है, तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा किसका कितना अन्तर सम्भव है, इसका विशेष परिचय तो इस प्ररूपणाके स्वाध्याय करनेपर ही मिल सकेगा।

७ भावप्ररूपणा

इस भावप्ररूपणामें विभिन्न गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें होनेवाले भावोंका निरूपण किया गया है। कर्मोंके उदय, उपशम आदिके निमित्तसे जीवके उत्पन्न होनेवाले परिणाम विशेषोंको भाव कहते हैं। ये भाव पांच प्रकारके होते हैं-- १ औदयिक भाव, २ औपशमिक भाव, ३ क्षायिक भाव, ४ क्षायोपशमिक भाव और ५ पारिणामिक भाव। कर्मोंके उदयसे जो भाव होते है, उन्हें औदयिक भाव कहते हैं। इसके इक्कीस भेद हैं-- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार गतियां; स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन लिंग; क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय; मिथ्यात्व, असिद्धत्व, अज्ञान, असंयम और कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ये छह लेश्याएं। मोहकर्मके उपशमसे जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें औपशमिक भाव कहते हैं। इसके दो भेद हैं-- १ औपशमिकसम्यक्त्व और २ औपशमिकचारित्र। घातियाकर्मोंके क्षयसे जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें क्षायिकभाव कहते हैं। इसके नौ भेद हैं-- १ क्षायिकसम्यक्त्व, २ क्षायिक-चारित्र, ३ क्षायिकज्ञान, ४ क्षायिकदर्शन, ५ क्षायिकदान, ६ क्षायिकलाभ, ७ क्षायिकभोग, ८ क्षायिकउपभोग और ९ क्षायिकवीर्य। घातियाकर्मोंके क्षयोपशमसे जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हें क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। इसके अट्ठारह भेद हैं-- मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चार ज्ञान; कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि ये तीन अज्ञान; चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन दर्शन; क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पांच लब्धियां; क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम। जो भाव किसी भी कर्मके उदय, उपशम आदिकी अपेक्षा न रखकर स्वतः स्वभाव अनादिसे चले आ रहे हैं, उन्हें पारिणामिक भाव कहते हैं। इसके तीन भेद हैं-- १ जीवत्व, २ भव्यत्व और ३ अभव्यत्व।

उक्त भावोंमेंसे किस गुणस्थान और किस मार्गणास्थान में कौनसा भाव होता है, इसका विवेचन इस भाव प्ररूपणामें किया गया है। जैसे ओघकी अपेक्षा पूछा गया कि 'मिथ्यादृष्टि' यह कौनसा भाव है? इसका उत्तर दिया गया कि मिथ्यादृष्टि यह औदयिक भाव है। इसका कारण यह है कि जीवोंके मिथ्यादृष्टि अर्थात् विपरीत श्रद्धा मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होती है। यहां यह शंका की जा सकती है कि जब मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्व भाव के अतिरिक्त ज्ञान, दर्शन, भव्यत्व आदि अन्य भी भाव पाये जाते है, तब उसके एक मात्र औदयिक भाव ही क्यों बतलाया गया? इसका उत्तर यह दिया गया है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव भी होते हैं, किन्तु वे मिथ्यादृष्टित्वके कारण नहीं है, एक मात्र मिथ्यात्वकर्मका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण होता है, इसलिए मिथ्यात्व गुणस्थानमें पैदा होनेवाले मिथ्यादृष्टिको औदयिक भाव कहा गया है।

दूसरे गुणस्थानमें अन्य भावोंके रहते हुए भी पारिणामिक बतलानेका कारण यह है कि जिस प्रकार जीवत्व आदि पारिणामिक भावोंके लिए कर्मोंका उदय उपशम आदि कारण नहीं है उसी प्रकार सासादन सम्यक्त्वरूप भावके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उदय, उपशमादि कोई भी कारण नहीं है, इसलिए यहां पारिणामिक भाव ही जानना चाहिए।

तीसरे गुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव होता है। यहां यह शंका उठाई जा सकती है कि प्रतिबन्धी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके स्वाभाविक गुणका अंश पाया जाता है वह क्षायोपशमिक कहलाता है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयमें तो सम्यक्त्वगुणकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है। यदि ऐसा न माना जाय तो सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघातिपना नहीं बन सकता। अतएव सम्यग्मिथ्यात्व भावको क्षायोपशमिक मानना ठीक नहीं है। इसका उत्तर यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उदय होनेपर श्रद्धान और अश्रद्धानरूप एक मिश्रभाव उत्पन्न होता है। उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वगुणका अंश है, उसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय नष्ट नहीं करता। अतः सम्यग्मिथ्यात्व भावको क्षायोपशमिक ही मानना चाहिए।

चौथे गुणस्थानमें औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये तीन भाव पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि यहांपर दर्शन मोहनीय कर्मका उपशम, क्षय और क्षयोपशम ये तीनों ही होते हैं।

आदिके ये चार गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय आदिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन गुणस्थानोंमें अन्य भावोंके पाये जानेपरभी दर्शनमोहनीयकी अपेक्षासे भावोंकी प्ररूपणा की गई है। चौथे गुणस्थानतक जो असंयमभाव पाया जाता है, वह चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक भाव है, पर यहां उसकी विवक्षा नहीं की गई है।

पांचवेंसे लेकर बारहवें तक आठ गुणस्थानोंके भावोंका प्रतिपादन चारित्र मोहनीय कर्मके क्षयोपशम, उपशम और क्षयकी अपेक्षासे किया गया है। अर्थात् पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें चारित्रमोहके क्षयोपशमसे क्षायोपशमिक भाव होता है। आठवें, नववें, दशवे और ग्यारहवें इन चार उपशामक गुणस्थानोंमें चारित्रमोहके उपशमसे औपशमिक भाव, तथा क्षपकश्रेणी सम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें चारित्रमोहनीयके क्षयसे क्षायिक भाव होता है। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानोंमें जो क्षायिक भाव पाये जाते हैं वे घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए जानना चाहिए।

जिस प्रकारसे गुणस्थानोंमें यह भावोंका निरूपण किया गया है, उसी प्रकार मार्गणास्थानोंमें भी संभव गुणस्थानोंकी अपेक्षा भावोंका विस्तारसे निरूपण किया गया है, जिसका अनुभव पाठकगण ग्रन्थके स्वाध्याय करनेपर ही सहजमें कर सकेंगे।

८ अल्पबहुत्वप्ररूपणा

इस प्ररूपणामें संख्याप्ररूपणाके आधारपर गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें पाये जानेवाले जीवोंकी संख्याकृत अल्पता और अधिकताका प्रतिपादन किया गया है। गुणस्थानोंमें जीवोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार बतलाया गया है– अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर समान हैं और शेष सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं, क्यों कि इन तीनों ही गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करनेवाले जीव एक, दो, तीन को आदि लेकर अधिकसे अधिक चौपन तक ही पाये जाते हैं। इतने कम जीव इन तीनों उपशामक गुणस्थानोंको छोड़कर अन्य किसी गुणस्थानमें नहीं पाये जाते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव भी पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि उक्त उपशामक जीव ही चढ़ते हुए ग्यारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं, क्योंकि उपशामकके एक गुणस्थानमें अधिकतम प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें अधिकतम प्रवेश करनेवाले एक सौ आठ जीवोंके दूने प्रमाणस्वरूप संख्यातगुणितता पाई जाती है। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि उक्त क्षपक जीव ही इस बारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही परस्पर समान होकर पूर्वोक्तप्रमाण अर्थात् एक सौ आठ ही हैं। किन्तु सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित हैं। सयोगिकेवली जिनोंसे सातवें गुणस्थानवाले अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं। अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं। प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं; क्योंकि इनमें मनुष्य संयतासंयतोंके साथ तिर्यंच संयतासंयत राशि सम्मिलित है। संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव

संख्यातगुणित हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयत सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त गुणित हैं। इस प्रकार गुणस्थानोंका यह अल्पबहुत्व दो दृष्टियोंसे बतलाया गया है– प्रवेशकी अपेक्षा और संचयकालकी अपेक्षा। जिन गुणस्थानोंका अन्तर नहीं होता, अर्थात् जो गुणस्थान सदा पाये जाते हैं, उनका अल्पबहुत्व संचयकालकी अपेक्षा बताया गया है। सदा पाये जानेवाले गुणस्थान छह हैं– पहला, चौथा, पांचवा, छठा, सातवां और तेरहवां। जिन गुणस्थानोंका अन्तरकाल सम्भव है, उनका अल्पबहुत्व प्रवेश और संचयकाल, इन दोनोंकी अपेक्षासे बतलाया गया है। जैसे अन्तरकाल पूरा होनेपर उपशम और क्षपकश्रेणीके गुणस्थानोंमें एक, दो से लगाकर अधिकसे अधिक ५४ और १०८ तक जीव एक समयमें प्रवेश कर सकते हैं। और निरन्तर आठ समयोंमें प्रवेश करनेपर उनके संचयका प्रमाण क्रमशः ३०४ और ६०८ तक एक एक गुणस्थानमें हो जाता है। यही क्रम चौदहवें गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। दूसरे और तीसरे गुणस्थानके प्रवेश और संचयका प्रमाण सूत्रकारने नहीं बतलाया है, उसे धवला टीकासे जानना चाहिए।

इसके अतिरिक्त चतुर्थादि एक एक गुणस्थानमें सम्यक्त्वकी अपेक्षासे भी अल्पबहुत्व बतलाया गया है। जैसे चौथे गुणस्थानमें उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं और उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। इस हीनाधिकताका कारण उत्तरोत्तर संचयकालकी अधिकता है। पांचवें गुणस्थानमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। इसका कारण यह है कि बहुत कम ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि संयमासंयमको ग्रहण करते हैं, वे अधिकतर सीधे संयमको ही धारण करते हैं। इस गुणस्थानमें क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंसे उपशम सम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित होते हैं और उनसे वेदक सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणित होते हैं। छठे सातवें गुणस्थानमें उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम होते हैं। उनसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात गुणित होते हैं और उनसे वेदक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात गुणित होते हैं। इस अल्पबहुत्वका कारण संचयकालकी हीनाधिकता ही है। इसी प्रकारका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें जानना चाहिए। यहां यह बात ज्ञातव्य है कि इन गुणस्थानोंमें उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व ये दो सम्यक्त्व होते हैं, वेदक सम्यक्त्व नहीं। इसका कारण यह है कि वेदकसम्यक्त्वी जीव उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़ सकता है। अतः उपशमश्रेणीके अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशम सम्यक्त्वी जीव सबसे कम हैं और उनसे क्षायिक सम्यक्त्वी जीव संख्यात गुणित हैं। आगेके गुणस्थानोंमें और क्षपकश्रेणीके गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि वहां सभी जीवोंके एक क्षायिक सम्यक्त्व ही पाया जाता है। इसी प्रकार पहिले, दूसरे और तीसरे गुणस्थानमें भी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि उनमें सम्यक्त्व होता ही नहीं है।

ऊपर जिस प्रकार गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाया गया है, इसी प्रकार मार्गणास्थानोंमें भी सूत्रकारने जहां जितने गुणस्थान सम्भव हैं, वहां उनके अल्पबहुत्वका प्रतिपादन किया है, जिसका अनुभव पाठकगण इस प्ररूपणाके स्वाध्याय करते हुए करेंगे।

चूलिका परिचय

इस प्रकार जीवस्थान नामक प्रथम खण्डकी आठों प्ररूपणाओंका विषय-परिचय कराया गया। अब इसी प्रथम खण्डकी नौ चूलिकाएं भी सूत्रकारने कहीं हैं। जो बातें आठों अनुयोगद्वारों (प्ररूपणाओं) में कहनेसे रह गई हैं और जिनका उनसे सम्बन्ध है, या जानना आवश्यक है। उनकी जानकारीके लिए प्रथम खण्डके परिशिष्टरूप प्रकरणोंको चूलिका कहते हैं।

जीवस्थानखण्डकी नौ चूलिकाएं कही गई हैं, जिनके नाम हम प्रारम्भमें बतला आये हैं। यहां क्रमशः उनके विषयोंका परिचय कराया जाता है।

१ प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिका

जीवोंके गति, जाति आदिके रूपमें जो नानाभेद देखनेमें आते हैं, उनका कारण कर्म है। यह कर्म क्या वस्तु है, उसका क्या स्वरूप है और उसके कितने भेद-प्रभेद हैं? इत्यादि शंकाओंके समाधानके लिए आचार्यने इस चूलिकाका निर्माण किया है।

जीव अपने राग-द्वेषरूप विभावपरिणतिके द्वारा जिन कार्मण पुद्गल स्कन्धोंको खींचकर अपने प्रदेशोंके साथ बांधता है, उन्हें कर्म या प्रकृति कहते हैं। कर्मकी मूल प्रकृतियां आठ हैं— १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय। आत्माके ज्ञानगुणके आवरण करनेवाले कर्मको ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। इसकी उत्तर प्रकृतियां ५ हैं। आत्माके दर्शनगुणके आवरण करनेवाले कर्मको दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। इसकी उत्तर प्रकृतियां ९ हैं। आत्माको सुख या दुःखके वेदन करानेवाले कर्मको वेदनीय कहते हैं। इसकी उत्तर प्रकृतियां २ हैं। आत्माको सांसारिक पदार्थोंमें मोहित करनेवाले कर्मको मोहनीय कहते हैं। इसकी उत्तर प्रकृतियां २८ हैं। जीवको नरक, देव, मनुष्य आदिके भवोंमें रोक रखनेवाले कर्मको आयु कर्म कहते हैं। इसकी उत्तर प्रकृतियां ४ हैं। जीवके शरीर, अंग-उपांग, और आकार-प्रकारके निर्माण करनेवाले कर्मको नामकर्म कहते हैं। इसके पिण्डरूपमें ४२ और अपिण्डरूपमें ९३ प्रकृतियां हैं। उच्च और नीच कुलमें उत्पन्न करनेवाले कर्मको गोत्रकर्म कहते हैं। इसकी २ प्रकृतियां हैं। जीवके भोग, उपभोग आदि मनोवांछित वस्तुकी प्राप्तिमें विघ्न करनेवाले कर्मको अन्तराय कहते हैं। इसकी ५ उत्तर प्रकृतियां हैं। इस प्रकार कर्मोंकी ८ मूल प्रकृतियों और १४८ उत्तर प्रकृतियोंका वर्णन इस प्रकृतिसमुत्कीर्त्तना चूलिकामें किया गया है।

२. स्थानसमुत्कीर्तनचूलिका

प्रथम चूलिकाके द्वारा प्रकृतियोंकी संख्या और स्वरूप जान लेनेके पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि उनमेंसे किस कर्मकी कितनी प्रकृतियां एक साथ बांधी जा सकती हैं और उनका बन्ध किन किन गुणस्थानोंमें सम्भव है। इसी विषयका प्रतिपादन इस चूलिकामें किया गया है। यहां कथनकी सुविधाके लिए चौदह गुणस्थानोंको छह भागोंमें विभक्त किया गया है– मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत। इनमेंके प्रथम पांचके नाम तो गुणस्थानके क्रमसे ही हैं, किन्तु अन्तिम नामके द्वारा छठे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके उन सभी गुणस्थानोंका अन्तर्भाव कर लिया गया है, जहां तक कि विवक्षित कर्मप्रकृतियोंका बन्ध सम्भव है। ज्ञानावरणकर्मकी पांचों प्रकृतियोंके बन्धनेका एक ही स्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर दशवें गुणस्थान तक के सभी जीव उन पांचों ही प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। दर्शनावरण कर्मकी नौ प्रकृतियोंके बन्धकी अपेक्षा तीन स्थान है– १ नौ प्रकृतिरूप, २ छह प्रकृतिरूप और ३ चार प्रकृतिरूप। इनमेंसे पहले और दूसरे गुणस्थानवर्ती जीव नौ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करते हैं। तीसरे गुणस्थानसे लेकर आठवें गुणस्थानके प्रथम भाग तक के संयत जीव स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचला प्रचला इन तीन को छोड़कर शेष छह प्रकृतिरूप दूसरे गुणस्थानका बन्ध करते हैं। आठवें गुणस्थानके दूसरे भागसे लेकर दशवें गुणस्थान तक के संयत जीव निद्रा और प्रचला इन दो निद्राओंको छोड़कर शेष चार प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करते हैं। वेदनीयका एक ही बन्धस्थान है क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक के सभी जीव साता और असाता इन दोनों वेदनीय प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। मोहनीय कर्मके दश बन्धस्थान हैं– २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक। मोहनीय कर्मकी सर्व प्रकृतियां २८ हैं, पर उन सबका एक साथ बन्ध सम्भव नहीं हैं। इसका कारण यह है कि एक समयमें तीन वेदोंमेंसे एक ही वेदका बन्ध होता हैं, अतः शेष दो वेद अबन्ध-योग्य रहते हैं। हास्य-रति और अरति-शोक इन दो जोड़ोंमेंसे एक साथ एकका ही बन्ध होता है, अतः एक जोड़ा अबन्ध-योग्य रहता हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोंका बन्ध होता ही नहीं है, केवल उदय या सत्त्व ही होता है। अतः ये दो भी अबन्ध-योग्य रहती हैं। इस प्रकार इन छह प्रकृतियोंको छोड़कर शेष जो बाईस प्रकृतियां रहती हैं, उनका बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव करता है। इन बाईसमेंसे मिथ्यात्वका बन्ध दूसरे गुणस्थानमें नहीं होता है। अतः शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध सासादन सम्यग्दृष्टि करते हैं। यहां इतनी बात ध्यानमें रखनेकी है, कि दूसरे गुणस्थानमें नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होनेपर भी बन्धनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या इक्कीस ही बनी रहती है। क्योंकि पहले गुणस्थानमें तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद एक समयमें बंधता था, यहांपर नंपुसकवेदको छोड़कर शेष दो वेदोंमेंसे कोई एक वेद बंधता है। तीसरे और चौथे गुणस्थानमें

अनन्तानुबन्धी चार कषायोंका भी बन्ध नहीं होता है, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव शेष सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। यहांपर भी यह ज्ञातव्य है कि उक्त दोनों जीव स्त्रीवेदका भी बन्ध नहीं करते हैं, किन्तु उसके नहीं बंधनेसे प्रकृतियोंकी संख्यामें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। संयतासंयत जीव उक्त सत्तरह प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्कको छोड़कर शेष तेरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। इन तेरह प्रकृतियोंमेंसे प्रत्याख्यानावरण चतुष्क को छोड़कर शेष नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत ये तीनों प्रकारके संयत करते हैं। पुरुषवेद और संज्वलनकषाय चतुष्क इन पांच प्रकृतिक स्थानका बन्ध अनिवृत्तिकरणसंयत करते हैं। पुनः पुरुषवेदको छोड़कर शेष संज्वलन-चतुष्करूप चार प्रकृतिक स्थानका, उनमेंसे संज्वलन क्रोधको छोड़कर शेष तीन प्रकृतिक स्थानका, उनमेंसे संज्वलन मानको छोड़कर शेष दो प्रकृतिक स्थानका और उनमेंसे संज्वलन मायाको छोड़कर शेष एक प्रकृतिक स्थानका भी बन्ध नवें गुणस्थानवर्ती अनिवृत्तिकरण संयत ही करते हैं।

आयुकर्मकी चारों प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् चार बन्धस्थान हैं– पहिला नरकायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिका, दूसरा तिर्यगायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टिका, तीसरा मनुष्यायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिका और चौथा देवायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और सातवें गुणस्थान तकके संयतोंका है। तीसरे गुणस्थानवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किसी भी आयुका बन्ध नहीं करते हैं।

नामकर्मकी भेदविवक्षासे यद्यपि ९३ और अभेदविवक्षासे ४२ प्रकृतियां हैं, पर उन सबका एक जीवके एक साथ बन्ध नहीं होता। किन्तु अधिकसे अधिक ३१ प्रकृतियोंतकको कोई जीव बांध सकता है और कमसे कम एक प्रकृतितकको बांधता है। अतएव नामकर्मके बन्धस्थान आठ हैं– ३१, ३०, २९, २८, २६, २५, २३ और १ प्रकृतिक। इन सब स्थानोंकी प्रकृतियोंका और उनके बन्ध करनेवाले स्वामियोंका वर्णन विस्तारके भयसे यहां नहीं कर रहे हैं। पाठकगण इस चूलिकाका स्वाध्याय करनेपर स्वयं ही उसकी महत्ता और विशालताका अनुभव करेंगे। संक्षेपमें यहां इतनाही जानना चाहिए कि यशस्कीर्तिरूप एक प्रकृतिक स्थानका बन्ध दशम गुणस्थानवर्ती सूक्ष्मसाम्परायसंयतके होता है। शेष सात स्थानोंका बन्ध एकेन्द्रिय जीवोंसे लगाकर पंचेन्द्रिय तकके तिर्यंच, तथा देव-नारकी और नवें गुणस्थान तकके मनुष्य करते हैं।

गोत्रकर्मके केवल दो ही बन्धस्थान है– उनमेंसे नीचगोत्रका बन्ध पहले और दूसरे गुणस्थानवाले जीव करते है। तथा उच्चगोत्रका बन्ध पहलेसे लेकर दशवें गुणस्थान तकके जीव करते हैं।

अन्तरायकर्मका केवल एक ही बन्धस्थान है, क्योंकि पहले गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थान तकके सभी जीव अन्तरायकर्मकी पांचोंही प्रकृतियोंका बन्ध करते है।

३ प्रथम महादण्डकचूलिका

आठों कर्मोंकी १४८ उत्तर प्रकृतियोंमेंसे बन्ध-योग्य प्रकृतियां केवल १२० बतलाई गई हैं, उनमें भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें बन्ध-योग्य ११७ ही हैं, क्योंकि तीर्थंकर और आहारशरीर-आहारकअंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंका यहां बन्ध नहीं होता है। इन ११७ मेंसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके सन्मुख जो तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव है, वह केवल ७३ ही प्रकृतियोंको बांधता है, शेष असातावेदनीय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद आदि ४४ अशुभप्रकृतियोंका वह बन्ध नहीं करता है। उक्त जीव सम्यक्त्वोत्पत्तिके समय किसी आयुकर्मका भी बन्ध नहीं करता है। प्रस्तुत ग्रन्थमें जितने भी सूत्र आये हैं, उन सबमें इस चूलिकाका दूसरा सूत्र सबसे अधिक लम्बा है, इसलिए इसे प्रथम महादण्डक कहा जाता है।

४ द्वितीय महादण्डकचूलिका

इस द्वितीय महादण्डकमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख देव और सातवीं पृथिवीके नारकियोंको छोड़कर शेष छह पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंके बन्ध-योग्य ६७ प्रकृतियोंको गिनाया गया है। अधिक लम्बा सूत्र होनेके कारण इसे दूसरा महादण्डक कहा जाता है।

५ तृतीय महादण्डकचूलिका

इस चूलिकामें प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकी जीवके बन्ध-योग्य ७३ प्रकृतियोंको गिनाया गया है। इस सूत्रके भी अधिक लम्बे होनेके कारण इसे तीसरा महादण्डक कहा जाता है।

६ उत्कृष्ट स्थितिचूलिका

कर्मोंका स्वरूप, उनके भेद-प्रभेद और बन्धस्थानोंके जान लेनेपर प्रत्येक अभ्यासीके हृदयमें यह जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि एक बार बंधे हुए कर्म कितने कालतक जीवके साथ रहते हैं, सब कर्मोंका स्थितिकाल समान है, या हीनाधिक? बंधनेके कितने समयके पश्चात् कर्म अपना फल देते हैं? इस प्रकारकी जिज्ञासा-पूर्तिके लिए उत्कृष्ट स्थिति और जघन्य स्थिति नामवाली दो चूलिकाओंका निर्माण किया गया है। उत्कृष्ट स्थितिचूलिकामें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है। यथा– ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। नाम

और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है और आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम है। जिस प्रकार मूल कर्मोंकी यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है, उसी प्रकार उनकी उत्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन इसी चूलिकामें किया गया है। इस स्थितिवर्णनके साथ ही उनके अबाधाकाल और निषेककालका भी वर्णन किया गया है। कर्मबन्ध होनेके पश्चात् जितने समय तक वह बाधा नहीं देता, अर्थात् उदयमें आकर फल देना नहीं प्रारम्भ करता है, उतने कालका नाम अबाधाकाल है। इस अबाधाकालके आगे जो कर्मस्थितिका काल शेष रहता है और जिसमें कर्म उदयमें आकर फल देकर झड़ता जाता है, उस कालको निषेककाल कहते हैं। अबाधाकालका सामान्य नियम यह है कि जिस कर्मकी स्थिति एक कोड़ाकोड़ी सागरकी होगी, उसका अबाधाकाल १०० वर्षका होगा, अर्थात् वह कर्म १०० वर्षतक अपना फल नहीं देगा, इसके पश्चात् फल देना प्रारम्भ करेगा। इस नियमके अनुसार जिन कर्मोंकी स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागर है, उनका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष है। जिनकी स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागर है, उनका अबाधाकाल सात हजार वर्ष है और जिनकी स्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागर है उनका अबाधाकाल दो हजार वर्ष है। आयुकर्मकी अबाधाका नियम इससे भिन्न है। उसकी अबाधाका उत्कृष्टकाल अधिकसे अधिक एक पूर्वकोटि वर्षका त्रिभाग है। जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम या इससे कम होती है उनका अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तके जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तक असंख्य भेद पहिले बतला आये है, सो जिस कर्मकी अन्तः कोड़ाकोड़ीसे लेकर आगे बतलाई जानेवाली जघन्य स्थिति जितनी कम होगी– उनको अबाधाकालका अन्तर्मुहूर्त भी उतना ही छोटा जानना चाहिए।

७ जघन्यस्थितिचूलिका

इस चूलिकामें सभी मूलकर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंकी जघन्यस्थितिका, उनके जघन्य अबाधाकालका और निषेककालका वर्णन किया गया है। वेदनीय कर्मकी सर्व जघन्य स्थिति १२ मुहूर्तकी है, नाम और गोत्रकर्मकी ८ मुहूर्तकी है और शेष पांचों कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्रकी होती है। पर इस सर्व जघन्य स्थितिका बन्ध हर एक जीवके नहीं होता है, किन्तु क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले दशवें गुणस्थानवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय संयतके उस प्रकृतिके बन्धसे विच्छिन्न होनेके अन्तिम समयमें मोहनीय और आयुकर्मको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी उक्त जघन्य स्थितिका बन्ध होता है। मोहनीयकर्मकी सर्व जघन्य स्थिति जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण बतलाई है, उसका बन्ध क्षपकश्रेणीवाले साधुके नवमगुणस्थानके अन्तिम समयमें होता है। आयुकर्मकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सर्व जघन्यस्थितिका बन्ध मनुष्य या तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। साधारणतः विभिन्न प्रकृतियोंकी यह जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे लगाकर अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक है, पर उन सबका अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है, उससे शेष बचे कालको निषेककाल जानना चाहिए।

जिन कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र होती है, उनका अबाधाकाल भी तदनुकूल सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जानना चाहिए।

इन दोनों चूलिकाओंमें यह बात ध्यान रखनेकी है कि आयुकर्मका अबाधाकाल बध्यमान स्थितिमेंसे नहीं घटाया जाता है, किन्तु भुज्यमान आयुके त्रिभागमें ही उसका अबाधा-काल होता है। अतः आयुकर्मका जितना स्थितिबन्ध होता है, उतना ही उसका निषेककाल बतलाया गया है।

८ सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका

अनादिकालसे परिभ्रमण करते हुए इस जीवको सम्यक्त्वकी प्राप्तिका होना ही सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस चूलिकामें इसी समक्त्वकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है।

जब जीवके संसार-परिभ्रमणका काल अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण रह जाता है, तभी जीवमें सम्यग्दर्शन उत्पन्न करनेकी पात्रता आती है, इसके पूर्व नहीं; इसका नाम ही काललब्धि है। इस काललब्धिके प्राप्त होनेपर भी हर एक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके योग्य नहीं होता, किन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक सर्वविशुद्ध जीव ही उसे प्राप्त करनेके योग्य होता है। भले ही वह चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिका जीव क्यों न हो। यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि तिर्यग्गतिके एकेन्द्रियसे लगाकर असंज्ञी पंचेन्द्रियतकके सभी जीवोंमें मन न होनेसे सम्यक्त्वकी पात्रता नहीं है और संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें भी जो सम्मूर्च्छिम संज्ञी हैं, वे भी प्रथमवार उमशम सम्यक्त्वको उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। शेष गर्भज पंचेन्द्रिय सभी पशु-पक्षी कर्मभूमिज या भोगभूमिज तिर्यंच, मनुष्य, देव और नारकी जीव तब प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, जब उनकी कषाय मन्द हों और तीव्र अनुभाग और उत्कृष्ट स्थितिके कर्मोंका उनके बन्ध न हो रहा हो। किन्तु अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले ही नवीन कर्म बंध रहे हों, इतनीही स्थितिवाले कर्मोका उदय हो रहा हो। और इतनी ही स्थितिवाले कर्म सत्तामें हों। यह तो हुई जीवकी आन्तरिक योग्यताकी बात

अब बाह्य निमित्त भी ज्ञातव्य हैं-- उक्त प्रकारकी योग्यतावाले जीवोंमेंसे नारकी तीन कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं-- कोई जातिस्मरणसे, कोई किसी देवादिके द्वारा धर्म श्रवणसे और कोई वेदनाकी पीड़ासे। चौथेसे सातवें नरक तकके नारकी धर्म श्रवणको छोड़कर शेष दो कारणोंसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं। तिर्यंच तीन कारणोंसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं- कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही धर्म सुनकर और कितने ही जिनबिम्ब देखकर। मनुष्य भी इन ही तीनों कारणोंसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं। भवनत्रिकसे लगाकर बारहवें स्वर्ग तकके देव चार कारणोंसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं-- जातिस्मरणसे, धर्मश्रवणसे, जिन महिमाके अवलोकनसे और महर्द्धिक

देवोंके वैभवके देखनेसे। बारहवें स्वर्गसे सोलहवें स्वर्ग तकके देव अन्तिम कारणको छोड़कर शेष तीन कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं। नौ ग्रैवेयकोंके अहमिन्द्र जातिस्मरण और धर्मश्रवण इन दो ही कारणोंसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं। नव अनुदिश और पंच अनुत्तरवासी सभी देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।

इस प्रकार काललब्धिके प्राप्त होनेपर और उपर्युक्त अन्तरंग योग्यता और बाह्य निमित्त कारणोंके मिलनेपर यह जीव सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। इन दोनों प्रकारके कारणोंके मिलनेपर उसके करणलब्धि प्रकट होती है, जिससे वह अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा दर्शनमोहके उपशमानेका प्रयत्न करता है। इन तीनों करणोंका स्वरूप गुणस्थानोंके वर्णन करते हुए बतला आये हैं। वहांपर इन तीनों करणोंको संयत जीव चारित्रमोहके उपशमन या क्षपणके लिए करता है; किन्तु यहांपर सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहके उपशमन करनेके लिए करता है। प्रत्येक करणका काल अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका सम्मिलित काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। इनमेंसे अधःकरण और अपूर्वकरणके कालमें उत्तरोत्तर अपूर्व विशुद्धिको प्राप्त होकर प्रतिसमय कर्मोंकी असंख्यातगुणी निर्जरा करता हुआ अनिवृत्तिकरण कालका बहुभाग बिताकर दर्शनमोहकर्मका अन्तरकरण करता हुआ उसके तीन टुकड़े कर देता है— जिनके नाम क्रमशः मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति हैं। जैसे कोदों (धान्यविशेष) को चक्कीसे दलनेपर उसके तीन भाग होते हैं— कुछ ज्यों के त्यों कोदोंके रूपमें रहते हैं, कुछके ऊपरके छिलके उतर जाते हैं और कुछ चढ़े रहते हैं और कुछके सभी छिलके अलग हो जाते हैं और निस्तुष चावल बन जाते हैं। जैसे ही एक दर्शनमोहके तीन तुकड़े होते हैं, उसी समय वह जीव उनका उपशम करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकारसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका वर्णन करनेके पश्चात् इसी चूलिकामें क्षायिकसम्यक्त्वकी उत्पत्तिका भी निरूपण किया गया है, जिसमें बतलाया गया है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ और सर्वप्रकारकी उपर्युक्त योग्यताका धारण करनेवाला मनुष्य सामान्य केवली, श्रुतकेवली और तीर्थंकर इन तीनोंमेंसे किसी एक के चरण-सान्निध्यमें रहकर करता है। इसका कारण यह है कि क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्तिके लिए जिस परम विशुद्धि और विशिष्ट देशनाकी आवश्यकता है, वह उनके अतिरिक्त अन्यत्र सम्भव नहीं है। दर्शनमोहकी क्षपणा करने के पूर्व उसका वेदकसम्यग्दृष्टि होना आवश्यक है। वह मिथ्यात्वका पहले क्षय करता है, तत्पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करता है और उसके अनन्तर सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि बन जाता है। यदि इस सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय करते हुए किसीकी आयु समाप्त हो जाय तो थोड़ासा जो कार्य शेष रह गया है, वह चारों गतियोंमेंसे जहां भी उत्पन्न हो, वहां उसे सम्पन्न कर क्षायिकसम्यग्दृष्टि बन जाता है।

यहां यह ध्यानमें रखना चाहिए कि सम्यक्त्व प्राप्तिके बाद यदि आयुबन्ध हो, तो नियमसे देवायुका ही बन्ध होता है। किन्तु यदि किसी जीवने मिथ्यात्वदशामें चारों गतियोंमेंसे किसी भी आयुका बन्ध कर लिया हो, और पीछे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो जाय, तो बंधी हुई आयु तो छूट नहीं सकती है, इसलिए उसे जाना तो उसी गतिमें पड़ता है, परन्तु सम्यक्त्वके माहात्म्य से वह पहले नरकसे नीचे नहीं उत्पन्न होगा। यदि तिर्यगायु बंध गई है, तो वह भोगभूमियां तिर्यंच होगा। यदि मनुष्यायु बंधी है, तो वह भोगभूमियां मनुष्य होगा। और यदि देवायु बंधी है, तो वह कल्पवासी ही देव होगा। यदि कोई आयु नहीं बंधी है और वह चरमशरीरी है तो क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्तिके पश्चात् वह सर्व कर्मोंकी क्षपणाके लिए उद्यत होता है और पुनः अधःकरणादि तीनों करणोंको करता और क्षपकश्रेणीपर चढ़ता हुआ दशवें गुणस्थानके अन्तमें मोहका क्षय करके क्षायिक चारित्रको प्राप्त करता है और अन्तर्मुहूर्तके भीतर ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका क्षय करके अनन्त चतुष्टय और नवकेवल लब्धियोंका स्वामी अरहन्त बन जाता है और अन्तमें योग निरोध करके शेष अघातिया कर्मोंका भी क्षय करके परम पद मोक्षको प्राप्त हो जाता है।

९ गति-आगतिचूलिका

सर्व चूलिकाओंमें यह सबसे विस्तृत चूलिका है। विषय-वर्णनकी दृष्टिसे इसके चार विभाग किये जा सकते हैं। जिनमेंसे सर्वप्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाहिरी कारण किस गतिमें कौन-कौनसे सम्भव है, इसका विस्तारसे वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् चारों गतिके जीव मरण कर किस किस गतिमें जा सकते है और किस किस गतिसे किस किस गतिमें आ सकते है, इसका बहुत ही विस्तारसे वर्णन किया गया है। जिसका सार यह है कि देव मर कर देव नहीं हो सकता और न नारकी ही हो सकता है। इसी प्रकार नारकी जीव मर कर न नारकी हो सकता है और न देव ही। इन दोनों गतिके जीव मरण कर मनुष्य या तिर्यंचगतिमें आते हैं और मनुष्य-तिर्यंच ही मर कर इन दोनों गतियोंमें जाते हैं। हां, मनुष्यगतिके जीव मर कर चारों गतियोंमें जा सकते हैं और चारों गतिके जीव मरकर मनुष्यगतिमें आ सकते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचगतिके जीव मर कर चारों गतियोंमें जा सकते हैं और चारों ही गतियोंके जीव मर कर तिर्यंचगतिमें आ सकते हैं। इसके पश्चात् यह बतलाया गया है कि किस गुणस्थानमें मरण कर कौनसी गतिका जीव किस किस गतिमें जा सकता है। इस प्रकरणमें अनेक ज्ञातव्य एवं महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला गया है। जैसे कि कितने ही जीव मिथ्यात्वके साथ नरकमें जाते हैं और मिथ्यात्वके साथ ही निकलते हैं। कितने ही मिथ्यात्वके साथ जाते हैं और सासादनसम्यक्त्वके साथ निकलते हैं। कितने ही मिथ्यात्वके साथ नरकमें जाते हैं और सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं। इसी प्रकारसे शेष तीनों गतिके जीवोंकी गति-आगतिका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् बतलाया गया है कि नरक और

देव इन गतियोंसे आये हुए जीव तीर्थंकर हो सकते हैं, अन्य गतियोंसे आये हुए नहीं। चक्रवर्ती, नारायण प्रतिनारायण और बलभद्र केवल देवगतिसे आये हुए जीव ही होते हैं, शेष गतियोंसे आये हुए नहीं। चक्रवर्ती मरण कर स्वर्ग, और नरक इन दो गतियोंमें जाते हैं और कर्मक्षय करके मोक्ष भी जाते हैं। बलभद्र स्वर्ग या मोक्षको जाते हैं। नारायण-प्रतिनारायण मरण कर नियमसे नरक ही जाते हैं, इत्यादि। तत्पश्चात् बतलाया गया है कि सातवें नरकका निकला जीव तिर्यंचही हो सकता है, मनुष्य नहीं। छठे नरकसे निकले हुए तिर्यंच और मनुष्य दोनों हो सकते हैं और उनमें भी कितनेही जीव सम्यक्त्व और संयमासंयम तक को धारण कर सकते हैं, पर संयमको नहीं। पांचवें नरकसे निकले हुए जीव मनुष्यभवमें संयमको भी धारण कर सकते हैं, पर उस भवसे मोक्ष नहीं जा सकते हैं। चौथे नरकसे निकले हुए जीव मनुष्य होकर और संयम धारण कर केवलज्ञानको उत्पन्न करते हुए निर्वाणको भी प्राप्त कर सकते हैं। तीसरे नरकसे निकले हुए जीव तीर्थंकर भी हो सकते हैं। इसी प्रकारसे शेष गतियोंसे आये हुए जीवोंके सम्यक्त्व, संयमासंयम, संयम और केवलज्ञान उत्पन्न कर सकने– न कर सकने आदिका बहुत उत्तम विवेचन करके इस चूलिकाको समाप्त किया गया है।

इस प्रकार नौ चूलिकाकी समाप्तिके साथ जीवस्थान नामक प्रथम खंड समाप्त होता है।

द्वितीय खण्ड

२ खुद्दाबन्ध (क्षुद्रबन्ध)

षट्खण्डागमके इस दूसरे खण्डमें कर्म-बन्धकके रूपमें जीवकी प्ररूपणा जिन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके द्वारा की गई है, उनके नाम इस प्रकार हैं– १ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, २ एक जीवकी अपेक्षा काल, ३ एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, ४ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, ५ द्रव्यप्रमाणानुगम, ६ क्षेत्रानुगम, ७ स्पर्शनानुगम, ८ नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, ९ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, १० भागाभागानुगम और ११ अल्पबहुत्वानुगम। इन अनुयोगद्वारोंके प्रारम्भमें भूमिकाके रूपमें बन्धकोंके सत्त्वकी प्ररूपणा की गई है और अन्तमें सभी अनुयोगद्वारोंकी चूलिकारूपसे अल्पबहुत्व-महादण्डक दिया गया है।

कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवोंको बन्धक कहते हैं। इन बन्धक जीवोंकी प्ररूपणा चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे की गई है कि किस गति आदि मार्गणाके कौन-कौनसे जीव कर्मका बन्ध करते हैं और कौन-कौनसे नहीं? जैसे गतिमार्गणाकी अपेक्षा सभी नारकी, तिर्यंच और देव कर्मोंके बन्धक हैं। किन्तु मनुष्य कर्मोंके बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं। इसका अभिप्राय यह है कि तेरहवें गुणस्थान तक योगका सद्भाव होनेसे कार्मणवर्गणाका आना होता है, उनका बन्ध भले ही एक समयकी स्थितिका क्यों न हो, पर आगमकी व्यवस्थासे वे भी बन्धक कहलाते हैं। किन्तु अयोगिकेवली भगवान् के योगका सर्वथा अभाव हो जाता है, इससे न उनके कार्मण-वर्गणाओंका आस्रव है और न बन्ध ही है, अतः वे अबन्धक हैं। इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके सभी जीव बन्धक हैं। पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं। किन्तु अनिन्द्रिय या अतीन्द्रिय सिद्ध जीव अबन्धक ही हैं। इस प्रकार सभी मार्गणाओंमें बन्धक-अबन्धक जीवोंका विचार किया गया है।

तत्पश्चात् एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वका विचार करते हुए बतलाया गया है किस मार्गणाके कौनसे गुण या पर्याय जीवके किन भावोंसे उत्पन्न होते हैं। इनमें सिद्धगति, अनिन्द्रियत्व, अकायत्व, अलेश्यत्व, अयोगत्व, क्षायिकसम्यक्त्व, केवलज्ञान और केवलदर्शन तो क्षायिकलब्धिसे उत्पन्न होते हैं। एकेन्द्रियादि पांचों जातियां, मन, वचन, काय ये तीनों योग, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चारों ज्ञान; तीनों अज्ञान परिहारविशुद्धिसंयम, चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शन, वेदकसम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व और संज्ञित्वभाव ये क्षायोपशमिकलब्धिसे उत्पन्न होते हैं। अपगतवेद, अकषाय, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातसंयम ये औपशमिक तथा क्षायिकलब्धिसे उत्पन्न होते हैं। सामायिक और छेदोपस्थापनासंयम औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे उत्पन्न होते हैं। औपशमिक सम्यग्दर्शन औपशमिक लब्धिसे उत्पन्न होता है। भव्यत्व,

अभव्यत्व और सासादनसम्यग्दृष्टित्व ये पारिणामिक भाव हैं। शेष गति आदि समस्त मार्गणान्तर्गत जीव पर्याय अपने अपने कर्मोंके उदयसे होते हैं। अनाहारकत्व कर्मोंके उदयसे भी होता है और क्षायिकलब्धिसे भी होता है।

एकजीवकी अपेक्षा कालका वर्णन करते हुए गति आदि प्रत्येक मार्गणामें जीवकी जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थितिका निरूपण किया गया है। जीवस्थानमें तो कालकी प्ररूपणा गुणस्थानोंमें एकजीव और नाना जीवोंकी अपेक्षासे की गई है, किन्तु यहांपर वह मार्गणाओंमें केवल एकजीवकी अपेक्षासे की गई हैं। इस कारण यहां कालकी प्ररूपणामें भवस्थितिके साथ कायस्थितिका भी निरूपण किया गया है। एक भवकी स्थितिको भवस्थिति कहते हैं और एक कायका परित्याग कियेबिना अनेक भव-विषयक स्थितिको कायस्थिति कहते हैं। जैसे किसी एक त्रस जीवकी वर्तमानभवकी आयु अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हैं, तो यह उसकी भवस्थिति है। और वह जीव त्रससे मर कर, त्रस, पुनः मर कर यदि लगातार त्रस होता हुआ चला जावे और स्थावर हो ही नहीं, तो वह उत्कर्षसे पूर्वकोटी वर्ष पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमकाल तक त्रस बना रह सकता है। यह उसकी कायस्थिति कहलायगी।

किस जीवकी कितनी भवस्थिति होती है और कितनी कायस्थिति होती है, यह सर्व कथन मनन करनेके योग्य है।

इस प्रकारसे इस खुद्दाबन्धमें शेष अनुयोगद्वारोंके द्वारा कर्मबन्ध करनेवाले जीवोंका प्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागा-भाग और अल्पबहुत्वका खूब विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। इसका अल्पबहुत्व तो अपूर्व ही है। जिसमें प्रत्येक मार्गणाका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व बतलाकर अन्तमें महादण्डकके रूपमें समुच्चयरूपसे भी सर्व मार्गणाओंके जीव-संख्याकी हीनाधिकताका प्रतिपादन किया गया है।

इस खुद्दाबन्धके अल्पबहुत्वानुगममें प्रायः प्रत्येक मार्गणाका जो अनेक प्रकारसे अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसका कारण अन्वेषणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि आ. भूतबलिने पहले अपनी गुरुपरम्परासे प्राप्त हुए अल्पबहुत्वका वर्णन किया है और तत्पश्चात् अन्य आचार्योंकी परम्परासे प्राप्त अल्पबहुत्वका भी उन्होंने प्रतिपादन करना समुचित समझा है।

इतने विस्तृत वर्णनवाले इस खण्डके स्वाध्याय करनेपर पाठकोंको यह शंका हो सकती है कि इतना विस्तृत होते हुए भी इसका नाम क्षुद्रबन्ध क्यों पड़ा? इसका समाधान यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के छठे खण्डमें आ. भूतबलिने बन्धका विचार बहुत विस्तारसे किया है, और इस लिए उसका नाम भी महाबन्ध पड़ा है, उसका परिमाण तीस हजार श्लोक जितना है। उसकी अपेक्षा यह दूसरा खण्ड क्षुद्र अर्थात् छोटा ही है, अतः इसका नाम खुद्दाबन्ध रखा गया है।

तीसरा खण्ड

३ बन्धस्वामित्वविचय

इस खण्डमें कर्मोंकी विभिन्न प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले स्वामियोंका विचय अर्थात् विचार किया गया है, अत एव बन्धस्वामित्वविचय यह नाम सार्थक है।

इस खण्डमें सर्वप्रथम गुणस्थानोंका आश्रय लेकर बतलाया गया है कि किस कर्मकी किस किस प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव किस गुणस्थान तक पाये जाते हैं और कहांपर उस प्रकृतिका बन्धविच्छेद हो जाता है। जैसे ज्ञानावरणकी पांचों प्रकृतियां और दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियां, यशः कीर्ति, उच्चगोत्र और अन्तरायकी पांचों प्रकृतियां इन सोलह प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीव पहिले गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें इन सबके बन्धका विच्छेद हो जाता है। अतः दशवें गुणस्थान तक के जीव इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धके स्वामी हैं। इससे ऊपरके गुणस्थानवर्ती जीव अबन्धक हैं। इस प्रकार बन्धने योग्य सभी प्रकृतियोंका वर्णन किया गया है कि अमुक अमुक गुणस्थान तक इन-इनका बन्ध होता है और इससे आगे नहीं होता है।

इस प्रकरणको संक्षेपमें दूसरे प्रकारसे यों कहा जा सकता है कि अभेदविवक्षासे आठों कर्मोंकी १४८ प्रकृतियोंमें १२० ही बन्ध योग्य हैं, शेष नहीं। इसका कारण यह है कि पांच बन्धन और पांच संघात ये दश प्रकृतियां अपने अपने शरीरके साथ अवश्य बन्धती हैं, अतः उनका अन्तर्भाव शरीरमें कर लेनेसे १० प्रकृतियां तो ये कम हो जाती हैं। इसी प्रकार पांच रूप, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श इन बीसको रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सामान्यकी विवक्षासे चार ही गिन लेते हैं, अतः १६ ये कम हो जाती हैं। दर्शनमोहनीयकी सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका बन्ध नहीं होता है, केवल उदय और सत्त्व ही होता है, अतः २ प्रकृतियां ये कम हो जाती हैं। इस प्रकार (५ + ५ + १६ + २ = २८) अट्ठाईस प्रकृतियोंको १४८ मेंसे घटा देनेपर शेष १२० प्रकृतियां ही बन्धके योग्य रहती हैं।

उनमेंसे १ मिथ्यात्व, २ हुण्डकसंस्थान, ३ नपुंसकवेद, ४ सृपाटिकासंहनन, ५ एकेन्द्रियजाति, ६ स्थावर, ७ आतप, ८ सूक्ष्म, ९ साधारण, १० अपर्याप्त, ११ द्वीन्द्रियजाति, १२ त्रीन्द्रियजाति, १३ चतुरिन्द्रियजाति, १४ नरकगति, १५ नरकगत्यानुपूर्वी, १६ नरकायु इन सोलह प्रकृतियोंका बन्ध प्रथम गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं। अतः इनके बन्धक-स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ही होते हैं, इससे ऊपरके जीव अबन्धक हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला ये तीन निद्रा, दुर्भग, दुःस्वर; अनादेय ये तीन, न्यग्रोधपरिमंडल आदि चार

संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु और उद्योत इन पच्चीस प्रकृतियोंके बन्धके स्वामी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि हैं । दूसरे गुणस्थानसे ऊपर के जीव इनके अबन्धक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन दशप्रकृतियोंके बन्धक मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि हैं । चौथे गुणस्थानसे ऊपरके जीव अबन्धक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंके बन्धक पहले गुणस्थानसे लेकर पांचवें गुणस्थान तक के जीव हैं । इससे ऊपरके जीव अबन्धक हैं ।

अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक इन छह प्रकृतियोंके बन्धक पहिलेसे लेकर सातवें गुणस्थान तक के जीव हैं । इससे ऊपरके जीव अबन्धक हैं ।

देवायुके बन्धक पहिलेसे लेकर सातवें गुणस्थान तक के जीव हैं, इससे ऊपर के जीव अबन्धक हैं ।

निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंके बन्धक पहिलेसे लेकर आठवें गुणस्थानके प्रथम भाग तक के जीव बन्धक हैं । इससे आगेके जीव अबन्धक हैं । तीर्थंकर प्रकृति, निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग, समचतुरस्र-संस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय; इन तीस प्रकृतियोंके बन्धक प्रथम गुणस्थानसे लेकर आठवें गुणस्थानके छठे भाग तक के जीव बन्धक होते हैं । इससे आगे के जीव अबन्धक होते हैं । हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियोंके बन्धक पहिलेसे लेकर आठवें गुणस्थानके अन्तिम समय तक के जीव होते हैं । इससे आगेके जीव अबन्धक होते हैं ।

पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इन पांच प्रकृतियोंके बन्धक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर नवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम भाग तक के जीव होते हैं । इससे आगेके जीव अबन्धक होते हैं ।

ज्ञानावरणकी पांचों प्रकृतियां, दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियां, अन्तरायकी पांचों प्रकृतियां, यशस्कीर्ति और उच्चगोत्र इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धक पहिलेसे लेकर दसवें गुणस्थान तक के संयत जीव होते हैं । इससे आगेके जीव अबन्धक होते हैं ।

सातावेदनीयके बन्धक मिथ्यादृष्टिसे लेकर तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीव होते हैं। अयोगिकेवली अबन्धक हैं।

जिस प्रकारसे गुणस्थानोंकी अपेक्षा यह बन्धके स्वामियोंका विचार किया है, इसी प्रकारसे मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा उनमें सम्भव गुणस्थानोंके आश्रयसे सभी कर्म प्रकृतियोंके बन्धक स्वामियोंका विचार बहुत विस्तारके साथ प्रस्तुत खण्डमें किया गया है।

महाकर्मप्रकृति प्राभृत

[वेदनाखण्ड]

बारहवें दृष्टिवाद अंकके पांच भेदोंमें जो पूर्वगत नामका चौथा भेद है, उसके भी चौदह भेद हैं। उनमें दूसरे पूर्वका नाम अग्रायणी पूर्व है। उसके वस्तुनामक चौदह अधिकारोंमेंसे पांचवें का नाम चयनलब्धि है। उसके बीस प्राभृतोंमेंसे चौथा प्राभृत महाकर्म प्रकृति प्राभृत है। उसके चौबीस अधिकार हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं - १ कृति, २ वेदना, ३ स्पर्श, ४ कर्म, ५ प्रकृति, ६ बन्धन, ७ निबन्धन, ८ प्रक्रम, ९ उपक्रम, १० उदय, ११ मोक्ष, १२ संक्रम, १३ लेश्या, १४ लेश्याकर्म, १५ लेश्यापरिणाम, १६ सातासात, १७ दीर्घ ह्रस्व, १८ भवधारणीय १९ पुद्गलात्त (पुद्गलात्म) २० निधत्त-अनिधत्त, २१ निकाचित-अनिकाचित, २२ कर्मस्थिति २३ पश्चिमस्कन्ध और २४ अल्पबहुत्व। इन अधिकारोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है--

१. कृति-अनुयोगद्वार– इसमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरोंकी संघातन, परिशातन और संघातन-परिशातनरूप कृतियोंकी, तथा भवके प्रथम, अप्रथम और चरम समयमें स्थित जीवोंकी कृति, नोकृति और अवक्तव्यरूप संख्याओंका वर्णन है।

२. वेदना-अनुयोगद्वार– इसमें वेदना संज्ञावाले कर्मपुद्गलोंकी वेदनानिक्षेप आदि सोलह अधिकारोंसे प्ररूपणा की गई है। इसी अधिकारका आ. भूतबलिने विस्तारके साथ वर्णन किया है। इसीसे इसका ' वेदनाखण्ड ' यह नाम प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है। आगे इसका कुछ विस्तारसे परिचय दिया जायगा।

३. स्पर्श-अनुयोगद्वार– इसमें स्पर्शगुणके सम्बन्धसे प्राप्त हुए स्पर्शनाम, स्पर्श निक्षेप आदि सोलह अधिकारोंके द्वारा ज्ञानावरणादिके भेदसे आठ भेदको प्राप्त हुए कर्म-पुद्गलोंका वर्णन है।

४ कर्म-अनुयोगद्वार– इसमें कर्मनिक्षेप आदि सोलह अधिकारोंके द्वारा ज्ञान, दर्शनादि गुणोंके आवरण आदि कार्योंके करनेमें समर्थ होनेसे ' कर्म ' इस संज्ञाको प्राप्त पुद्गलोंका विवेचन है।

५. प्रकृति-अनुयोगद्वार– इसमें प्रकृतिनिक्षेप आदि सोलह अधिकारोंके द्वारा कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंके स्वरूप और भेदादिका विस्तारसे वर्णन है।

६. बन्धन-अनुयोगद्वार– इसके बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्ध-विधान ये चार अधिकार हैं। उनमेंसे बन्ध-अधिकारमें जीव और कर्म-प्रदेशोंके सादि और अनादिरूप बन्धका वर्णन है। बन्धक अधिकारमें कर्म-बन्ध करनेवाले जीवोंका स्वामित्व आदि ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे विवेचन है। प्रस्तुत ग्रन्थका दूसरा खण्ड खुद्दाबन्ध इसी अधिकारसे सम्बन्ध है। बन्धनीय अधिकारमें कर्म-बन्धके योग्य पुद्गलवर्गणाओंका विस्तारसे विवेचन किया गया है, जिसके कारण वह प्रकरण वर्गणाखण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। इस खण्डका विशेष परिचय आगे दिया जा रहा है। बन्धविधान अधिकारके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ये चार भेद हैं। इनका विस्तारसे वर्णन महाबन्ध नामके छठे खण्डमें किया गया है।

७. निबन्धन-अनुयोगद्वार– इसमें मूलकर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंके निबन्धनका वर्णन है। जैसे चक्षुरिन्द्रिय अपने विषयभूत रूपमें निबद्ध है, श्रोत्रेन्द्रिय शब्दमें निबद्ध है उसी प्रकार ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म सर्व द्रव्योंमें निबद्ध है, सर्व पर्यायोंमें निबद्ध नहीं है, वेदनीयकर्म सुख-दुःखमें निबद्ध है, मोहनीयकर्म सम्यक्त्व-चारित्ररूप आत्म-स्वभावके घातनेमें निबद्ध है, आयुकर्म भवधारणमें निबद्ध है, नामकर्म पुद्गलविपाकनिबद्ध है, जीवविपाकनिबद्ध है, और क्षेत्र विपाक निबद्ध है, गोत्रकर्म ऊंच-नीच रूप जीवकी पर्यायसे निबद्ध है और अन्तराय कर्म दानादिके विघ्न करनेमें निबद्ध है। इसी प्रकार उत्तर प्रकृतियोंकेभी निबन्धनका विचार इस अनुयोगद्वारमें किया गया है।

८. प्रक्रम-अनुयोगद्वार– जो वर्गणास्कंध अभी कर्मरूपसे परिणत नहीं हैं, किन्तु आगे चलकर जो मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिरूपसे परिणमन करनेवाले हैं, तथा जो प्रकृति, स्थिति और अनुभागकी विशेषतासे वैशिष्टयको प्राप्त होते हैं ऐसे कर्मवर्गणास्कन्धोंके प्रदेशोंका इस अनुयोगद्वारमें वर्णन किया गया है।

९. उपक्रम-अनुयोगद्वार– इसमें बन्धनोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशामनोपक्रम और विपरिणामोपक्रमरूप चार प्रकारके उपक्रमका वर्णन किया गया है। बन्धनोपक्रममें कर्मबन्ध होनेके दूसरे समयसे लेकर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके बन्धका वर्णन है। उदीरणोपक्रममें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी उदीरणाका वर्णन है। उपशामनोपक्रममें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी प्रशस्तोपशामनाका कथन है। विपरिणामोपक्रममें प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेशोंकी देशनिर्जरा और सकलनिर्जराका कथन है।

१०. उदय-अनुयोगद्वार– इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके उदयका वर्णन है।

११. मोक्ष-अनुयोगद्वार– इसमें देशनिर्जरा और सकलनिर्जराके द्वारा परप्रकृति-संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण और स्थितिगलनसे प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका आत्मासे भिन्न होनेरूप मोक्षका वर्णन किया गया है।

१२. संक्रम-अनुयोगद्वार– इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके संक्रमणका वर्णन किया गया है।

१३. लेश्या-अनुयोगद्वार– इसमें कृष्ण, नील, कापोत पीत, पद्म और शुक्ल इन छह द्रव्यलेश्याओंका वर्णन है।

१४. लेश्याकर्म-अनुयोगद्वार– इसमें अन्तरंग छह भावलेश्याओंसे परिणत जीवोंके बाह्य कार्योंका प्रतिपादन किया गया है।

१५. लेश्यापरिणाम-अनुयोगद्वार– कौनसी लेश्या किस प्रकारकी वृद्धि और हानिसे परिणत होती है, इस बातका विवेचन इस अधिकारमें किया गया है।

१६. सातासात-अनुयोगद्वार– इसमें एकान्त सात, अनेकान्त सात, एकान्त असात और अनेकान्त असातका चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे वर्णन किया गया है। जो कर्म सातारूपसे बद्ध होकर यथावस्थित रहते हुए वेदा जाता है, वह एकान्त सातकर्म है और इससे अन्य अनेकान्त सातकर्म है। इसी प्रकार जो कर्म असातारूपसे बद्ध होकर यथावस्थित रहते हुए वेदा जाता है, वह एकान्त असातकर्म है और इससे अन्य अनेकान्त असातकर्म है।

१७. दीर्घ-ह्रस्व-अनुयोगद्वार– इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धका आश्रय लेकर उनकी दीर्घता और ह्रस्वताका विवेचन किया गया है। आठों मूल प्रकृतियोंके बन्ध होनेपर प्रकृतिदीर्घ और उससे कम प्रकृतियोंका बन्ध होनेपर नो प्रकृतिदीर्घ कहलाता है। इसी प्रकार एक प्रकृतिके बन्ध होनेपर प्रकृति-ह्रस्व और उससे अधिकका बन्ध होनेपर नो प्रकृति-ह्रस्व होता है। इसी प्रकार स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धकी मूल और उत्तर प्रकृतिगत दीर्घता और ह्रस्वता जानना चाहिए।

१८. भवधारणीय-अनुयोगद्वार– इसमें ओघभव, आदेशभव और भवग्रहणभवके भेदसे भवके तीन भेदोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है। आठ कर्म और आठ कर्मोंके निमित्तसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामको ओघभव कहते हैं। चार गतिनामकर्म और उनसे उत्पन्न हुए जीवके

परिणामको आदेशभव कहते हैं। मुज्यमान आयु गलकर नई आयुका उदय होनेपर प्रथम समयमें उत्पन्न हुए जीवके परिणामको या पूर्व शरीरका परित्यागकर नवीन शरीरके धारण करनेको भवग्रहण भव कहते हैं। यह भव आयुकर्मके द्वारा धारण किया जाता है, अतः आयुकर्म भवधारणीय कहलाता है।

१९. पुद्गलात्त या पुद्गलात्म-अनुयोगद्वार– इसमें बतलाया गया है कि जीव ग्रहणसे, परिणामसे, उपभोगसे, आहारसे, ममत्त्वसे और परिग्रहसे पुद्गलोंको आत्मसात् करता है। अर्थात् हस्त-पाद आदिसे ग्रहण किये गये दण्ड-छत्रादिरूप पुद्गल ग्रहणसे आत्तपुद्गल हैं। मिथ्यात्व आदि परिणामोंसे आत्मसात् किये गये पुद्गल परिणामसे आत्तपुद्गल हैं। उपभोगसे अपनाये गये गन्ध-ताम्बूल आदि पुद्गल उपभोगसे आत्तपुद्गल हैं। खान-पानके द्वारा अपनाये गये पुद्गल आहारसे आत्तपुद्गल हैं। अनुरागसे ग्रहण किये गये पुद्गल ममत्त्वसे आत्तपुद्गल हैं। और अपने अधीन किये गये पुद्गल परिग्रहसे आत्तपुद्गल हैं। इन सबका विस्तारसे वर्णन इस अनुयोगद्वारमें किया गया है। अथवा पुद्गलात्त का अर्थ पुद्गलात्मा भी होता है। कर्मवर्गणा-रूप पुद्गलके सम्बन्धसे कथंचित्, पुद्गलत्व या मूर्तत्त्वको प्राप्त हुए संसारी जीवोंका वर्णन इस अनुयोगद्वारमें किया गया है।

२०. निधत्त-अनिधत्त-अनुयोगद्वार– इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी निधत्त और अनिधत्तरूप अवस्थाका प्रतिपादन किया है। जिस प्रदेशाग्रका उत्कर्षण और अपकर्षण तो होता है, किन्तु उदीरणा और अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमण नहीं होता, उसकी निधत्तसंज्ञा है। इससे विपरीत लक्षणवाले प्रदेशाग्रोंकी अनिधत्तसंज्ञा है। इस विषयमें यह अर्थपद है कि दर्शन-मोहकी उपशामना या क्षपणा करते समय अनिवृत्तिकरणके कालमें केवल दर्शनमोहनीयकर्म अनिधत्त हो जाता है। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करते समय अनिवृत्तिकरणके कालमें अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क अनिधत्त हो जाता है। इसी प्रकार चारित्रमोहकी उपशामना और क्षपणा करते समय अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सब कर्म अनिधत्त हो जाते हैं। ऊपर निर्दिष्ट अपने-अपने स्थानके पूर्व दर्शनमोह, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और शेष सब कर्म निधत्त और अनिधत्त दोनों प्रकारके होते हैं।

२१. निकाचित-अनिकाचित-अनुयोगद्वार– इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी निकाचित और अनिकाचित अवस्थाओंका वर्णन किया गया है। जिस प्रदेशाग्रका उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदीरणा न की जा सके उसे निकाचित कहते हैं और इससे विपरीत स्वभाववाले प्रदेशाग्रोंको अनिकाचित कहते हैं। इस विषयमें यह अर्थपद है कि अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेपर सब कर्म अनिकाचित हो जाते हैं। किन्तु उसके पहले वे निकाचित और अनिकाचित दोनों प्रकारके होते हैं।

२२. कर्मस्थिति-अनुयोगद्वार– इसमें सर्व कर्मोंकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका तथा उत्कर्षण और अपकर्षणसे उत्पन्न हुई कर्मस्थितिका वर्णन किया गया है।

२३. पश्चिमस्कन्ध-अनुयोगद्वार– इसमें पश्चिम अर्थात् चरमभवमें केवलि-समुद्घातके समय सत्त्वरूपसे अवस्थित कर्मस्कन्धोंके स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, योगनिरोध और कर्मक्षपणका वर्णन किया गया है।

२४. अल्पबहुत्व-अनुयोगद्वार– इसमें पूर्वोक्त सर्व अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे जीवोंके अल्पबहुत्व का वर्णन किया गया है।

४ वेदनाखण्ड

ऊपर महाकर्मप्रकृति प्राभृतके जिन २४ अनुयोगद्वारोंका परिचय दिया गया है, उनमेंसे भूतबलि आचार्यने आदिके केवल ६ अनुयोगद्वारोंका ही वर्णन किया है, शेषका नहीं। इन छह अनुयोगद्वारोंमें वेदना नामक दूसरे अनुयोगका विस्तारसे वर्णन करनेके कारण यह अनुयोगद्वार एक स्वतन्त्र खण्ड के नामसे प्रसिद्ध हुआ है। यतः कृति अनुयोगद्वार इससे पूर्वमें वर्णित है, अतः वह भी वेदनाखण्डके ही अन्तर्गत मान लिया गया है।

इस वेदना अधिकारका वर्णन जिन १६ अनुयोगद्वारोंसे किया गया है, उनके नाम इस प्रकार हैं– १ वेदनानिक्षेप, २ वेदनानयविभाषणता, ३ वेदनानामविधान, ४ वेदनाद्रव्यविधान ५ वेदनाक्षेत्रविधान, ६ वेदना-कालविधान, ७ वेदना-भावविधान, ८ वेदनाप्रत्ययविधान, ९ वेदना-स्वामित्वविधान, १० वेदनावेदनविधान, ११ वेदनागतिविधान, १२ वेदना-अन्तरविधान, १३ वेदना-सन्निकर्षविधान, १४ वेदना-परिमाणविधान, १५ वेदना-भागाभागविधान और १६ वेदना-अल्पबहुत्व।

१. वेदनानिक्षेप-अनुयोगद्वारमें वेदनाका निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप चार प्रकारसे करके बतलाया गया है कि प्रकृतमें नो आगमकर्मवेदनासे प्रयोजन है। २. वेदना-नयविभाषणता-अनुयोगद्वारमें विभिन्न नयोंके आश्रयसे वेदनाका वर्णन किया गया है। यथा– द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा बन्ध, उदय और सत्त्वरूप वेदना अभीष्ट है! ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा उदयको प्राप्त कर्मद्रव्यवेदना अभीष्ट है, इत्यादि। ३. वेदनानामविधानमें बन्ध, उदय और सत्त्वरूपसे जीवमें स्थित कर्मस्कन्धमें किस नयका कहां कैसा प्रयोग होता है, इस बातका वर्णन किया गया है। ४. वेदनाद्रव्यविधानमें बतलाया गया है कि वेदनाद्रव्य एक प्रकारका नहीं है, किन्तु अनेक प्रकारका है। तथा वेदनारूपसे परिणत पुद्गलस्कन्ध संख्यात या असंख्यात परमाणुओंके पुंजरूप नहीं हैं, किन्तु अभव्योंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण अनन्त परमाणुओंके समुदायरूप हैं। ५. वेदनाक्षेत्रविधानमें बतलाया गया है कि वेदनाद्रव्यकी अवगाहनाका क्षेत्र

लोकाकाशके संख्यात प्रदेशप्रमाण नहीं है, किन्तु असंख्यात प्रदेशप्रमाण है, वह अंगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर घनलोक तक सम्भव है। ६. वेदनाकालविधानमें बतलाया गया है कि वेदनाद्रव्यस्कन्ध अपने वेदनास्वभावके साथ जघन्य और उत्कृष्ट रूपसे इतने काल तक जीवके साथ रहते हैं। ७. वेदनाभावविधानमें बतलाया गया है कि वेदनासम्बन्धी भावविकल्प संख्यात, असंख्यात या अनन्त नहीं है, किन्तु अनन्तानन्त हैं। ८. वेदनाप्रत्ययविधानमें वेदनाके कारणोंका वर्णन किया गया है। ९. वेदनास्वामित्वविधानमें वेदनाके स्वामियोंका विधान किया गया है। १०. वेदनावेदनविधानमें बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्तरूप प्रकृतियोंके भेदसे जो वेदनाके भेद प्राप्त होते हैं, उनका नयोंके आश्रयसे ज्ञान कराया गया है। ११. वेदनागतिविधानमें वेदनाकी स्थित, अस्थित और स्थितास्थित गति का वर्णन किया गया है। १२. वेदना-अन्तरविधानमें अनन्तरबन्ध, परम्पराबन्ध और तदुभयबन्धरूप समयप्रबद्धोंका निरूपण किया गया है। १३. वेदनासन्निकर्षविधानमें द्रव्यवेदना, क्षेत्रवेदना, कालवेदना और भाववेदनाके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य पदोंमेंसे एक एक को विवक्षित कर शेष पदोंका उसके साथ सन्निकर्ष वर्णन किया गया है। १४. वेदनापरिमाणविधानमें काल और क्षेत्रके भेदसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणका वर्णन किया गया है। १५. वेदनाभागाभागविधानमें प्रकृत्यर्थता, स्थित्यर्थता (समय-प्रबद्धार्थता) और क्षेत्रप्रत्याश्रयकी अपेक्षा उत्पन्न हुई प्रकृतियां सब प्रकृतियोंके कितनवें भागप्रमाण हैं, यह बतलाया गया है। १६. वेदना-अल्पबहुत्व-अनुयोगद्वारमें इन्हीं तीन प्रकारकी प्रकृतियोंका पारस्परिक अल्पबहुत्व बतलाया गया है। इस प्रकार सोलह अनुयोगद्वारोंके विषयका यह संक्षिप्त परिचय है। इनमेंसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव वेदनाओंके स्वामियोंका परिज्ञान अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है, अतः उसका कुछ विवेचन किया जाता है।

वेदना द्रव्यस्वामित्व

आयुकर्मको छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि सात कर्मोंकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनाका स्वामी गुणितकर्मांशिक जीव बतलाया गया है। जिस जीवके विवक्षित कर्मद्रव्यका संचय उत्तरोत्तर गुणित-क्रमसे बढ़ता जावे, उसे गुणितकर्मांशिक कहते हैं। इसका खुलासा यह है कि जो जीव बादर पृथ्वीकायिकोंमें साधिक दो हजार सागरोपमोंसे हीन कर्मस्थिति (सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम) प्रमाण काल तक रहा है, उनमें परिभ्रमण करता हुआ जो पर्याप्तोंमें बहुत बार और अपर्याप्तोंमें थोड़े बार उत्पन्न होता है (भवावास)। पर्याप्तोंमें उत्पन्न होता हुआ दीर्घ आयुवालोंमें, तथा अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होता हुआ अल्प आयुवालोंमें ही जो उत्पन्न होता है (अद्धावास)। दीर्घ आयुवालोंमें उत्पन्न होकरके जो सर्व लघुकालमें पर्याप्तियोंको पूर्ण करता है और जब जब वह आयुको बांधता है, तब तब तत्प्रायोग्य जघन्य योगके द्वारा ही बांधता है (आयु आवास)। जो उपरिम स्थितियोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको और अधस्तन स्थितियोंके निषेकके जघन्य पदको करता

है (उत्कर्षणापकर्षण आवास)। जो बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है (योगावास)। जो बहुत बार मन्द संक्लेश परिणामोंको प्राप्त होता है (संक्लेशावास)। इस प्रकार परिभ्रमण करनेके पश्चात् जो बादर त्रस पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है। उनमें परिभ्रमण करते हुए जो पूर्वोक्त भवावास, अद्धावास, आयु-आवास, उत्कर्षणापकर्षणावास, योगावास और संक्लेशावासको बहुत बार प्राप्त होता है। इस प्रकारसे परिभ्रमण करता हुआ जो अन्तिम भवग्रहणमें सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें उत्पन्न होकरके प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होते हुए जो उत्कृष्ट योगसे आहारको ग्रहण करता है, उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिंगत होता है, सर्व लघु अन्तर्मुहूर्तकालमें जो सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता है। पश्चात् तेतीस सागरोपम काल तक वहां रहते हुए बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको, तथा बार बार अतिसंक्लेश परिणामोंको प्राप्त होता है। इस प्रकारसे आयु व्यतीत करते हुए जीवनके अल्प अवशिष्ट रह जानेपर जो योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरमें जो आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहता है, जो द्विचरम और त्रिचरम समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होता है, तथा चरम और द्विचरम समयमें जो उत्कृष्ट योगको प्राप्त होता है, ऐसे उस नारक भवके अन्तिम समयमें स्थित जीवको गुणितकर्मांशिक कहते हैं। उसके ज्ञानावरणादि सात कर्मोंकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदना होती है। कहनेका अभिप्राय यह है कि उक्त जीवके उतने काल तक कर्मरूपद्रव्यका संचय उत्तरोत्तर क्रमसे बढ़ता ही जाता है और अन्तिम समयमें उसके ज्ञानावरणादि सात कर्मोंका वेदनाका द्रव्य सर्वोत्कृष्ट पाया जाता है।

आयुकर्मकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि पूर्वकोटी वर्षप्रमाण आयुका धारक जो जीव जलचर जीवोंमें पूर्वकोटीप्रमाण आयुको दीर्घ आयुबन्धक काल, तत्प्रायोग्य संक्लेश और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगकेद्वारा बान्धता है, योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल रहा है, अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग रहा है, तत्पश्चात् क्रमसे मरणकर पूर्वकोटीकी आयुवाले जलचरजीवोंमें उत्पन्न हुआ है, वहांपर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है, दीर्घ आयुबन्धककालमें तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगके द्वारा पूर्वकोटिप्रमाण आयुको पुनः दूसरी बार बांधता है, योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, अन्तिम गुणहानिस्थानान्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहता है, जो तथा बहुत बहुत बार सातावेदनीयके बन्ध-योग्य कालसे संयुक्त हुआ है, ऐसे जीवके अनन्तर समयमें जब परभव-सम्बन्धी आयुके बन्धकी समाप्ति होती है, उस समय उसके आयुकर्मकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनासे होती है। सभी कर्मोंकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनासे भिन्न अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना जाननी चाहिए।

ज्ञानावरणीयकर्मकी जघन्य द्रव्यवेदनाका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव बतलाया गया है। जिस जीवके विवक्षित कर्मद्रव्यका संचय उत्तरोत्तर क्षय होते हुए सबसे कम रह जावे, उसे

क्षपितकर्मांशिक कहते हैं । इसका खुलासा यह है कि जो जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन कर्मस्थितिप्रमाणकाल तक सूक्ष्मनिगोदिया जीवोंमें रहा है, उसमें परिभ्रमण करते हुए जो अपर्याप्तोंमें बहुत बार और पर्याप्तोंमें थोड़े ही बार उत्पन्न हुआ है, जिसका अपर्याप्तकाल बहुत और पर्याप्तकाल थोड़ा रहा है, वह जब जब आयुको बांधता है, तब तब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगसे बांधता है, उपरिम स्थितियोंके निषेकके जघन्य पदको और अधस्तन स्थितियोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको करता है, बार बार जघन्य योगस्थानको प्राप्त होता है, बार बार मन्द संक्लेशरूप परिणामोंसे परिणत होता है । इस प्रकारसे निगोदिया जीवोंमें परिभ्रमण करके पश्चात् जो बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तोंमें उत्पन्न होकर वहां सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें मरणको प्राप्त होकर जो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है, वहांपर जितने गर्भसे निकलनेके पश्चात् आठ वर्षका होकर संयमको धारण किया है, कुछ कम पूर्वकोटीवर्षतक संयमका पालन करके जीवनके स्वल्प शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है, जो मिथ्यात्वसम्बधी सबसे कम असंयमकालमें रहा है, तत्पश्चात् मिथ्यात्वके साथ मरणको प्राप्त होकर जो दश हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ है, वहांपर जो सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है, पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें जो सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है। इस प्रकार उस देवपर्यायमें कुछ कम दश हजार वर्ष तक सम्यक्त्वका परिपालन कर जीवनके स्वल्प शेष रह जानेपर पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है और मिथ्यात्वके साथ मरणकर जो पुनः बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तोंमें उत्पन्न हुआ है, वहांपर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त कालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है, तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें मृत्युको प्राप्त होकर जो सूक्ष्मनिगोदिया पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकघातोंके द्वारा पल्योपमके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालमें कर्मको हतसमुत्पत्तिक करके जो पुनः बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तोंमें उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार नाना भवग्रहणोंमें आठ संयमकाण्डकोंको पालनकर, चार बार कषायोंको उपशमाकर, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण संयमासंयमकाण्डका और इतने ही सम्यक्त्वकाण्डकोंका परिपालन करके उपर्युक्त प्रकारसे परिभ्रमण करता हुआ जो पुनरपि पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है, यहां सर्व लघु कालमें जन्म लेकर आठ वर्षका हुआ है, पश्चात् संयमको प्राप्त होकर और कुछ कम पूर्वकोटि काल तक उसका परिपालन करके जीवनके स्वल्प शेष रह जानेपर दर्शनमोह और चारित्रमोहकी क्षपणा करता हुआ छद्मस्थ अवस्थाके अर्थात् बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयको प्राप्त होता है, उस जीवके उस अन्तिम समयमें ज्ञानावरणीयकर्मकी सर्व जघन्य द्रव्यवेदना होती है । इससे भिन्न जीवोंके अजघन्यवेदना जाननी चाहिए ।

जो जीव ज्ञानावरणीयकर्मकी जघन्य द्रव्यवेदनाका स्वामी है, वही दर्शनावरणीय और अन्तरायकर्मकी भी जघन्य द्रव्यवेदनाका स्वामी जानना चाहिए । मोहकर्मकी जघन्य द्रव्यवेदना

उक्त प्रकारके क्षपितकर्मांशिक जीवके दशवें गुणस्थानवर्ती क्षपकसंयतके अन्तिम समयमें जाननी चाहिए।

वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी जघन्य द्रव्यवेदनाका स्वामी कौन है, इस पृच्छाके उत्तरमें बतलाया गया है, कि उक्त क्षपितकर्मांशिक जीव उपर्युक्त प्रकारसे आकर और क्षपकश्रेणीपर चढ़कर चार घातिया कर्मोंका क्षय करके केवली बनकर देशोन पूर्वकोटी काल तक धर्मोपदेश देते हुए विहार कर जीवनके स्वल्प शेष रह जानेपर योग-निरोधादि सर्व क्रियाओंको करता हुआ चरमसमयवर्ती भव्यसिद्धिक होता है, ऐसे अर्थात् अन्तिमसमयवर्ती अयोगिकेवलीके उक्त तीनों कर्मोंकी सर्व जघन्य द्रव्यवेदना होती है। उनसे भिन्न जीवोंके अजघन्य द्रव्यवेदना जानना चाहिए।

आयुकर्मकी जघन्य द्रव्यवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि जो पूर्वकोटीकी आयुवाला जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें अल्प आयुबन्धक कालके द्वारा आयुको बांधता है, उसे तत्प्रायोग्य जघन्य योगसे बांधता है, योगयवमध्यके नीचे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, प्रथम जीवगुणहानिस्थानान्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहता है, पुनः क्रमसे मरणकर सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। उस प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवने जघन्य उपपादयोगके द्वारा आहारको ग्रहण किया, जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ, सर्वदीर्घ अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, वहांपर तेतीस सागरोपम-प्रमाण भवस्थितिका पालन करता हुआ बहुत बहुत वार असातावेदनीयके बन्ध योग्य कालसे युक्त हुआ, जीवनके स्वल्प शेष रह जानेपर अनन्तर समयमें परभवकी आयुको बांधनेवाले उस नारकीके आयुकर्मकी जघन्य द्रव्यवेदना होती है। इससे भिन्न जीवोंके आयुकर्मकी अजघन्य द्रव्यवेदना जाननी चाहिए।

वेदनाक्षेत्र स्वामित्व—

क्षेत्रकी अपेक्षा ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंकी उत्कृष्ट वेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि जो एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा और अढ़ाई सौ योजन मोटा (ऊंचा) महामच्छ स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहिरी तटपर स्थित है, वहां वेदनासमुद्घातको करके जो तनुवातवलयसे संलग्न है, पुनः उसी समय मारणान्तिकसमुद्घातको करते हुए तीन विग्रहकाण्डकोंको करके अनन्तर समयमें नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होनेवाला है, उसके चारों घातिया कर्मोंकी उत्कृष्ट क्षेत्रवेदना होती है। इस उत्कृष्ट क्षेत्रवेदनासे भिन्न अनुत्कृष्ट क्षेत्रवेदना जानना चाहिए।

चारों अघातिया कर्मोंकी उत्कृष्ट क्षेत्रवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त हुए केवली भगवानके चारों अघातिया कर्मोंकी उत्कृष्ट क्षेत्रवेदना होती है।

आठों कर्मोंकी जघन्य क्षेत्रवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि जो ऋजुगतिसे उत्पन्न होकर तद्भवस्थ होनेके तृतीय समयमें वर्तमान और तृतीय समयवर्ती आहारक है, जघन्य योगवाला है, तथा सर्व जघन्य अवगाहनासे युक्त है, ऐसे सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवके आठों कर्मोंकी सर्व जघन्य क्षेत्रवेदना होती है। इस जघन्य क्षेत्रवेदनासे भिन्न अजघन्य क्षेत्रवेदना जाननी चाहिए।

वेदनाकाल स्वामित्व

आयुकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट कालवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकारोपयोगसे उपयुक्त और श्रुतोपयोगसे संयुक्त है, जागृत है, तथा उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य संक्लेश परिणामोंसे, अथवा ईषन्मध्यमसंक्लेश परिणामोंसे युक्त है, उसके सातों कर्मोंकी उत्कृष्ट कालवेदना होती है। उपर्युक्त विशेषण– विशिष्ट जीव कर्मभूमिया ही होना चाहिए, भोगभूमिया नहीं; क्योंकि भोगभूमिया जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिवाला बन्ध सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त चाहे वह अकर्मभूमिज देव-नारकी हो, या कर्मभूमि-प्रतिभागज अर्थात् स्वयम्प्रभपर्वतके बाह्य भागमें उत्पन्न तिर्यंच हो। वह चाहे संख्यातवर्षकी आयुवाला हो, और चाहे असंख्यातवर्षकी आयुवाला हो, चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिका हो, तिर्यंचोंमेंसे जलचर, थलचर या नभचर कोई भी हो सकता है। उपर्युक्त उत्कृष्ट कालवेदनासे भिन्न अनुत्कृष्ट कालवेदना जाननी चाहिए।

आयुकर्मकी उत्कृष्ट कालवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि उत्कृष्ट देवायुके बन्धक सम्यग्दृष्टि संयत मनुष्य ही होते हैं। उत्कृष्ट नरकायुके बन्धक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त कर्मभूमिया मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य दोनों होते हैं। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट कालवेदना जाननी चाहिए।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी जघन्य कालवेदना बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयवर्ती क्षीण-कषाय-वीतराग छद्मस्थसंयतके होती है। मोहनीयकर्मकी जघन्य कालवेदना दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय संयत क्षपक जीवके होती है। चारों अघातिया कर्मोंकी जघन्य कालवेदना अयोगिकेवलीके चौदहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है। अपनी अपनी जघन्य कालवेदनाओंसे भिन्न उनकी अजघन्य कालवेदना जाननी चाहिए।

वेदना भावस्वामित्व

ज्ञानावरणादि चारों घातिया कर्मोंकी उत्कृष्ट भाववेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिका कोई भी ऐसा जीव हो जो संज्ञी हो,

पंचेन्द्रिय हो, मिथ्यादृष्टि हो, सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, साकारोपयोगसे उपयुक्त हो, जागृत हो और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर जिसने उक्त सभी कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध बान्धा है और इसके उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व विद्यमान है, ऐसा जीव अनुभागकाण्डक घात किये विना ही अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर मरणकर यदि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, या पंचेन्द्रिय संज्ञी या असंज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुआ है; भले ही वह बादर हो, या सूक्ष्म हो; पर्याप्त हो, या अपर्याप्त हो; चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें जन्म लिया हो; वह उक्त चारों घातिया कर्मोंकी उत्कृष्ट कालवेदनाका स्वामी है। इस उत्कृष्ट भाववेदनासे भिन्न अनुत्कृष्ट भाववेदना जाननी चाहिए।

वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट भाववेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि जिस सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयत क्षपकने दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें उक्त तीनों अघातिया कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है, ऐसे उस अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्म साम्परायसंयत क्षपकके, तथा उस उत्कृष्ट अनुभागसत्त्वकी सत्तावाले क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट भाववेदना जाननी चाहिए। उक्त कर्मोंकी इस उत्कृष्ट भाववेदनासे भिन्न शेष वेदनाओंके धारक जीवोंको अनुत्कृष्ट भाववेदनाका स्वामी जानना चाहिए।

आयुकर्मकी उत्कृष्ट भाववेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि साकारोपयोगसे उपयुक्त, जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे युक्त जिस अप्रमत्तसंयतने देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है, उसके, तथा उस उत्कृष्ट अनुभागसत्त्वके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले और उतरनेवाले चारों उपशामक संयतोंके, प्रमत्तसंयतके, तथा मरणकर अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले देवके आयुकर्मकी उत्कृष्ट भाववेदना होती है। इससे भिन्न जीवोंके आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट भाववेदना जाननी चाहिए।

जघन्य भाववेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थके बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय-कर्मकी जघन्य भाववेदना होती है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत क्षपकके दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहकर्मकी जघन्य भाववेदना होती है। असातावेदनीयका वेदन करनेवाले चरमसमयवर्ती अयोगिकेवलीके वेदनीयकी जघन्यभाववेदना होती है। परिवर्तमान मध्यमपरिणामवाले जिस मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिवाले जीवने अपर्याप्ततिर्यंचसम्बन्धी आयुका जघन्य अनुभागबन्ध किया है, उसके और जिसके उसका सत्त्व है ऐसे जीवके आयुकर्मकी जघन्य भाववेदना होती है। जिस हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवने परिवर्तमान मध्यम परिणामोंके द्वारा नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध किया है उसके और जिसके उसका सत्त्व है, ऐसे जीवके

नामकर्मकी जघन्य भाववेदना होती है। सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकारोपयोगसे उपयुक्त, जागृत, सर्वविशुद्ध एवं हतसमुत्पत्तिककर्मवाले जिस किसी बादर तैजस्कायिक या वायुकायिक जीवने उच्च गोत्रकी उद्वेलना करके नीचगोत्रका जघन्य अनुभाग बन्ध किया है, उसके और जिसके उसकी सत्ता पाई जा रही है, ऐसे जीवके गोत्रकर्मकी जघन्य भाववेदना होती है। उपर्युक्त जघन्य भाववेदनाओंसे भिन्न वेदनाओंको अजघन्य भाववेदनाएं जाननी चाहिए।

इसके अतिरिक्त इसी वेदना अनुयोगद्वारके अन्तमें अनुक्त विशेष अर्थके व्याख्यान करनेके लिए तीन चूलिकाएं भी दी गई हैं। प्रथम चूलिकामें गुणश्रेणीनिर्जराके ११ स्थानोंका तथा उनमें लगनेवाले कालका भी अल्पबहुत्वक्रमसे वर्णन किया गया है। द्वितीय चूलिकामें बारह अनुयोगद्वारोंसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। तृतीय चूलिकामें आठ अनुयोगद्वारोंसे उक्त अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंमें रहनेवाले जीवोंके प्रमाण आदिका विस्तारसे वर्णन किया गया है, जिसका परिज्ञान पाठक मूल ग्रन्थका स्वाध्याय करके ही प्राप्त कर सकेंगे।

५ वर्गणाखण्ड

यद्यपि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके २४ अनुयोगद्वारोंमें स्पर्श, कर्म और प्रकृति ये तीन अनुयोगद्वार स्वतंत्र हैं, और भूतबलि आचार्यने भी इनका स्वतंत्ररूपसे ही वर्णन किया है, तथापि छठे बन्धन-अनुयोगद्वारके अन्तर्गत बन्धनीयका आलम्बन लेकर पुद्गल-वर्गणाओंका विस्तारसे वर्णन किया गया है और आगेके अनुयोगद्वारोंका वर्णन आ० भूतबलिने नहीं किया है, इस लिए स्पर्श-अनुयोगद्वारसे लेकर बन्धन अनुयोगद्वार तकका वर्णित अंश 'वर्गणाखण्ड' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

स्पर्श-अनुयोगद्वारका संक्षिप्त परिचय पहले दे आये हैं। यह स्पर्श तेरह प्रकारका है— १ नामस्पर्श, २ स्थापनास्पर्श, ३ द्रव्यस्पर्श, ४ एकक्षेत्रस्पर्श, ५ अनन्तरक्षेत्रस्पर्श, ६ देशस्पर्श, ७ त्वक्स्पर्श, ८ सर्वस्पर्श, ९ स्पर्शस्पर्श, १० कर्मस्पर्श, ११ बन्धस्पर्श, १२ भव्यस्पर्श और १३ भावस्पर्श। इनका स्वरूप इस अनुयोगद्वारमें यथास्थान वर्णन किया गया है। प्रकृतमें कर्मस्पर्श ही विवक्षित है; क्योंकि यहां कर्मोंके बन्धका प्रकरण है।

कर्म-अनुयोगद्वारका भी संक्षिप्त परिचय पहले दिया जा चुका है। कर्म दश प्रकारका है— १ नामकर्म, २ स्थापनाकर्म, ३ द्रव्यकर्म, ४ प्रयोगकर्म, ५ समवदानकर्म, ६ अधःकर्म, ७ ईर्यापथकर्म, ८ तपःकर्म, ९ क्रियाकर्म और १० भावकर्म। इन सबका स्वरूप इस अनुयोगद्वारमें वर्णन करके बतलाया गया है कि प्रकृतमें समवदानकर्म विवक्षित है। मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगके निमित्तसे कर्मोंके ग्रहण करनेको समवदानकर्म कहते हैं।

प्रकृतिअनुयोगद्वारमें कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। प्रकरण वश पांचो ज्ञानोंका भी विस्तृत विवेचन किया गया है, जो परवर्ती ग्रन्थकारोंके लिए आधारभूत सिद्ध हुआ है।

महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके छठे अनुयोगद्वारका नाम 'बन्धन' है। बन्धनके चार भेद हैं– १ बन्ध, २ बन्धक, ३ बन्धनीय और ४ बन्धविधान। इनमेंसे बन्धकका वर्णन खुद्दाबन्ध नामक दूसरे खण्डमें और बन्धविधानका वर्णन महाबन्ध नामके छठे खण्डमें किया गया है। शेष रहे दो भेदोंका– बन्ध और बन्धनीयका विवेचन इस अनुयोगद्वारमें किया गया है। उसमें भी यतः बन्धनीयके प्रसंगसे वर्गणाओंका विशेष ऊहापोह किया गया है, अतः स्पर्श-अनुयोगद्वारसे लेकर यहां तकका पूरा प्रकरण 'वर्गणाखण्ड' कहा जाता है।

१ बन्ध

बन्धन अनुयोगद्वारके चार भेदोंमें पहला भेद बन्ध है। निक्षेपकी दृष्टिसे इसके चार भेद हैं– नामबन्ध, स्थापनाबन्ध, द्रव्यबन्ध और भावबन्ध। जीव, अजीव आदि जिस किसी भी पदार्थका 'बन्ध' ऐसा नाम रखना नामबन्ध है। तदाकार और अतदाकार पदार्थोंमें 'यह बन्ध है' ऐसी स्थापना करना स्थापनाबन्ध है। द्रव्यबन्धके दो भेद हैं– आगमद्रव्यबन्ध और नोआगम-द्रव्यबन्ध। बन्धविषयक स्थित, जित आदि नौ प्रकारके आगममें वाचना आदिरूप जो अनुपयुक्त भाव होता है, उसे आगमद्रव्यबन्ध कहते हैं। नो आगमद्रव्यबन्ध दो प्रकारका है– प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध। विस्रसाबन्धके दो भेद हैं– सादिविस्रसाबन्ध और अनादिविस्रसाबन्ध। धर्मास्तिकाय आदि तीन द्रव्योंका अपने अपने देशों और प्रदेशोंके साथ जो अनादिकालीन बन्ध है, वह अनादि विस्रसाबन्ध कहलाता है। स्निग्ध और रूक्षगुणयुक्त पुद्गलोंका जो बन्ध होता है, वह सादिविस्रसाबन्ध कहलाता है। सादिविस्रसाबन्धकी विशेष जानकारीके लिए मूल ग्रन्थका विशेषरूपसे स्वाध्याय करना अपेक्षित है। नाना प्रकारके स्कन्ध इसी सादिविस्रसाबन्धके कारण बनते हैं। प्रयोगबन्ध दो प्रकारका है– कर्मबन्ध और नोकर्मबन्ध। नोकर्मबन्धके पांच भेद हैं– आलापनबन्ध, अल्लीपनबन्ध, संश्लेषबन्ध, शरीरबन्ध और शरीरिबन्ध। काष्ठ आदि पृथग्भूत द्रव्योंको रस्सी आदिसे बांधना आलापनबन्ध है। लेपविशेषके कारण विविध द्रव्योंके पारस्परिक बन्धको अल्लीपनबन्ध कहते हैं। लाख, गोंद आदिसे दो पदार्थोंका परस्पर चिपकना संश्लेषबन्ध है। पांच शरीरोंका यथायोग्य बन्धको प्राप्त होना शरीर बन्ध है। शरीरि बन्धके दो भेद हैं– सादिशरीरि बन्ध और अनादि शरीरिबन्ध। जीवका औदारिक आदि शरीरोंके साथ जो बन्ध है, वह सादिशरीरि बन्ध है। जीवके आठ मध्यप्रदेशोंका परस्पर जो बन्ध है, वह अनादि शरीरिबन्ध है। इसी प्रकार शरीरधारी प्राणीका अनादिकालसे जो कर्म और नोकर्मके साथ बन्ध हो रहा है, उसे भी अनादि शरीरिबन्ध समझना चाहिए।

भावबन्धके दो भेद हैं– आगमभावबन्ध और नोआगमभावबन्ध। बन्धशास्त्रविषय स्थित, जित आदि नौ प्रकारके आगममें वाचना, पृच्छना आदिरूप जो उपयुक्त भाव होता है, उसे आगमभावबन्ध कहते हैं। नो आगमभावबन्ध दो प्रकारका है– जीवभावबन्ध और अजीवभावबन्ध। जीवभावबन्धके तीन भेद हैं– विपाकज जीवभावबन्ध, अविपाकज जीवभावबन्ध और तदुभयरूप जीवभावबन्ध। जीवविपाकी अपने अपने कर्मके उदयसे देवभाव, मनुष्यभाव, तिर्यग्भाव, नारकभाव, स्त्रीवेदभाव, पुरुषवेदभाव, क्रोधभाव आदिरूप जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे सब विपाकज जीवभावबन्ध हैं। अविपाकज जीवभावबन्धके दो भेद हैं– औपशमिक और क्षायिक। उपशान्त क्रोध, उपशान्त मान आदि भाव औपशमिक अविपाकज जीवभावबन्ध कहलाते हैं। क्षीणमोह, क्षीणमान आदि क्षायिक अविपाकज जीवभावबन्ध कहलाते हैं। एकेन्द्रियलब्धि आदि क्षायोपशमिकभाव तदुभयरूप जीवभावबन्ध कहलाते हैं। अजीवभावबन्ध भी विपाकज, अविपाकज और तदुभयके भेदसे तीन प्रकारका है। पुद्गलविपाकी कर्मोंके उदयसे शरीरमें जो वर्णादि उत्पन्न होते हैं, वे विपाकज अजीवभावबन्ध कहलाते हैं। पुद्गलके विविध स्कन्धोंमें जो स्वाभाविक वर्णादि होते हैं, वे अविपाकज अजीवभावबन्ध कहलाते हैं। दोनों प्रकारके मिले हुए वर्णादिक तदुभयरूप अजीव-भावबन्ध कहलाते हैं।

बन्धके उपर्युक्त भेदोंमेंसे यहांपर नोआगमद्रव्यबन्धके कर्म और नोकर्मबन्धसे प्रयोजन है।

२ बन्धक

कर्मके बन्ध करनेवाले जीवको बन्धक कहते हैं। बन्धक जीवोंकी प्ररूपणा आ० भूतबलिने खुद्दाबन्ध नामके दूसरे खण्डमें विस्तारसे की गई है, वह सब इसी अनुयोगद्वारके अन्तर्गत जानना चाहिए।

३ बन्धनीय

जीवसे पृथग्भूत किन्तु बन्धनेके योग्य जो पौद्गलिक कर्म – नोकर्मस्कन्ध हैं, उनकी 'बन्धनीय' संज्ञा है। ये बंधे हुए कर्म – नोकर्मरूप पुद्गलस्कन्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार वेदनयोग्य होते हैं। सभी पुद्गलस्कन्ध वेदनयोग्य नहीं होते; किन्तु तेईस प्रकारकी पुद्गलवर्गणाओंमें जो ग्रहणप्रायोग्य वर्गणाएं हैं, वे जब आत्माके योग-द्वारा आकृष्ट होकर कर्म और नोकर्मरूपसे परिणत होकर आत्माके साथ बन्धको प्राप्त होती हैं, तभी वेदनयोग्य होती है।

आ० भूतबलिने इस 'बन्धनीय' का अनेक अनुयोगद्वारों और उनके अवान्तर अधिकारों-द्वारा विस्तारसे वर्णन किया है, जिसका अनुभव तो पाठक मूलग्रन्थका स्वाध्याय करके ही कर सकेंगे। यहां वर्गणासम्बन्धी कुछ खास जानकारी दी जाती है।

वर्गणा दो प्रकारकी है– अभ्यन्तरवर्गणा और बाह्यवर्गणा। अभ्यन्तरवर्गणा भी दो प्रकारकी है– एकश्रेणिवर्गणा और नानाश्रेणिवर्गणा। एकश्रेणिवर्गणाके तेईस भेद हैं– १ एकप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा, २ संख्यातप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा, ३ असंख्यातप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा, ४ अनन्तप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा, ५ आहारद्रव्यवर्गणा, ६ अग्रहणद्रव्यवर्गणा, ७ तैजसद्रव्यवर्गणा, ८ अग्रहणद्रव्यवर्गणा, ९ भाषाद्रव्यवर्गणा, १० अग्रहणद्रव्यवर्गणा, ११ मनोद्रव्यवर्गणा, १२ अग्रहणद्रव्यवर्गणा, १३ कार्मणद्रव्यवर्गणा, १४ ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणा, १५ सान्तरनिरन्तरद्रव्यवर्गणा, १६ ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा, १७ प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणा, १८ ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा, १९ बादर निगोदद्रव्यवर्गणा, २० ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा, २१ सूक्ष्म निगोदद्रव्यवर्गणा, २२ ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा और २३ महास्कन्धद्रव्यवर्गणा।

एक परमाणुकी एकप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। द्विप्रदेशिकसे लेकर उत्कृष्ट संख्यातप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा तक सब वर्गणाओंकी संख्यातप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। यह दूसरी वर्गणा है। जघन्य असंख्यातप्रदेशिकसे लेकर उत्कृष्ट असंख्यातप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणाओंकी असंख्यातप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। यह तीसरी वर्गणा है। जघन्य अनन्तप्रदेशिकसे लेकर आहारवर्गणासे पूर्व तककी अनन्तप्रदेशिक और अनन्तानन्तप्रदेशिक जितनी वर्गणाएं हैं उन सबकी अनन्तप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। यह चौथी वर्गणा है। यहां यह ज्ञातव्य है कि संख्यातप्रदेशिकवर्गणाके एक अंक कम उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण भेद होते हैं। तथा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातमेंसे उत्कृष्ट संख्यातके कम करनेपर जो शेष रहे, उसमें एक अंकके मिलानेपर जितना प्रमाण होता है, उतने ही असंख्यातप्रदेशिकवर्गणाके भेद होते हैं। संख्यातप्रदेशिकवर्गणाओंसे असंख्यातप्रदेशिकवर्गणाएं असंख्यातगुणी हैं। जघन्य अनन्तप्रदेशिकवर्गणासे लेकर आहारवर्गणाके पूर्वतककी जितनी अनन्तप्रदेशिकवर्गणाएं हैं, उनका प्रमाण भी अनन्त है। आहारवर्गणासे पूर्ववाली ये चारों ही वर्गणाएं अग्राह्य हैं, अर्थात् किसी भी जीवके द्वारा इनका कभी भी ग्रहण नहीं होता है। यद्यपि ये संख्यातप्रदेशिकवर्गणाएं संख्यात हैं, असंख्यातप्रदेशिकवर्गणाएं असंख्यात हैं और आहारवर्गणासे पूर्व तककी अनन्तप्रदेशिकवर्गणाएं अनन्त हैं, तथापि जातिकी अपेक्षा उन्हें एक-एक कहा गया है।

उत्कृष्ट अनन्तप्रदेशी द्रव्यवर्गणामें एक परमाणुके मिलानेपर जघन्य आहारद्रव्यवर्गणा होती है। पुनः एक एक परमाणुके बढ़ाते हुए अभव्योंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण भेदोंके जानेपर उत्कृष्ट आहारद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। यह पांचवी वर्गणा है। इस आहारद्रव्यवर्गणाके परमाणुओंसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारकशरीरका निर्माण होता है। उत्कृष्ट आहारद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुके बढ़ानेपर जघन्य अग्रहणद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। उसके ऊपर एक एक परमाणुके बढ़ाते हुए अभव्योंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण भेदोंके जानेपर

उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। यह वर्गणा भी अग्राह्य है, अर्थात् जीवके द्वारा शरीरादि किसी भी रूपमें इसका ग्रहण नहीं होता है। यह छठी वर्गणा है।

उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुके मिलानेपर जघन्य तैजसद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः एक एक अधिक परमाणुके बढ़ाते हुए अभव्योंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट तैजसद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। इस तैजस-द्रव्यवर्गणासे तैजसशरीरका निर्माण होता है। यह सातवीं वर्गणा है।

तैजसद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणु मिलानेपर दूसरी जघन्य अग्रहणद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः पूर्वोक्त क्रमसे एक एक परमाणुके बढ़ाते हुए अनन्तस्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। ये सभी अग्रहणवर्गणाएं भी जीवके द्वारा अग्राह्य होनेसे शरीरादि किसी कार्यमें नहीं आती हैं। यह आठवीं वर्गणा है।

उक्त उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर जघन्य भाषाद्रव्य-वर्गणा प्राप्त होती है। पुनः पूर्वोक्त क्रमसे एक एक परमाणुके बढ़ाते हुए अनन्तस्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट भाषाद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। इस भाषावर्गणाके परमाणु ही विविध प्रकारकी भाषाओंके रूपमें शब्दरूपसे परिणत होकर बोले जाते हैं। यह नववीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट भाषावर्गणाके ऊपर एक परमाणु मिलानेपर तीसरी जघन्य अग्रहणद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः पूर्वोक्त प्रकारसे एक एक परमाणुके बढ़ाते हुए अनन्तस्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। ये सभी अग्रहणवर्गणाएं भाषादिके रूपमें ग्रहण करनेके योग्य न होनेसे अग्राह्य है। यह दशवीं वर्गणा है।

उक्त तीसरी उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर जघन्य मनोद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः एक एक अधिक परमाणुके क्रमसे बढ़ाते हुए अनन्तस्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट मनोद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। इस वर्गणाके परमाणुओंसे द्रव्यमनका निर्माण होता है। यह ग्यारहवीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट मनोद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होने पर चौथी जघन्य अग्रहण द्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। इसके ऊपर पूर्वोक्तक्रमसे एक एक परमाणुके बढ़ाते हुए अनन्तस्थान जानेपर उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। इस वर्गणाके परमाणु भी भाषामन आदि किसी भी कार्यके लिए ग्रहण करनेके योग्य नहीं हैं। यह बारहवीं वर्गणा है।

उक्त चौथी अग्रहण द्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुके मिलानेपर जघन्य कार्मण द्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए अनन्त स्थान आगे जानेपर

उत्कृष्ट कार्मण द्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। इस वर्गणाके पुद्गलस्कन्ध ही ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके रूपसे परिणत होते हैं। यह तेरहवीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट कार्मण वर्गणामें एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर जघन्य ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए सब जीवोंसे अनन्तगुणित स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट ध्रुवस्कन्ध द्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। ये ध्रुवस्कन्धवर्गणाएं भी अग्राह्य हैं। यह चौदहवीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट ध्रुवस्कन्ध द्रव्यवर्गणामें एक परमाणुके मिलानेपर जघन्यसान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है उसके ऊपर एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए सब जीवोंसे अनन्तगुणित स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तरद्रव्य वर्गणा प्राप्त होती है। यह भी अग्रहणवर्गणा है, क्योंकि यह आहार, तैजस, भाषा आदिके परिणमन-योग्य नहीं है। इस वर्गणाके परमाणु जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तक अन्तर-सहित भी पाये जाते हैं और अन्तर-रहित भी पाये जाते हैं, इसलिए इसे सांतरनिरंतर द्रव्यवर्गणा कहते हैं। यह पन्द्रहवीं वर्गणा है।

सान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गणाओंके ऊपर ध्रुवशून्यवर्गणा होती है। उत्कृष्ट सान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणु अधिक, दो परमाणु अधिक आदिके रूपसे पुद्गलपरमाणुस्कन्ध तीनों ही कालोंमें नहीं पाये जाते। किन्तु सब जीवोंसे अनन्तगुणित स्थान आगे जाकर प्रथम ध्रुवशून्यवर्गणाकी उत्कृष्ट वर्गणा प्राप्त होती है। यह सोलहवीं वर्गणा है, जो सदा शून्यरूपसे अवस्थित रहती है।

ध्रुवशून्यवर्गणाओंके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर जघन्य प्रत्येक शरीरद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। एक एक जीवके एक एक शरीरमें उपचित हुए कर्म और नोकर्मस्कन्धोंको प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा कहते हैं। यह प्रत्येक शरीर पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, देव, नारकी, आहारकशरीरी प्रमत्तसंयत और केवलिजिनके पाया जाता है। इन आठ प्रकारके जीवोंके सिवाय शेष जितने संसारी जीव हैं, उनका शरीर या तो निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित होनेके कारण सप्रतिष्ठित प्रत्येकरूप है, या स्वयं निगोदरूप साधारण शरीर है। केवल जो वनस्पति निगोद-रहित होती है, वह इसका अपवाद है। ऊपर बतलाई गई यह जघन्य प्रत्येक शरीरद्रव्यवर्गणा क्षपितकर्मांशिक जीवके चौदहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है। इस जघन्य प्रत्येक शरीरद्रव्यवर्गणासे एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए अनन्त स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है, जो महावनके दाहादिके समय एक बन्धनबद्ध अग्निकायिक जीवोंके पाई जाती है। यद्यपि महावनादिके दाह-समय जितने अग्निकायिक जीव होते है, उन सबका पृथक्-पृथक् स्वतंत्र ही शरीर होता है, तथापि वे सब जीव और उनके शरीर परस्पर संयुक्त रहते हैं, इसलिए उन सबकी एक वर्गणा मानी गई है। यह सतरहवीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर दूसरी सर्वजघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा प्राप्त होती है । पुनः एक एक परमाणुकी क्रमसे वृद्धि करनेपर सब जीवोंसे अनन्तगुणितस्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा प्राप्त होती है । यह वर्गणा भी सदा शून्यरूपसे अवस्थित रहती है । यह अठारहवीं वर्गणा है ।

उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होने पर सबसे जघन्य बादर निगोदवर्गणा प्राप्त होती है । यह वर्गणा क्षपितकर्मांशिक विधिसे आये हुए क्षीणकषायी जीवके बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है । इसका एक कारण तो यह है कि जो क्षपित कर्मांशिक विधिसे आया हुआ जीव होता है, उसके कर्म और नोकर्मका संचय उत्तरोत्तर कम होता जाता है । दूसरे यह नियम है कि क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवके विशुद्धिके कारण ऐसी विशिष्ट शक्ति उत्पन्न होती है कि जिससे उस जीवके बारहवें गुणस्थानमें पहुंचनेपर प्रथम समयमें उसके शरीर-स्थित अनन्त बादरनिगोदिया जीव मरते हैं । दूसरे समयमें उससे भी विशेष अधिक अनन्त बादर निगोदिया जीव मरते हैं । इस प्रकार आवली पृथक्त्वप्रमाण काल तक प्रतिसमय उत्तरोत्तर विशेष अधिक, विशेष अधिक बादर निगोदिया जीव मरते हैं । उससे आगे क्षीणकषायके कालमें आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल शेष रहनेतक संख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक बादर निगोदिया जीव प्रतिसमय मरते हैं । तदनन्तर समयमें उससे असंख्यातगुणित बादर निगोदिया जीव मरते हैं । इसी क्रमसे बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समय तक उसके शरीरमें स्थित बादर निगोदिया जीव प्रतिसमय असंख्यात गुणित मरते हैं । इस प्रकार बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मरनेवाले जितने बादर निगोदिया जीव होते हैं, उनके विस्रसोपचयसहित कर्म और नोकर्मवर्गणाओंके समुदायको एक बादर निगोदवर्गणा कहते हैं । यतः यह अन्य बादर निगोदवर्गणाओंकी अपेक्षा सबसे जघन्य होती है, अतः क्षपितकर्मांशिक जीवके बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें जघन्य बादर निगोदवर्गणा कही गई है । स्वयम्भूरमणद्वीपके कर्मभूमिसम्बन्धी भागमें उत्पन्न हुई मूलीके शरीरमें उत्कृष्ट बादर निगोदवर्गणा होती है । मध्यमें नाना जीवोंके शरीरोंके आधारसे ये बादर निगोदवर्गणाएं जघन्यसे उत्कृष्ट तक असंख्य प्रकारकी होती हैं । यह उन्नीसवीं वर्गणा है ।

उत्कृष्ट बादर निगोदवर्गणामें एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर तीसरी सर्व जघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा प्राप्त होती है । पुनः इसके ऊपर एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए सब जीवोंसे अनन्तगुणित स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा प्राप्त होती है । यह वर्गणा भी शून्यरूपसे अवस्थित रहती है । यह बीसवीं वर्गणा है ।

उक्त उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि करनेपर सर्वजघन्य सूक्ष्म-निगोदवर्गणा प्राप्त होती है । यह वर्गणा क्षपितकर्मांशिकविधिसे और क्षपितघोलमानविधिसे आये हुए

सूक्ष्मनिगोदिया जीवोंके होती है। यहां यह ज्ञातव्य है कि एक निगोदिया जीवका कोई एक स्वतंत्र शरीर नहीं होता, किन्तु अनन्तानन्त निगोदिया जीवोंका एक शरीर होता है। असंख्यात लोकप्रमाण शरीरोंकी एक पुलवि होती है और आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियोंका एक स्कन्ध होता है। इस एक स्कन्धगत अनन्तानन्त जीवोंके औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरोंके विस्रसोपचयसहित कर्म – नोकर्मपुद्गलपरमाणुओंके समुदायरूप सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है। उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा एकबन्धनबद्ध छह जीवनिकायोंके समुदायरूप महामच्छके शरीरमें पाई जाती है। जघन्य और उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके मध्यमें एक एक परमाणुकी वृद्धिसे बढ़ते हुए असंख्य स्थान होते हैं। यह इक्कीसवीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर चौथी सर्वजघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः एक एक परमाणुकी उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए सब जीवोंसे अनन्तगुणित स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा प्राप्त होती है। यह जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है। यह भी शून्यरूपसे अवस्थित है। यह बाईसवीं वर्गणा है।

उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणाके ऊपर एक परमाणुकी वृद्धि होनेपर सर्वजघन्य महास्कन्धद्रव्यवर्गणा प्राप्त होती है। पुनः एक एक परमाणुकी वृद्धि करते हुए सब जीवोंसे अनन्तगुणित स्थान आगे जानेपर उत्कृष्ट महास्कन्धवर्गणा प्राप्त होती है। यह उत्कृष्ट महास्कन्धवर्गणा, आठों पृथिवियाँ, टंक, कूट, भवन, विमान, विमानेन्द्रक, विमानप्रस्तार, नरक, नरकेन्द्रक, नरकप्रस्तार, गुच्छ, गुल्म, लता और तृणवनस्पति आदि समस्त स्कन्धोंके संयोगात्मक है। यद्यपि इन सब पृथिवी आदिमें अन्तर दृष्टिगोचर होता है, तथापि सूक्ष्मस्कन्धोंके द्वारा उन सबका परस्पर सम्बन्ध बना हुआ है, इसीलिए इन सबको मिलाकर एक महास्कन्धद्रव्यवर्गणा कही जाती है। यह सबसे बड़ी तेईसवीं वर्गणा है।

इस प्रकार ये सब तेईस वर्गणाएँ हैं। इनमेंसे आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मणवर्गणा ये पांच वर्गणाएँ जीवके द्वारा ग्रहण की जाती हैं। शेष नहीं, अतः उन्हें अग्राह्य वर्गणाएँ कही जाती है। यह सब आभ्यन्तर वर्गणाओंका विचार किया गया है।

बाह्यवर्गणाओंका विचार ग्रन्थकारने शरीरिशरीरप्ररूपणा, शरीरप्ररूपणा, शरीरविस्रसोपचयप्ररूपणा और विस्रसोपचयप्ररूपणा इन चार अनुयोगद्वारोंसे किया है। शरीरी जीवको कहते हैं। इनके प्रत्येक और साधारणके भेदसे दो प्रकारके शरीर होते हैं। पहली शरीरिशरीरप्ररूपणामें इन दोनोंका विस्तारसे निरूपण किया गया है। शरीरप्ररूपणामें औदारिकादि पांचों शरीरोंका अपनी अनेक अवान्तर विशेषताओंके साथ विचार किया गया है। शरीर विस्रसोपचयप्ररूपणामें पांचों शरीरोंके विस्रसोपचयके सम्बन्धके कारणभूत स्निग्ध और रूक्ष गुणके अविभागप्रतिच्छेदोंका

निरूपण किया गया है। विस्रसोपचयप्ररूपणामें जीवके द्वारा छोड़े गये परमाणुओंके विस्रसोपचयका निरूपण किया गया है।

६ छठे खण्ड महाबन्धका विषय-परिचय

यतः षट्खण्डागमके दूसरे खण्डमें कर्मबन्धका संक्षेपसे वर्णन किया गया है, अतः उसका नाम खुद्दाबन्ध या क्षुद्रबन्ध प्रसिद्ध हुआ। किन्तु छठे खण्डमें बन्धके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चारों प्रकारके बन्धोंका अनेक अनुयोगद्वारोंसे विस्तार-पूर्वक विवेचन किया गया है, इसलिए इसका नाम महाबन्ध रखा गया है।

जीवके राग-द्वेषादि परिणामोंका निमित्त पाकर कार्मणवर्गणाओंका जीवके आत्म-प्रदेशोंके साथ जो संयोग होता है, उसे बन्ध कहते हैं। बन्धके चार भेद हैं— प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। प्रकृति शब्दका अर्थ स्वभाव है। जैसे गुड़की प्रकृति मधुर और नीमकी प्रकृति कटुक होती है, उसी प्रकार आत्माके साथ सम्बद्ध हुए कर्मपरमाणुओंमें आत्माके ज्ञान-दर्शनादि गुणोंको आवरण करने या सुखादि गुणोंके घात करनेका जो स्वभाव पड़ता है, उसे प्रकृतिबन्ध कहते हैं। वे आये हुए कर्मपरमाणु जितने समय तक आत्माके साथ बंधे रहते हैं, उतने कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं। उन कर्मपरमाणुओंमें फल प्रदान करनेकी जो सामर्थ्य होती है, उसे अनुभागबन्ध कहते हैं। आत्माके साथ बंधनेवाले कर्मपरमाणुओंका ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूपसे और उनकी उत्तर प्रकृतियोंके रूपसे जो बटवारा होता है, उसे प्रदेशबन्ध कहते हैं। इस प्रकार बन्धके चार भेद हैं। प्रस्तुत खण्डमें इन्हीं चारोंका वर्णन इतने विस्तारके साथ आ० भूतबलिने किया है कि उसका परिमाण प्रारम्भके पांचों खण्डोंके प्रमाणसे भी पाच गुना हो गया है। इतने विस्तारके रचे जानेके कारण परवर्ती आचार्योंको उसकी टीका या व्याख्या करनेकी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत हुई। इसका प्रमाण तीस हजार श्लोक माना जाता है।

यद्यपि महाबन्धके प्रारम्भके कुछ ताड़पत्रोंके टूट जानेसे प्रकृतिबन्धका प्रारम्भिक अंश विनष्ट हो गया है, तथापि स्थितिबन्ध आदिकी वर्णनशैलीको देखनेसे ज्ञात होता है कि प्रकृतिबन्धका वर्णन जिन चौबीस अनुयोगद्वारोंसे करनेका प्रारम्भमें निर्देश रहा होगा, उनके नाम इस प्रकार होना चाहिए—

१ प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन, २ सर्वबन्ध, ३ नोसर्वबन्ध, ४ उत्कृष्टबन्ध, ५ अनुत्कृष्टबन्ध, ६ जघन्यबन्ध, ७ अजघन्यबन्ध, ८ सादिबन्ध, ९ अनादिबन्ध, १० ध्रुवबन्ध, ११ अध्रुवबन्ध, १२ एकजीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ काल, १४ अन्तर, १५ सन्निकर्ष, १६ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १७ भागाभाग, १८ परिमाण, १९ क्षेत्र, २० स्पर्शन, २१ काल, २२ अन्तर, २३ भाव और अल्पबहुत्व।

यहां इतना और भी जान लेना चाहिए कि आ० भूतबलिने इन्हीं चौबीस अनुयोगद्वारोंसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका भी वर्णन किया है। केवल पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तन अनुयोगद्वारके स्थानपर स्थितिबन्धकी प्ररूपणामें अद्धाच्छेद और अनुभागबन्धकी प्ररूपणामें संज्ञा नामक अनुयोगद्वारको कहा है। इसी प्रकार चौबीसों अनुयोगद्वारोंसे स्थितिबन्धकी प्ररूपणा करनेके पश्चात् भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि इन तीन अनुयोगद्वारोंके द्वारा भी उसका वर्णन किया है। तथा उक्त चौबीस अनुयोगद्वारोंसे अनुभागबन्धकी प्ररूपणा करनेके पश्चात् भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान इन चार अनुयोगद्वारोंके द्वारा भी अनुभागबन्धका वर्णन किया गया है। प्रदेशबन्धकी प्ररूपणा भी उक्त चौबीस अनुयोगद्वारोंसे की गई है। केवल पहले अनुयोगद्वारके स्थानपर स्थान नामका अनुयोगद्वार कहा है और अन्तमें भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि, अध्यवसान-समुदाहार और जीवसमुदाहार इन पांच और भी अनुयोगद्वारोंसे प्रदेशबन्धका निरूपण किया गया है। यहां इतना और विशेष ज्ञातव्य है कि प्रदेशबन्धमें भागाभागका कथन मध्यमें न करके प्रारम्भमें ही किया गया है।

चारों प्रकारके बन्धोंका पृथक्-पृथक् चौबीसों अनुयोगद्वारोंसे वर्णन करनेपर बहुत विस्तार हो जायगा, इसलिए सभी बन्धोंका एक साथ ही संक्षेपसे स्वरूप-निरूपण किया जाता है।

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन– इस अनुयोगद्वारमें मूल प्रकृतियों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंकी संख्या बतलाई गई है। यथा– मूल कर्म आठ है– ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनकी उत्तर प्रकृतियां क्रमशः पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पांच हैं। ज्ञानावरणकी पांचों प्रकृतियोंका ठीक उसी प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, जिस प्रकारसे कि वर्गणाखण्डके अन्तर्गत प्रकृति अनुयोगद्वारमें है। शेष कर्मोंकी प्रकृतियोंकी संख्याका महाबन्धमें निर्देश मात्र ही है, जब कि प्रकृति अनुयोगद्वारमें प्रत्येक कर्मकी सभी प्रकृतियोंको पृथक्-पृथक् गिनाया गया है। यतः आ० भूतबलि प्रकृति–अनुयोगद्वारमें उक्त वर्णन विस्तारसे कर आये है, अतः यहांपर '**यथा पगदिभंगो तथा कादव्वो**' कह कर उन्होंने इस अनुयोगद्वारको समाप्त कर दिया है।

स्थितिबन्धकी प्ररूपणामें पहला अनुयोगद्वार अद्धाच्छेद है। अद्धा अर्थात् कर्मस्थितिरूप कालका अबाधासहित और अबाधारहित कर्म-निषेकरूपसे छेद अर्थात् विभागरूप वर्णन इस अनुयोगद्वारमें किया गया है। एक समयमें बंधनेवाले कर्मपिण्डकी जितनी स्थिति होती है, उसमें अबाधाकालके बाद की स्थितिमें ही निषेक रचना होती है। आयुकर्म इसमें अपवाद है, उसकी जितनी स्थिति बंधती है, उसमें ही निषेक रचना होती है। उसका अबाधाकाल तो पूर्व भवकी भुज्यमान आयुमें ही होता है, अतः बध्यमान आयुकी पूरी स्थितिप्रमाण निषेक रचना कही गई

है। इस अनुयोगद्वारमें आठों मूल कर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितियोंका, उनके अबाधाकालों और निषेककालोंका बहुत विस्तारसे निरूपण किया गया है।

अनुभागबन्धकी प्ररूपणा करनेवाले चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे पहला अनुयोगद्वार संज्ञा-प्ररूपणा है। इस अनुयोगद्वारमें कर्मोंके स्वभाव, शक्ति या गुणके अनुसार विशिष्ट संज्ञा (नाम) रखकर उनके अनुभागका विचार किया गया है। संज्ञाके दो भेद हैं-- घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञामें कर्मोंके अनुभागका सर्वघाती और देशघातीके रूपसे विचार किया गया है। स्थान-संज्ञामें कर्मोंके अनुभागका लता, दारु, अस्थि और शैल इन चार प्रकारके स्थानोंसे विचार किया गया है।

प्रदेशबन्धकी प्ररूपणामें चौबीस अनुयोगद्वारोंके क्रमानुसार पहला अनुयोगद्वार स्थान-प्ररूपणा नामका है। इसके दो भेद किये गये हैं-- योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशबन्धप्ररूपणा। योगस्थानप्ररूपणामें पहले उत्कृष्ट और जघन्य योगस्थानोंका चौदह जीवसमासोंके आश्रयसे अल्पबहुत्व कहा गया है। तत्पश्चात् प्रदेशअल्पबहुत्वका विचार अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व इन दश अनुयोगद्वारोंके द्वारा विस्तारसे किया गया है।

भागाभागप्ररूपणा नामक अनुयोगद्वार चौबीसों अनुयोगद्वारोंमें यद्यपि सत्रहवां हैं, तथापि आ. भूतबलिने प्रदेशबन्धकी प्ररूपणामें कर्मोंके भागाभागका विचार सबसे पहले किया है। इसका कारण यह रहा है कि बन्धके समयमें आनेवाले कर्मपरमाणुओंके विभाजनका ही नाम प्रदेशबन्ध है। उसके जाने बिना आगेके अनुयोगद्वारोंका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता था, अतः आचार्यने उसकी प्ररूपणा करना पहले आवश्यक समझा हैं।

भागाभागप्ररूपणामें बतलाया गया है कि यदि किसी जीवके विवक्षित समयमें आठों कर्मोंका बन्ध हो रहा है, तो उस समयमें जितने कर्मपरमाणु आवेंगे, उनमेंसे आयुकर्मको सबसे कम भाग मिलता है, क्योंकि आयुकर्मका स्थितिबन्ध अन्यकर्मोंकी अपेक्षा सबसे कम है। आयुकर्मकी अपेक्षा नाम और गोत्र कर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है। उनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है और उनसे मोहनीय कर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है। यतः इन सब कर्मोंका स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर अधिक है। अतः प्रदेशोंका विभाग भी उत्तरोत्तर अधिक प्राप्त होता है। मोहनीयकर्मसे अधिक भाग वेदनीयकर्मको मिलता है, हालां कि उसका स्थितिबन्ध मोहनीयकी अपेक्षा कम है। इसका कारण यह बतलाया गया है कि वह जीवोंके सुख और दुःखमें कारण पड़ता है। इसलिए उसकी निर्जरा बहुत होती है। यदि वेदनीयकर्म न हो, तो सब कर्म जीवको सुख और दुःख उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिए

उसे सबसे अधिक भाग मिलता है। यह तो मूल प्रकृतियोंमें भागाभागका क्रम कहा। इसी प्रकारसे उत्तरप्रकृतियोंमेंभी बहुत विस्तारसे कर्मप्रदेशोंके भागाभागका विचार किया गया है।

अब शेष अनुयोगद्वारोंसे चारों प्रकारके बन्धोंका एक साथ विचार किया जाता है—

(२–३) सर्वबन्ध–नोसर्वबन्ध प्ररूपणा– जिस कर्मकी जितनी प्रकृतियां हैं, उन सबके बन्ध करनेको सर्वबन्ध कहते हैं और उससे कम कर्मबन्ध करनेको नोसर्वबन्ध कहते हैं। ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मका सर्वबन्ध ही होता है, नोसर्वबन्ध नहीं होता। दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्मका सर्वबन्ध भी होता है और नोसर्वबन्ध भी होता है। वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मका तो सर्वबन्ध ही होता है, क्योंकि इनकी प्रकृतियां सप्रतिपक्षी हैं, अतः एक साथ किसी भी जीवके सबका बन्ध सम्भव नहीं है। यह प्रकृतिबन्धका वर्णन हुआ। स्थितिबन्धकी अपेक्षा जिसकर्मकी जितनी सर्वोत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है, उस सबका बन्ध करना सर्वबन्ध है और उससे कम स्थितिका बन्ध करना नोसर्वबन्ध है। अनुभागबन्धकी अपेक्षा जिस कर्ममें अनुभाग सम्बन्धी सर्व स्पर्धक पाये जाते है, वह सर्वानुभागबन्ध है और जिसमें उससे कम स्पर्धक पाये जाते हैं, वह नोसर्वानुभागबन्ध है। प्रदेशबन्धकी अपेक्षा विवक्षित कर्मके सर्व प्रदेशोंका बंध होना सर्वबन्ध है और उससे कम प्रदेशोंका बन्ध होना नोसर्वबन्ध है।

(४–५) उत्कृष्टबन्ध–अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा– प्रकृतिबन्धमें उत्कृष्ट–अनुत्कृष्ट बन्धकी प्ररूपणा सम्भव नहीं है। स्थितिबन्धकी अपेक्षा जिस कर्मकी जितनी सर्वोत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है, उसके बन्धको उत्कृष्ट बन्ध कहते हैं। जैसे मोहनीयकर्मका सत्तरकोड़ाकोड़ी प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर अन्तिम निषेकको उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा जायगा। उत्कृष्ट स्थितिबन्धमेंसे एक समय कम आदि जितने भी स्थितिके विकल्प हैं, उन्हें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा जायगा। अनुभागबन्धकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट अनुभागको बांधना उत्कृष्ट बन्ध है और उससे न्यून अनुभागको बांधना अनुत्कृष्टबन्ध है। प्रदेश बन्धकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करना उत्कृष्ट बन्ध है और उससे कम प्रदेशोंका बन्ध करना अनुत्कृष्ट बन्ध है।

(६–७) जघन्यबन्ध–अजघन्यबन्ध प्ररूपणा– प्रकृति बन्धमें जघन्य–अजघन्य–बन्धकी प्ररूपणा सम्भव नहीं है। स्थितिबन्धकी अपेक्षा कर्मोंकी सबसे जघन्य स्थितिका बन्ध होना जघन्यबन्ध है और उससे ऊपरकी स्थितियोंका बन्ध होना अजघन्यबन्ध है। अनुभागबन्धकी अपेक्षा सबसे जघन्य अनुभागका बन्ध होना जघन्यबन्ध है और उससे अधिक अनुभागका बन्ध होना अजघन्यबन्ध है। प्रदेशबन्धकी अपेक्षा सर्व जघन्य प्रदेशोंका बंधना जघन्यबन्ध है और उससे अधिक प्रदेशोंका बंधना अजघन्यबन्ध है।

(८-११) सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव प्ररूपणा— कर्मका जो बन्ध एक बार होकर और फिर रुककर पुनः होता है, वह सादिबन्ध है। बन्धव्युच्छित्तिके पूर्वतक अनादिकालसे जिसका बन्ध होता चला आ रहा है, वह अनादिबन्ध कहलाता है। अभव्योंके निरन्तर होनेवाले बन्धको ध्रुवबन्ध कहते हैं और कभी कभी होनेवाले भव्योंके बन्धको अध्रुवबन्ध कहते हैं। कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंमेंसे किस प्रकृतिके उक्त चारमेंसे कितने बन्ध होते हैं और कितने नहीं, इसका चारों बन्धोंकी अपेक्षा विस्तारसे विचार महाबन्धमें किया गया है।

(१२) स्वामित्वप्ररूपणा— इस अनुयोगद्वारमें मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य बन्ध करनेवाले स्वामियोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है।

(१३) एकजीवकी अपेक्षा कालप्ररूपणा— इस अनुयोगद्वारमें एकजीवके विवक्षित कर्मप्रकृतिका, उसकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यरूप बन्ध लगातार कितनी देर तक होता रहता है, इसका गुणस्थान और मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा विस्तारसे विचार किया गया है। जैसे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और लगातार उत्कृष्ट बन्धका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्टबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है। जघन्य स्थितिबन्ध जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अजघन्य बन्धका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है।

(१४) अन्तरप्ररूपणा— इस अनुयोगद्वारमें विवक्षित प्रकृतिका बन्ध होनेके अनन्तर पुनः कितने कालके पश्चात् फिर उसी विवक्षित प्रकृतिका बन्ध होता है, इस बन्धाभावरूप मध्यवर्ती कालका विचार किया गया है। जैसे मोहकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल है। मोहकर्मकी जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर सम्भव नहीं हैं; क्योंकि मोहनीयकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध क्षपकश्रेणीवाले जीवके नवें गुणस्थानमें होता है, उसका पुनः लौटकर सम्भव ही नहीं है। अजघन्य बन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार सभी मूल और उत्तर प्रकृतियोंको चारों प्रकारके बन्धोंके अन्तरकालकी प्ररूपणा ओघ और आदेशसे बहुत विस्तारके साथ की गई है।

(१५) सन्निकर्षप्ररूपणा— विवक्षित किसी एक कर्मप्रकृतिका बन्ध करनेवाला जीव उसके सिवाय अन्य कौन-कौनसी प्रकृतियोंका बन्ध करता है और किस-किस प्रकृतिका बन्ध नहीं करता, इस बातका विचार प्रकृतिबन्धकी सन्निकर्षप्ररूपणामें किया गया है। इसी प्रकार स्थितिबन्धकी सन्निकर्षप्ररूपणामें इस बातका विचार किया गया है कि किसी एक कर्मकी उत्कृष्ट

स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्य कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है, अथवा अनुत्कृष्ट स्थितिका। अनुभागबन्धकी सन्निकर्षप्ररूपणामें यही विचार अनुभागको लेकर किया गया है कि अमुक कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव उसी समयमें अन्य दूसरे कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, या अनुत्कृष्ट ? प्रदेशबन्धकी सन्निकर्षप्ररूपणामें यह विचार किया गया है कि विवक्षितकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको करनेवाला जीव उसी समय बंधनेवाले अन्य कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको करता है, अथवा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धको करता है। इस प्रकार इस अनुयोग-द्वारमें मूल और उत्तर प्रकृतियोंके चारों बन्धोंका सन्निकर्ष ओघ और आदेशसे बहुत विस्तारके साथ किया गया है।

(१६) नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय— इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों प्रकारके बन्ध करनेवाले जीवोंके भंगोंका विचार किया गया है। जैसे प्रकृतिबन्धकी अपेक्षा विवक्षित किसी एक समयमें ज्ञानावरणादि कर्मोंका बन्ध करनेवाले अनेक जीव पाये जाते हैं और अनेक अबन्धक भी पाये जाते हैं। अर्थात् दशवें गुणस्थान तकके जीव तो ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंके बन्धकरूपसे सदा पाये जाते हैं, किन्तु ग्यारहवेंसे ऊपरके गुणस्थानवाले जीव उन कर्मोंके अबन्धक ही हैं। स्थितिबन्धकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला कदाचित् एक भी जीव नहीं पाया जाता। कदाचित् एक पाया जाता है और कदाचित् नाना पाये जाते हैं। इसी प्रकार कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धक जीव कदाचित् सब होते हैं, कदाचित् एक कम सब होते हैं और कदाचित् नाना होते हैं। इसलिए अबन्धकोंको मिलाकर इनके भंग इस प्रकार होते हैं— कदाचित् ज्ञानावरणकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके सब अबन्धक होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अबन्धक और एक जीव बन्धक होता है, कदाचित् अनेक जीव अबन्धक और अनेक जीव बन्धक होते हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंके भंगोंका विचार इस अनुयोगद्वारमें किया गया है। अनुभागबन्धकी अपेक्षा आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सब जीव अबन्धक हैं, कदाचित् नाना जीव अबन्धक हैं और एक जीव बन्धक है। कदाचित् नाना जीव अबन्धक हैं और नाना जीव बन्धक हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंके भंगोंका भी विचार इस अनुयोग-द्वारमें किया गया है। इसी प्रकार प्रदेशबन्धके संभव भंगोंको भी जानना चाहिए। इस प्रकार इस अनुयोगद्वारमें सभी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके चारों प्रकारके बन्धोंके भंगोंका ओघ और आदेशसे बहुत विस्तारके साथ विचार किया गया है।

(१७) भागाभागप्ररूपणा— इस अनुयोगद्वारमें विवक्षित कर्म-प्रकृतिके चारों प्रकारके बन्ध करनेवाले जीव सर्व जीवराशिके कितने भागप्रमाण हैं, और कितने भागप्रमाण जीव उसके अबन्धक हैं, इस प्रकारसे भाग और अभागका विचार किया गया है। जैसे प्रकृतिबन्धकी अपेक्षा

पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पांच अन्तराय इतनी प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीव सर्व जीवराशिके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं, तथा अबन्धक जीव सर्व जीवराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सातावेदनीयके बन्धक जीव सर्व जीवराशिके संख्यातवें भाग हैं और अबन्धक सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं। असाताके बन्धक सब जीवोंके संख्यातबहुभाग हैं और अबन्धक संख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंके भागाभागका विचार उत्कृष्ट–अनुत्कृष्ट और जघन्य-अजघन्यपदोंका आश्रय लेकर गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें बहुत विस्तारसे किया गया है।

(१८) **परिमाणप्ररूपणा**– इस अनुयोगद्वारमें एक समयके भीतर अमुक प्रकृतिके, अमुक जातिकी स्थितिके, अमुक जातिके अनुभागके और अमुक जातिके प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले और नहीं करनेवाले जीवोंके परिमाण (संख्या) का निरूपण किया गया है। जैसे– पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, निर्माण, तथा पांच अन्तराय; इतनी प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले भी जीव अनन्त हैं और बन्ध नहीं करनेवाले भी जीव अनन्त हैं। स्थितिबन्धकी अपेक्षा आठों ही कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं, क्योंकि जघन्य स्थितिका बन्ध क्षपकश्रेणीमें ही होता है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। अनुभाग-बन्धकी अपेक्षा चारों घातिया कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्ध करनेवाले अनन्त हैं। जघन्य अनुभागके बन्ध करनेवाले संख्यात है और अजघन्य अनुभागके बन्ध करनेवाले अनन्त हैं। प्रदेशबन्धकी अपेक्षा तीन आयु और वैक्रियिकषट्कका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांगका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। तीर्थंकर-प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले असंख्यात हैं। शेषप्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। इस प्रकार सभी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंके परिमाणका निरूपण ओघ और आदेशसे इस अनुयोगद्वारमें किया गया है।

(१९) **क्षेत्रप्ररूपणा**– इस अनुयोगद्वारमें ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियोंसे चारों प्रकारके बन्ध करनेवाले जीवोंके वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा ओघ और आदेशसे बड़े विस्तारके साथ की गई है, जो कि प्रस्तुत ग्रन्थके जीवस्थानकी क्षेत्रप्ररूपणाके आधारपर सहजमें ही जानी जा सकती है।

(२०) स्पर्शनप्ररूपणा– इस अनुयोगद्वारमें कर्मप्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवोंके त्रैकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा ओघ और आदेशसे विस्तारके साथ की गई है। इसे भी जीवस्थानकी स्पर्शनप्ररूपणाके आधारपर सहजमें जाना जा सकता है। वहांसे भेद केवल इतना है कि यहांपर प्रकृतिबन्धमें अमुक प्रकृतिका बंध करनेवाले जीवोंका वर्तमान और भूतकालिक क्षेत्र बतलाया गया है। स्थितिबन्धमें कर्मोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितियोंके बन्धका आश्रय लेकर, अनुभागबन्धमें कर्मोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि अनुभागका आश्रय लेकर और प्रदेशबन्धमें उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि प्रदेशोंका आश्रय लेकर स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है।

(२१) कालप्ररूपणा– इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों प्रकारके बन्धोंको उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट और जघन्य- अजघन्य कालकी प्ररूपणा की गई है। जैसे प्रकृतिबन्धकी अपेक्षा ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीव भी सर्वकाल पाये जाते है और उनका बन्ध नहीं करनेवाले भी सर्वकाल पाये जाते है। स्थितिबन्धकी अपेक्षा सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इन्हीं कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। सातों कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवालो जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इन्हीं कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके बन्ध करनेवालोंका काल सर्वदा है। अनुभागबन्धकी अपेक्षा चार घातिया कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्ध करनेवालोंका काल सर्वदा है। चारों अघातिया कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इन्हीं कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धका काल सर्वदा है। चारों घातिया कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इन्हींके अजघन्य अनुभागके बन्धका काल सर्वदा है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धका काल सर्वदा है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धका काल सर्वदा है। प्रदेशबन्धकी अपेक्षा मोहकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है। जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है। इस प्रकार इस अनुयोगद्वारमें ओघ और आदेशकी अपेक्षा सभी

मूल और उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि चारों प्रकारके बन्धोंके जघन्य और अजघन्य कालकी प्ररूपणा बहुत विस्तारसे की गई है।

(२२) **अन्तरप्ररूपणा**– इस अनुयोगद्वारमें नानाजीवोंकी अपेक्षा पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, आहारक द्विक, तैजस, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और पांच अन्तराय इतनी प्रकृतियोंके बन्धका अन्तर नहीं होता है। नरक, मनुष्य और देवायुके बन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौवीस मुहूर्त है। तिर्यगायुके बन्धकोंका अन्तर नहीं होता। शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं होता हैं। स्थितिबन्धकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उकृष्ट स्थितिको बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी कालप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धक जीवोंका अन्तर नहीं होता। सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। अजघन्य स्थितिके बन्ध करनेवालोंका अन्तर नहीं होता। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके बन्धक जीवोंका अन्तर नहीं होता। अनुभागबन्धकी अपेक्षा चार घातियाकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर नहीं होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर नहीं होता है। चार घातिया कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर नहीं होता है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर-काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर नहीं होता है। प्रदेशबन्धकी अपेक्षा आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका अन्तर नहीं होता। आठों ही कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भी अन्तर नहीं होता है इस प्रकारसे सभी उत्तर प्रकृतियोंके भी चारों प्रकारके बन्धोंका उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि पदोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालकी प्ररूपणा ओघ और आदेशसे विस्तारके साथ इस अनुयोगद्वारमें की गई है।

[२३] **भावप्ररूपणा**– इस अनुयोगद्वारमें चारों प्रकारके बन्ध करनेवाले जीवोंके भावोंका निरूपण किया गया है। जैसे प्रकृतिबन्धकी अपेक्षा आठों ही कर्मोंका बन्ध करनेवाले

जीवोंके औदयिक भाव होता है। उत्तर प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवोंके औदयिक भाव होता है और उनमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा जहां जितनी वा जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, उनके अबन्धकी अपेक्षा यथासम्भव औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव होता है। इसी प्रकार स्थितिबन्ध आदिके बन्ध करनेवाले जीवोंके भी भावोंका वर्णन ओघ और आदेशकी अपेक्षा किया गया है।

[२४] अल्पबहुत्वप्ररूपणा– इस अनुयोगद्वारमें चारों प्रकारके बन्ध करनेवाले जीवोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा स्वस्थान और परस्थानकी अपेक्षा दो प्रकारसे की गई है। जैसे स्वस्थानकी अपेक्षा चक्षुदर्शनावरणादि चारों दर्शनावरण प्रकृतियोंके अबन्धक जीव सबसे कम हैं। उनसे निद्रा-प्रचलाके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे स्त्यानत्रिकके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे उन्हीं स्त्यानत्रिकके बन्धक जीव अनन्तगुणित हैं। उनसे निद्रा-प्रचलाके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे चक्षुदर्शनावरणादि चारों प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। जैसे यह दर्शनावरणीयकर्मका स्वस्थान अल्पबहुत्व कहा है, इसी प्रकार सभी कर्मोंके स्वस्थान अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है। परस्थान अल्पबहुत्वकी अपेक्षा आहारद्विकका बन्ध करनेवाले जीव सबसे कम हैं। उनसे तीर्थंकर प्रकृतीके बन्धक जीव असंख्यात गुणित हैं, उनसे मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यात गुणित हैं। उनसे नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे देवगतिके बन्धक जीव संख्यात गुणित हैं। उनसे नरकगतिके बन्धक जीव संख्यात गुणित हैं। उनसे वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे तिर्यग्गायुके बन्धक जीव अनन्तगुणित हैं। इत्यादि प्रकारसे बन्धयोग्य सभी प्रकृतियोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धके करनेवाले जीवोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघ और आदेशसे विस्तारके साथ इस अनुयोगद्वारमें की गई है।

भुजाकारबन्ध– आ. भूतबलिने चौवीस अनुयोगद्वारोंसे स्थितिबन्धकी प्ररूपणा करनेके पश्चात् भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि इन तीन अनुयोगद्वारोंसे भी स्थितिबन्धकी औरभी विशेष प्ररूपणा की है। पहले समयमें अल्प स्थितिका बन्ध करके अनन्तर समयमें अधिक स्थितिके बन्ध करनेको भुजाकार बन्ध कहते हैं। भुजाकार बन्धसेही अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य बन्धोंका भी ग्रहण किया जाता है। पहले समयमें अधिक स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें अल्पस्थितिके बन्ध करनेको अल्पतर बन्ध कहते हैं। पहले समयमे जितनी स्थितिका बन्ध किया, दूसरे समयमें उतनी ही स्थितिके बन्ध करनेको अवस्थित बन्ध कहते हैं। विवक्षित कर्मके बन्धका अभाव हो जाने पर पुनः उसके बन्ध करनेको अवक्तव्य बन्ध कहते हैं। इस भुजाकार बन्धका समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन,

काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अनुयोगद्वारोंसे स्थितिबन्धका और भी विशेष वर्णन किया गया है।

पदनिक्षेप— वृद्धि, हानि और अवस्थानरूप तीन पदोंके द्वारा स्थितिबन्धके वर्णन करनेको पदनिक्षेप कहते हैं। इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि यदि कोई एक जीव प्रथम समयमें अपने योग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करता है और द्वितीय समयमें वह स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करता है, तो उसके बन्धमें अधिकसे अधिक कितनी वृद्धि हो सकती है और कमसे कम कितनी वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार यदि कोई जीव प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धको करके अनन्तर समयमें वह स्थितिको घटाकर बन्ध करता है, तो उस जीवके बन्धमें अधिकसे अधिक कितनी हानि हो सकती है और कमसे कम कितनी हानि हो सकती है। वृद्धि और हानि होनेके बाद जो एकसा समान स्थितिबन्ध होता है, उसे अवस्थित बन्ध कहते हैं। इस पदनिक्षेपका समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारोंसे वर्णन किया गया है।

वृद्धि— इस अनुयोगद्वारमें षड्गुणी वृद्धि और हानिकेद्वारा स्थितिबन्धका विचार भुजाकार बन्धके समान तेरह अधिकारोंसे किया गया है।

अनुभागबन्धकी प्ररूपणा चौवीस अनुयोगद्वारोंसे करनेके बाद भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान इन चार अनुयोगद्वारोंसे भी अनुभागकी प्ररूपणा की गई है। भुजाकारादि तीन का स्वरूप तो स्थितिबन्धके समान ही जानना चाहिए। केवल यहां स्थितिके स्थानपर अनुभाग कहना चाहिए। इन तीन अनुयोगद्वारोंसे अनुभागबन्धकी प्ररूपणा करनेके पश्चात् स्थान-अनुयोगद्वारमें अनुभागबन्धके कारणभूत अध्यवसानस्थानोंकाभी अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा और तीव्र-मन्दता आदि अनेक अनुयोगद्वारोंसे अनुभाग सम्बन्धी अनेक सूक्ष्म बातोंकी विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

प्रदेशबन्धकी प्ररूपणा चौवीस अनुयोगद्वारोंसे करनेके पश्चात् भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि, अध्यवसान समुदाहार और जीवसमुदाहार इन पांच अनुयोगद्वारोंसे भी प्रदेशबन्धकी प्ररूपणा की गई है। भुजाकारादि तीनका स्वरूप पूर्ववत् है। केवल यहांपर अनुभागके स्थानपर प्रदेश जानना चाहिए। अध्यवसानसमुदाहारमें प्रदेशबन्ध स्थानोंकी और उनके कारणभूत योगस्थानोंके परिणाम और अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है। जीवसमुदाहारमें उक्त दोनोंकी प्ररूपणा प्रदेशबन्धके करनेवाले जीवोंके आधारसे की गई है।

इस प्रकार भगवान् भूतबलिने प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धका निरूपण बहुत विस्तारके साथ किया है, इसलिए इस छठे खण्डका नाम ' महाबन्ध ' प्रसिद्ध हुआ है।

गाथासूत्र

षट्खण्डागमके मूल सूत्रोंका आद्योपान्त पारायण करनेपर गद्यरूप सूत्रोंके अतिरिक्त गाथासूत्र भी वेदनाखण्डमें ५ और वर्गणाखण्डमें २८ उपलब्ध हैं। वेदनाखण्डके वेदनाभावविधान-अनुयोगद्वारका वर्णन करते हुए उत्तरप्रकृतियोंके अनुभाग-सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनेके लिए पहले तीन गाथासूत्र दिये हैं और उन्हींके आधारपर आगे सूत्र-रचना करते हुए आ० भूतबलि कहते हैं–

' एत्तो उक्कस्सओ चउसट्ठिपदियो महादंडओ कादव्वो भवदि। '

(षट् खं० पृ. ६२१)

अर्थात् इससे आगे अब चौसठ पदवाला महादण्डक कथन करनेके योग्य है। और इसके अनन्तर वे ५२ सूत्रोंके द्वारा उन तीन गाथाओंके पदोंका विवरण करते हैं। इस चौसठ पदिक अल्पबहुत्वकी उत्थानिकामें धवलाकार लिखते हैं–

" इन तीन गाथाओंद्वारा कहे गये चौसठ पदवाले उत्कृष्ट अनुभागके अल्पबहुत्वसम्बन्धी महादण्डकके अर्थकी प्ररूपणार्थ मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिए आचार्य उत्तरसूत्र कहते हैं–"

उन तीन गाथासूत्रोंमें पहली गाथा इस प्रकार है–

" सादं जसुच्च दे कं ते आ वे मणु अणंतगुणहीणा।
ओ मिच्छ के असादं वीरिय अणंताणु संजलणा ॥ १ ॥ "

इस गाथाके एक एक शब्द या पदको लेकर आ० भूतबलिने १९ सूत्रोंकी रचना की है। यथा–

सव्वमंदाणुभागं सादा वेदणीयं ॥ ६६ ॥ जसगित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ ६७ ॥ देवगदी अणंतगुणहीणा ॥ ६८ ॥ कम्मइयसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ६९ ॥ तेयासरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७० ॥ आहारसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७१ ॥ वेउव्वियसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७२ ॥ मणुसगदी अणंतगुहीणा ॥ ७३ ॥ ओरालियसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७४ ॥ मिच्छत्त-मणंतगुणहीणं ॥ ७५ ॥ केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं असादवेदणीयं वीरियंतराइयं च चत्तारि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ ७६ ॥ अणंताणुबंधिलोभो अणंतगुणहीणो ॥ ७७ ॥ मायाविसेसहीणा ॥ ७८ ॥ कोधो विसेसहीणो ॥ ७९ ॥ माणो विसेसहीणो ॥ ८० ॥ संजलणाए लोभो अणंतगुणहीणो ॥ ८१ ॥ माया विसेसहीणा ॥ ८२ ॥ कोधो विसेसहीणो ॥ ८३ ॥ माणो विसेसहीणो ॥ ८४ ॥ (प्रस्तुत ग्रन्थ. ६२१–२२)

यहां पर इतने बड़े उद्धरण देनेका प्रयोजन यह है कि पाठक स्वयं यह अनुभव कर सकें कि गाथा-पठित संकेतरूप एक एक शब्दसे किस प्रकार उसके पूरे अर्थका गद्यसूत्रोंके द्वारा

विवरण किया गया है। गाथासूत्र-द्वारा नामके आदि अक्षरसे उसके पूरे नामको ग्रहण करनेकी सूचना की गई है। यथा– 'साद' से सातावेदनीय, 'जस' से यशःकीर्त्ति, 'उच्च' से उच्च गोत्र, 'दे' से देवगति, 'क' से कार्मणशरीर, 'ते' से तैजसशरीर, 'आ' से आहारकशरीर, 'वे' से वैक्रियिकशरीर, और 'मणु' से मनुष्यगतिका अर्थ ग्रहण किया गया है। इन सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणित हीन है, इस बातकी सूचना गाथाके पूर्वार्धके अन्तमें पठित '*अणंतगुणहीणा*' पदसे दी गई है।

नामके आदि अक्षरके द्वारा पूरे नामको ग्रहण करनेकी संकेतप्रणाली भारतवर्षमें बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। द्वादशाङ्ग श्रुतमें ऐसे संकेतरूप पदोंको 'बीजपद' कहा गया है। किसी विस्तृत वर्णनको संक्षेपमें कहनेके लिए इन बीजपदोंका आश्रय लिया जाता रहा है। कसायपाहुडके मूल गाथा-सूत्रोंमें कितने ही गाथा-सूत्र ऐसे है, जिनके एक एक पद-द्वारा बहुत भारी विशाल अर्थको ग्रहण करनेकी सूचना गाथाकारने की है और व्याख्यानाचार्योंने उस एक एक पदके द्वारा सूचित महान अर्थका व्याख्यान अपने शिष्योंके लिए किया है।

प्रकृतमें कहनेका अभिप्राय यह है कि ऊपर दी गई गाथाको और उसके आधारपर रचे गये अनेक सूत्रोंको सामने रखकर जब हम षट्खण्डागमके समस्त गद्यसूत्रोंपर गहरी दृष्टि डालते हैं और उपलब्ध जैनवाङ्मयके साथ तुलना करते हैं, तो ऐसा कहनेको जी चाहता है कि *आचार्य धरसेनने भूतबलि और पुष्पदन्तको जो महाकम्मपयडिपाहुड पढ़ाया था वह इसी प्रकारकी संकेतात्मक गाथाओंमें रहा होगा*। इसका आभास धवला टीकाके उस अंशसे भी होता है, जिसमें कहा गया है कि "इस प्रकार अति सन्तुष्ट हुए धरसेन भट्टारकने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वारमें 'ग्रन्थ' पढ़ाना प्रारम्भ किया और क्रमसे व्याख्यान करते हुए उन्होंनें आषाढ़ शुक्ला एकादशीके पूर्वाह्णमें 'ग्रन्थ' समाप्त किया।

धवला टीकाका वह अंश इस प्रकार है–

पुणो .... सुट्ठु तुट्ठेण धरसेणभडारएण सोम-तिहि-णक्खत्तवारे '**गंथो**' पारद्धो। पुणो कमेण वक्खाणंतेण आसाढमास-सुक्कपक्ख-एक्कारसीए पुव्वण्हे '**गंथो**' समाणिदो।

(धवला, पु. १, पृ. ७०)

इस उद्धरणमें दो वार आया हुआ '**ग्रन्थ**' शब्द और '**वक्खाणंतेण**' यह पद खास तौरसे ध्यान देनेके योग्य है। 'ग्रन्थ' शब्दका *निरुक्ति-जनित अर्थ है*– '*गूंथा गया*' शास्त्र। यह गूंथनारूप शब्द-रचना गद्य और पद्य दोनों रूपमें सम्भव है, ऐसी आशंका यहां की जा सकती है। किन्तु कसायपाहुड आदिको देखते हुए और ऊपर-निर्दिष्ट एवं इस षट्खण्डागममें उपलब्ध अनेक सूत्र-गाथाओंको देखते हुए यह निःसंशय कहा जा सकता है कि आचार्य धरसेनको महाकम्मपयडिपाहुडके विशाल अर्थकी उपसंहार करनेवाली सूत्र-गाथाएँ आचार्यपरम्परासे प्राप्त थी,

जिनका कि 'व्याख्यान' उन्होंने अपने दोनों शिष्योंके लिए किया। अपनी इस बातके समर्थनमें इन्हीं गाथाओंमेंसे मैं कुछ ऐसी गाथाओंको प्रमाण रूपसे उपस्थित करता हूं कि जिनका उल्लेख मात्र ही षट्खण्डागमकारने किया है, किन्तु उनका अर्थ-बोध सुगम होनेसे उनपर कोई सूत्ररचना पृथग् रूपसे नहीं की है। अर्थात् उन गाथाओंको ही अपने ग्रन्थका अंग बना लिया गया है। इसके लिए देखिए प्रकृतिअनुयोगद्वारके भीतर आई हुई अवधिज्ञानका वर्णन करनेवाली १५ गाथाएँ। (प्रस्तुत ग्रन्थके पृ. ७०३ से ७०७ तक।)

परिशिष्टमें गाथासूत्र-पाठ दिया हुआ है। उनमेंसे प्रारम्भकी तीन गाथाओंपर ५२ सूत्र रचे गये हैं। (देखो पृ. ६२१ से ६२४ तक) उनसे आगेकी तीन गाथाओंपर ५६ सूत्र रचे गये हैं। (देखो पृ. ६२४ से ६२७ तक) उनसे आगेकी 'सम्मत्तुप्पत्तीए' इत्यादि दो गाथाओंपर २२ सूत्र रचे गये हैं। (देखो पृ. ६२७ से ६२९ तक।)

यहां यह बात ध्यान देनेकी है कि इन गाथाओंके आधारपर रचे गये सूत्रोंको स्वयं धवलाकारने चूर्णिसूत्र कहा है। यथा—

(१) 'अट्ठामिणि—' इत्यादि दूसरी सूत्रगाथाकी टीका करते हुए शंका उठाई गई है कि 'कधं सव्वमिदं णव्वदे ?' अर्थात् यह सब किस प्रमाणसे जाना जाता है? तो इसके समाधानमें कहा गया है कि 'उवरि भण्णमाण**चुण्णिसुत्तादो**', अर्थात् आगे कहे जानेवाले **चूर्णिसूत्रसे** जाना जाता है। (देखो धवला पु. १२, पृ. ४२–४३)

(२) 'तिय' इदि वुत्ते ओहिणाणावरणीय·········समाणाणं गहणं। कधं समाणत्तं णव्वदे ? **उवरिभण्णमाणचुण्णिसुत्तादो**। (धवला पु. १२, पृ. ४३)

इस उद्धरणमें भी यही शंका उठाई गई है कि 'तिय' पदसे अवधिज्ञानावरणीय आदि इन्हीं तीन प्रकृतियोंका कैसे ग्रहण किया गया है यह कैसे जाना ? उत्तर दिया गया— कि आगे कहे जानेवाले चूर्णिसूत्रसे जाना।

उपर्युक्त दो उद्धरणोंके प्रकाशमें यह बात असंदिग्धरूपसे सिद्ध होती है कि उन गाथाओंके अर्थ-स्पष्टीकरणार्थ जो गद्यसूत्रोंकी रचना की गई है, उन्हें धवलाकार 'चूर्णिसूत्र' कह रहे हैं। ठीक वैसे ही, जैसे कि कसायपाहुडकी गाथाओंके अर्थ-स्पष्टीकरणार्थ यतिवृषभाचार्यद्वारा रचे गये सूत्रोंको उन्होंने [वीरसेनाचार्यने] चूर्णिसूत्र कहा है।

इसके अतिरिक्त जैसे यतिवृषभाचार्यने कसायपाहुडकी गाथाओंकी व्याख्या करते हुए '**विहासा, वेदादि त्ति विहासा**' [कसायपाहुड सुत्त पृ. ७६४–७६५] इत्यादि कह कर पुनः गाथाके अर्थको स्पष्ट करनेवाले चूर्णिसूत्रोंकी रचना की है, ठीक उसी प्रकारसे षट्खण्डागमके कितने ही स्थलोंपर हमें यही बात दृष्टिगोचर होती है, जिससे हमारे उक्त कथनकी और भी पुष्टि

होती है। यथा–

(१) 'कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा'।

[प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ. २५९ सू. २]

(२) 'केवडिकालट्ठिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा, ण लब्भदि वा त्ति विभासा'। [प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ. ३०१, सू. १]

यहां यह बात ध्यान देनेकी है कि उक्त दोनों उद्धरण जीवस्थानकी प्रथम चूलिकाके पहले सूत्र पर आधारित हैं, उस सूत्रकी शब्दावली और रचना-शैलीको देखते हुए यह भाव सहजमें ही हृदयपर अंकित होता है कि उस सूत्रकी रचना किन्हीं दो गाथाओंके आधारपर की गई है। वह सूत्र इस प्रकार है–

" कदि काओ पयडीओ बंधदि, केवडिकालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं लंभदि वा ण लभदि वा केवचिरेण वा कालेण कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा संपुण्णं– पडिवज्जंतस्स।' [प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ. २५९ सू. १]

मेरी कल्पनाके अनुसार इस सूत्रकी रचना जिन गाथाओंके आधारपर की गई है, वे गाथाएँ कुछ इस प्रकारकी होनी चाहिए–

कदि काओ पयडीओ बंधदि केवडिट्ठिदीहि कम्मेहिं।
सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा [ऽ णादियो जीवो] ॥ १ ॥
केवचिरेण व कालेण कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं।
उवसामणा व खवणा केसु व सेत्तेसु कस्स व मूले ॥ २ ॥

यहां यह बात ध्यान देनेकी है कि कोष्ठकान्तर्गत पाठके अतिरिक्त सब पद उपर्युक्त सूत्रके ही हैं, जिनसे कि गाथा निर्माण की गई हैं।

ऊपर जिन आठ संकेतात्मक सूत्रगाथाओंका उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त प्रकृति-अनुयोगद्वारमें अवधिज्ञानकी प्ररूपणा करनेवाली १५ सूत्र गाथाएँ पाई जाती हैं, उनमेंसे अधिकांश तो ज्योंकी त्यों, और कुछ साधारणसे शब्दभेदके साथ प्राकृत पंचसंग्रह और गो० जीवकाण्डमें पाई जाती है। इसी प्रकार बन्धन अनुयोगद्वारके अन्तर्गत जो ९ सूत्र गाथाएँ आई हैं, वे भी उक्त ग्रन्थोंमें पाई जाती हैं। साथ ही ये सभी गाथाएँ ज्योंकी त्यों, या कुछ शब्दभेदके साथ श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थों और निर्युक्ति आदिमें पाई जाती हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि दि० श्वे० मत-भेद होनेके पूर्वसे ही उक्त गाथाएँ आचार्य-परम्परासे चली आ रही थीं

और समय पाकर वे दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका अंग बन गई।

षट्खण्डागममें आई हुई सूत्रगाथाएँ अन्यत्र कहां कहां मिलती हैं, उसका विवरण इस प्रकार है—

क्रमांक	षट्खण्डागम	पृष्ठ—	अन्यग्रन्थ-स्थल
१	सम्मत्तुप्पत्ती विय	(६२७)	कम्मपयडी उदय. गा. ८ पत्र ८ गो. जीवकांड. गा. ६६
२	खवए य खीणमोहे	,,	कम्मपयडी उदय. गा. ९* पत्र ८ गो. जीवकांड गा. ६७
३	संजोगावरणट्ठं	(७०१)	
४	पज्जय-अक्खर-पद	,,	गो. जीवकांड, गा. ३१७ उत्तरार्ध पाठभेद
५	ओगाहणा जहण्णा	(७०३)	
६	अंगुलमावलियाए	,,	गो. जीवकांड गा. ४०४
७	आवलियपुधत्तं	,,	गो. जीवकांड गा. ४०५
८	भरहम्मि अद्धमासं	,,	गो. जीवकांड गा. ४०६
९	संखेज्जदिमे काले	(७०४)	गो. जीवकांड गा. ४०७
१०	कालो चदुण्ह वुड्ढी	(७०४)	गो. जीवकांड गा. ४१२
११	तेया-कम्मसरीरं	,,	
१२	पणुवीस जोयणाणं	(७०५)	गो. जीवकांड गा. ४२६
१३	असुराणमसंखेज्जा	,,	गो. जीवकांड गा. ४२७
१४	सक्कीसाणा पढमं	,,	मूलाराधना गा. ११४८ गो. जीवकांड गा. ४३०
१५	आणद-पाणदवासी	(७०६)	गो. जीवकांड गा. ४३१
१६	सव्वं च लोगणालिं	,,	गो. जीवकांड गा. ४३२
१७	परमोहि असंखेज्जाणि	,,	
१८	तेयासरीरलंबो	(७०७)	
१९	उक्कस्स माणुसेसु य	,,	
२०	णिद्धणिद्धा ण बज्झंति	(७२६)	गो. जीवकांड गा. ६१२
२१	णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण	(७२७)	गो. जीवकांड गा. ६१५

*इस गाथाके द्वितीय चरणमें 'जिणे य दुविहे असंखगुण सेढी' ऐसा पाठ है। षट्खंडागमके सूत्रोंमें केवली जिनके दोनों भेदोंको लेकरही ११ स्थान बतलाए गये हैं।

२२	साहारणमाहारो	(७३८)	गो. जीवकांड गा. १९२
२३	एयस्स अणुग्गहणं	,,	
२४	समगं वक्कंताणं	,,	
२५	जत्थेउ मरइ जीवो	,,	गो. जीवकांड गा. १९३
२६	बादर सुहुमणिगोदा	(७३८)	
२७	अत्थि अणंता जीवा	,,	गो. जीवकांड गा. १९७
२८	एगणिगोदसरीरे	(७३९)	गो. जीवकांड गा. १९६

वेदना अनुयोगद्वारके भीतर ज्ञानावरणादि कर्मोंकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनाका स्वामी गुणित-कर्मांशिक जीवको बतलाया गया है। इस गुणितकर्मांशिक जीवके स्वरूपकी प्ररूपणा षट्खंडागममें उक्त स्थानपर २६ सूत्रोंमें की गई है। इन सब सूत्रोंका आधार कम्मपयडीकी संक्रमकरणकी निम्न लिखित ५ गाथाएं हैं। इनके साथ पाठक षट्खंडागमके निम्न सूत्रोंका मिलान करें—

कम्मपयडी – गाथा

१ जो बायरतसकालेणूणं कम्मट्ठिइं तु पुढवीए। बायर पज्जत्तापज्जत्तगदीहेयरद्धासु ॥ ७४ ॥ जोगकसाउक्कोसो बहुसो निश्चमवि आउबंधंच। जोगजहुण्णेणुवरिल्लठिइनिसेगं बहुं किच्चा ॥७५॥ बायरतसेसु तक्कालमेवमंते य सत्तमखिईए। सव्वलहुं पज्जत्तो जोगकसायाहिओ बहुसो ॥ ७६ ॥ जोगजवमज्झउवरिं मुहुत्तमच्छित्तु जीवियवसाणे। तिचरम-दुचरिमसमए पूरित्तु कसाय-उक्कस्सं ॥ ७७ ॥ जोगुक्कस्सं चरिम-दुचरिमे समए य चरिमसमयम्मि। संपुन्नगुणियकम्मो पगयं तेणेह सामित्ते ॥ ७८ ॥

षटखंडागम – सूत्र

जो जीवो बादरपुढवीजीवेसु वेसागरोवमसहस्सेहि सादिरेगेहि ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो ॥ ७ ॥ तत्थ य संसरमाणस्स बहुवा पज्जत्तभवा थोवा अपज्जत्तभवा ॥ ८ ॥ दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ ॥ ९ ॥ जदा जदा आउअं बंधादि तदा तदा तप्पाओग्गेण जहण्णएण जोगेण बंधादि ॥ १० ॥ उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे ॥ ११ ॥ बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ १२ ॥ बहुसो बहुसो बहुसंकिलेस परिणदो भवदि ॥ १३ ॥ एवं संसरिदूण बादर तसपज्जत्तएसुववण्णो ॥ १४ ॥ तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ पज्जत्तभवा, थोवा अपज्जत्तभवा ॥ १५ ॥ दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ ॥ १६ ॥ जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि ॥ १७ ॥ उवरिल्लीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे ॥ १८ ॥ बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ १९ ॥ बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणदो

भवदि ॥ २० ॥ एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो ॥ २१ ॥ तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्सेण जोगेण आहारिदो ॥ २२ ॥ उक्कस्सिमाए वड्ढीए वड्ढिदो ॥ २३ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥२४॥ तत्थ भवट्ठिदी तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ २५ ॥ आउअमणुपालेंतो बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ २६ ॥ बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि ॥ २७ ॥ एवं संसरिदूण थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥ २८ ॥ चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ २९ ॥ दुचरिम-तिचरिमसमए उक्कस्ससंकिलेसं गदो ॥ ३० ॥ चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो ॥ ३१ ॥ चरिमसमय तब्भवत्थस्सणाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा ॥ ३२ ॥

(प्रस्तुत ग्रन्थ ५४१–५४५)

इसी वेदना-अनुयोगद्वारके भीतर ज्ञानावरणादि कर्मोंकी जघन्य द्रव्यवेदनाका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव बतलाया है। इसका स्वरूप षट्खंडागममें २७ सूत्रोंकेद्वारा बतलाया गया है, जब कि वह कम्मपयडीमें केवल ३ गाथाओंमें है। पाठक इन दोनोंकी भी तुलना करें—

कम्मपयडी–गाथा

१ पल्लासंसियभागेण-कम्मठिइमच्छिओ निगोएसु। सुहुमेसुऽभवियजोग्गं जहन्नयं कट्टु निग्गम्म ॥ ९४ ॥ २ जोग्गेसुऽसंखवारे सम्मत्तं लभिय देसविरइं च। अट्ठक्खुत्तो विरइं संजोयणहा तइयवारे ॥ ९५ ॥ ३ चउरुवसमित्तु मोहं लहुं खवंतो भवे खवियकम्मो। पाएण तहिं पगयं पडुच्च काओ वि सविसेसं ॥ ९६ ॥

छक्खंडागम–सूत्र

जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो ॥ ४९ ॥ तत्थ य संसरमाणस्स बहुवा अपज्जत्तभवा, थोवा पज्जत्तभवा ॥ ५० ॥ दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ ॥ ५१ ॥ जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गुक्कस्स जोगेण बंधदि ॥ ५२ ॥ उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे, हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिस्सेयस्स उक्कस्सपदे ॥ ५३ ॥ बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ ५४ ॥ बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि ॥ ५५ ॥ एवं संसरिदूण बादरपुढवि जीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ५६ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ५७ ॥ अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो ॥५८॥ सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सिओ ॥ ५९ ॥ संजमं पडिवण्णो ॥ ६० ॥ तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजम मणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो ॥ ६१ ॥ सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो

॥ ६२ ॥ मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो ॥ ६३ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ६४ ॥ अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो ॥६५॥ तत्थ य भवट्ठिदिं दसवास सहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो ॥ ६६ ॥ मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ६७ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ६८ ॥ अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ६९ ॥ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ठिदिखंडयघादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुत्पत्तियं कादूण पुणरवि बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ७० ॥ एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामइत्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजमकंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो ॥ ७१ ॥ सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सिओ ॥ ७२ ॥ संजमं पडिवण्णो ॥ ७३ ॥ तत्थ भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति य खवणाए अब्भुट्ठिदो ॥ ७४ ॥ चरिमसमयछदुमत्थो जादो । तस्स चरिम समयछदुमत्थस्स णाणावरणीयवेदणा दव्वदो जहण्णा ॥ ७५ ॥

जीवस्थानकी छठी चूलिकामें सभी कर्मप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति, उत्कृष्ट आबाधा और कर्मनिषेकके प्रमाणकी प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार सातवीं चूलिकामें भी सभी कर्मप्रकृतियोंकी जघन्यस्थिति आदिकी प्ररूपणा की गई है। कम्मपयडीकी मूलगाथाओंमें उक्त दोनों स्थितियोंका वर्णन स्थितिबन्ध प्ररूपणामें गाथाङ्क ७० से ७८ तक पाया जाता है। इन गाथाओंकी चूर्णिसे जब हम उक्त दोनों प्ररूपणाओंके सूत्रोंकी तुलना करते हैं, तो उसपर षट्खण्डागमके उक्त स्थलके सूत्रोंका प्रभाव स्पष्ट दिखाई ही नहीं देता, प्रत्युत यह कहा जा सकता है कि उक्त चूर्णि षट्खण्डागमके सूत्रोंको सामने रख कर लिखी गई है। यहां दोनोंकी समतावाला एक उद्धरण देना पर्याप्त होगा–

> " पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणामुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ४ ॥ तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा ॥ ५ ॥ आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ " ॥ ६ ॥
>
> (षट्खण्डा० उक्कस्सट्ठि० चू. पृ. ३०१)

अब उक्त सूत्रोंका मिलान कम्मपयडीकी चूर्णिसे कीजिए–

> " पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं असातवेयणिज्जस्स उक्करिसगो उ ठितिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ । तिन्नि वाससहस्साणि अबाहा । अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मणिसेगो ।
>
> (कम्मपयडी चूर्णि, बंधनक. पत्र १६१)

गो. कर्मकाण्डमें स्थिति बन्धके भीतर सभी मूल और उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिका वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् आबाधाका लक्षण बतलाकर और प्रत्येक कर्मका आबाधाकाल निकालनेका नियम बतला करके आबाधारहित कर्म निषेकका निरूपण किया गया है। जो वहांके प्रकरणकी रचना-शैलीको देखते हुए उचित है, फिरभी यह तो स्पष्ट ही है कि कर्मकाण्डकी उक्त सन्दर्भकी रचना षट्खण्डागमसूत्रोंकी आभारी है।

यहां यह बतला देना आवश्यक समझता हूं कि निषेक-प्ररूपणाका जितनाभी वर्णन षट्खण्डागमसूत्रोंमें यहांपर या अन्यत्र देखनेमें आता है, वह कम्मपयडीकी मूलगाथाओंका आभारी है। निषेक-प्ररूपणासम्बन्धी कम्मपयडी और गो. कर्मकाण्डकी एक गाथाकी तुलना यह अप्रासंगिक न होगी—

मोत्तूणं सगमबाहं पढमाइ ठिईइ बहुतरं दव्वं। एत्तो विसेसहीणं जावुक्कोसं ति सव्वेसिं॥

(कम्मप, स्थिति. पत्र १७८)

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु। तत्तो विसेसहीणं विदियस्सादिमणिसेओ त्ति

(गो. कर्मकाण्ड)

दोनों गाथाओंकी समता और विशेषताका रहस्य विद्वज्जन स्वयं हृदयङ्गम करेंगे।

षट्खण्डागमके वेदनाखण्डान्तर्गत द्रव्यविधानचूलिकामें योगसम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा २८ सूत्रों मे की गई है, जब की उक्त वर्णन कम्मपयडीमें केवल २ गाथाओंकेद्वारा किया गया है। यहांपर पाठकोंके अवलोकनार्थ हम उसे उद्धृत कर रहे हैं—

कम्मपयडी-गाथा—

सव्वत्थोवो जोगो साहारणसुहुमपढमसमयम्मि। बायर वियतियचउरमणसन्नपज्जत्तग जहण्णो॥ १४॥ आइयुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरे य कमा। उक्कोसजहन्नियरो असमत्तियरे असंखगुणो॥ १५॥

षट्खण्डागम-सूत्र—

सव्वत्थोवो सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो॥ १४५॥ बादरेइंदिय-अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो॥ १४६॥ बीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो॥ १४७॥ तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो॥ १४८॥ चउरिंदियअपज्जत्तयस्य जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो॥ १४९॥ असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्ज-गुणो॥ १५०॥ सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो॥ १५१॥ सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो॥ १५२॥ बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो

असंखेज्जगुणो ॥ १५३ ॥ सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५४ ॥ बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५५ ॥ सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५६ ॥ बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५७ ॥ बीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५८ ॥ तीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥१५९॥ चदुरिंदिय अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥१६०॥ असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६१ ॥ सण्णिपंचिंदिय अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६२ ॥ बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६३ ॥ तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६४ ॥ चदुरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६५ ॥ असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६६ ॥ सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६७ ॥ बीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६८ ॥ तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६९ ॥ चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १७० ॥ असण्णि पंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १७१ ॥ सण्णि-पंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १७२ ॥

(षट्खंडागम पृ. ५५९–५६१)

यहां यह ज्ञातव्य है कि इन दोनों गाथाओंकी चूर्णि षट्खण्डागमके उक्त सूत्रोंके साथ शब्दशः साम्य रखती है। जिसे पाठक वहींसे मिलान करें।

षट्खण्डागममें इसी वेदनाकालविधान चूलिकाके अन्तर्गत योगस्थानप्ररूपणा करनेवाले १० अनुयोगद्वार आये हैं, उनके नामादिभी कम्मपयडीमें ज्योंके त्यों पाये जाते हैं। यथा–

कम्मपयडी–गाथा

चूर्णि– संसारत्थाणं सव्वजीवाणं जहण्णुक्कस्स जोगजाणत्थं भण्णति– अविभाग-वग्ग-फड्डग-अंतर-ठाणं अणंतरोवणिहा। जोगे परंपरावुड्ढि-समय-जीवप्पा बहुगंच ॥ ५ ॥

(बंधनकरण पत्र २३)

षट्खण्डागम–सूत्र

जोगट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १७५ ॥ अविभागपडिच्छेदपरूवणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा अंतरपरूवणा ठाणपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा समयपरूवणा वड्ढिपरूवणा अप्पाबहुए त्ति ॥ १७६ ॥

(षट्खण्डागम पृ. ५६२)

उक्त गाथाकी चूर्णिमें १० प्ररूपणाओंके नाम ठीक षट्खण्डागमके सूत्रोंके शब्दोंमें ही गिनाये गये हैं।

षट्खण्डागम पृ. ५८६ पर प्रथम कालविधानचूलिका प्रारम्भ करते हुए जो चार अनुयोगद्वार ज्ञातव्य कहे हैं, वे और उन चारोंकी प्ररूपणाके सूत्र कम्मपयडीकी स्थितिबन्धप्रकरणवाली गा. ६८-६९ के आधार पर रचे गये हैं। वे दोनों गाथाएं इस प्रकार हैं—

> १ ठिइबंधट्ठाणाइं सुहुमअपज्जत्तगस्स थोवाइं। बायरसुहुमेयर बितिचउरिंदियअमणसन्नीणं ॥ ६८ ॥ संखेज्जगुणाणि कमा असमत्तियरे य बिंदियाइम्मि। नवरमसंखेज्जगुणाणि संकिलेसा य सव्वत्थ ॥ ६९ ॥
>
> (कम्मपयडी बन्धनकरण पत्र १६०)

यहां यह द्रष्टव्य है कि जिस प्रकार षट्खण्डागममें सूत्रांक ३७ से ५० तक पहले स्थितिबन्धस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा गया है, और तत्पश्चात् सूत्र ५१ से ६४ तक संक्लेशविशुद्धि स्थानोंका अल्पबहुत्व कहा गया है, उसकी सूचना भी दूसरी गाथाके चतुर्थ चरण ' संकिलेसा य सव्वत्थ ' इस पदसे कर दी गई है। जिसका विस्तार आ. भूतबलिने उक्त सूत्रोंकेद्वारा किया है।

यहां यह बात भी ध्यान देनेकी है कि षट्खण्डागमके समानही कम्मपयडीचूर्णिमें पहले स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंका और पीछे संक्लेशविशुद्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व ठीक उन्ही शब्दों में दिया गया है। जिससे षट्खण्डागमके सूत्रोंका प्रभाव कम्मपयडीकी चूर्णिपर स्पष्ट लक्षित होता है।

षट्खण्डागमके पृ. ५८८ पर सूत्राङ्क ६५ से १०० तक के सूत्रों द्वारा जो स्थितिबन्ध सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा गया है वह कम्मपयडीकी स्थितिबन्धसम्बन्धी गा. ८१-८२ पर आधारित है। इन गाथाओंकी चूर्णिमें जो उक्त अल्पबहुत्व दिया गया है वह गाथाके व्याख्यात्मक पदोंके सिवाय षट्खण्डागमके सूत्रोंके साथ ज्योंका त्यों साम्य रखता है, जिसके लिए चूर्णि उक्त सूत्रोंकी आभारी है। (देखो कम्मपयडी, स्थिति बं. पत्र १७४-१७५)

षट्खण्डागमके पृ. ५९१ के सू. १०१ से लगाकर १२२ वें सूत्र (पृ. ५९६) तक जो निषेक प्ररूपणा अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा इन दो अनुयोगद्वारोंसे की गई है, वह कम्मपयडीके बंधनकरणकी गा. ८३-८४ की आभारी है। तथा इन दोनों गाथाओंकी चूर्णि षट्खण्डागमके उक्त सूत्रोंके साथ साम्य रखती है, जो स्पष्टतः उक्त सूत्रोंकी आभारी है। (देखो कम्मपयडी, स्थिति बं. पत्र १७९-१८०)

षट्खण्डागमके पृ. ५९६ से लेकर जो आबाधाकांडक प्ररूपणा प्रारम्भ होती है, उसका आधार कम्मपयडीकी बंधनकरणकी गा. ८५ और ८६ हैं। षट्खण्डागमके इस प्रकरणके सूत्र १२१ से लगाकर १६४ तकके समस्त सूत्रोंका प्रभाव उक्त दोनों गाथाओंकी चूर्णि पर स्पष्ट

दृष्टिगोचर होता है। चूर्णिके भीतर एक बात विशेष है कि प्रत्येक अल्पबहुत्वके पश्चात्‌ही उसका सयुक्तिक कारण भी कहा गया है। पाठकोंकी जानकारीके लिए यहां दो उद्धरण दिये जाते हैं--

षट्खण्डागम-सूत्र

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १२७ ॥ एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरम-संखेज्जगुणं ॥ १२८ ॥

(षट्खण्ड पृ. ५९७)

कम्मपयडी-चूर्णि

ततो णाणापदेसगुणहाणिठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि। पलिओवमवग्गमूलस्स असंखेज्जत्ति भागो त्ति काउं। एगं पदेसगुणहाणिठाणंतरं असंखेज्जगुणं। असंखेज्जाणि पलिओवमवग्गमूलाणि त्ति काउं।

(कम्मप. बंधन. पत्र १८२)

षट्खण्डागम पृ. ६०० से लेकर पृ. ६११ और सू. १६५ से २७९ तक कालविधान नामक दूसरी चूलिकी स्थितिबन्धाध्यवसानप्ररूपणामें जो जीवसमुदाहार, प्रकृतिसमुदाहार और स्थितिसमुदाहार इन तीन अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर वर्णन किया गया है, उसका आधार कम्मपयडीकी बन्धनकरणकी गाथा ८७ से लेकर १०१ तक की गाथाएँ हैं। (देखो कम्मपयडी बन्धनकरण पत्र १८६ से २०० तक)। इन गाथाओंकी चूर्णि षट्खण्डागमके उक्त सूत्रोंकी आभारी है। सूत्रोंमें तो वर्णन संक्षेपसे किया गया है, पर कम्मपयडीकी चूर्णिमें उसके भाष्यरूप विस्तृत वर्णन पाया जाता है, जो कि स्पष्टतः उसकी आधारता, पल्लवता और अर्वाचीनताको सिद्ध करता है।

षट्खण्डागम पृ. ६२७ पर वेदनाभावविधानकी प्रथम चूलिकाके प्रारम्भमें जो 'सम्मत्तुप्पत्तीए आदि २ सूत्र गाथाएँ दी हैं, वे कम्मपयडीके उदय अधिकारमें क्रमांक ८ और ९ पर ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं। साथही वहां पर जो उनकी चूर्णि दी हुई है, वह षट्खण्डागमके सू. १७५ से लेकर १९६ तकके सूत्रोंके साथ शब्दशः समान है। यहां यह द्रष्टव्य है कि गाथा सूत्रोंके आधार पर ही उक्त सूत्र रचे गये हैं। जिससे गाथाओंका पूर्वाचार्य परम्परासे आना सिद्ध है। यह गाथा और चूर्णिकी समता आकस्मिक नहीं है, अपितु ऐतिहासिक शोधमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

षट्खण्डागम पृ. ७३३ से ७३५ तक जो एकप्रदेशी वर्गणासे लेकर महास्कन्धवर्गणा तक २३ वर्गणाओंकी प्ररूपणा की गई है, उसके आधारभूत २ गाथाएं धवला टीका (पु. १४ पृ. ११७) में पाई जाती हैं, और वे ही गो. जीवकाण्ड में भी गाथांक ५९४ और ५९५ पर

पाई जाती हैं। इन २३ वर्गणाओंकी प्ररूपणा करनेवाली तीन गाथाएं कम्मपयडीमें (गा. १५–२० । बन्धनकरण पत्र ३९) पाई जाती हैं, पर उनकी विशेषता यह है कि उनमें ध्रुव, शून्य, आदि पदोंके स्पष्ट उल्लेखके साथ उनके गुणकार आदिका भी निर्देश पाया जाता है। इन तीनों गाथाओंकी व्याख्यात्मक चूर्णि कम्मपयडीमें दो प्रकारकी है– एक सामान्यसे कथन करनेवाली और दूसरी विशेषसे कथन करनेवाली। सामान्यसे २३ वर्गणाओंका वर्णन करनेवाली चूर्णि षट्खण्डागमके सूत्रोंके साथ शब्दशः समान है। (देखो कम्मपयडी, बन्धनकरण, पत्र ३९)

कम्मपयडीकी उपर्युक्त उद्धरणों और साम्य-स्थलोंके प्रकाश में सहजही यह प्रश्न उठता हैं कि, क्या षट्खण्डागमकारके सामने कम्मपयडी थी, और क्या उसे आधार बना करके उन्होंनें अपने ग्रन्थकी रचना की है?

यहां यह आक्षेप किया जा सकता है कि षट्खण्डागमकी रचना तो विक्रमकी दूसरी–तीसरी शताब्दीके लगभग हुई है, जब कि कम्मपयडी की रचना आ. शिवशर्मने विक्रमकी पांचवीं शताब्दीके आस-पासकी है, तब यह कैसे सम्भव है कि अपनेसे परवर्ती रचनाका उपयोग षट्खण्डागमकारनें किया हो?

इस आक्षेपका समाधान यह है कि शिवशर्मका समय विक्रमकी पांचवीं शताब्दी माना जाता है, यह ठीक है। और यहभी ठीक है कि उन्होंने कम्मपयडीका वर्तमानरूपमें संकलन पीछे किया है। पर इस विषयमें कम्मपयडीकी चूर्णिकारके निम्न उत्थानिका वाक्य अवलोकनीय हैं। वे लिखते हैं–

········ इमंमि जिणसासणे दुस्समाबलेण खीयमाणमेहाउसद्धासंवेगउज्जमारंभं अज्जकालियं साहुजणं अणुग्घेत्तुकामेण **विच्छिन्न कम्मपयडिमहागंत्थत्थ संबोहणत्थं** आरद्धं आयरिएणं तग्गुणणामगं **कम्मपयडीसंगहणी** णाम पगरणं। (कम्मपयडी पत्र १)

अर्थात् दुःषमा कालके प्रभावसे जिनकी बुद्धि, श्रद्धा, संवेग और उद्यम दिन पर दिन क्षीण हो रहा है, ऐसे अद्य (वर्तमान) कालिक साधुजनोंके अनुग्रहके लिए विच्छिन्न हुए महा-कम्मपयडिपाहुडके ग्रन्थार्थके सम्बोधनार्थ आचार्यनें उसी गुण और नामवाले इस कर्मप्रकृतिसंग्रहणी नामक प्रकरण को रचा।

इस उद्धरणमें तीन महत्त्वपूर्ण बाते उल्लिखित हैं–पहली तो यह कि इसके विषयका सम्बन्ध उस महाकम्मपयडिपाहुडसे है, जो कि षट्खण्डागमका भी उद्गम आधार है। दूसरी बात यह कि प्रकृत कम्मपयडीके रचनेके समय वह महाकम्मपयडिपाहुड विच्छिन्न हो गया था। तीसरी बात यह कि इसका पूरा नाम 'कम्मपयडिसंगहणी' है। 'कम्मपयडी' पदके पीछे लगा हुआ 'संगहणी' पद स्पष्टरूपसे बता रहा है कि उस विच्छिन्न हुए महाकम्मपयडिपाहुडका जो कुछ भी बिखरा हुआ

अंश आचार्य-परम्परासे उन्हें प्राप्त हुआ, वह उन्होंने ज्यों का त्यों इसमें संग्रह कर दिया है। इसीसे उसका ' कम्मपयडीसंगहणी ' यह नाम सार्थक है।

षट्खण्डागममें उपलब्ध अनेक सूत्र गाथाओंसे इतना तो सिद्ध ही है कि वह महाकम्मपयडिपाहुड गाथाओं में निबद्ध रहा है। उसकी वे गाथाएँ धरसेनाचार्यको प्राप्त थीं और कण्ठस्थ भी थीं। उन्हींको आधार बनाकर उन्होंने उनका व्याख्यान पुष्पदन्त और भूतबलिको किया। उन्हींके आधार पर उन्होंने अपनी षट्खण्डागम की रचना की। प्रकरण वश कहीं-कहीं उन्होंने गुरुमुखसे सुनी और पढ़ी हुई गाथाओंको लिख दिया है। उसी महाकम्मपयडिपाहुडकी अनेक गाथाएँ-जिनके आधारपर उन्होंनें षट्खण्डागमकी रचना की है - आचार्य-परम्परासे आती हुई आ. शिवशर्मको प्राप्त हुई और उन्होंने अपनी रचनामें उन्हे संकलित कर दिया- तो इतने मात्रसे ही क्या वे उनकी रची कहलाने लगेंगी। गो. जीवकांड और कर्मकाण्ड में ऐसी सैकडों गाथाएँ हैं, जो उसके रचयितासे बहुत पहलेसे चली आ रही हैं, मात्र उनके गोम्मटसारमें संग्रह होनेसे तो वे उसके रचयिता-द्वारा रचित नहीं मानी जा सकती।

उक्त सर्व कथनका अभिप्राय यह है कि भले ही कम्मपयडीकी रचना षट्खण्डागमसे पीछेकी रही आवे, परन्तु उसमें ऐसी अनेक गाथाएँ हैं, जो बहुत प्राचीन कालसे चली आ रहीं थीं। उनका ज्ञान षट्खण्डागमकारको था और उनके आधारपर अमुक-अमुक स्थलके सूत्रोंका उन्होंने निर्माण किया, इसके माननेमें कोई आपत्ति या आक्षेपकी बात नहीं है।

जीवस्थानका आधार

षट्खण्डागमके छह खण्डोंमें पहला खण्ड जीवस्थान है। इसका उद्‌गम धवलाकारने महाकम्मपयडिपाहुडके छठे बन्धन नामक अनुयोगद्वारके चौथे भेद बन्धविधानके अन्तर्गत विभिन्न भेद-प्रभेदरूप अवान्तर-अधिकारोंसे बतलाया है, यह बात हम प्रस्तावनाके प्रारम्भमें दिये गये चित्रादिकोंके द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं। जीवस्थानका मुख्य विषय सत्, संख्यादि आठ प्ररूपणाओंके द्वारा जीवकी विविध अवस्थाओंका वर्णन करना है। इसमें तो सन्देह ही नहीं, कि जीवस्थानका मूल उद्‌गमस्थान महाकम्मपयडिपाहुड था। और यतः कर्म-बन्ध करनेके नाते उसके बन्धक जीवका जबतक स्वरूप, संख्यादि न जान लिए जावें, तब तक कर्मोंके भेद-प्रभेदोंका और उनके स्वरूप आदिका वर्णन करना कोई महत्त्व नहीं रखता, अतः भगवत् पुष्पदन्तने सबसे पहले जीवोंके स्वरूप आदिका सत्, संख्यादि अनुयोगद्वारोंसे वर्णन करना ही उचित समझा। इस प्रकार जीवस्थाननामक प्रथम खण्डकी रचनाका श्रीगणेश हुआ।

पर जैसा कि मैंने वेदना और वर्गणाखण्ड में आई हुई सूत्रगाथाओंके आधारपर षट्खण्डागमसे पूर्व-रचित विभिन्न ग्रन्थोंमें पाई जानेवाली गाथाओंके तुलनात्मक अवतरण देकर यह

बताया है कि महाकम्मपयडिपाहुडका विषय बहुत विस्तृत था, और वह संक्षेपरूपसे कण्ठस्थ रखनेके लिए गाथारूपमें ग्रथित या गुम्फित होकर आचार्य-परम्परासे प्रवहमान होता हुआ चला आ रहा था, उसका जितना अंश आ. शिवशर्मको प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने अपनी 'कम्मपयडी-संगहणी'में संग्रहित कर दिया। इसी प्रकार उनके पूर्ववर्ती जिस आचार्यको जो विषय अपनी गुरुपरम्परासे मिला, उसे उन-उन आचार्योंने उसे गाथाओंमें गुम्फित कर दिया, ताकि उन्हें जिज्ञासु जन कण्ठस्थ रख सकें। समस्त उपलब्ध जैनवाङ्मयका अवलोकन करने पर हमारी दृष्टि एक ऐसे ग्रन्थ पर गई, जो षट्खण्डागमके प्रथमखण्ड जीवस्थानके साथ रचना-शैलीसे पूरी पूरी समता रखता है और अद्यावधि जिसके कर्त्ताका नाम अज्ञात है, किन्तु पूर्वभृत्-सूरि-सूत्रितके रूपमें विख्यात है। उसका नाम है जीवसमास। *

इसमें कुल २८६ गाथाएँ हैं और सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम आदि उन्हीं आठ अनुयोगद्वारोंसे जीवका वर्णन ठीक उसी प्रकारसे किया गया है, जैसा कि षट्खण्डागमके जीवस्थान नामक प्रथम खण्डमें। भेद है, तो केवल इतना ही, कि आदेशसे कथन करते हुए जीवसमासमें एक-दो मार्गणाओंका वर्णन करके यह कह दिया गया है कि इसी प्रकारसे धीर वीर और श्रुतज्ञ जनोंको शेष मार्गणाओंका विषय अनुमार्गण कर लेना चाहिए। तब षट्खण्डागमके जीवस्थानमें उन सभी मार्गणा स्थानोंका वर्णन खूब विस्तारके साथ प्रत्येक प्ररूपणामें पाया जाता है। यही कारण है कि यहां जो वर्णन केवल २८६ गाथाओंके द्वारा किया गया है, वहां वही वर्णन जीवस्थानमें १८६० सूत्रोंके द्वारा किया गया है।

जीवसमासमें आठों प्ररूपणाओंका ओघ और आदेशसे वर्णन करनेके पूर्व उस उस प्ररूपणाकी आधारभूत अनेक बातोंकी बड़ी विशद चर्चा की गई है, जो कि जीवस्थानमें नहीं है। हां, धवला टीकामें वह अवश्य दृष्टिगोचर होती है। ऐसी विशिष्ट विषयोंकी चर्चावाली सब मिलाकर लगभग १११ गाथाएँ हैं। उनको २८६ में से घटा देने पर केवल १७५ गाथाएँ ही ऐसी रह जाती हैं, जिनमें आठों प्ररूपणाओंका सूत्ररूपमें होते हुए भी विशद एवं स्पष्ट वर्णन पाया जाता है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि १७५ गाथाओंका स्पष्टीकरण षट्खण्डागमकारने १८६० सूत्रोंमें किया है।

यहां यह शंका की जा सकती है कि संभव है षट्खण्डागमके उक्त जीवस्थानके विशद एवं विस्तृत वर्णनका जीवसमासकारने संक्षेपीकरण किया हो। जैसा कि धवला-जयधवला टीकाओंका संक्षेपीकरण गोम्मटसारके रचयिता नेमिचन्द्राचार्यने किया है। पर इस शंकाका समाधान यह है कि पहले तो गोम्मटसारके रचयिताने उसमें अपना नाम स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट किया है।

---

* यह अपने मूलरूपमें विविध ग्रन्थोंके संकलनके साथ प्रकाशित हो चुका है।

जिससे कि वह परवर्ती रचना सिद्ध हो जाती है। पर यहां तो जीवसमासकारने न तो अपना नाम कहीं दिया है और न परवर्ती आचार्योंने ही उसे किसी आचार्य-विशेष की कृति बताकर नामोल्लेख किया है। प्रत्युत उसे ' पूर्वभृत्-सूरि-सूत्रित ' ही कहा है जिसका अर्थ यह होता है कि जब यहांपर पूर्वोंका ज्ञान प्रवहमान था, तब किसी पूर्ववेत्ता आचार्यने दिनपर दिन क्षीण होती हुई लोगोंकी बुद्धि और धारणाशक्तिको देखकरही प्रवचन-वात्सल्यसे प्रेरित होकर इसे गाथारूपमें निबद्ध कर दिया है और वह आचार्य परम्परासे प्रवहमान होता हुआ धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ है। उसमें जो कथन स्पष्ट था, उसकी व्याख्यामें अधिक बल न देकर जो अप्ररूपित मार्गणाओंका गूढ अर्थ था, उसका उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्तको विस्तारसे विवेचन किया और उन्होंने भी उसी गूढ रहस्यको अपनी रचनामें स्पष्ट करके कहना या लिखना उचित समझा।

दूसरे इस जीवसमासकी जो गाथाएँ आठ प्ररूपणाओंकी भूमिकारूप हैं, वे धवलाटीकाके अतिरिक्त उत्तराध्ययन, मूलाचार, आचारांग-निर्युक्ति, प्रज्ञापनासूत्र, प्राकृत पंचसंग्रह आदि अनेक ग्रन्थोंमें पाई जाती हैं। जीवसमासकी अपने नामके अनुरूप विषयकी सुगठित विगतवार सुसम्बद्ध रचनाको देखते हुए यह कल्पना असंगतसी प्रतीत होती है कि उसके रचयिताने उन उन उपर्युक्त ग्रन्थोंसे उन-उन गाथाओंको छांट-छाटकर अपने ग्रन्थमें निबद्ध कर दिया हो। इसके स्थानपर तो यह कहना अधिक संगत होगा कि जीवसमासके प्रणेता वस्तुतः श्रुतज्ञानके अंगभूत ११ अंगों और १४ पूर्वोंके वेत्ता थे। भले ही वे श्रुतकेवली न हों, पर उन्हें अंग और पूर्वोंके बहुभागका विशिष्ट ज्ञान था, और यही कारण है कि वे अपनी कृतिको इतनी स्पष्ट एवं विशद बना सके। यह कृति आचार्य-परम्परासे आती हुई धरसेनाचार्यको प्राप्त हुई, ऐसा माननेमें हमें कोई बाधक कारण नहीं दिखाई देता। प्रत्युत प्राकृत पंचसंग्रहकी प्रस्तावनामें जैसा कि मैंने बतलाया, यही अधिक सम्भव जँचता है कि प्राकृत पंचसंग्रहकारके समान जीवसमास धरसेनाचार्यको भी कण्ठस्थ था और उसका भी व्याख्यान उन्होंने अपने दोनों शिष्योंको किया है।

यहां पर जीवसमासका कुछ प्रारम्भिक परिचय देना अप्रासंगिक न होगा। पहली गाथामें चौबीस जिनवरों (तीर्थंकरों) को नमस्कार कर जीवसमास कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है। दूसरी गाथामें निक्षेप, निरुक्ति, (निर्देश-स्वामित्वादि) छह अनुयोगद्वारोंसे, तथा (सत्-संख्यादि) आठ अनुयोगद्वारोंसे गति आदि मार्गणाओंके द्वारा जीवसमास अनुगन्तव्य कहे हैं। तीसरी गाथाके द्वारा नामादि चार वा बहुत प्रकारके निक्षेपोंकी प्ररूपणाका विधान है। चौथी गाथामें उक्त छह अनुयोगद्वारोंसे सर्व भाव (पदार्थ) अनुगन्तव्य कहे हैं। पांचवीं गाथामें सत्-संख्यादि आठ अनुयोगद्वारोंका निर्देश है। जो कि इस प्रकार है--

संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्त-फुसणा य।
कालंतरं च भावो अप्पाबहुअं च दाराइं ॥ ५ ॥

पाठक गण इस गाथाके साथ षट्खण्डागमके प्रथम खण्डके 'संतपरूवणा' आदि सातवें सूत्रसे मिलान करें। तत्पश्चात् छठी 'गइ इंदिए य काए' इत्यादि सर्वत्र प्रसिद्ध गाथाकेद्वारा चौदह मार्गणाओंके नाम गिनाये गये हैं, जो कि ज्योंके त्यों षट्खण्डागमके सूत्रांक ४ में बताये गये हैं। पुनः सातवीं गाथामें 'एत्तो उ चउदसण्हं इहाणुगमणं करिस्सामि' कहकर और चौदह गुणस्थानोंके नाम दो गाथाओंमें गिनाकर उनके क्रमसे जाननेकी प्रेरणा की गई है। जीवसमासकी ५ वीं गाथासे लेकर ९ वीं गाथा तकका वर्णन जीवस्थानके २ रे सूत्रसे लेकर २२ वें सूत्र तकके साथ शब्द और अर्थकी दृष्टिसे बिलकुल समान है। अनावश्यक विस्तारके भयसे दोनोंके उद्धरण नहीं दिये जा रहे हैं।

इसके पश्चात् ७६ गाथाओंके द्वारा सत्प्ररूपणाका वर्णन ठीक उसी प्रकारसे किया गया है, जैसा कि जीवस्थानकी सत्प्ररूपणामें है। पर जीवसमासमें उसके नामके अनुसार प्रत्येक मार्गणासे सम्बन्धित सभी आवश्यक वर्णन उपलब्ध है। यथा– गतिमार्गणामें प्रत्येक गतिके अवान्तर भेद-प्रभेदोंके नाम दिये गये हैं। यहां तक कि नरकगतिके वर्णनमें सातों नरकों और उनकी नामगोत्रवाली सातों पृथिवियोंके, मनुष्यगतिके वर्णनमें कर्मभूमिज, भोगभूमिज, अन्तर्द्वीपज और आर्य-म्लेच्छादि भेदोंके, तथा देवगतिके वर्णनमें चारों जातिके देवोंके तथा स्वर्गादिकोंके भी नाम गिनाये गये हैं। इन्द्रिय मार्गणामें गुणस्थानोंके निर्देशके साथ छहों पर्याप्तियों और उनके स्वामियोंकाभी वर्णन किया गया है। जब कि यह वर्णन जीवट्ठाण में योगमार्गणाके अन्तर्गत किया गया है।

कायमार्गणामें गुणस्थानोंके निर्देशके अतिरिक्त पृथिविकायिक आदि पांचों स्थावर कायिकोंके नामोंका विस्तारसे वर्णन है। इस प्रकारकी 'पुढवी य सक्करा वालुया' आदि १४ गाथाएँ वे ही हैं, जो धवल पुस्तक १ के पृ. २७२ आदिमें, तथा मूलाचारमें २०६ वीं गाथासे आगे, तथा उत्तराध्ययन, आचारांग निर्युक्ति, प्राकृत पंचसंग्रह और कुछ गो. जीवकांडमें ज्योंकि त्यों पाई जाती हैं। इसी मार्गणाके अन्तर्गत सचित्त-अचित्तादि योनियों और कुलकोडियोंका वर्णन कर पृथिवीकायिक आदि जीवोंके आकार और त्रसकायिक जीवोंके संहनन और संस्थानोंकाभी वर्णन कर दिया गया है, जो प्रकरणको देखते हुए जानकारीकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी है।

योगमार्गणासे लेकर आहारमार्गणातकका वर्णन षट्खण्डागमके जीवस्थानके समानही है। जीवसमासमें इतना विशेष है कि ज्ञानमार्गणामें आभिनिबोधिक ज्ञानके अवग्रहादि भेदोंका, संयम-मार्गणामें पुलाक, बकुशादिका, लेश्या मार्गणामें द्रव्यलेश्याका और सम्यक्त्वमार्गणा में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व आदिके प्रकरणवश कर्मोंके देशघाती, सर्वघाती आदि भेदोंकाभी वर्णन किया गया है। अन्तमें साकार और अनाकार उपयोगके भेदोंको बतलाकर और '**सव्वे तल्लक्खणा जीवा**' कह कर जीवके स्वरूपको भी कह दिया गया है।

यहांपर पाठकोंकी जानकारीके लिए दोनोंके समता परक एक अवतरणको दे रहे हैं–

जीवसमास–

अस्सण्णि अमणपंचिंदियंत सण्णी उ समण छउमत्था ।
नो सण्णि नो असण्णी केवलनाणी उ विण्णेआ ॥ ८१ ॥

जीवस्थान–

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥ १७२ ॥ सण्णी मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीण कसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥ १७३ ॥ असण्णी एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥१७४॥

पाठकगण इन दोनों उद्धरणोंकी समता और जीवसमासकी कथन-शैलीकी सूक्ष्मताके साथ 'नो संज्ञी और नो असंज्ञी' ऐसे केवलियोंके निर्देशकी विशेषताका स्वयं अनुभव करेंगे ।

दूसरी संख्याप्ररूपणा या द्रव्यप्रमाणानुगमका वर्णन करते हुए जीवसमासमें पहले प्रमाणके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चार भेद बतलाये गये हैं । तत्पश्चात् द्रव्यप्रमाणमें मान, उन्मानादि भेदोंका, क्षेत्रप्रमाणमें अंगुल (हस्ते) धनुष, आदिका, कालप्रमाणमें समय, आवली, उच्छ्वास आदिका और भावप्रमाणमें प्रत्यक्ष– परोक्ष ज्ञानोंका वर्णन किया गया है । इनमें क्षेत्र और कालप्रमाणका वर्णन खूब विस्तारके साथ क्रमशः १४ और ३५ गाथाओंमें किया गया है । जिसे कि धवलाकारने यथास्थान लिखा ही है । इन चारों प्रकारके प्रमाणोंका वर्णन करनेवाली गाथाएँ दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें ज्योंकी त्यों या साधारणसे शब्दभेदके साथ मिलती हैं, जिनसे कि उनका आचार्य-परम्परासे चला आना ही सिद्ध होता है । इन चारों प्रकारके प्रमाणोंका वर्णन षट्खण्डागमकारके सामने सर्वसाधारणमें प्रचलित रहा है, अतः उन्होंने उसे अपनी रचनामें स्थान देना उचित नहीं समझा है ।

इसके पश्चात् मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंकी संख्या बतलाई गई है, जो दोनोंही ग्रन्थोंमें शब्दशः समान है । पाठकोंकी जानकारीके लिए यहां एक उद्धरण दिया जाता है–

जीवसमास-गाथा–

मिच्छा दव्वमणंता कालेणोसप्पिणी अणंताओ । खेत्तेण भिज्जमाणा हवंति लोगा अणंता ओ ॥ १४४ ॥

षट्खण्डागम-सूत्र–

ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता ॥ २ ॥ अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ३ ॥ खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ४ ॥

(षट्खण्डागम, पृ. ५४–५५)

पाठकगण दोनोंके विषय-प्रतिपादनकी शाब्दिक और आर्थिक समताका स्वयं ही अनुभव करेंगे।

इस प्रकारसे जीवसमासमें चौदह गुणस्थानोंकी संख्याको, तथा गति आदि तीन मार्गणाओंकी संख्याको बतलाकर तथा सान्तरमार्गणाओं आदिका निर्देश करके कह दिया गया है कि–

एवं जे जे भावा जहिं जहिं हुंति पंचसु गईसु।
ते ते अणुमग्गित्ता दव्वपमाणं नए धीरा ॥ १६६ ॥

अर्थात् मैंने इन कुछ मार्गणाओंमें द्रव्यप्रमाणका वर्णन किया है, तदनुसार पांचों ही गतियोंमें सम्भव शेष मार्गणास्थानोंका द्रव्यप्रमाण धीर वीर पुरुष स्वयं ही अनुमार्गण करके ज्ञात करें। ऐसा प्रतीत होता है कि इस संकेतको लक्ष्यमें रखकर ही षट्खण्डागमकारने शेष ११ मार्गणाओंके द्रव्यप्रमाणका वर्णन पुरे ९० सूत्रोंमें किया है।

क्षेत्रप्ररूपणा करते हुए जीवसमासमें सबसे पहले चारों गतियोंके जीवोंके शरीरकी अवगाहना बहुत विस्तारसे बताई गई है जो प्रकरणको देखते हुए वहां बहुत आवश्यक है। अन्तमें तीन गाथाओंकेद्वारा सभी गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंके जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा कर दी गई है। गुणस्थानोंमें क्षेत्रप्ररूपणा करनेवाली गाथाके साथ षट्खण्डागमके सूत्रोंकी समानता देखिये--

जीवसमास-गाथा–

मिच्छा उ सव्वलोए असंखेभागे य सेसया हुंति। केवलि असंखभागे भागेसु व सव्वलोए वा ॥ १७८ ॥

षट्खण्डागम-सूत्र–

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे ॥ २ ॥ सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभाए ॥ ३ ॥ सजोगिकेवली केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभाए, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ॥ ४ ॥ (षट्खं. पृ. ८६–८८)

स्पर्शनप्ररूपणा करते हुए जीवसमासमें पहले स्वस्थान, समुद्घात और उपपादपदका निर्देश कर क्षेत्र और स्पर्शनका भेद बतलाया गया है। तत्पश्चात् किस द्रव्यका कितने क्षेत्रमें अवगाह है, यह बतलाकर अनन्त आकाशके मध्यलोकका आकार सुप्रतिष्ठितसंस्थान बताते हुए तीनों लोकोंके पृथक् आकार बताकर उसकी लम्बाई चौड़ाई बताई है। पुनः मध्यलोकके द्वीप-समुद्रोंके संस्थान-संनिवेश आदिको बताकर ऊर्ध्व और अधो लोककी क्षेत्रसम्बन्धी घटा-बढ़ाका वर्णन किया गया है। पुनः समुद्घातके सातों भेद बताकर किस गतिमें कितने समुद्घात होते हैं, यह बताया गया है। इस प्रकार सभी आवश्यक जानकारी देनेके पश्चात् गुणस्थानों और

मार्गणास्थानोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा की गई है। गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा जीवसमासमें डेढ़ गाथामें कही गई है, जब कि षट्खण्डागममें वह ९ सूत्रोंमें वर्णित है। दोनोंका मिलान कीजिए—

जीवसमास-गाथा—

मिच्छेहिं सव्वलोओ सासण-मिस्सेहि अजय-देसेहिं। पुट्ठा चउदसभागा बारस अट्ठट्ठ छच्चेव ॥ १९५ ॥ सेसेह ऽ संखभागो फुसिओ लोगो सजोगिकेवलिहिं।

षट्खण्डागम-सूत्र—

ओघेण मिच्छादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो ॥ २ ॥ सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३ ॥ अट्ठ बारह चोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ४ ॥ सम्मामिच्छाइट्ठि— असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५ ॥ अट्ठ चोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ६ ॥ संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ७ ॥ छ चोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ८ ॥ पमत्तसंजदप्पहुडि जीव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ १० ॥ (षट्खं. पृ. १०१–१०४)

कालप्ररूपणा करते हुए जीवसमासमें सबसे पहले चारों गतिके जीवोंकी विस्तारके साथ भवस्थिति और कायस्थिति बताई गई है, क्योंकि उसके जाने विना गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंकी काल-प्ररूपणा ठीक ठीक नहीं जानी जा सकती है। तदनन्तर एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंकी कालप्ररूपणा की गई है। गुणस्थानोंकी प्ररूपणा जीवसमासमें ७॥ गाथाओंमें की गई है तब षट्खण्डागममें वह ३१ सूत्रोंमें की गई है। विस्तारके भयसे यहां दोनोंके उद्धरण नहीं दिये जा रहे हैं। जीवसमासमें कालभेदवाली कुछ मुख्य मुख्य मार्गणाओंकी कालप्ररूपणा करके अन्तमें कहा गया है—

एत्थ य जीवसमासे अणुमग्गिय सुहुम-निउणमइकुसले।
सुहुमं कालविभागं विमएज्ज सुयम्मि उवजुत्तो ॥ २४० ॥

अर्थात् सूक्ष्म एवं निपुण बुद्धिवाले कुशल जनोंको चाहिए कि वे जीवसमासके इस स्थलपर श्रुतज्ञानमें उपयुक्त होकर अनुक्त मार्गणाओंके सूक्ष्म काल-विभागका अनुमार्गण करके शिष्य जनोंको उसका भेद प्रतिपादन करें।

अन्तर प्ररूपणा करते हुए जीवसमासमें सबसे पहले अन्तरका स्वरूप बतलाया गया है पुनः चारों गतिवाले जीव मरण कर कहां कहां उत्पन्न होते हैं, यह बताया गया है। पुनः जिनमें अन्तर सम्भव है, ऐसे गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंका अन्तरकाल बताया गया है। पश्चात्

तीन गाथाओंके द्वारा गुणस्थानोंकी अन्तरप्ररूपणा की गई है, जब की वह षट्खण्डागममें १९ सूत्रोंके द्वारा वर्णित है। तदनन्तर कुछ प्रमुख मार्गणाओंकी अन्तर प्ररूपणा करके कहा गया है कि–

भव-भावपरित्तीणं काल विभागं कमेणऽणुगमित्ता।
भावेण समुवउत्तो एवं कुज्जंऽतराणुगमं ॥ २६३ ॥

अर्थात् अनुक्त शेष मार्गणाओंके भव और भाव-परिवर्तन-सम्बन्धी काल-विभागको क्रमसे अनुमार्गण करके भावसे समुपयुक्त (अतिसावधान) होकर इसी प्रकारसे शेष मार्गणाओंके अन्तरानुगमको करना चाहिए।

भावप्ररूपणा जीवसमासमें केवल छह गाथाओंके द्वारा की गई है, जब कि षट्खण्डागमके जीवस्थानमें वह ९२ सूत्रोंमें वर्णित है। जीवसमासकी संक्षेपताको लिए हुए विशेषता यह है कि इसमें एक एक गाथाके द्वारा मार्गणास्थानोंमें औदयिक आदि भावोंका निर्देश कर दिया गया है। यथा–

गइ काय वेय लेस्सा कसाय अन्नाण अजय असण्णी।
मिच्छाहारे उदया, जियभव्वियर त्तिय सहावो ॥ २६९ ॥

अर्थात् गति, काय, वेद, लेश्या, अज्ञान, असंयम, असंज्ञी, मिथ्यात्व और आहारमार्गणाएँ औदयिकभावरूप हैं। जीवत्व, भव्यत्व और इतर (अभव्यत्व) ये तीनों स्वभावरूप अर्थात् पारिणामिक भावरूप हैं।

जीवसमासमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा एक खास ढंगसे की गई है, जिससे षट्खण्डागमके प्रथम खण्ड जीवट्ठाण और द्वितीय खण्ड खुद्दाबंध इन दोनों खंडोंकी अल्पबहुत्वप्ररूपणाके आधारका सामंजस्य बैठ जाता है। अल्पबहुत्वकी प्ररूपणामें जीवसमासके भीतर सर्वप्रथम जो दो गाथाएँ दी गई हैं, उनका मिलान खुद्दाबंधके अल्पबहुत्वसे कीजिए—

जीवसमास-गाथा–

थोवा नरा नरेहि य असंखगुणिया हवंति णेरइया। तत्तो सुरा सुरेहि य सिद्धाऽणंता तओ तिरिया ॥ २७१ ॥

थोवाउ मणुस्सीओ नर-नरय-तिरिक्खिओ असंखगुणा। सुर-देवी संखगुणा सिद्धा तिरिया अणंतगुणा ॥ २७२ ॥

खुद्दाबन्ध-सूत्र–

अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंच गदीओ समासेण ॥ १ ॥ सव्वत्थोवा मणुसा ॥ २ ॥ णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३ ॥ देवा असंखेज्जगुणा ॥ ४ ॥ सिद्धा अणंतगुणा ॥ ५ ॥

(खुद्दाबंध-अल्पब. पृ. ४५१)

अट्ठगदीओ समासेण ॥ ७ ॥ सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ ॥ ८ ॥ मणुस्सा असंखेज्जगुणा ॥ ९ ॥ णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १० ॥ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ११ ॥ देवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १३ ॥ सिद्धा अणंतगुणा ॥ १४ ॥ तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ १५ ॥ (खुद्दाबं. अल्पब. पृ. ४५१)

दोनों ग्रन्थोके दोनों उद्धरणोंसे बिलकुल स्पष्ट है कि खुद्दाबन्धके अल्पबहुत्वका वर्णन उक्त दोनों गाथाओंके आधारपर किया गया है। इसी प्रकार खुद्दाबन्धके अल्पबहुत्व-सम्बन्धी सू. १६ से २१ तकका आधार जीवसमासकी २७५ वीं गाथा है, सू. ३८ से ४४ तकका आधार २७६ वीं गाथा है।

खुद्दाबन्धमें मार्गणाओंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणाके पश्चात् जो अल्पबहुत्वमहादण्डक है, उसमें सू. २ से लेकर ४३ वें सूत्र तककी अल्पबहुत्व-प्ररूपणाका आधार जीवसमासकी गा. २७३ और २७४ है।

जीवस्थानके भीतर गुणस्थानोंके अल्पबहुत्वका जो वर्णन सू. २ से लेकर २६ वें सूत्र तक किया गया है, उसका आधार जीवसमासकी २७७ और २७८ वीं गाथा है। पुनः मार्गणास्थानोंमें गतिमार्गणाका अल्पबहुत्व गुणस्थानोंको साथ कहा गया है। इन्द्रिय और कायमार्गणाके अल्पबहुत्वकी वेही गाथाएँ आधार हैं, जिनकी चर्चा अभी खुद्दाबन्धके सूत्रोंके साथ समता बताते हुए कर आए हैं। अन्तमें शेष अनुक्त मार्गणाओंके अल्पबहुत्व जाननेके लिए २८१ वीं गाथामें कहा गया है कि–

' एवं अप्पाबहुयं दव्वपमाणेहिं साहेज्जा '।

अर्थात् इसी प्रकारसे नहीं कही हुई शेष सभी मार्गणाओंके अल्पबहुत्वको द्रव्यप्रमाणानुगम (संख्याप्ररूपणा) के आधारसे सिद्ध कर लेना चाहिए।

जीवसमासका उपसंहार करते हुए सभी द्रव्योंका द्रव्यकी अपेक्षा अल्पबहुत्व और प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाकर अन्तमें दो गाथाएँ देकर उसे पूरा किया है, जिससे जीवसमास नामक प्रकरणकी महत्ताका बोध होता है। वे दोनों गाथाएँ इस प्रकार हैं—

१] बहुभंगदिट्ठिवाए दिट्ठत्थाणं जिनवरोवइट्ठाणं।
धारणपत्तट्ठो पुण जीवसमासत्थ उवजुत्तो ॥ २८५ ॥

२] एवं जीवाजीवे वित्थरमिहिए समासनिदिट्ठे।
उवजुत्तो जो गुणए तस्स मई जायए विउला ॥ २८६ ॥

अर्थात् जिनवरोंके द्वारा उपदिष्ट और बहुभेदवाले दृष्टिवादमें दृष्ट अर्थोंकी धारणाको वह पुरुष प्राप्त होता है, जो कि इस जीवसमासमें कहे गये अर्थको हृदयङ्गम करनेमें उपयुक्त होता है।

इस प्रकार द्वादशाङ्ग श्रुतमें विस्तारसे कहे गये और मेरे द्वारा समास (संक्षेप) से कहे गये इस ग्रन्थमें जो उपयुक्त होकर उसके अर्थका गुणन (चिन्तन और मनन) करता है, उसकी बुद्धि विपुल (विशाल) हो जाती है।

उपसंहार

इस प्रकार जीवसमासकी रचना देखते हुए उसकी महत्ता हृदयपर स्वतः ही अंकित हो जाती है और इस बातमें कोई सन्देह नहीं रहता कि उसके निर्माता पूर्ववेत्ता थे, या नहीं ? क्योंकि उन्होंने उपर्युक्त उपसंहार गाथामें स्वयं ही 'बहुभंगदिट्ठियाए' पद देकर अपने पूर्ववेत्ता होनेका संकेत कर दिया है।

समग्रजीवसमासका सिंहावलोकन करनेपर पाठकगण दो बातोंके निष्कर्षपर पहुंचेंगे एक तो यह कि वह विषयवर्णनकी सूक्ष्मता और महत्ताकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और दूसरी यह कि षट्खण्डागमके जीवट्ठाण-प्ररूपणाओंका वह आधार रहा है।

यद्यपि जीवसमासकी एक बात अवश्य खटकने जैसी है कि उसमें १६ स्वर्गोंके स्थानपर १२ स्वर्गोंके ही नाम हैं और नव अनुदिशोंका भी नाम-निर्देश नहीं है, तथापि जैसे तत्त्वार्थसूत्रके 'दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः' इत्यादि सूत्रमें १६ के स्थानपर १२ कल्पोंका निर्देश होनेपर भी इन्द्रोंकी विवक्षा करके और 'नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु' इत्यादि सूत्रमें अनुदिशोंके नामका निर्देश नहीं होनेपर भी उसकी 'नवसु' पदसे सूचना मान करके समाधान कर लिया गया है उसी प्रकारसे यहां भी समाधान किया जा सकता है।

षट्खण्डागमके पृ. ५७२ से लेकर ५७७ तक वेदनाखण्डके वेदनाक्षेत्रविधानके अन्तर्गत अवगाहना-महादण्डकके सू. ३० से लेकर ९९ वें सूत्र तक जो सब जीवोंकी अवगाहनाका अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसके सूत्रात्मक बीज यद्यपि जीवसमासकी क्षेत्रप्ररूपणामें निहित है, तथापि जैसा सीधा सम्बन्ध, गो. जीवकाण्डमें आई हुई **'सुहुमणिवाते आभू'** इत्यादि (गा. ९७ से लेकर १०१ तककी) गाथाओंके साथ बैठता है, वैसा अन्य नहीं मिलता। इन गाथाओंकी रचना-शैली ठीक उसी प्रकारकी है, जैसी कि वेदनाखण्डमें आई हुई चौसठ पदिकवाले जघन्य और उत्कृष्ट अल्पबहुत्वकी गाथाओंकी है। यतः गो. जीवकाण्डमें पूर्वाचार्य-परम्परासे आनेवाली

अनेकों गाथाएँ संकलित पाई जाती हैं, अतः बहुत सम्भव तो यही है कि ये गाथाएँ भी वहां संगृहीत ही हों। और यदि वे नेमिचन्द्राचार्य-रचित हैं, तो कहना होगा कि उन्होंने सचमुच पूर्व गाथा-सूत्रकारोंका अनुकरण किया है।

विदुषीरत्न पंडिता सुमतिबाईजीने यह आर्ष ग्रंथराजका संपादन बहुत परिश्रमपूर्वक किया है और बहुतही सुंदर हुआ है। पूरा षट्खण्डागम एक जिल्दमें (एक पुस्तकमें) होनेसे स्वाध्याय करनेवालोंको और अभ्यास करनेवालोंको सुगम होगया है। जिनवाणीका यह आद्य ग्रन्थ होनेसे अत्यंत महत्त्वशाली है। मुझे जो प्रस्तावना लिखनेका सुअवसर दिया इसलिये मैं बाईजीका आभारी हूँ।

चैत्रशुद्ध प्रतिपदा
१४ – ३ – १९६४
सोलापूर.

आ.
पं. हिरालाल शास्त्री
साढूमल

— विषय सूची —

—०—

सिरिभगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

१ संतपरूवणा

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

अरिहंतोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें स्थित सर्व साधुओंको नमस्कार हो ॥ १ ॥

अरिहन्त— अरि अर्थात् शत्रुस्वरूप मोहके जो घातक हैं वे अरिहन्त कहलाते हैं। अथवा जो ज्ञानावरण और दर्शनावरणरूप रजके घातक हैं वे अरिहन्त कहलाते हैं। अभिप्राय यह है कि जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मोंको नष्ट करके अनन्तचतुष्टयको प्राप्त कर चुके हैं वे अरिहन्त कहलाते हैं।

सिद्ध— जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंको नष्ट करके अभीष्ट साध्यको सिद्ध करते हुए कृतकृत्य हो चुके हैं वे सिद्ध कहे जाते हैं। उक्त आठ कर्मोंके नष्ट हो जानेपर सिद्धोंमें निम्न आठ गुण स्वभावतः प्रकट हो जाते हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अव्याबाधत्व, सम्यक्त्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व और अनन्तवीर्य।

आचार्य— जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप, और वीर्यरूप पांच प्रकारके आचारका स्वयं निरतिचार आचरण करते हैं तथा अन्य साधुओंको कराते हैं और उसकी शिक्षा देते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। इनमें कितने ही चौदह, दस या नौ पूर्वोंके पारगामी एवं तात्कालिक स्वसमय व परसमयरूप श्रुतके ज्ञाता भी होते हैं।

उपाध्याय— जो द्वादशांगरूप स्वाध्यायका उपदेश देते हैं, अथवा तात्कालिक प्रवचनका व्याख्यान करते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं।

साधु– जो मोक्षप्राप्तिके कारणभूत रत्नत्रयके सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहते हैं और समस्त प्राणियोंके विषयमें समताभावको धारण करते हैं वे साधु कहलाते हैं। ग्रंथारम्भके पहिले मंगल, ग्रंथरचनाका कारण, प्रयोजन, ग्रंथका प्रमाण, नाम और कर्ता; इन छहके कथन करनेकी आचार्यपरंपरागत शैली है। तदनुसार श्री पुष्पदन्ताचार्यने उक्त मंगल आदिके प्ररूपणार्थ यह मंगलसूत्र कहा है। यह मंगलसूत्र णमोकार-मंत्रके नामसे प्रसिद्ध है। 'मं पापं गालयति इति मंगलम्' अर्थात् जो पापरूप मलका गालन करे उसे मंगल कहते हैं। द्रव्यमल और भावमलके भेदसे मल दो प्रकारका है। इनमें द्रव्यमल भी दो प्रकारका है– बाह्य द्रव्यमल और अभ्यन्तर द्रव्यमल। उनमें पसीना, धूलि और मल-मूत्र आदि बाह्य द्रव्यमल हैं। सघनरूपमें आत्मासे सम्बद्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन भेदोंमें विभक्त ऐसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्म अभ्यन्तर द्रव्यमल कहे जाते हैं। अज्ञान एवं अदर्शन आदि परिणामोंको भावमल कहते हैं। अथवा 'मंग' शब्दका अर्थ पुण्य या सुख होता है। अत एव 'मंगं सुखं लाति आदत्ते इति मंगलम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो सुखको लाता है उसे मंगल कहते हैं।

अब चौदह गुणस्थानोंके अन्वेषणमें प्रयोजनभूत होनेसे यहां सर्वप्रथम गति आदि चौदह मार्गणाओंके जान लेनेकी प्रेरणा की जाती है–

एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णायव्वाणि भवंति ॥ २ ॥

यहां इन चौदह जीवसमासों अर्थात् मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणामें जीवोंके अन्वेषणमें प्रयोजनभूत होनेसे ये चौदह मार्गणास्थान जान लेनेके योग्य हैं ॥ २ ॥

'जीवाः समस्यन्ते संक्षिप्यन्ते एषु इति जीवसमासाः' इस निरुक्तिके अनुसार जिनमें अनन्तानन्त जीवोंका संक्षेप किया जाता है उन्हें जीवसमास कहते हैं। इस प्रकार यहां जीवसमाससे चौदह गुणस्थानोंका ग्रहण होता है। मार्गणा, गवेषण और अन्वेषण ये समानार्थक शब्द हैं। जहांपर या जिनके द्वारा सत्-संख्या आदि आठ अनुयोगद्वारोंसे संयुक्त उपर्युक्त चौदह गुणस्थानोंका अन्वेषण किया जाता है वे मार्गणास्थान कहे जाते हैं।

तं जहा ॥ ३ ॥

वे मार्गणायें इस प्रकार हैं ॥ ३ ॥

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥ ४ ॥

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार; ये वे चौदह मार्गणायें हैं ॥ ४ ॥

१ गति– जो प्राप्त की जाय उसे गति कहते हैं। अथवा, एक भवसे दूसरे भवमें जानेको गति कहते हैं। अथवा गतिनामक नामकर्मके उदयसे जो जीवकी अवस्थाविशेष उत्पन्न होती है उसे

गति कहते हैं। सामान्यरूपसे वह गति चार प्रकारकी है— देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति और नरकगति।

२ इन्द्रिय— चूंकि स्पर्शनादि इन्द्रियां इन्द्रके समान अपने अपने विषयके ग्रहण करनेमें स्वयं ही समर्थ हैं, अतएव उन्हें इन्द्रिय शब्दसे संबोधित किया जाता है। अथवा इन्द्रका अर्थ आत्मा होता है, उस आत्माके जो लिंग या चिन्ह हैं उन्हें इन्द्रियां कहते हैं।

३ काय— पृथिवी आदि नामकर्मोंके उदयसे जो संचित होता है उसका नाम काय है। अथवा योगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे संचयको प्राप्त हुए औदारिकादिरूप पुद्गलपिंडको काय समझना चाहिये। वह काय पृथिवीकाय आदिके भेदसे छह प्रकारका है। वे पृथिवी आदि छह काय त्रसकाय और स्थावरकाय इन दो भेदोंमें अन्तर्हित हैं।

४ योग— शरीर नामकर्मके उदयके अनुसार मन, वचन और कायसे संयुक्त जीवकी जिस शक्तिके निमित्तसे कर्मका आगमन होता है उसे योग कहते हैं।

५ वेद— वेद कर्मके उदयसे जीव भिन्न भिन्न भावोंका (स्त्रीभाव, पुरुषभाव, नपुंसकभावका) जो वेदन करता है उसे वेद कहते हैं।

६ कषाय— जो सुख व दुःख आदिरूप अनेक प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्म-रूपी क्षेत्रको कर्षण करते हैं उन्हें कषाय कहते हैं।

७ ज्ञान— जिसके द्वारा जीव त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य, उनके गुण और अनेक प्रकारकी पर्यायोंको प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे जानता है उसको ज्ञान कहते हैं।

८ संयम— अहिंसादि व्रतोंका धारण करना, ईर्या-भाषादिरूप समितियोंका परिपालन करना, क्रोधादि कषायोंका जीतना, अनर्थदण्डोंका परित्याग करना और पांचों इन्द्रियोंका दमन करना; इसका नाम संयम है। अभिप्राय यह है कि त्याज्य विषयसे जो निवृत्ति और ग्राह्य विषयमें जो प्रवृत्ति होती है उसे संयम कहते हैं।

९ दर्शन— सामान्य-विशेषात्मक आत्मस्वरूपका जो अवभासन होता है उसे दर्शन कहते हैं। आगममें अन्तर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन और बहिर्मुख चित्प्रकाशको ज्ञान माना गया है। अभिप्राय यह है कि ज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत जो प्रयत्न होता है तद्रूपसे परिणत आत्माके संवेदनको दर्शन और तत्पश्चात् बाह्य पदार्थके विषयमें जो विकल्परूप ग्रहण होता है उसे ज्ञान समझना चाहिये। यही इन दोनोंमें भेद भी है।

१० लेश्या— जिसके द्वारा जीव पुण्य और पापसे अपनेको लिप्त करता है उसका नाम लेश्या है। यह लेश्या शब्दका निरुक्त्यर्थ है। तात्पर्य यह कि कषायानुरंजित जो योगोंकी प्रवृत्ति होती है उसे लेश्या कहते हैं।

११ भव्यत्व– जिन जीवोंके लिये भविष्यमें मुक्ति प्राप्त करना संभव है या जो तद्विषयक योग्यता रखते हैं उन्हे भव्य जीव कहते हैं । तथा जो किसी भी समय मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते हैं या जिन जीवोंमें वैसी योग्यता नहीं है उन्हें अभव्य जीव कहते हैं ।

१२ सम्यक्त्व– आप्त, आगम और पदार्थरूप तत्त्वार्थके श्रद्धानका नाम सम्यक्त्व है । अभिप्राय यह है कि जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नव पदार्थोंका, आज्ञा और अधिगमसे जो श्रद्धान होता है उसे सम्यक्त्व कहते हैं ।

१३ संज्ञी– जो जीव मनके अवलंबनसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण कर सकते हैं उन्हें संज्ञी तथा जो उक्त शिक्षा आदिको ग्रहण नहीं कर सकते हैं उन्हें असंज्ञी कहते हैं । ' सम्यक् जानाति इति संज्ञम् ' इस निरुक्तिके अनुसार ' संज्ञ ' शब्दका अर्थ मन होता है । वह जिन जीवोंके पाया जाता है उन्हें संज्ञी और उक्त मनसे रहित जीवोंको असंज्ञी समझना चाहिये ।

१४ आहारक– जो जीव औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीर तथा छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गलवर्गणाओंको ग्रहण करते हैं उन्हें आहारक कहते हैं । तथा इस प्रकारके आहारके न ग्रहण करनेवाले जीव अनाहारक कहे जाते हैं । विग्रहगतिको प्राप्त चारों गतिके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त हुए सयोगकेवली, अयोगकेवली एवं सिद्ध भगवान् अनाहारक होते हैं । इनके सिवाय शेष जीवोंको आहारक जानना चाहिये ।

अब उन खोजे जानेवाले जीवसमासों (गुणस्थानों) के अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ––

एदेसिं चेव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि णायव्वाणि भवंति ॥ ५ ॥

इन्हीं चौदह जीवसमासोंकी प्ररूपणारूप प्रयोजनकी सिद्धिमें सहायक होनेसे यहां ये आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं ॥ ५ ॥

तं जहा ॥ ६ ॥

वे आठ अनुयोगद्वार इस प्रकार हैं ॥ ६ ॥

संतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ॥ ७ ॥

सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये वे आठ अनुयोगद्वार हैं ॥ ७ ॥

१ सत्प्ररूपणा – उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप अस्तित्वका प्रतिपादन करनेवाली प्ररूपणाको सत्प्ररूपणा कहते हैं । (२) द्रव्यप्रमाणानुगम– सत्प्ररूपणा द्वारा जिनका अस्तित्व ज्ञात हो चुका है उन्हींके प्रमाणकी प्ररूपणा द्रव्यप्रमाणानुगम अनियोगद्वार करता है । (३) क्षेत्रानुगम–

इस अनुयोगद्वारमें उन्हींकी वर्तमान अवगाहनाकी प्ररूपणा की जाती है। (४) स्पर्शनानुगम– उनके ही अतीतकालविशिष्ट स्पर्शका वर्णन करता है। (५) कालानुगम– जिसमें उक्त द्रव्योंकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन हो उसे कालानुगम कहते हैं। (६) अन्तरानुगम– जिन द्रव्योंके स्तित्वादिका ज्ञान हो चुका है उन्हींके अन्तरकालकी प्ररूपणा अन्तरानुगम अनुयोगद्वार करता है। (७) भावानुगम– उक्त द्रव्योंके भावकी प्ररूपणा करनेवाले अनुयोगद्वारका नाम भावानुगम अनुयोगद्वार है। (८) अल्पबहुत्वानुगम– अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार एक दूसरेकी अपेक्षा उन्हीं द्रव्योंकी हीनाधिकताका निरूपण करता है।

अब पहले सत्प्ररूपणाके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं–

संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ ८ ॥

सत्प्ररूपणामें ओघकी अपेक्षा और आदेशकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है ॥८॥

निर्देश शब्दका अर्थ प्ररूपणा या व्याख्यान होता है। ओघसे अभिप्राय सामान्य और आदेशसे अभिप्राय विशेषका है। सूत्रका अर्थ करते समय यहां पूर्व सूत्रोक्त 'चोद्दसण्हं जीवसमासाणं' इस पदकी अनुवृत्ति करनी चाहिये। इसलिये उसका यह अर्थ होता है कि चौदह जीवसमासोंके सत्त्वका निरूपण ओघ और आदेश इन दो प्रकारोंसे किया जाता है। जीव जिन औदयिकादि भावोंमें भले प्रकारसे रहते हैं उन्हें जीवसमास कहते हैं। वे औदयिकादि भाव ये हैं– जो भाव कर्मोंके उपशमसे उत्पन्न होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं। जो भाव कर्मोंके क्षय और उपशमसे होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। अभिप्राय यह है कि विवक्षित कर्मप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय, उसीके सदवस्थारूप उपशम, तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे जो भाव उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहा जाता है। जो भाव कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षाके विना जीवके स्वभावमात्रसे उत्पन्न होता है उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

अब ओघ अर्थात् गुणस्थानप्ररूपणका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं–

ओघेण अत्थि मिच्छाइट्ठी ॥ ९ ॥

सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव हैं ॥ ९ ॥

मिथ्या, वितथ, अलीक और असत्य ये एकार्थवाची नाम हैं। दृष्टि शब्दका अर्थ दर्शन या श्रद्धान होता है। इससे यह तात्पर्य हुआ कि जिन जीवोंके विपरीत, एकान्त, विनय, संशय और अज्ञानरूप मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई दृष्टि मिथ्या होती है उन्हें मिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं।

अब दूसरे गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं —

सासणसम्माइट्ठी ॥ १० ॥

सामान्यसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं ॥ १० ॥

सम्यक्त्वकी विराधनाको आसादन कहते हैं। जो इस आसादनसे युक्त है उसे सासादन कहते हैं। अभिप्राय यह कि अनन्तानुबन्धिचतुष्कमेंसे किसी एकका उदय होनेपर जिसका सम्यग्दर्शन नष्ट हो गया है, किन्तु जो मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्वरूप परिणामोंको प्राप्त नहीं हुवा है ऐसे मिथ्यात्व गुणस्थानके अभिमुख हुए जीवको सासादन कहते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं —

सम्मामिच्छाइट्ठी ॥ ११ ॥

सामान्यसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं ॥ ११ ॥

दृष्टि, श्रद्धा, रुचि और प्रत्यय ये पर्यायवाची नाम हैं। जिस जीवके समीचीन और मिथ्या दोनों प्रकारकी दृष्टि होती है उसको सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। जिस प्रकार दही और गुडको मिला देनेपर उनके स्वादको पृथक् नहीं किया जा सकता है, किन्तु उनका मिला हुआ स्वाद मिश्रभावको प्राप्त होकर जात्यन्तरस्वरूप होता है उसी प्रकार सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिले हुए परिणामोंका नाम मिश्र गुणस्थान है। मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जिस प्रकार सम्यक्त्वका निरन्वय नाश होता है उस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वका निरन्वय नाश नहीं होता। इस गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयक्षय, उन्हींका सदवस्थारूप उपशम तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदय रहनेसे क्षायोपशमिक भाव रहता है। अथवा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंका उदयक्षय, उन्हींके सदवस्थारूप उपशम तथा मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदय रहनेसे क्षायोपशमिक भाव रहता है।

अब सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

असंजदसम्माइट्ठी ॥ १२ ॥

सामान्यसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं ॥ १२ ॥

जिसकी दृष्टि समीचीन होती है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और संयमरहित सम्यग्दृष्टिको असंयतसम्यग्दृष्टि कहते हैं। वे सम्यग्दृष्टि जीव तीन प्रकारके हैं— क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि (क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टि) और औपशमिकसम्यग्दृष्टि। अनन्तानुबन्धी चार और मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व इन सात प्रकृतियोंके सर्वथा विनाशसे जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है। इन्हीं सात प्रकृतियोंके उपशमसे वह उपशमसम्यग्दृष्टि तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे वेदक-सम्यग्दृष्टि होता है। यह वेदकसम्यक्त्व— मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उदयक्षय और सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे हुआ करता है, इसीलिये इसको क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव कभी मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त होता। किन्तु उपशमसम्यग्दृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे उपशम सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाता है। वह कभी सासादन-

सम्यग्दृष्टि, कभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और कभी वेदकसम्यग्दृष्टि भी हो जाता है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीव शिथिलश्रद्धानी होता है। जिस प्रकार वृद्ध पुरुष अपने हाथमें लकड़ीको शिथिलतापूर्वक पकड़ता है उसी प्रकार वह भी तत्त्वार्थके विषयमें शिथिलश्रद्धानी होता है। इस गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायिक, औपशमिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक और वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव भी होता है।

सूत्रमें सम्यग्दृष्टिके लिये जो असंयत विशेषण दिया गया है वह अन्तदीपक है। इसलिये वह अपनेसे नीचेके तीनों ही गुणस्थानोंके असंयतपनेका निरूपण करता है। तथा इस सूत्रमें जो सम्यग्दृष्टिपद है वह गंगानदीके प्रवाहके समान ऊपरके समस्त गुणस्थानोंमें अनुवृत्तिको प्राप्त होता है।

अब देशविरत गुणस्थानके प्ररूपणके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं–

संजदासंजदा ॥ १३ ॥

सामान्यसे संयतासंयत जीव होते हैं ॥ १३ ॥

पंचम गुणस्थानवर्ती जीवमें संयमभाव और असंयमभाव इन दोनोंको एक साथ स्वीकार कर लेनेपर भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, उन दोनोंकी उत्पत्तिके कारण भिन्न भिन्न हैं। उसके संयमभावकी उत्पत्तिका कारण त्रसहिंसासे विरतिभाव और असंयमभावकी उत्पत्तिका कारण स्थावरहिंसासे अविरति भाव है। इसलिये यह संयतासंयत नामका पांचवां गुणस्थान बन जाता है। संयमासंयमभाव क्षायोपशमिकभाव है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानावरणीय कषायके वर्तमानकालीन सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयाभावी क्षय और आगामी कालमें उदय आने योग्य उन्हींका सदवस्थारूप उपशम होनेसे तथा प्रत्याख्यानावरणीय कषायके उदयसे यह संयमासंयम होता है।

अब संयतोंके प्रथम गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं–

पमत्तसंजदा ॥ १४ ॥

सामान्यसे प्रमत्तसंयत जीव होते हैं ॥ १४ ॥

प्रकर्षसे जो मत्त है उन्हें प्रमत्त कहते हैं। अर्थात् प्रमादसहित जीवोंका नाम प्रमत्त है, जो अच्छी तरहसे विरति या संयमको प्राप्त है उन्हें संयत कहते हैं। अभिप्राय यह कि जो प्रमादसे सहित होते हुए भी संयत होते हैं उन्हें प्रमत्तसंयत कहते हैं। छठे गुणस्थानमें प्रमादके रहते हुए भी संयमका अभाव नहीं होता है। यहां 'प्रमत्त' शब्द अन्तदीपक है। इसीलिये इससे पहिलेके सब ही गुणस्थानोंमें प्रमादका सद्भाव समझना चाहिये। इस गुणस्थानमें संयमकी अपेक्षासे क्षायोपशमिक भाव रहता है। कारण यह कि वर्तमानमें प्रत्याख्यानावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयक्षय होनेसे और आगामी कालमें उदयमें आनेवाले सत्तामें स्थित उन्हींके उदयमें न आनेरूप उपशमसे तथा संज्वलन कषायके उदयसे वह संयम उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा इस

गुणस्थानमें क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव भी रहता है। संज्वलन और नोकषायके तीव्र उदयसे जो चारित्रके पालनमें असावधानता होती है उसे प्रमाद कहते हैं। वह स्त्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा और अवनिपालकथा इन चार विकथाओं; क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों; स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पांच इंद्रियों; तथा निद्रा और प्रणयके भेदसे पन्द्रह प्रकारका है।

आगे क्षायोपशमिक संयमोंमें शुद्ध संयमसे उपलक्षित गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

अपमत्तसंजदा ॥ १५ ॥

सामान्यसे अप्रमत्तसंयत जीव होते हैं ॥ १५ ॥

जिनका संयम उपर्युक्त पन्द्रह प्रकारके प्रमादसे रहित होता है उन्हें अप्रमत्तसंयत कहते हैं। इस गुणस्थानमें संयमकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव रहता है। कारण कि यहां वर्तमान समयमें प्रत्याख्यानावरणीय कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयक्षय होनेसे और आगामी कालमें उदयमें आनेवाले उन्हींका उदयाभावलक्षण उपशम होनेसे तथा संज्वलन कषायका मन्द उदय होनेसे वह संयम उत्पन्न होता है। सम्यक्त्वकी अपेक्षा यहां क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव भी है।

अब आगे चारित्रमोहनीयका उपशम या क्षपण करनेवाले गुणस्थानोंमेंसे प्रथम गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १६ ॥

सामान्यसे अपूर्वकरणप्रविष्ट-शुद्धि-संयतोंमें उपशमक और क्षपक दोनों प्रकारके जीव होते हैं ॥ १६ ॥

करण शब्दका अर्थ परिणाम होता है। जो परिणाम पूर्व अर्थात इस गुणस्थानसे पहले कभी प्राप्त नहीं हुए हैं उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रथम समयसे लेकर प्रत्येक समयमें क्रमसे बढ़ते हुए असंख्यात लोकप्रमाण परिणामवाले इस गुणस्थानके अन्तर्गत विवक्षित समयवर्ती जीवोंको छोड़कर अन्य समयवर्ती जीवोंके न प्राप्त हो सकनेवाले परिणाम अपूर्व कहे जाते हैं। ये अपूर्व परिणाम जिनके हुआ करते हैं वे अपूर्वकरणप्रविष्ट-शुद्धिसंयत कहलाते हैं। उनमें जो जीव चारित्रमोहनीयकर्मके उपशम करनेमें उद्युक्त होते हैं वे उपशमक तथा जो उसके क्षय करनेमें उद्युक्त होते हैं वे क्षपक कहे जाते हैं।

अपूर्वकरणको प्राप्त हुए उन सब क्षपक और उपशमक जीवोंके परिणामोंमें अपूर्वपनेकी अपेक्षा समानता पाई जाती है। इस गुणस्थानमें क्षपक जीवोंके क्षायिक तथा उपशमक जीवोंके औपशमिक भाव पाया जाता है। परन्तु सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षपकके क्षायिक तथा उपशमकके औपशमिक और क्षायिक भाव पाया जाता है। इसका कारण यह है जिस जीवने दर्शनमोहका क्षय

नहीं किया है वह क्षपकश्रेणिपर तथा जिसने उसका उपशम अथवा क्षय नहीं किया है वह उपशम-श्रेणिपर नहीं चढ़ सकता है।

अब बादर कषायवाले गुणस्थानोंमें अन्तिम गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं---

अणियट्टि-बादर-सांपराइय-पविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १७॥

सामान्यसे अनिवृत्ति-बादर-सांपरायिक-प्रविष्ट-शुद्धि-संयतोंमें उपशमक भी होते हैं और क्षपक भी होते हैं ॥ १७ ॥

समान समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी भेदरहित वृत्तिको अनिवृत्ति कहते हैं। अथवा निवृत्ति शब्दका अर्थ व्यावृत्ति भी होता है। अतएव जिन परिणामोंकी व्यावृत्ति अर्थात् विसदृश-भावसे परिणमन नहीं होता है उन्हें अनिवृत्तिकरण कहते हैं। इस गुणस्थानमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम सर्वथा विसदृश और एकसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सर्वथा सदृश ही होते हैं। अभिप्राय यह है कि अन्तर्मुहूर्त मात्र अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे किसी एक समयमें रहनेवाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीरके आकार, अवगाहन व वर्ण आदि बाह्य स्वरूपसे और ज्ञानोपयोग आदि अन्तरंगस्वरूपसे परस्पर भेदको प्राप्त होते हैं उस प्रकार वे परिणामोंके द्वारा भेदको नहीं प्राप्त होते। उनके प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ते हुए परिणाम ही पाये जाते हैं।

सूत्रमें जो 'बादर' शब्दका ग्रहण किया है उसके अन्तदीपक होनेसे पूर्ववर्ती समस्त गुणस्थान बादर (स्थूल) कषायवाले ही होते हैं, ऐसा समझना चाहिए। सांपराय शब्दका अर्थ कषाय और स्थूलका अर्थ बादर है। इससे यह अभिप्राय हुआ कि जिन संयत जीवोंकी विशुद्धि भेदरहित स्थूल कषायरूप परिणामोंमें प्रविष्ट हुई है उन्हें अनिवृत्तिबादर-सांपराय-प्रविष्ट-शुद्धि-संयत कहते हैं।

ऐसे संयतोंमें उपशमक और क्षपक दोनों प्रकारके जीव होते हैं।

अब कुशील जातिके मुनियोंके अन्तिम गुणस्थानके प्रतिपादनार्थ आगेका सूत्र कहते हैं—

सुहुमसांपराइय-पविट्ठ-सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १८ ॥

सामान्यसे सूक्ष्मसांपराय-प्रविष्ट-शुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक दोनों होते हैं ॥ १८ ॥

सांपरायका अर्थ कषाय है, सूक्ष्म कषायको सूक्ष्मसांपराय कहते हैं। उसमें जिन संयतोंकी शुद्धिने प्रवेश किया है उन्हें सूक्ष्मसांपराय-प्रविष्ट-शुद्धिसंयत कहते हैं। उनमें उपशमक और क्षपक दोनों होते हैं। यहां चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा क्षायिक और औपशमिक भाव हैं। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षपकश्रेणिवाला क्षायिक भावसे तथा उपशमश्रेणिवाला औपशमिक और क्षायिक इन दोनों भावोंसे युक्त होता है, क्योंकि, दोनों ही सम्यक्त्वोंसे उपशमश्रेणिका चढ़ना संभव है।

अब उपशमश्रेणिके अन्तिम गुणस्थानके प्रतिपादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उवसंत-कसाय-वीयराग-छदुमत्था ॥ १९ ॥

सामान्यसे उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव हैं ॥ १९ ॥

जिनकी कषाय उपशान्त हो गई है उन्हें उपशान्तकषाय कहते हैं, तथा जिनका राग नष्ट हो गया है उन्हें वीतराग कहते हैं। छद्म नाम ज्ञानावरण और दर्शनावरणका है, उसमें जो रहते हैं उन्हें छद्मस्थ कहते हैं। जो वीतराग होते हुए भी छद्मस्थ होते हैं उन्हें वीतराग-छद्मस्थ कहते हैं। इसमें आये हुए वीतराग विशेषणसे दसवें गुणस्थान तकके सराग छद्मस्थोंका निराकरण समझना चाहिये। जो उपशान्तकषाय होते हुए भी वीतराग-छद्मस्थ होते हैं उन्हें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ कहते हैं। इस उपशान्तकषाय विशेषणसे उपरिम गुणस्थानोंका निराकरण समझना चाहिये। इस गुणस्थानमें संपूर्ण कषाएं उपशान्त हो जाती हैं, इसलिये यहां चारित्रकी अपेक्षा औपशमिक भाव है। तथा सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा पूर्ववत् औपशमिक और क्षायिक दोनों भाव हैं। जिस प्रकार वर्षा ऋतुके गंदले पानीमें निर्मली फल डाल देनेसे उसका गंदलापन नीचे बैठ जाता है और जल स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार समस्त मोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुए परिणामोंमें जो निर्मलता उत्पन्न होती है उसको उपशान्तकषाय गुणस्थान समझना चाहिये।

अब निर्ग्रन्थ गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

खीण-कसाय-वीयराग-छदुमत्था ॥ २० ॥

सामान्यसे क्षीण-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव हैं ॥ २० ॥

जिनकी कषाय क्षीण हो गई है उनको क्षीणकषाय कहते हैं। जो क्षीणकषाय होते हुए वीतराग होते हैं उन्हें क्षीणकषाय-वीतराग कहते हैं। जो क्षीण-कषाय-वीतराग होते हुए छद्मस्थ होते हैं उन्हें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ कहते हैं। इस सूत्रमें आया हुआ छद्मस्थ पद अन्तदीपक है। इसलिये उसे पूर्ववर्ती समस्त गुणस्थानोंके छद्मस्थपनेका सूचक समझना चाहिए। यहां चूंकि दोनों ही प्रकारका मोहनीयकर्म सर्वथा नष्ट हो जाता है, अतएव इस गुणस्थानमें चारित्र और सम्यग्दर्शन दोनोंकी ही अपेक्षा क्षायिक भाव रहता है।

जिसने संपूर्ण रूपसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धरूप मोहनीय कर्मको नष्ट कर दिया है, अतएव जिसका अन्तःकरण स्फटिक मणिके निर्मल भाजनमें रखे हुए जलके समान निर्मल हो गया है ऐसे वीतरागी निर्ग्रन्थ साधुओंको क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती समझना चाहिये।

अब स्नातकोंके गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

सजोगकेवली ॥ २१ ॥

सामान्यसे सयोगकेवली जीव हैं ॥ २१ ॥

केवल पदसे यहांपर केवलज्ञानका ग्रहण किया है। जिसमें इन्द्रिय, आलोक और मनकी अपेक्षा नहीं होती है उसे केवल (असहाय) कहते हैं। वह केवलज्ञान जिस जीवको होता है उसे केवली कहते हैं, जो योगके साथ रहते हैं उन्हें सयोग कहते हैं, इस प्रकार जो सयोग होते हुए केवली हैं उन्हें सयोगकेवली जानना चाहिये।

इस सूत्रमें जो सयोग पदका ग्रहण किया है वह अन्तदीपक होनेसे नीचेके सर्व गुणस्थानोंको सयोगी बतलाता है। चारों घातिकर्मोंका क्षय कर देनेसे और वेदनीय कर्मको शक्तिहीन कर देनेसे, अथवा आठों ही कर्मोंकी अवयवभूत साठ उत्तर कर्मप्रकृतियोंको (घातिया कर्मोंकी सैंतालीस और नामकर्मकी तेरह) नष्ट कर देनेसे इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव होता है।

अब अन्तिम गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

अजोगकेवली ॥ २२ ॥

सामान्यसे अयोगकेवली जीव हैं ॥ २२ ॥

जिसके योग विद्यमान नहीं है उसे अयोग तथा जिसके केवलज्ञान है उसे केवली कहते हैं। जो योगरहित होते हुए केवली है उसे अयोगकेवली कहते हैं। संपूर्ण घातिया कर्मोंके क्षीण होने तथा अघातिया कर्मोंके नाशोन्मुख होनेसे इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव रहता है।

अभिप्राय यह कि जो अठारह हजार शीलके भेदोंके स्वामी होकर मेरु समान निष्कंप अवस्थाको प्राप्त हो चुके हैं, जिन्होंने संपूर्ण आस्रवका निरोध कर दिया है, जो नूतन बंधनेवाले कर्मरजसे रहित हैं; और जो मन, वचन तथा काययोगसे रहित होते हुए केवलज्ञानसे विभूषित हैं उन्हें अयोगकेवली परमात्मा समझना चाहिये।

इस प्रकार मोक्षके कारणीभूत चौदह गुणस्थानोंका प्रतिपादन करके अब सिद्धोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

सिद्धा चेदि ॥ २३ ॥

सामान्यसे सिद्ध जीव हैं ॥ २३ ॥

सिद्ध, निष्ठित, निष्पन्न, कृतकृत्य और सिद्धसाध्य; ये एकार्थवाची नाम हैं। जिन्होंने समस्त कर्मोंका निराकरण करके बाह्य पदार्थ निरपेक्ष अनन्त, अनुपम, स्वाभाविक और निर्बाध सुखको प्राप्त कर लिया है; जो निर्लेप हैं, निश्चल स्वरूपको प्राप्त हैं, संपूर्ण अवगुणोंसे रहित हैं, सर्व गुणोंके निधान हैं, जिनकी आत्माका आकार अन्तिम शरीरसे कुछ न्यून है, जो कोशसे निकलते हुए बाणके समान निःसंग हैं, और जो लोकके अग्रभागमें निवास करते हैं; उन्हें सिद्ध कहते हैं।

चौदह गुणस्थानोंका सामान्य प्ररूपण करके अब उनके विशेष प्ररूपणके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धगदी चेदि ॥ २४ ॥

आदेश (विशेष) की अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगति हैं ॥ २४ ॥

प्रसिद्ध आचार्यपरंपरासे आये हुए अर्थका तदनुसार कथन करना, इसका नाम अनुवाद है। इस प्रकार आचार्यपरंपराके अनुसार गतिका कथन करना गत्यनुवाद है। गत्यनुवादसे नरकगति आदि गतियां होती हैं। जो हिंसादिक निकृष्ट कार्योंमें रत हैं उन्हें निरत और उनकी गतिको निरतगति कहते हैं। अथवा, जो नर अर्थात् प्राणियोंको गिराता है या दुःख देता है उसे नरक कहते हैं। नरक यह एक कर्म है। इसके उदयसे जिनकी उत्पत्ति होती है उन जीवोंको नारक और उनकी गतिको नारकगति कहते हैं। अथवा, जिस गतिका उदय संपूर्ण अशुभ कर्मोंके उदयका सहकारी कारण है उसे नरकगति कहते हैं।

जो समस्त जातिके तिर्यंचोंमें उत्पत्तिका कारण है उसे तिर्यंचगति कहते हैं। अथवा, जो तिरस्, अर्थात् (वक्र) या कुटिल भावको प्राप्त होते हैं उन्हें तिर्यंच और उनकी गतिको तिर्यंचगति कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो मन, वचन और कायकी कुटिलताको प्राप्त हैं; जिनकी आहारादि संज्ञाएं सुव्यक्त हैं, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं, और जिनके पापकी अत्यधिक बहुलता पाई जाती है, उनको तिर्यंच कहते हैं।

जो मनुष्यकी समस्त पर्यायोंमें उत्पन्न कराती है उसे मनुष्यगति कहते हैं। अथवा, जो मनसे निपुण अर्थात् गुण-दोषादिका विचार कर सकते हैं उन्हें मनुष्य और उनकी गतिको मनुष्य-गति कहते हैं। अथवा, जो मनुकी सन्तान हैं उन्हें मनुष्य और उनकी गतिको मनुष्यगति कहते हैं।

जो अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियोंकी प्राप्तिके बलसे क्रीड़ा करते हैं उन्हें देव और उनकी गतिको देवगति कहते हैं।

जो जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, आहारादि संज्ञाएं और रोगादिसे रहित हो चुके हैं उन्हें सिद्ध और उनकी गतिको सिद्धगति कहते हैं।

अब इस गतिमें जीवसमासोंके अन्वेषणके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं -

णेरइया चउट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ २५ ॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ २५ ॥

नरकगतिमें अपर्याप्त अवस्थाके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है। सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका सर्वत्र ही अपर्याप्त अवस्थाके साथ विरोध है। परन्तु पर्याप्त अवस्थाके साथ इनका विरोध

नहीं है, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंका पर्याप्त अवस्थामें सातों ही पृथिवीयोंमें सद्भाव पाया जाता है। चूंकि बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव मरकर प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होते हैं, अतः प्रथम पृथिवीकी अपर्याप्त अवस्थाके साथ सम्यग्दर्शनका विरोध नहीं है। किन्तु कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी अवस्थामें मरकर द्वितीयादि पृथिवियोंमे उत्पन्न नहीं होता। अतएव द्वितीयादि पृथिवियोंकी अपर्याप्त अवस्थाके साथ उक्त सम्यग्दर्शनका विरोध है। नरकगतिमें इन चार गुणस्थानोंके अतिरिक्त ऊपरके गुणस्थानोंकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि, संयमासंयम और संयम पर्यायके साथ नरकगतिमें उत्पत्तिका विरोध है।

अब तिर्यंचगतिमें गुणस्थानोंका अन्वेषण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा पंचसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा त्ति ॥ २६ ॥

तिर्यंच जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत इन पांच गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ २६ ॥

बद्धायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि और सासादन गुणस्थानवालोंका तिर्यंचगतिके अपर्याप्तकालमें सद्भाव संभव है। परंतु सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयतोंका उस तिर्यंचगतिके अपर्याप्त कालमे सद्भाव संभव नहीं है, क्योंकि, तिर्यंचगतिमें अपर्याप्त कालके साथ सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयतका विरोध है। सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचनी और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यंच; इन पांच प्रकारके तिर्यंचोंमेंसे अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उक्त पांच गुणस्थान नहीं होते हैं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तकोंके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। तिर्यंचनियोंमें अपर्याप्त कालमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि ये दो गुणस्थानवाले ही होते हैं, शेष तीन गुणस्थान नहीं होते हैं। चूंकि तिर्यंचनियोंमें सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, इसलिये उनके अपर्याप्त कालमें चौथा गुणस्थान नहीं पाया जाता है। कारण यह कि सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथिवीके विना नीचेकी छह पृथिवियोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर एवं भवनवासी देवोंमें और सर्व प्रकारकी स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा नियम है।

अब मनुष्यगतिमें गुणस्थानोंका निर्णय करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा चोद्दससु गुणट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अपमत्तसंजदा अपुव्वकरणपविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा अणियट्टि-बादरसांपराइय-पविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा सुहुमसांपराइय-पविट्ठ-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा उवसंतकसाय-वीयराय-छदुमत्था खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ॥ २७ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण-प्रविष्ट-शुद्धिसंयतोंमें उपशामक और क्षपक, अनिवृत्ति-बादर-

सांपराय-प्रविष्ट-शुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक, सूक्ष्मसांपराय-प्रविष्ट-शुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक, उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली; इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं ॥ २७ ॥

अब देवगतिमें गुणस्थानोंका अन्वेषण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

देवा चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ २८ ॥

देव मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं ॥ २८ ॥

अब पूर्व सूत्रोंमें निर्दिष्ट अर्थका विशेष प्रतिपादन करनेके लिये चार सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा सुद्धा एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ २९ ॥

एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक शुद्ध तिर्यंच होते हैं ॥ २९ ॥

जिनके एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है उन्हें एकेन्द्रिय कहते हैं। जो असंज्ञी होते हुए पंचेन्द्रिय होते हैं उन्हें असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं। पांचों प्रकारके एकेन्द्रिय, तीनों विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इतने जीव केवल तिर्यंचगतिमें ही पाये जाते हैं; यह सूत्रमें प्रयुक्त 'शुद्ध' पदका अभिप्राय है।

इस प्रकार शुद्ध तिर्यंचोंका प्रतिपादन करके अब मिश्र तिर्यंचोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा मिस्सा सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ ३० ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक मिश्र तिर्यंच होते हैं ॥३०॥

तिर्यंचोंकी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिरूप गुणोंकी अपेक्षा अन्य तीन गतियोंमें रहनेवाले जीवोंके साथ समानता है। इसलिये तिर्यंच जीव चौथे गुणस्थान तक तीन गतिवाले जीवोंके साथ मिश्र कहलाते हैं। आगे संयमासंयम गुणकी अपेक्षा तिर्यंचोंकी समानता केवल मनुष्योंके साथ ही है, इसलिये पांचवें गुणस्थान तक उन तिर्यंचोंको मनुष्योंके साथ मिश्र कहा गया है।

अब मनुष्योंकी गुणस्थानोंके द्वारा समानता और असमानताका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा मिस्सा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ ३१ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक मिश्र हैं ॥ ३१ ॥

प्रथम गुणस्थानसे लेकर चार गुणस्थानोंमें जितने मनुष्य हैं वे उक्त चार गुणस्थानोंकी अपेक्षा शेष तीन गतियोंके जीवोंके साथ समान हैं, और संयमासंयम गुणस्थानकी अपेक्षा वे तिर्यंचोंके साथ समान है। अतएव पांचवें गुणस्थान तकके मनुष्योंको मिश्र कहा गया है।

अब शुद्ध मनुष्योंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं–

तेण परं सुद्धा मणुस्सा ॥ ३२ ॥

पांचवें गुणस्थानके आगे शुद्ध ही मनुष्य हैं ॥ ३२ ॥

प्रारम्भके पांच गुणस्थानोंको छोड़कर शेष गुणस्थान चूंकि मनुष्यगतिके विना अन्य किसी भी गतिमें नहीं पाये जाते हैं, इसलिये उन शेष गुणस्थानवर्ती मनुष्योंको शुद्ध मनुष्य कहा गया है।

अब इन्द्रियमार्गणामें गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं–

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चदुरिंदिया पंचिंदिया अणिंदिया चेदि ॥ ३३ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय जीव होते हैं ॥ ३३ ॥

इन्दन अर्थात् ऐश्वर्यशाली होनेसे यहां इन्द्र शब्दका अर्थ आत्मा है। उस इन्द्रके लिंग (चिन्ह) को इन्द्रिय कहते हैं। अथवा, जो इन्द्र अर्थात् नामकर्मके द्वारा रची जाती है उसे इन्द्रिय कहते हैं। वह दो प्रकारकी है–द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। इनमें द्रव्येन्द्रिय भी दो प्रकारकी है–निर्वृत्ति और उपकरण। जो कर्मके द्वारा रची जाती है उसे निर्वृत्ति कहते हैं। वह बाह्य निर्वृत्ति और अभ्यन्तर निर्वृत्तिके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमें प्रतिनियत चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकाररूपसे परिणत हुए लोकप्रमाण अथवा उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण विशुद्ध आत्मप्रदेशोंकी रचनाको अभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं। अभिप्राय यह है कि स्पर्शन इन्द्रियकी अभ्यन्तर निर्वृत्ति लोकप्रमाण आत्मप्रदेशोंमें तथा अन्य चार इन्द्रियोंकी वह अभ्यन्तर निर्वृत्ति उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रदेशोंमें व्यक्त होती है। उन्हीं आत्मप्रदेशोंमें 'इन्द्रिय' नामको धारण करनेवाला व प्रतिनियत आकारसे संयुक्त जो पुद्गलसमूह होता है उसे बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं। उक्त इन्द्रियोंमें श्रोत्र इन्द्रियका आकार यवकी नालीके समान, चक्षु इन्द्रियका मसूरके समान, रसना इन्द्रियका आधे चन्द्रके समान, घ्राण इन्द्रियका कदंबके फूलके समान और स्पर्शन इन्द्रियका आकार अनेक प्रकारका है। जो निर्वृत्तिका उपकार करती है उसे उपकरण कहते हैं। वह भी बाह्य और अभ्यन्तर उपकरणके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमें चक्षु इन्द्रियमें जो कृष्ण और शुक्ल मण्डल देखा जाता है वह चक्षु इन्द्रियका अभ्यन्तर उपकरण तथा पलक और बरौनी (रोमसमूह) आदि उसका बाह्य उपकरण है।

भावेन्द्रिय भी दो प्रकारकी है–लब्धि और उपयोग। इनमें इन्द्रियकी निर्वृत्तिका कारणभूत जो क्षयोपशमविशेष होता है उसका नाम लब्धि है और उस क्षयोपशमके आश्रयसे

जो आत्माका परिणाम होता है उसे उपयोग कहा जाता है। अभिप्राय यह कि पदार्थके ग्रहणमें शक्तिभूत जो ज्ञानावरणका विशेष क्षयोपशम होता है उसे लब्धि भावेन्द्रिय तथा उस क्षयोपशमके आलंबनसे जो जीवका पदार्थ ग्रहणके प्रति व्यापारविशेष होता है उसे उपयोग भावेन्द्रिय समझना चाहिये। उस उस प्रकारकी इन्द्रियकी अपेक्षा जो अनुवाद अर्थात् आगमानुकूल इन्द्रियोंका कथन किया जाता है उसे इन्द्रियानुवाद कहते हैं। उसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव हैं। जिनके एक ही प्रथम इन्द्रिय पाई जाती है उन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे तथा अंगोपांग नामकर्मके उदयके अवलम्बनसे जिसके द्वारा आत्मा पदार्थगत स्पर्श गुणको जानता है उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पांच एकेन्द्रिय जीव हैं। ये जीव चूंकि एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ही पदार्थको जानते देखते हैं, इसलिये उन्हें एकेन्द्रिय(स्थावर) जीव कहा गया है।

वीर्यान्तराय और रसनेन्द्रियावरणके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मके उदयका अवलम्बन करके जिसके द्वारा रसका ग्रहण होता है उसे रसना इन्द्रिय कहते हैं। जिनके ये दो इन्द्रियां होती हैं उन्हें द्वीन्द्रिय कहते हैं। लट, सीप, शंख और गण्डोला (उदरमें होनेवाली बड़ी कृमि) आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियां जिनके पाई जाती हैं उन्हें त्रीन्द्रिय कहते हैं। वीर्यान्तराय और घ्राणेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नाम कर्मके उदयके अवलम्बनसे जिसके द्वारा गन्धका ग्रहण होता है उसे घ्राण इन्द्रिय कहते हैं। जिन जीवोंके ये तीन इन्द्रियां होती हैं उन्हें त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे कुन्थु, चींटी, खटमल, जूं और बिच्छू आदि।

चक्षुइन्द्रियावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मके उदयका आलम्बन करके जिसके द्वारा रूपका ग्रहण होता है उसे चक्षुइन्द्रिय कहते हैं। जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियां पाई जाती हैं वे चतुरिन्द्रिय जीव हैं। मकड़ी, भौंरा, मधुमक्खी, मच्छर, पतंगा, मक्खी और दंशसे डसनेवाले कीड़ोंको चतुरिन्द्रिय जीव जानना चाहिये। वीर्यान्तराय और श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मके आलम्बनसे जिसके द्वारा सुना जाता है उसे श्रोत्र इन्द्रिय कहते हैं। जिन जीवोंके उक्त पांचों ही इन्द्रियां होती हैं वे पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। स्वेदज, संमूर्च्छिम, उद्भिज, औपपादिक, रसजनित, पोत, अंडज और जरायुज आदि जीवोंको पंचेन्द्रिय जीव जानना चाहिये। जिनके इन्द्रियां नहीं रही हैं वे शरीर रहित सिद्ध जीव अनिन्द्रिय हैं। वे चूंकि इन्द्रियोंके पराधीन होकर अवग्रहादिरूप क्षायोपशमिक ज्ञानके द्वारा पदार्थोंका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये उनका अनन्तज्ञान एवं अनन्तसुख अतीन्द्रिय आत्मोत्थ और स्वाधीन माना गया है।

अब एकेन्द्रिय जीवोंके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं-

एइंदिया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता, सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता ॥ ३४ ॥

एकेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं— बादर और सूक्ष्म। उनमें बादर एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म एकेन्द्रिय भी दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ३४ ॥

जिन जीवोंके बादर नामकर्मका उदय पाया जाता है वे बादर कहे जाते हैं। जिनके सूक्ष्म नामकर्मका उदय पाया जाता है वे सूक्ष्म कहलाते हैं। बादर नामकर्मका उदय दूसरे मूर्त पर्यायोंसे रोके जाने योग्य शरीरको उत्पन्न करता है, तथा सूक्ष्म नामकर्म दूसरे मूर्त पदार्थोंके द्वारा नहीं रोके जानेके योग्य शरीरको उत्पन्न करता है।

बादर और सूक्ष्म दोनों ही पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे दो दो प्रकारके हैं। उनमेंसे जो पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होते हैं उनको पर्याप्तक और जो अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त होते हैं उन्हें अपर्याप्तक कहते हैं। पर्याप्तक जीव इन छह पर्याप्तियोंसे निष्पन्न होते हैं– आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनपानपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। शरीर नामकर्मके उदयसे जो आहारवर्गणारूप पुद्गलस्कंध आत्माके साथ सम्बद्ध होकर खलभाग और रसभागरूप पर्यायसे परिणमन करनेरूप शक्तिके कारण होते हैं उनकी प्राप्तिको आहारपर्याप्ति कहते हैं। यह आहारपर्याप्ति शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर एक अन्तर्मुहूर्तमें निष्पन्न होती है। उस खलभागको हड्डी आदि कठोर अवयवोंके स्वरूपसे तथा रसभागको रस, रुधिर, वसा और वीर्य आदि द्रव अवयव स्वरूपसे परिणत होनेवाले औदारिक आदि तीन शरीरोंकी शक्तिसे युक्त पुद्गलस्कन्धोंकी प्राप्तिको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। यह शरीरपर्याप्ति आहारपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। जो पुद्गल योग्य देशमें स्थित रूपादिविशिष्ट पदार्थके ग्रहण करनेरूप शक्तिकी उत्पत्तिमें सहायक होते हैं उनकी प्राप्तिको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। यह इन्द्रिय-पर्याप्ति शरीरपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। उच्छ्वास और निःश्वासरूप शक्तिकी उत्पत्तिके कारणभूत पुद्गलोंकी प्राप्तिको आनपानपर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति इन्द्रियपर्याप्तिके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें पूर्ण होती है। जो पुद्गल भाषावर्गणाके स्कन्धके निमित्तसे चार प्रकारकी भाषारूपसे परिणमन करनेकी शक्तिके कारणभूत होते हैं उनकी प्राप्तिको भाषापर्याप्ति कहते हैं। यह भी आनपानपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। मनोवर्गणाके स्कन्धसे उत्पन्न हुए जो पुद्गल अनुभूत पदार्थके स्मरणकी शक्तिमें निमित्त होते हैं उन्हें मनःपर्याप्ति कहते हैं। अथवा, द्रव्यमनके आलम्बनसे जो अनुभूत पदार्थके स्मरण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है उसे मनःपर्याप्ति कहते हैं। इन छहों पर्याप्तियोंका प्रारम्भ एक साथ हो जाता है, क्योंकि, उन सबका अस्तित्व जन्मसमयसे लेकर माना गया है। परन्तु उनकी पूर्णता क्रमसे ही होती है। इन पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं। अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे जिन जीवोंकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं हो पाती है और बीचमें ही मरण हो जाता है उन्हें अपर्याप्त कहते हैं। पर्याप्त नामकर्मके उदयके होते हुए भी पर्याप्तियां जब तक पूण नहीं हो जाती हैं तब तक उस अवस्थाको निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रियोंके भेद-प्रभेदोंका कथन करके अब द्वीन्द्रियादिक जीवोंके भेदोंका कथन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहा जाता है–

बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। चउरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। पंचिंदिया दुविहा सण्णी असण्णी। सण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। असण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ३५ ॥

द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्तक और अपर्याप्तक। त्रीन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्तक और अपर्याप्तक। चतुरिन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्तक और अपर्याप्तक। पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं– संज्ञी और असंज्ञी। संज्ञी जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्तक और अपर्याप्तक। असंज्ञी जीव भी दो प्रकारके हैं– पर्याप्तक और अपर्याप्तक ॥ ३५ ॥

द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका स्वरूप कहा जा चुका है। पंचेन्द्रियोंमें कुछ जीव मनसे रहित और कुछ मनसहित होते हैं। उनमें मनसहित जीवोंको संज्ञी अथवा समनस्क कहते हैं और मनरहित जीवोंको असंज्ञी अथवा अमनस्क कहते हैं। वह मन द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें पुद्गलविपाकी अंगोपांग नामकर्मके उदयकी अपेक्षा रखनेवाले जो पुद्गल मनरूपसे परिणत होते हैं उनका नाम द्रव्यमन है। तथा वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमरूप आत्मामें जो विशुद्धि उत्पन्न होती है वह भावमन है।

अब इन्द्रियोंमें गुणस्थानोंकी निश्चित संख्याका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं–

एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपंचिंदिया एकम्हि चेव मिच्छाइट्ठिठाणे ॥ ३६ ॥

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव एक मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ ३६ ॥

दो तीन आदि संख्याओंका निराकरण करनेके लिये सूत्रमें 'एक' पदका तथा अन्य सासादनादि गुणस्थानोंका निराकरण करनेके लिये 'मिथ्यादृष्टि' पदका ग्रहण किया है।

अब पंचेन्द्रियोंमें गुणस्थानोंकी संख्याका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं–-

पंचिंदिया असण्णिपंचिंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ ३७ ॥

पंचेन्द्रिय जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ ३७ ॥

केवलियोंके यद्यपि भावेन्द्रियां सर्वथा नष्ट हो गई हैं और द्रव्य इन्द्रियोंका व्यापार भी बंद हो गया है तो भी छद्मस्थ अवस्थामें भावेन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न हुई द्रव्येन्द्रियोंकी अपेक्षा उन्हें पंचेन्द्रिय कहा जाता है।

अब अतीन्द्रिय जीवोंके अस्तित्वका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं–

तण परमणिंदिया इदि ॥ ३८ ॥

उन एकेन्द्रियादि जीवोंसे परे अनिन्द्रिय जीव होते है ॥ ३८ ॥

सूत्रमें 'तेन' यह पद जातिका सूचक है। 'परं' शब्दका अर्थ ऊपर है। इससे यह अर्थ हुआ कि एकेन्द्रियादि जातिभेदोंसे रहित जीव अनिन्द्रिय होते हैं, क्योंकि, उनके संपूर्ण द्रव्यकर्म और भावकर्म नष्ट हो चुके हैं।

अब कायमार्गणाका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

कायाणुवादेण अत्थि पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइ-काइया तसकाइया अकाइया चेदि ॥ ३९ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक (कायरहित) जीव होते हैं ॥ ३९ ॥

सूत्रके अनुकूल कथन करनेको अनुवाद कहते हैं। कायके अनुवादको कायानुवाद कहते हैं। पृथिवीरूप शरीरको पृथिवीकाय कहते हैं। यह काय जिन जीवोंके होता है उन्हें पृथिवीकायिक कहते हैं। अथवा, जो जीव पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयके वशीभूत है उन्हें पृथिवीकायिक कहा जाता है। इस प्रकारसे कार्मण काययोगमें स्थित जीवोंकी भी पृथिवीकायिक संज्ञा बन जाती है, क्योंकि, उनके पृथिवीरूप शरीरके न होनेपर भी पृथिवीकायिक नामकर्मका उदय पाया जाता है। इसी प्रकार जलकायिक आदि शब्दोंकी भी निरुक्ति कर लेना चाहिये। स्थावर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई विशेषताके कारण ये पांचों ही जीव स्थावर कहलाते हैं। जो जीव त्रस नामकर्मके उदयसे सहित हैं उन्हें त्रसकायिक कहते हैं। जिनका त्रस और स्थावर नामकर्म नष्ट हो गया है उन सिद्धोंको अकायिक कहते हैं। जिस प्रकार अग्निके संबंधसे सुवर्ण कीट और कालिमा रूप बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकारके मलसे रहित हो जाता है उसी प्रकार ध्यानरूप अग्निके संबंधसे यह जीव काय और कर्मबन्धसे मुक्त होकर कायरहित हो जाता है।

अब पृथिवीकायिकादि जीवोंके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

पुढविकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। आउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तेउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। वाउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ४० ॥

पृथिवीकायिक जीव मूलमें दो प्रकारके हैं— बादर और सूक्ष्म। बादर पृथिवीकायिकके भी दो भेद हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त। इसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव भी दो प्रकारके हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त। जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं— बादर और सूक्ष्म। बादर जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त।

अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं– बादर और सूक्ष्म। बादर अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त। वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं– बादर और सूक्ष्म। बादर वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त॥ ४०॥

बादर नामकर्मके उदयसे जिनका शरीर स्थूल होता है उन्हें बादर कहते हैं। सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे जिनका शरीर प्रतिघातरहित होता है उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। बादर अर्थात् ऐसा स्थूल शरीर जो दूसरेको रोक सके और दूसरेसे स्वयं भी रुक सके। इसी प्रकार सूक्ष्मका अर्थ है दूसरेसे न रुक सकना और न दूसरेको रोक सकना। त्रस जीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं होते। अब वनस्पतिकायिक जीवोंके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वणप्फइकाइया दुविहा पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा। पत्तेयसरीरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। साधारणसरीरा दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि॥ ४१॥

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं– प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर। प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त। साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं– बादर और सूक्ष्म। बादर जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त॥ ४१॥

जिनका प्रत्येक अर्थात् पृथक् पृथक् शरीर होता है उन्हें प्रत्येकशरीर जीव कहते हैं। जैसे– खैर आदि वनस्पति। यद्यपि इस लक्षणके अनुसार पृथिवीकायादि शेष पांचों स्थावर जीव भी प्रत्येकशरीर ही सिद्ध होते हैं, फिर भी उनमें साधारणशरीर जैसा कोई निराकरणीय दूसरा भेद न होनेसे उनकी प्रत्येकशरीर संज्ञा नहीं की गई है।

जिन जीवोंके साधारण अर्थात् पृथक् पृथक् शरीर न होकर समान रूपसे एक ही शरीर पाया जाता है उन्हें साधारणशरीर जीव कहते हैं। इन जीवोंके साधारण आहार और साधारण ही श्वासोच्छ्वासका ग्रहण होता है। इसी प्रकार इनमेंसे जहां एक मरता है वहां अनन्त जीवोंका मरण तथा जहां एक उत्पन्न होता है वहां अनन्त जीवोंकी उत्पत्ति भी होती है। ऐसे एक निगोदशरीरमें सिद्धराशि तथा समस्त अतीत कालसे भी अनन्तगुणे जीव समानरूपसे रहा करते हैं। नित्यनिगोदमें ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने त्रस पर्याय अभी तक नहीं पाई है, और जो तीव्र कषायके उदयसे उत्पन्न हुए दुर्लेश्यारूप परिणामोंसे अत्यन्त मलिन रहते हैं, इसीलिये वे निगोद स्थानको कभी नहीं छोड़ते। अब त्रसकायिक जीवोंके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं–

तस काइया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता॥ ४२॥

त्रसकायिक जीव दो प्रकारके हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त॥ ४२॥

त्रस नामकर्मके उदयसे जिन्होंने त्रस पर्यायको प्राप्त कर लिया है वे त्रस जीव कहलाते हैं। उनमें कितने ही जीव दो इन्द्रियों, कितने ही तीन इन्द्रियों, कितने ही चार इन्द्रियों और कितने ही पांचों इन्द्रियोंसे युक्त होते हैं।

पृथिवीकायिक आदि जीवोंके स्वरूपका कथन करके अब उनमें गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया एक्कम्मि चेय मिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥ ४३ ॥

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव एक मिथ्यादृष्टि नामक गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ ४३ ॥

अब त्रस जीवोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तसकाइया बीइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ ४४ ॥

त्रसकायिक जीव द्वीन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली तक होते हैं ॥ ४४ ॥

अब बादर जीवोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

बादरकाइया बादरेइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ ४५ ॥

बादरकायिक जीव एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर अयोगिकेवली पर्यंत होते हैं ॥ ४५ ॥

अब त्रस और स्थावर इन दोनों कायोंसे रहित जीवोंके अस्तित्वका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तेण परमकाइया चेदि ॥ ४६ ॥

स्थावर और त्रस कायसे रहित अकायिक (कायरहित) जीव होते हैं ॥ ४६ ॥

जो त्रस और स्थावररूप दो प्रकारकी कायसे रहित हो चुके हैं वे सिद्ध जीव बादर और सूक्ष्म शरीरके कारणभूत कर्मसे रहित हो जानेके कारण अकायिक कहलाते हैं।

अब योगमार्गणाके द्वारा जीव द्रव्यका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी वचिजोगी कायजोगी चेदि ॥ ४७ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव होते हैं ॥ ४७ ॥

भावमनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे मनोयोग, वचनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे काययोग कहते हैं। जिसके मनोयोग होता है उसे मनोयोगी कहते हैं। इसी प्रकार वचनयोगी और काययोगीका भी अर्थ समझना चाहिए।

अब योगरहित जीवोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

अजोगी चेदि ॥ ४८ ॥

अयोगी जीव होते हैं ॥ ४८ ॥

जिन जीवोंके पुण्य और पापके उत्पादक शुभ और अशुभ योग नहीं रहे हैं वे अनुपम और अनन्त बलसे सहित अयोगी जिन कहलाते हैं ।

अब मनोयोगके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणजोगो चउव्विहो सच्चमणजोगो मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो असच्च-मोसमणजोगो चेदि ॥ ४९ ॥

मनोयोग चार प्रकारका है– सत्यमनोयोग, मृषामनोयोग, सत्यमृषामनोयोग और असत्यमृषा-मनोयोग ॥ ४९ ॥

सत्यके विषयमें होनेवाले मनको सत्यमन और उसके द्वारा जो योग होता है उसे सत्य-मनोयोग कहते हैं । इससे विपरीत योगको मृषामनोयोग कहते हैं । जो योग सत्य और मृषा इन दोनोंके संयोगसे होता है उसे सत्यमृषामनोयोग कहते हैं । सत्यमनोयोग और मृषामनोयोगसे भिन्न योगको असत्यमृषामनोयोग कहते हैं । अभिप्राय यह है कि जहां जिस प्रकारकी वस्तु विद्यमान हो वहां उसी प्रकारसे प्रवृत्त होनेवाले मनको सत्यमन और इससे विपरीत मनको असत्यमन कहते हैं । सत्य और असत्य इन दोनोंरूप मनको उभयमन कहते हैं । जो संशय और अनध्यवसायरूप ज्ञानका कारण होता है उसे अनुभयमन कहते हैं । इन सबसे होनेवाले योग (प्रयत्नविशेष) को क्रमशः सत्यमनोयोग आदि कहा जाता है ।

मनोयोगके भेदोंका कथन करके अब गुणस्थानोंमें उसके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणजोगो सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ५० ॥

मनोयोग, सत्यमनोयोग तथा असत्यमृषामनोयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली पर्यंत होते हैं ॥ ५० ॥

प्रश्न— केवली भगवान्‌के सत्यमनोयोगका सद्भाव रहा आवे, क्योंकि, वहांपर वस्तुके यथार्थ ज्ञानका सद्भाव पाया जाता है । परंतु उनके असत्यमृषामनोयोगका सद्भाव संभव नहीं है, क्योंकि, वहांपर संशय और अनध्यवसायरूप ज्ञानका अभाव है ?

उत्तर— ऐसा नहीं है, क्योंकि, वहांपर संशय और अनध्यवसायके कारणभूत वचनका कारण मन होनेसे उसमें भी अनुभय रूप धर्म रह सकता है । अतः सयोगी जिनमें अनुभय-मनोयोगका सद्भाव स्वीकार कर लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

प्रश्न— केवलीके वचन संशय और अनध्यवसायको उत्पन्न करते हैं, इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर— चूंकि केवलीके ज्ञानके विषयभूत पदार्थ अनन्त और श्रोताके आवरणकर्मका क्षयोपशम अतिशयसे रहित है, अतएव केवलीके वचनोंके निमित्तसे श्रोताके संशय और अनध्यवसायकी उत्पत्ति हो सकती है।

अब शेष दो मनोयोगोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति ॥ ५१ ॥

मृषामनोयोग और सत्यमृषामनोयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक पाये जाते हैं ॥ ५१ ॥

प्रश्न— मृषामनोयोग और असत्यमृषामनोयोग प्रमादजनित हैं। चूंकि उपशामक और क्षपक जीवोंके वह प्रमाद नष्ट हो चुका है, अतएव उनके उक्त दोनों मनोयोग कैसे संभव हैं ?

उत्तर— बारहवें गुणस्थान पर्यंत आवरण कर्मके पाये जानेसे छद्मस्थ जीवोंके विपर्यय और अनध्यवसायरूप अज्ञानके कारणभूत दोनों मनोयोगोंका सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं है।

अब वचनयोगके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वचिजोगो चउव्विहो सच्चवचिजोगो मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो चेदि ॥ ५२ ॥

वचनयोग चार प्रकारका है— सत्यवचनयोग, मृषावचनयोग, सत्यमृषावचनयोग और असत्यमृषावचनयोग ॥ ५२ ॥

जनपद आदि दस प्रकारके सत्यवचनमें वचनवर्गणाके निमित्तसे जो योग होता है उसे सत्यवचनयोग कहते हैं। उससे विपरीत योगको मृषावचनयोग कहते हैं। सत्यमृषारूप वचनयोगको उभयवचनयोग कहते हैं। जो न तो सत्यरूप है और न मृषारूप ही है वह असत्यमृषावचनयोग है। जैसे— असंज्ञी जीवोंकी भाषा और संज्ञी जीवोंकी आमंत्रणी आदि भाषाएं।

इस प्रकार वचनयोगके भेदोंको कहकर अब गुणस्थानोंमें उसके सत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो बीइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ५३ ॥

वचनयोग और असत्यमृषावचनयोग द्वीन्द्रिय जीवोंसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है ॥ ५३ ॥

प्रश्न— अनुभयरूप मनके निमित्तसे जो वचन उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभयवचन कहते हैं, ऐसा स्वीकार करनेपर मनरहित द्वीन्द्रियादिक जीवोंके अनुभयवचन कैसे संभव हो सकते हैं ?

उत्तर— यह कोई एकान्त नहीं है कि संपूर्ण वचन मनसे ही उत्पन्न हों। कारण कि यदि संपूर्ण वचनोंकी उत्पत्ति मनसे ही मानी जाय तो ऐसी अवस्थामें मनरहित केवलियोंके वचनोंका अभाव प्राप्त हो जायगा। इसीलिये द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवोंके मनके न रहनेपर भी वचन होता है। यदि कहा जाय कि विकलेन्द्रिय जीवोंके मनके विना चूंकि ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है, इसलिये ज्ञानके विना उनके वचनकी भी प्रवृत्ति संभव नहीं है; सो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, यह कोई एकान्त नहीं है। यदि मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, ऐसा एकान्त मान लिया जाता है तो फिर उस अवस्थामें संपूर्ण इन्द्रियोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। मन इन्द्रियोंका सहायक भी नहीं है, क्योंकि, प्रयत्न और आत्माके सहकारकी अपेक्षा रखनेवाली इन्द्रियोंसे इन्द्रियज्ञानकी उत्पत्ति पाई जाती है।

अब सत्यवचनयोगका गुणस्थानोंमें निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सच्चवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ५४ ॥

सत्यवचनयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सजोगिकेवली गुणस्थान तक होता है ॥ ५४ ॥

कारण यह कि मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानोंमें दस प्रकारके सत्यवचनोंके पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है।

शेष वचनयोगोंका गुणस्थानोंमें निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराग-छदुमत्था त्ति ॥ ५५ ॥

मृषावचनयोग और सत्यमृषावचनयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकपाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक पाये जाते हैं ॥ ५५ ॥

प्रश्न— जिनकी कषायें क्षीण हो गई हैं ऐसे क्षीणकपाय-वीतराग-छद्मस्थोंके असत्य-वचन कैसे संभव है?

उत्तर— असत्यवचनका कारण अज्ञान है सो वह बारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। अत एव उनके असत्यवचनयोगके रहनेमें कोई बाधा नहीं है।

अब काययोगकी संख्याका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

कायजोगो सत्तविहो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो कम्मइयकायजोगो चेदि ॥ ५६ ॥

काययोग सात प्रकारका है— औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियककाययोग, वैक्रियकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ॥ ५६ ॥

औदारिकशरीर द्वारा उत्पन्न हुई शक्तिसे जीवके प्रदेशोंमें परिस्पन्दका कारणभूत जो प्रयत्न होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। पुरु, महत्, उदार और उराल ये शब्द एकार्थ-वाचक हैं। उदारमें जो होता है उसे औदारिक और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिक-काययोग कहते हैं। यह औदारिकशरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है तब तक मिश्र कहलाता है। उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं। जो शरीर अणिमा-महिमा आदि अनेक ऋद्धियोंसे संयुक्त होता है उसे वैक्रियिकशरीर और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको वैक्रियिककाययोग कहते हैं। वह वैक्रियिकशरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है तब तक मिश्र कहलाता है। उसके द्वारा होनेवाले योगको वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहा जाता है।

जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थोंका आहरण (ग्रहण) करता है उसे आहारकशरीर और उस आहारकशरीरसे जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते हैं। अभिप्राय यह है कि छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके चित्तमें सूक्ष्म तत्त्वगत संदेह उत्पन्न होनेपर वह जिस शरीरके द्वारा केवलीके पास जाकर सूक्ष्म पदार्थोंका आहरण (ग्रहण) करता है उसे आहारकशरीर और उसके द्वारा होनेवाले योगको आहारककाययोग कहते हैं। वह आहारकशरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है तब तक उसको आहारकमिश्र कहते हैं। उसके द्वारा जो योग होता है उसे आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं। यह आहारकशरीर सूक्ष्म होनेके कारण गमन करते समय वैक्रियिकशरीरके समान न तो पर्वतोंसे टकराता है, न शस्त्रोंसे छिदता है, और न अग्निसे जलता भी है।

ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंके स्कन्धको कार्मणशरीर कहते हैं। अथवा जो कार्मण-शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होता है उसे कार्मणशरीर कहते हैं। उसके द्वारा होनेवाले योगको कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग एक, दो अथवा तीन समय तक होता है।

अब औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग किसके होते हैं, इसका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो तिरिक्ख-मणुस्साणं ॥ ५७ ॥

औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यंच और मनुष्योंके होते हैं ॥ ५७ ॥

आगे वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग किन जीवोंके होता है, इसका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं —

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो देव-णेरइयाणं ॥ ५८ ॥

वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग देव और नारकियोंके होता है ॥ ५८ ॥

अब आहारककाययोगके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो संजदाणमिद्धिपत्ताणं ॥ ५९ ॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयतोंके ही होते हैं ॥ ५९ ॥

अब कार्मणशरीरके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

कम्मइयकायजोगो विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं ॥ ६० ॥

कार्मणकाययोग विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके तथा समुद्घातको प्राप्त केवलीके होता है ॥ ६० ॥

नये शरीरकी प्राप्तिके लिये जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अथवा, विग्रह शब्दका अर्थ कुटिलता भी होता है। इसलिये विग्रहके साथ अर्थात् कुटिलतापूर्वक (मोड़ेके साथ) जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। इस विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके कार्मणकाययोग होता है। जिससे अन्य संपूर्ण शरीर उत्पन्न होते हैं उस बीजभूत कार्मणशरीरको कार्मणकाय कहते हैं। वचनवर्गणा, मनोवर्गणा और कायवर्गणाके निमित्तसे जो आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्दन होता है उसे योग कहते हैं। कार्मणकायके आश्रयसे जो योग उत्पन्न होता है उसे कार्मणकाययोग कहते हैं। वह विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके होता है।

एक गतिसे दूसरी गतिको गमन करनेवाले जीवकी गति चार प्रकारकी होती है- इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिकागति। इषु अर्थात् धनुषसे छूटे हुए बाणके समान मोड़ेसे रहित गमनको इषुगति कहते हैं। इस गतिमें एक समय लगता है। जैसे हाथसे तिरछे फेंके गये द्रव्यकी एक मोड़ेवाली गति होती है उसी प्रकार संसारी जीवोंकी एक मोड़ेवाली गतिको पाणिमुक्तागति कहते हैं। यह गति दो समयवाली होती है। जैसे हलमें दो मोड़ होते हैं उसी प्रकार दो मोड़ेवाली गतिको लांगलिकागति कहते हैं। यह गति तीन समयवाली होती है। जैसे गायका चलते समय मूत्रका करना अनेक मोड़ेवाला होता है उसी प्रकार तीन मोड़ेवाली गतिको गोमूत्रिकागति कहते हैं। यह गति चार समयवाली होती है। इनमेंसे एक इषुगतिको छोड़कर शेष तीनों गतियोंमें यह कार्मणकाययोग होता है। जो प्रदेश जहां स्थित हैं वहांसे लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रमसे विद्यमान आकाशप्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणी कहते हैं। जीवोंका गमन इस श्रेणीके द्वारा ही होता है। विग्रहगतिवाले जीवके अधिकसे अधिक तीन मोड़े होते हैं, क्योंकि, ऐसा कोई स्थान नहीं है जहांपर पहुंचनेके लिये तीन मोड़ेसे अधिक लग सकें।

मूल शरीरको न छोड़कर शरीरसे आत्मप्रदेशोंके बाहिर निकल जानेको समुद्घात कहते हैं। अघातिया कर्मोंकी विषम स्थितिको समान करनेके लिये जो केवली जीवोंके आत्मप्रदेश ऊपर, नीचे और तिरछे फैल जाते हैं उसे केवलसमुद्घात कहा जाता है। यह आठ समयोंके भीतर पूर्ण होता है। उनमेंसे चार समय आत्माके प्रदेशोंके विस्तृत होनेमें और आगेके चार समय उनके संकुचित होनेमें लगते हैं। उसमें कपाटरूप समुद्घातके समय औदारिकमिश्रकाययोग और आगे प्रतर व लोकपूरणमें कार्मणकाययोग रहता है।

अब काययोगका गुणस्थानोंमें ज्ञान करानेके लिये आगेके चार सूत्र कहे जाते हैं—

कायजोगो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६१ ॥

सामान्यसे काययोग, औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली तक होते हैं ॥ ६१ ॥

यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि औदारिकमिश्रकाययोग चार अपर्याप्त गुणस्थानोंमें ही होता है।

अब वैक्रियिककाययोगके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकाजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ ६२ ॥

वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक होते हैं ॥ ६२ ॥

यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जीव नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं और वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके ही होता है।

अब आहारककाययोगके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो एकम्हि चेव पमत्तसंजदट्ठाणे ॥ ६३ ॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग एक प्रमत्त गुणस्थानमें ही होते हैं ॥६३॥

अब कार्मणकाययोगके आधारभूत जीवोंके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

कम्मइयकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६४ ॥

कार्मणकाययोग एकेन्द्रियोंसे लेकर सजोगिकेवली तक होता है ॥ ६४ ॥

यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि पर्याप्तक दशामें ही संभव ऐसे संयतासंयतादि गुणस्थानोंमें कार्मणकाययोग नहीं पाया जाता है। पर्याप्त अवस्थामें वह समुद्घातके समय ही पाया जाता है।

आगे संमिलित रूपमें तीनों योगोंके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६५ ॥

क्षयोपशमकी अपेक्षा एकरूपताको प्राप्त हुए मनोयोग, वचनयोग और काययोग ये तीनों योग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक होते हैं ॥ ६५ ॥

अब द्विसंयोगी योगोंके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

वचिजोगो कायजोगो बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ ६६ ॥

वचनयोग और काययोग द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक होते हैं ॥ ६६ ॥

अब एकसंयोगी योगके स्वामीके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं–

कायजोगो एइंदियाणं ॥ ६७ ॥

काययोग एकेन्द्रिय जीवोंके होता है ॥ ६७ ॥

अभिप्राय यह है कि एकेन्द्रिय जीवोंके एक मात्र काययोग, द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक वचन और काय ये दो योग, तथा शेष (समनस्क) जीवोंके तीनों ही योग होते हैं।

इस प्रकार सामान्यसे योगकी सत्ताको बतलाकर अब किस कालमें किसके कौन-सा योग पाया जाता है और कौन-सा योग नहीं पाया जाता है, इसकी प्ररूपणा करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणजोगो वचिजोगो पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ॥ ६८ ॥

मनोयोग तथा वचनयोग पर्याप्तोंके होते हैं, अपर्याप्तोंके नहीं होते ॥ ६८ ॥

अब सामान्य काययोगकी सत्ताका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि, अपज्जत्ताण वि अत्थि ॥ ६९ ॥

काययोग पर्याप्तोंके भी होता है और अपर्याप्तोंके भी होता है ॥ ६९ ॥

अब आगे जिन पर्याप्तियोंकी पूर्णतासे जीव पर्याप्तक और जिनकी अपूर्णतासे वे अपर्याप्तक होते हैं उन पर्याप्तियों और अपर्याप्तियोंकी संख्या बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

छ पज्जत्तीओ, छ अपज्जत्तीओ ॥ ७० ॥

छह पर्याप्तियां होती हैं और छह अपर्याप्तियां भी होती हैं ॥ ७० ॥

आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास-निःश्वास, भाषा और मन इनको उत्पन्न करनेवाली शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं। वे पर्याप्तियां छह हैं– आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनपानपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। इन छह पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं। वे अपर्याप्तियां भी छह हैं– आहार-अपर्याप्ति, भाषा-अपर्याप्ति, इन्द्रिय-अपर्याप्ति, आनपान-अपर्याप्ति और मन-अपर्याप्ति (देखिये पीछे पृ. १७)।

अब उन पर्याप्तियोंके आधारको बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ ७१ ॥

पूर्वोक्त छहों पर्याप्तियां तथा छहों अपर्याप्तियां संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक होती हैं ॥ ७१ ॥

सब जीवोंके छह ही पर्याप्तियां नहीं होती हैं, किन्तु किन्हींके पांच और किन्हींके चार भी होती हैं, इस बातको बतलानेके लिये आगे चार सूत्र कहे जाते हैं—

पंच पज्जत्तीओ, पंच अपज्जत्तीओ ॥ ७२ ॥

पांच पर्याप्तियां और पांच अपर्याप्तियां होती हैं ॥ ७२ ॥

यद्यपि ये पांच पर्याप्तियां उपर्युक्त छहों पर्याप्तियोंके अन्तर्गत हैं, फिर भी किन्हीं जीव-विशेषोंमें छहों पर्याप्तियां पाई जाती हैं और किन्हीं जीवोंमें पांच ही पर्याप्तियां पाई जाती हैं; इस विशेषताको दिखलानेके लिये इस पृथक् सूत्रका अवतार हुआ है। यहांपर मन:पर्याप्तिको छोड़कर शेष पांच पर्याप्तियां विवक्षित हैं।

वे पांच पर्याप्तियां और पांच अपर्याप्तियां किनके होती हैं, इस शंकाको दूर करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ ७३ ॥

उपर्युक्त पांच पर्याप्तियां और पांच अपर्याप्तियां द्वीन्द्रिय जीवोंसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त होती हैं ॥ ७३ ॥

पर्याप्तियोंकी संख्याके अस्तित्वमें और भी विशेषता बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

चत्तारि पज्जत्तीओ, चत्तारि अपज्जत्तीओ ॥ ७४ ॥

चार पर्याप्तियां और चार अपर्याप्तियां होती हैं ॥ ७४ ॥

किन्हीं जीवोंके ये चार ही पर्याप्तियां और अपर्याप्तियां होती हैं– आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और आनपानपर्याप्ति। इसी प्रकार चार अपर्याप्तियां भी समझना चाहिये।

अब उन चार पर्याप्तियों और चार अपर्याप्तियोंके अधिकारी जीवोंके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

एइंदियाणं ॥ ७५ ॥

भाषा और मन पर्याप्ति-अपर्याप्तियोंसे रहित ये चार पर्याप्तियां और चारों अपर्याप्तियां एकेन्द्रिय जीवोंके ही होती हैं ॥ ७५ ॥

इस प्रकार पर्याप्तियों और अपर्याप्तियोंका निरूपण करके अब अमुक जीवमें यह योग होता है और अमुक जीवमें यह योग नहीं होता है, इसका कथन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं–

ओरालियकायजोगो पज्जत्ताणं, ओरालियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ॥७६॥

औदारिककाययोग पर्याप्तकोंके और औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥७६॥

शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर जीव पर्याप्तक कहे जाते हैं। पूर्णताको प्राप्त हुए औदारिकशरीरके आलम्बन द्वारा उत्पन्न हुए जीवप्रदेशपरिस्पन्दनसे जो योग होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। कार्मण और औदारिक शरीरके स्कन्धोंके निमित्तसे जीवके प्रदेशोंमें उत्पन्न हुए परिस्पन्दनसे जो योग होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं। वह औदारिकशरीरकी अपर्याप्त अवस्थामें होता है। यद्यपि कार्मणशरीर पर्याप्त अवस्थामें भी विद्यमान रहता है, फिर भी वह चूंकि जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दनका कारण नहीं है, अतएव पर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग नहीं होता है।

अब वैक्रियिककाययोगके सद्भावका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो पज्जत्ताणं, वेउव्वियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ॥७७॥

पर्याप्त देव-नारकियोंके वैक्रियिककाययोग और अपर्याप्तोंके वैक्रियिकमिश्रकाययोग होता है ॥ ७७ ॥

अब आहारकाययोगका आधार बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं

आहारकायजोगो पज्जत्ताणं, आहारमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ॥ ७८ ॥

आहारकाययोग पर्याप्तकोंके और आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥ ७८ ॥

यद्यपि आहारकशरीर निर्माण करनेवाले साधुका औदारिकशरीर पूर्ण होता है, फिर भी उसके जो आहारकशरीर उत्पन्न होता है वह जब तक पूर्ण नहीं होता है तब तक उसको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्तसंयत जीवको उक्त शरीरकी अपेक्षा अपर्याप्तक कहा जाता है।

इस प्रकार पर्याप्तियों और अपर्याप्तियोंमें योगोंके सत्त्व और असत्त्वका कथन करके अब चार गति संबन्धी पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें गुणस्थानोंके सत्त्व और असत्त्वके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

णेरइया मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता॥७९॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्तक होते हैं और कदाचित् अपर्याप्तक भी होते हैं ॥ ७९ ॥

अब उन नारक संबंधी शेष दो गुणस्थनोंके स्थानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८० ॥

नारकी जीव सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं ॥ ८० ॥

अभिप्राय यह है कि जिनकी छहों पर्याप्तियां पूर्ण हो गई हैं ऐसे नारकी ही इन दो गुणस्थानोंके साथ परिणत होते हैं, अपर्याप्त अवस्थामें वे इन गुणस्थानोंसे परिणत नहीं होते। कारण यह कि नारकियोंके अपर्याप्त अवस्थामें इन दो गुणस्थानोंकी उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणामोंकी संभावना नहीं है। इसीलिये उनके अपर्याप्त अवस्थामें ये दोनों गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं।

इस प्रकार सामान्यरूपसे नारकियोंका कथन करके अब विशेषरूपसे उनका कथन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ८१ ॥

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी होते हैं ॥ ८१ ॥

प्रथम पृथिवीमें जो नारकी हैं उनके पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामें संभव गुणस्थानोंकी प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके ही समान है, उसमें काई विशेषता नहीं है।

अब शेष नरकोंमें रहनेवाले नारकियोंके विशेष कथनके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता ॥ ८२ ॥

दूसरी पृथिवीसे सातवीं पृथिवी तकके नारकी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८२ ॥

प्रथम पृथिवीको छोड़कर शेष छह पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी ही उत्पत्ति पाई जाती है, इसलिये वहांपर प्रथम गुणस्थानमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाएं बतलाई गई हैं।

अब उन पृथिवियोंमें शेष गुणस्थान किस अवस्थामें पाये जाते हैं और किस अवस्थामें नहीं पाये जाते हैं, इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥८३॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी जीव सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं ॥ ८३ ॥

सासादनगुणस्थानवर्ती जीव नरकमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि, सासादन गुणस्थानवालेके नारकायुका बन्ध नहीं होता है। इसके अतिरिक्त जिसने पहले नारकायुका बन्ध कर लिया है ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि, नारकायुका बन्ध कर लेनेवाले जीवका सासादन गुणस्थानमें मरण सम्भव नहीं है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका चूंकि इस गुणस्थानमें सर्वथा मरण ही सम्भव नहीं है, अतएव यह गुणस्थान पर्याप्त अवस्थामें ही पाया जाता है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें उत्पन्न ही नहीं होते हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंके शेष छह पृथिवियोंमें उत्पन्न होनेके निमित्त नहीं पाये जाते।

अब तिर्यंचगतिमें गुणस्थानोंके सद्भावका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८४ ॥

तिर्यंच जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८४ ॥

जिन जीवोंने सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेके पहले मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यंचआयुका बन्ध कर लिया है उनकी तो सम्यग्दर्शनके साथ तिर्यंचोंमें उत्पत्ति होती है, किन्तु शेष सम्यग्दृष्टि जीवोंकी वहां उत्पत्ति नहीं होती है। इतना अवश्य है कि जिन जीवोंने सम्यग्दर्शनप्राप्तिके पूर्वमें तिर्यंचआयुका बन्ध कर लिया है वे मरकर भोगभूमिज तिर्यंचोंमें ही उत्पन्न होते हैं, न कि कर्मभूमिज तिर्यंचोंमें।

अब तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८५ ॥

तिर्यंच जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्त ही होते हैं ॥ ८५ ॥

यहां यह शंका हो सकती है कि जिसने मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यंचआयुको बांधकर पीछे सम्यग्दर्शनके साथ संयमासंयमको भी प्राप्त कर लिया है ऐसा जीव यदि मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है तो उसके तिर्यंच अपर्याप्त अवस्थामें संयतासंयत गुणस्थान रह सकता है। तब ऐसी अवस्थामें अपर्याप्त तिर्यंचोंके संयतासंयत गुणस्थानका सर्वथा निषेध क्यों किया गया है? परन्तु ऐसी शंका करना योग्य नहीं है, कारण यह कि देवगतिको छोड़कर अन्य गति सम्बन्धी आयुके बांधनेवाले जीवके अणुव्रत ग्रहण करनेकी बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती। इसके अतिरिक्त तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी अपर्याप्त अवस्थामें अणुव्रतोंकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव यदि मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं तो वे भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके व्रतग्रहण सम्भव नहीं है।

इस प्रकार तिर्यंचोंकी सामान्य प्ररूपणा करके अब उनके विशेष स्वरूपका निर्णय करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्ता ॥ ८६ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यंचोंके समान है ॥ ८६ ॥

अब स्त्रीवेदयुक्त तिर्यंचोंमें विशेषताका कथन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ८७ ॥

योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८७ ॥

सासादनगुणस्थानवाला जीव मरकर नारकियोंमें तो उत्पन्न नहीं होता है, किन्तु उसका तिर्यंचोंमें उत्पन्न होना सम्भव है; अतएव उसके अपर्याप्त अवस्थामें भी सासादन गुणस्थान रह सकता है।

अब योनिमती तिर्यंचोंमें सम्भव शेष गुणस्थानोंके स्वरूपका कथन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥८८

योनिमती तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं ॥ ८८ ॥

इसका कारण यह है कि उपर्युक्त गुणस्थानोंमें मरकर कोई भी जीव योनिमती तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होता है। यहां तिर्यंच अपर्याप्तोंमें गुणस्थानोंकी जो प्ररूपणा नहीं की गई है उसका कारण यह है कि उनमें एक मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़कर दूसरे किसी भी गुणस्थानका सद्भाव नहीं पाया जाता है।

अब मनुष्यगतिमें प्रकृत प्ररूपणा करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८९ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें कदाचित् पर्याप्त होते हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८९ ॥

अब मनुष्योंमें शेष गुणस्थानोंके सद्भावको बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९० ॥

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें नियमसे पर्याप्त होते हैं ॥९०॥

यद्यपि आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्तसंयतोंके उक्त शरीर सम्बन्धी छहों पर्याप्तियोंके अपूर्ण रहने तक उसकी अपेक्षासे अपर्याप्तपना भी सम्भव है, तो भी यहां द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे उनको आहारकशरीर सम्बन्धी छह पर्याप्तियोंके पूर्ण नहीं होनेपर भी पर्याप्तोंमें ग्रहण किया गया है। यही बात समुद्घातगत केवलीके सम्बन्धमें भी जाननी चाहिये।

अब मनुष्योंके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

एवं मणुस्सपज्जत्ता ॥ ९१ ॥

मनुष्य पर्याप्तोंकी प्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान है ॥ ९१ ॥

अब मनुष्यनियोंमें गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ९२ ॥

मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होती हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होती हैं ॥ ९२ ॥

अब मनुष्यनियोंमें शेष गुणस्थानोंके स्पष्टीकरणके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥

मनुष्यनी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक ही होती हैं ॥ ९३ ॥

अब देवगतिमें गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

देवा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ९४ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९४ ॥

उक्त देवगतिमें शेष गुणस्थानोंकी सत्ताके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९५ ॥

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्त ही होते हैं ॥ ९५ ॥

इसका कारण यह है कि तीसरे गुणस्थानके साथ किसी भी जीवका मरण नहीं होता है तथा अपर्याप्तकालमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

अब देवगतिमें विशेष भेदोंके आश्रयसे प्ररूपणा करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ९६ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव व इनकी देवियां तथा सौधर्म और ऐशान कल्पवासिनी देवियां, ये सब मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित् अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९६ ॥

चूंकि इन दोनों गुणस्थानोंमें युक्त जीवोंकी उपर्युक्त देव और देवियोंमें उत्पत्ति होती है, अतएव उनके ये दोनों गुणस्थान पर्याप्त और अपर्याप्त इन दोनों ही अवस्थाओंमें सम्भव हैं ।

अब पूर्वोक्त देव और देवियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें असम्भव गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं---

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता णियमा पज्जत्तियाओ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पूर्वोक्त देव नियमसे पर्याप्त होते हैं तथा पूर्वोक्त देवियां भी नियमसे पर्याप्त होती हैं ॥ ९७ ॥

इसका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वके साथ किसी भी जीवका मरण नहीं होता तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंकी मरकर उक्त देव और देवियोंमें उत्पत्तिकी सम्भावना भी नहीं है ।

अब शेष देवोंमें गुणस्थानोंका अस्तित्व बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं---

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिमउवरिमगेवज्जं ति विमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥९८॥

सौधर्म और ऐशानसे लेकर उपरिमउपरिम ग्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९८ ॥

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं---

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९९ ॥

उक्त देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्त ही होते हैं ॥ ९९ ॥

अब शेष देवोंमें गुणस्थानोंके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं---

अणुदिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंतावराजित-सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ १०० ॥

नौ अनुदिशोंमें तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तरविमानोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कदाचित् पर्याप्त भी होते हैं और कदाचित अपर्याप्त भी होते हैं ॥ १०० ॥

अब वेदमार्गणाकी अपेक्षा गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं-

वेदाणुवादेण अत्थि इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा चेदि॥१०१॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव होते हैं ॥ १०१ ॥

' दोषैरात्मानं परं च स्तृणाति छादयतीति स्त्री ' इस निरुक्तिके अनुसार जो दोषोंसे स्वयं अपनेको और दूसरेको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं । स्त्रीरूप जो वेद है उसे स्त्रीवेद कहते हैं । अथवा, जो पुरुषकी इच्छा किया करती है उसे स्त्री कहते हैं । वेदका अर्थ अनुभवन

होता है। इस प्रकारसे जो जीव अपनेको स्त्रीरूप अनुभव करता है उसे स्त्रीवेदी कहते हैं। 'पुरुगुणेषु पुरुभोगेषु च शेते इति पुरुषः' इस निरुक्तिके अनुसार जो पुरु (उत्कृष्ट) गुणोंमें और भोगोंमें शयन करता है अर्थात् सोता है उसे पुरुष कहते हैं। अथवा, जो स्त्रीकी इच्छा किया करता है उसे पुरुष और उसका अनुभव करनेवाले जीवको पुरुषवेदी कहते हैं। जो न स्त्री है, न पुरुष है उसे नपुंसक कहते हैं। अथवा जो स्त्री और पुरुष दोनोंकी इच्छा करता है उसे नपुंसक और उसका अनुभव करनेवाले जीवको नपुंसकवेदी कहते हैं। जिन जीवोंके उक्त तीनों प्रकारके वेदोंसे उत्पन्न होनेवाला संताप दूर हो गया है वे अपगतवेदी कहे जाते हैं।

अब वेदोंसे युक्त जीवोंके सम्भव गुणस्थान आदिका प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ १०२ ॥

स्त्रीवेद और पुरुषवेदवाले जीव असंज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ॥ १०२ ॥

अब नपुंसकवेदियोंके सत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

णवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ १०३ ॥

नपुंसकवेदवाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ॥ १०३ ॥

अब वेदरहित जीवोंका प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तेण परमवगदवेदा चेदि ॥ १०४ ॥

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके सवेद भागके आगे सर्व जीव वेदरहित ही होते हैं ॥ १०४ ॥

यहां जो नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे वेदका अभाव बतलाया गया है वह भाववेदका समझना चाहिये, न कि द्रव्यवेदका; क्योंकि, द्रव्यवेद तो आगे भी बना रहता है।

अब मार्गणाओंमें वेदका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

णेरइया चदुसु ट्ठाणेसु सुद्धा णवुंसयवेदा ॥ १०५ ॥

नारकी जीव चारों गुणस्थानोंमें शुद्ध (केवल) नपुंसकवेदी होते हैं ॥ १०५ ॥

तिर्यंचगतिमें वेदोंका निरूपण करनेकेलिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा सुद्धा णवुंसगवेदा एइंदियप्पहुडि जाव चउरिंदिया त्ति ॥ १०६ ॥

तिर्यंचोंमें एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यंत शुद्ध नपुंसकवेदी होते हैं ॥ १०६ ॥

शेष तिर्यंचोंके कितने वेद होते हैं, इस आशंकाको दूर करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा तिवेदा असण्णिपंचिंदियप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ १०७ ॥

तिर्यंच असंज्ञी पंचेन्द्रियसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक तीनों वेदोंसे युक्त होते हैं ॥ १०७ ॥

अब मनुष्यगतिमें वेदका विशेष प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणुस्सा तिवेदा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ १०८ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यंत तीनों वेदवाले होते हैं ॥ १०८ ॥

अब तीनों वेदोंसे रहित मनुष्योंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तेण परमवगदवेदा चेदि ॥ १०९ ॥

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके सवेद भागसे आगे सभी गुणस्थानवाले मनुष्य वेदसे रहित होते हैं ॥ १०९ ॥

अब देवगतिमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

देवा चदुसु ट्ठाणेसु दुवेदा इत्थिवेदा पुरिसवेदा ॥ ११० ॥

देव चारों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले होते हैं ॥ ११० ॥

देवगतिमें चार ही गुणस्थान होते हैं। सौधर्म-ऐशान स्वर्ग तकके देव स्त्री और पुरुष दो वेदवाले होते हैं तथा आगे सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पसे लेकर ऊपरके सब देव पुरुषवेदीही होते हैं।

अब कषायमार्गणाके आश्रयसे गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

कसायाणुवादेण अत्थि कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई चेदि ॥ १११ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी (कषायरहित) जीव होते हैं ॥ १११ ॥

अब कषायमार्गणामें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

कोधकसाई माणकसाई मायकसाई एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ ११२ ॥

क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ॥ ११२ ॥

यहां अपूर्वकरण आदि गुणस्थानवाले जीवोंके भी जो कषायका अस्तित्व बतलाया गया है वह अव्यक्त कषायकी अपेक्षा जानना चाहिये। कारण कि वहां व्यक्त कषाय सम्भव नहीं है।

अब लोभकषायका विशेष प्ररूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

लोभकसाई एइंदियप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा त्ति ॥ ११३ ॥

लोभकषायसे युक्त जीव एकेन्द्रियोंसे लेकर सूक्ष्मसांपराय-शुद्धिसंयत गुणस्थान तक होते हैं ॥ ११३ ॥

लोभकषायकी अन्तिम मर्यादा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान है। कारण यह है कि शेष कषायोंके उदयके नष्ट हो जानेपर उसी समय लोभ कषायका विनाश नहीं होता है।

अब कषायरहित जीवोंसे उपलक्षित गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

अकसाई चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि उवसंतकसाय-वीयराय-छदुमत्था खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ॥ ११४ ॥

कषायरहित जीव उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, सयोगि-केवली और अयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ ११४ ॥

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें यद्यपि द्रव्य कषायका सद्भाव है, फिर भी वहां जो अकषायी जीवोंका अस्तित्व बतलाया है वह कषायके उदयके अभावकी अपेक्षा बतलाया है।

अब ज्ञानमार्गणाके द्वारा जीवोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

णाणाणुवादेण अत्थि मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणि-बोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी चेदि ॥ ११५ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव होते हैं ॥ ११५ ॥

जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा यह आत्मा जानता है, जानता था या जानेगा ऐसे ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे अथवा उसके संपूर्ण क्षयसे उत्पन्न हुए आत्मपरिणामको ज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान दो प्रकारका है– प्रत्यक्ष और परोक्ष। इनमें परोक्षके भी दो भेद हैं– मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। प्रत्यक्षके तीन भेद हैं– अवधि, मनःपर्यय और केवल-ज्ञान। दूसरेके उपदेश विना विष, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बन्धादिके विषयमें जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसे मति-अज्ञान कहते हैं। चौरशास्त्र और हिंसाशास्त्र आदिके अयोग्य उपदेशोंको श्रुत-अज्ञान कहते हैं। कर्मका कारणभूत जो विपरीत अवधिज्ञान होता है उसे विभंगज्ञान कहा जाता है। इन्द्रियों और मनकी सहायतासे जो पदार्थका अवबोध होता है उसे आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं। उसके पांच इन्द्रियों व मन (छह), बहु आदिक बारह पदार्थ और अवग्रह आदि चारकी अपेक्षा तीन सौ छत्तीस (व्यंजनावग्रह– ४×१२=४८, अर्थावग्रह– ६×१२×४=२८८; २८८+४८= ३३६) भेद हो जाते हैं। मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके सम्बन्धसे जो दूसरे पदार्थका ज्ञान होता है उसको श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नियमसे मतिज्ञानपूर्वक होता है। इसके अक्षरात्मक और

अनक्षरात्मक अथवा शब्दजन्य और लिंगजन्य इस प्रकार दो भेद हैं। उनमें शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावकी अपेक्षा जिस ज्ञानके विषयकी अवधि (सीमा) हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। विषयकी अवधि (सीमा) के रहनेसे इसे परमागममें 'सीमाज्ञान' भी कहा गया है। इसके भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय इस प्रकार दो भेद हैं। जिसका भूत कालमें चिन्तवन किया गया है, अथवा जिसका भविष्य कालमें चिन्तवन किया जावेगा, अथवा जो अर्धचिन्तित है ऐसे अनेक भेदरूप दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको जो जानता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान मनुष्यक्षेत्रके भीतर संयत जीवोंके ही होता है। जो तीनों लोकोंके समस्त पदार्थोंको युगपत् जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका विशेष कथन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी एइंदियप्पहुडि जाव सासणसम्माइट्ठि त्ति ॥११६॥

मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी जीव एकेन्द्रियसे लेकर सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यंत होते हैं ॥ ११६ ॥

अब विभंगज्ञानका विशेष प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

विभंगणाणं सण्णिमिच्छाइट्ठीणं वा सासणसम्माइट्ठीणं वा ॥ ११७ ॥

विभंगज्ञान संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंके और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है ॥११७॥

जब कि यह विभंगज्ञान भवप्रत्यय है तब उसका सद्भाव पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही अवस्थाओंमें होना चाहिये, इस प्रकारके सन्देहके निराकरणार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ॥ ११८ ॥

वह विभंगज्ञान पर्याप्तकोंके होता है, अपर्याप्तकोंके नहीं होता ॥ ११८ ॥

अभिप्राय यह है कि अपर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय विभंगज्ञानका कारण नहीं है, किन्तु पर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय ही उस विभंगज्ञानका कारण है। इसीलिये वह अपर्याप्तकालमें उनके नहीं होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि–आभिणिबोहियणाणं मदिअण्णाणेण मिस्सयं सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सयं ओहिणाणं विभंगणाणेण मिस्सयं, तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण [अण्णाणि णाणेण] मिस्साणि वा इदि ॥११९॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आदिके तीनों ही ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं – आभिनिबोधिकज्ञान मत्यज्ञानसे मिश्रित होता है, श्रुतज्ञान श्रुत-अज्ञानसे मिश्रित होता है, तथा अवधिज्ञान विभंगज्ञानसे मिश्रित होता है। अथवा तीनों ही ज्ञान अज्ञानसे [अज्ञान ज्ञानसे] मिश्रित होते हैं ॥ ११९ ॥

जो पदार्थ जिस रूपसे अवस्थित है उसके उसी प्रकारसे जाननेको ज्ञान और उसके विपरीत जाननेको अज्ञान कहा जाता है। जो न तो ज्ञान है और न अज्ञान भी है ऐसे जात्यन्तररूप ज्ञानका नाम मिश्रज्ञान है।

अब ज्ञानोंके गुणस्थानोंकी सीमाका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं--

आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ॥ १२० ॥

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १२० ॥

अब मनःपर्यय ज्ञानके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणपज्जवणाणी पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ॥ १२१ ॥

मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ (बारहवें) गुणस्थान तक होते हैं ॥ १२१ ॥

यहां पर्याय और पर्यायीमें भेदकी विवक्षा न करके सूत्रमें मनःपर्ययज्ञानका ही मनःपर्यय-ज्ञानीरूपसे निर्देश किया गया है। देशविरत आदि अधस्तन गुणस्थानवर्ती जीवोंके संयमका अभाव होनेसे उनके यह मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है।

अब केवलज्ञानके स्वामियोंके गुणस्थानको बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं---

केवलणाणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥ १२२ ॥

केवलज्ञानी सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं ॥ १२२ ॥

अब संयममार्गणाका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं--

संजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धि-संजदा सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा चेदि ॥ १२३ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयत, सामायिकशुद्धिसंयत, छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराय-शुद्धिसंयत और यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत ये पांच प्रकारके संयत तथा संयतासंयत और असंयत जीव होते हैं ॥ १२३ ॥

जो 'सं' अर्थात् समीचीन सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथ 'यत' अर्थात् बहिरंग और अंतरंग आस्रवोंसे विरत हैं उन्हें संयत कहते हैं। 'मैं सर्व प्रकारके सावद्ययोगसे विरत हूं' इस प्रकार द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा समस्त सावद्ययोगके त्यागका नाम सामायिक-शुद्धि-संयम है।

यहां द्रव्यार्थिक नयकी विवक्षा होनेसे शेष संयमभेदोंको इसीके अन्तर्गत समझना चाहिये।

उस एक ही व्रतका छेद अर्थात् दो तीन आदिके भेदसे उपस्थापन अर्थात् व्रतोंके धारण करनेको छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम कहते हैं। यह छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा रखनेवाला है।

जिसके हिंसाका परिहार ही प्रधान है ऐसे शुद्धिप्राप्त संयतको परिहारशुद्धिसंयत कहते हैं। विशेषतासे जिसने तीस वर्ष तक अपनी इच्छानुसार भोगोंको भोगते हुए सामान्य और विशेष-रूपसे संयमको धारण कर प्रत्याख्यान पूर्वका अभ्यास किया है तथा जिसके तपोविशेपसे परिहारऋद्धि उत्पन्न हो चुकी है ऐसा जीव तीर्थंकरके पादमूलमें परिहारशुद्धिसंयमको ग्रहण करता है। इस संयमको धारण करनेवाला खड़े होने, गमन करने, भोजन-पान करने और बैठने आदि संपूर्ण व्यापारोंमें प्राणियोंकी हिंसाके परिहारमें समर्थ होता है।

'सांपराय' नाम कषायका है। जिनकी कषाय सूक्ष्म हो गई है वे सूक्ष्मसांपराय कहे जाते हैं। जो सूक्ष्म कषायवाले होते हुए शुद्धि-प्राप्त संयत हैं उन्हें सूक्ष्मसांपराय-शुद्धिसंयत कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सामायिक और छेदोपस्थापना संयमको धारण करनेवाले साधु जब कषायको अतिशय सूक्ष्म कर लेते हैं तब वे सूक्ष्मसांपराय-शुद्धि-संयत कहलाते हैं।

जिनके परमागममें प्रतिपादित विहार अर्थात् कषायोंके अभावरूप अनुष्ठान पाया जाता है उन्हें यथाख्यातविहार कहते हैं। जो यथाख्यातविहारवाले होते हुए शुद्धि-प्राप्त संयत हैं वे यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत कहलाते हैं।

जो पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंसे संयुक्त होते हुए कर्मनिर्जरा करते हैं ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत कहे जाते हैं। उनके दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत; ये ग्यारह भेद हैं।

जो जीव छह कायके प्राणियों एवं इन्द्रियविषयोंमें विरत नहीं होते हैं उन्हें असंयत जानना चाहिये।

अब संयतोंमें गुणस्थानोंकी संख्याका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ १२४ ॥

संयत जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १२४ ॥

अब संयमके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति॥१२५॥

सामायिक और छेदोपस्थापनारूप शुद्धिको प्राप्त हुए संयत जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ॥ १२५ ॥

अब परिहारशुद्धिसंयमके गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

परिहार-सुद्धिसंजदा दोसु ट्ठाणेसु पमत्तसंजदट्ठाण अपमत्तसंजदट्ठाणे ॥ १२६ ॥

परिहार-शुद्धिसंयत प्रमत्त और अप्रमत्त इन दो गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ १२६ ॥

अब सूक्ष्मसांपराय संयतोंके गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा एकम्हि चेव सुहुम-सांपराइयसुद्धि-संजदट्ठाणे ॥

सूक्ष्म-सांपरायिक-शुद्धिसंयत जीव एक मात्र सूक्ष्म-सांपरायिक-शुद्धिसंयत गुणस्थानमें पाये जाते हैं ॥ १२७ ॥

अब चतुर्थ संयमके गुणस्थानोंके प्रतिपादनके लिये सूत्र कहते हैं—

जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा चदुसु ट्ठाणेसु उवसंतकसाय-वीयराय-छदुमत्था खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ॥ १२८ ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत जीव उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ १२८ ॥

संयतासंयतोंके गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

संजदासंजदा एकम्हि चेय संजदासंजदट्ठाणे ॥ १२९ ॥

संयतासंयत जीव एक संयतासंयत गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १२९ ॥

अब असंयत गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

असंजदा एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १३० ॥

असंयत जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३० ॥

यद्यपि कोई कोई मिथ्यादृष्टि जीव भी व्रताचरण करते हुए देखे जाते हैं, पर वे वास्तवमें संयत नहीं हैं; क्योंकि, सम्यग्दर्शनके विना संयमकी सम्भावना नहीं है।

अब दर्शनमार्गणाके द्वारा जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

दंसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी केवलदंसणी चेदि ॥ १३१ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव होते हैं ॥ १३१ ॥

जिसके द्वारा देखा जाता है वह दर्शन कहलाता है। अथवा ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारणभूत जो प्रयत्न होता है उससे सम्बद्ध आत्मविषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं। वह चार प्रकारका है- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। चाक्षुष ज्ञानके उत्पादक प्रयत्नसे सम्बद्ध

आत्मसंवेदनमें ' मैं रूपके अवलोकनमें समर्थ हूं ' इस प्रकारके उपयोगको चक्षुदर्शन कहते हैं। चक्षु इन्द्रियको छोड़कर शेष चार इन्द्रियों और मनसे होनेवाले दर्शनको अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधिज्ञानके पूर्व होनेवाले दर्शनको अवधिदर्शन कहते हैं। प्रतिपक्षसे रहित जो दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं।

अब चक्षुदर्शन सम्बन्धी गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

चक्खुदंसणी चउरिंदियप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति॥ १३२॥

चक्षुदर्शनी जीव चतुरिन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय-छद्मस्थ-वीतराग गुणस्थान तक होते हैं॥

अब अचक्षुदर्शनके स्वामीको बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

अचक्खुदंसणी एइंदियप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति॥ १३३॥

अचक्षुदर्शनी जीव एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥

अब अवधिदर्शन सम्बन्धी गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

ओधिदंसणी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराग-छदुमत्था त्ति॥

अवधिदर्शनी जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १३४॥

अब केवलदर्शनके स्वामीका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

केवलदंसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि॥ १३५॥

केवलदर्शनी जीव सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं॥

अब लेश्यामार्गणाके द्वारा जीवोंका अन्वेषण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि॥ १३६॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले तथा अलेश्यावाले जीव होते हैं॥ १३६॥

कषायसे अनुरंजित जो योगोंकी प्रवृत्ति होती है उसे लेश्या कहते हैं। ' कर्मस्कन्धैः आत्मानं लिम्पति इति लेश्या ' इस निरुक्तिके अनुसार जो कर्मस्कन्धोंसे आत्माको लिप्त करती है वह लेश्या है, यह ' लेश्या ' शब्दका निरुक्त्यर्थ है। यहां कषाय और योग इनकी जात्यन्तरस्वरूप मिश्र अवस्थाको लेश्या कहनेके कारण इस मार्गणाको कषाय और योग मार्गणासे पृथक् समझना चाहिये। इतना विशेष है कि कषायसे अनुरंजित ही योगप्रवृत्तिको लेश्या नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, ऐसा स्वीकार करनेपर सयोगिकेवलीके लेश्यारहित होनेका प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा है नहीं, कारण कि आगममें सयोगिकेवलीके योगका सद्भाव होनेसे शुक्ललेश्या निर्दिष्ट की गई है।

कषायका उदय छह प्रकारका होता है– तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम। इस छह प्रकारके कषायोदयसे उत्पन्न हुई लेश्या भी परिपाटीक्रमसे छह प्रकारकी होती है– कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। इन लेश्याओंसे संयुक्त जीवोंकी पहिचान इस प्रकारसे होती है–

१. जो तीव्र क्रोध करनेवाला हो, वैरको न छोड़े, लड़ना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो, किसीके वशमें नहीं होता हो, स्वच्छंद हो, काम करनेमें मन्द हो, वर्तमान कार्य करनेमें विवेक रहित हो, कलाचातुर्यसे रहित हो, पांच इन्द्रियोंके विषयोंमें लम्पट हो, मानी हो, मायावी हो, आलसी हो, तथा डरपोक हो, ऐसे जीवको कृष्णलेश्यावाला जानना चाहिये।

२. जो अतिशय निद्रालु हो, दूसरोंके ठगनेमें दक्ष हो, और धन-धान्यके विषयमें तीव्र लालसा रखता हो उसे नीललेश्यावाला जानना चाहिये।

३. जो दूसरेके ऊपर क्रोध किया करता है, दूसरोंकी निन्दा करता है, अनेक प्रकारसे दूसरोंको दुःख देता है, उन्हें दोष लगाता है, अत्यधिक शोक और भयसे संतप्त रहता है, दूसरोंका उत्कर्ष सहन नहीं करता है, दूसरोंका तिरस्कार करता है, अपनी अनेक प्रकारसे प्रशंसा करता है, दूसरेके ऊपर विश्वास नहीं करता है, अपने समान दूसरेको भी मानता है, स्तुति करनेवालेपर संतुष्ट हो जाता है, अपनी और दूसरेकी हानि व वृद्धिको नहीं जानता है, युद्धमें मरनेकी अभिलाषा करता है, स्तुति करनेवालेको बहुत धन देता है, तथा कार्य-अकार्यकी कुछ भी गणना नहीं करता है; उसे कापोतलेश्यावाला जानना चाहिये।

४. जो कार्य-अकार्य और सेव्य-असेव्यको जानता है, सब विषयमें समदर्शी रहता है, दया और दानमें तत्पर रहता है; तथा मन, वचन व कायसे कोमलपरिणामी होता है; उसे पीतलेश्यावाला जानना चाहिये।

५. जो त्यागी है, भद्रपरिणामी है, निरन्तर कार्य करनेमें उद्युक्त रहता है, जो अनेक प्रकारके कष्टप्रद उपसर्गोंको शान्तिसे सहता है, और साधु तथा गुरु जनोंकी पूजामें रत रहता है; उसे पद्मलेश्यावाला जानना चाहिये।

६. जो पक्षपात नहीं करता है निदान नहीं बांधता है, सबके साथ समान व्यवहार करता है, तथा इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंके विषयमें राग और द्वेषसे रहित होता है; उसे शुक्ललेश्यावाला जानना चाहिये।

जो इन छह लेश्याओंसे रहित हो चुके हैं उन्हें लेश्यारहित (अलेश्य) जानना चाहिये।

अब लेश्याओंके गुणस्थान बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं–

किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १३७ ॥

कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३७ ॥

अब तेजोलेश्या और पद्मलेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ॥ १३८ ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३८ ॥

अब शुक्ललेश्याके गुणस्थान बतलाते हैं—

सुक्कलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ १३९ ॥

शुक्ललेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥१३९॥

यहां शंका हो सकती है कि जो जीव कषायसे रहित हो चुके हैं उनके शुक्ललेश्या कैसे सम्भव है ? इसका उत्तर यह है कि जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनमें कर्म-लेपका कारणभूत चूंकि योग पाया जाता है, इस अपेक्षासे उनके शुक्ललेश्याका सद्भाव माना गया है।

अब लेश्यारहित जीवोंका निरूपण करते हैं—

तेण परमलेस्सिया ॥ १४० ॥

तेरहवें गुणस्थानके आगे सभी जीव लेश्यारहित होते हैं ॥ १४० ॥

इसका कारण यह है कि वहांपर बन्धके कारणभूत योग और कषाय दोनोंका ही अभाव हो चुका है।

अब भव्यमार्गणाके द्वारा जीवोंके अस्तित्वका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ॥ १४१ ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव होते हैं ॥१४१॥

जिन जीवोंके भविष्यमें अनन्तचतुष्टयरूप सिद्धि होनेवाली है उन्हें भव्यसिद्ध (भव्य) कहते हैं तथा जो उस अनन्तचतुष्टयरूप सिद्धिकी योग्यतासे रहित हैं उन्हें अभव्य समझना चाहिये।

अब भव्य जीवोंके गुणस्थान कहे जाते हैं—

भवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ १४२ ॥

भव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४२ ॥

अब अभव्य जीवोंके गुणस्थानका निरूपण करते हैं—

अभवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति ॥ १४३ ॥

अभव्यसिद्धिक जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४३ ॥

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोंके अस्तित्वका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी चेदि ॥ १४४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ॥ १४४ ॥

जिनेन्द्र देवके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नौ पदार्थोंका आज्ञा अथवा अधिगमसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्यक्त्व जिनके पाया जाता है उन्हें सम्यग्दृष्टि कहते हैं। दर्शनमोहका सर्वथा क्षय हो जानेपर जो निर्मल तत्त्वश्रद्धान होता है वह क्षायिकसम्यक्त्व कहा जाता है। यह क्षायिकसम्यक्त्व जिन जीवोंके पाया जाता है उन्हें क्षायिकसम्यग्दृष्टि समझना चाहिये। सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके उदयसे जो चल, मलिन और अगाढ श्रद्धान होता है उसे वेदकसम्यग्दर्शन कहते हैं। वह जिन जीवोंके पाया जाता है वे वेदकसम्यग्दृष्टि कहे जाते हैं। जिस प्रकार मलिन जलमें निर्मलीके डालनेसे कीचड़ नीचे बैठ जाता है और जल स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार दर्शनमोहनीयके उपशमसे जो निर्मल तत्त्वश्रद्धान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन कहलाता है। वह जिन जीवोंके पाया जाता है उन्हें औपशमिकसम्यग्दृष्टि जानना चाहिये। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जो सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिला हुआ तत्त्वश्रद्धान होता है उसे सम्यग्मिथ्यात्व तथा उससे संयुक्त जीवको सम्यग्मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये। उपशमसम्यक्त्वके कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छह आवली प्रमाण कालके शेष रहनेपर किसी एक अनन्तानुबन्धीका उदय आ जानेसे जिसका सम्यक्त्व नष्ट हो चुका है तथा जो मिथ्यात्व अवस्थाको प्राप्त नहीं हुआ है उसे सासादनसम्यग्दृष्टि कहा जाता है। मिथ्यात्वके उदयसे जिन जीवोंका तत्त्वश्रद्धान विपरीत हो रहा है उन्हें मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये।

अब सामान्य सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥

सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४५ ॥

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ॥ १४६ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४६

औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीयराग-छदुमत्था त्ति ॥ १४७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४७ ॥

अब सासादनसम्यक्त्वके गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेय सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे ॥ १४८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १४८ ॥

अब सम्यग्मिथ्यात्वके गुणस्थानका निर्देश करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥ १४९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १४९ ॥

अब मिथ्यात्व सम्बन्धी गुणस्थानका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति ॥ १५० ॥

मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि तक होते हैं ॥ १५० ॥

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १५१ ॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५१ ॥

अब सातों पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥ १५२ ॥

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ॥ १५२ ॥

अब नारकियोंमें विशेष सम्यग्दर्शनका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी चेदि ॥ १५३ ॥

नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५३ ॥

अब प्रथम पृथ्वीमें सम्यग्दर्शनके भेद बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ १५४ ॥

इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमें नारकी जीव उक्त तीनों सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥१५४॥

अब शेष पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १५५ ॥

दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते, शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५५ ॥

अब तिर्यंचगतिमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा त्ति ॥ १५६ ॥

तिर्यंच जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत होते हैं ॥ १५६ ॥

अब तिर्यंचोंका और भी विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

एवं जाव सव्वदीव-समुद्देसु ॥ १५७ ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण द्वीप-समुद्रवर्ती तिर्यंचोंमें समझना चाहिये ॥ १५७ ॥

यद्यपि मानुषोत्तर पर्वतसे आगे तथा स्वयम्भूरमणद्वीपस्थ स्वयंप्रभाचलसे पूर्व असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें उत्पन्न तिर्यंचोंके संयमासंयम नहीं होता है, फिर भी वैरके सम्बन्धसे देवों अथवा दानवोंके द्वारा कर्मभूमिसे उठाकर वहां डाले गये कर्मभूमिज देशव्रती तिर्यंचोंका सद्भाव सम्भव है। इसी अपेक्षासे वहांपर तिर्यंचोंके पांचों गुणस्थान बतलाये गये हैं।

अब तिर्यंचोंमें विशेष सम्यग्दर्शनभेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसम-सम्माइट्ठी ॥ १५८ ॥

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि भी होते हैं ॥ १५८ ॥

अब तिर्यंचोंके पांचवें गुणस्थानमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १५९ ॥

तिर्यंच संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं, शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५९ ॥

इसका कारण यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। यद्यपि पूर्वबद्धायुष्क जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु वे भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, न कि कर्मभूमिमें। और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके देशसंयमकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। यही कारण है जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान नहीं बतलाया गया है।

अब तिर्यंचविशेषोंमें सम्यक्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं

एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्ता ॥ १६० ॥

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तोंमें भी सम्यग्दर्शनका क्रम समझना चाहिये ॥ १६० ॥

अब योनिमती तिर्यंचोंमें विशेष प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १६१ ॥

योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टि नहीं होते, शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १६१ ॥

इसका कारण यह है कि योनिमती तिर्यंचोंमें न तो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिकी सम्भावना है और न उनमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकी भी सम्भावना है। इसीलिये उनके उक्त दोनों गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वका अभाव बतलाया गया है।

अब मनुष्योंमें विशेष प्रतिपादनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणुस्सा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा संजदा त्ति ॥ १६२ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत होते हैं ॥ १६२ ॥

एवमड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु ॥ १६३ ॥

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रोंमें जानना चाहिये ॥ १६३ ॥

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंके बाहिर भी वैरके वश होकर किन्हीं देवों आदिके द्वारा ले जाकर डाले जानेपर वहां संयतासंयत और संयत मनुष्योंकी सम्भावना क्यों नहीं है? इसका उत्तर यह है कि मानुषोत्तर पर्वतके आगे देवोंकी प्रेरणासे भी मनुष्योंके पहुंचनेकी सम्भावना नहीं है।

अब मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनभेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुसा असंजदसम्माइट्ठी-संजदासंजद-संजदट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदय-

सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १६४ ॥

मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६४ ॥

अब मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सम्यग्दर्शनभेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ॥ १६५ ॥

इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये ॥ १६५ ॥

अब देवगतिमें सम्यग्दर्शनका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६६ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१६६

एवं जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जविमाणवासियदेवा त्ति ॥ १६७ ॥

इसी प्रकार उपरिमउपरिम ग्रैवेयकविमानवासी देवों तक जानना चाहिये ॥ १६७ ॥

अब देवोंमें सम्यग्दर्शनभेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये आगे चार सूत्र कहे जाते हैं—

देवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६८ ॥

देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६८ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा देवीओ च सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥ १६९ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव व उनकी देवियां तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासिनी देवियां ये सब असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं; शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १६९ ॥

इसका कारण यह है कि इन सब देव-देवियोंमें दर्शनमोहनीयके क्षपणकी सम्भावना नहीं है तथा जिन जीवोंने पूर्व पर्यायमें उस दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर ली है उनकी उपर्युक्त देव-देवियाम उत्पत्तिकी सम्भावना भी नहीं है।

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १७० ॥

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिमउपरिम ग्रैवेयकविमानवासी देवों तक असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १७० ॥

इसका कारण यह है कि उक्त देवोंमें तीनों ही प्रकारके सम्यग्दृष्टि जीवोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना है तथा वहांपर उत्पन्न होनेके पश्चात् वेदक और औपशमिक इन दो सम्यग्दर्शनोंका ग्रहण भी सम्भव है। इसीलिये उक्त देवोंमें तीनों सम्यग्दर्शनोंका सद्भाव निर्दिष्ट किया गया है।

अणुदिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंतावराजिद-सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १७१ ॥

नौ अनुदिशोंमें तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तरविमानोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १७१ ॥

अब संज्ञीमार्गणाके द्वारा जीवोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥ १७२ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं ॥ १७२ ॥

अब संज्ञी जीवोंमें सम्भव गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सण्णी मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति ॥ १७३ ॥

संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १७३ ॥

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि मनसहित होनेके कारण सयोगकेवली भी तो संज्ञी हैं, फिर यहां सूत्रमें उनका ग्रहण क्यों नहीं किया? इसका उत्तर यह है कि आवरणकर्मसे रहित हो जानेके कारण केवलियोंके मनके अवलम्बनसे बाह्य अर्थका ग्रहण नहीं होता है। इसीलिये सूत्रमें उनका ग्रहण नहीं किया गया है।

अब असंज्ञी जीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

असण्णी एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ १७४ ॥

असंज्ञी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक होते हैं ॥ १७४ ॥

तात्पर्य यह है कि उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, अन्य किसी भी गुणस्थानकी सम्भावना उनके नहीं है।

अब आहारमार्गणाके द्वारा जीवोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥ १७५ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ॥ १७५ ॥

अब आहारमार्गणामें सम्भव गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारा एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ १७६ ॥

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १७६ ॥

यहांपर आहार शब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार मानसिक आहार और कर्माहारको छोड़कर नोकर्म आहारका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इसके सिवाय अन्य आहारोंकी सम्भावना यहां नहीं है।

अब अनाहारकोंके सम्भव गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं

अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥ १७७ ॥

विग्रहगतिको प्राप्त मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि तथा समुद्घातगत सयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोंमें तथा अयोगिकेवली और सिद्ध जीव अनाहारक होते हैं ॥ १७७ ॥

ये जीव चूंकि शरीरके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये अनाहारक कहलाते हैं ॥ १७७ ॥

॥ सत्प्ररूपणा समाप्त हुई ॥ १ ॥

२. दव्वपमाणाणुगमो

अब उक्त चौदह गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्याका प्रतिपादन करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

द्रव्यप्रमाणानुगमकी अपेक्षासे निर्देश दो प्रकारका है— ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश ॥ १ ॥

जो पर्यायोंको प्राप्त होता है, प्राप्त होगा और प्राप्त हुआ है उसे द्रव्य कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा पर्यायें प्राप्त की जाती हैं, प्राप्त की जावेंगीं, और प्राप्त की गई थीं उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य दो प्रकारका है— जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य। जो पांच प्रकारके वर्ण, पांच प्रकारके रस, दो प्रकारके गन्ध और आठ प्रकारके स्पर्शसे रहित; सूक्ष्म और असंख्यातप्रदेशी है तथा जिसका कोई आकार इन्द्रियगोचर नहीं है वह जीव है। यह जीवका साधारण लक्षण है, क्योंकि यह दूसरे धर्मादि अमूर्त द्रव्योंमें भी पाया जाता है। ऊर्ध्वगतिस्वभाव, भोक्तृत्व और स्व-परप्रकाशकत्व यह उक्त जीवका असाधारण लक्षण है; क्योंकि, यह लक्षण जीव द्रव्यको छोड़कर दूसरे किसी भी द्रव्यमें नहीं पाया जाता है।

जिसमें चेतना गुण नहीं पाया जाता है उसे अजीव कहते हैं। वह पांच प्रकारका है— धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल। सामान्यतया अजीवके रूपी और अरूपी ऐसे दो भेद हैं। उनमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे युक्त जो पुद्गल है वह रूपी अजीवद्रव्य है। वह रूपी अजीवद्रव्य पृथिवी, जल व छाया आदिके भेदसे छह प्रकारका है। अरूपी अजीवद्रव्य चार प्रकारका है— धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य। उनमें जो जीव और पुद्गलोंके गमनागमनमें कारण होता है वह धर्मद्रव्य तथा जो उनकी स्थितिमें कारण होता है वह अधर्मद्रव्य है। ये दोनों द्रव्य अमूर्तिक और असंख्यातप्रदेशी होकर लोकके बराबर हैं। जो सर्वव्यापक होकर अन्य द्रव्योंको स्थान देनेवाला है वह आकाशद्रव्य कहा जाता है। जो अपने और दूसरे द्रव्योंके परिणमनका कारण व एकप्रदेशी है वह कालद्रव्य कहलाता है। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतने ही कालाणु हैं। आकाशके दो भेद हैं— लोकाकाश और अलोकाकाश। जहां अन्य पांच द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। और जहां वे पांचों द्रव्य नहीं पाये जाते हैं उसे अलोकाकाश कहते हैं। इन द्रव्योंमें यहां केवल जीव द्रव्यकी ही विवक्षा है, शेष पांच द्रव्योंकी विवक्षा नहीं है।

जिसके द्वारा पदार्थ मापे जाते हैं या गिने जाते हैं वह प्रमाण कहा जाता है। द्रव्यका जो प्रमाण है उसका नाम द्रव्यप्रमाण है। वस्तुके अनुरूप ज्ञानको अनुगम कहते हैं। अथवा,

केवली और श्रुतकेवलियोंके द्वारा परंपरासे आये हुए अनुरूप ज्ञानको अनुगम कहते हैं। द्रव्यगत प्रमाणके अनुगमको अथवा द्रव्य और प्रमाणके अनुगमको द्रव्यप्रमाणानुगम कहते हैं।

इस द्रव्यप्रमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-- ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। गत्यादि मार्गणाभेदोंसे रहित केवल चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके प्रमाणका निरूपण करना ओघनिर्देश है। तथा गति आदि मार्गणाओंके भेदोंसे भेदको प्राप्त हुए उन्हीं चौदह गुणस्थानोंका प्ररूपण करना आदेशनिर्देश है। अब प्रथमतः ओघनिर्देशकी अपेक्षा प्ररूपणा करनेके लिये आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं--

ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता ॥ २ ॥

सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? अनन्त हैं ॥ २ ॥

सूत्रमें दिये गये 'अणंता' इस पदके द्वारा मिथ्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण अनन्त कहा गया है। एक एक अंकके घटाते जानेपर जो संख्या कभी समाप्त नहीं होती है वह अनन्त कही जाती है। अथवा, जो संख्या एक मात्र केवलज्ञानकी विषय है उसे अनन्त समझना चाहिये। उस अनन्तके नामानन्त, स्थापनानन्त, द्रव्यानन्त, शाश्वतानन्त, गणनानन्त, अप्रदेशानन्त, एकानन्त, उभयानन्त, विस्तारानन्त, सर्वानन्त और भावानन्त; ये ग्यारह भेद हैं। इनमेंसे यहां गणनानन्तकी विवक्षा है। यह गणनानन्त तीन प्रकारका है-- परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त। इन तीन गणनानन्तोंमेंसे यहां अनन्तानन्तरूप तीसरा भेद अपेक्षित है। इस अनन्तकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं, यह सूत्रका अभिप्राय है। यहां शंका हो सकती है कि सूत्रमें प्रयुक्त 'अणंता' इस सामान्य निर्देशसे अनन्तानन्तका बोध कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि "मिथ्यादृष्टि जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत अर्थात् समाप्त नहीं होते हैं" इस आगेके (३) ज्ञापक सूत्रसे जाना जाता है कि मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं। यह अनन्तानन्त भी तीन प्रकारका है-- जघन्य अनन्तानन्त, उत्कृष्ट अनन्तानन्त और मध्यम अनन्तानन्त। इनमेंसे यहां मध्यम अनन्तानन्तको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि 'जहां जहां अनन्तानन्त देखा जाता है वहां वहां अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) अनन्तानन्तका ही ग्रहण होता है' ऐसा परिकर्ममें कहा गया है।

आगे कालकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रमाणका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ३ ॥

कालकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत नहीं होते ॥ ३ ॥

यद्यपि कालप्रमाणकी अपेक्षा क्षेत्रप्रमाणकी प्ररूपणा पहिले करना चाहिये थी, परंतु उसकी जो यहां पहिले प्ररूपणा नहीं की गई है इसका कारण यह है कि क्षेत्रप्रमाण विशेष वर्णनीय है और कालप्रमाण अल्पवर्णनीय है। इसलिये पूर्वमें क्षेत्रप्रमाणकी यहां प्ररूपणा न करके कालप्रमाणकी

प्ररूपणा की गई है। उपर्युक्त सूत्रका अभिप्राय यह है कि एक ओर अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंके समयोंकी राशिको तथा दूसरी ओर समस्त मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिको स्थापित करके उन समयोंमेंसे एक समयको तथा मिथ्यादृष्टियोंकी राशिमेंसे एक मिथ्यादृष्टि जीवको कम करना चाहिये। इस प्रकार उत्तरोत्तर करते जानेपर कालके समस्त समय तो समाप्त हो जाते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीवराशि समाप्त नहीं होती है। तात्पर्य यह है कि जितने अतीत कालके समय हैं उनकी अपेक्षा भी मिथ्यादृष्टि जीव अधिक हैं।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ४ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ ४ ॥

लोकमें जिस प्रकार प्रस्थ (एक प्रकारका माप) आदिके द्वारा गेहूं व चावल आदि मापे जाते हैं उसी प्रकार बुद्धिसे लोकके द्वारा मिथ्यादृष्टि जीवराशिको मापनेपर वह अनन्त लोकोंके बराबर होती है। अभिप्राय यह है कि लोकके एक एक प्रदेशपर एक एक मिथ्यादृष्टि जीवको रखनेपर एक लोक होता है। इस प्रकारसे उत्तरोत्तर मापनेपर वह मिथ्यादृष्टि जीवराशि अनन्त लोकोंके बराबर होती है। लोकसे अभिप्राय यहां जगश्रेणीके घनका है। यह जगश्रेणी सात राजु-प्रमाण आकाशके प्रदेशोंकी लंबाईके बराबर है। तिर्यग्लोक (मध्यलोक) का जितना मध्यम विस्तार है उतना प्रमाण यहां राजुका समझना चाहिये।

अब भावप्रमाणकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

तिण्हं पि अधिगमो भावपमाणं ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त तीनों प्रमाणोंका ज्ञान ही भावप्रमाण है ॥ ५ ॥

अभिप्राय यह है कि मतिज्ञानादिरूप पांचों ज्ञानोंमेंसे प्रत्येक ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र और कालके भेदसे तीन तीन प्रकारका है। उन तीनोंमेंसे द्रव्योंके अस्तित्व विषयक ज्ञानको द्रव्यभावप्रमाण, क्षेत्रविशिष्ट द्रव्यके ज्ञानको क्षेत्रभावप्रमाण और कालविशिष्ट द्रव्यके ज्ञानको कालभावप्रमाण समझना चाहिये।

अब सासादनसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके जीवोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरिज्जदि अंतोमुहुत्तेण ॥ ६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? वे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र हैं। उनके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ ६ ॥

अभिप्राय यह है कि पल्योपममें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो लब्ध हो उतना सासादन

आदि उपर्युक्त चार गुणस्थानवर्ती जीवोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण होता है।

उदाहरणके रूपमें कल्पना कीजिये कि सासादनसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती जीवराशिका प्रमाण लानेके लिये पल्योपमका प्रमाण ६५५३६ और अवहारकालका प्रमाण ३२ है। इस प्रकार उस अवहारकालस्वरूप ३२ का पल्योपमप्रमाणस्वरूप ६५५३६ में भाग देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि आदि उन चार जीवराशियोंका प्रमाण २०४८ आता है जो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है। यह अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा एक उदाहरण दिया गया है। यथार्थ प्ररूपणा भी इसी प्रकार जान लेना चाहिये। इस उदाहरणमें यद्यपि उन चारों जीवराशियोंका प्रमाण समान (२०४८) दिखता है फिर भी अवहारकालभूत अन्तर्मुहूर्तके अनेक भेद होनेसे उन जीवराशियोंमें अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा हीनाधिकता समझना चाहिये। कारण यह कि उक्त सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवराशियोंका प्रमाण बतलानेके लिये जो भागहरका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कहा है वह अन्तर्मुहूर्त अनेक प्रकारका है। यथा—

एक परमाणु मन्दगतिसे जितने कालमें दूसरे परमाणुको स्पर्श करता है उसका नाम समय है। असंख्यात समयोंकी एक आवली होती है। संख्यात आवलियोंके समूहको एक उच्छ्वास कहते हैं। सात उच्छ्वासोंका एक स्तोक होता है। सात स्तोकोंका एक लव होता है। साढ़े अड़तीस लवोंकी एक नाली होती है। दो नालियोंका एक मुहूर्त होता है। आवलीके ऊपर एक समय, दो समय व तीन समय आदिके क्रमसे एक समय कम इस मुहूर्त प्रमाण काल तक उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होनेवाले सब ही कालभेद अन्तर्मुहूर्तके अन्तर्गत होते हैं। इस प्रकार अवहारभूत अन्तर्मुहूर्तके अनेक भेदरूप होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी अवहारकालका प्रमाण ३२, सम्यग्मिथ्यादृष्टि सम्बन्धी अवहारकालका प्रमाण १६, असंयतसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी अवहारकालका प्रमाण ४ और संयतासंयत सम्बन्धी अवहारकालका प्रमाण १२८ माना जा सकता है। तदनुसार उक्त भागहारोंका इस पल्योपमके प्रमाणभूत ६५५३६ में भाग देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशिका प्रमाण २०४८, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशिका प्रमाण ४०९६, असंयतसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी जीवराशिका प्रमाण १६३८४ और संयतासंयत जीवराशिका प्रमाण ५१२ आता है।

अब प्रमत्तसंयतोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं---

पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडिपुधत्तं ॥ ७ ॥

प्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? कोटिपृथक्त्व प्रमाण हैं ॥ ७ ॥

पृथक्त्वसे यहां तीन (३) संख्यासे ऊपर और नौ (९) संख्यासे नीचेकी संख्याको ग्रहण करना चाहिये। परमगुरुके उपदेशानुसार यह प्रमत्तसंयत जीवोंका प्रमाण पांच करोड़ तेरानबै लाख अट्ठानबै हजार दो सौ छह ५९३९८२०६ है।

अब अप्रमत्तसंयतोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ ८ ॥

अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ ८ ॥

यद्यपि सूत्रमें आया हुआ ' संखेज्जा ' पद संख्याके जितने भी विकल्प हैं उन सबमें समान रूपसे पाया जाता है तो भी यहांपर उससे कोटिपृथक्त्वसे नीचेकी ही संख्या ग्रहण करनी चाहिये। कारण यह कि यहांपर पूर्वोक्त अर्थ इष्ट न होकर यदि कोटिपृथक्त्वरूप अर्थ ही इष्ट होता तो पूर्व सूत्रसे पृथक् इस सूत्रकी कोई आवश्यकता नहीं थी। दूसरे " प्रमत्तसंयतके कालसे अप्रमत्त-संयतका काल संख्यातगुणा हीन है " इस सूत्रसे भी जाना जाता है कि यहांपर कोटिपृथक्त्वरूप अर्थ इष्ट नहीं है।

अब चारों उपशामकोंका द्रव्यप्रमाण बतलानेके लिये दो उत्तरसूत्र प्राप्त होते हैं—

चदुण्हमुवसामगा दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण चउवण्णं ॥ ९ ॥

चारों गुणस्थानोंके उपशामक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने होते हैं ? प्रवेशकी अपेक्षा एक, अथवा दो, अथवा तीन; इस प्रकार उत्कृष्टरूपसे चौवन होते हैं ॥ ९ ॥

उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें एक समयमें चारित्रमोहनीयका उपशम करता हुआ जघन्यसे एक जीव प्रवेश करता है और उत्कृष्टरूपसे चौवन जीव प्रवेश करते हैं। यह सामान्य कथन है। विशेषकी अपेक्षा आठ समय अधिक वर्षपृथक्त्वके भीतर उपशमश्रेणीके योग्य आठ समय होते हैं। उनमेंसे प्रथम समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे सोलह जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं। दूसरे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे चौबीस जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं। तीसरे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे तीस जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं। चौथे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे छत्तीस जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं। पांचवें समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे ब्यालीस जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं। छठे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे अड़तालीस जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं। सातवें और आठवें इन दो समयोंमेंसे प्रत्येक समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे चौवन जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं।

अब इन्हीं उपशामक जीवोंकी संख्याकी प्ररूपणा कालकी अपेक्षासे की जाती है—

अद्धं पडुच्च संखेज्जा ॥ १० ॥

कालकी अपेक्षा उपशमश्रेणीमें संचित हुए सभी जीव संख्यात होते हैं ॥ १० ॥

पूर्वोक्त आठ समयोंके भीतर उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें उत्कृष्टरूपसे संचित हुए सम्पूर्ण जीवोंको एकत्रित करनेपर उनका प्रमाण तीन सौ चार (१६+२४+३०+३६+४२+४८+५४+५४=३०४) होता है।

अब चारों क्षपकोंके तथा अयोगिकेवलीके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करनेके लिये दो उत्तरसूत्र प्राप्त होते हैं—

चउण्हं खवा अजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण अट्ठोत्तरसदं ॥ ११ ॥

चारों गुणस्थानोंके क्षपक और अयोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने होते हैं ? प्रवेशकी अपेक्षा एक, अथवा दो, अथवा तीन; इस प्रकार उत्कृष्टरूपसे एक सौ आठ होते हैं ॥११॥

आठ समय अधिक छह महिनोंके भीतर क्षपकश्रेणीके योग्य आठ समय होते हैं। उन समयोंके विशेष कथनकी विवक्षा न करके सामान्यरूपसे प्ररूपणा करनेपर जघन्यसे एक जीव क्षपक गुणस्थानको प्राप्त होता है तथा उत्कृष्टरूपसे एक सौ आठ जीव क्षपक गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है। विशेषका आश्रय लेकर प्ररूपणा करनेपर प्रथम समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे बत्तीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। दूसरे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे अड़तालीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। तीसरे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे साठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। चौथे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे बहत्तर जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। पांचवें समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे चौरासी जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। छठे समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे छयानबै जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। सातवें और आठवें समयोंमेंसे प्रत्येक समयमें एक जीवको आदि लेकर उत्कृष्टरूपसे एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं।

अब उन्हींका प्रमाण कालकी अपेक्षा कहा जाता है—

अद्धं पडुच्च संखेज्जा ॥ १२ ॥

कालकी अपेक्षा संचित हुए क्षपक जीव संख्यात होते हैं ॥ १२ ॥

पूर्वोक्त आठ समयोंमें संचित हुए सम्पूर्ण जीवोंको एकत्रित करनेपर वे उत्कृष्टरूपसे छह सौ आठ (३२+४८+६०+७२+८४+९६+१०८+१०८=६०८) होते हैं।

अब तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करते हैं—

सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसणेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण अट्ठुत्तरसयं ॥ १३ ॥

सयोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने होते हैं ? प्रवेशकी अपेक्षा एक, अथवा दो, अथवा तीन; इस प्रकार उत्कृष्टरूपसे एक सौ आठ होते हैं ॥ १३ ॥

अब इन्हींका संचयकी अपेक्षा प्रमाण कहा जाता है—

अद्धं पडुच्च सदसहस्सपुधत्तं ॥ १४ ॥

कालकी अपेक्षा सम्पूर्ण सयोगी जिन लक्षपृथक्त्व प्रमाण होते हैं ॥ १४ ॥

उक्त सयोगी जिनोंका प्रमाण कालका आश्रय करके लक्षपृथक्त्व कहा गया है। एक मान्यताके अनुसार उनका प्रमाण ८९८५०२ और दूसरी मान्यताके अनुसार ५२९६४८ है।

चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा करके अब मार्गणाओंकी अपेक्षा नरकगतिमें द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा की जाती है---

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा ॥ १५ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिगत नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं ॥ १५ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य, शाश्वत, गणना, अप्रदेशिक, एक, उभय, विस्तार, सर्व और भावके भेदसे वह असंख्यात ग्यारह प्रकारका है। उनमेंसे यहां गणना-असंख्यातको ग्रहण करना चाहिये। यह गणना-असंख्यात भी तीन प्रकारका है--- परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात। इनमेंसे प्रत्येक भी उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन तीन प्रकारका है। प्रकृतमें मध्यम असंख्यातासंख्यातको ग्रहण करना चाहिये। कारण यह कि " जहां जहां असंख्यातासंख्यात देखा जाता है वहां वहां अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) असंख्यातासंख्यातका ही ग्रहण होता है " ऐसा परिकर्मसूत्रमें कहा गया है। इससे यह अभिप्राय हुआ कि नरकगतिमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा मध्यम असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं।

अब कालकी अपेक्षा उपर्युक्त नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रमाणकी प्ररूपणा की जाती है---

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उसप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १६ ॥

कालकी अपेक्षा नारक मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत हो जाते हैं ॥ १६ ॥

असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके समयोंको शलाकारूपसे एक ओर स्थापित करके और दूसरी ओर नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशिको स्थापित करके शलाका राशिमेंसे एक समय कम करना चाहिये और नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशिमेंसे एक जीवको कम करना चाहिये। इस प्रकार शलाकाराशि और नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशिमेंसे पुनः पुनः एक एक कम करनेपर शलाकाराशि और नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि दोनों राशियां एक साथ समाप्त होती हैं। अथवा, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी ये दोनों मिलकर एक कल्पकाल होता है। उस कल्पकालका नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशिमें भाग देनेपर जो लब्ध हो उतने कल्पकाल नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशिकी गणनामें पाये जाते हैं।

अब उन्हींके प्रमाणकी प्ररूपणा क्षेत्रकी अपेक्षासे की जाती है---

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । तासिं सेढीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ १७ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा सामान्य नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि जगप्रतरके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण है । उन जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसीके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी है ॥ १७ ॥

अब नारक सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंका प्रमाण बतलानेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती नारकी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? वे ओघ अर्थात् गुणस्थानप्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ १८ ॥

अब प्रथम पृथिवीस्थ नारकी जीवोंका प्रमाण बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ १९ ॥

उक्त सामान्य नारकियोंके द्रव्यप्रमाणके समान पहली पृथिवीके नारकियोंका द्रव्यप्रमाण जानना चाहिये ॥ १९ ॥

अब आगे द्वितीयादि शेष पृथिवियोंके नारकी जीवोंका प्रमाण कहा जाता है—

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ २० ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ २० ॥

अब उक्त नारकियोंका कालकी अपेक्षासे प्रमाण बतलाया जाता है—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ २१ ॥

कालप्रमाणकी अपेक्षा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारक मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ २१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय सामान्य नारक मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रके समान समझना चाहिये ।

अब द्रव्य और काल इन दोनों ही प्रमाणोंसे सूक्ष्म क्षेत्रप्रमाणकी प्ररूपणा करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयण-कोडीओ पढमादियाणं सेढिवग्गमूलाणं संखेज्जाणं अण्णोण्णब्भासेण ॥ २२ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वितीयादि छहों पृथिवियोंमें प्रत्येक पृथिवीके नारक मिथ्यादृष्टि जीव जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उस जगश्रेणीके असंख्यातवें भागकी जो श्रेणी है उसका आयाम असंख्यात कोटि योजन है, जिस असंख्यात कोटि योजनका प्रमाण जगश्रेणीके संख्यात प्रथमादि वर्गमूलोंके परस्पर गुणा करनेसे जितना प्रमाण उत्पन्न हो उतना है ॥ २२ ॥

अब द्वितीयादि शेष पृथिवियोंके सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ओघं ॥ २३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान-वर्ती उक्त द्वितीयादि छह पृथिवियोंमेंसे प्रत्येक पृथिवीके नारकी जीव सामान्य प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ २३ ॥

अब तिर्यंचगतिमें तिर्यंच मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥२४॥

तिर्यंचगतिकी अपेक्षा तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक तिर्यंच सामान्य प्ररूपणाके समान हैं ॥ २४ ॥

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

पंचिंदिय-तिरिक्खमिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा ॥ २५ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं ॥ २५ ॥

अब कालकी अपेक्षा उन्हींके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ २६ ॥

कालकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ २६ ॥

अभिप्राय यह है कि जितने असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके समय हैं उनकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव अधिक हैं।

अब क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

खेत्तेण पंचिंदिय-तिरिक्ख-मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो

असंखेज्जगुणहीणकालेण ॥ २७ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंके द्वारा देवोंके अवहारकालसे असंख्यातगुणे हीन कालके द्वारा जगप्रतर अपहृत होता है ॥ २७ ॥

दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका अवहारकाल होता है। इस अवहारकालका जगप्रतरमें भाग देनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका द्रव्यप्रमाण प्राप्त होता है। अब क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके प्रमाणकी प्ररूपणा करते हैं—

सासणम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति तिरिक्खोघं ॥ २८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रत्येक गुणस्थानमें सामान्य तिर्यंचोंके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ २८ ॥

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्रव्यप्रमाणका निरूपण करते हैं—

पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्त-मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा ॥२९

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं॥

अब कालकी अपेक्षा उपर्युक्त जीवोंके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३० ॥

कालकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ३० ॥

अब क्षेत्रकी अपेक्षा उन्हीं जीवोंके प्रमाणका वर्णन करते हैं-

खेत्तेण पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्त-मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देवअवहार-कालादो संखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ ३१ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टियों द्वारा देवअवहारकालसे संख्यातगुणे हीन कालके द्वारा जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ३१ ॥

अब क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके प्रमाणकी प्ररूपणा की जाती है—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ ३२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव ओघप्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ ३२ ॥

अब आगे तीन सूत्रोंके द्वारा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका द्रव्य, काल और क्षेत्रकी अपेक्षा प्रमाण बतलाते हैं—

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण कवडिया ? असंखेज्जा ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ ३३ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३४ ॥

कालकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ३४ ॥

खेत्तेण पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणि-मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो संखेज्जगुणेण कालेण ॥ ३५ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा देवोंके अवहारकालकी अपेक्षा संख्यातगुणे अवहारकालसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ३५ ॥

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके प्रमाणकी प्ररूपणा की जाती है—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ ३६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीव सामान्य तिर्यंच जीवोंके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥

आगे तीन सूत्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके प्रमाणका द्रव्य, काल और क्षेत्रकी अपेक्षा निरूपण करते हैं—

पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ३७ ॥

पंचेद्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥३७ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३८ ॥

कालकी अपेक्षा उक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ३८ ॥

खेत्तेण पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ ३९ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके द्वारा देवोंके अवहारकालसे असंख्यातगुणे हीन अवहारकालसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ३९ ॥

आगे तीन सूत्रों द्वारा द्रव्य, काल और क्षेत्रकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ४० ॥

मनुष्यगतिप्रतिपन्न मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्साप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ४१ ॥

कालकी अपेक्षा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ४१ ॥

खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जजोयणकोडीओ। मणुसमिच्छाइट्ठीहि रूवा पक्खित्तएहि सेढी अवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूल-गुणिदेण ॥ ४२ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवराशि जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उस श्रेणीका आयाम असंख्यात करोड़ योजन है। सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसीके तृतीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उसे शलाकारूपसे स्थापित करके रूपाधिक अर्थात् एकाधिक तेरह गुणस्थानवर्ती जीवराशिसे अधिक मनुष्य मिथ्यादृष्टि राशिके द्वारा जगश्रेणी अपहृत होती है ॥ ४२ ॥

अब शेष गुणस्थानवर्ती मनुष्योंके प्रमाणका निरूपण करनेके लिये आगेके दो सूत्र प्राप्त होते हैं—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनुष्य द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं ॥ ४३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे प्रारम्भ करके संयतासंयत गुणस्थान तक इन चार गुणस्थानोंमें प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनुष्यराशि संख्यात ही होती है, यह इस सूत्रका अभिप्राय है। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनुष्यराशि संख्यात है, ऐसा सामान्यरूपसे कथन करनेपर भी उनका प्रमाण विशेषरूपसे इस प्रकार है— सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य बावन करोड़ (५२०००००००) हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके प्रमाणसे दूने हैं, असंयतसम्यग्दृष्टि सात सौ करोड़ हैं, तथा संयतासंयत तेरह करोड़ हैं। कितने ही आचार्य सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण पचास करोड़ तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका प्रमाण उससे दूना बतलाते हैं।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ४४ ॥

प्रमत्तसंयत गुनस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनुष्य सामान्य प्ररूपणाके समान संख्यात हैं ॥ ४४ ॥

चूंकि प्रमत्तसंयतादि गुणस्थान मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य किसी भी गतिमें सम्भव नहीं हैं, अतएव मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतादि जीवोंके प्रमाणकी प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके ही समान समझना चाहिये।

अब आगे मनुष्यविशेषोंमें गुणस्थानोंके आश्रयसे द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा की जाती है—

मणुसपज्जत्तेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो ॥ ४५ ॥

मनुष्य पर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? वे कोड़ाकोड़ाकोड़िके ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़िके नीचे छह वर्गोंके ऊपर और सात वर्गोंके नीचे अर्थात् छठे और सातवें वर्गके बीचकी संख्या प्रमाण हैं ॥ ४५ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ ४६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पर्याप्त मनुष्य द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ ४६ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ४७ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पर्याप्त मनुष्य सामान्यप्ररूपणाके समान संख्यात हैं ॥ ४७ ॥

अब मनुष्यनियोंमें द्रव्यप्रमाणका निरूपण करते हैं—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो ॥ ४८ ॥

मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? कोड़ाकोड़ाकोड़िके ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़िके नीचे छठे वर्गके ऊपर और सातवें वर्गके नीचे मध्यकी संख्या प्रमाण हैं ॥ ४८ ॥

मणुसिणीसु सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ ४९ ॥

मनुष्यनियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ ४९ ॥

अब लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके प्रमाणका निरूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ५० ॥

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ ५० ॥

अपर्याप्त मनुष्यराशि असंख्यातरूप है, यह यहां सामान्यरूपसे निर्देश किया गया है। विशेषरूपसे उस असंख्यातका प्ररूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ५१ ॥

कालकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ५१ ॥

खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयण-कोडीओ। मणुस-अपज्जत्तेहि रूवा पक्खित्तेहि सेढिमवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदिय-वग्गमूलगुणिदेण ॥ ५२ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उस जगश्रेणीके असंख्यातवें भागरूप श्रेणीका आयाम असंख्यात करोड़ योजन है। सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित प्रथम वर्गमूलको शलाकारूपसे स्थापित करके रूपाधिक (एक अधिक) लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके द्वारा जगश्रेणी अपहृत होती है ॥ ५२ ॥

सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलको परस्पर गुणित करनेसे जो राशि आवे उससे जगश्रेणीको भाजित करके लब्ध राशिमेंसे एक कम कर देनेपर सामान्य मनुष्यराशिका प्रमाण आता है। इसमेंसे पर्याप्त मनुष्यराशिका प्रमाण घटा देनेपर शेष लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यराशिका प्रमाण होता है।

अब देवगतिमें जीवोंकी संख्या बतलाते हुए सर्वप्रथम मिथ्यादृष्टि देवोंके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

देवगईए देवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा ॥ ५३ ॥

देवगतिप्रतिपन्न देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं ॥

एक एक अंकके घटाते जानेपर जो राशि समाप्त हो जाती है उसे असंख्यात तथा जो इस प्रकारसे समाप्त नहीं होती है उसे अनन्त कहते हैं। अथवा जो संख्या पांचों इन्द्रियोंकी विषयभूत होती है उसे संख्यात, उसके आगेकी जो संख्या अवधिज्ञानकी विषयभूत है उसे असंख्यात, तथा इससे आगेकी जो संख्या एक मात्र केवलज्ञानकी विषयभूत है उसे अनन्त समझना चाहिये।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ५४ ॥

कालकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ५४ ॥

खेत्तेण पदरस्स बेछप्पण्णंगुलसयवग्गपडिभागेण ॥ ५५ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा जगप्रतरके दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गरूप प्रतिभागसे देव मिथ्यादृष्टि राशिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

अभिप्राय यह है कि दो सौ छप्पन सूच्यंगुलके वर्गरूप भागहारसे जगप्रतरको भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना क्षेत्रकी अपेक्षा देवराशिका प्रमाण जानना चाहिये।

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीणं ओघं ॥ ५६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य देवोंका द्रव्यप्रमाण ओघप्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ५६ ॥

भवणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ५७ ॥

भवनवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥५७॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्साप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ५८ ॥

कालकी अपेक्षा भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ५८ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तेसिं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण ॥ ५९ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण हैं जो जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलको सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी है ॥ ५९ ॥

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिपरूवणा ओघं ॥ ६० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी देवोंकी प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ ६० ॥

वाणवेंतरदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ६१ ॥

वानव्यन्तर देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥६१॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ६२ ॥

कालकी अपेक्षा वानव्यन्तर देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ६२ ॥

खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण ॥ ६३ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा जगप्रतरके संख्यात सौ योजनोंके वर्गरूप प्रतिभागसे वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि राशि आती है ॥ ६३ ॥

अभिप्राय यह है कि संख्यात सौ योजनोंके वर्गरूप भागहारका जगप्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि देव हैं।

सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ ६४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वानव्यन्तर देव सामान्य प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ ६४ ॥

जोइसियदेवा देवगईणं भंगो ॥ ६५ ॥

जितनी देवगतिप्रतिपन्न सामान्य देवोंकी संख्या कही गई है उतने ज्योतिषी देव हैं ॥६५॥

सूत्रमें ' जोइसियदेवा ' इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंकी विशेषतासे रहित जो सामान्य ज्योतिषी देवोंका ग्रहण किया गया है उससे मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती ज्योतिषी देवोंकी संख्याकी प्ररूपणा सामान्य देवगति सम्बन्धी संख्याप्ररूपणाके समान है, ऐसा समझना चाहिये । यहांपर जो ज्योतिषी देवोंकी संख्या सामान्य देवोंके समान बतलायी गई है वह सामान्यसे बतलायी है । विशेषकी अपेक्षा दो सौ छप्पन्न अंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध हो उतना प्रमाण ज्योतिषी देवोंका है और उनसे कुछ ही अधिक (संख्यातगुणी) सामान्य देवराशि है, इतना विशेष समझना चाहिये ।

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥

सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ ६६ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ६७ ॥

कालकी अपेक्षा सौधर्म और ऐशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ६७ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तासिं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलविदियवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ ६८ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा सौधर्म और ऐशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण हैं । उन असंख्यात जगश्रेणियोंका प्रमाण जगप्रतरके असंख्यातवें भाग है तथा उनकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलको उसके तृतीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी है ॥६८॥

सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ ६९ ॥

सौधर्म-ऐशान कल्पवासी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्य प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ ६९ ॥

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणं भंगो ॥ ७० ॥

जिस प्रकार सातवीं पृथिवीमें नारकियोंके द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार सनत्कुमारसे लेकर शतार और सहस्रार तक कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि देवोंकी प्ररूपणा है ॥ ७० ॥

आणद-पाणद जाव णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ ७१ ॥

आनत और प्राणतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उक्त देव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं। उपर्युक्त जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ ७१ ॥

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥

अनुदिश विमानोंसे लेकर अपराजित विमान तक इन विमानोंमें रहनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि देव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं। इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ ७२ ॥

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा ॥ ७३ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं ॥ ७३ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव मनुष्यनियोंके प्रमाणसे तिगुणे हैं, इतना यहां विशेष समझना चाहिये।

अब इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीवोंकी संख्याका प्रतिपादन करते हैं—

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता ॥ ७४ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? अनन्त हैं ॥ ७४ ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ७५ ॥

कालप्रमाणकी अपेक्षा पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि नौ जीवराशियां अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत नहीं होती हैं ॥ ७५ ॥

अतीत कालको अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीके प्रमाणसे करनेपर अनन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण अतीत काल होता है। इस प्रकारके उस अतीत कालके द्वारा ये नौ राशियां अपहृत नहीं होती हैं। अर्थात् अतीत कालके समयोंकी जितनी संख्या है, उससे भी बहुत अधिक सूत्रोक्त बादर एकेन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण है।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ७६ ॥

क्षेत्रप्रमाणकी अपेक्षासे पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि नौ जीवराशियां अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥

बेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण

केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ७७ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ ७७ ॥

असंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ७८ ॥

कालकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव असंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ७८ ॥

खेत्तेण बेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ७९ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है। तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके द्वारा क्रमशः सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ७९ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ? ॥ ८० ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ८१ ॥

कालकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ८१ ॥

खेत्तेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ८२ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ८२ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ८३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्य प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥

अब लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंके प्रमाणका निरूपण करते हैं—

पंचिंदियअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ८४ ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ ८४ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ८५ ॥

कालकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ८५ ॥

खेत्तेण पंचिंदियअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ८६ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ८६ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फइकाइया पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा लोगा ॥ ८७ ॥

कायानुवादसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव, तथा इन्हीं पांच बादर सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक जीव, तथा इन्हीं चार सूक्ष्म सम्बन्धी पर्याप्त और अपर्याप्त जीव; ये प्रत्येक द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ ८७ ॥

अब बादर पर्याप्तोंकी संख्याका प्ररूपण करनेके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

बादर पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ८८ ॥

बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ ८८ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ८९ ॥

कालकी अपेक्षा बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥

खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभागेण ॥ ९० ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तक जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत

होता है ॥ ९० ॥

बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा । असंखेज्जावलियवग्गो आवलियघणस्स अंतो ॥ ९१ ॥

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं । यह असंख्यातरूप प्रमाण असंख्यात आवलियोंके वर्गरूप है जो आवलीके घनके भीतर आता है ॥९१॥

बादरवाउकाइयपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ ९२ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥९२॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ९३ ॥

कालकी अपेक्षा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ९३ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाणि जगपदराणिं लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ९४ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यात जगप्रतर प्रमाण हैं । वह असंख्यात जगप्रतर प्रमाण लोकके संख्यातवें भाग हैं ॥ ९४ ॥

अभिप्राय यह है कि संख्यातसे घनलोकके भाजित करनेपर बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका द्रव्य आता है ।

वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहमा पज्जत्तापज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता ॥ ९५ ॥

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर जीव, निगोद सूक्ष्म जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव; ये प्रत्येक द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं ॥ ९५ ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ९६ ॥

कालकी अपेक्षा पूर्वोक्त चौदह जीवराशियां अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत नहीं होती हैं ॥ ९६ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ९७ ॥

वे चौदह जीवराशियां क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ ९७ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने

हैं ? असंख्यात हैं ॥ ९८ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ९९ ॥

कालकी अपेक्षा त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ ९९ ॥

खेत्तेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभागेण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ १०० ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा त्रसकायिकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे, और त्रसकायिक पर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ १०० ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १०१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीव सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १०१ ॥

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताण भंगो ॥ १०२ ॥

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका प्रमाण पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके प्रमाणके समान है ॥

अब योगमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-तिण्णिवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ १०३ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगियों और तीन वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? देवोंके संख्यातवें भाग हैं ॥ १०३ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ १०४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पूर्वोक्त आठ योगवाले जीवोंका प्रमाण सामान्य प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें पूर्वोक्त आठ जीवराशियां द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितनी हैं ? संख्यात हैं ॥ १०५ ॥

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ १०६ ॥

वचनयोगियों और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥ १०६ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १०७ ॥

कालकी अपेक्षा वचनयोगी और अनुभयवचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ १०७ ॥

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभागेण ॥ १०८ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा वचनयोगियों और अनुभयवचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा अंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ १०८ ॥

सेसाणं मणजोगिभंगो ॥ १०९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती वचनयोगी और अनुभयवचनयोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि आदि जीव मनोयोगिराशिके समान हैं ॥ १०९ ॥

कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं ॥ ११० ॥

काययोगियों और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य प्ररूपणाके समान हैं ॥

अभिप्राय यह है कि ये दोनों ही राशियां अनन्त हैं। कालकी अपेक्षा काययोगी और औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत नहीं होते हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा वे अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति जहा मणजोगिभंगो ॥१११॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काययोगी और औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव मनोयोगियोंके समान हैं ॥ १११ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं ॥ ११२ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव मूल ओघप्ररूपणाके समान हैं ॥ ११२ ॥

सासणसम्माइट्ठी ओघं ॥ ११३ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्य प्ररूपणाके समान हैं ॥११३॥

असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ ११४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली औदारिकमिश्रकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ ११४ ॥

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवाणं संखेज्जदि-भागूणो ॥ ११५ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? देवोंके संख्यातवें भागसे कम हैं ॥ ११५ ॥

सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ ११६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियककाययोगी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणाके समान हैं ॥ ११६ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ ११७ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? देवोंके संख्यातवें भाग हैं ॥ ११७ ॥

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ ११८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ ११८ ॥

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुवण्णं ॥ ११९ ॥

आहारकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? चौवन हैं ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें आहारशरीर नहीं पाया जाता है, इसका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें प्रमत्तसंयत पदका ग्रहण किया गया है ।

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥

आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १२० ॥

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? मूलोघं ॥ १२१ ॥

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ १२१ ॥

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १२२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? सामान्य प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ १२२ ॥

सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १२३ ॥

कार्मणकाययोगी सजोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥

अब वेदमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवीहि सादिरेयं ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ?

देवियोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १२४ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ १२५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें स्त्रीवेदी जीव ओघप्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ १२५ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादरसांपराइय-पविट्ठ-उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १२६ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्ति-बादर-सांपराय-प्रविष्ट उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १२६ ॥

पुरिसवेदएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवेहि सादिरेयं ॥ १२७ ॥

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादरसांपराइय-पविट्ठ-उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १२८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्ति-बादर-सांपराय-प्रविष्ट उपशामक और क्षपक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ १२८ ॥

णवुंसयवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ १२९ ॥

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ १२९ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादरसांपराइय-पविट्ठ-उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १३० ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्ति-बादरसांपरायिक-प्रविष्ट उपशामक और क्षपक गुणस्थान तकके जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १३० ॥

अपगदवेदएसु तिण्हं उवसामगा दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण चउवण्णं ॥ १३१ ॥

अपगतवेदी जीवोंमें तीन गुणस्थानके उपशामक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? प्रवेशकी अपेक्षा एक, अथवा दो, अथवा तीन, अथवा उत्कृष्टरूपसे चौवन हैं ॥ १३१ ॥

अद्धं पडुच्च संखेज्जा ॥ १३२ ॥

कालकी अपेक्षा उपर्युक्त तीन गुणस्थानवर्ती अपगतवेदी उपशामक जीव संख्यात हैं ॥

तिण्णि खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १३३ ॥

अपगतवेदियोंमें तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक और अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणाके

समान हैं ॥ १३३ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १३४ ॥

अपगतवेदियोंमें सयोगिकेवली जीव ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ १३४ ॥

अब कषायमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका प्ररूपण करते हैं—

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ १३५ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीवोंका द्रव्य-प्रमाण सामान्य प्ररूपणाके समान हैं ॥ १३५ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव आणियट्टि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक चारों कषायवाले जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १३६ ॥

चारों कषायोंके कालको जोड़ करके और उसकी चार प्रतिराशियां करके अपने अपने कालसे अपवर्तित करके जो संख्या लब्ध हो उससे इच्छित राशिके भाजित करनेपर अपनी अपनी राशि होती है । तदनुसार इन गुणस्थानोंमें मानकषायी जीवराशि सबसे कम है । क्रोधकषायी जीवराशि मानकषायी जीवराशिसे विशेष अधिक है । मायाकषायी जीवराशि क्रोधकषायी जीवराशिसे विशेष अधिक है । लोभकषायी जीवराशि मायाकषायी जीवराशिसे विशेष अधिक है ।

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-सुद्धि-संजदा उवसमा खवा मूलोघं ॥१३७॥

इतना विशेष है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसांपरायिक-शुद्धिसंयत उपशामक और क्षपक जीवोंकी प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १३७ ॥

इसका कारण यह है कि क्षपक और उपशामक सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंमें सूक्ष्म लोभ कषायको छोड़कर अन्य कोई कषाय नहीं पाई जाती है ।

अकसाईसु उवसंतकसाय-वीयरागछदुमत्था ओघं ॥ १३८ ॥

कषायरहित जीवोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीवोंके द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १३८ ॥

यहां भावकषायके अभावकी अपेक्षा उपशान्तकषाय जीवोंको अकषायी कहा है, द्रव्य कषायके अभावकी अपेक्षासे नहीं; क्योंकि, उदय, उदीरणा, अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृति-संक्रमण आदिसे रहित द्रव्यकर्म यहां पाया जाता है ।

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ॥ १३९ ॥

क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ और अयोगिकेवली जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १३९ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १४० ॥

सयोगिकेवली जीवोंके द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १४० ॥

अब ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १४१ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ओघ प्ररूपणाके समान है ॥ १४१ ॥

विभंगणाणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवेहि सादिरेयं ॥१४२॥

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? देवोंसे कुछ अधिक है ॥

सासणसम्माइट्ठी ओघं ॥ १४३ ॥

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव ओघ प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १४३ ॥

आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओहिणाणीसु असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १४४ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव ओघ प्ररूपणाके समान हैं॥

णवरि विसेसो ओहिणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १४५ ॥

इतना विशेष है कि अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १४५ ॥

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराग-छदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १४६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १४६ ॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ १४७ ॥

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १४७ ॥

अब संयममार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयत जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥१४८॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानवर्ती जीव संयत ही होते हैं, इसलिये यहां सामान्यसे ओघ प्ररूपणा कही गई है ।

सामाइय-छेदोवट्ठावण-सुद्धि-संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादर-सांपराइय-पविट्ठ-उवसमा खवा त्ति ओघं ॥ १४९ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्ति-बादर-साम्परायिक-प्रविष्ट उपशमक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव ओघ-प्ररूपणाके समान संख्यात हैं ॥ १४९ ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥

परिहारविशुद्धि-संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १५० ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा उवसमा खवा दव्व-पमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १५१ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ १५१ ॥

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चउट्ठाणं ओघं ॥ १५२ ॥

यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयतोंमें ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १५२ ॥

संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १५३ ॥

संयतासंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १५३ ॥

असंजदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? ओघं ॥ १५४ ॥

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? सामान्य प्ररूपणाके समान हैं ॥ १५४ ॥

अब दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं ॥ १५५ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १५६ ॥

कालकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत होते हैं ॥ १५६ ॥

खेत्तेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदि-भागवग्गपडिभाएण ॥ १५७ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ १५७ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥१५८॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीव ओघप्ररूपणाके समान हैं ॥ १५८ ॥

अचक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १५९ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव ओघ प्ररूपणाके समान हैं ॥ १५९ ॥

इसका कारण यह है कि सब ही छद्मस्थ जीवोंके अचक्षुदर्शनावरणका क्षयोपशम पाया जाता है। इसलिये उनका प्रमाण ओघप्ररूपणाके समान कहा गया है।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १६० ॥

अवधिदर्शनी जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १६० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १६१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १६१ ॥

चूंकि केवलज्ञानसे रहित केवलदर्शन पाया नहीं जाता है, अतएव इन दोनोंका प्रमाण समान है।

अब लेश्या मार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ओघं ॥ १६२ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले

जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव ओघप्ररूपणाके समान हैं ॥ १६२ ॥

तेउलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? जोइसियदेवेहि सादिरेयं ॥

तेजोलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? ज्योतिषी देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १६३ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ १६४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यासे युक्त जीव ओघ प्ररूपणाके समान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ १६४ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १६५ ॥

तेजोलेश्यावाले जीवोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने है ? संख्यात हैं ॥ १६५ ॥

पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीणं संखेज्जदिभागो ॥ १६६ ॥

पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १६६ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ १६७ ॥

पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १६७ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १६८ ॥

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत पद्मलेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १६८ ॥

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १६९ ॥

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । इन जीवोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्त कालसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १६९ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १७० ॥

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत शुक्ललेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १७० ॥

अपुव्वकरणप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १७१ ॥

अपूर्वकरण गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १७१ ॥

चूंकि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें शुक्ललेश्याको छोड़कर दूसरी कोई लेश्या नहीं पाई जाती है, अतएव अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें ओघप्रमाण ही शुक्ललेश्यावालोंका प्रमाण है । अयोगिकेवली जीव लेश्यारहित हैं, क्योंकि, उनमें कर्मलेपका कारणभूत योग और कषायें नहीं पायी जाती हैं ।

अब भव्यमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥१७२॥

अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता ॥ १७३ ॥

अभव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं ॥ १७३ ॥

अब सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं-

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठीसु असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १७४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १७४ ॥

खइयसम्माइट्ठीसु असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १७५ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीयराग-छदुमत्था दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १७६ ॥

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १७६ ॥

चउण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १७७ ॥

चारों क्षपक और अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणाके समान हैं ॥ १७७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १७८ ॥

सयोगिकेवली जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान हैं ॥ १७८ ॥

वेदगसम्माइट्ठीसु असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १७९ ॥

उवसमसम्माइट्ठीसु असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा ओघं ॥ १८० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १८० ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ १८१ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥ १८१ ॥

सासणसम्माइट्ठी ओघं ॥ १८२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १८२ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी ओघं ॥ १८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा ओघ प्ररूपणाके समान है ॥ १८३ ॥

मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ १८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंकी द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १८४ ॥

अब संज्ञीमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवेहि सादिरेयं ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १८५ ॥

सब देव मिथ्यादृष्टि संज्ञी ही हैं, और चूंकि शेष तीन गतियोंके संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उन देवोंके संख्यातवें भाग ही हैं; अतएव यहां संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण देवोंसे कुछ अधिक निर्दिष्ट किया गया है।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥१८६॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीवोंकी द्रव्यप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ १८६ ॥

असण्णी दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता ॥ १८७ ॥

असंज्ञी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं ॥ १८७ ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १८८ ॥

कालकी अपेक्षा असंज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत नहीं होते हैं ॥ १८८ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १८९ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा असंज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ १८९ ॥

अब आहारमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंकी संख्याका निरूपण करते हैं—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंकी द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९० ॥

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १९१ ॥

अनाहारक जीवोंमें द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगियोंके द्रव्यप्रमाणके समान है ॥ १९१ ॥

अजोगिकेवली ओघं ॥ १९२ ॥

अनाहारक अयोगिकेवली जीवोंकी द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥

॥ द्रव्यप्रमाणानुगम समाप्त हुआ ॥ २ ॥

---

३. खेत्ताणुगमो

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

जिन चौदह जीवसमासोंका सत्प्ररूपणा नामक अनुयोगद्वारसे अस्तित्व जान लिया गया है तथा द्रव्यप्रमाणानुगमसे जिनकी संख्याका प्रमाण ज्ञात हो चुका है उन चौदह जीवसमासोंके क्षेत्रसम्बन्धी प्रमाणका परिज्ञान करानेके लिये प्रकृत क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है। अथवा जीव अनन्तानन्त हैं और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशरूप है, ऐसी अवस्थामें उस लोकाकाशमें समस्त जीवराशि कैसे अवस्थित है, इस शंकाके निवारणार्थ यह क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है। यहां प्रारम्भमें क्षेत्रका निक्षेप किया जाता है– वह निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकारका है। अन्य कारणोंकी अपेक्षा न करके केवल अपने आपमें प्रवृत्त हुए 'क्षेत्र' इस शब्दका नाम नामक्षेत्र है। तदाकार या अतदाकार द्रव्यमें 'यह क्षेत्र है' ऐसी जो कल्पना की जाती है उसे स्थापनाक्षेत्र कहते हैं।

द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है– आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्र। उनमें जो क्षेत्रप्राभृतका जानकार है, परन्तु वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्यक्षेत्र कहा जाता है। नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है– ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त। इनमेंसे ज्ञायकशरीर तीन प्रकारका है– भावी ज्ञायकशरीर, वर्तमान ज्ञायकशरीर और अतीत ज्ञायकशरीर। इनमेंसे अतीत ज्ञायकशरीर भी च्युत, च्यावित और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा उसे भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं। ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है वह कर्मद्रव्यक्षेत्र और नोकर्मद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मद्रव्यको तद्व्यतिरिक्त नोआगमकर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं। नोकर्मद्रव्यक्षेत्र औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र एवं गोधूम (गेहूं) आदि औपचारिक तद्व्यतिरिक्त नोआगम-नोकर्मद्रव्यक्षेत्र कहलाता है। आकाशद्रव्य परमार्थ तद्व्यतिरिक्त नोआगम-नोकर्मद्रव्यक्षेत्र है।

भावक्षेत्र आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है। जो जीव क्षेत्रविषयक प्राभृतको जानता है और वर्तमान कालमें तद्विषयक उपयोगसे भी सहित है वह आगमभावक्षेत्र कहा जाता है। जो क्षेत्रविषयक शास्त्रके उपयोगके विना अन्य पदार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको नोआगमभावक्षेत्र कहते हैं।

प्रकृतमें यहां तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्रभूत आकाशसे प्रयोजन है। वह आकाश अनादि-अनन्त है जो दो प्रकारका है– लोकाकाश और अलोकाकाश। जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन किये जाते हैं– पाये जाते हैं– उसे लोकाकाश कहते हैं। इसके विपरीत जहां जीवादि द्रव्य नहीं पाये जाते हैं उसे अलोकाकाश कहते हैं। अथवा, देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है– मंदराचलकी चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है। मंदराचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है। तथा मंदर पर्वतकी ऊंचाई प्रमाण क्षेत्र मध्यलोक है। मध्यलोकके दो भाग हैं– मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक। मानुषोत्तर पर्यन्त अढ़ाईद्वीपवर्ती क्षेत्रको मनुष्यलोक और उससे आगेके शेष मध्यलोकको तिर्यग्लोक कहते हैं। प्रकृतमें इनके द्वारा ही जीवोंके वर्तमान निवासरूप क्षेत्रका विचार किया जावेगा।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है। क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं। क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमें ओघनिर्देशके निरूपणके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ॥ २ ॥

ओघ अर्थात् सामान्य निर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २ ॥

राजुसे सातगुणी जगश्रेणी होती है। इस जगश्रेणीके वर्गको जगप्रतर और उसके घनको घनलोक कहते हैं। यह लोक नीचे वेत्रासन (वेतके मूढा) के समान, मध्यमें झल्लरीके समान और ऊपर मृदंगके समान आकारवाला है। लोककी ऊंचाई चौदह राजु है। उसका विस्तार चार प्रकारका है– अधोलोकके अन्तमें सात राजु, मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पांच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु।

क्षेत्रप्रमाणकी प्ररूपणामें जीवोंकी तीन अवस्थाओंको ग्रहण किया गया है– स्वस्थानगत, समुद्घातगत और उपपादगत। इनमें स्वस्थानगत अवस्था भी दो प्रकारकी होती है– स्वस्थान-स्वस्थानगत और विहारवत्स्वस्थानगत। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम व नगरादिमें उठने, बैठने एवं चलने आदिके व्यापारयुक्त अवस्थाका नाम स्वस्थानस्वस्थान है। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम-नगरादिको छोड़कर अन्यत्र सोने, चलने और घूमने आदिको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं।

वेदना आदि कारणविशेषसे मूलशरीरको नहीं छोड़कर आत्माके कुछ प्रदेशोंके शरीरसे बाहिर निकलनेका नाम समुद्घात है। वह सात प्रकारका है– वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात। शरीरमें पीड़ा होनेके कारण आत्मप्रदेशोंके बाहिर निकलनेको वेदनासमुद्घात कहते हैं। क्रोध और भय आदिके निमित्तसे जीवप्रदेशोंके शरीरसे तिगुणे प्रमाणमें बाहिर निकलनेको कषायसमुद्घात कहते हैं। वैक्रियिकशरीरके धारक देव और नारकियोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर अन्य

आकारके धारण करनेको वैक्रियिकसमुद्घात कहते हैं। मरनेके पूर्व आत्मप्रदेशोंका ऋजुगतिसे अथवा विग्रहगतिसे शरीरके बाहिर निकलकर जहां उत्पन्न होना है उस क्षेत्र तक जाकर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहना, इसे मारणान्तिकसमुद्घात कहते हैं। वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातसे इसमें यह विशेषता है कि यह तो केवल बद्धायुष्क जीवोंके ही होता है, परन्तु उक्त दोनों समुद्घात बद्धायुष्कोंके होते हैं और अबद्धायुष्कोंके भी होते हैं, तथा मारणान्तिकसमुद्घात जहांपर उत्पन्न होना है उसी दिशाके अभिमुख होता है, परन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातके लिये ऐसा कुछ नियम नहीं है। तैजसशरीरके विसर्पणका नाम तैजससमुद्घात है। वह दो प्रकारका होता है— निःस्सरणात्मक और अनिःस्सरणात्मक। इनमें जो निःस्सरणात्मक तैजससमुद्घात है वह भी दो प्रकारका है— प्रशस्त तैजस और अप्रशस्त तैजस। किसी महान् तपस्वी साधुके हृदयमें दुर्भिक्षादिसे पीडित जनपदादिको देखकर अनुकम्पा वश उनके उद्धारार्थ दाहिने कंधेसे जो तैजस पुतला निकलता है उसे प्रशस्त तैजससमुद्घात कहते हैं और तपस्वीके किसीपर रुष्ट हो जानेपर नौ योजन चौड़े और बारह योजन लम्बे क्षेत्रको भस्म करनेवाला बायें कन्धेसे जो तैजस पुतला निकलता है उसे अप्रशस्त तैजससमुद्घात कहते हैं। शरीरके भीतर जो तेज और चमक होती है उसे अनिःसरणात्मक तैजससमुद्घात कहते हैं। यहांपर उसकी विवक्षा नहीं है।

प्रमत्त गुणस्थानवर्ती महामुनिके हृदयमें सूक्ष्म तत्त्वके विषयमें शंका उत्पन्न होनेपर तथा उनके निवासक्षेत्रमें केवली या श्रुतकेवलीके उपस्थित न होनेपर उस शंकाके समाधानार्थ मस्तकसे एक हाथका जो धवलवर्ण पुतला निकलता है उसका नाम आहारकसमुद्घात है। वह केवलीके पादमूलका स्पर्श करके वापिस साधुके शरीरमें प्रविष्ट होकर मुनिकी शंकाका समाधान कर देता है। आयु कर्मके अल्प तथा शेष तीन अघातिया कर्मोंके अधिक स्थितिसे संयुक्त होनेपर उनके समीकरणार्थ केवली भगवान्के दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण रूपसे जो शरीरके बाहिर आत्मप्रदेश फैलते हैं उसे केवलिसमुद्घात कहते हैं।

पूर्व शरीरको छोड़कर नवीन शरीरके धारण करनेके लिये जो उत्तर भवके प्रथम समयमें प्रवृत्ति होती है उसका नाम उपपाद है। इन दस अवस्थाओंके द्वारा जीव जितने आकाशके क्षेत्रको व्याप्त करता है उसी क्षेत्रका प्रकृत क्षेत्रानुगममें गुणस्थान और मार्गणाओंकी अपेक्षासे वर्णन किया गया है। यथा—स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय व मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदि-भाए ॥ ३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ३ ॥

यद्यपि व्यवस्थावाची 'प्रभृति' शब्दके द्वारा सभी गुणस्थानोंका ग्रहण सम्भव है, तो भी यहांपर सयोगिकेवली गुणस्थानका ग्रहण नहीं करना चाहिये; क्योंकि, आगे इसका अपवादसूत्र कहा जानेवाला है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्य लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणित क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिये। इतना विशेष है कि उक्त जीवोंकी राशिका जो प्रमाण है उसका असंख्यातवां भाग ही मारणान्तिक-समुद्घातगत और उपपादगत रहता है। इसी प्रकार संयतासंयतोंका भी क्षेत्र जानना चाहिये। इतना विशेष है कि उनके उपपाद नहीं होता है। प्रमत्तसंयतादि ऊपरके सर्व संयत जीव सामान्य लोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं। किन्तु मारणान्तिक-समुद्घातगत संयत जीव मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणित क्षेत्रमें रहते हैं। यहां यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि प्रमत्तसंयतके आहारक और तैजस समुद्घात भी होता है। आहारकसमुद्घातगत प्रमत्त-संयतोंका क्षेत्र तो ऊपर कहे अनुसार ही है। किन्तु तैजससमुद्घातका क्षेत्र नौ योजन प्रमाण विष्कम्भ और बारह योजन प्रमाण आयामवाले क्षेत्रको सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण बाहल्यसे गुणित करनेपर एक जीवगत तैजसमुद्घातका क्षेत्र होता है। इसे इसके योग्य संख्यातसे गुणित करनेपर तैजससमुद्घातके सर्व क्षेत्रका प्रमाण आता है।

सजोगिकेवली केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ४ ॥

सयोगिकेवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें, अथवा लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं॥ ४ ॥

दण्डसमुद्घातगत केवली सामान्य लोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी क्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। कपाटसमुद्घातगत केवली सामान्यलोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग; तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। प्रतरसमुद्घातगत केवली लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसका कारण यह है कि लोकके असंख्यातवें भाग मात्र जो वातवलयरुद्ध क्षेत्र है उसको छोड़कर शेष बहुभाग प्रमाण सब ही क्षेत्रमें प्रतरसमुद्घातगत केवली रहते हैं। लोकपूरणसमुद्घातगत केवली समस्त लोकमें रहते हैं।

इस प्रकार ओघकी अपेक्षा क्षेत्रकी प्ररूपणा करके अब आगे आदेशकी अपेक्षा उक्त क्षेत्रकी प्ररूपणा की जाती है—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५ ॥

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ६ ॥

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छाइट्ठी केवडिखेत्ते ? सव्वलोए ॥ ७ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७ ॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ८ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ९ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १० ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १० ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ११ ॥

सजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? ओघं ॥ १२ ॥

सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? वे ओघप्ररूपणाके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागमें अथवा समस्त लोकमें रहते हैं ॥ १२ ॥

मणुसअपज्जत्ता केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १३ ॥

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १३ ॥

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १४ ॥

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १४ ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ॥ १५

इसी प्रकार भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकविमानवासी देवों तकका क्षेत्र जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मादिट्ठी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तकके असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १६ ॥

अब इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा जीवोंके क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ॥ १७ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीव, बादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १७ ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १८ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १८ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १९ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १९ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ २० ॥

सयोगिकेवलियोंका क्षेत्र सामान्य प्ररूपणाके समान है ॥ २० ॥

पंचिंदिय-अपज्जत्ता केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २१ ॥

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २१ ॥

अब कायमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ॥ २२ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक व वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांच बादरकाय सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २२ ॥

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २३ ॥

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव, बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २३ ॥

बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ २४ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ॥ २५ ॥

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २५ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २६ ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २६ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ २७ ॥

सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ २७ ॥

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदिय-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ २८ ॥

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके क्षेत्रके समान है ॥ २८ ॥

अब योगमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं-

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २९ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २९ ॥

कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ३० ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

काययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

अयोगिकेवलियोंके योगका अभाव हो जानेसे यहां सूत्रमें उनका ग्रहण नहीं किया गया है।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२ ॥

काययोगवाले जीवोंमें सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघप्ररूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥

पूर्वोक्त सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा चूंकि सयोगिकेवलियोंमें यह विशेषता पायी जाती है कि वे लोकके असंख्यातवें भागके साथ लोकके असंख्यात बहुभाग तथा समस्त लोकमें भी रहते हैं, अतएव उनकी प्ररूपणा पूर्व सूत्रके द्वारा न करके इस सूत्रके द्वारा पृथक्से की गई है।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३३ ॥

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ३३ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

यहां औदारिककाययोगकी विवक्षा होनेसे औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगके साथमें होनेवाले कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंकी सम्भावना नहीं है; इसीलिए औदारिककाययोगी सयोगिकेवली लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा इस सूत्रमें कहा गया है। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिककाययोगी जीवोंके उपपाद पद तथा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवोंके आहारकसमुद्घात नहीं होता है।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३५ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३६ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३६ ॥

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३७ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३८ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३८ ॥

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

आहारककाययोगियों और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ४० ॥

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टि जीवोंके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ ४१ ॥

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

सजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ४२ ॥

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? प्रतरसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और लोकपूरणकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

अब वेदमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं---

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४३ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४३ ॥

णवुंसयवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ४४ ॥

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ४४ ॥

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४५ ॥

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ४६ ॥

अपगतवेदी सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ४६ ॥

अब कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं---

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४७ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ४७ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती

चारों कषायवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा उवसमा खवा केवडि-खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४९ ॥

विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धि-संयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४९ ॥

अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं ॥ ५० ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानोंका क्षेत्र ओघ क्षेत्रके समान है ॥

यद्यपि उपशान्तकषाय गुणस्थानमें कषायोंका उपशम रहनेसे उसे सर्वथा अकषाय नहीं कहा जा सकता है, तो भी वहां भाव कषायोंका अभाव रहनेसे उसे भी यहां अकषायी गुणस्थानोंमें ग्रहण कर लिया गया है।

अब ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ५१ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ५१ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ५२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र ओघ सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ५२ ॥

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५३ ॥

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५४ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५४ ॥

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५५ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान

तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ५६ ॥

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघ क्षेत्रके समान है ॥ ५६ ॥

अजोगिकेवली ओघं ॥ ५७ ॥

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

अब संयममार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ५८ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५८ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ५९ ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

सामाइयच्छेदोवट्ठावण-सुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ६० ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ॥ ६१ ॥

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजद-उवसमा खवगा केवडि-खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६२ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणमोघं ॥ ६३ ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले संयतोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

संजदासंजदा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६४ ॥

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६५ ॥

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ६६ ॥

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

अब दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६७ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६८ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ ६९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६९ ॥

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ७० ॥

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ७१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग, लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक है ॥ ७१ ॥

अब लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ७३ ॥

उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७४ ॥

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७५ ॥

शुक्लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ७६ ॥

शुक्लेश्यावाले सयोगिकेवलियोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

अब भव्यमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ७७

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ७७ ॥

अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडिखेत्ते ? सव्वलोए ॥ ७८ ॥

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

अब सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ७९ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

उक्त जीवोंमें सयोगिकेवली जीवोंका क्षेत्र ओघकथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८१ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ८३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

सम्यमिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

अब संज्ञीमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८६ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८६ ॥

असण्णी केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ॥ ८७ ॥

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

अब आहारमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ८८ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ॥ ८९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सजोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती आहारक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ९० ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९१ ॥

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

सजोगिकेवली केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ९२ ॥

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुद्घातगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, वे लोकके चारों ओर स्थित वातवलयको छोड़कर शेष समस्त लोकके क्षेत्रको पूर्ण करके स्थित होते हैं। तथा लोकपूरणसमुद्घातमें वे ही सयोगिकेवली जिन सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उस समय वे सर्व लोकको पूर्ण करके स्थित होते हैं।

॥ क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

---

४. फोसणाणुगमो

फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, कालस्पर्शन और भावस्पर्शनके भेदसे स्पर्शन छह प्रकारका है। उनमें 'स्पर्शन' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है। 'यह वह है' इस प्रकारकी बुद्धिसे एक द्रव्यके साथ अन्य द्रव्यका एकत्व स्थापित करना स्थापनास्पर्शन निक्षेप है। जैसे– घट, पिठर (पात्रविशेष) आदिकमें 'यह ऋषभ है, यह अजित है, यह अभिनन्दन है, इत्यादि। द्रव्यस्पर्शन निक्षेप दो प्रकारका है– आगमद्रव्यस्पर्शन निक्षेप और नोआगमद्रव्यस्पर्शन निक्षेप। उनमें स्पर्शनविषयक प्राभृतका जानकार होकर वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यस्पर्शन निक्षेप है। नोआगमद्रव्यस्पर्शन निक्षेप ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यस्पर्शन भावी, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकारका है। जो जीव भविष्यमें स्पर्शनप्राभृतका जानकार होनेवाला है उसे भावी नोआगम-द्रव्यस्पर्शन कहते हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यस्पर्शन सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। सचित्त द्रव्योंका जो परस्पर संयोग होता है वह सचित्त द्रव्यस्पर्शन कहलाता है। अचित्त द्रव्योंका जो परस्परमें संयोग होता है वह अचित्त द्रव्यस्पर्शन कहलाता है। चेतन-अचेतन-स्वरूप छहों द्रव्योंके संयोगसे निष्पन्न होनेवाला मिश्र द्रव्यस्पर्शन उनसठ (५९) भेदोंमें विभक्त है।

शेष द्रव्योंका आकाश द्रव्यके साथ जो संयोग होता है वह क्षेत्रस्पर्शन कहा जाता है। काल द्रव्यका अन्य द्रव्योंके साथ जो संयोग है उसका नाम कालस्पर्शन है। भावस्पर्शन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। स्पर्शनप्राभृतका जानकार होकर जो जीव वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे सहित है उसको आगमभावस्पर्शन कहते हैं। स्पर्शगुणसे परिणत पुद्गल द्रव्यको नोआगम-भावस्पर्शन कहते हैं।

उपर्युक्त छह प्रकारके स्पर्शनोंमेंसे यहांपर जीवद्रव्य सम्बन्धी क्षेत्रस्पर्शनसे प्रयोजन है। जो भूत कालमें स्पर्श किया गया है और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है उसका नाम स्पर्शन है। स्पर्शनके अनुगमको स्पर्शनानुगम कहते हैं। निर्देश, कथन और व्याख्यान ये तीनों समानार्थक शब्द हैं। स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा वह निर्देश ओघनिर्देश और आदेशके भेदसे दो प्रकारका है।

ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो ॥ २ ॥

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २ ॥

इससे पूर्व क्षेत्रानुयोगद्वारमें समस्त मार्गणास्थानोंका अवलम्बन लेकर सब ही गुणस्थानों सम्बन्धी वर्तमान कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की जा चुकी है। अब इस अनुयोगद्वारमें पूर्वोक्त वर्तमान कालविशिष्ट क्षेत्रका स्मरण कराते हुए, उन्हीं चौदह मार्गणाओंका अवलम्बन लेकर सब गुणस्थानों सम्बन्धी अतीत कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की जाती है। यथा- सामान्यसे सभी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत कालमें सर्व लोकका स्पर्श किया है। विशेषकी अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय व मारणान्तिक समुद्घातगत और उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और वर्तमान कालमें सर्व लोक स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमान कालमें सामान्य लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) राजु क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे लोकनालीके चौदह खण्ड करके मेरु पर्वतके मूल भागसे नीचेके दो खंडोको और ऊपरके छह खंडोंको एकत्रित करनेपर आठ बटे चौदह भाग हो जाते हैं। ये चूंकि तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनोंसे हीन होते हैं, इसीलिये कुछ कम कहा है।

सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातगत तथा उपपादपदगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने वर्तमान कालमें सामान्य लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग (८/१४) तथा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग (१२/१४) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ ४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान पदगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत कालमें सामान्य लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम बारह भाग (१२/१४) प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे– सुमेरुके मूल भागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी तक सात राजु और उसके नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं। इन दोनोंको मिला देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिक क्षेत्रकी लम्बाई हो जाती है। उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (११/१४) भाग स्पर्श किये हैं। वह इस प्रकारसे– मेरुतलसे छठी पृथिवी तक पांच राजु और उसके ऊपर आरण-अच्युत कल्प

तक छह राजु इस प्रकार लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे ग्यारह भाग प्रमाण उनका उपपादक्षेत्र हो जाता है।

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमान कालमें सामान्य लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिये।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ६ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ६ ॥

स्वस्थानगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्य लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यतवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग ($\frac{८}{१४}$) स्पर्श किये हैं। स्वस्थानगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंने सामान्य लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातगत उन्हीं असंयत-सम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग ($\frac{८}{१४}$) भाग (मेरुके ऊपर छह राजु और नीचे दो राजु) स्पर्श किये हैं। उपपादगत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं। इसका कारण यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद क्षेत्र उसके नीचे नहीं पाया जाता है।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७ ॥

संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८ ॥

संयतासंयत जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातगत संयतासंयतोंने सामान्य लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातगत संयतासंयतोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्य लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। तथा मारणान्तिकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतादि जीवोंने सामान्य लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ १० ॥

सयोगिकेवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १० ॥

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १२ ॥

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा कुछ (देशोन २००० यो.) कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १२ ॥

यह स्पर्शनका प्रमाण मारणान्तिकसमुद्घातगत और उपपादगत नारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका समझना चाहिये।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४ ॥

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५ ॥

पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

प्रथम पृथिवीस्थ नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६ ॥

बिदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७ ॥

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

एग बे तिण्णि चत्तारि पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १८ ॥

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत उक्त नारकी जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा यथाक्रमसे चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार और पांच भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

सातवीं पृथिवीस्थ नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २० ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २१ ॥

सातवीं पृथिवीके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीत

कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २१ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२ ॥

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ? ॥ २२ ॥

सातवीं पृथिवीमें इन तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके मारणान्तिक और उपपाद ये दो पद नहीं होते हैं, शेष पांच पद होते हैं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ओघं ॥२३॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ओघके समान सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २३ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २४ ॥

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५ ॥

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंने भूत और भविष्य कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥२६॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २७ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ? ॥ २७ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २८ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २९ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २९ ॥

सव्वलोगो वा ॥ ३० ॥

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ३० ॥

सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो ॥ ३१ ॥

शेष सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यंचोंके समान है ॥ ३१ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३२ ॥

सव्वलोगो वा ॥ ३३ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ३३ ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३४ ॥

सव्वलोगो वा ॥ ३५ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ३५ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३६ ॥

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी सासदनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३६ ॥

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ३७ ॥

मारणान्तिकसमुद्घातगत मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं? ॥ ३७ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स

असंखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥

उपर्युक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३८ ॥

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ ३९ ॥

उपर्युक्त मनुष्योंमें सजोगिकेवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ३९ ॥

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४० ॥

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४० ॥

सव्वलोगो वा ॥ ४१ ॥

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥४१॥

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४२ ॥

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४२ ॥

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४३ ॥

देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४३ ॥

विहारवत्स्वस्थान तथा वेदना, कषाय व वैक्रियिक समुद्घातको प्राप्त हुए उक्त दो गुणस्थानवर्ती देवोंने आठ बटे चौदह भाग और मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त देवोंने नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं, यह इस सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४५ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ

बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४५ ॥

भवनवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४६ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४६ ॥

अद्धुट्ठा वा अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४७ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, आठ भाग और नौ भाग स्पर्श किये हैं ॥४७॥

विहारवत्स्वस्थान तथा वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए उक्त तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग और आठ भागोंको स्पर्श करते हैं। कारण यह कि वे मेरु पर्वतके नीचे दो राजु और ऊपर सौधर्म विमानके शिखरके ध्वजादण्ड तक डेढ़ राजु तो स्वयं-- बिना किसी अन्य देवकी प्रेरणाके-- ही विहार करते हैं तथा ऊपरके देवोंकी सहायतासे मेरु पर्वतके नीचे दो राजु और ऊपर आरण-अच्युत कल्प तक छह राजु, इस प्रकार आठ राजु प्रमाण क्षेत्रमें विहार करते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा वे नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु, इस प्रकार नौ राजु प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करते हैं।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४८ ॥

अद्धुट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४९ ॥

सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति देवोघं ॥ ५० ॥

सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र सामान्य देवोंके स्पर्शनके समान है ॥५०॥

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

सनत्कुमार कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५१ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ५२ ॥

सनत्कुमार कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५२ ॥

आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५३ ॥

आनत कल्पसे लेकर आरण-अच्युत तकके कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५३ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ ५४ ॥

उक्त चारों गुणस्थानवर्ती आनतादि चार कल्पोंके देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५४ ॥

विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय, वैक्रियिक एवं मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए ये देव लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे छह भागोंका स्पर्श करते हैं। इससे अधिक स्पर्श न करनेका कारण यह है कि उनका चित्रा पृथिवीके उपरिम तलके नीचे गमन सम्भव नहीं है।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५५ ॥

नव ग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५५ ॥

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

नव अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५६ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो ॥ ५७ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म

एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५८ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५८ ॥

सव्वलोगो वा ॥ ५९ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ५९ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६० ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६० ॥

अट्ठ चोद्दस भागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ ६१ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ६१ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ६२ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ६३ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सजोगिकेवलीके स्पर्शनकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके समान है ॥ ६३ ॥

पंचिंदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥६४

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

सव्वलोगो वा ॥ ६५ ॥

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर तस्सेव

अपज्जत्त सुहुमपुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो ॥ ६६ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक व वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांचों बादर काय सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक तथा इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेय-सरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

सव्वलोगो वा ॥ ६८ ॥

अथवा उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥६८॥

बादरवाउकाइयपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६९ ॥

सव्वलोगो वा ॥ ७० ॥

अथवा, बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ७० ॥

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ७१ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७२ ॥

तसकाइय-अपज्जत्ताणं पंचिंदिय-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ ७३ ॥

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७३ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७४ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७४ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ ७५ ॥

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ ७५ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ ७६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७७ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७७ ॥

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ७८ ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ७८ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था ओघं ॥ ७९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

काययोगी सयोगिकेवलियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ८० ॥

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८१ ॥

औदारिककायजोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥८१॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥८२॥

औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका

असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८२ ॥

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८३ ॥

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो॥८४॥

औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८५ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८६ ॥

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८६ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥

सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८९ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८९ ॥

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९० ॥

अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ९१ ॥

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत व अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९१ ॥

अभिप्राय यह है कि विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय एवं वैक्रियिक समुद्घातको प्राप्त हुए वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि आठ बटे चौदह भागोंको तथा मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए वे ही नीचे छह और ऊपर सात इस प्रकार तेरह बटे चौदह भागोंको स्पर्श करते हैं।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९२ ॥

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघ स्पर्शनके समान है ॥९२॥

सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९३ ॥

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ९३ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९४ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९४ ॥

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९५ ॥

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९६ ॥

कार्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ९६ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९७ ॥

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९७ ॥

एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा ॥ ९८ ॥

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९८ ॥

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके एक मात्र उपपाद पद ही होता है, शेष पद

उनके नहीं होते हैं। उपपाद पदमें वर्तमान कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुतलके नीचे पांच राजु और ऊपर छह राजु ($\frac{5}{14}$ $\frac{6}{14}$) प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं।

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९९ ॥

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९९ ॥

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०० ॥

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०० ॥

उपपाद पदमें वर्तमान तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूंकि मेरुतलसे ऊपर छह राजु तक जा करके उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनका स्पर्शनक्षेत्र छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है। यहां सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान मेरुतलसे नीचे पांच राजु प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि, नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ॥ १०१ ॥

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १०१ ॥

प्रतरसमुद्घातको प्राप्त सयोगिकेवलियोंने लोकके असंख्यात बहुभागको तथा लोकपूरण-समुद्घातको प्राप्त उन्हींने सर्व लोकको स्पर्श किया है।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०२ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०२ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १०३ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १०३ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०४ ॥

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०४ ॥

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १०५ ॥

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०५ ॥

वे विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भागोंको तथा मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह भागोंको स्पर्श करते हैं, यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०६ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०६ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ १०७ ॥

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०७ ॥

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०८ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०८ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १०९ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०९ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११० ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११० ॥

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १११ ॥

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ १११ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११२ ॥

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका

असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११२ ॥

बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११३ ॥

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११४ ॥

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ११५ ॥

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११५ ॥

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११६ ॥

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११६ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ११७ ॥

नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ११७ ॥

अपगतवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ११८ ॥

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११८ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ११९ ॥

अपगतवेदी सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११९ ॥

यद्यपि यहां सयोगिकेवली जीवोंके भी स्पर्शनकी प्ररूपणा पूर्व सूत्रसे ही ज्ञात की जा सकती थी, फिर भी जो इस पृथक् सूत्रके द्वारा उनके स्पर्शनकी प्ररूपणा की गई है वह पूर्वोक्त जीवोंके स्पर्शनसे सयोगिकेवली जीवोंके स्पर्शनकी विशेषता बतलानेके लिये की गई है।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ १२० ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी

जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२० ॥

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥ १२१ ॥

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ १२१ ॥

अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं ॥ १२२ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानवालोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२२ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १२३ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२३ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२४ ॥

मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२५ ॥

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १२५ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १२६ ॥

विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १२६ ॥

विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय व वैक्रियिक समुद्घातको प्राप्त होकर कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंको तथा मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त होकर सर्व लोकको स्पर्श करते हैं; यह इस सूत्रका अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२७ ॥

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२७ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १२८ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे

लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२८ ॥

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १२९ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२९ ॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ १३० ॥

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३० ॥

अजोगिकेवली ओघं ॥ १३१ ॥

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३१ ॥

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥१३२

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३२ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १३३ ॥

संयतोंमें सयोगिकेवलियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३३ ॥

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धि-संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३४ ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३५ ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा ओघं ॥ १३६ ॥

सूक्ष्मसांपरायिक-शुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसांपरायिक उपशामक और क्षपक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३६ ॥

जहाक्खादविहार-सुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ १३७ ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३७ ॥

संजदासंजदा ओघं ॥ १३८ ॥

संयतासंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३८ ॥

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ १३९ ॥

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३९ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४० ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४० ॥

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १४१ ॥

विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय एवं वैक्रियिक समुद्घातको प्राप्त हुए चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदसे परिणत उन्होंने सर्व लोकको स्पर्श किया है ॥ १४१ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥१४२

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४२ ॥

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १४३ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४३ ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १४४ ॥

अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४४ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी ओघं ॥१४६

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४६ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१४७

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४७ ॥

पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४८ ॥

तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह, चार बटे चौदह और दो बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४८ ॥

यह स्पर्शनक्षेत्र क्रमसे मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंमें वर्तमान छठी पृथिवीके कृष्णलेश्यावाले, पांचवीं पृथ्वीके नीललेश्यावाले और तीसरी पृथ्वीके कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका समझना चाहिये।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४९ ॥

उपर्युक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५० ॥

तेजोलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५१ ॥

तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह तथा कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५१ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५२ ॥

तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५३ ॥

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५३ ॥

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५४ ॥

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां

भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥

दिवड्ढ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५५ ॥

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥१५५॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ १५६ ॥

तेजोलेश्यावाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥१५६

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५७ ॥

पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५८ ॥

उक्त पद्मलेश्यावाले जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५८ ॥

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५९ ॥

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६० ॥

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ १६१ ॥

पद्मलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६१ ॥

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥१६२

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६३ ॥

शुक्ललेश्यावाले उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १६४ ॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६४ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंने मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६५ ॥

अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो ॥ १६६ ॥

अभव्यसिद्धिक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १६६ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १६७ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६७ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६८ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६८ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६९ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १७० ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७० ॥

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७१ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७२ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७३ ॥

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७५ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७६ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७६ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७७ ॥

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७७ ॥

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १७८ ॥

संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय एवं वैक्रियिक समुद्घातमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था ओघं ॥ १७९ ॥

संज्ञी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७९ ॥

असण्णीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो ॥ १८० ॥

असंज्ञी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १८० ॥

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १८१ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ १८२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८२ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स

असंखेज्जदिभागो ॥ १८३ ॥

आहारक जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८३

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १८४ ॥

अनाहारक जीवोंमें जिन गुणस्थानोंकी सम्भावना है उन गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र कार्मणकाययोगियोंके स्पर्शनक्षेत्रके समान है ॥ १८४ ॥

णवरि विसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १८५ ॥

विशेष बात यह है कि अयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८५ ॥

॥ इस प्रकार स्पर्शानुगम समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

५. कालाणुगमो

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है— ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

काल चार प्रकारका है— नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल और भावकाल। उनमें 'काल' यह शब्द नामकाल कहा जाता है। 'वह यह है' इस प्रकारसे बुद्धिके द्वारा अन्य वस्तुमें अन्यका आरोपण करना स्थापना है। वह स्थापना सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमें कालका अनुकरण करनेवाली किसी एक वस्तुमें अनुकरण करनेवाले विवक्षित कालका बुद्धिके द्वारा आरोप करना, यह सद्भावस्थापनाकाल है। जैसे— अंकुरों, पल्लवों एवं पुष्पों आदिसे परिपूर्ण और कोयलोंके मधुर आलापसे संयुक्त चित्रगत वसन्तकाल। उससे भिन्न (विपरीत) असद्भावस्थापना-काल जानना चाहिये। जैसे— मणिविशेष, गेरुक, मिट्टी और ठीकरा आदिमें 'यह वसंत है' इस प्रकार बुद्धिके बलसे किया जानेवाला वसन्तका आरोप।

आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है। कालविषयक प्राभृतका ज्ञायक, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यकाल है। नोआगमद्रव्यकाल ज्ञायक-शरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें ज्ञायकशरीर-नोआगमद्रव्यकाल भावी, वर्तमान और समुज्झित भेदसे तीन प्रकारका है। जो जीव भविष्यमें कालप्राभृतका ज्ञायक होगा उसे भावी नोआगमद्रव्यकाल कहते हैं। जो अमूर्तिक होकर कुम्भकारके चक्रकी अधस्तन कीलके समान वर्तना स्वभाववाला है ऐसे लोकाकाश प्रमाण पदार्थको तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य-काल कहते हैं।

भावकाल आगमभावकाल और नोआगमभावकालके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें जो जीव कालप्राभृतका ज्ञाता होकर वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे सहित है उसको आगमभावकाल तथा द्रव्यकालसे उत्पन्न परिणामको नोआगमभावकाल कहा जाता है। इन कालभेदोंमेंसे यहां नोआगमभावकालको अधिकार प्राप्त समझना चाहिये जो कि समय, आवली क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, एवं मास आदिरूप है।

ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २ ॥

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २ ॥

अभिप्राय यह है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव सर्व काल पाये जाते हैं—

उनका कभी अभाव नहीं होता है ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो– जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल तीन प्रकारका है– अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमें जो सादि-सान्त काल है उसका निर्देश इस प्रकार है– एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका वह सादि-सान्त काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ ३ ॥

यहां एक जीवकी अपेक्षा जो अनादि-अनन्त काल कहा गया है उसे अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवकी अपेक्षा समझना चाहिये । कारण यह कि अभव्य जीवके मिथ्यात्वका न आदि है, न मध्य है, और न अन्त भी कभी उसका होता है । भव्य मिथ्यादृष्टि (जैसे वर्धनकुमार) का काल अनादि होकर भी सान्त है, क्योंकि, वह मिथ्यात्वभावसे रहित होकर मुक्तिको प्राप्त करनेवाला है । कृष्ण आदिके समान किसी किसी भव्य मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वका वह काल सादि-सान्त भी होता है, जो जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र है । उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहांपर वह सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको, असंयमके साथ सम्यक्त्वको, संयमासंयमको अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । ऐसे जीवके मिथ्यात्वका वह काल जघन्यरूपसे सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त मात्र पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिका मिथ्यात्वको प्राप्त होकर परिणामोंकी अतिशय संक्लेशताके कारण मिथ्यात्वको शीघ्रतासे छोड़ना सम्भव नहीं है ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका वह सादि-सान्त काल उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन मात्र है ॥ ४ ॥

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ ॥ ५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते हैं ॥ ५ ॥

इस एक समयकी प्ररूपणा इस प्रकार है– दो, अथवा तीन, इस प्रकार एक एक अधिक क्रमसे बढ़ते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय मात्र कालके अवशिष्ट रह जानेपर एक साथ सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और एक समय वहां रहकर दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये । उस समय तीनों ही लोकोंमें

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अभाव हो गया। इस प्रकार एक समय प्रमाण सासादन गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ६ ॥

दो, तीन अथवा चार इस प्रकार एक एक अधिक बढ़ते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छह आवलि प्रमाण उपशम-सम्यक्त्वके कालमें शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते हैं तब तक अन्य अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते रहे। इस प्रकार उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक जीवोंसे परिपूर्ण होकर सासादन गुणस्थान पाया जाता है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ ७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल एक समय मात्र है ॥ ७ ॥

एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशिष्ट रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और एक समय मात्र उस सासादन गुणस्थानके साथ रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार सासादन गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय प्रमाण उपलब्ध हो जाता है।

उक्कस्सेण छ आवलिआओ ॥ ८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल छह आवली प्रमाण है ॥ ८ ॥

एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर वहां छह आवली काल तक रहा और फिर मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टिका छह आवली प्रमाण वह उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है। इससे अधिक काल प्राप्त न होनेका कारण यह है कि उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंसे अधिक कालके शेष रहनेपर जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है।

सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त होते हैं ॥ ९ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ १० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११ ॥

कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहकर विशुद्ध होता हुआ असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है। अथवा संक्लेशको प्राप्त हुआ कोई वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहांपर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके संक्लेशके नष्ट हुए बिना ही मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार भी सम्यग्मिथ्यात्वका यह जघन्य काल प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२ ॥

विशुद्धिको प्राप्त होनेवाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर संक्लेशयुक्त होता हुआ मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपलब्ध हो जाता है। पूर्वनिर्दिष्ट इस गुणस्थानके जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालसे यह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल संख्यातगुणा है। अथवा, संक्लेशको प्राप्त होनेवाला कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकारसे भी सम्यग्मिथ्यादृष्टिका वह उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३ ॥

इसका कारण यह है कि अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों ही कालोंमें कभी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव नहीं होता।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

जिसने पहले असंयमसहित सम्यक्त्वमें बहुत बार परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोह कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। वहांपर वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मिथ्यात्वको,

सम्यग्मिथ्यात्वको, संयमासंयमको अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है ॥

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत अथवा चारों उपशामकोंमेंसे कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु कर्मकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर वहांसे च्युत होकर वह पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहां अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुके शेष रह जाने तक असंयतसम्यग्दृष्टि ही रहा। तत्पश्चात् अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें सहस्रों परिवर्तन करके (२) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (३)। पुनः अपूर्वकरण क्षपक (४) अनिवृत्तिकरण क्षपक (५) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६) क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ (७) सयोगिकेवली (८) और अयोगिकेवली (९) हो करके सिद्ध हो गया। इस प्रकार इन नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम और पूर्वकोटि वर्षसे अधिक तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल हो जाता है।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १६ ॥

संयतासंयत जीव कितने काल होते हैं। नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥१६॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ १७ ॥

जिसने पहले भी बहुत बार संयमासंयम गुणस्थानमें परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोह कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा प्रमत्तसंयत जीव पुनः परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त हुआ। वहांपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे संयतासंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है तो मिथ्यात्वको, सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। परन्तु यदि वह संयतासंयत होनेके पूर्व मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि रहा है तो वह अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार संयतासंयत गुणस्थानका सूत्रोक्त जघन्य काल प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है ॥ १८ ॥

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि

जीव संज्ञी, पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक ऐसे संमूर्छन जन्मवाले मत्स्य, कछुआ व मेंढक आदि तिर्यंच जीवोंमें उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ (१)। पुनः विश्राम लेता हुआ (२) विशुद्ध हो करके (३) संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहांपर वह पूर्वकोटि काल तक संयमासंयमको पालन करके मरा और सौधर्म कल्पको आदि लेकर आरण-अच्युत पर्यन्त कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न हुआ। तब वहां संयमासंयम नष्ट हो गया। इस प्रकार आदिके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि प्रमाण संयमासंयमका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥१९॥

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका जघन्य काल एक समय है ॥२०॥

प्रमत्तसंयतका वह एक समय इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तकालके क्षीण हो जानेपर तथा एक समय मात्र जीवितके शेष रहनेपर प्रमत्तसंयत हो गया तथा एक समय प्रमत्तसंयत रहकर दूसरे समयमें मरा और देव हो गया। तब प्रमाद विशिष्ट संयम नष्ट हो गया। इस प्रकारसे प्रमत्तसंयमका सूत्रोक्त एक समय मात्र काल प्राप्त हो जाता है।

अप्रमत्तसंयतका वह एक समय इस प्रकारसे प्राप्त होता है: एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्त कालके क्षीण हो जानेपर तथा एक समय मात्र जीवनके शेष रह जानेपर अप्रमत्तसंयत हो गया। फिर वह अप्रमत्तसंयत गुणस्थानके साथ एक समय रह कर दूसरे समयमें मरा और देव हो गया। तब उसका अप्रमत्तसंयत गुणस्थान नष्ट हो गया। अथवा, उपशमश्रेणीसे उतरता हुआ कोई एक अपूर्वकरण संयत एक समय मात्र जीवनके शेष रहनेपर अप्रमत्तसंयत हुआ और द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो गया। इस तरह दो प्रकारसे अप्रमत्तसंयतका वह जघन्य काल एक समय मात्र पाया जाता है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१ ॥

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१ ॥

प्रमत्तसंयतका वह उत्कृष्ट काल इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत प्रमत्तसंयत पर्यायसे परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण प्रमत्तसंयत रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। अप्रमत्तसंयतका वह उत्कृष्ट काल इस प्रकारसे प्राप्त होता है— एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर और वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकारसे उसका वह उत्कृष्ट काल उपलब्ध हो जाता है।

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२ ॥

चारों उपशामक जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२ ॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले दो अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समय मात्र जीवनके शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए। पश्चात् एक समय मात्र उस अपूर्वकरण गुणस्थानके साथ रहकर द्वितीय समयमें मरे और देव हो गये। इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकका यह एक समय प्रमाण जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंके भी एक समयकी प्ररूपणा नाना जीवोंके आश्रयसे करना चाहिये। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोंके एक समयकी प्ररूपणा तो उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए जीवोंका आश्रय करके दोनों प्रकारोंसे भी करना चाहिये। किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकके उस एक समयकी प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवोंके ही आश्रयसे करनी चाहिये।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३ ॥

सात आठसे लेकर चौवन तक अप्रमत्तसंयत जीव एक साथ अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए। जब तक वे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको नहीं प्राप्त होते हैं तब तक अन्य अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होते गये। इसी प्रकारसे उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशामकोंको भी अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त कराना चाहिये। इस प्रकार चढ़ते और उतरते हुए अपूर्वकरण उपशामक जीवोंसे शून्य न होकर अपूर्वकरण गुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है। इसके पश्चात् निश्चयसे उसका अभाव हो जाता है। इसी प्रकारसे अन्य तीनों उपशामकोंके भी प्रकृत उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करना चाहिये। विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामकके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करते समय एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जब तक उतरता नहीं है तब तक अन्य अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंके लिये उपशान्तकषाय गुणस्थानको चढ़ाना चाहिये। इस प्रकारसे पुनः पुनः संख्यात वार जीवोंको चढ़ाकर उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालके प्राप्त होने तक उपशान्तकाल बढ़ाना चाहिये।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल एक समय मात्र है ॥ २४ ॥

एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समय मात्र जीवनके शेष रहनेपर अपूर्वकरण उपशामक हुआ और एक समय अपूर्वकरण उपशामक रहकर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त होता हुआ

उत्तम जातिका देव हो गया। इस प्रकारसे उसका एक समय मात्र जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंके भी एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामकोंके चढ़ने और उतरने इन दोनों ही प्रकारोंसे तथा उपशान्तकषाय उपशामकके एक ही प्रकार (उतरते हुए) से एक समयकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

यथा-- एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुआ। वहांपर वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार यह एक जीवकी अपेक्षा अपूर्वकरणका वह उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकारसे अन्य तीनों उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ २६ ॥

सात आठ जन अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तकालके बीत जानेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए और वहांपर अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये। इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अपूर्वकरण क्षपकोंका वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषाय क्षपक तथा अयोगिकेवलियोंका भी जघन्य काल जानना चाहिये।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों क्षपकों और अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

सात आठ अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए और वहांपर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हो गये। उसी समय अन्य अप्रमत्त संयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकार पुनः पुनः संख्यात बार आरोहण क्रियाके चालू रहनेपर नाना जीवोंका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकोंका वह उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकारसे शेष तीन क्षपकों और अयोगिकेवलियोंके भी प्रकृत कालकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकों और अयोगिकेवलियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुआ और वहां अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गया। इस प्रकार अपूर्वकरण क्षपकका एक जीवकी अपेक्षा प्रकृत जघन्य काल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकारसे शेष तीन क्षपकों और अयोगिकेवलीके भी जघन्य कालकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकों और अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ। वहांपर वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह एक जीवका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकका उत्कृष्ट काल हुआ। इसी प्रकारसे शेष तीन क्षपकों और अयोगिकेवलियोंका काल जानना चाहिये। यहांपर जघन्य और उत्कृष्ट ये दोनों ही काल समान हैं, क्योंकि, प्रकृत अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टि सम्भव नहीं है।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३० ॥

सयोगिकेवली जिन कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३० ॥

कारण यह कि तीनों कालोंमें ऐसा एक भी समय नहीं है जब कि सयोगिकेवली जिन न पाये जावें। इसीलिये उनका यहां सर्व काल कहा गया है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१ ॥

कोई एक क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव सयोगिकेवली होकर वहां अन्तर्मुहूर्त काल रहा और तत्पश्चात् समुद्घात करके योगनिरोधपूर्वक अयोगिकेवली हो गया। इस प्रकारसे सयोगिकेवली जिनका एक जीवकी अपेक्षा सूत्रोक्त जघन्य काल उपलब्ध हो जाता है।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ ३२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है ॥

कोई एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वह सात मास गर्भमें रह करके गर्भमें प्रवेश करनेरूप जन्मदिनसे आठ वर्षका हो अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थान संबन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणको करके (३) क्रमशः अपूर्वकरण (४), अनिवृत्तिकरण (५), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६) और क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ होकर (७) सयोगिकेवली हुआ और फिर इस सयोगिकेवली अवस्थामें आठ वर्ष सात अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक पूर्व-कोटि काल पर्यन्त विहार करनेके पश्चात् अयोगिकेवली हो गया (८)। इस प्रकार आठ वर्ष और

आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल उपलब्ध हो जाता है।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४ ॥

वह इस प्रकारसे- जो पूर्वमें भी बहुत बार मिथ्यात्वको प्राप्त हो चुका है ऐसा एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संक्लेशको पूर्ण करके मिथ्यादृष्टि हो गया। वहांपर वह सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपलब्ध होता है।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ ३५ ॥

एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहांपर वह मिथ्यात्वके साथ तेतीस सागरोपम काल रहकर गत्यन्तरको प्राप्त हुआ। इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम उपलब्ध होता है।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंका नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ३६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३७ ॥

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नारकी असंयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३९ ॥

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ ३९ ॥

पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४० ॥

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ ४१ ॥

उक्कस्सेण सागरोवम तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥

उक्त सातों पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सतरह, बाईस और तेतीस सागरोपम प्रमाण है ॥ ४२ ॥

उनका यह उत्कृष्ट काल विवक्षित पृथिवीके नारक जीवोंकी उत्कृष्ट आयुके अनुसार समझना चाहिये ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४३ ॥

सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ४३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४४ ॥

सातों पृथिवियोंमें नारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सातों पृथिवियोंके नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४५ ॥

उक्कस्सं सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४६ ॥

सातों पृथियोंके नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ कम एक, तीन, सात, दस, सतरह, बाईस और तेतीस सागरोपम है ॥ ४६ ॥

यहां कुछ कमका प्रमाण प्रथम पृथिवीसे सातवीं पृथिवी तक पर्याप्तियोंकी पूर्णता, विश्राम और विशुद्धि सम्बन्धी तीन अन्तर्मुहूर्त तथा सातवीं पृथिवीमें छह (सूत्र ३९ के अनुसार) अन्तर्मुहूर्त समझना चाहिये ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४७ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४८ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ॥ ४९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण अनन्त काल है ॥ ४९ ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ५० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल ओघके समान है ॥ ५० ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥५१॥

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ५१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५२ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि ॥ ५३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम है ॥ ५३ ॥

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ५४ ॥

संयतासंयत तिर्यंच कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥

एक्कजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५५ ॥

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ ५६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ५७ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टि कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ५७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । ५८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि ॥ ५९ ॥

उक्त तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ५९ ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६० ॥

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ६० ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥६१॥

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ६३ ॥

उक्त तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्योपम, तीन पल्योपम और कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ६३ ॥

संजदासंजदा ओघं ॥ ६४ ॥

उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय संयतासंयत तिर्यंचोंका काल ओघके समान है ॥ ६४ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंका काल जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ ६६ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६७ ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो

होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६८ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ७० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उपर्युक्त तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम प्रमाण है ॥ ७० ॥

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७१ ॥

उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ७१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥

उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७३ ॥

उक्त तीन प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है ॥ ७३ ॥

उक्कस्सं छ आवलियाओ ॥ ७४ ॥

उक्त तीन प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल छह आवली प्रमाण है ॥ ७४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥

उक्त तीन प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ७५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७६ ॥

उक्त तीन प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७७ ॥

उक्त तीन प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७७ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७८ ॥

उक्त तीन प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ७९ ॥

उक्त तीन प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ७९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८० ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ८१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्योपम, साधिक तीन पल्योपम और कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ८१ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ८२ ॥

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक उक्त तीनों मनुष्योंका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ८२ ॥

ओघसे यहां इतनी विशेषता समझना चाहिये कि उक्त तीन प्रकारके मनुष्य संयतासंयतोंका उत्कृष्ट काल योनिनिष्क्रमणरूप जन्मसे लेकर आठ वर्षोंसे कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार तिर्यंच जीव उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें अणुव्रतोंको ग्रहण कर सकते हैं उस प्रकार उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें कोई भी मनुष्य अन्तर्मुहूर्तमें अणुव्रतोंको ग्रहण नहीं कर सकता है, किन्तु वह योनिनिष्क्रमणरूप जन्मसे आठ वर्षका हो जानेपर ही अणुव्रतोंको ग्रहण कर सकता है।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होते हैं ॥ ८३ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल नाना जीवोंकी अपेक्षा पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ८४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥८५॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८६ ॥

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल एक जीवकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८६ ॥

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ८७ ॥

देवगतिमें देवोमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ८७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८८ ॥

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ८९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल इकतीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९० ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ९१ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९२ ॥

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ९३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तेत[illegible] है ॥ ९३ ॥

भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु [illegible] असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ [illegible]

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देवों तक [illegible] असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते [illegible]

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९५ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं बे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९६ ॥

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे साधिक एक सागरोपम, साधिक एक पल्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दस सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह सागरोपम है ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९७ ॥

भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९७ ॥

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ९८ ॥

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक तक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि देव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ९८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उपर्युक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९९ ॥

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कतीसं सागरोवमाणि ॥ १०० ॥

उक्त विमानवासी देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम है ॥ १०० ॥

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १०१ ॥

उक्त ग्यारह स्थानोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ १०१ ॥

अणुद्दिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवेसु असंजद-सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०२ ॥

अनुदिशविमानवासी देवोंमें तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन अनुत्तर विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल

होते हैं ॥ १०२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कतीसं बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥१०३॥

नौ अनुदिश विमानोंमें एक जीवकी अपेक्षा उक्त देवोंका जघन्य काल साधिक इकतीस सागरोपम और चार अनुत्तर विमानोंमें साधिक बत्तीस सागरोपम है ॥ १०३ ॥

इन विमानोंमें गुणस्थानपरिवर्तन नहीं है, क्योंकि, वहां एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके सिवाय अन्य किसी भी गुणस्थानकी सम्भावना नहीं है। यहांपर साधिकताका प्रमाण एक समय मात्र समझना चाहिये, क्योंकि, अधस्तन विमानवासी देवोंकी एक समय अधिक उत्कृष्ट स्थिति ही ऊपरके विमानवासी देवोंकी जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्यपरंपरागत उपदेश है।

उक्कस्सेण बत्तीस तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०४ ॥

उक्त विमानोंमें उनका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बत्तीस सागरोपम और तेत्तीस सागरोपम है ॥ १०४ ॥

अधस्तन नौ अनुदिश विमानोंमें पूरे बत्तीस सागरोपम प्रमाण तथा चारों अनुत्तर विमानोंमें पूरे तेत्तीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट काल है।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०५ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०६ ॥

सर्वार्थसिद्धिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोपम है ॥ १०६ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १०८ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १०९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनस्वरूप अनन्त काल है ॥ १०९ ॥

बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११० ॥

बादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १११ ॥

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥१११॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है ॥ ११२ ॥

बादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥११३

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ११३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥११४॥

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ११५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ११६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ ११७ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११८ ॥

सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११९ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १२० ॥

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १२१ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है ॥ १२१ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥१२२॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १२२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२४ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२४ ॥

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥१२५

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १२५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १२६ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२७ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२७ ॥

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२८ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥१२८॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण मात्र तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका वह जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥ १२९ ॥

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १३० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष मात्र है ॥ १३० ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३१ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १३२ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३३ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३३ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३४ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥ १३५ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवम-सदपुधत्तं ॥ १३६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक हजार सागरोपम और सागरोपमशतपृथक्त्व प्रमाण है ॥ १३६ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १३७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक उपर्युक्त पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १३७ ॥

पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १३८ ॥

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कालके समान है ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३९ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक और वायुकायिक जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १४० ॥

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १४१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है ॥ १४१ ॥

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४२ ॥

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १४२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १४३ ॥

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ १४४ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है ॥ १४४ ॥

यहांपर कर्मस्थितिसे दर्शनमोहकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको ग्रहण करना चाहिये ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४५ ॥

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १४५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४६ ॥

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १४७ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १४७ ॥

उनमें शुद्ध पृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण बारह हजार (१२०००) वर्ष, खर पृथिवीकायिक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण बाईस हजार (२२०००) वर्ष, जलकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण सात हजार (७०००) वर्ष, अग्निकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन (३) दिवस, वायुकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन हजार (३०००) वर्ष और वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण दस हजार (१००००) वर्ष है। इन आयुस्थितियोंमें लगातार संख्यात हजार बार उत्पन्न होनेपर संख्यात हजार वर्ष हो जाते हैं। जैसे– एक अविवक्षित कायवाला जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ, तत्पश्चात् वह उसी कायवाले जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष तक परिभ्रमण करता हुआ अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया। इस प्रकार विवक्षित कायवाले जीवका उत्कृष्ट काल समझना चाहिये।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥१४८

बादर पृथिवीकायिक लब्ध्यपर्याप्तक, बादर जलकायिक लब्ध्यपर्याप्तक, बादर तेजकायिक लब्ध्यपर्याप्तक, बादर वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर लब्ध्यपर्याप्तक

जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १४८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १४९ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५० ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५० ॥

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥

सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म निगोद जीव और उनके ही पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका काल सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्तोंके कालके समान है ॥ १५१ ॥

वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो ॥ १५२ ॥

वनस्पतिकायिक जीवोंका काल एकेन्द्रिय जीवोंके कालके समान है ॥ १५२ ॥

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १५३ ॥

निगोद जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥१५३॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १५४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा निगोद जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १५४ ॥

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जादो पोग्गलपरियट्टं ॥ १५५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ॥१५५॥

बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ १५६ ॥

बादर निगोद जीवोंका काल बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है ॥ १५६ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १५७ ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १५७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५८ ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि ॥ १५९ ॥

त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपम प्रमाण है ॥ १५९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १६० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक उक्त त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १६० ॥

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १६१ ॥

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तकोंका काल पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान हैं ॥ १६१ ॥

जोगाणुवादेण पचमणजोगिपंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १६२ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १६२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६३ ॥

यहां पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि एवं असंयतसम्यग्दृष्टि आदि उक्त छह गुणस्थानवर्ती जीवोंके एक समय मात्र जघन्य कालका जो निर्देश किया गया है वह योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन, मरण और व्याघातकी अपेक्षासे समझना चाहिये। यथा योगपरिवर्तनकी अपेक्षा— कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीव मनोयोगके साथ अवस्थित था। उसके मनोयोगकालके एक समय मात्र अवशिष्ट रहनेपर वह उस मनोयोगके साथ मिथ्यादृष्टि हो गया। तत्पश्चात् वह मिथ्यादृष्टि ही रहकर वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया। इस प्रकार योगपरिवर्तनकी अपेक्षा मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीवका एक समय मात्र जघन्य काल उपलब्ध हो जाता है। गुणस्थान-परिवर्तनकी अपेक्षा— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग अथवा काययोगके साथ स्थित था। उसके इन योगोंके कालके क्षीण होनेपर वह मनोयोगी हो गया और एक समय मात्र मिथ्यात्वके साथ मनोयोगी रहकर द्वितीय समयमें वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयमके साथ सम्यग्दृष्टि या संयतासंयत अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयत हो गया, इस प्रकार गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा मनोयोगी मिथ्यादृष्टिका एक समय मात्र जघन्य काल उपलब्ध हो जाता है।

कोई एक मिथ्यादृष्टि वचनयोग अथवा काययोगके साथ स्थित था। उसके इन योगोंके कालके क्षीण हो जानेपर वह मनोयोगी हो गया तथा उस मनोयोगके साथ एक समय मिथ्यादृष्टि

रहकर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त होता हुआ यदि तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न होता है तो कार्मण-काययोगी अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो जाता है, और यदि देवों या नारकियोंमें उत्पन्न होता है तो कार्मणकाययोगी या वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हो जाता है। इस प्रकार मरणकी अपेक्षा मनोयोगी मिथ्यादृष्टिका सूत्रोक्त जघन्य काल उपलब्ध होता है।

कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग अथवा काययोगके साथ अवस्थित था। उसके इन योगोंका विनाश हो जानेपर वह मनोयोगी हो गया और एक समय उस मनोयोगके साथ मिथ्यादृष्टि ही रहा। पश्चात् द्वितीय समयमें वह व्याघातको प्राप्त होकर काययोगी हो गया और मिथ्यादृष्टि ही रहा। इस प्रकार व्याघातकी अपेक्षा मनोयोगी मिथ्यादृष्टिका एक समय मात्र जघन्य काल उपलब्ध होता है। इसी प्रकार सूत्रोक्त पांच मनोयोगों और पांच मनोयोगोंमें किसी भी योगकी विवक्षासे मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलीके एक समय मात्र जघन्य कालको भी यथासम्भव समझना चाहिये। इतना विशेष जानना चाहिये कि अप्रमत्तसंयतके व्याघातकी सम्भावना नहीं है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पांचों मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ १६५ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समय मात्र होते हैं ॥ १६६ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६७ ॥

उक्त पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ १६७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६८ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६९ ॥

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

यह एक समय प्रमाण जघन्य काल चारों उपशामकोंके व्याघातके विना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा तथा चारों क्षपकोंके मरण व व्याघातके विना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा जानना चाहिये।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १७४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७५ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ॥ १७६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्त कालस्वरूप असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १७६ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ॥ १७७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काययोगियोंका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ १७७ ॥

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १७८ ॥

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १७८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है ॥

उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है ॥१८०॥

एक तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव बाईस हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त कालमें पर्याप्त हुआ। पश्चात् वह औदारिकशरीरके अपर्याप्तकालसे कम बाईस हजार वर्ष तक औदारिककाययोगके साथ रह करके पुनः अन्य योगको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष प्रमाण औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल उपलब्ध हो जाता है।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ॥ १८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियोंका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ १८१ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १८२ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १८२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ १८३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ १८३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८४ ॥

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १८५ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८६ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १८७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १८७ ॥

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ १८८ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवली प्रमाण है ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ १८९ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ १९० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ १९१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ १९२ ॥

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १९३ ॥

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ १९४ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ १९४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ॥ १९५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय मात्र है ॥ १९५ ॥

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १९६ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १९६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १९७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १९७ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९८ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १९९ ॥

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १९९ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो ॥ २०० ॥

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २०० ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०१ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ २०१ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०२ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ २०२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०४ ॥

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०५ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०५ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ २०६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २०७ ॥

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ २०८ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवली प्रमाण है ॥ २०८ ॥

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०९ ॥

आहारकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०९ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१० ॥

आहारकायजोगी प्रमत्तसंयतोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ २११ ॥

एक जीवकी अपेक्षा आहारकाययोगी जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २११ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१२ ॥

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१३ ॥

आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ २१३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१४ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा आहारमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २१७ ॥

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २१७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २१८ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२० ॥

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२० ॥

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २२१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २२२ ॥

उक्कस्सेण वे समयं ॥ २२३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल दो समय है ॥ २२३ ॥

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णिसमयं ॥

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय होते हैं ॥ २२४ ॥

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ २२५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णिसमयं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय मात्र है ॥ २२६ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २२७ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २२७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २२८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२८ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ २२९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ २२९ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २३० ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३० ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २३१ ॥

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥२३२॥

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २३२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ २३४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ (तीन अन्तर्मुहूर्त) कम पचपन पल्योपम प्रमाण है ॥ २३४ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २३५ ॥

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३५ ॥

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २३६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३७ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २३८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २३८ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २३९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३९ ॥

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४१ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २४२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ॥ २४२ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २४३ ॥

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २४४ ॥

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥२४५

नपुंसक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २४७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम (छह अन्तर्मुहूर्त कम) तेतीस सागरोपम है ॥ २४७ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २४८ ॥

संयतासंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४८ ॥

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ २४९ ॥

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४९ ॥

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो ॥ २५० ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तकका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २५० ॥

दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण

एगसमयं ॥ २५१ ॥

क्रोध, मान और माया इन तीन कषायोंकी अपेक्षा आठवें और नौवें गुणस्थानवर्ती दो उपशामक जीव तथा लोभकषायकी अपेक्षा आठवें, नौवें और दसवें गुणस्थानवर्ती तीन उपशामक जीव कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २५१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है जो मरणकी अपेक्षा उपलब्ध होता है ॥ २५३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५४ ॥

इसका कारण यह है कि कषायोंका उदय अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रहता है, इसके पश्चात् नियमसे वह नष्ट हो जाता है।

दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५५ ॥

क्षपकोंमें क्रोध, मान और माया कषायवाले अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण इन दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा लोभकषायसे संयुक्त अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५६ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त क्षपक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५७ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५८ ॥

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ २५९ ॥

अकषायी जीवोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २५९ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २६० ॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके

समान है ॥ २६० ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६१ ॥

मत्यज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥२६१॥

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २६२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २६४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २६४ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६५ ॥

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६५ ॥

आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ २६६ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६६ ॥

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ २६७ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६७ ॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ २६८ ॥

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंके कालकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६८ ॥

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥२६९

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली तक सामान्यसे संयत जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६९ ॥

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण

गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २७० ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ २७१ ॥

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७१

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७२ ॥

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ २७३ ॥

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका काल ओघके समान है ॥

संजदासंजदा ओघं ॥ २७४ ॥

संयतासंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७४ ॥

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ २७५ ॥

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक असंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७५ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २७६ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २७६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७७ ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि ॥ २७८ ॥

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल दो हजार सागरोपम है ॥ २७८ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥२७९

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७९ ॥

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ २८० ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २८० ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८१ ॥

अवधिदर्शनी जीवोंका काल अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८१ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८२ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका काल केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८२ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २८३ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कपोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २८३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २८५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक (दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक) तेतीस सागरोपम, साधिक सत्तरह सागरोपम और साधिक सात सागरोपम प्रमाण है ॥ २८५ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २८६ ॥

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है॥२८६

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २८७ ॥

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥२८७॥

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २८८

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २८८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन अशुभ लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८९ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २९० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ २९० ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २९१ ॥

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २९१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९२ ॥

उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २९३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक दो सागरोपम और पद्मलेश्यावाले उन्हींका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक अठारह सागरोपम है ॥ २९३ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २९४ ॥

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २९५ ॥

उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९५ ॥

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २९६ ॥

उक्त दोनों लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २९६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २९७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा दोनों लेश्यावाले उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २९७

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ २९८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९८ ॥

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २९९ ॥

शुक्लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २९९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक (एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक) इकतीस सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०२ ॥

शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०२ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३०३ ॥

शुक्ललेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०४ ॥

शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०४ ॥

संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०५ ॥

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३०५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा शुक्ललेश्यावाले उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३०६ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा शुक्ललेश्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०७ ॥

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ॥ ३०८ ॥

शुक्ललेश्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलियोंका काल ओघके समान है ॥ ३०८ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०९ ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३०९ ॥

एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो ॥ ३१० ॥

एक जीवकी अपेक्षा भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टियोंका काल अनादि-सान्त और सादि-सान्त है॥

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो ॥ ३११ ॥

इनमें जो सादि-सान्त काल है उसका निर्देश इस प्रकार है ॥ ३११ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

उनके उस सादि-सान्त मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ३१३ ॥

उन्हींके उस सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ३१३

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ३१४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक उक्त भव्यसिद्धिक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३१५ ॥

अभव्यसिद्धिक जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ ३१६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अभव्यसिद्धिक जीवोंका काल अनादि-अनन्त है ॥ ३१६ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ३१७ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ ३१७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ ३१८ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१९ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ३१९ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंका उत्कृष्ट काल नाना जीवोंकी अपेक्षा पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ३२० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ३२३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२४ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३२५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२६ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३२७ ॥ सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३२८ ॥ मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३२९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२७ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२८ ॥ मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२९ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३० ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३१ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ३३२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र है ॥ ३३२ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ ३३३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक संज्ञियोंकी काल-प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३३ ॥

असण्णी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३४ ॥

असंज्ञी जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३३५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ॥ ३३५ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ३३६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञियोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ॥ ३३६ ॥

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३७ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३३९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है ॥ ३३९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ३४० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक आहारकोंका काल ओघके समान है ॥ ३४० ॥

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ ३४१ ॥

अनाहारक जीवोंका काल कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३४१ ॥

अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४२ ॥

अनाहारक अयोगिकेवली जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३४२ ॥

॥ कालाणुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

---

६. अंतराणुगमो

अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे अन्तर छह प्रकारका है। उनमें बाह्य अर्थोंको छोड़कर अपने आपमें प्रवृत्त होनेवाला 'अन्तर' यह शब्द नाम-अन्तर है। स्थापना-अन्तर सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है। भरत और बाहुबलीके बीच उमड़ता हुआ नद सद्भावस्थापना-अन्तर है। 'अन्तर' इस प्रकारकी बुद्धिसे संकल्पित दण्ड, बाण व धनुष आदिका नाम असद्भावस्थापना-अन्तर है।

द्रव्य-अन्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें अन्तरविषयक प्राभृतके ज्ञायक तथा वर्तमानमें तद्विपयक उपयोगसे रहित जीवको आगमद्रव्य-अन्तर कहते हैं। नोआगमद्रव्य-अन्तर ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमें ज्ञायक-शरीर भी भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य-अन्तर सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमेंसे वृषभ जिन और सम्भव जिनके मध्यमें स्थित अजित जिन सचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्य-अन्तर है। घनोदधि और तनुवातके मध्यमें स्थित घनवात अचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्य-अन्तर है। ऊर्जयन्त और शत्रुंजयके मध्यमें स्थित ग्राम व नगरादिक मिश्र तद्व्यतिरिक्त द्रव्य-अन्तर है।

भाव-अन्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। अन्तर-प्राभृतके ज्ञायक और वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे सहित जीवको आगमभाव-अन्तर कहते हैं। औदयिक आदि पांच भावोंमेंसे किन्हीं दो भावोंके मध्यमें स्थित विवक्षित भावको नोआगम भाव-अन्तर कहते हैं। यहांपर इसी नोआगम भाव-अन्तरसे प्रयोजन है। उसमें भी अजीवभाव-अन्तरको छोड़कर जीवभाव-अन्तर ही प्रकृत है, क्योंकि, यहांपर अजीवभाव-अन्तरसे कोई प्रयोजन नहीं है। अन्तर, उच्छेद, विरह और परिणामान्तरगमन ये सब समानार्थक शब्द हैं। इस प्रकारके अन्तरके अनुगमको अन्तरानुगम कहते हैं।

ओघेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २ ॥

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २ ॥

अन्तरका प्रतिषेध करनेपर वह प्रतिषेध तुच्छ अभावरूप नहीं होता है, किन्तु भावान्तरके सद्भावरूप होता है; इस अभिप्रायको प्रगट करनेके लिये निरन्तर पदको ग्रहण किया है। अभिप्राय यह हुआ कि मिथ्यादृष्टि जीव सर्व काल रहते हैं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ ३ ॥

एक मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयमसे बहुत बार परिणत होता हुआ परिणामोंके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वहांपर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल सम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिका अन्तर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरोपम प्रमाण है ॥ ४ ॥

कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थितिवाले लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां वह एक सागरोपम काल बिताकर दूसरे सागरोपमके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तथा वहांपर तेरह सागरोपम काल रहकर सम्यक्त्वके साथ ही च्युत होता हुआ मनुष्य हो गया। उस मनुष्यभवमें संयम अथवा संयमासंयमका पालन कर उस मनुष्यभव संबन्धी आयुसे कम बाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण-अच्युत कल्पके देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभवमें संयमका पालन कर उपरिम ग्रैवेयकवासी देवोंमें मनुष्यायुसे कम इकतीस सागरोपम आयुवाले अहमिन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांपर अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागरोपम कालके अन्तिम समयमें परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और उस सम्यग्मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होकर विश्राम ले च्युत हुआ तथा मनुष्य हो गया। उस मनुष्यभवमें संयम अथवा संयमासंयमका परिपालन कर मनुष्यभव संबन्धी आयुसे कम बीस सागरोपम आयुवाले आनत-प्राणत कल्पके देवोंमें उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस और चौबीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ (१३ + २२ + ३१ = ६६; २० + २२ + २४ = ६६) सागरोपम काल प्रमाण वह अन्तर प्राप्त हो जाता है। अन्तरकालकी सिद्धिके निमित्त यह ऊपर कहा गया उत्पत्तिका क्रम साधारण जनोंको समझानेके लिये है। वास्तवमें तो जिस किसी भी प्रकारसे उस कालको पूरा किया जा सकता है।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे वह एक समय मात्र होता है ॥ ५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर— दो जीवोंको आदि करके एक एक अधिकताके क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके अधिकसे अधिक छह आवली कालके अवशेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। जितना काल शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वको छोड़ा था उतने काल प्रमाण सासादन गुणस्थानमें रहकर वे सब जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार तीनों ही लोकोंमें सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका एक समयके लिए अभाव हो गया। पुनः द्वितीय समयमें अन्य सात, आठ अथवा आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र, अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार सासादन गुणस्थानका एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर इस प्रकार है— सात, आठ अथवा बहुत-से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्व संबन्धी कालके क्षीण हो जानेपर सम्यक्त्वको अथवा मिथ्यात्वको सबके सब प्राप्त हो गये। तब तीनों ही लोकोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक समयके लिए अभाव हो गया। तत्पश्चात् अनन्तर समयमें ही सात, आठ अथवा बहुत-से मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये। इस प्रकारसे नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय मात्र जघन्य अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६ ॥

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल नाना जीवोंकी अपेक्षा पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर— सात आठ अथवा बहुत-से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस क्रमसे उन सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा आय और व्ययके क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक सासादन गुणस्थानका प्रवाह निरन्तर चलता रहा। पश्चात् अनन्तर समयमें वे सभी जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये। तब पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक सासादन गुणस्थान किसीके भी नहीं रहा। पुनः इस पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें ही सात आठ अथवा बहुत-से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उक्त सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो गये। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर-- नाना जीवोंके उत्कृष्ट अन्तरके योग्य सम्यग्मिथ्यात्व-कालके बीत जानेपर सभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें मोह कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर-- उपशमसम्यक्त्वसे पीछे लौटा हुआ कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कुछ काल तक सासादन गुणस्थानमें रहा और फिर मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र कालमें फिरसे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता हुआ उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली कालके अवशेष रहनेपर वह सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादन गुणस्थानका अन्तरकाल उपलब्ध हो जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर-- एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण वह अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है ॥ ८ ॥

सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर-- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अधःप्रवृत्तादि तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको अर्ध पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण किया। पुनः अन्तर्मुहूर्त काल सम्यक्त्वके साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। (१) पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होता हुआ अन्तरको प्राप्त हुआ और कुछ कम अर्ध पुद्गल-परिवर्तन काल तक मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके संसारके अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् वह फिरसे मिथ्यादृष्टि हुआ। (२) पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर (३) अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन (४) और दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ। (६) पुनः

प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें हजारों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (११), क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ (१२) सयोगकेवली (१३) और अयोगकेवली (१४) हो करके सिद्ध हो गया। इस प्रकारसे एक समय अधिक चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिका वह उत्कृष्ट अन्तर-- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण किया और उसके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र कर दिया। फिर वह उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (२)। पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हो गया। पश्चात् अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल प्रमाण परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वहांपर अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना करके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे वह अन्तर उपलब्ध हो गया (३)। तत्पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षपण करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान संबन्धी हजारों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (८), अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११), क्षीणकषाय (१२), सयोगकेवली (१३) और अयोगकेवली (१४) हो करके सिद्धपदको प्राप्त हो गया। इस प्रकार इन चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको आदि लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन असंयतसम्यग्दृष्टि आदिका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर - कोई एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहांपर अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और अन्तरको प्राप्त होकर पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकारसे वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। संयतासंयतका अन्तर - एक संयतासंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अथवा संयत हुआ और अन्तर्मुहूर्त काल वहांपर रहकर

अन्तरको प्राप्त हो पुनः संयमासंयमको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे संयतासंयतका सूत्रोक्त अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है। प्रमत्तसंयतका अन्तर– एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्त-संयत होकर सर्वलघु कालमें फिरसे प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतका अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है। अप्रमत्तसंयतका अन्तर– एक अप्रमत्तसंयत जीव उपशम-श्रेणीपर चढ़कर वहांसे लौटा और फिरसे अप्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकारसे अप्रमत्तसंयतका अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हो जाता है।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ११ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ॥ ११ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए अनन्त संसारको छेदकर उसे सम्यक्त्व ग्रहण करनेके पहले समयमें अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र किया। पुनः वह उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त काल रहकर (१) उसके कालमें छह आवली मात्र कालके अवशेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वके साथ अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम भवमें संयम अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी होकर अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण संसारके शेष रह जानेपर परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया (२)। पुनः अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानोंमें हजारों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरण क्षपक (६), अनिवृत्तिकरण क्षपक (७), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (८), क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ (९), सयोगकेवली (१०) और अयोगकेवली (११) हो कर निर्वाणको प्राप्त हो गया। इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वह उत्कृष्ट अन्तर इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल होता है। इसी प्रकारसे अपनी अपनी कुछ विशेषताके साथ संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके भी इस उत्कृष्ट अन्तरको समझना चाहिये।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १२ ॥

चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ १२ ॥

सात आठ अथवा बहुत-से जीव अपूर्वकरणउपशामककालके क्षीण हो जानेपर अनिवृत्ति-करण उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत होते हुए मरणको प्राप्त हो करके देव हुए। इस प्रकार एक समयके लिए अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत

अथवा उतरते हुए अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हो गए। इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अपूर्वकरण उपशामक गुणस्थानका एक समय प्रमाण जघन्य अन्तरकाल प्राप्त हो गया। इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण उपशामकोंका, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका और उपशान्तकषाय उपशामकोंका एक समय प्रमाण जघन्य अन्तर जानना चाहिए।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १३ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र है ॥

सात आठ अथवा बहुत-से अपूर्वकरण उपशामक जीव अनिवृत्तिकरण उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत हुए और मर करके देव हो गये। इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामक गुणस्थान उत्कृष्टरूपसे वर्षपृथक्त्वके लिए अन्तरको प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् वर्षपृथक्त्वकालके व्यतीत हो जानेपर सात आठ अथवा बहुत-से अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण उपशामक हो गये। इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकोंका वह वर्षपृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया। इसी प्रकार शेष अनिवृत्तिकरणादि तीनों उपशामकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण जानना चाहिए।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

एक अपूर्वकरण उपशामक जीव अनिवृत्तिकरण उपशामक, सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और उपशान्तकषाय उपशामक होकर फिरसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक होता हुआ अपूर्वकरण उपशामक हो गया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हुआ। अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुनः अपूर्वकरण उपशामक होनेके पूर्व तकके इन पांचों ही गुणस्थानोंके कालोंको एकत्र करनेपर भी वह काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है। इसी प्रकार एक जीवकी अपेक्षा शेष तीनों उपशामकोंका अन्तर जानना चाहिए।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ॥ १५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अपूर्वकरण गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करणोंको करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसारको छेदकर उसे अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अप्रमत्तसंयतके कालका पालन किया (१)। पीछे प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पुनः द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके (३) हजारों प्रमत्त-अप्रमत्त परावर्तनोंको करके (४) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो गया (५)। पुनः अपूर्वकरण (६), अनिवृत्तिकरण (७), सूक्ष्मसाम्पराय (८), उपशान्त-

कषाय (९), पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१०), अनिवृत्तिकरण (११), और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हो गया। (१२) पश्चात् नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ और कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल प्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम भवमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षय करके अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१३)। इस प्रकार अन्तर उपलब्ध हो गया। पुनः अनिवृत्तिकरण (१४), सूक्ष्मसाम्परायिक (१५) और उपशान्तकषाय उपशामक हो गया (१६)। पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्परायिक (१७), अनिवृत्तिकरण (१८), अपूर्वकरण (१९), अप्रमत्तसंयत (२०), प्रमत्तसंयत (२१), पुनः अप्रमत्तसंयत (२२), अपूर्वकरण क्षपक (२३), अनिवृत्तिकरण क्षपक (२४), सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (२५), क्षीणकषाय (२६), सयोगकेवली (२७) और अयोगकेवली (२८) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर अट्ठाईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र उपलब्ध होता है।

इसी प्रकारसे अन्य तीनों उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिये। विशेषता यह है कि परिपाटीक्रमसे अनिवृत्तिकरण उपशामकोंकी अपेक्षा छब्बीस, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंकी अपेक्षा चौबीस और उपशान्तकषाय उपशामकोंकी अपेक्षा बाईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल उन तीनों उपशामकोंका क्रमशः उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६ ॥

चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ १६ ॥

सात आठ अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक सबके सब एक ही समयमें अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये। इस प्रकार एक समयके लिए अपूर्वकरण गुणस्थानका अभाव हो गया। पश्चात् द्वितीय समयमें सात आठ अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत एक साथ अपूर्वकरण क्षपक हो गये। इस प्रकारसे एक समय प्रमाण वह जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकारसे शेष अनिवृत्तिकरण आदि तीन क्षपकोंका भी अन्तरकाल एक समय प्रमाण जानना चाहिये।

उक्कस्सेण छम्मासं ॥ १७ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ॥

सात आठ अथवा एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक जीव अनिवृत्तिकरण क्षपक हुए। तब उत्कर्षसे छह मासके लिए अपूर्वकरण गुणस्थानका अभाव हो गया। तत्पश्चात् सात आठ अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकारसे अपूर्वकरण क्षपकोंका वह छह मास प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया। इसी प्रकार शेष गुणस्थानोंका भी छह मास प्रमाण उत्कृष्ट

अन्तरकाल जानना चाहिये।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका और अयोगिकेवलियोंका अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ १८ ॥

कारण यह है कि क्षपकश्रेणीवाले जीवोंका पुनः लौटना सम्भव नहीं है।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९ ॥

सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ १९ ॥

तात्पर्य यह है कि सयोगिकेवलियोंका कभी अभाव नहीं होता है।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २० ॥

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलियोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २० ॥

इसका कारण यह है कि सयोगिकेवली भगवान् अयोगिकेवली होकर नियमसे सिद्ध होते हैं, उनका पुनः सयोगिकेवली होना सम्भव नहीं है।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २१ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा वहां उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती नारकियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २२ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ (छह अन्तर्मुहूर्त) कम तेत्तीस सागरोपम मात्र होता है ॥ २३ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता है?

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २४ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा नारकियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ २५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नारकियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर क्रमसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २६ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम काल मात्र होता है ॥ २७ ॥

पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २८ ॥

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥२८॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकियोंमें उन दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २९ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३० ॥

एक जीवकी अपेक्षा इन पृथिवियोंके नारकियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बावीस और तेतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ३०॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३१ ॥

सातों ही पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे वह एक समय मात्र होता है ॥ ३१ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतोमुहुत्तं ॥ ३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा इन पृथिवियोंके नारकियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३३ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सातों ही पृथिवियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेत्तीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ३४ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ३७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम मात्र होता है ॥ ३७ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ॥ ३८ ॥

तिर्यंचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३८ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३९ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ४० ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ४१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों ही तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम (मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मास और दो अन्तर्मुहूर्त) तीन पल्योपम मात्र होता है ॥ ४१ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ४२ ॥

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे वह एक समय मात्र होता है ॥ ४२ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४३ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ४३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ४४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि उक्त तीन प्रकारके तिर्यंच जीवोंका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ४४ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तीनों प्रकारके तिर्यंचोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम मात्र होता है ॥ ४५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४६ ॥

उक्त तीनों तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ४६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उपर्युक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है ॥ ४७ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ४८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल मात्र होता है ॥ ४८ ॥

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४९ ॥

तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्यंचोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ४९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यंच संयतासंयतोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ५० ॥

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ५१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हीं तीनों तिर्यंच संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ५१ ॥

पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५२ ॥

पंचेद्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ५२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ ५३ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालस्वरूप असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र होता है ॥ ५४ ॥

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ५५ ॥

यह अन्तर गतिकी अपेक्षासे कहा गया है ॥ ५५ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५६ ॥

गुणस्थानकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका एक व नाना जीवोंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ५६ ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५७ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ५७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ५८ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ५९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ (नौ मास, उनंचास दिन और दो अन्तर्मुहूर्त) कम तीन पल्योपम है ॥ ५९ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ६० ॥

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ ६० ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ६१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मनुष्य सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर जघन्यसे क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ६२ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ६३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम मात्र होता है ॥ ६३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ६४ ॥

उक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ६४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ६५ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ६६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम मात्र होता है ॥ ६६ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ६७ ॥

संयतासंयतोंसे लेकर अप्रमत्तसंयतों तक उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ६७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मनुष्योंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ६८ ॥

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ६९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों गुणस्थानवाले तीन प्रकारके मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ६९ ॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७० ॥

चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ ७० ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ७१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें चारों उपशामकोंका अन्तर उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ७१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ७२ ॥

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ७३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें चारों उमशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ७३ ॥

चदुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७४ ॥

उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे वह एक समय मात्र होता है ॥ ७४ ॥

उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ॥ ७५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तोंमें चारों क्षपकों व अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास तथा मनुष्यनियोंमें उनका वह अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ७५ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ७६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ७६ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ७७ ॥

सयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ७७ ॥

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७८ ॥

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ ७८ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७९ ॥

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ७९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८० ॥

एक जीवकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८१ ॥

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र होता है ॥ ८१ ॥

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ८२ ॥

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा गया है ॥ ८२ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८३ ॥

गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ८३ ॥

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८४ ॥

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ८४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ८५ ॥

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोपमाणि देसूणाणि ॥ ८६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है ॥ ८६ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ८७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ ८७ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ८९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ८९ ॥

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ९० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ९० ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्प-वासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९१ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ऐशानसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ९१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ९२ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक सागरोपम व एक पल्योपम तथा साधिक दो, सात, दश, चौदह, सोलह और अठारह सागरोपम मात्र होता है ॥ ९३ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणोघं ॥ ९४ ॥

उक्त भवनवासी आदि देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके अन्तरकी प्ररूपणा स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९४ ॥

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९५ ॥

आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक पर्यन्त विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ९६ ॥

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं ऊणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ९७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा आनत-प्राणत, आरण-अच्युत कल्प और नौ ग्रैवेयकवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम प्रमाण होता है ॥ ९७ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं ॥ ९८ ॥

उक्त आनतादि देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके अन्तरकी प्ररूपणा स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९८ ॥

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९९ ॥

अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ९९ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त देवोंमें अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १०० ॥

इसका कारण यह है कि इन अनुदिश आदि विमानवासी देवोंमें एक असंयत गुणस्थानके ही सम्भव होनेसे उनका अन्य गुणस्थानमें जाना सम्भव नहीं है ।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०१ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १०१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ १०२ ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ १०३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार

सागरोपम मात्र होता है ॥ १०३ ॥

बादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०४ ॥

बादर एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १०४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रियोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है ॥

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण होता है ॥ १०६ ॥

एवं बादरेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं ॥ १०७ ॥

इसी प्रकारसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तोंका भी अन्तर जानना चाहिए ॥ १०७ ॥

सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०८ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १०८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ १०९ ॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग स्वरूप असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल प्रमाण होता है ॥ ११० ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १११ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्त तथा लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १११ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ११३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र होता है ॥ ११३ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ११४ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥११४॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ११५ ॥

पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११६ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ११६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥११७॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ११७ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसद-पुधत्तं ॥ ११८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपम तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंका वह उत्कृष्ट अन्तर सागरोपम-शतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ११८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ११९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ११९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १२० ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसद-पुधत्तं ॥ १२१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक हजार सागरोपम तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका वह उत्कृष्ट अन्तर शतपृथक्त्वसागरोपम मात्र होता है ॥ १२१ ॥

चदुण्हमुवसामगाणं णाणाजीवं पडि ओघं ॥ १२२ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चारों उपशामकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १२२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा इन्हीं चारों उपशामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १२४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रियोंमें चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक हजार सागरोपम और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंमें उन्हींका वह उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ १२४ ॥

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १२५ ॥

उक्त पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १२५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १२६ ॥

सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १२६ ॥

पंचिंदियअप्पज्जत्ताणं बेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ १२७ ॥

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तोंका अन्तर द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तोंके समान है ॥ १२७ ॥

एदमिंदियं पडुच्च अंतरं ॥ १२८ ॥

यह पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तोंका अन्तर इन्द्रियमार्गणाके आश्रयसे कहा गया है ॥ १२८ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १२९ ॥

गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १२९ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३० ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, इनके बादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १३० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ १३१ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १३२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उपर्युक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र होता है ॥ १३२ ॥

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३३ ॥

वनस्पतिकायिक, निगोद जीव उनके बादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १३३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ १३४ ॥

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १३५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक मात्र होता है ॥ १३५ ॥

बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३६ ॥

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्तोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १३६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ १३७ ॥

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १३८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है ॥१३८॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १३९ ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १३९ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १४० ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका

अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥१४१॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १४१ ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उपर्युक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और कुछ कम दो हजार सागरोपम प्रमाण होता है ॥ १४२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १४३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदिकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १४४ ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४५ ॥

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और कुछ कम दो हजार सागरोपम होता है ॥१४५॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥१४६

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १४६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १४७ ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा त्रसकायिक जीवोंमें उन उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम तथा त्रसकायिक पर्याप्तोंमें उन्हींका वह उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम मात्र होता है ॥ १४८ ॥

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १४९ ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तोंमें चारों क्षपक और अयोगिकेवली जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १४९ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ १५० ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तोंमें सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १५० ॥

तसकाइय-अपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १५१ ॥

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तोंका अन्तर पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके अन्तरके समान है ॥१५१॥

एदं कायं पडुच्च अंतरं । गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५२॥

यह अन्तर कायकी अपेक्षासे कहा गया है । गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे उनका अन्तर सम्भव नहीं है, निरन्तर है ॥ १५२ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५३ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रत्तमसंयत और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १५३ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥१५४ ॥

उक्त योगोंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ १५४ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त योगोंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ १५५ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १५६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १५६ ॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥

उक्त योगोंवाले चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा

उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १५७ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १५८ ॥

चदुण्हं खवाणमोघं ॥ १५९ ॥

उक्त योगोंवाले चारों क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १५९ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६० ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १६० ॥

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १६१ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, निरंतरं ॥ १६२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १६२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ १६३ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६४ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है ॥ १६४ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १६५ ॥

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ १६६ ॥

कारण यह है कि कपाटसमुद्घातसे रहित केवलियोंका कमसे कम एक समयके लिये अभाव पाया जाता है ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६७ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी केवलियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है ॥ १६७ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १६८ ॥

वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो ॥ १६९ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें आदिके चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान होता है ॥ १६९ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ १७० ॥

उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं ॥ १७१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त मात्र होता है ॥ १७१ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १७२ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७३ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७३ ॥

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७४ ॥

आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ १७४ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १७५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है ॥ १७५ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १७६ ॥

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७७ ॥

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७७ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७८ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १७८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ (पांच अन्तर्मुहूर्त) कम पचवन पल्योपम मात्र होता है ॥ १८० ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १८१ ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १८१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ १८२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका वह अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ १८३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १८४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥१८४॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चार गुणस्थानवाले स्त्रीवेदियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १८५ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चार गुणस्थानवाले स्त्रीवेदी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ १८६ ॥

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघं ॥ १८७ ॥

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदी उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान होता है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १८८ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ १८९ ॥

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९० ॥

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ १९० ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १९१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ १९१ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दो गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदी क्षपकोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १९२ ॥

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १९३ ॥

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९३ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९४ ॥

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ १९४ ॥

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ १९५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥१९६॥

एक जीवकी अपेक्षा पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १९६ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १९७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥१९७॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १९८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चार गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १९९ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २०० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २०० ॥

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥२०१

पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा इन दोनों उपशामकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २०१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२०२॥ उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २०२ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २०३ ॥

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण

एगसमयं ॥ २०४ ॥ उक्कस्सेण वासं सादिरेयं ॥ २०५ ॥

पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २०४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष मात्र होता है ॥ २०५ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा पुरुषवेदी दोनों क्षपकोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २०६ ॥

णवुंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २०७ ॥

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २०७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०८ ॥ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २०९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २०८ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ २०९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामिदो त्ति मूलोघं ॥ २१० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा मूलोघके समान है ॥ २१० ॥

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २११ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१२ ॥

नपुंसकवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २११ ॥ उक्त दोनों नपुंसकवेदी क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २१२ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २१३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों नपुंसकवेदी क्षपकोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥

अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१४ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१५ ॥

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २१४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २१५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२१६॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१७॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों उपशामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २१६ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २१७ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१९ ॥

अपगतवेदी उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २१८ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २१९ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २२० ॥

अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ॥

अपगतयोगियोंमें अनिवृत्तिकरण क्षपक, सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ और अयोगिकेवली जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २२१ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ २२२ ॥

अपगतवेदी सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २२२ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोहकसाईसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा त्ति मणजोगिभंगो ॥ २२३ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामक और क्षपक तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा मनोयोगियोंके समान है ॥ २२३ ॥

अकसाईसु उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२४ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २२५ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २२४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २२५ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २२६ ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ॥ २२७ ॥

अकषायी जीवोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ और अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २२७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ २२८ ॥

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली जिनोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २२८ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२९ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियों-का अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २२९ ॥

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥२३०

तीनों अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २३० ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २३१ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, निरंतरं ॥ २३२ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २३२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२३३॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥२३३॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण होता है ॥ २३४ ॥

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ २३५ ॥

उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २३५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी संयतासंयतोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २३६ ॥

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २३७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हीं तीनों सम्यग्ज्ञानी संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागरोपम प्रमाण होता है ॥ २३७ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३८ ॥

उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २३८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तीनों सम्यग्ज्ञानी प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २३९ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २४० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ २४० ॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४१ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २४२ ॥

उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २४१ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २४२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा तीनों सम्यग्ज्ञानियोंमें चारों उपशामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २४३ ॥

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २४४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागरोपम मात्र होता है ॥

चदुण्हं खवगाणमोघं । णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं ॥२४५॥

उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी चारों क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेषता यह है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अवधिज्ञानियोंमें उन चारों क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है॥

मणपज्जवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २४६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना

जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४७॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४८॥

एक जीवकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २४७ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २४८ ॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४९ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २४९ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५१ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥

एक जीवकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २५१ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि मात्र होता है ॥ २५२ ॥

चदुण्हं खवगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २५३ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५४ ॥

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥२५३॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २५५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥२५५॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ २५६ ॥

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २५६ ॥

अजोगिकेवली ओघं ॥ २५७ ॥

केवलज्ञानी अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २५७ ॥

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २५८ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक संयतोंके अन्तरकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २५८ ॥

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ २५९ ॥

संयतोंमें चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥२५९॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ २६० ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली संयतोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६० ॥

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २६१ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धि-संयतोंमें प्रमत्त व अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २६१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६२ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥२६३॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २६२ ॥ तथा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २६३ ॥

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २६४ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २६५ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २६४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २६५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६६ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥

एक जीवकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें दोनों उपशामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २६६ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण होता है ॥ २६७ ॥

दोण्हं खवाणमोघं ॥ २६८ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६८ ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २६९ ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२७०॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥२७१॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २७० ॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २७१ ॥

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥२७२॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

सूक्ष्मसाम्पराय-शुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ?

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ २७२ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ २७३ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

खवाणमोघं ॥ २७५ ॥

सूक्ष्मसाम्पराय-शुद्धिसंयतोंमें क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २७५ ॥

जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७६ ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंमें चारों गुणस्थानोंके अन्तरकी प्ररूपणा अकषायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७७ ॥

संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २७७ ॥

असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७८ ॥

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २७८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंयत मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २८० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ (छह अन्तर्मुहूर्त) कम तेतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ २८० ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं ॥ २८१ ॥

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २८१ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ २८२ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २८२ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं

पडुच्च ओघं ॥ २८३ ॥

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २८३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥२८४॥ उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २८४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम मात्र होता है ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २८६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ २८६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८७ ॥ उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥२८७॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम मात्र होता है ॥ २८८ ॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥२८९॥

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २८९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९० ॥ उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २९१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २९० ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम मात्र होता है ॥ २९१ ॥

चदुण्हं खवाणमोघं ॥ २९२ ॥

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २९२ ॥

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था ओघं ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २९३ ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥२९४॥ केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥२९५॥

अवधिदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २९४ ॥ केवल-

दर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २९५ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥२९६॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २९७ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २९८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम, तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपम मात्र होता है ॥ २९८ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २९९ ॥

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥२९९॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥३००॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३०० ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३०१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम मात्र होता है ॥ ३०१ ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०२ ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३०२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०३ ॥ उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥३०३॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और साधिक अठारह सागरोपम मात्र होता है ॥ ३०४ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं

पडुच्च ओघं ॥ ३०५ ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥३०५॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥३०६॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३०६ ॥

उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम और साधिक अठारह सागरोपम मात्र होता है ॥ ३०७ ॥

संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०८ ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना और एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥३०८॥

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०९ ॥

शुक्लेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३०९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१० ॥ उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३११ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३१० ॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ३११ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ ३१२ ॥

शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३१२ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३१३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३१३ ॥

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३१४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम मात्र होता है ॥

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३१५ ॥

शुक्लेश्यावाले संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना और एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३१६ ॥

शुक्लेश्यावाले अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१७ ॥ उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ ३१८ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३१७ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३१८ ॥

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३१९ ॥

शुक्लेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती तीन उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय मात्र अन्तर होता है ॥ ३१९ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा शुक्लेश्यावाले उन तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ३२० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३२१॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥३२२॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३२१ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३२२ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२४ ॥

शुक्लेश्यावाले उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ ३२३ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ३२४ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३२५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

चदुण्हं खवगा ओघं ॥ ३२६ ॥ सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२७ ॥

शुक्ललेश्यावाले चारों क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३२६ ॥ शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३२९ ॥

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ३३० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३१ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३३१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३३२॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥३३२॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि मात्र होता है ॥ ३३३ ॥

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था ओधिणाणिभंगो ॥

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टियोंके अन्तरकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३४ ॥

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३३५ ॥ सजोगिकेवली ओघं ॥ ३३६ ॥

सम्यग्दृष्टियोंमें चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३५ ॥ सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणा-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३३८ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ (आठ वर्ष और दो अन्तमुहूर्त) कम पूर्वकोटि मात्र होता है ॥ ३३९ ॥

संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३४० ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३४० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४१ ॥ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३४२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥३४१॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेत्तीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ३४२ ॥

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३४३ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३४४ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ ३४३ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष-पृथक्त्व मात्र होता है ॥ ३४४ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४५ ॥ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३४६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३४५ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेत्तीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ३४६ ॥

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४७ ॥ सजोगिकेवली ओघं ॥ ३४८ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३४७ ॥ सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३४८ ॥

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं सम्मादिट्ठिभंगो ॥ ३४९ ॥

वेदगसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरकी प्ररूपणा सम्यग्दृष्टियोंके समान है ॥

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५० ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५१ ॥ उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३५२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३५१ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागरोपम मात्र होता है ॥ ३५२ ॥

पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५३ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३५३ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३५४॥ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३५५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३५४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेत्तीस सागरोपम मात्र होता है ॥ ३५५ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥३५६॥ उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि ॥३५७॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ ३५६ ॥ उनका उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन (अहोरात्र) मात्र होता है ॥ ३५७ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३५८॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥३५९॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३५८ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३५९ ॥

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६० ॥ उक्कस्सेण चोद्दस रादिंदियाणि ॥ ३६१ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ ३६० ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात-दिन मात्र होता है ॥ ३६१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३६२॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥३६३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥३६२॥ उन्हींका

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३६३ ॥

पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६४ ॥ उक्कस्सेण पण्णारस रादिंदियाणि ॥ ३६५ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ ३६४ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन मात्र होता है ॥ ३६५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३६६॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥३६७॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३६६ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३६७ ॥

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६८ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३६९ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन तीन उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ ३६८ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ३६९ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥३७०॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥३७१॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३७० ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३७१ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७२ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३७३ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ ३७२ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ३७३ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७४ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३७४ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥३७५॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥३७६॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ ३७५ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ३७६ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ ३७९ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३७९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति पुरिसवेद-भंगो ॥ ३८० ॥

संज्ञियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है ॥ ३८० ॥

चदुण्हं खवाणमोघं ॥ ३८१ ॥

संज्ञी जीवोंमें चारों क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥

असंज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ ३८४ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३८४ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ ३८५ ॥

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३८५ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥३८६॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३८६ ॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३८७ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मात्र होता है ॥ ३८७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३८८ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८९ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३८९ ॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी मात्र होता है ॥ ३९० ॥

चदुण्हमुवसामगामंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघभंगो ॥

आहारकोंमें चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा उनके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३९१ ॥

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३९२ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३९२ ॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३९३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी मात्र होता है ॥ ३९३ ॥

चदुण्हं खवाणमोघं ॥ ३९४ ॥ सजोगिकेवली ओघं ॥ ३९५ ॥

आहारक चारों क्षपकोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३९४ ॥ आहारक सयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३९५ ॥

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ ३९६ ॥

अनाहारक जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३९६ ॥

णवरि विसेसा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३९७ ॥

विशेषता केवल यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलियोंके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३९७ ॥

॥ अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

७. भावाणुगमो

भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है। उनमें बाह्य अर्थकी अपेक्षा न करके अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभाव है। स्थापनाभाव सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे वीतराग और सराग भावोंका अनुकरण करनेवाली जो स्थापना की जाती है उसको सद्भावस्थापनाभाव कहते हैं। उसके विपरीत असद्भावस्थापनाभाव है।

द्रव्यभाव आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें भावप्राभृतका ज्ञायक, किन्तु वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यभाव कहलाता है। नोआगमद्रव्यभाव ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें ज्ञायकशरीर नोआगम-द्रव्यभाव भावी, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकारका है। जो शरीर भविष्यमें भावप्राभृत पर्यायसे परिणत होनेवाले जीवका आधार होगा वह भावी नोआगमज्ञायकशरीर द्रव्यभाव है। भाव-प्राभृत पर्यायसे परिणत हुए जीवके साथ जो शरीर एकीभूत हो रहा है वह वर्तमान नोआगमज्ञायक-शरीर द्रव्यभाव है। भावप्राभृत पर्यायसे परिणत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथग्भूत हुआ शरीर है वह समुज्झित नोआगमज्ञायकशरीर द्रव्यभाव है। जो जीव भविष्यमें भावप्राभृत पर्याय-स्वरूपसे परिणत होगा उसका नाम भावी नोआगमद्रव्यभाव है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यभाव सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें जीव द्रव्य सचित्त तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यभाव है। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश ये पांच द्रव्य अचित्त तद्व्यतिरिक्त नोआगमभाव है। कथंचित् जात्यन्तर अवस्थाको प्राप्त हुआ जो पुद्गल और जीव द्रव्यका संयोग है उसका नाम मिश्र तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यभाव है।

आगम और नोआगमके भेदसे भावभाव दो प्रकारका है। उनमें भावप्राभृतका ज्ञायक होकर वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे सहित जीव आगमभावभाव है। नोआगमभावभाव औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे पांच प्रकारका है। उनमें कर्मोदय-जनित भावका नाम औदयिक नोआगमभावभाव है। कर्मोंके उपशमसे उत्पन्न हुए भावका नाम औपशामिक नोआगमभावभाव है। कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाला जीवका भाव क्षायिक नोआगम-भावभाव है। कर्मोंके उदयके होते हुए भी जो जीवगुणका अंश उपलब्ध रहता है वह क्षायोप-शमिक नोआगमभावभाव है। पूर्वोक्त चारों भावोंसे भिन्न जो जीव और अजीवगत भाव है उसका नाम पारिणामिक नोआगमभावभाव है। इन सब भावभेदोमेंसे यहां नोआगमभावभावसे प्रयोजन है। इस भावके अनुगमका नाम भावानुगम है और वह ओघ और आदेशके भेदसे दो प्रकारका है।

आगे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि भावकी प्ररूपणा करनेके लिये सूत्र कहा जाता है—

ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? ओदइओ भावो ॥ २ ॥

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह भाव उक्त पांच भावोंमेंसे कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ २ ॥

अतत्त्वश्रद्धानरूप भाव चूंकि मिथ्यात्व दर्शनमोहनीयके उदयसे होता है, अतएव वह औदयिक भाव है।

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव चूंकि दर्शनमोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोप-शममेंसे किसीकी भी अपेक्षा नहीं करके उत्पन्न होता है, अत एव वह पारिणामिक भाव कहा जाता है।

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो ॥ ४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

तत्त्वके श्रद्धान और अश्रद्धानरूप जो जीवका मिश्र परिणाम होता है उसका नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव है। यह भाव दर्शनमोहनीयके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेके कारण क्षायोपशमिक भाव कहा जाता है।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ५ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है, और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५ ॥

अनन्तानुबन्धिचतुष्टयके साथ मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावस्वरूप उपशमसे चूंकि औपशमिक सम्यक्त्वरूप असंयतसम्यग्दृष्टि भाव उत्पन्न होता है, इसलिये वह औपशमिक भाव है। इन्हीं प्रकृतियोंके सर्वथा क्षयसे चूंकि क्षायिक सम्यक्त्वरूप असंयतसम्यग्दृष्टि भाव उत्पन्न होता है, इसलिये वह क्षायिक भाव भी है। मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्वके उदयक्षय और सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे चूंकि वेदक सम्यक्त्वरूप असंयतसम्यग्दृष्टि भाव उत्पन्न होता है, अतएव वह क्षायोपशमिक भाव भी है।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ६ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व परिणाम औदयिक भावसे है ॥ ६ ॥

कारण यह कि वह असंयतत्व भाव संयमघातक चारित्रमोहनीयके उदयसे होता है। यह असंयतत्व नीचेके तीन गुणस्थानोंमें भी औदयिक ही है।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो ॥ ७ ॥

संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये कौन-से भाव हैं? क्षायोपशमिक भाव हैं ॥

संयतासंयत भाव चूंकि चार अनन्तानुबन्धी और चार अप्रत्याख्यानावरण इन आठके उदयक्षय व सदवस्थारूप उपशमसे, चार प्रत्याख्यानावरण प्रकृतियोंके उदयसे, संज्वलनचतुष्कके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे तथा नौ नोकषायोंके यथासम्भव उदयसे उत्पन्न होता है; अतएव वह क्षायोपशमिक भाव है। इसी प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये दोनों भाव अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंके उदयक्षय व सदवस्थारूप उपशमसे, संज्वलनचतुष्कके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे तथा नौ नोकषायोंके यथासम्भव उदयसे चूंकि उत्पन्न होते हैं; अतएव वे भी क्षायोपशमिक भाव हैं।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥

अपूर्वकरण आदि चारोंका उपशामक यह कौन-सा भाव है? औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो ॥ ९ ॥

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली; यह कौन-सा भाव है? क्षायिक भाव है ॥

आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? ओदइओ भावो ॥ १० ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि यह कौन-सा भाव है? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥

नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो ॥ १२ ॥

नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ १२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ १३ ॥

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है, और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १३ ॥

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १४ ॥

किन्तु नारकियोंमें जो असंयम भाव है वह चूंकि संयमघातक चारित्रमोहनीयके उदयसे होता है, अतएव उसे औदयिक भाव समझना चाहिये ॥ १४ ॥

एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं ॥ १५ ॥

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंके उक्त चारों गुणस्थानों सम्बन्धी भाव होते हैं ॥

बिदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ १६ ॥

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥

उक्त नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १७ ॥

द्वितीयादि पृथिवियोंमें चूंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं है, अतएव इन पृथिवियोंके नारकियोंमें क्षायिक असंयतसम्यग्दृष्टि भाव नहीं होता है ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १८ ॥

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १८ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदाणमोघं ॥ १९ ॥

तिर्यंचगतिमें सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९ ॥

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ?

ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २० ॥

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥

किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ २२ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य सामान्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २२ ॥

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥२३॥

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २३ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २४ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं इनकी देवियां तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासिनी देवियां; इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥२५॥

उक्त देव और देवियोंका असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २५ ॥

कारण यह है कि उपर्युक्त देवों और देवियोंमें औपशमिक और क्षायोपशमिक इन दो सम्यक्त्वोंकी ही सम्भावना है, उनके क्षायिक सम्यग्दर्शन सम्भव नहीं है ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥२६ ॥

उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २६ ॥

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ २७ ॥

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक पर्यन्त विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक उक्त भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २७ ॥

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २८ ॥

अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है, और क्षायोपशमिक भी है ॥ २८ ॥

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥२९॥

उक्त देवोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २९ ॥

इंदियाणुवादेण पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥३०॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३० ॥

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ३१ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३१ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥३२॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥३२॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं ओघं ॥ ३३ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ३४ ॥

कारण यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा वेदकसम्यग्दृष्टि देव, नारकी व मनुष्य ये तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं। चारों गतियोंके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण सम्भव नहीं होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशम सम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता है। यद्यपि उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले और उससे उतरनेवाले संयत जीवोंका मरण सम्भव है, परन्तु उनके

औपशमिक सम्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोग नहीं होता है। इसका भी कारण यह है कि वे देवगतिको छोड़कर अन्यत्र उत्पन्न नहीं होते हैं।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ३५ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ३५ ॥

सजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो ॥ ३६ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली यह कौन-सा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो ॥ ३७ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३७ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३८ ॥

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भाओ ॥ ३९ ॥

आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

कारण कि उक्त दोनों योगवाले जीवोंमें यथाख्यातचारित्रका आवरण करनेवाली चारों संज्वलन और सात नोकषायोंके उदयके होनेपर भी प्रमादसंयुक्त संयम पाया जाता है।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं ॥ ४० ॥

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४० ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ४१ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४१ ॥

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ४२ ॥

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४२ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥ ४३ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४३ ॥

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ ४४ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासण-सम्मादिट्ठी ओघं ॥ ४५ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४५ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था ओघं ॥ ४६ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक उक्त भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४६ ॥

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराग-छदुमत्था ओघं ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४७ ॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ ४८ ॥

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ४९ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ४९ ॥

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण तक इन

भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५० ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ ५१ ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं ॥ ५२ ॥

सूक्ष्म-साम्परायिक-शुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और क्षपक भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५२ ॥

जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ ५३ ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५३ ॥

संजदासंजदा ओघं ॥ ५४ ॥

संयतासंयत भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५४ ॥

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ ५५ ॥

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५५ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ ५६ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीण-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५६ ॥

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

अवधिदर्शनी जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके भावोंके समान है ॥ ५८ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु चदुट्ठाणी ओघं ॥५९॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि आदि चार भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ५९ ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ६० ॥

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६१ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ६१ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६२ ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ६२ ॥

अभवसिद्धिय त्ति को भावो? पारिणामिओ भावो ॥ ६३ ॥

अभव्यसिद्धिक यह कौन-सा भाव है? कर्मके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे न उत्पन्न होनेके कारण वह पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ६४ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो? खइओ भावो ॥ ६५ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है? क्षायिक भाव है ॥६५॥

खइयं सम्मत्तं ॥ ६६ ॥

उक्त जीवोंका सम्यक्त्व क्षायिक ही होता है ॥ ६६ ॥

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो? खओवसमिओ भावो ॥६८॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौन-सा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ६८ ॥

कारण यह है कि इन तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके चारित्रमोहनीय कर्मके उदयके होनेपर भी चारित्रके एकदेशरूप संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत भाव पाया जाता है।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६९ ॥

उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥ ६९ ॥

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो? ओवसमिओ भावो ॥ ७० ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि चार उपशामक यह कौन-सा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७० ॥

खइयं सम्मत्तं ॥ ७१ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है ॥ ७१ ॥

इसका यह अभिप्राय समझना चाहिये कि जिस जीवने दर्शनमोहनीयकी क्षपणा प्रारम्भ की है अथवा जो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि है वह उपशमश्रेणिपर नहीं चढ़ता है ।

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो ॥७२॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली यह कौन-सा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ७२ ॥

खइयं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥७३॥

वेदयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥७४॥

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७५ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥ ७५ ॥

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ७६ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो ॥७७॥

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ७७ ॥

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७८ ॥

उक्त जीवोंके क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥ ७८ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ भावो ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन-सा भाव है ॥ ७९ ॥

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥ ८० ॥

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ८१ ॥

उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ८१ ॥

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो? खओवसमिओ भावो ॥८२॥

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौन-सा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८३ ॥

उक्त उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके औपशमिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥ ८३ ॥

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो? उवसमिओ भावो ॥ ८४ ॥

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंका उपशमसम्यग्दृष्टि उपशामक कौन-सा भाव है? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८५ ॥

उक्त जीवोंके औपशमिक सम्यग्दर्शन ही होता है ॥ ८५ ॥

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ८६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान पारिणामिक भाव है ॥ ८६ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव ओघके समान क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८७ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि भाव ओघके समान औदयिक भाव है ॥ ८८ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ ८९ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ८९ ॥

असण्णि त्ति को भावो? ओदइओ भावो ॥ ९० ॥

असंज्ञी यह कौन-सा भाव है? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

इसका कारण यह है कि वह (असंज्ञित्व) नोइन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न होता है।

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक इन भावोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ९१ ॥

अणाहाराणं कम्मइयभंगो ॥ ९२ ॥

अनाहारक जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ९२ ॥

णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो ॥ ९३ ॥

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवली यह कौन-सा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ९३ ॥

॥ भावानुगम समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

८. अप्पाबहुगाणुगमो

अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १ ॥

अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥१॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है। उनमेंसे 'अल्पबहुत्व' शब्द नामअल्पबहुत्व है। यह इससे बहुत है और यह इससे अल्प है, इस प्रकार जो अभेदस्वरूपसे अध्यारोप किया जाता है वह स्थापनाअल्पबहुत्व है।

द्रव्यअल्पबहुत्व आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। जो जीव अल्पबहुत्व-विषयक प्राभृतका ज्ञाता होता हुआ भी वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य-अल्पबहुत्व कहते हैं। नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। जो जीव भविष्यमें अल्पबहुत्वप्राभृतका ज्ञाता होनेवाला है उसे भावी नोआगम-द्रव्यअल्पबहुत्व कहते हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें जीवद्रव्यविषयक अल्पबहुत्व सचित्त तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व कहलाता है। शेष द्रव्यों विषयक अल्पबहुत्व अचित्त तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व है। इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व है।

आगम और नोआगमके भेदसे भावअल्पबहुत्व दो प्रकारका है। जो अल्पबहुत्वप्राभृतका ज्ञाता है और वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे भी सहित है उसे आगमभावअल्पबहुत्व कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, अनुभाग और योगादिकको विषय करनेवाला अल्पबहुत्व नोआगमभावअल्पबहुत्व कहलाता है। इन अल्पबहुत्वभेदोंमेंसे यहां सचित्त नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्वका अधिकार है।

ओघेण तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २ ॥

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य तथा अन्य सब गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्प हैं ॥ २ ॥

इसका कारण यह है कि इन गुणस्थानोंमें क्रमसे एकको आदि लेकर अधिकसे अधिक चौवन जीव ही प्रवेश करते हैं ।

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेय ॥ ३ ॥

उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३ ॥

जब कि उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण अपूर्वकरण उपशामकों आदिके ही समान है तब उनका ग्रहण पूर्व सूत्रमें ही किया जा सकता था, फिर भी उनके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा जो इस पृथक् सूत्रके द्वारा की गई है उसका प्रयोजन अपूर्वकरणादि तीन उपशामकोंसे उनकी भिन्नताको प्रगट करना है ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ४ ॥

उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ ४ ॥

कारण यह है कि क्षपक प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त उपशामकोंसे दुगुने (अधिकसे अधिक १०८) पाये जाते हैं। इसी प्रकार संचयकी अपेक्षा भी वे उक्त उपशामकों (२९९) से दुगुने (५९८) ही पाये जाते हैं ।

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५ ॥

क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रकी पृथक् रचनाका भी कारण पूर्वके ही समान समझना चाहिये ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ६ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ६ ॥

अभिप्राय यह है कि वे प्रवेशकी अपेक्षा अधिकसे अधिक एक सौ आठ (१०८) तथा संचयकी अपेक्षा अधिकसे अधिक दो कम छह सौ (५९८) होते हैं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ७ ॥

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ७ ॥

अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ८ ॥

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ९ ॥

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ९ ॥

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १० ॥

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ १० ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११ ॥

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ११ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥१५ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५ ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १८ ॥

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥१९

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥२०॥

पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २१ ॥

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २१ ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २२ ॥

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३ ॥

एवं तिसु वि अद्धासु ॥ २४ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व है । इतना विशेष समझना चाहिये कि यहां क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी सम्भावना नहीं है ॥ २४ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६ ॥

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २८ ॥ असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९ ॥ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३० ॥

नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २८ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥२९॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३० ॥

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३१ ॥

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ३१ ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ३३ ॥

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें भी नारकियोंके अल्पबहुत्वको जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥३५॥

नरकगतिमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३९ ॥

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खपंचिंदिय-तिरिक्खपंचिंदियपज्जत्त-तिरिक्खपंचिंदिय-जोणिणीसु सव्वत्थोवा संजदासंजदा ॥ ४१ ॥

तिर्यंचगतिमें सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और पंचेन्द्रिय-योनिमती तिर्यंच जीवोंमें संयतासंयत सबसे कम हैं ॥ ४१ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥४२॥ सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा ॥

उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४२ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ४३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ४४ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४५ ॥

उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोंमें सामन्य तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सामान्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं और शेष तीन प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव इन्हीं असंयत-

सम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ४६ ॥

उक्त चार तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

उक्त चार तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

उक्त चार तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४८ ॥

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्माइट्ठी ॥ ४९ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥

उक्त चार तिर्यंचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥४९॥ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५० ॥

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ५१ ॥

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५२ ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ ५३ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५४ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥

उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५४ ॥ उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ५५ ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५६ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ५७ ॥

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों भी प्रवेशसे तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ५८ ॥

अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥ संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥ संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६४ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥६४॥

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६५ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं और शेष दो प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६ ॥

तीन प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥६८॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥६७॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६८ ॥

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ६९ ॥

तीन प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥६९॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥७१॥

तीन प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७० ॥ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदगसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७१ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ७२ ॥

तीन प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ७२ ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥७४॥

तीन प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७३ ॥ उक्त क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यात-गुणित हैं ॥ ७४ ॥

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सव्व-त्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ७५ ॥

विशेषता यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ७५ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥७७॥

मनुष्यनियोंमें उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥७६॥ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ ७८ ॥

इसी प्रकार उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ७९ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥ उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥

देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ ८१ ॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१॥ देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

देवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥८५॥ खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥ उनमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिष्क देव और इनकी देवियां, तथा सौधर्म-ऐशान कल्पवासिनी देवियां; इनके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा सातवीं पृथिवीके अल्पबहुत्वके समान है ॥ ८८ ॥

सोहम्मीसाण जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा देवगइभंगो ॥ ८९ ॥

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवोंमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा देवगति सामान्यके समान है ॥ ८९ ॥

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी॥९०॥

आनतसे लेकर नव ग्रैवेयक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

उक्त विमानवासी देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

उनमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

उनमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९४ ॥

आनत कल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक तक देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥९६॥

उनमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९५ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९६ ॥

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९७ ॥

नव अनुदिशोंको आदि लेकर अपराजित नामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९७ ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९८ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥९९॥

उपर्युक्त देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें वर्तमान उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ९८ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९९ ॥

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १०० ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ १०० ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥१०१॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥१०२॥

उनमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥१०१॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०२ ॥

इंदियाणुवादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु ओघं । णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १०३ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेषता केवल यह है कि उनमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १०३ ॥

शेष एकेन्द्रियादि जीवोंमें एक मात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका सद्भाव होनेसे चूंकि उनमें अल्पबहुत्वकी सम्भावना नहीं है, अतएव यहां उनके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा नहीं की गई है।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओघं । णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १०४ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है। उनमें विशेषता केवल यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव

असंख्यातगुणित हैं ॥ १०४ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु तीसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १०५ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिक-काययोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य और अल्प हैं ॥ १०५ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ १०६ ॥

उक्त बारह योगवाले उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त जीवोंके ही प्रमाण हैं ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १०७ ॥ खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तेत्तिया चेव ॥

उनसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १०७ ॥ क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

सजोगिकेवली पवेसणेण तेत्तिया चेव ॥ १०९ ॥

उक्त बारह योगोंमें सम्भव योगवाले सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त जीवोंके ही प्रमाण हैं ॥ १०९ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा उनसे संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

सयोगिकेवलियोंसे उपर्युक्त बारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

उक्त बारह योगवाले अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ ११३ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

उक्त बारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ११७ ॥

उक्त बारह योगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं

॥ ११६ ॥ पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे इन्हीं योगवाले मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं और काययोगी तथा औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे इन्हीं दोनों योगवाले मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥

उक्त बारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ११८ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ ११९ ॥

इसी प्रकार उक्त बारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ११९ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १२० ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

उक्त बारह योगवाले जीवोंमें उपशामक सबसे कम हैं ॥ १२० ॥ उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ १२२ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥ सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥ मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १२५ ॥

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १२६ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिभंगो ॥ १२८ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा देवगतिके समान है ॥ १२८ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ १२९ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१३०॥ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१३१॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३० ॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १३२ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १३२ ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥१३३॥ वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१३४॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १३५ ॥

आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १३५ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

उपर्युक्त आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदगसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सयोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कार्मणकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १३७ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥ असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥ मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १४० ॥

कार्मणकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥१३८॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥१३९॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं ॥ १४० ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १४१ ॥

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥१४२॥ वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१४३॥

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥१४२॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥१४३॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥ अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥ क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ १४६ ॥ उक्त अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥ सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा ॥

स्त्रीवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १५० ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१५१॥ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१५२॥

स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५१ ॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ १५२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५३ ॥ उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥ उपर्युक्त दोनों गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

स्त्रीवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

स्त्रीवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥ स्त्रीवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५८ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ १५९ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ १५९ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

स्त्रीवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥ उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १६१ ॥

पुरिसवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १६२ ॥

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १६२ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंके क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

पुरुषवेदियोंमें उक्त अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥१६५॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१६७॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

पुरुषवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६७ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥

पुरुषवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ १६९ ॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ १७० ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त-संजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअ-मोघं ॥ १७१ ॥

पुरुषवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७१ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ १७२ ॥

इसी प्रकार पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ १७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १७३ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ १७४ ॥

पुरुषवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥ उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७४ ॥

णउसंयवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १७५ ॥

नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १७५ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १७६ ॥

नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव प्रवेशकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १७६ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १७७ ॥

नपुंसकवेदियोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १७८ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १७९ ॥

नपुंसकवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७८ ॥ प्रमत्त-संयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७९ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥१८०॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १८० ॥ सासादनसम्यग्-दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १८२ ॥ मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥१८३॥

नपुंसकवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥१८२॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं ॥ १८३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ १८४ ॥

नपुंसकवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्प-बहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १८४ ॥

पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १८५ ॥

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८५ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८६ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशम-सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १८६ ॥ उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८७ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ १८८ ॥

इसी प्रकार नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ १८८ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १८९ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ १९० ॥

नपुंसकवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १८९ ॥ उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १९० ॥

अवगदवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १९१ ॥

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन दो गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९२ ॥

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥१९३॥ खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥१९४

अपगतवेदियोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं॥१९३॥ क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ १९५ ॥

अपगतवेदियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १९७ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥ णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसाहिया ॥ १९९ ॥

उक्त चारों कषायवाले जीवोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥ विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवोंमें क्षपकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक हैं ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

लोभकषायी सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०१ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०२ ॥

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ २०३ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ २०३ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥२०४॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २०७ ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं ॥ २०७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥

चारों कषायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २०८ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ २०९ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो गुणस्थानोंमें चारों कषायवाले जीवोंका सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २१० ॥

चारों कषायवाले उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २१० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २११ ॥

चारों कषायवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २११ ॥

अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था ॥ २१२ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २१४ ॥

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २१५ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २१६ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २१७ ॥

उक्त तीनों अज्ञानी जीवोंमें मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं तथा विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २१७ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २१८ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २१९ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२० ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ २२१ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त क्षपकोंके प्रमाण ही हैं ॥ २२१ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २२२ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २२३ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ २२४ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २२५ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं ॥

उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २२६ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ २२७ ॥

इसी प्रकार उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ २२७ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २२८ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

उक्त तीनों सम्यग्ज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥२२८॥ उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ २२९ ॥

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २३० ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३१ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥ उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३३ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २३४ ॥

मन:पर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २३५ ॥

मन:पर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३५ ॥

पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २३६ ॥

मन:पर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥२३७॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥२३८॥

मन:पर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ २३९ ॥

इसी प्रकार मन:पर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ २३९ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २४० ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

मन:पर्ययज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥२४०॥ मन:पर्ययज्ञानियोंमें उपशामक जीवोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४३ ॥

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४३ ॥

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २४४ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

संयतोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

संयतोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४६ ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४७ ॥

संयतोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४८ ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५० ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ २५० ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥

संयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २५२ ॥

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदगसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ २५४ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ २५५ ॥

इसी प्रकार संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ २५५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५६ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५६ ॥ संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५७ ॥

सामाइयच्छेदोवट्ठाणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५९ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २६० ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६० ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २६१ ॥

उक्त दो संयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६१ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २६२ ॥

उक्त दो संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २६२ ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

उक्त दो संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६३ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

उक्त दो संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६४ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ २६५ ॥

इसी प्रकार उक्त जीवोंका अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ २६५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २६६ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

उक्त दो संयतोंमें उमशामक सबसे कम हैं ॥ २६६ ॥ उपशामकोंसे क्षपक संख्यात-गुणित हैं ॥ २६७ ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा ॥ २६८ ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २६९ ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७० ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा थोवा ॥ २७२ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जीव अल्प हैं ॥ २७२ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २७३ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७३ ॥

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७४ ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा अकषायी जीवोंके समान है ॥

संजदासंजदेसु अप्पाबहुअं णत्थि ॥ २७५ ॥

संयतासंयत जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७६ ॥

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २७७ ॥

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २७८ ॥

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥२७८॥

असंजदेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २७९ ॥

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७९ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २८० ॥

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २८० ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८१ ॥

असंयतोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८१ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २८२ ॥

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ २८२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २८३ ॥

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २८३ ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८४ ॥

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव

असंख्यातगुणित हैं ॥ २८४ ॥

वेदयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८५ ॥

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८५ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ २८६ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २८६ ॥

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यात-गुणित हैं ॥ २८७ ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८८ ॥

अवधिदर्शनी जीवोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८९ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्वत्थोवा सासण-सम्मादिट्ठी ॥ २९० ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें सासादन-सम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९० ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २९१ ॥

उक्त तीन लेश्यावाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९२ ॥

उक्त तीन लेश्यावाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ २९२ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २९३ ॥

उक्त तीन लेश्यावाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २९४ ॥

उक्त तीन लेश्यावाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९५ ॥

उक्त तीन लेश्यावाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९५ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९६ ॥

उक्त तीन लेश्यावाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९६ ॥

णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २९७ ॥

विशेषता केवल यह है कि कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २९७ ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९८ ॥

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९८ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदगसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९९ ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा ॥ ३०० ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयत सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३०१ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३०२ ॥

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०१ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०२ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

उक्त दोनों लेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥३०३॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥ असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥

उक्त दोनों लेश्यावालोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०५ ॥

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

उक्त दोनों लेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥

उक्त दोनों लेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३०७ ॥

सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ ३०८ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३०८ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३०९ ॥ उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१० ॥

खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३११ ॥

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३१२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३१३ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३१३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३१४ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३१५ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३१६ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१५ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१६ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३१७ ॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३१८ ॥ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३१९ ॥ असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१७ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥३१८ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३१९॥ मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि

जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३२२॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥३२३॥

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं ॥ ३२४ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३२४ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ ३२५ ॥

इसी प्रकार शुक्ललेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें उपर्युक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥३२६॥ उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाइट्ठी जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥३२८॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक इस अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

अभवसिद्धिएसु अप्पाबहुअं णत्थि ॥ ३२९ ॥

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३० ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ ३३१ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३३२ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥३३२॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥ खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३३ ॥ क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ३३५ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं॥ ३३६॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३७ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥ संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३९ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३८ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३९ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३४० ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३४०॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठाणे खइयसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें चूंकि असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयत इन गुणस्थानोंमें क्षायिक सम्यक्त्वका भेद नहीं है; अतएव इन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है ॥ ३४१ ॥

वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा ॥ ३४२ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३४३ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३४४ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३४५ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयतोंसे असंख्यातगुणित हैं ॥३४५॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे वेदगसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें चूंकि वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है, अतएव इन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वके अल्पबहुत्वकी सम्भावना नहीं है ॥ ३४६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ ३४७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

अप्पमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३४९ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग छद्मस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४९ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३५० ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३५१ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अनुपशामक अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३५० ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे उवसमसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें उपशमसम्यक्त्वका भेद नहीं है; इसलिये वहां सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है ॥ ३५३ ॥

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-मिच्छादिट्ठीणं णत्थि अप्पाबहुअं ॥ ३५४ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व नहीं है ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ ३५५ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५६ ॥

विशेषता यह है कि संज्ञियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥

असण्णीसु णत्थि अप्पाबहुअं ॥ ३५७ ॥

असंज्ञी जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५७ ॥

आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ ३५८ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३५८ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३५९ ॥

आहारकोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३५९ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥ खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था तत्तिया चेव ॥

आहारकोंमें उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६० ॥ क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६१ ॥

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥३६२॥ सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

आहारकोंमें सयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥३६२॥ वे ही सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

आहारकोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

आहारकोंमें उक्त अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६५ ॥ प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६६ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥

आहारकोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६७ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥ मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ३७० ॥

आहारकोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३६९॥ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७० ॥

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥

आहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ ३७२ ॥

इसी प्रकार आहारकोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व जानना चाहिये ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥ खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

आहारकोंमें इन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३७३ ॥ उपशामकोंसे

क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७४ ॥

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

अनाहारकोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ ३७५ ॥

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा ॥ ३७६ ॥

अनाहारकोंमें सयोगिकेवलियोंसे अयोगिकेवली जिन संख्यातगुणित हैं ॥ ३७६ ॥

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७७ ॥ असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥

अनाहारकोंमें अयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३७७॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३७८ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ३७९ ॥

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७९ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३८० ॥

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं॥३८०॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥३८१॥ वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥३८२॥

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥३८१॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३८२॥

॥ अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

९. जीवट्ठाण-चूलियाए
पढमा चूलिया

कदि काओ पयडीओ बंधदि, केवडिकालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं लंभदि वा ण लब्भदि वा, केवचिरेण वा कालेण कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जंतस्स ॥ १ ॥

सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है, कितने काल प्रमाण स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है अथवा नहीं प्राप्त करता है, मिथ्यात्व कर्मको वह कितने कालमें और कितने भागरूप करता है, तथा किन क्षेत्रोंमें व किसके पादमूलमें कितने मात्र दर्शनमोहनीय कर्मकी क्षपणा करनेवाले जीवके और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीय कर्मकी उपशामना तथा क्षपणा होती है ? ॥ १ ॥

पूर्वोक्त अनुयोगद्वारोंके विषम (दुरवबोध) स्थलोंके विशेष विवरणका नाम चूलिका है। यह जीवस्थान सम्बन्धी चूलिका नौ प्रकारकी है। वह इस प्रकारसे— सूत्रमें जो 'कितनी प्रकृतियोंको बांधता है' ऐसा कहा गया है उससे प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन नामकी प्रथम दो चूलिकाओंकी सूचना की गई है। उसके आगे जो वहां 'किन प्रकृतियोंको बांधता है' ऐसा कहा गया है उससे प्रथम दण्डक, द्वितीय दण्डक व तृतीय दण्डक नामकी तीसरी, चौथी और पांचवीं इन तीन चूलिकाओंकी सूचना की गई है। आगे इसी सूत्रमें जो यह कहा गया है कि 'कितने कालकी स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है और कितने कालकी स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा उस सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है' उससे उत्कृष्ट-स्थिति नामकी छठी तथा जघन्य-स्थिति नामकी सातवीं चूलिकाकी सूचना की गई है। तत्पश्चात् जो सूत्रमें 'किन क्षेत्रोंमें व किसके पादमूलमें ···' इत्यादि कहा गया है उससे सम्यक्त्वोत्पत्ति नामकी आठवीं चूलिकाकी सूचना की गई है। प्रकृत सूत्रके 'चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जंतस्स' इस अन्तिम वाक्यांशमें जो 'वा' शब्दका ग्रहण किया है उससे गति-आगति नामकी नौवीं अन्तिम चूलिकाकी सूचना की गई है। इन सबका विशेष विवरण आगे यथास्थानमें किया ही जानेवाला है।

कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा ॥ २ ॥

'कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है' यह जो पूर्व सूत्रका अंश है उसका व्याख्यान किया जाता है ॥ २ ॥

इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो ॥ ३ ॥

अब प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करेंगे ॥ ३ ॥

प्रकृतियोंके समुत्कीर्तनको प्रकृतिसमुत्कीर्तन कहते हैं । प्रकृतिसमुत्कीर्तनसे अभिप्राय प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करनेका है । वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदसे दो प्रकारका है । द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अपने अन्तर्गत समस्त भेदोंका संग्रह करनेवाली प्रकृतिका नाम मूलप्रकृति है । पर्यायार्थिक नयकी विवक्षासे पृथक् पृथक् अवयववाली प्रकृतिको उत्तरप्रकृति कहते हैं । इनमेंसे यहां पहिले समस्त उत्तरप्रकृतियोंका संग्रह करनेवाली मूलप्रकृतियोंकी प्ररूपणा की जाती है ।

तं जहा ॥ ४ ॥ णाणावरणीयं ॥ ५ ॥

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन इस प्रकार है ॥ ४ ॥ ज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ५ ॥

ज्ञान, अवबोध, अवगम और परिच्छेद ये सब एकार्थवाचक नाम हैं । इस ज्ञानका जो आवरण करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है । ' ज्ञानावरणीय ' कहनेसे यह अभिप्राय समझना चाहिए कि जीवके लक्षणभूत ज्ञानका आवरण तो हो सकता है, किन्तु उसका विनाश कभी भी सम्भव नहीं है । कारण यह कि यदि ज्ञान और दर्शनका सर्वथा विनाश माना जाय तो जीवका भी विनाश अनिवार्य प्राप्त होगा, क्योंकि, लक्षणसे रहित लक्ष्य नहीं पाया जाता है । परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है । यथार्थतः अक्षरके अनन्तवें भाग मात्र सबसे जघन्य ज्ञान निरन्तर प्रगट रहता है– उसका कभी आवरण नहीं होता । इस ज्ञान गुणका जो आवारक है वह ज्ञानावरणीय कर्म है जो पौद्गलिक होकर प्रवाहस्वरूपसे अनादिनिधन है ।

दंसणावरणीयं ॥ ६ ॥

दर्शनावरणीय कर्म है ॥ ६ ॥

आत्मविषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं । ज्ञान जहां बाह्य अर्थोंको विषय करता है वहां दर्शन अंतरंगको विषय करता है, यह इन दोनोंमें विशेषता है । ज्ञानके समान इस दर्शन गुणका भी कभी निर्मूल विनाश नहीं होता, क्योंकि, अन्यथा तत्स्वरूप जीवके भी विनाशका प्रसंग दुर्निवार होगा । इस प्रकारके दर्शन गुणका जो आवरण करता है वह दर्शनावरणीय कर्म है । अभिप्राय यह है कि जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगके द्वारा कर्मस्वरूपसे परिणत होकर जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त होता हुआ दर्शन गुणका आवरण करता है उसे दर्शनावरणीय कर्म समझना चाहिये ।

वेदणीयं ॥ ७ ॥

वेदनीय कर्म है ॥ ७ ॥

जो वेदन अर्थात् अनुभवन किया जाय वह वेदनीय कर्म है। 'वेद्यते इति वेदनीयम्' अर्थात् जिसका वेदन किया जाय वह वेदनीय है, इस निरुक्तिके अनुसार यद्यपि सब ही कर्मोंके वेदनीयपनेका प्रसंग प्राप्त होता है, फिर भी यहां रूढिके वश इस 'वेदनीय' शब्दको विवक्षित पौद्गलिक कर्मका वाचक ग्रहण करना चाहिये। अथवा, 'वेदयति इति वेदनीयम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्वादिके निमित्तसे कर्म पर्यायको प्राप्त होता हुआ जीवके साथ सम्बद्ध होकर उसे सुख और दुखका अनुभव कराता है वह 'वेदनीय' इस नामसे कहा जाता है।

मोहणीयं ॥ ८ ॥

मोहनीय कर्म है ॥ ८ ॥

'मोहयतीति मोहनीयम्' अर्थात् जो जीवको मोहित करता है वह 'मोहनीय' कहा जाता है। 'वेदनीय' शब्दके समान इस मोहनीय शब्दको भी कर्मविशेषमें रूढ समझना चाहिये। इसीलिये यहां धतूरा, शराब एवं स्त्री आदि भी यद्यपि जीवको मोहित करनेवाले हैं, फिर भी उन्हें मोहनीयपनेका प्रसंग नहीं प्राप्त होता है।

आउअं ॥ ९ ॥

आयु कर्म है ॥ ९ ॥

'एति भवधारणं प्रति इति आयुः' इस निरुक्तिके अनुसार जो भवधारणके प्रति जाता है वह आयु कर्म है। अभिप्राय यह कि जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व आदि बन्धकारणोंके द्वारा नारक आदि भवोंके धारण करानेकी शक्तिसे परिणत होकर जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं उनका नाम आयु कर्म है।

णामं ॥ १० ॥

नाम कर्म है ॥ १० ॥

जो नाना प्रकारकी रचना करता है वह नामकर्म कहलाता है। अभिप्राय यह कि शरीर व उसके संस्थान, संहनन, वर्ण एवं गन्ध आदि कार्योंके करनेवाले जो पुद्गलस्कन्ध जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं वे नामकर्म कहे जाते हैं।

गोदं ॥ ११ ॥

गोत्र कर्म है ॥ ११ ॥

'गमयति उच्च-नीचकुलम् इति गोत्रम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो उच्च और नीच कुलको बतलाता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं। अभिप्राय यह है कि जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व आदि बन्धकारणोंके द्वारा जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त होकर उसे उच्च और नीच कुलमें उत्पन्न कराता

है उसे गोत्रकर्म समझना चाहिये ।

अंतरायं चेदि ॥ १२ ॥

अन्तराय कर्म है ॥ १२ ॥

' अन्तरम् एति इति अन्तरायः ' इस निरुक्तिके अनुसार जो पुद्गलस्कन्ध अपने बन्धकारणोंके द्वारा जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त होकर दान, लाभ, भोग और उपभोग आदिमें विघ्न करता है उसे अन्तराय कर्म जानना चाहिये ।

इस प्रकार आठ मूलप्रकृतियोंका निर्देश करके अब आगे उनके उत्तर भेदोंका निर्देश किया जाता है--

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ ॥ १३ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच उत्तर प्रकृतियां हैं ॥ १३ ॥

आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ १४ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ये वे ज्ञानावरणीयकी पांच प्रकृतियां हैं ॥ १४ ॥

अभिमुख और नियमित अर्थके अवबोधको अभिनिबोध कहते हैं । यहां अभिमुखसे अभिप्राय स्थूल, वर्तमान और व्यवधानरहित अर्थोंका है । चक्षु इन्द्रियमें रूप, श्रोत्रेन्द्रियमें शब्द, घ्राणेन्द्रियमें गन्ध, रसना इन्द्रियमें रस, स्पर्शनेन्द्रियमें स्पर्श और नोइन्द्रिय (मन) में दृष्ट, श्रुत एवं अनुभूत पदार्थ नियमित हैं । इस प्रकारके अभिमुख और नियमित पदार्थोंका जो बोध होता है वह अभिनिबोध कहलाता है । इस अभिनिबोधको ही यहां आभिनिबोधिकरूपसे ग्रहण किया गया है । वह आभिनिबोधिकज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार प्रकारका है । विषय (बाह्य पदार्थ) और विषयी (इन्द्रियों) के सम्बन्धके पश्चात् जो प्रथम ग्रहण होता है उसका नाम अवग्रह है । वह दो प्रकारका है-- अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह । इनमें जो अप्राप्त अर्थको ग्रहण करता है वह अर्थावग्रह तथा जो प्राप्त अर्थको ग्रहण करता है वह व्यंजनावग्रह कहा जाता है । इनमें अप्राप्त अर्थका ग्रहण चक्षु इन्द्रियके द्वारा और प्राप्त अर्थका ग्रहण स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके द्वारा होता है । अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थके विषयमें जो आकांक्षारूप विशेष ज्ञान होता है उसका नाम ईहा है । जैसे ' यह भव्य होना चाहिये ' इस प्रकारका ज्ञान । ईहाके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थके विषयमें सन्देहको दूर करते हुए जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है उसे अवाय कहते हैं । जैसे ' यह भव्य ही है ' इस प्रकारका ज्ञान । जिस ज्ञानके निमित्तसे जीवमें कालान्तरमें भी अविस्मरणका कारणभूत संस्कार उत्पन्न होता है उसका नाम धारणा है । ये चारों ज्ञान बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनके प्रतिपक्षी एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत,

उक्त और अध्रुवके भेदसे बारह प्रकारके पदार्थोंको ग्रहण करती हैं, अतः उनके अड़तालीस (१२×४) भेद हो जाते हैं। ये अड़तालीस भेद चूंकि पांच इन्द्रियों और मनसे उत्पन्न होते हैं अत एव अर्थावग्रहके (४८×६=२८८) भेद हो जाते हैं। अव्यक्त पदार्थका ज्ञान मन और चक्षु इन्द्रियसे नहीं होता, तथा उस अव्यक्त पदार्थका केवल अवग्रह ही होता है, ईहादिक नहीं होते। इस कारण उपर्युक्त बाह्य पदार्थोंको शेष चार इन्द्रियोंसे गुणित करनेपर व्यंजनावग्रहके ४८ भेद होते हैं। पूर्वोक्त २८८ भेदोंमें इन ४८ भेदोंको मिला देनेपर आभिनिबोधिकज्ञानके सब भेद ३३६ होते हैं। इस प्रकारके ज्ञानका जो आवरण करता है उसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

मतिज्ञानसे ग्रहण किये गये पदार्थके सम्बन्धसे अन्य पदार्थका जो ग्रहण होता है उसका नाम श्रुतज्ञान है। जैसे 'घट' आदि शब्दोंको सुनकर उनसे घट आदि पदार्थोंका बोध होना अथवा धूमको देखकर उससे अग्निका ग्रहण करना। वह श्रुतज्ञान बीस प्रकारका है— पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास। इस बीस भेदरूप श्रुतज्ञानका जो आवरण करता है वह श्रुतज्ञानावरणीय कर्म है।

जो नीचेकी ओर विशेषरूपसे प्रवृत्त हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। अथवा अवधि नाम मर्यादाका है। इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा विषय सम्बन्धी मर्यादाके ज्ञानको अवधिज्ञान कहते हैं। वह अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका है। जो कर्म इस अवधिज्ञानका आवरण करता है उसे अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

दूसरे व्यक्तिके मनमें स्थित पदार्थ उपचारसे मन कहलाता है, उसकी पर्यायों अर्थात् विशेष अवस्थाओंको मनःपर्यय कहते हैं, उन्हें जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। वह मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान मनसे चिन्तित पदार्थको ही जानता है, अचिन्तित पदार्थको नहीं जानता। चिन्तित पदार्थको भी जानता हुआ वह सरल रूपसे चिन्तितको ही जानता है, वक्ररूपसे चिन्तित पदार्थको नहीं जानता। किन्तु विपुलमति मनःपर्ययज्ञान चिन्तित और अचिन्तित तथा वक्रचिन्तित और अवक्र-चिन्तित पदार्थको भी जानता है। इस प्रकारके मनःपर्ययज्ञानका आवरण करनेवाले कर्मको मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

'केवल' असहायको कहते हैं। जो ज्ञान असहाय अर्थात् इन्द्रिय और आलोक आदि-की अपेक्षासे रहित है, तीनों कालों सम्बन्धी अनन्त वस्तुओंको जानता है, सर्वव्यापक है, और प्रतिपक्षसे रहित है; उसे केवलज्ञान कहते हैं। इस केवलज्ञानका आवरण करनेवाले कर्मको केवलज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ ॥ १५ ॥

दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियां हैं ॥ १५ ॥

णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ १६ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला; तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, ये नौ दर्शनावरणीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियां हैं ॥ १६ ॥

निद्रानिद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव वृक्षके ऊपर, विषम भूमिपर अथवा जहां कहीं भी घुरघुराता हुआ या नहीं भी घुरघुराता हुआ गाढ निद्रामें सोता है। प्रचलाप्रचला प्रकृतिके तीव्र उदयसे प्राणी बैठा हुआ या खड़ा हुआ भी खूब सोता है। उस अवस्थामें उसके मुंहसे लार गिरने लगती है तथा शरीर कांपता है। स्त्यानगृद्धिके तीव्र उदयसे उठानेपर भी जीव पुनः सो जाता है, सोता हुआ भी काम किया करता है, बड़बड़ाता और दांतोंको कडकडाता है। निद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव अल्प कालके लिये सोता है, उठानेपर शीघ्रतासे उठ बैठता है, और मन्द शब्दके द्वारा भी सचेत हो जाता है। प्रचला प्रकृतिके तीव्र उदयसे नेत्र वालुकासे भरे हुएके समान बोझल होते हैं, सिर भारी भारको उठाए हुएके समान भारी हो जाता है, नेत्र बार बार खुलते और बंद होते हैं, निद्राके कारण गिरता हुआ भी अपनेको सम्हाल लेता है, थोड़ा थोड़ा कांपता है और सावधान सोता है। ये पांचों ही प्रकृतियां चूंकि जीवकी चेतनाको नष्ट करके उसके दर्शन गुणका अवरोध करती हैं, इसीलिये ये दर्शनावरणीयके अन्तर्गत हैं।

ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले प्रयत्नसे सम्बद्ध स्वसंवेदनको दर्शन कहते हैं। अभिप्राय यह कि जो उपयोग आत्माको विषय करता है वह दर्शन कहलाता है। चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले प्रयत्नसे संयुक्त स्वसंवेदनके होनेपर 'मैं रूप देखनेमें समर्थ हूं' इस प्रकारकी सम्भावनाके हेतुको चक्षुदर्शन कहते हैं। इस चक्षुदर्शनका आवरण करनेवाले कर्मको चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। चक्षुरिन्द्रियके अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियोंके और मनके दर्शनको अचक्षुदर्शन कहते हैं। इस अचक्षुदर्शनका जो आवरण करता है वह अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म है। अवधिके दर्शनको अवधिदर्शन कहते हैं। उस अवधिदर्शनका जो आवरण करता है उसे अवधिदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। प्रतिपक्षसे रहित जो दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं। उस केवलदर्शनका आवरण करनेवाले कर्मको केवलदर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ ॥ १७ ॥

वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं ॥ १७ ॥

सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ॥ १८ ॥

सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो उस वेदनीय कर्मकी प्रकृतियां हैं ॥ १८ ॥

साता नाम सुखका है, उस सुखका जो अनुभव कराता है वह सातावेदनीय कर्म है। असाता नाम दुःखका है, उस दुःखका जो अनुभव कराता है उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं।

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ ॥ १९ ॥

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां हैं ॥ १९ ॥

जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं दंसणमोहणीयं चेव चारित्तमोहणीयं चेव ॥ २० ॥

जो वह मोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है– दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ॥

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं। तस्स संतकम्मं पुण तिविहं– सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि ॥ २१ ॥

जो वह दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है, किन्तु उसका सत्त्व तीन प्रकारका है– सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ २१ ॥

आप्त, आगम और पदार्थविषयक रुचि अथवा श्रद्धानका नाम दर्शन है। उस दर्शनको जो मोहित अर्थात् विपरीत कर देता है उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं। इस कर्मके उदयसे अनाप्तमें आप्तबुद्धि, अनागममें आगमबुद्धि और अपदार्थमें पदार्थबुद्धि हुआ करती है; तथा आप्त, आगम और पदार्थविषयक श्रद्धानमें अस्थिरताके साथ आप्त-अनाप्त, आगम-अनागम और पदार्थ-अपदार्थ दोनोंमें भी श्रद्धा हुआ करती है। वह दर्शनमोहनीय कर्म बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है, क्योंकि, मिथ्यात्व आदि बन्धकारणोंके द्वारा आनेवाले दर्शनमोहनीयरूप पुद्गलस्कन्ध एक स्वभाव-रूप पाये जाते हैं। इस प्रकार बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका होकर भी वह सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है। कारण यह कि जिस प्रकार चक्कीसे दले गये कोदोंके कोदों, तंदुल और अर्ध तंदुल ये तीन भाग हो जाते हैं उसी प्रकार अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा दले गये दर्शन-मोहनीयके तीन विभाग हो जाते हैं। उनमें जिसके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थकी श्रद्धामें शिथिलता होती है वह सम्यक्त्वप्रकृति है। जिसके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंमें अश्रद्धा होती है वह मिथ्यात्वप्रकृति है। तथा जिसके उदयसे आप्त, आगम व पदार्थोंमें तथा उनके प्रतिपक्षभूत कुदेव, कुशास्त्र और कुतत्त्वोंमें भी एक साथ श्रद्धा उत्पन्न होती है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है।

जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं कसायवेदणीयं चेव णोकसायवेदणीयं चेव ॥

जो वह चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है– कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय ॥ २२ ॥

पापक्रियाकी निवृत्तिको चारित्र कहते हैं। पापसे अभिप्राय घातिकर्मोंका है। अतएव उनकी जो मिथ्यात्व व अविरति आदि स्वरूप क्रिया है उसके अभावको चारित्र समझना चाहिये।

उस चारित्रको जो मोहित करता है, अर्थात् आच्छादित करता है, उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं। वह चारित्रमोहनीय कर्म कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीयके भेदसे दो प्रकारका है।

जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं– अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं कोह-संजलणं माणसंजलणं मायासंजलणं लोहसंजलणं चेदि ॥ २३ ॥

जो वह कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है– अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ॥ २३ ॥

जो दुःखरूप धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी खेतका कर्षण करती हैं, अर्थात् उसे फलोत्पादक बनाती हैं वे कषाय कहलाती हैं। वे सामान्यरूपसे चार हैं– क्रोध, मान, माया और लोभ। क्रोध, रोष और संरम्भ ये समानार्थक शब्द हैं। मान और गर्व ये एकार्थवाचक नाम हैं। माया, निकृति, वंचना और कुटिलता ये पर्यायवाची शब्द हैं। लोभ और गृद्धि ये दोनों एकार्थक नाम हैं। जिनका स्वभाव अनन्त भवोंकी परम्पराको स्थिर रखना है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं। अभिप्राय यह कि जिन क्रोध, मान, माया और लोभके साथ सम्बद्ध होकर जीव अनन्त भवोंमें परिभ्रमण करता है उन क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंका नाम अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ है। इन कषायोंके द्वारा जीवमें उत्पन्न हुआ संस्कार चूंकि अनन्त भव तक रहता है, इसलिये इनका अनन्तानुबन्धी यह सार्थक नाम है। ये चारों कषायें सम्यक्त्व और चारित्र दोनोंकी विरोधी हैं। जो क्रोध, मान, माया और लोभ जीवके अप्रत्याख्यान अर्थात् ईषत् प्रत्याख्यान (देशसंयम) का विघात करते हैं वे अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं। प्रत्याख्यान, संयम और महाव्रत ये तीनों समानार्थक नाम हैं। जो क्रोधादि उस प्रत्याख्यानका आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं। जो क्रोध, मान, माया और लोभ चारित्रके साथ उदित रहकर भी उसका विघात नहीं करते हैं उन्हें संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ कहा जाता है। संज्वलन इस शब्दमें 'सम्' का अर्थ एकीभाव और ज्वलनका अर्थ है जलना अर्थात् प्रकाशमान रहना है। अभिप्राय यह हुआ कि जो चारित्रके साथ एकीभावरूपसे प्रकाशमान रहते हुए भी उसका विघात नहीं करते हैं वे संज्वलन क्रोधादि कहलाते हैं। ये संज्वलन कषायें चूंकि संयममें मलको उत्पन्न करके यथाख्यात चारित्रकी उत्पत्तिके प्रतिबन्धक होती हैं, इसीलिये इनको चारित्रावरण माना गया है।

जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं– इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा चेदि ॥ २४ ॥

जो वह नोकषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है– स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद,

हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ॥ २४ ॥

नोकषाय इस शब्दमें 'नो' शब्दको एकदेशका प्रतिषेध करनेवाला ग्रहण करना चाहिये। अभिप्राय यह कि नोकषाय ईषत् कषायको कहते हैं। चूंकि इनकी स्थिति और अनुभाग कषायोंकी अपेक्षा हीन होते हैं, इसीलिये इनको नोकषाय माना जाता है।

जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे पुरुषविषयक आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्मस्कन्धोंको स्त्रीवेद कहा जाता है। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे स्त्रीविषयक आकांक्षा उत्पन्न होती है उन्हें पुरुषवेद कहते हैं। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे ईटोंकी अवाके अग्निके समान स्त्री और पुरुष दोनोंकी ही आकांक्षा उत्पन्न होती है उनका नाम नपुंसकवेद है। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवके हास्यका कारणभूत राग उत्पन्न होता है उन्हें हास्य नोकषाय कहते हैं। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें रागभाव उत्पन्न होता है उनको रति नोकषाय कहते हैं। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें द्वेषभाव उत्पन्न होता है उनका नाम अरति नोकषाय है। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवमें शोक उत्पन्न होता है उनको शोक नोकषाय कहा जाता है। उदयमें आये हुए जिन कर्मस्कन्धोंके द्वारा जीवमें भय उत्पन्न होता है उनका नाम भय नोकषाय है। जिन कर्मोंके उदयसे जीवके ग्लानि उत्पन्न होती है उनको जुगप्सा नोकषाय कहा जाता हैं।

आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ ॥ २५ ॥

आयु कर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ २५ ॥

णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि ॥ २६ ॥

नारकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु ये आयु कर्मकी वे चार प्रकृतियां हैं ॥२६॥

जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे ऊर्ध्वगमन स्वभाववाले जीवका नारक भवमें अवस्थान होता है उन कर्मस्कन्धोंका नाम नारकायु है। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे तिर्यंच भवमें जीवका अवस्थान होता है उन कर्मस्कन्धोंको तिर्यगायु कहा जाता है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका भी स्वरूप जानना चाहिये।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडीणामाइं ॥ २७ ॥

नाम कर्मकी व्यालीस पिण्डप्रकृतियां हैं ॥ २७ ॥

गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअलहुवणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहाय-गदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेय-

सरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभग-णामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि ॥ २८ ॥

गति नामकर्म, जाति नामकर्म, शरीर नामकर्म, शरीरबन्धन नामकर्म, शरीरसंघात नामकर्म, शरीरसंस्थान नामकर्म, शरीरअंगोपांग नामकर्म, शरीरसंहनन नामकर्म, वर्ण नामकर्म, गन्ध नामकर्म, रस नामकर्म, स्पर्श नामकर्म, आनुपूर्वी नामकर्म, अगुरु-अलघु नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघात नामकर्म, उच्छ्वास नामकर्म, आताप नामकर्म, उद्योत नामकर्म, विहायोगति नामकर्म, त्रस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, बादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, अपर्याप्त नामकर्म, प्रत्येकशरीर नामकर्म, साधारणशरीर नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, शुभ नामकर्म, अशुभ नामकर्म, सुभग नामकर्म, दुर्भग नामकर्म, सुस्वर नामकर्म, दुःस्वर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, निर्माण नामकर्म और तीर्थंकर नामकर्म; ये नामकर्मकी ब्यालीस पिण्डप्रकृतियां हैं ॥ २८ ॥

जिसके उदयसे जीव दूसरे भवको प्राप्त होता है उसे गति नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मस्कन्धके उदयसे जीवोंके सदृशता उत्पन्न होती है वह कर्मस्कन्ध जाति नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा और कार्मणवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीरयोग्य परिणामोंसे परिणत होकर जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। जिस नामकर्मके उदयसे शरीरके निमित्त आकर जीवके साथ सम्बद्ध हुए पुद्गलोंका परस्पर बन्ध होता है उसे शरीरबन्धन नामकर्म कहते हैं। जिसके द्वारा औदारिक आदि शरीररूप पुद्गलोंमें परस्पर एकमेक होकर छिद्र-रहित एकरूपता की जाती है वह शरीरसंघात नामकर्म कहलाता है। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे शरीरकी आकृति की जाती है उनको शरीरसंस्थान नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मस्कन्धके उदयसे शरीरके अंग और उपांगोंकी निष्पत्ति होती है उस कर्मस्कन्धका नाम शरीरांगोपांग नामकर्म है। यहां दो पाद, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, हृदय और शिर इन आठको अंग तथा शेष नाक व कान आदिकोंको उपांग समझना चाहिए। जिसके उदयसे हड्डियोंका परस्पर बन्धनविशेष होता है उसे शरीरसंहनन नामकर्म कहा जाता है। जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें वर्णकी उत्पत्ति होती है उसे वर्ण नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार गन्ध, रस और स्पर्श नामकर्मोंका भी स्वरूप जान लेना चाहिये। जिस कर्मके उदयसे पूर्व और उत्तर शरीरोंके अन्तरालवर्ती एक, दो और तीन समयोंमें वर्तमान जीवके आत्मप्रदेशोंका विशिष्ट आकार होता है उसे आनुपूर्वी कहते हैं। इसके उदयसे विग्रहगतिमें वर्तमान जीवके पूर्व शरीररूप आकारका विनाश नहीं होता है। जिसके उदयसे शरीर न तो लोहपिण्डके समान भारी होता है कि जिससे नीचे गिर जाय और न रूईके समान हलका ही होता है कि जिससे ऊपर उड़कर चला जाय उसे अगुरु-अलघु नामकर्म कहते हैं।

उपघात शब्दका अर्थ है आत्मघात। जिस कर्मके उदयसे ऐसे शरीरके अवयव हों कि जिनके निमित्तसे स्वयंका ही घात होता हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। जैसे बारहसिंगाके सींग आदि। पर जीवोंके घातको परघात कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें परके घातके कारणभूत पुद्गल उत्पन्न होते हैं वह परघात नामकर्म कहलाता है। जैसे— सांपकी दाढोंमें विष आदि। सांस लेनेका नाम उच्छ्वास है। जिस कर्मके उदयसे जीव उच्छ्वास और निःश्वासरूप कार्यके उत्पादनमें समर्थ होता है उस कर्मकी उच्छ्वास संज्ञा है। जिस नामकर्मके उदयसे जीवके शरीरमें आताप होता है उसे आतप नामकर्म कहते हैं। आतपसे यहां अभिप्राय उष्णतासे संयुक्त प्रकाशका है। इस नामकर्मका उदय सूर्यमण्डलगत पृथिवीकायिक जीवोंमें पाया जाता है। उद्योतन अर्थात् चमकनेको उद्योत कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें उद्योत उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म कहलाता है। इसका उदय चन्द्रबिम्बगत पृथिवीकायिक जीवोंके एवं जुगुनू आदिके पाया जाता है। विहायस् नाम आकाशका है। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवका आकाशमें गमन होता है उनको विहायोगति नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवोंके त्रसपना (द्वीन्द्रियादि पर्याय) होता है उस कर्मकी त्रस संज्ञा है। जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावरपनेको प्राप्त होता है अर्थात् एकेन्द्रियोंमें जन्म लेता है उसका नाम स्थावर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीव बादरकाय-वालोंमें उत्पन्न होता है उस कर्मकी बादर संज्ञा है। जिन जीवोंका शरीर दूसरे जीवोंको बाधा पहुंचाता है तथा स्वयं भी दूसरेके द्वारा बाधाको प्राप्त होता है वे बादर कायवाले कहलाते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्मताको प्राप्त होता है उस कर्मकी सूक्ष्म संज्ञा है। इस कर्मके उदयसे जीवको ऐसा शरीर प्राप्त होता है कि जो न तो दूसरे जीवोंको रोक सकता है और न उनके द्वारा स्वयं भी रोका जा सकता है। जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होता है उस कर्मकी पर्याप्त यह संज्ञा है। जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्तियोंको पूरा करनेके लिए समर्थ नहीं होता है उस कर्मकी अपर्याप्त यह संज्ञा है। जिस कर्मके उदयसे शरीर एक जीवके ही उपभोगका कारण होता है उसे प्रत्येकशरीर नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवके बहुत जीवोंके उपभोगका कारणभूत शरीर प्राप्त होता है उसका नाम साधारणशरीर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि, मांस और शुक्र; इन सात धातुओंकी स्थिरता होती है वह स्थिर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे इन सात धातुओंका परिणमन होता है वह अस्थिर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे अंगों और उपांगोंके शुभपना (रमणीयता) होता है वह शुभ नामकर्म है। जिस नामकर्मके उदयसे अंग और उपांगोंके अशुभपना होता है वह अशुभ नामकर्म कहलाता है। जिसके उदयसे स्त्री और पुरुषोंके सौभाग्य उत्पन्न होता है वह सुभग नामकर्म तथा जिसके उदयसे उन स्त्री और पुरुषोंके दुर्भगभाव उत्पन्न होता है वह दुर्भग नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंका स्वर मधुर होता है वह सुस्वर नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे जीवका स्वर गधा या ऊंट आदिके समान निन्द्य होता है वह दुःस्वर नामकर्म कहलाता है। आदेयताका अर्थ

बहुमान्यता है जिस कर्मके उदयसे जीवकी बहुमान्यता होती है वह आदेय नामकर्म कहलाता है। उससे विपरीत भाव (अनादरणीयता) को उत्पन्न करनेवाला अनादेय नामकर्म है। यश नाम गुणका है, उस गुणको जो प्रगट करता है उसे कीर्ति कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे लोगोंके द्वारा विद्यमान या अविद्यमान गुण प्रगट किये जाते हैं उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे अन्य जनोंके द्वारा विद्यमान या अविद्यमान अवगुण प्रगट किये जाते हैं उसका नाम अयशःकीर्ति नामकर्म है। नियत मानको निमान कहते हैं। वह दो प्रकारका है– प्रमाण निमान और संस्थान निमान। अभिप्राय यह कि जिस कर्मके उदयसे जीवोंके अंग और उपांग नियत प्रमाण और आकारमें हुआ करते हैं उसे निर्माण नामकर्म कहा जाता है। जिस कर्मके उदयसे जीव तीनों लोकोंके द्वारा पूजित होता है उसे तीर्थंकर नामकर्म कहते हैं।

जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं– णिरयगदिणामं तिरिक्खगदिणामं मणुसगदिणामं देवगदिणामं चेदि ॥ २९ ॥

जो वह गति नामकर्म है वह चार प्रकारका है– नरकगति नामकर्म, तिर्यग्गति नामकर्म मनुष्यगति नामकर्म और देवगति नामकर्म ॥ २९ ॥

जिस कर्मके उदयसे जीवको नारक पर्याय प्राप्त होती है उसका नाम नरकगति नामकर्म है। इसी प्रकार तिर्यग्गति आदि शेष तीन गतिनामकर्मोंका स्वरूप समझना चाहिये।

जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविहं– एइंदियजादिणामकम्मं बीइंदियजादिणामकम्मं तीइंदियजादिणामकम्मं चउरिंदियजादिणामकम्मं पंचिंदियजादिणामकम्मं चेदि ॥३०॥

जो वह जाति नामकर्म है वह पांच प्रकारका है– एकेन्द्रियजाति नामकर्म, द्वीन्द्रियजाति नामकर्म, त्रीन्द्रियजाति नामकर्म, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म और पंचेन्द्रियजाति नामकर्म ॥ ३० ॥

जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंकी एकेन्द्रिय जीवोंके साथ एकेन्द्रियस्वरूपसे सदृशता होती है वह एकेन्द्रियजाति नामकर्म कहलाता है। वह एकेन्द्रियजाति नामकर्म भी अनेक प्रकारका है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी द्वीन्द्रियत्वकी अपेक्षा समानता होती है वह द्वीन्द्रियजाति नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी त्रीन्द्रियभावकी अपेक्षा समानता होती है वह त्रीन्द्रियजाति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी चतुरिन्द्रियभावकी अपेक्षा समानता होती है वह चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी पंचेन्द्रियस्वरूपसे समानता होती है उसे पंचेन्द्रियजाति नामकर्म कहते हैं।

जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं– ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि ॥ ३१ ॥

जो वह शरीर नामकर्म है वह पांच प्रकारका है– औदारिकशरीर नामकर्म, वैक्रियिकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म, तैजसशरीर नामकर्म और कार्मणशरीर नामकर्म ॥ ३१ ॥

जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध जीवसे अवगाहित प्रदेशमें स्थित होकर रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्रस्वभाववाले औदारिकशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं उसे औदारिकशरीर नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके स्कन्ध अणिमा-महिमा आदि गुणोंसे संयुक्त वैक्रियिकशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं उसे वैक्रियिकशरीर नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके स्कन्ध आहारकशरीरके रूपसे परिणत होते हैं उस कर्मका नाम आहारकशरीर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे तैजसवर्गणाके स्कन्ध निःसरण और अनिःसरणरूप प्रशस्त अथवा अप्रशस्त तैजसशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं वह तैजस नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मका उदय सभी कर्मोंका आश्रयभूत होता है उसे कार्मणशरीर नामकर्म कहा जाता है।

जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं— ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीर-बंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेयासरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि ॥३२॥

जो वह शरीरबन्धन नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीरबन्धन नामकर्म, वैक्रियिकशरीरबन्धन नामकर्म, आहारकशरीरबन्धन नामकर्म, तैजसशरीरबन्धन नामकर्म और कार्मणशरीरबन्धन नामकर्म ॥ ३२ ॥

जिस कर्मके उदयसे औदारिकशरीरके परमाणु परस्पर बन्धको प्राप्त होते हैं उसे औदारिकशरीरबन्धन नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार शेष शरीरबन्धन नामकर्मोंका भी अर्थ जानना चाहिये।

जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीर-संघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेयासरीरसंघादणामं कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि ॥३३॥

जो वह शरीरसंघात नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीरसंघात नामकर्म, वैक्रियिकशरीरसंघात नामकर्म, आहारकशरीरसंघात नामकर्म, तैजसशरीरसंघात नामकर्म और कार्मण-शरीरसंघात नामकर्म ॥ ३३ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीररूपसे परिणत औदारिकशरीरके स्कन्ध छिद्ररहित होकर एकताको प्राप्त होते हैं उसे औदारिकशरीरसंघात नामकर्म कहा जाता है। इसी प्रकार शेष चार शरीरसंघात नामकर्मोंका भी अभिप्राय समझ लेना चाहिये।

जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं— समचउरससरीरसंठाणणामं णग्गोहपरि-मंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि ॥ ३४ ॥

जो वह शरीरसंस्थान नामकर्म है वह छह प्रकारका है— समचतुरस्रशरीरसंस्थान नामकर्म

न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थान नामकर्म, स्वातिशरीरसंस्थान नामकर्म, कुब्जशरीरसंस्थान नामकर्म, वामनशरीरसंस्थान नामकर्म और हुण्डशरीरसंस्थान नामकर्म ॥ ३४ ॥

जिसके उदयसे जीवोंका शरीर ऊपर, नीचे और मध्यमें सुन्दर और सुडोल होता है वह समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म कहलाता है। न्यग्रोधका अर्थ वटका वृक्ष होता है। जिसके उदयसे जीवके शरीरकी रचना वटवृक्षके घेरेके समान नाभिके ऊपर विस्तृत और नीचे हीन होती है उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान नामकर्म कहते हैं। स्वातिका अर्थ सर्पकी बांबी और सेमरका वृक्ष भी होता है। जिसके उदयसे शरीरकी रचना सर्पकी बांबीके समान नाभिसे ऊपर हीन और उसके नीचे विस्तृत होती है वह स्वातिसंस्थान नामकर्म कहलाता है। जिसके उदयसे पीठके भागमें बहुत पुद्गलस्वरूप कुबड़ा शरीर होता है उसे कुब्जशरीरसंस्थान नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे समस्त अंग-उपांगोंकी हीनतारूप बौना शरीर होता है वह वामनसंस्थान नामकर्म कहलाता है। जिसके उदयसे विषम आकारवाले पत्थरोंसे भरी हुई मशकके समान शरीरके अवयवोंकी रचना विषम (बेडौल) होती है उसका नाम हुण्डशरीरसंस्थान नामकर्म है।

जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं– ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि ॥ ३५ ॥

जो वह शरीरअंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकारका है– औदारिकशरीरअंगोपांग नामकर्म वैक्रियिकशरीरअंगोपांग नामकर्म, आहारकशरीरअंगोपांग नामकर्म ॥ ३५ ॥

जिस कर्मके उदयसे औदारिकशरिरके अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं वह औदारिकशरीरअंगोपांग नामकर्म है। इसी प्रकार शेष दो अंगोपांग नामकर्मोंका भी अर्थ जानना चाहिये। तैजस और कार्मणशरीरके अंगोपांग नहीं होते हैं, क्योंकि, उनके हाथ, पांव और गला आदि अवयव सम्भव नहीं हैं।

जं तं शरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं– वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि ॥ ३६ ॥

जो वह शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है– वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, वज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, नाराचशरीरसंहनन नामकर्म, अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, कीलकशरीरसंहनन नामकर्म और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म ॥ ३६ ॥

हड्डियोंके संचयको संहनन कहते हैं। ऋषभका अर्थ वेष्टन होता है। जिस कर्मके उदयसे वज्रमय हड्डियां वज्रमय वेष्टनसे वेष्टित और वज्रमय नाराचसे कीलित होती हैं वह वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे उपर्युक्त अस्थिबन्ध वज्रमयवेष्टनसे रहित होता है वह

वज्रनाराचशरीरसंहनन कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे नाराच, कीलें और हड्डियोंकी संधियां वज्रमय नहीं होती हैं वह नाराचशरीरसंहनन नामकर्म कहा जाता है। जिस कर्मके उदयसे हड्डियोंकी संधियां नाराचसे अर्धविद्ध होती हैं उसका नाम अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे हड्डियां वज्रमय न होकर कीलित मात्र होती हैं वह कीलितशरीरसंहनन नामकर्म कहलाता है। जिस कर्मके उदयसे हड्डियां केवल सिराओं, स्नायुओं और मांससे सम्बद्ध मात्र होती हैं वह असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म कहा जाता है।

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं– किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हालिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि ॥ ३७ ॥

जो वह वर्ण नामकर्म है वह पांच प्रकारका है– कृष्णवर्ण नामकर्म, नीलवर्ण नामकर्म, रुधिरवर्ण नामकर्म, हारिद्रवर्ण नामकर्म और शुक्लवर्ण नामकर्म ॥ ३७ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्‌गलोंका वर्ण कृष्ण हुआ करता है वह कृष्णवर्ण नामकर्म कहलाता है। इसी प्रकार शेष वर्ण नामकर्मोंका भी अर्थ जान लेना चाहिये।

जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं– सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेव ॥ ३८ ॥

जो वह गन्ध नामकर्म है वह दो प्रकारका है– सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध ॥ ३८ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्गल सुगन्धित होते हैं वह सुरभिगन्ध नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्गल दुर्गन्धित होते हैं वह दुरभिगन्ध नामकर्म है।

जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं– तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबणामं महुरणामं चेदि ॥ ३९ ॥

जो वह रस नामकर्म है वह पांच प्रकारका है– तिक्त नामकर्म, कटुक नामकर्म, कषाय नामकर्म, आम्ल नामकर्म और मधुर नामकर्म ॥ ३९ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्गल तिक्त रससे परिणत होते हैं वह तिक्त नामकर्म है। इसी प्रकार शेष चार रस नामकर्मोंका अर्थ भी जानना चाहिए।

जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं– कक्खडणामं मउवणामं गुरुअणामं लहुवणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि ॥ ४० ॥

जो वह स्पर्श नामकर्म है वह आठ प्रकारका है– कर्कश नामकर्म, मृदु नामकर्म, गुरुक नामकर्म, लघुक नामकर्म, स्निग्ध नामकर्म, रूक्ष नामकर्म, शीत नामकर्म और उष्ण नामकर्म ॥ ४० ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्‌गलोंमें कठोरता होती है वह कर्कश नामकर्म कहलाता है। इसी प्रकार शेष सात स्पर्श नामकर्मोंका भी अर्थ जानना चाहिए।

जं तं आणुपुव्वीणामकम्मं तं चउव्विहं–णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि॥

जो वह आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकारका है– नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म ॥ ४१ ॥

जिस कर्मके उदयसे नरकगतिको प्राप्त होकर विग्रहगतिमें वर्तमान जीवका नरकगतिके योग्य आकार होता है उसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार शेष तीन आनुपूर्वी नामकर्मोंका भी स्वरूप समझना चाहिये।

अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणाणामं

अगुरु-अलघु नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघात नामकर्म, उच्छ्वास नामकर्म, आताप नामकर्म और उद्योत नामकर्म ॥ ४२ ॥

'नामकर्मकी ब्यालीस पिण्डप्रकृतियां (अवान्तरभेद युक्त प्रकृतियां) हैं' यह निर्देश प्राधान्यपदकी अपेक्षा है, इस बातको बतलानेके लिये यहांपर इन प्रकृतियोंका निर्देश किया गया है, क्योंकि, ये प्रकृतियां पिण्डप्रकृतियां नहीं हैं।

जं तं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं–पसत्थविहायगदी अप्पसत्थविहायगदी चेदि॥

जो वह विहायोगति नामकर्म है वह दो प्रकारका है– प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म ॥ ४३ ॥

जिस कर्मके उदयसे जीवोंका सिंह, हाथी और वृषभ (बैल) के समान प्रशस्त गमन होता है वह प्रशस्तविहायोगति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे गधा, ऊंट और शृगालके समान उनका अप्रशस्त गमन होता है वह अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म है।

तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं एवं जाव णिमिण-तित्थयरणामं चेदि ॥ ४४ ॥

त्रस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, बादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म और पर्याप्त नामकर्म; इनको आदि लेकर निर्माण और तीर्थंकर नामकर्म तक अर्थात् अपर्याप्त नामकर्म, प्रत्येकशरीर नामकर्म, साधारणशरीर नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, शुभ नामकर्म, अशुभ नामकर्म, सुभग नामकर्म, दुर्भग नामकर्म, सुस्वर नामकर्म, दुःस्वर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, निर्माण नामकर्म, और तीर्थंकर नामकर्म ॥ ४४ ॥

ये सब पिण्डप्रकृतियां नहीं हैं, इस बातको बतलानेके लिये यहां इनका फिरसे उल्लेख किया गया है।

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णिच्चागोदं चेव ॥ ४५ ॥

गोत्र कर्मकी दो प्रकृतियां हैं– उच्चगोत्र और नीचगोत्र ॥ ४५ ॥

जिस कर्मके उदयसे जीवोंके प्रशस्त गोत्र होता है वह उच्चगोत्र कर्म है, तथा जिसके उदयसे जीवोंके लोकनिन्द्य गोत्र होता है वह नीच गोत्र कहलाता है ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ– दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ॥ ४६ ॥

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं– दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ॥ ४६ ॥

जिस कर्मके उदयसे दान देते हुए जीवके विघ्न उपस्थित होता है वह दानान्तराय कर्म है। जिस कर्मके उदयसे लाभमें विघ्न होता है वह लाभान्तराय कर्म हैं । जिस कर्मके उदयसे भोगमें विघ्न होता है वह भोगान्तराय कर्म है । जिस कर्मके उदयसे परिभोगमें विघ्न होता है वह परिभोगान्तराय कर्म है । जो वस्तु एक बार भोगी जाती है उसका नाम भोग है । जैसे– ताम्बूल व भोजन-पान आदि । तथा जो वस्तु पुनः पुनः भोगी जाती है उसका नाम परिभोग है । जैसे– स्त्री, वस्त्र व आभूषण आदि । जिस कर्मके उदयसे वीर्यमें विघ्न होता है वह वीर्यान्तराय कर्म है ।

॥ प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामकी प्रथम चूलिका समाप्त हुई ॥ १ ॥

---

२. बिदिया चूलिया

एत्तो ठ्ठाणसमुक्कित्तणं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

अब आगे स्थान-समुत्कीर्तनका वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

जिस संख्या अथवा अवस्थाविशेषमें प्रकृतियां अवस्थित रहती हैं उसे 'स्थान' कहते हैं, समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपणा ये समानार्थक शब्द हैं । उक्त स्थानके समुत्कीर्तनको स्थानसमुत्कीर्तन कहते हैं । अभिप्राय यह है कि पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक चूलिकामें जिन प्रकृतियोंका निर्देश मात्र किया गया है उन प्रकृतियोंका बन्ध क्या एक साथ होता है, अथवा क्रमसे होता है, इसका स्पष्टीकरण इस द्वितीय स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें किया गया है ।

तं जहा ॥ २ ॥

वह स्थानसमुत्कीर्तन इस प्रकार है ॥ २ ॥

अब उन स्थानोंके स्वरूप और संख्याकी प्ररूपणा करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ३ ॥

वह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत सम्बन्धी है ॥ ३ ॥

वह स्थान अर्थात् प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टिके, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा संयतासंयतके अथवा संयतके होता है; क्योंकि, इनको छोड़कर अन्य कोई बन्धक नहीं हैं। यहां संयत शब्दसे प्रमत्तसंयतको आदि लेकर सयोगिकेवली तक आठ संयत गुणस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, संयतभावकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है। यहां अयोगिकेवली गुणस्थानका ग्रहण नहीं किया गया है, क्योंकि, वहां बन्ध सम्भव नहीं है।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ— आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ ४ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ ४ ॥

एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ५ ॥

इन पांचों प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५ ॥

इन पांचों प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका 'पांच' संख्यासे उपलक्षित एक ही अवस्थाविशेषमें स्थान अर्थात् अवस्थान होता है। अभिप्राय यह है कि इन पांचों प्रकृतियोंका बन्ध एक परिणामविशेषसे एक साथ हुआ करता है।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ६ ॥

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ६ ॥

यहां 'संयत' कहनेपर सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत पर्यन्त संयत जीवोंका ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इससे ऊपरके संयत जीवोंके उस ज्ञानावरणीय कर्मका बन्ध नहीं होता है।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिण्णि ट्ठाणाणि— णवण्हं छण्हं चदुण्हं ट्ठाणमिदि ॥ ७ ॥

दर्शनावरणीय कर्मके तीन बन्धस्थान हैं— नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थान, छह प्रकृतिरूप बन्धस्थान और चार प्रकृतिरूप बन्धस्थान ॥ ७ ॥

अब इसके आगे नौ सूत्रोंके द्वारा इसीका स्पष्टीकरण किया जाता है—

तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं— णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥८॥

दर्शनावरणीयकर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला; तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय; इन नौ प्रकृतियोंके समूहरूप यह प्रथम बन्धस्थान है ॥ ८ ॥

एदासिं णवण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ९ ॥

इन नौ प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ १० ॥

वह नौ प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके और सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥१०॥

अभिप्राय यह है कि इन नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके स्वामी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि होते हैं।

तत्थ इमं छण्हं ट्ठाणं— णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीओ वज्ज णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ ११ ॥

दर्शनावरणीय कर्मके उपर्युक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर निद्रा और प्रचला तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय; इन छह प्रकृतियोंके समूहरूप यह दूसरा बन्धस्थान है ॥ ११ ॥

एदासिं छण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १२ ॥

इन छह प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका उनके बन्धयोग्य एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ १२ ॥

तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १३ ॥

उस छह प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थानके स्वामी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत होते हैं ॥ १३ ॥

यहां सूत्रमें 'संयत' ऐसा कहनेपर अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे प्रथम भागमें वर्तमान संयतों तकका ग्रहण करना चाहिए।

तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं– णिद्दा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओधिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ १४ ॥

दर्शनावरणीय कर्मके उक्त दूसरे स्थानकी प्रकृतियोंमेंसे निद्रा और प्रचलाको छोड़कर चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय इन चार प्रकृतियोंके समूहरूप उसका तीसरा बन्धस्थान होता है ॥ १४ ॥

एदासिं चदुण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १५ ॥

इन चार प्रकृतियोंके बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १५ ॥

प्राकृतमें चूंकि प्रथमाके अर्थमें षष्ठी और सप्तमी विभक्तियोंका प्रयोग देखा जाता है, अतएव इन सात प्रकृतियोंके बांधनेवाले जीवका एक ही स्थान होता है; ऐसा भी सूत्रका अर्थ हो सकता है।

तं संजदस्स ॥ १६ ॥

वह चार प्रकृतिरूप तृतीय बन्धस्थान संयतके होता है ॥ १६ ॥

कारण यह है कि अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे द्वितीय भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत तक इन चारों प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है।

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ॥१७॥

वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं– साता वेदनीय और असाता वेदनीय ॥ १७ ॥

एदासिं दोण्हं पयडीणं एकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १८ ॥

इन दोनों प्रकृतियोंके बन्धक जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ १८ ॥

साता वेदनीय और असाता वेदनीय ये दोनों प्रकृतियां चूंकि परस्परविरुद्ध होनेसे एक साथ बंधती नहीं हैं तथा वे क्रमसे विशुद्धि और संक्लेशके निमित्तसे बन्धको प्राप्त होती हैं, अतएव इन दोनोंका यद्यपि एक स्थान सम्भव नहीं है, फिर भी यहां जो उनका एक स्थान निर्दिष्ट किया गया है वह इनके एक संख्यामें अवस्थित होनेसे ही निर्दिष्ट किया गया है; ऐसा अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १९ ॥

वह वेदनीय कर्मका बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १९ ॥

सूत्रमें 'संयत' ऐसा कहनेपर यहां सयोगिकेवली तक संयतोंका ही ग्रहण करना चाहिए। कारण यह कि आगे अयोगिकेवलियोंके इस बन्धस्थानकी सम्भावना नहीं है।

मोहणीयस्स कम्मस्स दस ट्ठाणाणि– बावीसाए एक्कवीसाए सत्तारसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ॥ २० ॥

मोहनीय कर्मके दस बन्धस्थान हैं– बाईस प्रकृतिरूप, इक्कीस प्रकृतिरूप, सत्तरह प्रकृतिरूप, तेरह प्रकृतिरूप, नौ प्रकृतिरूप, पांच प्रकृतिरूप, चार प्रकृतिरूप, तीन प्रकृतिरूप, दो प्रकृतिरूप और एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान ॥ २० ॥

तत्थ इमं बावीसाए ट्ठाणं– मिच्छत्तं सोलस कसाया, इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेक्कदरं, हस्स-रदि अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं, भय-दुगुंछा एदासिं बावीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ २१ ॥

मोहनीय कर्मके उक्त दस बन्धस्थानोंमें बाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान यह है– मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय; स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद इन तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद; हास्य और रति तथा अरति और शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल; भय और जुगुप्सा; इन बाईस प्रकृतियोंके बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २१ ॥

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धिचतुष्क आदि सोलह कषाय, ये सत्तरह ध्रुवबन्धी प्रकृतियां हैं। कारण यह कि इनमें जिस प्रकार उदयकी अपेक्षा परस्परमें विरोध है उस प्रकार बन्धकी अपेक्षा परस्परमें विरोध नहीं है। इसीलिए सूत्रमें इनके लिए ' एकतर ' शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदोंका; तथा हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंका उदयके समान बन्धके साथ भी विरोध है, यह बतलानेके लिए इनके साथमें ' एकतर ' शब्दका प्रयोग किया गया है। भय और जुगुप्सा इन दोनों प्रकृतियोंके साथमें भी जो ' एकतर ' शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है उससे इन दोनों प्रकृतियोंमें बन्धकी अपेक्षा कोई विरोध नहीं हैं, यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये। इन बाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान होता है।

तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ २२ ॥

वह बाईस प्रकृतिरूप मोहनीयका प्रथम बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ २२ ॥

इसका कारण यह है कि मिथ्यात्वके उदययुक्त मिथ्यादृष्टि जीवको छोड़कर मिथ्यात्व प्रकृतिका अन्यत्र बन्ध नहीं होता है। इसलिये मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे संयुक्त इन बाईस प्रकृतियोंरूप बन्धस्थानका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ही होता है। यहांपर बन्ध सम्बन्धी भंग छह (६) हैं। कारण यह कि एक जीवके विवक्षित समयमें तीन वेदोंमेंसे किसी एक ही वेदका तथा हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे किसी एक ही युगलका बन्ध होता है।

तत्थ इमं एक्कवीसाए ट्ठाणं– मिच्छत्तं णवुंसयवेदं वज्ज ॥ २३ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें प्रथम बन्धस्थानकी बाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और नपुंसकवेदको छोड़ देनेपर यह इक्कीस प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थान होता है ॥ २३ ॥

सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिसवेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रदि अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा एदासिं एक्कवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ २४ ॥

अनन्तानुबन्धिचतुष्क आदि सोलह कषाय, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दोनों वेदोमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल तथा भय और जुगुप्सा इन इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २४ ॥

यहांपर उक्त दोनों वेद और हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२×२=४) चार भंग होते हैं ।

तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ २५ ॥

वह इक्कीसप्रकृतिक द्वितीय बन्धस्थान सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ २५ ॥

कारण यह कि दूसरे गुणस्थानसे आगे अनन्तानुबन्धिचतुष्कका और स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता है । इसका भी कारण यह है कि आगेके सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्कका उदय सम्भव नहीं है ।

तत्थ इमं सत्तरसण्हं ट्ठाणं– अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभं इत्थिवेदं वज्ज ॥

मोहनीय कर्म सम्बधी उक्त दस बन्धस्थानोंमें द्वितीय बन्धस्थानकी इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और स्त्रीवेदको कम कर देनेपर यह सत्तरह प्रकृतिवाला तृतीय बन्धस्थान होता है ॥ २६ ॥

बारस कसाय पुरिसवेदो हस्स-रदि अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ २७ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा; इन सत्तरह प्रकृतियोंके बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ २७ ॥

तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ २८ ॥

वह सत्तरहप्रकृतिक तृतीय बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥

चूंकि चतुर्थ गुणस्थानसे आगे अपने उदयके साथ बन्धको प्राप्त होनेवाले अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका बन्ध होता नहीं है, इसलिए सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि ये दो गुणस्थानवर्ती ही इस सत्तरह प्रकृतियुक्त बन्धस्थानके स्वामी होते हैं ।

तत्थ इमं तेरसण्हं ट्ठाणं— अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभं वज्ज ॥२९॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें तृतीय बन्धस्थानकी सत्तरह प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभको कम कर देनेपर यह तेरहप्रकृतिक चतुर्थ बन्धस्थान होता है ॥ २९ ॥

अट्ठ कसाया पुरिसवेदो हस्स-रदि अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३० ॥

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा; इन तेरह प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३० ॥

यहांपर हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे दो (२) भंग होते हैं।

तं संजदासंजदस्स ॥ ३१ ॥

उक्त तेरहप्रकृतिक चतुर्थ बन्धस्थान संयतासंयतके होता है ॥ ३१ ॥

कारण यह कि पंचम गुणस्थानसे आगे अपने उदयकी सम्भावना न होनेसे वहां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका बन्ध सम्भव नहीं है।

तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं— पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं वज्ज ॥ ३२ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें चतुर्थ बन्धस्थानकी उपर्युक्त तेरह प्रकृतियोंमेंसे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंको कम कर देनेपर यह नौ प्रकृतियुक्त पांचवां बन्धस्थान होता है ॥ ३२ ॥

चदुसंजुलणा पुरिसवेदो हस्स-रदि अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा एदासिं णवण्हं पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३३ ॥

चार संज्वलन कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल तथा भय और जुगुप्सा; इन नौ प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ३३ ॥

यहांपर हास्यादि दो युगलोंके विकल्पसे दो (२) ही भंग होते हैं।

तं संजदस्स ॥ ३४ ॥

वह नौप्रकृतिक पांचवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ३४ ॥

यहां 'संयत' कहनेसे प्रमत्तसंयतको आदि लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त संयतोंका ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उससे ऊपर छह नोकषायोंका बन्ध नहीं होता है। इसलिए आगे इस नौप्रकृतिक बन्धस्थानकी सम्भावना नहीं है।

तत्थ इमं पचण्हं ट्ठाणं— हस्स-रदि अरदि-सोग भय दुगुंछं वज्ज ॥ ३५ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस स्थानोंमें पांचवें बन्धस्थानकी उक्त नौ प्रकृतियोंमेंसे हास्य-रति, अरति-शोक, भय और जुगुप्साको कम कर देनेपर यह पांचप्रकृतिक छठा बन्धस्थान होता है ॥

चदुसंजलणं पुरिसवेदो एदासिं पंचण्हं पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥३६॥

संज्वलन क्रोध आदि चार कषाय और पुरुषवेद, इन पांचों प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ३६ ॥

तं संजदस्स ॥ ३७ ॥

वह पांचप्रकृतिक छठा बन्धस्थान प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त संयतके होता है ॥ ३७ ॥

तत्थ इमं चदुण्णं ट्ठाणं— पुरिसवेदं वज्ज ॥ ३८ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें छठे बन्धस्थानकी पांच प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदको कम कर देनेपर यह चार प्रकृतियुक्त सांतवां बन्धस्थान होता है ॥ ३८ ॥

चदुसंजलणं एदासिं चदुण्हं पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३९ ॥

संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ३९ ॥

तं संजदस्स ॥ ४० ॥

वह चार प्रकृतियुक्त सांतवां बन्धस्थान प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण संयत तक होता है ॥ ४० ॥

तत्थ इमं तिण्हं ट्ठाणं— कोधसंजलणं वज्ज ॥ ४१ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें सातवें बन्धस्थानकी उक्त चार प्रकृतियोंमेंसे संज्वलन क्रोधको कम कर देनेपर यह तीन प्रकृतियुक्त आठवां बन्धस्थान होता है ॥ ४१ ॥

माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं एदासिं तिण्हं पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४२ ॥

मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन; इन तीन प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ४२ ॥

तं संजदस्स ॥ ४३ ॥

वह तीनप्रकृतिक आठवां बन्धस्थान प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण संयत तक होता है ॥ ४३ ॥

तत्थ इमं दोण्णं ट्ठाणं— माणसंजलणं वज्ज ॥ ४४ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें आठवें बन्धस्थानकी तीन प्रकृतियोंमेंसे मानसंज्वलनको कम कर देनेपर यह दोप्रकृतिक नौवां बन्धस्थान होता है ॥ ४४ ॥

मायासंजलणं लोभसंजलणं एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४५ ॥

मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन दो प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ४५ ॥

तं संजदस्स ॥ ४६ ॥

वह दो प्रकृतियुक्त नौवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४६ ॥

तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं— मायासंजलणं वज्ज ॥ ४७ ॥

मोहनीय कर्म सम्बन्धी उक्त दस बन्धस्थानोंमें नौवें बन्धस्थानकी दो प्रकृतियोंमेंसे माया-संज्वलनको कम कर देनेपर यह एक प्रकृतियुक्त दसवां बन्धस्थान होता है ॥ ४७ ॥

लोभसंजलणं एदिस्से एक्किस्से पयडीए एकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४८ ॥

लोभ संज्वलन इस एक प्रकृतिको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥

तं संजदस्स ॥ ४९ ॥

वह एक प्रकृति युक्त दसवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४९ ॥

आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ ॥ ५० ॥

आयु कर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ ५० ॥

णिरयाउअं तिरिक्खाउअं मणुसाउअं देवाउअं चेदि ॥ ५१ ॥

नारकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु; ये आयु कर्मकी वे चार प्रकृतियां हैं ॥ ५१ ॥

जं तं णिरयाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५२ ॥

आयु कर्मकी चार प्रकृतियोंमें जो वह नारकायु कर्म है उसको बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५२ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ५३ ॥

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ५३ ॥

वह नारकायुके बन्धवाला एकप्रकृतिक बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है, क्योंकि, मिथ्यात्व कर्मके उदयके विना नारकायुका बन्ध नहीं होता है ।

जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५४ ॥

जो वह तिर्यगायु कर्म है उसके बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५४ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ५५ ॥

वह तिर्यगायुके बन्धरूप एकप्रकृतिक स्थान मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥

इसका कारण यह है कि तिर्यगायुके बन्ध योग्य परिणाम इन दोनों गुणस्थानोंमें ही पाये जाते हैं।

जं तं मणुसाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५६ ॥

जो वह मनुष्यायु कर्म है उसके बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५६ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ५७ ॥

वह मनुष्यायुके बन्धरूप एकप्रकृतिक बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ५७ ॥

जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५८ ॥

जो वह देवायु कर्म है उसे बांधनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५८ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ५९ ॥

वह देवायुके बन्धरूप एकप्रकृतिक बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ५९ ॥

यहां संयत पदसे अप्रमत्त गुणस्थान तकके संयतोंको ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उसके आगे किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता है।

णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि– एक्कत्तीसाए तीसाए एगूणतीसाए अट्ठवीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ॥ ६० ॥

नामकर्मके आठ बन्धस्थान हैं– इकतीसप्रकृतिक, तीसप्रकृतिक, उनतीसप्रकृतिक, अट्ठाईसप्रकृतिक, छब्बीसप्रकृतिक, पच्चीसप्रकृतिक, तेईसप्रकृतिक और एकप्रकृतिक बन्धस्थान ॥ ६० ॥

तत्थ इमं अट्ठावीसाए ट्ठाणं– णिरयगदी पंचिंदियजादी वेउव्वियतेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं अप्पसत्थविहायगई तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुहव-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामं। एदासिं अट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६१ ॥

नामकर्मके उक्त आठ बन्धस्थानोंमें अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थान इस प्रकार है— नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नामकर्म; इन अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६१ ॥

णिरयगइं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ६२ ॥

वह अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त नरकगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ६२ ॥

तिरिक्खगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि— तीसाए एगूणतीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाणं चेदि ॥ ६३ ॥

तिर्यग्गति नामकर्मके पांच बन्धस्थान हैं— तीसप्रकृतिक, उनतीसप्रकृतिक, छब्बीसप्रकृतिक, पच्चीसप्रकृतिक और तेवीसप्रकृतिक बन्धस्थान ॥ ६३ ॥

तत्थ इमं पढमतीसाए ट्ठाणं— तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्ठाणाणमेकदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणमेकदरं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेकदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेकदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेकदरं सुस्सर-दुस्सराणमेकदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेकदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च। एदासिं पढमतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६४ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें प्रथम तीस प्रकृतियुक्त बन्धस्थान यह है— तिर्यग्गति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक और निर्माण नामकर्म; इन प्रथम तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६४ ॥

यहां छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगतियां, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति; इन परस्पर विरुद्ध प्रकृतियोंमेंसे

एक समयमें यथासम्भव किसी एक एक प्रकृतिका ही बन्ध सम्भव होनेसे चार हजार छह सौ आठ (६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८) भंग होते हैं।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ६५ ॥

वह प्रथम तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और उद्योत नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ६५ ॥

तत्थ इमं विदियत्तीसाए ट्ठाणं– तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्त-सेवट्टसंघडणं वज्ज पचण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराण-मेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं विदियत्तीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६६ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय तीसप्रकृतिक बन्धस्थान है– तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थानको छोड़कर शेष पांच संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीरअंगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर शेष पांचों संहननोंमेंसे कोई एक; वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक तथा निर्माण नामकर्म; इन द्वितीय तीस प्राकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६६ ॥

पूर्व तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन इन दो प्रकृतियोंका सद्भाव था, किन्तु इस द्वितीय बन्धस्थानमें वे दोनों प्रकृतियां नहीं हैं; यह इन दोनों बन्धस्थानोंमें भेद है।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ ६७ ॥

वह द्वितीय तीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और उद्योत नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ६७ ॥

यहां पांच संस्थान, पांच संहनन तथा उक्त विहायोगति आदि सात युगलोंके विकल्पसे तीन हजार दो सौ (५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२००) भंग होते हैं।

तत्थ इमं तदियतीसाए ट्ठाणं— तिरिक्खगदी बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्त-सेवट्टसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं अप्पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग-दुस्सर-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं, एदासिं तदियतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६८ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तृतीय तीसप्रकृति बन्धस्थान है— तिर्यग्गति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इन तीन जातियोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक तथा निर्माण नामकर्म; इन तृतीय तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६८ ॥

यहां द्वीन्द्रियादि तीन जाति नामकर्म, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति; इनके विकल्पसे चौबीस (३×२×२×२=२४) भंग होते हैं।

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥

वह तृतीय तीसप्रकृतिक बन्धस्थान विकलेन्द्रिय, पर्याप्त और उद्योत नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ६९ ॥

तत्थ इमं पढमऊणतीसाए ठाणं जधा पढमतीसाए भंगो, णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं पढमऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७० ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी पांच बन्धस्थानोंमेंसे यह प्रथम उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है और वह प्रथम तीसप्रकृतिक बन्धस्थानके समान प्रकृतिभंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां एक उद्योत प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७१ ॥

वह प्रथम उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७१ ॥

तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए ट्ठाणं जधा विदियतीसाए भंगो, णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं विदियाए ऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७२ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीसप्रकृतिक

बन्धस्थान है और वह द्वितीय तीसप्रकृतिक बन्धस्थानके समान प्रकृतिभंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां एक उद्योत प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७२ ॥

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ ७३ ॥

वह द्वितीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ७३ ॥

तत्थ इमं तदियऊणत्तीसाए ठाणं जधा तदियतीसाए भंगो, णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं तदियऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७४ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तृतीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है और वह तृतीय तीसप्रकृतिक बन्धस्थानके समान प्रकृतिभंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां एक उद्योत प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन तृतीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७४ ॥

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७५ ॥

यह तृतीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान विकलेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७५ ॥

तत्थ इमं छव्वीसाए ट्ठाणं— तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं आदावुज्जोवाणमेक्कदरं थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं छव्वीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७६ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह छब्बीसप्रकृतिक बन्धस्थान है— तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई एक, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक तथा निर्माण नामकर्म; इन छब्बीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७६ ॥

यहां आतप-उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति; इनके विकल्पसे सोलह (२×२×२×२=१६) भंग होते हैं।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-बादर-पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छाइट्ठिस्स ॥ ७७ ॥

वह छब्बीसप्रकृतिक बन्धस्थान एकेन्द्रिय जाति, बादर, पर्याप्त तथा आतप और उद्योत इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७७ ॥

तत्थ इमं पढमपणुवीसाए ट्ठाणं— तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-थावरं बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग-साधारणसरीराणमेक्कदरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७८ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम पच्चीसप्रकृतिक बन्धस्थान है— तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे कोई एक, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर इन दोनोंमेंसे कोई एक, स्थिर, और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक तथा निर्माण नामकर्म; इन प्रथम पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७८ ॥

यहां बादर-सूक्ष्म, प्रत्येक-साधारणशरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति; इन विरुद्ध प्रकृतियोंके विकल्पसे बत्तीस (२×२×२×२×२=३२) भंग होते हैं।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-पज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छाइट्ठिस्स ॥ ७९ ॥

वह प्रथम पच्चीसप्रकृतिक बन्धस्थान एकेन्द्रिय जाति, पर्याप्त तथा बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७९ ॥

यह बन्धस्थान आगेके सासादन आदि गुणस्थानोंमें नहीं पाया जाता है। कारण यह कि उपरिम गुणस्थानवर्ती जीवोंके एकेन्द्रिय जाति, बादर और सूक्ष्म इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है।

तत्थ इमं विदियपणुवीसाए ट्ठाणं—.तिरिक्खगदी बेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय चदुण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीर-अंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरु-अलहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं, एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८० ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय पच्चीसप्रकृतिक बन्धस्थान है– तिर्यग्गति; द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति इन चार जातियोंमेंसे कोई एक; औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नामकर्म; इन द्वितीय पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८० ॥

यहां द्वीन्द्रिय आदि चार जातिप्रकृतियोंके विकल्पसे चार (४) भंग होते हैं ।

तिरिक्खगदिं तस-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ८१ ॥

वह द्वितीय पच्चीसप्रकृतिक बन्धस्थान त्रस और अपर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ८१ ॥

तत्थ इमं तेवीसाए ट्ठाणं– तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-थावरं बादर-सुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्तं पत्तेय-साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर-असुह-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं, एदासिं तेवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८२ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तेवीसप्रकृतिक बन्धस्थान है– तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, स्थावर, बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे कोई एक, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर इन दोनोंमेंसे कोई एक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नामकर्म; इन तेवीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥

यहांपर बादर-सूक्ष्म और प्रत्येक व साधारणसरीर इन दो युगलोंके विकल्पसे (२×२=४) चार भंग होते हैं ।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-अपज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ८३ ॥

यह तेवीसप्रकृतिक बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, अपर्याप्त तथा बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ८३ ॥

मणुसगदिणामाए तिण्णि ट्ठाणाणि– तीसाए एगूणतीसाए पणुवीसाए ट्ठाणं चेदि ॥

मनुष्यगति नामकर्मके तीन बन्धस्थान हैं– तीसप्रकृतिक, उनतीसप्रकृतिक और पच्चीस-प्रकृतिक ॥ ८४ ॥

तत्थ इमं तीसाए ठाणं– मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं

समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदि-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं निमिणं तित्थयरं, एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥८५॥

नामकर्मके मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह तीसप्रकृतिक बन्धस्थान है— मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक, निर्माण और तीर्थंकर नामकर्म; इन तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८५ ॥

यहां स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंके विकल्पसे आठ (२×२×२=८) भंग होते हैं ।

मणुसगदिं पंचिंदिय-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजदसम्मादिट्ठिस्स ॥ ८६ ॥

वह तीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और तीर्थंकर प्रकृतिसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ८६ ॥

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं जधा तीसाए भंगो, णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८७ ॥

नामकर्मके मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह प्रथम उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है जो तीसप्रकृतिक बन्धस्थानके समान प्रकृतिभंगवाला है । विशेषता यह है कि यहां तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८७ ॥

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ८८ ॥

वह प्रथम उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ८८ ॥

तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए ट्ठाणं— मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्ट-संघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहु-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं

थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं, एदासिं विदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८९ ॥

नामकर्मके मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है– मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थानको छोड़कर शेष पांच संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर पांच संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक तथा निर्माण नामकर्म; इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८९ ॥

यहांपर पांच संस्थान, पांच संहनन तथा विहायोगति आदि उक्त सात युगलोंके विकल्पसे बत्तीस सौ (५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२००) भंग होते हैं।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ ९० ॥

वह द्वितीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ९० ॥

तत्थ इमं तदियएगूणतीसाए ठाणं– मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं, एदासिं तदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥९१

नामकर्मके मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह तृतीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है– मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीआंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे

कोई एक और निर्माण नामकर्म; इन तृतीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥९१॥

यहां छह संस्थान, छह संहनन और दो विहायोगति आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंके चार हजार छह सौ आठ (६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८) भंग होते हैं।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ९२ ॥

यह तृतीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ९२ ॥

तत्थ इमं पणुवीसाए ट्ठाणं— मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदि-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं, एदासिं पणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९३ ॥

नामकर्मके मनुष्यगति सम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह पच्चीसप्रकृतिक बन्धस्थान है— मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नामकर्म; इन पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९३ ॥

मणुसगदिं पंचिंदियजादि-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ९४ ॥

वह पच्चीसप्रकृतिक बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्य-गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ९४ ॥

देवगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि— एक्कत्तीसाए तीसाए एगुणतीसाए अट्ठवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ॥ ९५ ॥

देवगति नामकर्मके पांच बन्धस्थान हैं— इकतीसप्रकृतिक, तीसप्रकृतिक, उनतीसप्रकृतिक, अट्ठाईसप्रकृतिक और एकप्रकृतिक बन्धस्थान ॥ ९५ ॥

तत्थ इमं एक्कत्तीसाए ट्ठाणं— देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-आहारअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओ-ग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरं, एदासिमेक्कत्तीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९६ ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है— देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान,

वैक्रियिकशरीरअंगोपांग, आहारकशरीरअंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर; इन इकतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९६ ॥

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहार-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ ९७ ॥

वह इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त, आहारकशरीर और तीर्थंकर नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ ९७ ॥

तत्थ इमं तीसाए ठाणं जधा एक्कत्तीसाए भंगो, णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज। एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९८ ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तीसप्रकृतिक बन्धस्थान है जो इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थानके समान प्रकृतिकभंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां एक तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९८ ॥

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहारसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ ९९ ॥

वह तीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और आहारकशरीरसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ ९९ ॥

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं जधा एक्कत्तीसाए भंगो, णवरि विसेसो आहारसरीरं वज्ज। एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०० ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है जो इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थानके समान प्रकृति भंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां आहारक-शरीर और तत्सम्बन्धी अंगोपांगको छोड़ देना चाहिए। इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०० ॥

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अपमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ १०१ ॥

वह प्रथम उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और तीर्थंकर प्रकृतिसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ १०१ ॥

तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए ट्ठाणं— देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपा-

ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण-तित्थयरं, एदासिमेगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान है– देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-शरीरअंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक, निर्माण और तीर्थंकर नामकर्म; इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०२ ॥

यहां स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंके विकल्पसे आठ (२×२×२=८) भंग होते हैं।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा ॥ १०३ ॥

वह द्वितीय उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति, पर्याप्त और तीर्थंकर प्रकृतिसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके होता है ॥ १०३ ॥

तत्थ इमं पढमअट्ठावीसाए ट्ठाणं– देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलघुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामं, एदासिं पढमअट्ठवीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०४ ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थान है– देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरअंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण नामकर्म; इन प्रथम अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥१०४॥

यहांपर अयशःकीर्तिका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि, प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उसके बन्धका विनाश हो जाता है।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्व-करणस्स वा ॥ १०५ ॥

वह प्रथम अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ १०५ ॥

तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए ट्ठाणं– देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं, एदासिं विदियअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थान है– देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरअंगोपांग वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक और निर्माण नामकर्म; इन द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०६ ॥

यहांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति इन तीन युगलोंके विकल्पसे (२×२×२=८) आठ भंग होते हैं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १०७ ॥

वह द्वितीय अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थान पंचेन्द्रिय जाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १०७ ॥

यहां संयत पदसे एक मात्र प्रमत्तसंयतका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उपरिम गुणस्थानवर्ती संयत जीवोंके अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है ।

तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं– जसकित्तिणामं । एदिस्से पयडीए एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥

नामकर्मके देवगति सम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यशःकीर्ति नामकर्म सम्बन्धी यह एक प्रकृतिक बन्धस्थान है । इस एकप्रकृतिक बन्धस्थानका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०८ ॥

बंधमाणस्स तं संजदस्स ॥ १०९ ॥

वह एकप्रकृतिक बन्धस्थान उसी एक यशःकीर्ति प्रकृतिको बांधनेवाले संयतके होता है ॥

यहां संयत पदसे अपूर्वकरण गुणस्थानके सातवें भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके संयतोंका ग्रहण किया गया है। कारण उसका यह है कि एक उस यशःकीर्तिको छोड़कर शेष सब ही नामकर्मकी प्रकृतियां अपूर्वकरणके छठे भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाती हैं, तथा वह यशःकीर्ति भी सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक ही बन्धको प्राप्त होती है; आगे नहीं।

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव ॥ ११० ॥

गोत्रकर्मकी दो ही प्रकृतियां हैं— उच्चगोत्र और नीचगोत्र ॥ ११० ॥

जं तं णीचागोदं कम्मं ॥ १११ ॥

जो नीचगोत्र कर्म है वह एकप्रकृतिक बन्धस्थान है ॥ १११ ॥

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ११२ ॥

वह बन्धस्थान नीचगोत्र कर्मको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ११२ ॥

कारण यह कि इसके आगे नीचगोत्रका बन्ध नहीं होता है।

जं तं उच्चागोदं कम्मं ॥ ११३ ॥

जो उच्चगोत्र कर्म है वह एकप्रकृतिक बन्धस्थान है ॥ ११३ ॥

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ११४ ॥

वह बन्धस्थान उच्चगोत्र कर्मको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ११४ ॥

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ– दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ॥ ११५ ॥

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ॥ ११५ ॥

एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ११६ ॥

इन पांचों प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ११६ ॥

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ११७ ॥

वह बन्धस्थान उक्त पांचों अन्तराय प्रकृतियोंके बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ११७ ॥

यहां संयत शब्दसे दसवें गुणस्थान तकके संयतोंका ग्रहण करना चाहिए।

॥ स्थानसमुत्कीर्तन नामकी द्वितीय चूलिका समाप्त हुई ॥ २ ॥

---

३. तदिया चूलिया

इदाणिं पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ पयडीओ कित्त-इस्सामो ॥ १ ॥

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके अभिमुख हुआ जीव जिन प्रकृतियोंको बांधता है उन प्रकृतियोंको कहेंगे ॥ १ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउगं च ण बंधदि। देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदि-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाण-मेदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताभिमुहो सण्णि-पंचिंदियतिरिक्खो वा मणुसो वा ॥ २.

प्रथमोपशम सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके अभिमुख हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अथवा मनुष्य पांचों ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंको बांधता है। आयु कर्मको नहीं बांधता है। देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय; इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

वह जिस प्रकार वह आयु कर्मको नहीं बांधता है उसी प्रकार वह उस चार प्रकारके आयु कर्मके साथ असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुण्डकसंस्थान, औदारिक-शरीरांगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, छहों संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण-शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर और नीचगोत्र; इन प्रकृतियोंको भी विशुद्धतम परिणाम होनेके कारण नहीं बांधता है। तीर्थंकर और आहारकद्विकके न बांधनेका कारण सम्यक्त्व और संयमका अभाव है। यह अभिप्राय सूत्रमें 'आउगं च ण बंधदि' यहां प्रयुक्त 'च' शब्दके ग्रहणसे समझना चाहिये।

॥ तीसरी चूलिका समाप्त हुई ॥ ३ ॥

४. चउत्थी चूलिया

तत्थ इमो विदियो महादंडओ कादव्वो भवदि ॥ १ ॥

उन तीन महादण्डकोंमेंसे यह द्वितीय महादण्डक करने योग्य है ॥ १ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउअं च ण बंधदि। मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा ॥ २ ॥

प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ देव और नीचे सातवीं पृथिवीके नारकीको छोड़कर अन्य नारकी जीव पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा; इन प्रकृतियोंको बांधता है; किन्तु आयु कर्मको नहीं बांधता है। मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरअंगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय; इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

'आउगं च ण बंधदि' इस वाक्यमें प्रयुक्त समुच्चयार्थक 'च' शब्दसे उक्त चार आयुओंके साथ असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, तिर्यग्गति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थानको छोड़कर शेष पांच संस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहननको छोड़कर शेष पांच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और तीर्थंकर; इन प्रकृतियोंको भी ग्रहण करना चाहिये। इन सब प्रकृतियोंको प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुआ देव और सातवीं पृथिवीके नारकीको छोड़कर अन्य नारकी जीव नहीं बांधते हैं।

॥ चौथी चूलिका समाप्त हुई ॥ ४ ॥

५. पंचमी चूलिया

तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि ॥ १ ॥

उन तीन महादण्डकोंमेंसे यह तृतीय महादण्डक करने योग्य है ॥ १ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउगं च ण बंधदि। तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियंगोवंग-वज्जरिसह-संघडण-वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सासं। उज्जोवं सिया बंधदि, सिया न बंधदि। पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ ॥ २ ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुआ अधस्तन सातवीं पृथिवीका नारकी मिथ्यादृष्टि जीव पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा; इन प्रकृतियोंको बांधता है। किन्तु आयु कर्मको नहीं बांधता है। तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, औदारिकशरीरअंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात और उच्छ्वास; इन प्रकृतियोंको बांधता है। उद्योत प्रकृतिको कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है। प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तरायकर्म; इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

वह चार प्रकारके आयु कर्मके साथ जिन अन्य प्रकृतियोंको नहीं बांधता है वे ये हैं— असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान आदि पांच संस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, वज्रनाराचसंहनन आदि पांच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र।

॥ पांचवीं चूलिका समाप्त हुई ॥ ५ ॥

६. छट्ठी चूलिया

केवडिकालट्ठिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, ण लब्भदि त्ति विभासा ॥ १ ॥

कितने कालकी स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा कितने कालकी स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा वह उसे नहीं प्राप्त करता है, इस प्रश्नवाक्यके अन्तर्गत 'अथवा नहीं प्राप्त करता है' इस वाक्यांशकी व्याख्या करते हैं ॥ १ ॥

उन स्थितियोंका प्ररूपण करते हुए आचार्य प्रथमतः कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके वर्णनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

एत्तो उक्कस्सट्ठिदिं वण्णइस्सामो ॥ २ ॥

अब आगे उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन करेंगे ॥ २ ॥

योगके वश कर्मस्वरूपसे परिणत हुए पुद्गलस्कन्ध कषायके अनुसार जितने काल तक जीवके साथ एकस्वरूपसे अवस्थित रहते हैं उतने कालका नाम स्थिति है। वह उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम स्वरूपसे अनेक प्रकारकी होती है। उनमें यहां उत्कृष्ट कर्मस्थितिकी प्ररूपणा की जाती है।

तं जहा ॥ ३ ॥

वह उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है ॥ ३ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ४ ॥

पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असातावेदनीय और पांचों अन्तराय; इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम है ॥ ४ ॥

अब आगे उनके आबाधाकालके प्रमाणका निर्देश किया जाता है—

तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा ॥ ५ ॥

उक्त ज्ञानावरणीयादि कर्मोंकी स्थितिका आबाधाकाल तीन हजार वर्ष होता है ॥ ५ ॥

बंधनेके पश्चात् कर्म जितने काल तक अपना फल देना प्रारम्भ नहीं करते हैं उतने कालका नाम आबाधाकाल है। पूर्वोक्त कर्मोंकी स्थितिका यह उत्कृष्ट आबाधाकाल बतलाया गया है।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि कर्मोंकी इस आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेककाल होता है ॥ ६ ॥

सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो पण्णारससागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ७ ॥

सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म; इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ ७ ॥

पण्णारस वाससदाणि आबाधा ॥ ८ ॥

उक्त सातावेदनीय आदि चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका आबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष होता है ॥ ८ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ९ ॥

उक्त कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उन कर्मोंका कर्मनिषेक होता है ॥

मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ १० ॥

मिथ्यात्व कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ १० ॥

सत्त वाससहस्साणि आबाधा ॥ ११ ॥

मिथ्यात्व कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका आबाधाकाल सात हजार वर्ष होता है ॥ ११ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १२ ॥

मिथ्यात्व कर्मकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उसका कर्मनिषेक होता है ॥१२॥

सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥१३

अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ १३ ॥

चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा ॥ १४ ॥

अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका आबाधाकाल चार हजार वर्ष होता है ॥ १४ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १५ ॥

सोलह कषायोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥१५

पुरिसवेद-हस्स-रदि-देवगदि-समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंघडण-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो दस सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ १६ ॥

पुरुषवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र; इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दस कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ १६ ॥

दस वाससदाणि आबाधा ॥ १७ ॥

पुरुषवेद आदि उक्त कर्मप्रकृतियोंका आबाधाकाल दस सौ वर्ष होता है ॥ १७ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ १८ ॥

उन कर्मप्रकृतियोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥

णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा णिरयगदी तिरिक्खगदी एइंदिय-पंचिंदिय-जादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ १९ ॥

नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र; इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ १९. ॥

बे वाससहस्साणि आबाधा ॥ २० ॥

पूर्व सूत्रोक्त इन नपुंसकवेदादि प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थितिका आबाधाकाल दो हजार वर्ष होता है ॥ २० ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ २१ ॥

उक्त नपुंसकवेदादि प्रकृतियोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २१ ॥

णिरयाउ-देवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ २२ ॥

नारकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागरोपम मात्र होता है ॥ २२ ॥

यह इन दोनों कर्मोंकी निषेकस्थिति है ।

पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ २३ ॥

नारकायु और देवायुका उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटि वर्षका त्रिभाग (तीसरा भाग) मात्र होता है ॥ २३ ॥

नारकायु और देवायुका बन्ध जिन मनुष्यों और तिर्यंचोंके होता है उनकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होती है। उनके आगामी आयुका बन्ध भुज्यमान आयुके दो त्रिभागोंके ($\frac{2}{3}$) बीतनेपर हुआ करता है। अत एव आगामी भवकी आयुका बन्ध करते समय जो भुज्यमान आयुका एक त्रिभाग ($\frac{1}{3}$) शेष रहता है वही नारकायु और देवायुकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट आबाधाकाल होता है। जघन्य आबाधाकाल उनका असंक्षेपाद्धा काल होता है। इस असंक्षेपाद्धा कालके ऊपर और पूर्वकोटित्रिभागके नीचे सब उस आबाधाके मध्यम विकल्प होते हैं।

आबाधा ॥ २४ ॥

पूर्वोक्त आबाधाकालके भीतर नारकायु और देवायुकी निषेकस्थिति बाधारहित होती है ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंके समयप्रबद्धोंमें बन्धावलीके पश्चात् अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रमणके द्वारा बाधा पहुंचा करती है उस प्रकार उनके द्वारा आयु कर्मके समयप्रबद्धोंमें बाधा नहीं पहुंचा करती है; इस अभिप्रायको प्रगट करनेके लिए इस पृथक् सूत्रकी रचना की गई है।

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २५ ॥

नारकायु और देवायुकी कर्मस्थिति प्रमाण ही उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २५ ॥

तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पलिदोवमाणि ॥ २६ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्योपम मात्र होता है ॥ २६ ॥

यह इनकी निषेकस्थिति निर्दिष्ट की गई है, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्योंमें तीन पल्योपम मात्र औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट स्थिति पायी जाती है।

पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ २७ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटिका त्रिभाग है ॥ २७ ॥

आबाधा ॥ २८ ॥

इस आबाधाकालमें तिर्यगायु और मनुष्यायुकी निषेकस्थिति बाधारहित होती है ॥ २८ ॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ २९ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थिति प्रमाण ही उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २९ ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण-सुहुमअपज्जत्त-साधारणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ३० ॥

द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण; इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥

अट्ठारस वाससदाणि आबाधा ॥ ३१ ॥

इन द्वीन्द्रियजाति आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल अठारह सौ वर्ष मात्र होता है ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ३२ ॥

उक्त कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥३२॥

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए ॥ ३३ ॥

आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोपांग और तीर्थंकर नामकर्म इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ ३३ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३४ ॥

पूर्वोक्त आहारकशरीरादि प्रकृतियोंका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३४ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३५ ॥

उक्त तीन कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥

णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायणसंघडणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो बारस सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ३६ ॥

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बारह कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ ३६ ॥

बारस वाससदाणि आबाधा ॥ ३७ ॥

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अबाधाकाल बारह सौ वर्ष मात्र होता है ॥ ३७ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३८ ॥

उक्त दोनों कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥

सादियसंठाण-णारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ३९ ॥

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चौदह कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ ३९ ॥

चोद्दस वाससदाणि आबाधा ॥ ४० ॥

उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल चौदह सौ वर्ष मात्र होता है ॥ ४० ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४१ ॥

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन इन दोनों नामकर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ४१ ॥

खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सोलससागरोवम-कोडाकोडीओ ॥ ४२ ॥

कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सोलह कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ ४२ ॥

सोलसवाससदाणि आबाधा ॥ ४३ ॥

उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल सोलह सौ वर्ष मात्र होता है ॥ ४३ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४४ ॥

उक्त दोनों कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥

॥ छठी चूलिका समाप्त हुई ॥ ६ ॥

---

७. सत्तमी चूलिया

एत्तो जहण्णट्ठिदिं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

अब आगे जघन्य स्थितिका वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

तं जहा ॥ २ ॥ पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

वह इस प्रकार है ॥ २ ॥ पांचों ज्ञानावरणीय, चक्षुदर्शनावरणादि चार दर्शनावरणीय, लोभसंज्वलन और पांचों अन्तराय; इन कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ४ ॥

उन ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥४॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ५ ॥

उक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ५ ॥

पंचदंसणावरणीय-असादावेदणीयाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ ६ ॥

निद्रानिद्रादि पांच दर्शनावरणीय और असातावेदनीय इन कर्मप्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके तीन बटे सात भाग ($\frac{3}{7}$) प्रमाण होता है ॥ ६ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ७ ॥

उक्त निद्रानिद्रादि छह कर्मप्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ८ ॥

उक्त निद्रानिद्रादि छह कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ८ ॥

सादावेदणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्ताणि ॥ ९ ॥

सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त मात्र होता है ॥ ९ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १० ॥

सातावेदनीय कर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १० ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ११ ॥

सातावेदनीय कर्मकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उसका कर्मनिषक होता है ॥ ११ ॥

मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ १२ ॥

मिथ्यात्व कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके सात बटे सात भाग ($\frac{७}{७}$) प्रमाण होता है ॥ १२ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १३ ॥

मिथ्यात्व कर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १३ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ १४ ॥

मिथ्यात्व कर्मकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उसका कर्मनिषेक होता है ॥

बारसण्हं कसायाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ १५ ॥

अनन्तानुबन्धी क्रोधादि बारह कषायोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके चार बटे सात भाग ($\frac{४}{७}$) प्रमाण होता है ॥ १५ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १६ ॥

अनन्तानुबन्धी क्रोधादि बारह कषायोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १७ ॥

उक्त बारह कषायोंकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ १७ ॥

कोधसंजलण-माणसंजलण-मायसंजलणाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा मासं पक्खं ॥ १८ ॥

क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलन इन तीनोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्रमशः दो मास, एक मास और एक पक्ष मात्र होता है ॥ १८ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १९ ॥

उक्त तीनों संज्वलन कषायोंका जघन्य अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १९ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २० ॥

उक्त तीनों संज्वलन कषायोंकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २० ॥

पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठवस्साणि ॥ २१ ॥

पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष मात्र होता है ॥ २१ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २२ ॥

पुरुषवेदका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २२ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २३ ॥

पुरुषवेदकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उसका कर्मनिषेक होता है ॥

इत्थिवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संठाणाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थविहायगदि-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स वे सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ २४ ॥

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छहों संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र; इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके

असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो बटे सात भाग ($\frac{२}{७}$) मात्र होता है ॥ २४ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २५ ॥

उक्त स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २५ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २६ ॥

उक्त प्रकृतियोंकी आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २६ ॥

णिरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो दसवाससहस्साणि ॥ २७ ॥

नारकायु और देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दस हजार वर्ष मात्र होता है ॥ २७ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २८ ॥

नारकायु और देवायुका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ २८ ॥

आबाधा ॥ २९ ॥

इस आबाधाकालमें नारकायु और देवायुकी कर्मस्थिति बाधारहित होती है ॥ २९ ॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ३० ॥

नारकायु और देवायुकी कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ३० ॥

तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३१ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है ॥ ३१ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३२ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३२ ॥

आबाधा ॥ ३३ ॥

इस आबाधाकालमें तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थिति बाधारहित होती है ॥ ३३ ॥

कम्मठिदी कम्मणिसेओ ॥ ३४ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ३४ ॥

णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग णिरयगदि-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सस्स वे-सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ ३५ ॥

नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरअंगोपांग, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन सागरोपमसहस्रके दो बटे सात भाग ($\frac{२}{७}$) मात्र होता है ॥ ३५ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३६ ॥

उक्त नरकगति आदि छह प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३७ ॥

उक्त प्रकृतियोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीओ ॥ ३८ ॥

आहारकशरीर, आहारकशरीरअंगोपांग और तीर्थंकर नामकर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है ॥ ३८ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३९ ॥

आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग और तीर्थंकर नामकर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ३९ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४० ॥

उक्त कर्मोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ४० ॥

जसगित्ति-उच्चागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ताणि ॥ ४१ ॥

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र इन दो प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त मात्र होता है ॥ ४१ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ४२ ॥

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र इन दोनों प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ४२ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४३ ॥

उक्त प्रकृतियोंकी आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ ४३ ॥

॥ सातवीं चूलिका समाप्त हुई ॥ ७ ॥

८. अट्ठमी चूलिया

एवदिकालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि ॥ १ ॥

इतने काल प्रमाण स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा जीव सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है ॥ १ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है। इसलिए वहां इन कर्मोंके जघन्य व उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, जघन्य व उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व, जघन्य व उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व, तथा जघन्य व उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्वके होनेपर जीव सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है; यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

लभदि त्ति विभासा ॥ २ ॥

प्रथम चूलिकागत प्रथम सूत्रमें पठित ' लभदि ' इस पदकी व्याख्या की जाती है ॥ २ ॥

अभिप्राय यह है कि जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका बन्ध; सत्त्व और उदीरणाके होनेपर जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी यहां प्ररूपणा की जाती है।

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि ॥ ३ ॥

जब यह जीव इन सब कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ि प्रमाण स्थितिको बांधता है तब वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

इस सूत्रके द्वारा क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्य इन चार लब्धियोंकी प्ररूपणा की गई है। पूर्वसंचित कर्मोंके अनुभागस्पर्धकोंका विशुद्धिके द्वारा प्रतिसमयमें शक्तिकी अपेक्षा उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हीन होकर उदीरणाको प्राप्त होनेका नाम क्षयोपशमलब्धि है। उक्त क्रमसे उदीरणाको प्राप्त हुए उन अनुभागस्पर्धकोंके निमित्तसे सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियोंके बन्धका कारण तथा असातावेदनीय आदि पाप प्रकृतियोंके बन्धका विरोधक जो जीवका परिणाम होता है उसकी प्राप्तिको विशुद्धिलब्धि कहा जाता है। छह द्रव्यों और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशनालब्धि है। इस देशना और उसमें परिणत आचार्यादिकोंकी प्राप्तिको तथा तदुपदिष्ट अर्थके ग्रहण व धारण करनेकी शक्तिकी प्राप्तिको देशनालब्धि कहते हैं। समस्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका घातकर उसे अन्तःकोड़ाकोड़ि प्रमाण स्थितिमें तथा उनके उत्कृष्ट अनुभागको घातकर उसे दो स्थानरूप (घातिया कर्मोंके लता और दारुरूप तथा अघातिया–पाप प्रकृतियों–के नीम और कांजीर-रूप) अनुभागमें स्थापित करनेका नाम प्रायोग्यलब्धि है।

ये चार लब्धियां भव्य और अभव्य दोनोंके ही समानरूपसे हो सकती हैं, परन्तु अन्तिम करणलब्धि एक मात्र भव्य जीवके ही होती है— वह अभव्यके सम्भव नहीं है।

सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो ॥ ४ ॥

वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है ॥ ४ ॥

एकेन्द्रियोंको आदि लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त चूंकि सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य परिणाम सम्भव नहीं हैं, अतएव सूत्रमें 'पंचिंदिओ' पदके द्वारा उनका निषेध कर दिया गया है। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करते हैं, इसीलिये सूत्रमें 'मिथ्यादृष्टि' कहकर उनका भी प्रतिषेध किया गया है। यद्यपि उपशमश्रेणिके चढ़नेके अभिमुख हुआ वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है, परन्तु उसके सम्यक्त्वपूर्वक उत्पन्न होनेके कारण उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं कहा जाता है। इसलिये प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव ही होता है और वह भी पर्याप्त अवस्थामें ही होता है, न कि अपर्याप्त अवस्थामें; यह इस सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवम-सहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि ॥ ५ ॥

जिस समय जीव इन्हीं सब कर्मोंकी संख्यात हजार सागरोपमोंसे हीन अन्तःकोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण स्थितिको स्थापित करता है उस समय वह प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ॥ ५ ॥

पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्टेदि ॥ ६ ॥

प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक हटाता है, अर्थात् अन्तरकरण करता है ॥ ६ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अधःकरण और अपूर्वकरण परिणामोंके कालको विताकर जब वह अनिवृत्तिकरण परिणामों सम्बन्धी कालके भी संख्यात बहुभागको विता देता है तब वह मिथ्यात्व प्रकृतिके अन्तरकरणको करता है। विवक्षित कर्मकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषके द्वारा अभाव करनेका नाम अन्तरकरण है। इस अन्तरकरणको करता हुआ वह उसके प्रारम्भ करनेके समयसे पूर्वमें उदयमें आनेवाली मिथ्यात्व कर्मकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितिको लांघकर उसके ऊपरकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितिके निषेकोंको उत्कीरण कर उनमेंसे कुछको प्रथमस्थिति (अन्तरकरणसे नीचेकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति) और कुछको द्वितीय स्थिति (अन्तरकरणसे ऊपरकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति) में क्षेपण करता है। इस प्रकार वह मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितियोंके निषेकोंका अभाव कर देता है।

ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णिभागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं ॥ ७ ॥

अन्तरकरण करके वह मिथ्यात्व कर्मके तीन भाग करता है— सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ ७ ॥

दंसणमोहणीयं कम्मं उवसामेदि ॥ ८ ॥

इस प्रकारसे वह दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है ॥ ८ ॥

उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि ? चदुसु वि गदीसु उवसामेदि । चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु । पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु । पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि असंखेज्जवस्साउगेसु वि ॥ ९ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता हुआ यह जीव उसे कहां उपशमाता है? वह उसे चारों ही गतियोंमें उपशमाता है। चारों ही गतियोंमें उपशमाता हुआ पंचेन्द्रियोंमें उपशमाता है, न कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें। पंचेन्द्रियोंमें उपशमाता हुआ संज्ञियोंमें उपशमाता है, न कि असंज्ञियोंमें। संज्ञियोंमें उपशमाता हुआ गर्भोपक्रान्तिकों (गर्भजों) में उपशमाता है, न कि संमूर्च्छनोंमें। गर्भोपक्रान्तिकोंमें उपशमाता हुआ पर्याप्तकोंमें उपशमाता है, न कि अपर्याप्तकोंमें । पर्याप्तकोंमें उपशमाता हुआ संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है और असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है ॥ ९ ॥

उवसामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले ? ॥ १० ॥

वह दर्शनमोहनीयकी उपशामना किन क्षेत्रोंमें और किसके पासमें होती है? ॥ १० ॥

इसका समाधान यह है कि उस दर्शनमोहनीयकी उपशामना किसी भी क्षेत्रमें और किसीके भी समीपमें हो सकती है— इसके लिये कोई विशेष नियम नहीं है ।

दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवंतो कम्हि आढवेदि ? अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि ॥ ११ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मकी क्षपणाको प्रारम्भ करनेवाला जीव कहांपर उसे प्रारम्भ करता है? अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंके भीतर स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें— जहां जिन, केवली अथवा तीर्थंकर होते हैं— उसको प्रारम्भ करता है ॥ ११ ॥

सूत्रमें ' पण्णारसकम्मभूमीसु ' ऐसा कहनेपर उन पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भक मनुष्य ही होता है। परन्तु उसका निष्ठापन (समाप्ति) चारों गतियोंमें भी सम्भव है। इसी प्रकार सूत्रमें प्रयुक्त ' जम्हि ' पदसे यह अभिप्राय समझना चाहिये कि जिस कालमें केवली जिनोंकी सम्भावना है उसी कालमें

वह उक्त दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है। इससे सुषमासुषमा आदि कालोंमें उसकी क्षपणाका निषेध समझना चाहिये।

णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि ॥ १२ ॥

परन्तु दर्शनमोहकी क्षपणाका निष्ठापक चारों ही गतियोंमें उसका निष्ठापन करता है ॥

कृतकृत्यवेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर आगेके समयमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव निष्ठापक कहा जाता है। सो वह पूर्वबद्ध आयुके वश चारों ही गतियोंमें उत्पन्न होकर उस दर्शनमोहनीयकी क्षपणाको पूर्ण करता है। जीव सम्यक्त्व प्रकृतिकी अन्तिम फालिको नीचेके निषेकोंमें देनेसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक कृत्यकृत्यवेदक कहा जाता है।

सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि ॥ १३ ॥

सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिके द्वारा स्थापित सात कर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय; इन सात कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ि प्रमाण स्थापित करता है ॥ १३ ॥

चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि ॥ १४ ॥

उस प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय; इन सात कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ि प्रमाण स्थापित करता है ॥ १४ ॥

अभिप्राय यह है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुए अन्तिमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके उक्त सात कर्मोंका जितना स्थितिबन्ध और सत्त्व था उसकी अपेक्षा संयमासंयमके अभिमुख हुआ जीव संख्यातगुणे हीन स्थितिबन्धको और स्थितिसत्त्वको स्थापित करता है। इसकी अपेक्षा भी संयमके अभिमुख हुए अन्तिमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवका स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन होता है।

सपुण्ण पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला जीव उसे उत्तरोत्तर हीन करता हुआ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय; इन चार कर्मोंकी स्थितिको अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थापित करता है ॥

वेदणीयं बारसमुहुत्त ट्ठिदिं ठवेदि, णामा-गोदाणमट्ठमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि, सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक वेदनीयकी स्थितिको बारह मुहूर्त, नाम और गोत्र कर्मोंकी स्थितिको आठ मुहूर्त तथा शेष कर्मोंकी स्थितिको भिन्नमुहूर्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थापित करता है ॥ १६ ॥

॥ आठवीं चूलिका समाप्त हुई ॥ ८ ॥

---

९. णवमी चूलिया

णेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ १ ॥

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ॥ २ ॥

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव किस अवस्थामें उसे उत्पन्न करते हैं ? ॥

पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ३ ॥

वे पर्याप्तकोंमें ही उस प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, न कि अपर्याप्तकोंमें ॥ ३ ॥

पज्जत्तएसु उप्पादेंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव तप्पाओग्गंतोमुहुत्तं उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठा ॥ ४ ॥

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले नारकी अन्तर्मुहूर्तसे लेकर उसके योग्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे नहीं उत्पन्न करते ॥ ४ ॥

अभिप्राय यह है कि पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर जब तक तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत नहीं होता है तब तक जीव उसके योग्य विशुद्धिके सम्भव न होनेसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न नहीं कर सकते हैं।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ५ ॥

इस प्रकार प्रथम पृथवीसे लेकर सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ६ ॥

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

तीहिं कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ७ ॥

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव तीन कारणोंके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥

केइं जाइस्सरा केइं सोऊण केइं वेदणाहिभूदा ॥ ८ ॥

कितने ही नारकी जीव जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेशको सुनकर और कितने ही वेदनासे अभिभूत होकर प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ॥ ९ ॥

इस प्रकार ऊपरकी तीन पृथिवियोंमें नारकी जीव उपर्युक्त तीन कारणोंके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

चदुसु हेट्ठिमासु पुढवीसु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ १० ॥

नीचेकी चार पृथिवियोंमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ १० ॥

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ११ ॥

नीचेकी चार पृथिवियोंमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव दो कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ११ ॥

केइं जाइस्सरा केइं वेयणाहिभूदा ॥ १२ ॥

उनमें कितने ही जीव जातिस्मरणसे और कितने ही वेदनासे अभिभूत होकर प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ १२ ॥

चूंकि नीचेकी चार पृथिवियोंमें देवोंका जाना सम्भव नहीं है, अत एव वहां धर्मश्रवणके विना शेष दो ही कारणोंसे नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ।

तिरिक्खमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ १३ ॥

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ १४ ॥

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच उसे किस अवस्थामें उत्पन्न करते हैं ? ॥ १४ ॥

पंचिंदिएसु उप्पादेंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु ॥ १५ ॥

तिर्यंच जीव पंचेन्द्रियोंमें ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें उसे नहीं उत्पन्न करते ॥ १५ ॥

पंचिंदिएसु उप्पादेंता सण्णीसु उप्पादेंति, णो असण्णीसु ॥ १६ ॥

पंचेन्द्रियोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच जीव संज्ञी जीवोंमें ही उसे उत्पन्न करते हैं, न कि असंज्ञियोंमें ॥ १६ ॥

सण्णीसु उप्पादेंता गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १७ ॥

संज्ञी तिर्यंचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच जीव गर्भजोंमें ही उसे उत्पन्न करते हैं, न कि सम्मूर्छन जन्मवालोंमें ॥ १७ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंतो पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८ ॥

गर्भज तिर्यंचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच जीव उसे पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न करते हैं, न कि अपर्याप्तकोंमें ॥ १८ ॥

पज्जत्तएसु उप्पादेंता दिवसपुधत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो ॥ १९ ॥

पर्याप्तक तिर्यंचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच जीव दिवसपृथक्त्वसे लेकर ऊपरके कालमें ही उसे उत्पन्न करते हैं, उसके नीचेके कालमें नहीं उत्पन्न करते ॥ १९ ॥

दिवसपृथक्त्वसे यहां बहुत दिवसपृथक्त्वोंको ग्रहण करना चाहिये, न कि सात आठ दिनोंको; क्योंकि, 'पृथक्त्व' शब्द यहां विपुल संख्याका वाचक है ।

एवं जाव सव्वदीव-समुद्देसु ॥ २० ॥

इस प्रकारसे सब द्वीप-समुद्रोंमें तिर्यंच जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पादेंति ? ॥ २१ ॥

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ २१ ॥

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण ॥ २२ ॥

पूर्वोक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही तिर्यंच जीव जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेशको सुनकर और कितने ही जिनप्रतिमाका दर्शन करके उसे उत्पन्न करते हैं ॥ २२ ॥

मणुस्सा मिच्छादिट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ २३ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २३ ॥

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ २४ ॥

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य किस अवस्थामें उसे उत्पन्न करते हैं ? ॥ २४ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु पढमसम्मत्तमुप्पादेंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ २५॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्य गर्भज मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें उसे नहीं उत्पन्न करते ॥ २५ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंता पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ २६ ॥

गर्भजोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य पर्याप्तकोंमें ही उसे उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं उत्पन्न करते ॥ २६ ॥

पज्जत्तएसु उप्पादेंता अट्ठवासप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो ॥ २७ ॥

पर्याप्तकोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले गर्भज मिथ्यादृष्टि मनुष्य आठ वर्षसे ऊपरके कालमें ही उसे उत्पन्न करते हैं, नीचेके कालमें उसे नहीं उत्पन्न करते ॥ २७ ॥

एवं जाव अड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु ॥ २८ ॥

इस प्रकारसे अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य उस प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २८ ॥

मणुस्सा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ २९ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि कितने कारणोंसे उस प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २९ ॥

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण ॥ ३० ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही मनुष्य जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेशको सुनकर और कितने ही जिनप्रतिमाका दर्शन करके उसको उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

' जिनबिम्बके दर्शनसे ' यहां उसके अन्तर्गत जिनमहिमा (जन्माभिषेक-महोत्सवादि) के दर्शनको भी ग्रहण करना चाहिये ।

देवा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ३१ ॥

देव मिथ्यादृष्टि प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ३१ ॥

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ ३२ ॥

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले देव मिथ्यादृष्टि किस अवस्थामें उसे उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३२ ॥

पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ३३ ॥

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले देव मिथ्यादृष्टि उसे पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न करते हैं, न कि अपर्याप्तकोंमें ॥ ३३ ॥

पज्जत्तएसु उप्पाएंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उवरि उप्पाएंति, णो हेट्ठदो ॥३४॥

पर्याप्तकोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले देव मिथ्यादृष्टि उसे अन्तर्मुहूर्त कालसे ऊपरके कालमें ही उत्पन्न करते हैं; न कि उससे नीचेके कालमें ॥ ३४ ॥

एवं जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ॥ ३५ ॥

इस प्रकारसे उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकविमानवासी देवों तक देव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ३५ ॥

देवा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ३६ ॥

देव मिथ्यादृष्टि कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ३६ ॥

चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा केइं सोऊण केइं जिणमहिमं दट्ठूण केइं देविद्धिं दट्ठूण ॥ ३७ ॥

देव मिथ्यादृष्टि चार कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही जाति-स्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेशको सुनकर, कितने ही जिनमहिमाको देखकर और कितने ही ऊपरके देवोंकी ऋद्धिको देखकर उसे उत्पन्न करते हैं ॥ ३७ ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा त्ति ॥ ३८ ॥

इस प्रकार भवनवासी देवोंसे लगाकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देव उपर्युक्त चार कारणोंके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

आणद-पाणद-आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ३९ ॥

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोंके निवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३९ ॥

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा केइं सोऊण केइं जिणमहिमं दट्ठूण ॥ ४० ॥

पूर्वोक्त आनतादि चार कल्पोंके देव तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेशको सुनकर और कितने ही जिनमहिमाको देखकर उसे उत्पन्न करते हैं ॥ ४० ॥

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ४१ ॥

नौ ग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ ४१ ॥

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा केइं सोऊण ॥ ४२ ॥

नौ ग्रैवेयकविमानवासी मिथ्यादृष्टि देव दो कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही जातिस्मरणसे और कितने ही धर्मोपदेशको सुनकर ॥ ४२ ॥

यहां चूंकि ऊपरके देवोंका आगमन नहीं होता है, इसलिये उनके महर्द्धिदर्शन सम्भव नहीं है। साथ ही उनके जिनमहिमा दर्शन भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, वे न तो तीर्थंकरके किसी कल्याणक महोत्सवमें जाते हैं और न अष्टाह्निक महोत्सवके समय नन्दीश्वर द्वीपमें भी जाते हैं।

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सव्वे ते णियमा सम्माइट्ठि त्ति पण्णत्ता ॥ ४३ ॥

अनुदिशोंसे लगाकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी देव सब ही नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं, ऐसा परमागममें कहा गया है ॥ ४३ ॥

णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति ॥ ४४ ॥

मिथ्यात्वके साथ नरकमें प्रविष्ट हुए नारकियोंमेंसे कितने ही मिथ्यात्व सहित ही नरकसे निकलते हैं ॥ ४४ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ४५ ॥

कितने ही मिथ्यात्व सहित नरकमें जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥

अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वके साथ नरकगतिमें प्रविष्ट होकर और वहां अपनी आयु प्रमाण रह करके अन्तमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले कितने ही नारकी जीव सासादन-सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ४६ ॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाकर वहांसे सम्यक्त्वके साथ निकलते हैं ॥ ४६

सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णींति ॥ ४७ ॥

सम्यक्त्व सहित नरकमें जानेवाले जीव सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ४७ ॥

अभिप्राय यह है कि कितने ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि और कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वबद्ध आयु कर्मके वश प्रथम नरकमें जाते हैं और वहांसे सम्यक्त्वके साथ ही निकलते हैं, क्योंकि, उनके गुणस्थानका परिवर्तन सम्भव नहीं है।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ४८ ॥

इस प्रकारसे प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव प्रवेश करते हैं और वहांसे निकलते हैं ॥ ४८ ॥

विदियाए जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति ॥ ४९ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक कितने ही नारकी जीव मिथ्यात्व सहित प्रविष्ट होकर मिथ्यात्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ४९ ॥

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ५० ॥

मिथ्यात्व सहित उन द्वितीयादि पृथिवियोंमें प्रविष्ट हुए नारकियोंमेंसे कितने ही सासादन-सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५० ॥

मिच्छत्तेण अधिगदा केई सम्मत्तेण णींति ॥ ५१ ॥

मिथ्यात्वसहित द्वितीयादि पृथिवियोंमें प्रविष्ट हुए नारकियोंमेंसे कितने ही वहांसे सम्यक्त्वके साथ निकलते हैं ॥ ५१ ॥

सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण चेव णींति ॥ ५२ ॥

सातवीं पृथिवीके नारकी जीव मिथ्यात्वसहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ५२ ॥

इसका कारण यह है कि सम्यक्त्व, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए सातवीं पृथिवीके नारकी जीव मरणकालमें नियमसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ करते हैं।

तिरिक्खा केई मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ५३ ॥

तिर्यंच जीव कितने ही मिथ्यात्वसहित तिर्यंचगतिमें जाकर मिथ्यात्वसहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ५३ ॥

केई मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ५४ ॥

कितने ही मिथ्यात्वसहित तिर्यंचगतिमें जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५४ ॥

केई मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ५५ ॥

कितने ही मिथ्यात्वसहित तिर्यंचगतिमें जाकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५५ ॥

केई सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ५६ ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें जाकर मिथ्यात्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५६ ॥

केई सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ५७ ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ५७ ॥

केई सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ५८ ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें जाकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५८ ॥

सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति ॥ ५९ ॥

सम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें जानेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥

इसका कारण यह है कि पूर्वबद्ध आयुके वश तिर्यंचगतिमें जानेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि

और कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्य गुणस्थानमें जाना सम्भव नहीं है।

एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता ॥ ६० ॥

इसी प्रकारसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव तिर्यंचगतिमें प्रवेश और वहांसे निर्गमन करते हैं ॥ ६० ॥

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयो मणुसिणीयो भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति ॥६१॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, मनुष्यनियां, भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा उनकी देवियां एवं सौधर्म और ऐशान कल्पवासिनी देवियां; ये मिथ्यात्वसहित उस उस गतिमें प्रवेश करके उनमेंसे कितने ही मिथ्यात्वसहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ६१ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ६२ ॥

उनमें कितने ही मिथ्यात्वसहित प्रवेश करके वहांसे सासादनसम्यक्त्वके साथ निकलते हैं ॥ ६२ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६३ ॥

कितने ही मिथ्यात्वसहित प्रवेश करके सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६३ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती आदि जीवोंमें कितने ही सासदनसम्यक्त्वके साथ उन गतियोंमें जाकर मिथ्यात्वसहित वहांसे निकलते हैं ॥ ६४ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६५ ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्वके साथ जाकर सम्यक्त्वसहित वहांसे निकलते हैं ॥ ६५ ॥

मणुसा मणुस-पज्जत्ता सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ६६ ॥

मनुष्य, मनुष्य-पर्याप्त तथा सौधर्म-ऐशानसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक विमानवासी देवोंमें कितने ही जीव मिथ्यात्वसहित जाकर मिथ्यात्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ६६ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ६७ ॥

कितने ही मिथ्यात्वसहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६७ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६८ ॥

कितने ही मिथ्यात्वसहित जाकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६८ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ६९ ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६९ ॥

केई सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ७० ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ७० ॥

केई सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ७१ ॥

कितने ही सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ७१ ॥

केई सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ७२ ॥

कितने ही सम्यक्त्वसहित जाकर मिथ्यात्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ७२ ॥

केई सम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ७३ ॥

कितने ही सम्यक्त्वसहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ७३ ॥

केई सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ७४ ॥

उक्त मनुष्य व मनुष्य पर्याप्त एवं सौधर्मादिक स्वर्गोंके देवोंमें कितने ही सम्यक्त्वसहित जाकर सम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ७४ ॥

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति ॥ ७५ ॥

अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के विमानवासी देव सम्यक्त्वके साथ वहां प्रविष्ट होकर नियमसे सम्यक्त्वसहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ७५ ॥

णेरइयमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ७६ ॥

नारकी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ ७६ ॥

दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव ॥ ७७ ॥

उक्त नारकी जीव नरकसे निकलकर दो गतियोंमें आते हैं– तिर्यंचगतिमें और मनुष्यगतिमें भी ॥ ७७ ॥

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु ॥७८॥

तिर्यंचोंमें आनेवाले उक्त नारकी जीव पंचेन्द्रियोंमें आते हैं, एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ ७८ ॥

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥ ७९ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आते हुए वे नारकी जीव संज्ञियोंमें आते हैं, न कि असंज्ञियोंमें ॥ ७९ ॥

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८० ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञियोंमें आनेवाले उक्त नारकी जीव गर्भजोंमें आते हैं, सम्मूर्छनोंमें नहीं आते ॥ ८० ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ८१ ॥

पंचेन्द्रिय, संज्ञी व गर्भज तिर्यंचोंमें आनेवाले उक्त नारकी जीव पर्याप्तकोंमें ही आते हैं; अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ ८१ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥

पंचेन्द्रिय, संज्ञी, गर्भज एवं पर्याप्त तिर्यंचोंमें आनेवाले उक्त नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें ही आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं आते ॥ ८२ ॥

मणुस्सेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८३ ॥

मनुष्योंमें आनेवाले उक्त नारकी जीव गर्भजोंमें ही आते हैं, सम्मूर्छनोंमें नहीं आते ॥८३॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ८४ ॥

गर्भज मनुष्योंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ ८४ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥

गर्भज पर्याप्त मनुष्योंमें भी आनेवाले वे संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं आते ॥ ८५ ॥

णेरइया सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण णिरयादो णो उव्वट्टंति ॥ ८६ ॥

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वके साथ नरकसे नहीं निकलते हैं ॥ ८६ ॥

णेरइया सम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति? ॥ ८७ ॥

नारक सम्यग्दृष्टि जीव नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ ८७ ॥

एक्कं मणुसगदिं चेव आगच्छंति ॥ ८८ ॥

नारक सम्यग्दृष्टि जीव नरकसे निकलकर एक मात्र मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ ८८ ॥

इसका कारण यह है कि जिन नारक सम्यग्दृष्टियोंके मनुष्यायुको छोड़कर अन्य आयुका सत्त्व है उनका सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलना सम्भव नहीं है ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८९ ॥

मनुष्योंमें आनेवाले नारक सम्यग्दृष्टि जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्छनोंमें नहीं आते ॥ ८९ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ९० ॥

गर्भज मनुष्योंमें आनेवाले नारक सम्यग्दृष्टि जीव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ ९० ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥

गर्भज पर्याप्त मनुष्योंमें आते हुए वे संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं आते ॥ ९१ ॥

एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ॥ ९२ ॥

इस प्रकारसे ऊपरकी छह पृथिवियोंके नारकी जीव नरकसे निर्गमन करते हैं ॥ ९२ ॥

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ९३ ॥

नीचे सातवीं पृथिवीके नारक मिथ्यादृष्टि नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ॥

एक्कं तिरिक्खगदिं चेव आगच्छंति ॥ ९४ ॥

सातवीं पृथिवीसे निकलते हुए नारक मिथ्यादृष्टि केवल एक तिर्यंचगतिमें ही आते हैं ॥ कारण यह कि एक मात्र तिर्यंच आयुको छोड़कर अन्य किसी भी आयुकर्मका उनके बन्ध नहीं होता है।

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु ॥ ९५ ॥

तिर्यंचोंमें आनेवाले उक्त नारक जीव पंचेन्द्रियोंमें ही आते हैं, एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ ९५ ॥

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥ ९६ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आते हुए वे संज्ञियोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं आते ॥ ९६ ॥

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ९७ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यंचोंमें आते हुए वे गर्भजोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं आते ॥ ९७ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ९८ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भज तिर्यंचोंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचोंमें आते हुए वे संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं आते ॥ ९९ ॥

सत्तमाए पुढवीए णेरइया सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अप्पप्पणो गुणेण णिरयादो णो उव्वट्टिंति ॥ १०० ॥

सातवीं पृथिवीके नारक सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि अपने अपने गुणस्थानके साथ नरकसे नहीं निकलते हैं ॥ १०० ॥

तिरिक्खा सण्णी मिच्छाइट्ठी पंचिंदियपज्जत्ता संखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १०१ ॥

तिर्यंचोंमें संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त व संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १०१ ॥

चत्तारि गदीओ गच्छंति– णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥

उपर्युक्त तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इन चारों ही गतियोंमें जाते हैं ॥ १०२ ॥

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ॥ १०३ ॥

नरकोंमें जाते हुए उक्त तिर्यंच जीव सभी नरकोंमें जाते हैं ॥ १०३ ॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ॥ १०४ ॥

तिर्यंचोंमें जाते हुए वे सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं ॥ १०४ ॥

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुसेसु गच्छंति ॥ १०५ ॥

मनुष्योंमें जाते हुए वे सभी मनुष्योंमें जाते हैं ॥ १०५ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ॥ १०६ ॥

देवोंमें जाते हुए वे भवनवासियोंसे लगाकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जाते हैं ॥

इसके उपर उनका जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऊपरके कल्पोंमें सम्यक्त्व और अणुव्रतोंके धारक जीव ही जाते हैं, असंयत व मिथ्यादृष्टि नहीं जाते ।

पंचिंदियतिरिक्ख-असण्णि-पज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १०७ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्त तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ॥ १०७ ॥

चत्तारि गदीओ गच्छंति– णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥

उपर्युक्त तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इन चारों ही गतियोंमें जाते हैं ॥ १०८ ॥

णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरइएसु गच्छंति ॥ १०९ ॥

नरकोंमें जाते हुए वे प्रथम पृथिवीके नारक जीवोंमें जाते हैं ॥ १०९ ॥

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्ज-वासाउएसु गच्छंति ॥ ११० ॥

तिर्यंच और मनुष्योंमें जाते हुए वे सभी तिर्यंच और सभी मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंमें नहीं जाते ॥ ११० ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु गच्छंति ॥ १११ ॥

देवोंमें जाते हुए वे भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंमें जाते हैं ॥ १११ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-सण्णी असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउकाइया वा वणप्फइ-काइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहिं कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११२ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक व वनस्पति-कायिक, निगोद जीव बादर और सूक्ष्म, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त व अपर्याप्त तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त तिर्यंच तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ॥ ११२ ॥

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि ॥ ११३ ॥

उपर्युक्त तिर्यंच जीव तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें जाते हैं ॥ ११३ ॥

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्ज-वस्साउएसु गच्छंति ॥ ११४ ॥

तिर्यंच और मनुष्योंमें जाते हुए वे सभी तिर्यंच और सभी मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचों और मनुष्योंमें नहीं जाते हैं ॥ ११४ ॥

तेउकाइया वाउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११५ ॥

अग्निकायिक और वायुकायिक बादर व सूक्ष्म तथा पर्याप्तक व अपर्याप्तक तिर्यंच तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११५ ॥

एक्कं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति ॥ ११६ ॥

उपर्युक्त अग्निकायिक व वायुकायिक तिर्यंच एक मात्र तिर्यंचगतिमें ही जाते हैं ॥११६॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति ॥

तिर्यंचोंमें जाते हुए वे सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंमें नहीं जाते ॥ ११७ ॥

तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगद-समाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११८ ॥

तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११८ ॥

तिण्णि गदीओ गच्छंति– तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ ११९ ॥

उपर्युक्त तिर्यंच जीव तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इन तीन गतियोंमें जाते हैं ॥

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु ॥ १२० ॥

तिर्यंचोंमें जाते हुए वे एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंमें जाते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं जाते ॥

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइय-पत्तेय-सरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ॥ १२१ ॥

एकेन्द्रियोंमें जाते हुए वे बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें ही जाते हैं; अपर्याप्तकोंमें नहीं जाते ॥ १२१ ॥

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ॥ १२२ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जाते हुए वे संज्ञी तिर्यंचोंमें जाते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं जाते ॥१२२॥

सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १२३ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जाते हुए वे गर्भजोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं जाते ॥ १२३ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १२४ ॥

गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जाते हुए वे पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं जाते ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति असंखेज्जवासाउवेसु वि ॥ १२५

पर्याप्त गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें जाते हुए वे संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी जाते हैं और असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं ॥ १२५ ॥

मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १२६ ॥

मनुष्योंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच गर्भज मनुष्योंमें ही जाते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं जाते ॥ १२६ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १२७ ॥

गर्भज मनुष्योंमें जाते हुए वे पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं जाते ॥ १२७ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥ १२८ ॥

पर्याप्तक गर्भज मनुष्योंमें जाते हुए वे संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी जाते हैं और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी जाते हैं ॥ १२८ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ॥

देवोंमें जाते हुए वे संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच भवनवासी देवोंसे लगाकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १२९ ॥

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेसु णो कालं करेंति ॥ १३० ॥

तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मरणको प्राप्त नहीं होते ॥ १३० ॥

तिरिक्खा असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगद-समाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३१ ॥

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ मरकर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३१ ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३२ ॥

उपर्युक्त तिर्यंच जीव मरकर एक मात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १३२ ॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ॥

देवोंमें जाते हुए वे सौधर्म-ऐशान स्वर्गसे लगाकर आरण-अच्युत कल्प तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १३३ ॥

तिरिक्खमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३४ ॥

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच तिर्यंच पर्यायके साथ मरकर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३४ ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३५ ॥

उपर्युक्त तिर्यंच एक मात्र देवगतिमें ही जाते हैं ॥ १३५ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति ॥ १३६ ॥

देवोंमें जाते हुए वे भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जाते हैं ॥ १३६ ॥

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेहि णो कालं करेंति ॥ १३७ ॥

तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरणको प्राप्त नहीं होते ॥ १३७ ॥

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगद-समाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३८ ॥

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंच पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३८ ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३९ ॥

असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच मरणको प्राप्त होकर एक मात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १३९ ॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ॥ १४० ॥

देवोंमें जाते हुए वे असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच सौधर्म-ऐशान कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १४० ॥

मणुसा मणुसपज्जत्ता मिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगद-समाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १४१ ॥

मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्य पर्यायके साथ मरकर कितनी गतियोंको जाते हैं ? ॥ १४१ ॥

चत्तारि गदीओ गच्छंति– णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई चेदि ॥१४२॥

उपर्युक्त मनुष्य नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इन चारों ही गतियोंमें जाते हैं ॥ १४२ ॥

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ॥ १४३ ॥

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी नरकोंमें जाते हैं ॥ १४३ ॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ॥ १४४ ॥

तिर्यंचोंमें जाते हुए वे सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं ॥ १४४ ॥

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति ॥ १४५ ॥

मनुष्योंमें जाते हुए वे सभी मनुष्योंमें जाते हैं ॥ १४५ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ॥

देवोंमें जाते हुए वे भवनवासी देवोंसे लगाकर नवग्रैवेयक तकके विमानवासी देवोंमें जाते हैं ॥

मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥१४७

मनुष्य अपर्याप्तक मनुष्य मनुष्य पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ १४८ ॥

उपर्युक्त मनुष्य अपर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य इन दो गतियोंमें जाते हैं ॥ १४८ ॥

तिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ॥ १४९ ॥

तिर्यंच और मनुष्योंमें जाते हुए वे सभी तिर्यंच और सभी मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंमें नहीं जाते हैं ॥ १४९ ॥

मणुस्ससासणसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १५० ॥

मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्य पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंको जाते हैं ? ॥ १५० ॥

तिण्णि गदीओ गच्छंति– तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ १५१ ॥

उपर्युक्त मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इन तीन गतियोंमें जाते हैं ॥ १५१ ॥

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु गच्छंति ॥

तिर्यंचोंमें जाते हुए वे एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंमें जाते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं जाते ॥

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी-बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १५३ ॥

एकेन्द्रियोंमें जाते हुए वे बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं जाते ॥ १५३ ॥

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ॥ १५४ ॥

पंचेन्द्रियोंमें जाते हुए वे संज्ञियोंमें जाते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं जाते ॥ १५४ ॥

सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १५५ ॥

संज्ञियोंमें जाते हुए वे गर्भजोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं जाते ॥ १५५ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १५६ ॥

गर्भजोंमें जाते हुए वे पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं जाते ॥ १५६ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥ १५७ ॥

पर्याप्तकोंमें जाते हुए वे संख्यातवर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं और असंख्यातवर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं ॥ १५७ ॥

मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १५८ ॥

मनुष्योंमें जाते हुए वे गर्भजोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं जाते ॥ १५८ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १५९ ॥

गर्भजोंमें जाते हुए वे पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं जाते ॥ १५९ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥

पर्याप्तकोंमें जाते हुए वे संख्यातवर्षायुष्क मनुष्योंमें भी जाते हैं और असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्योंमें भी जाते हैं ॥ १६० ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ॥

देवोंमें जाते हुए वे भवनवासी देवोंसे लगाकर नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों तक जाते हैं ॥

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति ॥ १६२ ॥

संख्यात वर्षकी आयुवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मनुष्य होते हुए मनुष्य पर्यायके साथ मरण नहीं करते हैं ॥ १६२ ॥

मणुससम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगदसमाणा कदि गदिओ गच्छंति ? ॥ १६३ ॥

मनुष्य सम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्य पर्यायके साथ मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १६३ ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १६४ ॥

उक्त संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य एक मात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १६४ ॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ॥

देवोंमें जाते हुए वे सौधर्म-ऐशानसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तकमें जाते हैं ॥

मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १६६ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्य पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १६६ ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १६७ ॥

उपर्युक्त मनुष्य एक मात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १६७ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति ॥ १६८ ॥

देवोंमें जाते हुए वे भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जाते हैं ॥ १६८ ॥

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति ॥ १६९ ॥

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मनुष्य पर्यायमें मरण नहीं करते ॥ १६९ ॥

मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥१७० ॥

मनुष्य सम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य पर्यायके साथ मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १७० ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १७१ ॥

उपर्युक्त मनुष्य मर करके एक मात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १७१ ॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ॥ १७२ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १७२ ॥

देवा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदिओ आगच्छंति ? ॥ १७३ ॥

देव मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव देव पर्यायके साथ उद्वर्तित और च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १७३ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ १७४ ॥

देव मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मर करके तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो ही गतियोंमें आते हैं ॥ १७४ ॥

तिरिक्खेसु आगच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो विगलिंदिएसु ॥१७५॥

तिर्यंचोंमें आते हुए वे एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ १७५ ॥

एइंदिएसु आगच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १७६ ॥

एकेन्द्रियोंमें आते हुए वे बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १७६ ॥

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥ १७७ ॥

पंचेन्द्रियोंमें आते हुए वे संज्ञी तिर्यंचोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं आते ॥ १७७ ॥

असण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १७८ ॥

संज्ञी तिर्यंचोंमें आते हुए वे गर्भजोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं आते ॥ १७८ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १७९ ॥

गर्भजोंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १७९ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥

पर्याप्तकोंमें आते हुए वे संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १८१ ॥

मनुष्योंमें आते हुए वे मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव गर्भजोंमें आते हैं, सम्मूर्छनोंमें नहीं आते ॥ १८१ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८२ ॥

गर्भज मनुष्योंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १८२ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥

पर्याप्तक मनुष्योंमें आते हुए वे संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८३ ॥

देवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो उव्वट्टंति, णो चयंति ॥

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देव पर्यायके साथ न उद्वर्तित होते हैं और न च्युत होते हैं ॥ १८४ ॥

देवा सम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥

देव सम्यग्दृष्टि देव देव पर्यायके साथ उद्वर्तित और च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ १८६ ॥

देव सम्यग्दृष्टि मर करके एक मात्र मनुष्यगतिमें आते हैं ॥ १८६ ॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १८७ ॥

मनुष्योंमें आते हुए वे गर्भजोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं आते ॥ १८७ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८८ ॥

गर्भज मनुष्योंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १८८ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥

गर्भज पर्याप्त मनुष्योंमें आते हुए वे संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८९ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु देवगदिभंगो ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देवोंकी आगति सामान्य देवगतिके समान है ॥ १९० ॥

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढमपुढवीभंगो। णवरि चुदा त्ति भाणिदव्वं ॥ १९१ ॥

सनत्कुमारसे लगाकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंकी आगति प्रथम पृथिवीके नारक जीवोंकी आगतिके समान है। विशेषता इतनी है कि यहां उद्वर्तित के स्थानपर 'च्युत' ऐसा कहना चाहिए ॥ १९१ ॥

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १९२ ॥

आनत कल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव देव पर्यायके साथ च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १९२ ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ १९३ ॥

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १९३ ॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १९४ ॥

मनुष्योंमें आते हुए वे गर्भजोंमें आते हैं, न कि सम्मूर्च्छनोंमें ॥ १९४ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १९५ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १९५ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥

गर्भज पर्याप्त मनुष्योंमें आते हुए वे देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १९६ ॥

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो चयंति ॥ १९७ ॥

आनत कल्पसे लगाकर नौ ग्रैवेयक तकके विमानवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देव पर्यायके साथ च्युत नहीं होते ॥ १९७ ॥

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १९८ ॥

अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव देव पर्यायके साथ च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १९८ ॥

एक्कं हि मणुसगदिमागच्छंति ॥ १९९ ॥

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १९९ ॥

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ २०० ॥

मनुष्योंमें आते हुए वे गर्भजोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छनोंमें नहीं आते ॥ २०० ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ २०१ ॥

गर्भज मनुष्योंमें आते हुए वे पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ २०१ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥

गर्भज पर्याप्त मनुष्योंमें आते हुए वे देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ २०२ ॥

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०३ ॥

नीचे सातवीं पृथिवीके नारकी नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २०३ ॥

एक्कं हि चेव तिरिक्खगदिमागच्छंति त्ति ॥ २०४ ॥

सातवीं पृथिवीसे निकलते हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यंचगतिमें ही आते हैं ॥ २०४ ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएंति– आभिणिबोहियणाणं णो उप्पाएंति, सुदणाणं णो उप्पाएंति, ओहिणाणं णो उप्पाएंति, सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएंति, सम्मत्तं णो उप्पाएंति, संजमासंजमं णो उप्पाएंति ॥ २०५ ॥

सातवीं पृथिवीसे तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए उक्त नारकी तिर्यंच होकर इन छहको उत्पन्न नहीं करते हैं– आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, श्रुतज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, अवधिज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न नहीं करते, सम्यक्त्वको उत्पन्न नहीं करते, और संयमासंयमको उत्पन्न नहीं करते ॥ २०५ ॥

छट्ठीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०६ ॥

छठी पृथिवीके नारकी नारकी होते हुए नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥

दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ २०७ ॥

छठी पृथिवीसे निकलते हुए नारकी जीव तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ २०७ ॥

तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति– केइं आभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति ॥ २०८ ॥

छठी पृथिवीसे तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए कितने ही तिर्यंच व मनुष्य इन छहको उत्पन्न करते हैं– कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं ॥ २०८ ॥

पंचमीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीयो आगच्छंति ? ॥ २०९ ॥

पांचवीं पृथिवीके नारकी जीव नारकी होते हुए नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २०९ ॥

दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव ॥ २१० ॥

पांचवीं पृथिवीसे निकले हुए नारकी जीव तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ २१० ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥ २११ ॥

पांचवीं पृथिवीसे तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए कोई तिर्यंच अभिनिबोधिकज्ञान आदि उपर्युक्त छहको उत्पन्न करते हैं ॥ २११ ॥

मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइमट्ठमुप्पाएंति– केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइंमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति ॥ २१२ ॥

पांचवीं पृथिवीसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुए कोई मनुष्य आठको उत्पन्न करते हैं– कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमको उत्पन्न करते हैं ॥

चउत्थीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २१३ ॥

चौथी पृथिवीके नारकी जीव नारकी होते हुए नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं? ॥ २१३ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगइं चेव मणुसगइं चेव ॥ २१४ ॥

चौथी पृथिवीसे निकलते हुए नारकी जीव तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ २१४ ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥ २१५ ॥

चौथी पृथिवीसे तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए कोई तिर्यंच आभिनिबोधिकज्ञान आदि उक्त छहको उत्पन्न करते हैं ॥ २१५ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति– केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं, णो वासुदेवत्तं, णो चक्कवट्टित्तं, णो तित्थयरत्तं । केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ॥ २१६ ॥

चौथी पृथिवीसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुए कोई मनुष्य दसको उत्पन्न करते हैं– कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमको उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे न बलदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, न वासुदेवत्वको, न चक्रवर्तित्वको और न तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करते हैं। कोई अन्तकृत (आठों कर्मोंके विनाशक) होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, और कोई सर्व दुःखोंके अन्तको प्राप्त होते हैं ॥ २१६ ॥

यहां जो 'सिज्झंति बुज्झंति' आदि अनेक क्रियापदोंका प्रयोग किया गया है वह अनेक वादियोंके अभिमतके निराकरणार्थ किया गया है। यथा–कपिल ऋषिका अभिमत है कि केवलज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर भी जीव समस्त पदार्थोंको नहीं जानता है। इस अभिमतके निराकरणार्थ सूत्रमें 'बुज्झंति' यह क्रियापद दिया गया है। उसका अभिप्राय है कि जीव सिद्ध होकर तीनों कालोंके विषयभूत अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायोंसे संयुक्त समस्त पदार्थोंका ज्ञाता हो जाता है।

वैशेषिक, नैयायिक, सांख्य और मीमांसकोंका कहना है कि मोक्षका अर्थ बन्धनसे छूटना है, परन्तु जीवके नित्य व अमूर्त होनेसे जब वह बन्ध ही उसके सम्भव नहीं है तब उसके भला मोक्ष किसका होगा– वह असम्भव ही है। उनके इस अभिमतके निराकरणार्थ यहां सूत्रमें 'मुच्चंति'

इस क्रियापदका प्रयोग किया गया है। अभिप्राय उसका यह है कि जीव संसार अवस्थामें अनादि कर्मबन्धसे बद्ध होनेके कारण कथंचित् बद्ध, मूर्तिक व कथंचित् अनित्य भी है। अत एव वह कर्मोंसे सम्बद्ध भी रहता है। इस प्रकार सिद्ध हो जानेपर वह उस कर्मबन्धनसे छुटकारा पा लेता है।

किन्ही तार्किकोंका मत है कि समस्त कर्मबन्धके नष्ट हो जानेपर भी जीव आत्यन्तिक सुखको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, उस समय उसके सुखका हेतुभूत शुभ कर्म और दुखका हेतुभूत अशुभ कर्म भी नहीं रहता है। इस मतके निराकरणार्थ सूत्रमें ' परिणिव्वाणयंति ' यह पद दिया गया है। अभिप्राय उसका यह है कि जीव कर्मबन्धनसे छूट जानेपर - मुक्त हो जानेपर— अनन्त सुखका अनुभव करता है। संसार अवस्थामें शुभ कर्मके निमित्तसे जो सुख प्राप्त होता है वह बाधासहित व विनश्वर होता है। इसीलिये वह वस्तुतः सुख नहीं, किन्तु सुखाभास है। वास्तविक (निराकुल) सुख तो शुभ और अशुभ इन दोनों ही कर्मोंके अभावमें होता है। अतः सिद्ध अवस्थामें जीव अनन्त सुखका शाश्वतिक अनुभव किया करता है।

उक्त तार्किकोंका यह भी मत है कि जहां सुख है वहां नियमसे दुख भी रहता है, क्योंकि, वह (सुख) दुखका अविनाभावी है- उसके विना नहीं होता है। इस अभिप्रायके निराकरणार्थ यहां सूत्रमें ' सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ' यह कहा गया है। उसका अभिप्राय यह है कि मुक्त हो जानेपर जीव सभी दुःखोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है। कारण यह कि उस समय उसके उस दुखके हेतुभूत कर्मोंका सर्वथा अभाव हो जाता है। अत एव उसे उस समय स्वास्थ्य (आत्मस्थिति) रूप स्वाभाविक शाश्वतिक सुख प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सूत्रमें प्रयुक्त उक्त सब ही पद सार्थक हैं, ऐसा समझना चाहिये।

तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ॥ २१७ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंके नारकी जीव नारकी होते हुए नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २१७ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ २१८ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलनेवाले नारकी जीव तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ २१८ ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥ २१९ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए कोई तिर्यंच आभिनिबोधिकज्ञान आदि छहको उत्पन्न करते हैं ॥ २१९ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया केइमेक्कारस उप्पाएंति– केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवल-

णाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजम-मुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्त-मुप्पाएंति। केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति। केइमंतयडा होदूण सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ॥ २२० ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए कोई मनुष्य ग्यारहको उत्पन्न करते हैं– कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको, कोई अवधिज्ञानको, कोई मनःपर्ययज्ञानको, कोई केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमको उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे न बलदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, न वासुदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, न चक्रवर्तित्वको उत्पन्न करते हैं। कोई तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करते हैं और कोई अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, तथा सर्व दुःखोंके अन्तको प्राप्त होते हैं ॥

तिरिक्खा मणुसा तिरिक्ख-मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥

तिर्यंच व मनुष्य तिर्यंच व मनुष्य पर्यायसे मर करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ २२१ ॥

चत्तारि गदीओ गच्छंति– णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥

तिर्यंच व मनुष्य अपनी पर्यायके साथ मर करके नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इन चारों ही गतियोंमें जाते हैं ॥ २२२ ॥

णिरय-देवेसु उववण्णल्लया णिरय-देवा केइं पंचमुप्पाएंति– केइमाभिणिबोहिय-णाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति ॥ २२३ ॥

उक्त तिर्यंच और मनुष्य मर करके नारकी और देवोंमें उत्पन्न होते हुए नारक और देव पर्यायके साथ कोई पांचको उत्पन्न करते हैं– कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, और कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २२३ ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति ॥ २२४ ॥

तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए उक्त तिर्यंच व मनुष्य कोई आभिनिबोधिक आदि छहको उत्पन्न करते हैं ॥ २२४ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया तिरिक्ख-मणुस्सा जहा चउत्थपुढवीए भंगो ॥ २२५ ॥

मनुष्योंमें उत्पन्न हुए उक्त तिर्यंच व मनुष्य चतुर्थ पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके समान आभिनिबोधिकज्ञान आदि दसको उत्पन्न करते हैं ॥ २२५ ॥

देवगदीए देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥२२६॥

देवगतिमें देव देव पर्यायसहित उद्वर्तित और च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि ॥ २२७ ॥

देवगतिसे च्युत हुए जीव तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें आते हैं ॥२२७॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥ २२८ ॥

देवगतिसे च्युत होकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए कोई तिर्यंच छहको उत्पन्न करते हैं ॥२२८॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं सव्वं उप्पाएंति- केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजमं उप्पाएंति, केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, केइं वासुदेवत्तमुप्पाएंति, केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ॥ २२९ ॥

देवगतिसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए मनुष्य कोई सब ही गुणोंको उत्पन्न करते हैं-- कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं और कोई संयमको उत्पन्न करते हैं, कोई बलदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, कोई वासुदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, कोई चक्रवर्तित्वको उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करते हैं, और कोई अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, तथा सर्व दुःखोंके अन्तको प्राप्त होते हैं ॥ २२९ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २३० ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव व उनकी देवियां तथा सौधर्म और ऐशान कल्पवासिनी देवियां; ये देव पर्यायसे उद्वर्तित और च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥२३०॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ २३१ ॥

उक्त भवनवासी आदि देव और देवियां देवगतिसे च्युत होकर तिर्यंचगति और मनुष्यगति इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ २३१ ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥ २३२ ॥

उक्त भवनवासी आदि देव-देवियां तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर तिर्यंच पर्यायके साथ कोई आभिनिबोधिकज्ञान आदि छहको उत्पन्न करते हैं ॥ २३२ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति— केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं उप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, णो तित्थयरत्तमुप्पाएंति। केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति ॥ २३३ ॥

उक्त भवनवासी आदि देव-देवियां मनुष्योंमें उत्पन्न होकर मनुष्य पर्यायके साथ कितने ही दसको उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिकज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्वको उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमको उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे न बलदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, न वासुदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, न चक्रवर्तित्वको उत्पन्न करते हैं, और न तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करते हैं। कोई अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, और सर्व दुःखोंके अन्तको प्राप्त होते हैं ॥ २३३ ॥

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा जधा देवगदिभंगो ॥ २३४ ॥

सौधर्म-ऐशानसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देवोंकी आगति सामान्य देवगतिके समान है ॥ २३४ ॥

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २३५ ॥ एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २३६ ॥

आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों तक देव पर्यायसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २३५ ॥ उपर्युक्त आनतादि नौ ग्रैवेयक तकके विमानवासी देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ २३६ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइं सव्वे उप्पाएंति ॥ २३७ ॥

आनतादि नौ ग्रैवेयक तकके उपर्युक्त विमानवासी देव देव पर्यायसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हुए मनुष्य पर्यायके साथ कोई सब ही गुणोंको उत्पन्न करते हैं ॥ २३७ ॥

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीयो आगच्छंति ? ॥ २३८ ॥ एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २३९ ॥

अनुदिशोंसे लेकर अपराजित विमानवासी देवों तक देव पर्यायसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २३८ ॥ उपर्युक्त विमानवासी देव वहांसे च्युत होकर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ २३९ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं णियमा अत्थि, ओहिणाणं सिया अत्थि सिया णत्थि। केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणमुप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजममुप्पाएंति, संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति ॥ २४० ॥

उपर्युक्त देव वहांसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हुए मनुष्य होते हैं। उनके आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान नियमसे होते हैं। अवधिज्ञान कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है। कोई मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करते हैं और कोई केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं। उनके सम्यग्मिथ्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियमसे होता है। कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, संयमको वे नियमसे उत्पन्न करते हैं। कोई बलदेवत्वको तो उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्वको उत्पन्न नहीं करते। कोई चक्रवर्तित्वको उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, और सर्व दुःखोंके अन्तको प्राप्त होते हैं ॥ २४० ॥

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥

सर्वार्थसिद्धिविमाणवासी देव देव पर्यायसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥२४१॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २४२ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव देव पर्यायसे च्युत होकर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं च णियमा अत्थि। केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणं णियमा उप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजममुप्पाएंति संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति। सव्वे ते णियमा अंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति ॥ २४३ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्युत होकर जो मनुष्योंमें उत्पन्न होकर मनुष्य होते हैं उनके आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये नियमसे होते हैं। कोई मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करते हैं, केवलज्ञानको वे नियमसे उत्पन्न करते हैं। उनके सम्यग्मिथ्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियमसे होता है। कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, किन्तु संयमको वे नियमसे उत्पन्न करते हैं। कोई बलदेवत्वको उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्वको उत्पन्न नहीं करते। कोई चक्रवर्तित्वको

उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करते हैं। वे सब ही नियमसे अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं और सर्व दुःखोंके अन्तको प्राप्त होते हैं ॥ २४३ ॥

॥ नवमी चूलिका समाप्त हुई ॥ ९ ॥ इस प्रकार जीवस्थान समाप्त हुआ ॥ १ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स

बिदियखंडे खुद्दाबंधे

बंधग-संतपरूवणा

जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिद्देसो ॥ १ ॥

जो वे बन्धक जीव हैं उनका यहां यह निर्देश किया जाता है ॥ १ ॥

वे बन्धक नामबन्धक, स्थापनाबन्धक, द्रव्यबन्धक और भावबन्धकके भेदसे चार प्रकारके हैं। उनमें पूर्वोक्त जीवाजीवादि आठ भंगोंमें प्रवर्तमान 'बन्धक' यह शब्द नामबन्धक है। काष्ठकर्म, पोत्तकर्म और लेप्यकर्म आदिमें तदाकार और अतदाकारस्वरूपसे 'ये बन्धक हैं' इस प्रकारका जो आरोप किया जाता है उसका नाम स्थापनाबन्धक है।

द्रव्यबन्धक दो प्रकारके हैं– आगमद्रव्यबन्धक और नोआगमद्रव्यबन्धक। इनमें बन्ध-प्राभृतके ज्ञाता होकर भी जो वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित जीव हैं उनको आगमद्रव्यबन्धक कहा जाता है। नोआगमद्रव्यबन्धक तीन प्रकारके हैं– ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यबन्धक, भावी नोआगम-द्रव्यबन्धक और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यबन्धक। इनमें बन्धप्राभृतके ज्ञाताका जो शरीर है वह ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यबन्धक कहलाता है। जो जीव भविष्यमें बन्धप्राभृतके ज्ञातारूपसे परिणत होनेवाला है उसे भावी नोआगमद्रव्यबन्धक कहते हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यबन्धक कर्मद्रव्य-बन्धक और नोकर्मद्रव्यबन्धकके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें नोकर्मद्रव्यबन्धक भी तीन प्रकारका है– सचित्त नोकर्मद्रव्यबन्धक, अचित्त नोकर्मद्रव्यबन्धक और मिश्र नोकर्मद्रव्यबन्धक। उनमें हाथी आदि सचेतन प्राणियोंके बन्धक सचित्त नोकर्मद्रव्यबन्धक कहलाते हैं। सूप व चटाई आदि अजीव वस्तुओंके बन्धकोंको अचित्त नोकर्मद्रव्यबन्धक कहा जाता है। आभरणादि निर्जीव वस्तुओंसे संयुक्त हाथी आदि सचेतन प्राणियोंके बन्धकोंको मिश्र नोकर्मबन्धक समझना चाहिये। कर्मद्रव्यबन्धक ईर्यापथकर्मद्रव्यबन्धक और साम्परायिककर्मद्रव्यबन्धकके भेदसे दो प्रकारके हैं। जो अकषाय जीव स्थिति व अनुभागबन्धसे रहित केवल योगके निमित्तसे प्रकृति व प्रदेशरूप कर्मके बन्धक हैं वे ईर्यापथकर्म-द्रव्यबन्धक और जो सकषाय प्राणी संसारके कारणभूत कर्मके बन्धक हैं वे साम्परायिककर्मबन्धक

कहे जाते हैं। उक्त ईर्यापथकर्मद्रव्यबन्धक दो प्रकारके हैं– छद्मस्थ और केवली। इनमें छद्मस्थ भी दो प्रकारके हैं उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। साम्परायिककर्मद्रव्यबन्धक दो प्रकारके हैं– सूक्ष्मसाम्परायिक और बादरसाम्परायिक।

भावबन्धक दो प्रकारके हैं– आगमभावबन्धक और नोआगमभावबन्धक। इनमें जो जीव बन्धप्राभृतके ज्ञाता होकर वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे भी सहित हैं वे आगमभावबन्धक कहलाते हैं। क्रोधादि कषायोंको जो आत्मसात् किया करते हैं वे नोआगमभावबन्धक कहे जाते हैं। इन सब बन्धकोंमें यहां कर्मबन्धक प्रकृत हैं।

अब चूंकि चौदह मार्गणास्थान इन बन्धकोंकी प्ररूपणाके आधारभूत हैं, अत एव आगेके सूत्र द्वारा उन चौदह मार्गणाओंका निर्देश किया जाता है–

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्साए भविए सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥ २ ॥

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार; ये चौदह मार्गणास्थान हैं ॥ २ ॥ (देखिये सत्प्ररूपणा सूत्र ४)

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया बंधा ॥ ३ ॥

गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव बन्धक हैं ॥ ३ ॥

सूत्रमें 'बंधा' ऐसा कहनेपर उसके द्वारा बन्धकोंको ग्रहण करना चाहिये। कारण यह कि कर्ता कारकमें 'बन्ध' और 'बन्धक' ये दोनों पद सिद्ध होते हैं।

तिरिक्खा बंधा ॥ ४ ॥ देवा बंधा ॥ ५ ॥ मणुसा बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ६ ॥

तिर्यंच बन्धक हैं ॥ ४ ॥ देव बन्धक हैं ॥ ५ ॥ मनुष्य बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ६ ॥

मिथ्यात्व, असंयम कषाय और योग ये कर्मबन्धके कारण हैं। इन सबका चूंकि अयोगि-केवली गुणस्थानमें अभाव हो चुका है, अत एव मनुष्योंमें अयोगी जिन अबन्धक हैं। शेष सब मनुष्य बन्धक हैं, क्योंकि, वे उन मिथ्यात्वादि बन्धके कारणोंसे संयुक्त पाये जाते हैं।

सिद्धा अबंधा ॥ ७ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ७ ॥

कारण यह कि वे बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादिसे रहित होकर उनके विपरीत सम्यग्दर्शन, संयम, अकषाय और अयोगरूप मोक्षके कारणोंसे सहित हैं।

उपर्युक्त बन्धके चार कारणोंमेंसे मिथ्यात्वका उदय मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नारकायु,

नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण; इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका कारण है।

अनन्तानुबन्धीका उदय निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, न्यग्रोधपरिमण्डल आदि चार संस्थान, वज्रनाराच आदि चार संहनन, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इन पच्चीस प्रकृतियोंके बन्धका कारण है।

अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदय अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया व लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी; इन दस प्रकृतियोंके बन्धका कारण है।

प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार प्रकृतियोंके बन्धका कारण है।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति; इन छह प्रकृतियोंके बन्धका कारण प्रमाद है। चार संज्वलन और नौ नोककषायोंके तीव्र उदयका नाम प्रमाद है। इसका अन्तर्भाव उक्त चार बन्धकारणोंमेंसे कषायमें समझना चाहिये। देवायु (अप्रमत्त-गुणस्थान तक), निद्रा, प्रचला, (अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक), देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक और आहारक शरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर (अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे छठे भाग तक); हास्य, रति, भय, जुगुप्सा (अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तक), चार संज्वलन और पुरुषवेद (अनिवृत्तिकरण तक); इन प्रकृतियोंके बन्धका कारण यथासम्भव कषायका उदय है।

पांच ज्ञानावरणीय, चक्षुदर्शनावरणीय आदि चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय (सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक) इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका कारण सामान्य कषायका उदय है। सातावेदनीयके बन्धका कारण एक मात्र योग है।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बंधा बीइंदिया बंधा तीइंदिया बंधा चदुरिंदिया बंधा ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीव बन्धक हैं, द्वीन्द्रिय बन्धक हैं, त्रीन्द्रिय बन्धक हैं, और चतुरिन्द्रिय बन्धक हैं ॥ ८ ॥

पंचिंदिया बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ९ ॥

पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ९ ॥

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक पंचेन्द्रिय जीव बन्धक ही हैं; क्योंकि, उनमें बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादि पाये जाते हैं। किन्तु अयोगिकेवली नियमसे अबन्धक हैं, क्योंकि, उनके उक्त मिथ्यात्व आदि सभी बन्धके कारणोंका अभाव हो चुका है। इसलिये यहां 'पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं' ऐसा कहा गया है।

अणिंदिया अबंधा ॥ १० ॥

अनिन्द्रिय जीव अबन्धक हैं ॥ १० ॥

अनिन्द्रियसे यहां शरीर व इन्द्रियोंसे रहित हुए सिद्धोंको ग्रहण किया गया है।

कायाणुवादेण पुढवीकाइया बंधा आउकाइया बंधा तेउकाइया बंधा वाउकाइया बंधा वणप्फदिकाइया बंधा ॥ ११ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक जीव बन्धक हैं, अप्कायिक बन्धक हैं, तेजकायिक बन्धक हैं, वायुकायिक बन्धक हैं, और वनस्पतिकायिक बन्धक हैं ॥ ११ ॥

तसकाइया बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ १२ ॥

त्रसकायिक जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ १२ ॥

कारण इसका यह है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक त्रसकायिक जीवोंमें बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादि पाये जाते हैं, किन्तु अयोगिकेवलियोंमें वे नहीं पाये जाते हैं।

अकाइया अबंधा ॥ १३ ॥

शरीरसे रहित हुए सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥ १३ ॥

जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगि-कायजोगिणो बंधा ॥ १४ ॥

योगमार्गणाके अनुसार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव बन्धक हैं ॥ १४ ॥

अजोगी अबंधा ॥ १५ ॥

योगसे रहित हुए अयोगी व सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥ १५ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा बंधा, पुरिसवेदा बंधा, णवुंसयवेदा बंधा ॥ १६ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी बन्धक हैं, पुरुषवेदी बन्धक हैं, और नपुंसकवेदी बन्धक हैं ॥

अवगदवेदा बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ १७ ॥

अपगतवेदी जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ १७ ॥

अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे लेकर सयोगिकेवली तक अपगतवेदी जीव बन्धक हैं, क्योंकि, उनके बन्धके कारणभूत कषाय और योग पाये जाते हैं। परन्तु उक्त अपगतवेदियोंमें अयोगिकेवलियोंके कोई भी बन्धका कारण शेष न रहनेसे वे अबन्धक हैं।

सिद्धा अबंधा ॥ १८ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ १८ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई बंधा ॥ १९ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी बन्धक हैं ॥

अकसाई बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ २० ॥

अकषायी जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ २० ॥

उपशान्तकषायसे लेकर सयोगिकेवली तक कषायसे रहित हुए अकषायी बन्धक हैं, क्योंकि, उनके बन्धका कारण योग पाया जाता है। परन्तु अयोगिकेवली अकषायी हो करके भी अबन्धक हैं, क्योंकि, उनके योगका भी अभाव हो चुका है।

सिद्धा अबंधा ॥ २१ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ २१ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओधिणाणी मणपज्जवणाणी बंधा ॥ २२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी बन्धक हैं ॥ २२ ॥

केवलणाणी बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ २३ ॥

केवलज्ञानी बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ २३ ॥

कारण यह है कि केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली बन्धक और अयोगिकेवली अबन्धक हैं।

सिद्धा अबंधा ॥ २४ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ २४ ॥

संजमाणुवादेण असंजदा बंधा, संजदासंजदा बंधा ॥ २५ ॥

संयममार्गणाके अनुसार असंयत बन्धक हैं और संयतासंयत भी बन्धक हैं ॥ २५ ॥

संजदा बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ २६ ॥

परन्तु संयत बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ २६ ॥

संयतोंमें प्रमत्तसंयतोंसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक और अयोगिकेवली अबन्धक हैं।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा ॥ २७ ॥

जो न संयत हैं, न असंयत हैं, और न संयतासंयत भी हैं ऐसे सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा ॥ २८ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी बन्धक हैं ॥ २८ ॥

केवलदंसणी बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ २९ ॥

केवलदर्शनी बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ २९ ॥

कारण यह कि केवलदर्शनी जीवोंमें सयोगिकेवली बन्धक और अयोगिकेवली अबन्धक होते हैं।

सिद्धा अबंधा ॥ ३० ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ३० ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा ॥ ३१ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, णीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले बन्धक हैं ॥ ३१ ॥

अलेस्सिया अबंधा ॥ ३२ ॥

लेश्यारहित जीव अबन्धक हैं ॥ ३२ ॥

भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ३३ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार अभव्यसिद्धिक जीव बन्धक हैं, परन्तु भव्यसिद्धिक जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ३३ ॥

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अबंधा ॥ ३४ ॥

जो न भव्यसिद्धिक हैं और न अभव्यसिद्धिक हैं ऐसे सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥ ३४ ॥

सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, सासणसम्मादिट्ठी बंधा, सम्मामिच्छादिट्ठी बंधा ॥ ३५ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं, सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं, और सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं ॥ ३५ ॥

सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ३६ ॥

सम्यग्दृष्टि बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ३६ ॥

चौथेसे तेरहवें गुणस्थान तकके जीव आस्रवसहित होनेसे बन्धक और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली आस्रवरहित होनेसे अबन्धक हैं।

सिद्धा अबंधा ॥ ३७ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ३७ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी बंधा असण्णी बंधा ॥ ३८ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार संज्ञी बन्धक हैं और असंज्ञी भी बन्धक हैं ॥ ३८ ॥

णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ३९ ॥

जो न संज्ञी हैं और न असंज्ञी हैं ऐसे केवलज्ञानी जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ३९ ॥

अभिप्राय यह है कि संज्ञित्व और असंज्ञित्व इन दोनों ही अवस्थाओंसे रहित हुए सयोगिकेवली तो बन्धक हैं और अयोगिकेवली अबन्धक हैं ।

सिद्धा अबंधा ॥ ४० ॥

सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥ ४० ॥

आहाराणुवादेण आहारा बंधा ॥ ४१ ॥

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक जीव बन्धक हैं ॥ ४१ ॥

अणाहारा बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ४२ ॥

अनाहारक जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ४२ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ ४३ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ४३ ॥

॥ बन्धक-सत्प्ररूपणा समाप्त हुई ॥

---

१. एगजीवेण सामित्तं

एदेसिं बंधयाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥

इन बन्धकोंकी प्ररूपणामें प्रयोजनभूत होनेसे ये ग्यारह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

उन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके नामनिर्देशके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

एगजीवेण सामित्तं एगजीवेण कालो एगजीवेण अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ दव्वपरूवणाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो णाणाजीवेहि कालो णाणाजीवेहि अंतरं भागाभागाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ॥ २ ॥

एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, द्रव्यप्ररूपणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवोंकी

अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम; ये वे ज्ञातव्य ग्यारह अनुयोगद्वार हैं ॥ २ ॥

एगजीवेण सामित्तं ॥ ३ ॥

इनमें प्रथमतः एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है ॥ ३ ॥

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइओ णाम कधं भवदि ? ॥ ४ ॥

गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीव किस प्रकारसे होता है ? ॥ ४ ॥

अभिप्राय यह है कि नयविवक्षाभेदसे, निक्षेपकी अपेक्षा और औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा चूंकि नारक शब्दका अर्थ विभिन्न प्रकारका होता है; अत एव उनमें यहां कौन-से नारकका अभिप्राय है, और वह किस प्रकारसे होता है; यह पूछा गया है।

णिरयगदिणामाए उदएण ॥ ५ ॥

नरकगति नामकर्मके उदयसे जीव नारकी होता है ॥ ५ ॥

उक्त प्रश्नके उत्तरमें यहां यह सूचित किया गया है कि जीव नयोंमें एवंभूत नयसे, निक्षेपोंमें नोआगमभावनिक्षेपसे तथा भावोंमें नरकगति नामकर्मके उदयसे नारकी होता है।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भवदि ? ॥ ६ ॥

तिर्यंच गतिमें तिर्यंच किस प्रकार होता है ? ॥ ६ ॥

तिरिक्खगदिणामाए उदएण ॥ ७ ॥

तिर्यंचगति नामकर्मके उदयसे जीव तिर्यंच होता है ॥ ७ ॥

मणुसगदीए मणुसो णाम कधं भवदि ? ॥ ८ ॥

मनुष्यगतिमें जीव मनुष्य कैसे होता है ? ॥ ८ ॥

मणुसगदिणामाए उदएण ॥ ९ ॥

मनुष्यगति नामकर्मके उदयसे जीव मनुष्य होता है ॥ ९ ॥

देवगदीए देवो णाम कधं भवदि ? ॥ १० ॥

देवगतिमें जीव देव कैसे होता है ? ॥ १० ॥

देवगदिणामाए उदएण ॥ ११ ॥

देवगति नामकर्मके उदयसे जीव देव होता है ॥ ११ ॥

सिद्धगदीए सिद्धो णाम कधं भवदि ? ॥ १२ ॥

सिद्धगतिमें जीव सिद्ध कैसे होता है ? ॥ १२ ॥

खइयाए लद्धीए ॥ १३ ॥

क्षायिक लब्धिसे जीव सिद्ध होता है ॥ १३ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ पंचिंदिओ णाम कधं भवदि ? ॥ १४ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय कैसे होता है ? ॥ १४ ॥

खओवसमियाए लद्धीए ॥ १५ ॥

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव एकेन्द्रियादि होता है ॥ १५ ॥

स्पर्शन-इन्द्रियावरण सम्बन्धी सर्वघाति स्पर्धकोंके सदवस्थारूप उपशम, उसीके देशघाति स्पर्धकोंके उदय और शेष चार इन्द्रियावरण सम्बन्धी देशघाति स्पर्धकोंके उदयक्षय, उन्हींके सदवस्थारूप उपशम तथा उनके ही सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयसे चूंकि जीवकी एकेन्द्रियरूप अवस्था होती है; अतएव वह क्षयोपशम लब्धिसे होती है, ऐसा सूत्रमें कहा गया है। इसी प्रकार शेष द्वीन्द्रिय आदि अवस्थाओंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए।

अणिंदिओ णाम कधं भवदि ? ॥ १६ ॥

जीव अनिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रिय (भावेन्द्रिय) रहित अवस्थावाला कैसे होता है ? ॥ १६ ॥

खइयाए लद्धीए ॥ १७ ॥

क्षायिक लब्धिसे जीव अनिन्द्रिय होता है ॥ १७ ॥

समूल कर्मके नष्ट हो जानेपर जो आत्मपरिणाम उत्पन्न होता है उसे क्षय तथा उसकी प्राप्तिको क्षायिक लब्धि कहा जाता है। इस क्षायिक लब्धिसे जीव अनिन्द्रिय होता है, ऐसा सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिए।

कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ १८ ॥ पुढविकाइयणामाए उदएण ॥ १९ ॥

कायमार्गणाके अनुसार जीव पृथिवीकायिक कैसे होता है ? ॥ १८ ॥ पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयसे जीव पृथिवीकायिक होता है ॥ १९ ॥

आउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २० ॥ आउकाइयणामाए उदएण ॥ २१ ॥

जीव अप्कायिक कैसे होता है ? ॥ २० ॥ अप्कायिक नामकर्मके उदयसे जीव अप्कायिक होता है ॥ २१ ॥

तेउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २२ ॥ तेउकाइयणामाए उदएण ॥ २३ ॥

जीव अग्निकायिक कैसे होता है ? ॥ २२ ॥ अग्निकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव अग्निकायिक होता है ॥ २३ ॥

वाउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २४ ॥ वाउकाइयणामाए उदएण ॥ २५ ॥

जीव वायुकायिक कैसे होता है ? ॥ २४ ॥ वायुकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव वायुकायिक होता है ॥ २५ ॥

वणप्फइकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥२६॥ वणप्फइकाइयणामाए उदएण ॥२७॥

जीव वनस्पतिकायिक कैसे होता है ? ॥ २६ ॥ वनस्पतिकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव वनस्पतिकायिक होता है ॥ २७ ॥

तसकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २८ ॥ तसकाइयणामाए उदएण ॥ २९ ॥

जीव त्रसकायिक कैसे होता है ? ॥ २८ ॥ त्रसकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव त्रसकायिक होता है ॥ २९ ॥

अकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ ३० ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ३१ ॥

जीव अकायिक कैसे होता है ? ॥३०॥ क्षायिक लब्धिसे जीव अकायिक होता है ॥३१॥

जोगाणुवादेण मणजोगी वचजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ? ॥ ३२ ॥

योगमार्गणाके अनुसार जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ? ॥३२॥

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ३३ ॥

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होता है ? ॥३३॥

जीवप्रदेशोंके संकोच-विस्ताररूप परिस्पन्दको योग कहते हैं। वह योग तीन प्रकारका है— मनोयोग, वचनयोग और काययोग। मनोवर्गणासे उत्पन्न हुए द्रव्यमनके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका संकोच-विस्तार होता है वह मनोयोग है। भाषावर्गणा सम्बन्धी पुद्गलस्कन्धोंके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका संकोच-विस्तार होता है वह वचनयोग है। तैजसशरीरके विना शेष औदारिक आदि चार शरीरोंके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका संकोच-विस्तार होता है वह काययोग है। जीव क्षयोपशमलब्धिके द्वारा यथासम्भव इन तीन योगोंसे युक्त होता है। ये तीनों योग चूंकि वीर्यान्तराय और यथासम्भव नोइन्द्रियावरणादिके क्षयोपशमसे होते हैं, अत एव उन्हें क्षायोपशमिक लब्धिसे उत्पन्न कहा गया है।

अजोगी णामं कधं भवदि ? ॥ ३४ ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ३५ ॥

जीव अयोगी कैसे होता है ? ॥ ३४ ॥ क्षायिक लब्धिसे जीव अयोगी होता है ॥ ३५ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो णाम कधं भवदि ? ॥ ३६ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी कैसे होता है ? ॥ ३६ ॥

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदा ॥ ३७ ॥

चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी होता है ॥ ३७ ॥

जीव चारित्रमोहनीयके अन्तर्गत नोकषायके भेदभूत स्त्रीवेदके उदयसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदके उदयसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदके उदयसे नपुंसकवेदी होता है; यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

अवगदवेदो णाम कधं भवदि ? ॥ ३८ ॥ उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ३९ ॥

जीव अपगतवेदी कैसे होता है ? ॥ ३८ ॥ औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे जीव अपगतवेदी होता है ॥ ३९ ॥

विवक्षित वेदके उदयके साथ उपशमश्रेणिपर आरूढ हुए जीवके मोहनीयका अन्तरकरण करनेके पश्चात् यथायोग्य स्थानमें जो उदयादि अवस्थासे रहित विविक्षत वेदके पुद्गलस्कन्धका सद्भाव रहता है उसका नाम उपशम है। उसकी लब्धि (प्राप्ति) से जीवकी अपगतवेद अवस्था होती है। इसी प्रकार विवक्षित वेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणिपर आरूढ हुए जीवके मोहनीयका अन्तर करके यथायोग्य स्थानमें उस विवक्षित वेदके पुद्गलस्कन्धोंका स्थिति और अनुभागके साथ जीवप्रदेशोंसे सर्वथा पृथक् हो जानेका नाम क्षय है। इससे उत्पन्न आत्मपरिणामकी प्राप्तिसे जीवकी अपगतवेद अवस्था होती है।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णाम कधं भवदि ? ॥ ४० ॥ चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण ॥ ४१ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी कैसे होता है ? ॥ ४० ॥ चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जीव क्रोधकषायी आदि होता है ॥ ४१ ॥

अभिप्राय यह है कि जीव क्रोधकषायके उदयसे क्रोधकषायी, मानकषायके उदयसे मानकषायी, मायाकषायके उदयसे मायाकषायी और लोभकषायके उदयसे लोभकषायी होता है।

अकसाई णाम कधं भवदि ? ॥ ४२ ॥ उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ४३ ॥

जीव अकषायी कैसे होता है ? ॥ ४२ ॥ औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे जीव अकषायी होता है ॥ ४३ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी णाम कधं भवदि ? ॥ ४४ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार जीव मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी किस प्रकार होता है ? ॥ ४४ ॥

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ४५ ॥

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव मत्यज्ञानी आदि होता है ॥ ४५ ॥

अपने अपने आवरणों (मतिज्ञानावरणादि) के देशघाति स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक लब्धि होती है और उससे जीव मत्यज्ञानी आदि होता है, ऐसा अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

केवलणाणी णाम कधं भवदि ? ॥ ४६ ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ४७ ॥

जीव केवलज्ञानी कैसा होता है ? ॥ ४६ ॥ क्षायिक लब्धिसे जीव केवलज्ञानी होता है ॥

संजमाणुवादेण संजदो सामाइयच्छेदोवट्ठावण-सुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि ? ॥

संयममार्गणाके अनुसार जीव संयत तथा सामायिक-छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत कैसे होता है ? ॥ ४८ ॥

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ॥ ४९ ॥

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव संयत और सामायिक एवं छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत होता है ॥ ४९ ॥

चूंकि चारित्रमोहनीयके सर्वोपशमसे उपशान्तकषाय गुणस्थानमें तथा उसीके सर्वथा क्षयसे क्षीणकषायादि गुणस्थानोंमें संयतभाव पाया जाता है, अत एव यहां संयतभावकी उत्पत्ति औपशमिक और क्षायिक लब्धिसे निर्दिष्ट की गई है। इसके अतिरिक्त चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे भी उक्त संयतभावकी उत्पत्ति देखे जानेसे उसे क्षायोपशमिक लब्धिसे उत्पन्न होनेवाला कहा गया है। सर्वघाति स्पर्धक अनन्तगुणित हीन होकर देशघाति स्वरूपसे परिणत होते हुए जो उदयमें आते हैं उसमें उनकी अनन्तगुणित हीनताका नाम क्षय तथा उनके देशघाति स्वरूपसे अवस्थित रहनेका नाम उपशम है। इस क्षय और उपशमके साथ उनके उदित रहने रूप अवस्थाका यहां क्षयोपशमस्वरूपसे ग्रहण करना चाहिये। इस क्षयोपशमकी लब्धिसे संयतभावके साथ सामायिकसंयतभाव तथा छेदोपस्थापनासंयतभाव भी उत्पन्न होता है, अत एव उनकी उत्पत्ति क्षायोपशमिक लब्धिसे भी सूत्रमें निर्दिष्ट की गई है; ऐसा सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

परिहारसुद्धिसंजदो संजदासंजदो णाम कधं भवदि ? ॥ ५० ॥ खओवसमियाए लद्धीए ॥ ५१ ॥

जीव परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत कैसे होता है ? ॥ ५० ॥ क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत होता है ॥ ५१ ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदो जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि ? ॥

जीव सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत और यथाख्यात-विहारशुद्धिसंयत कैसे होता है ? ॥५२॥

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ५३ ॥

औपशमिक और क्षायिक लब्धिसे जीव सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत और यथाख्यात-विहारशुद्धिसंयत होता है ॥ ५३ ॥

चूंकि उपशामक और क्षपक दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानमें सूक्ष्म-साम्परायिक-शुद्धिसंयम पाया जाता है, इसलिये सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयमको औपशमिक और

क्षायिक लब्धिसे उत्पन्न होनेवाला कहा गया है। यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयम चूंकि उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें औपशमिक लब्धिसे तथा आगे क्षीणकषाय आदि गुणस्थानोंमें क्षायिक लब्धिसे होता है, अत एव उसे भी औपशमिक और क्षायिक लब्धिसे उत्पन्न होनेवाला निर्दिष्ट किया गया है।

असंजदो णाम कधं भवदि ? ॥ ५४ ॥ संजमघादीणं कम्माणमुदएण ॥ ५५ ॥

जीव असंयत कैसे होता है ? ॥ ५४ ॥ संयमका घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे जीव असंयत होता है ॥ ५५ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ? ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी कैसे होता है ? ॥

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ५७ ॥

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी होता है ॥५७॥

केवलदंसणी णाम कधं भवदि ? ॥ ५८ ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ५९ ॥

जीव केवलदर्शनी कैसे होता है ? ॥ ५८ ॥ क्षायिक लब्धिसे जीव केवलदर्शनी होता है ? ॥ ५९ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिओ णीललेस्सिओ काउलेस्सिओ तेउलेस्सिओ पम्मलेस्सिओ सुक्कलेस्सिओ णाम कधं भवदि ? ॥ ६० ॥ ओदइएण भावेण ॥ ६१ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाला कैसे होता है ? ॥ ६० ॥ औदयिक भावसे जीव कृष्ण आदि उपर्युक्त लेश्याओं-वाला होता है ॥ ६१ ॥

कषायोंके मन्दतमादि छह प्रकारके अनुभागस्पर्धकोंमेंसे चूंकि मन्दतम अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे शुक्ललेश्या, उनके मन्दतर अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे पद्मलेश्या, मन्द अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे तेजोलेश्या, तीव्र अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे कापोतलेश्या, तीव्रतर अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे नीललेश्या और तीव्रतम अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे कृष्णलेश्या होती है; इसीलिये सूत्रमें उनको उदयजनित कहा गया है।

अलेस्सिओ णाम कधं भवदि ? ॥ ६२ ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ६३ ॥

जीव अलेश्यिक (लेश्यारहित) कैसे होता है ? ॥६२॥ क्षायिक लब्धिसे जीव अलेश्यिक होता है ॥ ६३ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिओ अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि ? ॥ ६४ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक कैसे होता है ? ॥ ६४ ॥

पारिणामिएण भावेण ॥ ६५ ॥

परिणामिक भावसे जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक होता है ॥ ६५ ॥

णेव भवसिद्धिओ णेव अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि ? ॥ ६६ ॥

जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक कैसे होता है ? ॥ ६६ ।

खइयाए लद्धीए ॥ ६७ ॥

क्षायिक लब्धिसे जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक होता है ॥ ६७ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार जीव सम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ६८ ॥

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ॥ ६९ ॥

जीव सम्यग्दृष्टि औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है ॥ ६९ ॥

चूंकि दर्शनमोहनीयके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व, उसके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व और उसीके क्षयोपशमसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है; अत एव यहां यह निर्दिष्ट किया गया है कि जीव सम्यग्दृष्टि औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है।

खइयसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७० ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ७१ ॥

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७० ॥ जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षायिक लब्धिसे होता है ॥ ७१ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७२ ॥ खओवसमियाए लद्धीए ॥ ७३ ॥

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७२ ॥ जीव वेदकसम्यग्दृष्टि क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है ॥ ७३ ॥

उवसमसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७४ ॥ उवसमियाए लद्धीए ॥ ७५ ॥

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७४ ॥ जीव उपशमसम्यग्दृष्टि औपशमिक लब्धिसे होता है ॥ ७५ ॥

सासणसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७६ ॥ पारिणामिएण भावेण ॥ ७७ ॥

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७६ ॥ जीव सासादनसम्यग्दृष्टि पारिणामिक भावसे होता है ॥ ७७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥७८॥ खओवसमियाए लद्धीए ॥७९॥

जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७८ ॥ जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है ॥ ७९ ॥

मिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ८० ॥ मिच्छत्तकम्मस्स उदएण ॥ ८१ ॥

जीव मिथ्यादृष्टि कैसे होता है ? ॥८०॥ जीव मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व कर्मके उदयसे होता है ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८२ ॥ खओवसमियाए लद्धीए ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार जीव संज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८२ ॥ जीव संज्ञी क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है ॥ ८३ ॥

असण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८४ ॥ ओदइएण भावेण ॥ ८५ ॥

जीव असंज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८४ ॥ जीव असंज्ञी औदयिक भावसे होता है ॥ ८५ ॥

णेव सण्णी णेव असण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८६ ॥ खइयाए लद्धीए ॥ ८७ ॥

जीव न संज्ञी न असंज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८६ ॥ जीव न संज्ञी न असंज्ञी क्षायिक लब्धिसे होता है ॥ ८७ ॥

ज्ञानावरणके निर्मूल विनाशसे जो जीवका परिणाम होता है उसका नाम क्षायिक लब्धि है। उससे जीवकी न संज्ञी और न असंज्ञी अवस्था होती है।

आहाराणुवादेण आहारो णाम कधं भवदि ? ॥८८॥ ओदइएण भावेण ॥८९॥

आहारमार्गणाके अनुसार जीव आहारक कैसे होता है ? ॥८८॥ जीव आहारक औदयिक भावसे होता है ॥ ८९ ॥

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीर नामकर्मोंके उदयसे जीव आहारक होता है, यह अभिप्राय समझना चाहिये।

अणाहारो णाम कधं भवदि ? ॥९०॥ ओदइएण भावेण पुण खइयाए लद्धीए ॥

जीव अनाहारक कैसे होता है ? ॥९०॥ जीव अनाहारक औदयिक भावसे तथा क्षायिक लब्धिसे होता है ॥ ९१ ॥

अभिप्राय यह है कि अयोगिकेवली और सिद्धोंके जो अनाहारक अवस्था होती है वह क्षायिक लब्धिसे होती है, क्योंकि, उनके क्रमशः घातिया कर्मोंका और समस्त कर्मोंका क्षय हो चुका है। किन्तु विग्रहगतिमें जो अनाहारक अवस्था होती है वह औदयिक भावसे होती है, क्योंकि, विग्रहगतिमें सभी कर्मोंका उदय पाया जाता है।

॥ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १ ॥

२. एगजीवेण कालो

एगजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १ ॥

एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ १ ॥

जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि ॥ २ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नारकी जीव नरकगतिमें कमसे कम दस हजार वर्ष रहते हैं ॥ २ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३ ॥

वे अधिकसे अधिक वहां तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ३ ॥

पढमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४ ॥

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४ ॥

जहण्णेण दसवाससहस्साणि ॥ ५ ॥

नारकी जीव प्रथम पृथिवीमें एक जीवकी अपेक्षा कमसे कम दस हजार वर्ष रहते हैं ॥ ५ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं ॥ ६ ॥

वे प्रथम पृथिवीमें अधिकसे अधिक एक सागरोपम काल रहते हैं ॥ ६ ॥

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी जीव नरकगतिमें कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७ ॥

जहण्णेण एक्क तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ८ ॥

वे कमसे कम दूसरी पृथिवीमें कुछ (एक समय) अधिक एक, तीसरीमें कुछ अधिक तीन, चौथीमें कुछ अधिक सात, पांचवींमें कुछ अधिक दस, छठीमें कुछ अधिक सत्तरह और सातवींमें कुछ अधिक बाईस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ८ ॥

उक्कस्सेण तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ९ ॥

नारकी जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें अधिकसे अधिक क्रमशः तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ९ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १० ॥

तिर्यंचगतिमें जीव तिर्यंच कितने काल रहता है ? ॥ १० ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११ ॥

तिर्यंचगतिमें जीव तिर्यंच कमसे कम एक क्षुद्रभवग्रहण काल रहता है ॥ ११ ॥

वह जघन्य काल तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें पाया जाता है।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२ ॥

तिर्यंचगतिमें जीव तिर्यंच अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक रहता है ॥ १२ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १३ ॥

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती कितने काल रहते हैं ? ॥ १३ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

जीव कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल और अन्तर्मुहूर्त काल तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती रहते हैं ॥ १४ ॥

अभिप्राय यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती इन दोनोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। चूंकि सामान्य तिर्यंचोंमें अपर्याप्त जीवोंकी भी सम्भावना है, अतएव उनका वह जघन्य काल सूत्रमें क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ १५ ॥

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम प्रमाण काल तक रहते हैं ॥ १५ ॥

पूर्वकोटिपृथक्त्वसे यहां क्रमसे पंचानबै (९५), सैंतालीस (४७) और पन्द्रह (१५) पूर्वकोटियोंको ग्रहण करना चाहिये।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६ ॥

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ १६ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १७ ॥

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ १७ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८ ॥

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १८ ॥

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९ ॥

मनुष्यगतिमें जीव मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी कितने काल रहते हैं ? ॥ १९ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ २० ॥

जीव मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र और अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ २०॥

सामान्य मनुष्योंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है, क्योंकि, उनमें मनुष्य अपर्याप्तकोंकी भी सम्भावना है । किन्तु मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका वह जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है, क्योंकि, उनकी इससे हीन आयु नहीं पायी जाती ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ २१ ॥

जीव मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल तक रहते हैं ॥ २१ ॥

पूर्वकोटिपृथक्त्वसे यहां क्रमसे सैंतालीस (४७), तेईस (२३) और सात (७) पूर्वकोटियोंको ग्रहण करना चाहिये ।

मणुस्सअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २२ ॥

जीव मनुष्य अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ २२ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २३ ॥

जीव मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल रहते हैं ॥ २३ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४ ॥

वे मनुष्य अपर्याप्त अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं ॥ २४ ॥

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २५ ॥

देवगतिमें जीव देव कितने काल रहते हैं ॥ २५ ॥

जहण्णेण दसवाससहस्साणि ॥ २६ ॥

देवगतिमें जीव देव कमसे कम दस हजार वर्ष रहते हैं ॥ २६ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ २७ ॥

देवगतिमें जीव देव अधिकसे अधिक तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ २७ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २८ ॥

जीव भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव कितने काल रहते हैं ? ॥ २८ ॥

जहण्णेण दसवाससहस्साणि दसवाससहस्साणि पलिदोवमस्स अट्ठमभागो ॥ २९ ॥

जीव भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव कमसे कम क्रमशः दस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष और पल्योपमके अष्टम भाग तक रहते हैं ॥ २९ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं ॥३०॥

वे भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव अधिकसे अधिक क्रमशः साधिक एक सागरोपम, साधिक एक पल्योपम व साधिक एक पल्योपम काल तक रहते हैं ॥ ३० ॥

सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?॥

जीव सौधर्म-ईशानसे लेकर शतार-सहस्सार कल्प पर्यन्त कल्पवासी देव कितने काल रहते हैं ? ॥ ३१ ॥

जहण्णेण पलिदोवमं बे सत्त दस चोद्दस सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥३२॥

जीव सौधर्म-ईशानसे लेकर शतार-सहस्सार तक कल्पवासी देव कमसे कम क्रमशः साधिक एक पल्योपम, दो सागरोपम, सात सागरोपम, दस सागरोपम, चौदह सागरोपम और सोलह सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ३२ ॥

उक्कस्सेण बे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥३३॥

उत्कर्षसे साधिक दो, सात, दस, चौदह, सोलह व अठारह सागरोपम काल तक जीव क्रमशः उक्त सौधर्म-ईशान आदि कल्पवासी देव रहते हैं ॥ ३३ ॥

आणदप्पहुडि जाव अवराइदविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३४ ॥

जीव आनत कल्पसे लेकर अपराजित विमान तक विमानवासी देव कितने काल रहते हैं ? ॥

जहण्णेण अट्ठारस वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणतीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३५ ॥

जीव उक्त आनत आदि अपराजित विमानवासी देव कमसे कम क्रमशः साधिक अठारह, बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस व बत्तीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ३५ ॥

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणतीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३६ ॥

जीव उक्त आनत-प्राणत आदि विमानवासी देव अधिकसे अधिक क्रमसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस और तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ३६ ॥

सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३७ ॥

जीव सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव कितने काल रहते हैं ? ॥ ३७ ॥

जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३८ ॥

जीव सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव कमसे कम और अधिकसे अधिक भी तेतीस सागरोपम

काल तक रहते हैं ॥ ३८ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३९ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार जीव एकेन्द्रिय कितने काल रहते हैं ? ॥ ३९ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४० ॥

जीव एकेन्द्रिय कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ४० ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४१ ॥

जीव एकेन्द्रिय अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक रहते हैं ॥

बादरेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४२ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय कितने काल रहते हैं ? ॥ ४२ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४३ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक रहते हैं ॥ ४३ ॥

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ४४ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय अधिकसे अधिक अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण काल तक रहते हैं ॥ ४४ ॥

बादरएइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४५ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४६ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं ॥ ४६ ॥

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ४७ ॥

वे अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ४७ ॥

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४८ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ४८ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४९ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ४९ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥

वे अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त रहते हैं ॥ ५० ॥

सुहुमेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५१ ॥

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय कितने काल रहते हैं ? ॥ ५१ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५२ ॥

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ५२ ॥

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ५३ ॥

वे अधिकसे अधिक असंख्यात लोक प्रमाण काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ५३ ॥

सुहुमेइंदिया पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५४ ॥

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ५४ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ? ॥ ५५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५६ ॥

वे अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक रहते हैं ॥ ५६ ॥

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५७ ॥

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक कितने काल रहते हैं ॥ ५७ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५८ ॥

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ५८ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५९ ॥

वे अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक रहते हैं ? ॥ ५९ ॥

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६० ॥

जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तथा द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त व चतुरिन्द्रिय पर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ६० ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ ६१ ॥

जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ ६१ ॥

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ६२ ॥

वे अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक द्वीन्द्रियादि पर्याप्त रहते हैं ॥ ६२ ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६३ ॥

जीव द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त व चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६४ ॥

वे कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक द्वीन्द्रियादि अपर्याप्त रहते हैं ॥ ६४ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६५ ॥

अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक द्वीन्द्रियादि अपर्याप्त रहते हैं ॥ ६५ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६६ ॥

जीव पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ६६ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

वे कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रमसे पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ॥

अधिकसे अधिक वे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र व सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक क्रमशः पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

पंचिंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६९ ॥

जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ६९ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७० ॥

वे कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ७० ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७१ ॥

अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७२ ॥

कायमार्गणाके अनुसार जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक और वायुकायिक कितने काल रहते हैं ? ॥ ७२ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७३ ॥ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ७४ ॥

जीव कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक और वायुकायिक रहते हैं ॥७३॥ तथा अधिकसे अधिक वे असंख्यात लोक प्रमाण काल तक पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक व वायुकायिक रहते हैं ॥ ७४ ॥

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरा केवचिरं

कालादो होंति ? ॥ ७५ ॥

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर कितने काल रहते हैं ? ॥ ७५ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७६ ॥ उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ ७७ ॥

जीव कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उपर्युक्त बादर पृथिवीकायादि रहते हैं ॥ ७६ ॥ अधिकसे अधिक वे कर्मस्थिति (७० को. को. सा.) काल तक बादर पृथिवीकायादि रहते हैं ॥ ७७ ॥

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७८ ॥

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ७८ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७९ ॥ उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ८० ॥

जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक बादर पृथिवीकायिक आदि पर्याप्त रहते हैं ॥७९॥ अधिकसे अधिक वे संख्यात हजार वर्षों तक बादर पृथिवीकायिकादि पर्याप्त रहते हैं ॥ ८० ॥

जीव उत्कर्षसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोंमें बाईस हजार (२२०००) वर्ष, बादर अप्कायिक पर्याप्तकोंमें सात हजार (७०००) वर्ष, बादर तेजकायिक पर्याप्तकोंमें तीन (३) दिन, बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें तीन हजार (३०००) वर्ष और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें दस हजार (१००००) वर्ष तक रहते हैं; यह इस सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये ।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ८१ ॥

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ८१ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८२ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८३ ॥

जीव कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त रहते हैं ॥८२॥ अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त रहते हैं ॥८३॥

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं भंगो ॥

सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोद जीव तथा इन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंके कालकी प्ररूपणा क्रमसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है ॥ ८४ ॥

वणप्फदिकाइया एइंदियाणं भंगो ॥ ८५ ॥

वनस्पतिकायिक जीवोंके कालकी प्ररूपणा एकेन्द्रिय जीवोंके समान है ॥ ८५ ॥

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ८६ ॥

प्राणी निगोद जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ८६ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८७ ॥ उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥८८॥

प्राणी जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल तक निगोद जीव रहते हैं ॥ ८७ ॥ अधिकसे अधिक वे अढाई पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक निगोद जीव रहते हैं ॥ ८८ ॥

बादरणिगोदजीवा बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ ८९ ॥

बादर निगोद जीवोंका काल बादर पृथिवीकायिकोंके समान है ॥ ८९ ॥

तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९० ॥

जीव त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ९० ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं ॥ ९१ ॥

जीव त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जघन्यसे क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ ९१ ॥

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि वे सागरोवमसहस्साणि ॥ ९२ ॥

अधिकसे अधिक वे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सागरोपमसहस्र और केवल दो सागरोपमसहस्र काल तक क्रमशः त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त रहते हैं ॥ ९२ ॥

तसकाइयअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९३ ॥

जीव त्रसकायिक अपर्याप्त कितने काल रहते हैं ? ॥ ९३ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ९४ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

जीव त्रसकायिक अपर्याप्त कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ९४ ॥ अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक त्रसकायिक अपर्याप्त रहते हैं ॥ ९५ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९६ ॥

योगमार्गणाके अनुसार जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी कितने काल रहते हैं ? ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ९७ ॥

जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ ९७ ॥

उदाहरणार्थ कोई एक जीव काययोगी था। वह काययोग कालके समाप्त हो जानेपर

मनोयोगी हो गया और उस मनोयोगके साथ एक समय मात्र रहकर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त होता हुआ फिरसे काययोगी हो गया। इस प्रकारसे मनोयोगका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। अथवा, वही काययोगी जीव काययोगकालके समाप्त हो जानेपर मनोयोगी हो गया और फिर द्वितीय समयमें व्याघातको प्राप्त होता हुआ फिरसे काययोगी हो गया। इस तरह दूसरे प्रकारसे भी मनोयोगका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकारसे शेष चार मनोयोगों और पांच वचनयोगोंके भी जघन्य कालको समझ लेना चाहिये।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९८ ॥

जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥

कारण यह कि जीव अविवक्षित योगसे विवक्षित योगको प्राप्त होकर उसके साथ अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल ही रह सकता है।

कायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ९९ ॥

जीव काययोगी कितने काल रहता है ? ॥ ९९ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०० ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

जीव काययोगी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रहता है ॥ १०० ॥ अधिकसे अधिक वह असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक काययोगी रहता है ॥ १०१ ॥

ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०२ ॥

जीव औदारिककाययोगी कितने काल रहता है ॥ १०२ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १०३ ॥ उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥

जीव औदारिककाययोगी कमसे कम एक समय रहता है ॥ १०३ ॥ अधिकसे अधिक वह बाईस हजार वर्षों तक औदारिककाययोगी रहता है ॥ १०४ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०५ ॥

जीव औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी कितने काल रहता है ? ॥ १०५ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १०६ ॥

जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि कमसे कम एक समय रहता है ॥ १०६ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगका यह एक समयरूप जघन्य काल दण्डसमुद्घातसे कपाट-समुद्घातको प्राप्त हुए सयोगिकेवलीके पाया जाता है, क्योंकि, उस अवस्थामें उनके औदारिक-मिश्रकाययोगको छोड़कर अन्य योगकी सम्भावना नहीं है। वैक्रियिककाययोगका वह एक

समयरूप जघन्य काल उसके पाया जाता है जो कि मनोयोग अथवा वचनयोगसे वैक्रियिककाययोगको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त हो गया है। इसका कारण यह है कि मरनेके प्रथम समयमें कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगको छोड़कर वह वैक्रियिककाययोग नहीं पाया जाता है। आहारककाययोगका वह सूत्रोक्त काल उस प्रमत्तसंयत जीवके पाया जाता है जो मनोयोग अथवा वचनयोगसे आहारक काययोगको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें या तो मरणको प्राप्त हो गया है या मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गया है, क्योंकि, मरनेके प्रथम समयमें और मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयमें आहारककाययोग नहीं पाया जाता है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०७ ॥

अधिकसे अधिक वह अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥

जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कितने काल रहता है ? ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११० ॥

जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है ॥ १०९ ॥ अधिकसे अधिक वह अन्तर्मुहूर्त काल तक वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी रहता है ॥ ११० ॥

कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १११ ॥

जीव कार्मणकाययोगी कितने काल रहता है ? ॥ १११ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ११२ ॥ उक्कस्सेण तिण्णिसमया ॥ ११३ ॥

जीव कार्मणकाययोगी कमसे कम एक समय रहता है ॥ ११२ ॥ अधिकसे अधिक वह तीन समय तक कार्मणकाययोगी रहता है ॥ ११३ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ११४ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार जीव स्त्रीवेदी कितने काल रहते हैं ? ॥ ११४ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ११५ ॥

कमसे कम एक समय तक जीव स्त्रीवेदी रहते हैं ॥ ११५ ॥

कोई अपगतवेदी जीव उपशमश्रेणीसे उतरकर स्त्रीवेदी हुआ और द्वितीय समयमें मरकर पुरुषवेदी हो गया इस प्रकार स्त्रीवेदका जघन्य काल एक समय मात्र प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ ११६ ॥

अधिकसे अधिक वे पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक स्त्रीवेदी रहते हैं ॥ ११६ ॥

पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ११७ ॥

जीव पुरुषवेदी कितने काल रहते हैं ? ॥ ११७ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

जीव पुरुषवेदी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ ११८ ॥

कोई जीव पुरुषवेदके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़कर अपगतवेदी हुआ। तत्पश्चात् वहांसे उतरता हुआ वेदयुक्त होकर पुरुषवेदी हुआ और सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक उक्त वेदके साथ रहा। फिर वह दुबारा उपशमश्रेणीपर चढ़कर अपगतवेदी हो गया। इस प्रकार पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त मात्र प्राप्त होता है।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११९ ॥

अधिकसे अधिक वे सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक पुरुषवेदी रहते हैं ॥ ११९ ॥

णवुंसयवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२० ॥

जीव नपुंसकवेदी कितने काल रहते हैं ? ॥ १२० ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १२१ ॥

जीव नपुंसकवेदी कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ १२१ ॥

नपुंसकवेदका यह जघन्य काल उपशमश्रेणीसे उतरते हुए जीवके पाया जाता है।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२२ ॥

जीव नपुंसकवेदी अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक रहते हैं ॥ १२२ ॥

अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२३ ॥

जीव अपगतवेदी कितने काल रहते हैं ? ॥ १२३ ॥

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १२४ ॥

जीव अपगतवेदी उपशमककी अपेक्षा कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ १२४ ॥

कोई जीव उपशमश्रेणीपर चढ़कर अपगतवेदी हुआ और एक समय मात्र अपगतवेदी रहकर द्वितीय समयमें मरा व सवेद हो गया। इस प्रकार अपगतवेदका जघन्य काल एक समय मात्र प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२५ ॥

जीव अपगतवेदी अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १२५ ॥

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२६ ॥

जीव अपगतवेदी क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १२६ ॥

यह उसका जघन्य काल क्षपकश्रेणीपर चढ़कर और अपगतवेदी होकर सर्वजघन्य कालमें मुक्त हुए जीवके पाया जाता है।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ १२७ ॥

जीव अपगतवेदी अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक रहते हैं ॥ १२७ ॥

कोई देव अथवा नारकी क्षायिकसम्यग्दृष्टि पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षके अनन्तर संयमी हो गया। फिर वह सर्वजघन्य कालसे क्षपकश्रेणीपर चढ़कर अपगतवेदी होता हुआ केवलज्ञानी हुआ और कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक विहार करके मुक्तिको प्राप्त हो गया। इस प्रकार क्षपककी अपेक्षा अपगतवेदका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि मात्र पाया जाता है।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२८ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी कितने काल रहते हैं ? ॥ १२८ ॥

जहण्णेण एयसमओ ॥ १२९ ॥

जीव क्रोधकषायी आदि कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ १२९ ॥

कोई जीव अविवक्षित कषायसे क्रोधकषायको प्राप्त होकर उसके साथ एक समय रहा और फिर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त होता हुआ नरकगतिको छोड़कर अन्य किसी भी गतिमें जाकर उत्पन्न हुआ। इस प्रकारसे क्रोध कषायका जघन्य काल एक समय मात्र पाया जाता है। नरकगतिमें उत्पन्न न करानेका कारण यह है कि वहां उत्पन्न हुए जीवोंके उत्पत्तिके प्रथम समयमें क्रोध कषायका ही उदय देखा जाता है। इसी प्रकारसे मान, माया और लोभ कषायोंका भी जघन्य काल एक समय मात्र समझना चाहिये। विशेष इतना है कि मानके जघन्य कालकी विवक्षामें मनुष्यगतिको छोड़कर, मायाकी विवक्षामें तिर्यंचगतिको छोड़कर और लोभकी विवक्षामें देवगतिको छोड़कर अन्य तीन गतियोंमें उत्पन्न कराना चाहिए। कारण इसका यह है कि उन गतियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें क्रमसे मान, माया और लोभका ही उदय पाया जाता है। जिस प्रकार मरणकी अपेक्षा इनका एक समय मात्र जघन्य काल पाया जाता है उसी प्रकार व्याघातकी अपेक्षासे भी क्रोध कषायको छोड़कर अन्य तीन कषायोंका वह एक समय मात्र जघन्य काल सम्भव है। व्याघातकी अपेक्षा केवल क्रोध कषायका वह जघन्य काल सम्भव नहीं है, क्योंकि, व्याघात होनेपर उसी क्रोधका ही उदय हुआ करता है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३० ॥

जीव क्रोध कषायी आदि अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १३० ॥

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ १३१ ॥

अकषायी जीवोंके कालकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ १३१ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार जीव मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी कितने काल रहता है ? ॥ १३२ ॥

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १३३ ॥

मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका काल अनादि-अनन्त है ॥ १३३ ॥

उक्त दोनों मिथ्याज्ञानियोंका यह अनादि-अनन्त काल अभव्य व अभव्य समान भव्य जीवकी अपेक्षासे निर्दिष्ट किया गया है ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १३४ ॥

भव्य जीवकी अपेक्षासे उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल अनादि-सान्त है ॥ १३४ ॥

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १३५ ॥

उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल सादि-सान्त है ॥ १३५ ॥

जो भव्य जीव सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञानको प्राप्त हुआ है उसकी अपेक्षा उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल सादि-सान्त भी पाया जाता है ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३६ ॥

जो वह सादि-सान्त काल है उसका निर्देश इस प्रकार है—वह सादि-सान्त काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र है ॥ १३६ ॥

इसका कारण यह है कि सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञानको प्राप्त हुआ भव्य जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी रहता ही है ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १३७ ॥

जीव मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक ही रहता है ॥ १३७ ॥

विभंगणाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

जीव विभंगज्ञानी कितने काल रहता है ? ॥ १३८ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १३९ ॥

जीव विभंगज्ञानी कमसे कम एक समय रहता है ॥ १३९ ॥

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ १४० ॥

अधिकसे अधिक वह कुछ कम तेतीस सागरोपम काल तक विभंगज्ञानी रहता है ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४१ ॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४२ ॥ उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १४३ ॥

जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी कितने काल रहता है ? ॥१४१॥ जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है ॥ १४२ ॥ अधिकसे अधिक वह साधिक छ्यासठ सागरोपम काल तक आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी रहता है ॥ १४३ ॥

मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १४४ ॥

जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी कितने काल रहते हैं ? ॥ १४४ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४५ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १४६ ॥

जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ १४५ ॥ अधिकसे अधिक वे कुछ कम पूर्वकोटि काल तक मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं ॥ १४६ ॥

संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ?

संयममार्गणाके अनुसार जीव संयत, परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत कितने काल रहते हैं ? ॥ १४७ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४८ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १४९ ॥

जीव संयत आदि कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १४८ ॥ अधिकसे अधिक वे कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संयत आदि रहते हैं ॥ १४९ ॥

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १५० ॥

जीव सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत कितने काल रहते हैं ? ॥ १५० ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १५१ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १५२ ॥

जीव सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ १५१ ॥ अधिकसे अधिक वे कुछ कम पूर्वकोटि काल तक सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत रहते हैं ॥

सुहुम-सांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १५३ ॥

जीव सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत कितने काल रहते हैं ? ॥ १५३ ॥

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १५४ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५५ ॥

उपशमकी अपेक्षा जीव कमसे कम एक समय सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५४ ॥ अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५५ ॥

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५६ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५७ ॥

क्षपककी अपेक्षा वे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥

अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५६–१५७ ॥

जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १५८ ॥

जीव यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत कितने काल रहते हैं ? ॥ १५८ ॥

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १५९ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६० ॥

उपशमकी अपेक्षा वे कमसे कम एक समय यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५९ ॥ तथा अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १६० ॥

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६१ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥

क्षपककी अपेक्षा वे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १६१ ॥ तथा अधिकसे अधिक वे कुछ कम पूर्वकोटि काल तक यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत रहते हैं ॥

असंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६३ ॥

जीव असंयत कितने काल रहते हैं ॥ १६३ ॥

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १६४ ॥ अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १६५ ॥ सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १६६ ॥

अभव्य जीव अनादि-अनन्त काल तक असंयत रहते हैं ॥ १६४ ॥ भव्य जीव अनादि-सान्त काल असंयत रहते हैं ॥ १६५ ॥ तथा पूर्वमें संयत होकर संयमसे भ्रष्ट हुए भव्य जीव सादि-सान्त काल असंयत रहते हैं ॥ १६६ ॥

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो– जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६७ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १६८ ॥

जो वह सादि-सान्त असंयतकाल है उसका निर्देश इस प्रकार है– कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव असंयत रहते हैं ॥ १६७ ॥ अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक जीव असंयत रहते हैं ॥ १६८ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६९ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार जीव चक्षुदर्शनी कितने काल रहते हैं ॥ १६९ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७० ॥

जीव चक्षुदर्शनी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १७० ॥

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि ॥ १७१ ॥

अधिकसे अधिक वे दो हजार सागरोपम काल तक चक्षुदर्शनी रहते हैं ॥ १७१ ॥

यह उत्कृष्ट काल चक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशमकी अपेक्षा समझना चाहिये। उपयोगकी अपेक्षा उसका काल जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

अचक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १७२ ॥

जीव अचक्षुदर्शनी कितने काल रहते हैं ? ॥ १७२ ॥

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १७३ ॥ अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १७४ ॥

जीव अनादि-अनन्त काल तक अचक्षुदर्शनी रहते हैं ॥ १७३ ॥ तथा वे अनादि-सान्त काल भी अचक्षुदर्शनी रहते हैं ॥ १७४ ॥

कारण इसका यह है कि यदि कोई केवलदर्शनी जीव अचक्षुदर्शनी जीवोंमें आता तो अचक्षुदर्शनके सादिपना बन सकता था, सो यह सर्वथा असम्भव है।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १७५ ॥ केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १७६ ॥

अवधिदर्शनीकी कालप्ररूपणा अवधिज्ञानीके समान है ॥ १७५ ॥ तथा केवलदर्शनीकी कालप्ररूपणा केवलज्ञानीके समान है ॥ १७६ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?

लेश्यामार्गणाके अनुसार जीव कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले कितने काल रहते हैं ? ॥ १७७ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७८ ॥

जीव कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ? ॥

उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १७९ ॥

अधिकसे अधिक वे साधिक तेत्तीस, सत्तरह और सात सागरोपम काल तक क्रमशः कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले रहते हैं ॥ १७९ ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८० ॥

जीव तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले कितने काल रहते हैं ? ॥ १८० ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८१ ॥

जीव तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥१८१॥

उक्कस्सेण बे-अट्ठारस-तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १८२ ॥

अधिकसे अधिक वे साधिक दो, अठारह और तेतीस सागरोपम काल तक क्रमशः तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले रहते हैं ॥ १८२ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८३ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार जीव भव्यसिद्धिक कितने काल रहते हैं ? ॥ १८३ ॥

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८४ ॥ सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८५ ॥

जीव भव्यसिद्धिक अनादि-सान्त काल रहते हैं ॥ १८४ ॥ तथा वे भव्यसिद्धिक सादि-सान्त काल भी रहते हैं ॥ १८५ ॥

यद्यपि अभव्य समान भव्य जीवोंकी अपेक्षा भव्यत्वका काल अनादि-अनन्त भी सम्भव है। परन्तु यहां शक्तिका अधिकार होनेसे उसका काल अनादि-अनन्त नहीं निर्दिष्ट किया गया है। उसकी सादिताका कारण यह है कि जीव जब तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है तब तक उसका भव्यत्व भाव अनादि-अनन्त है, क्योंकि, तब तक उसके संसारका अन्त नहीं है। परन्तु जब वह उस सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब उसका वह भव्यत्व भाव भिन्न ही हो जाता है, क्योंकि, उस समय उसका संसार अधिकसे अधिक अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र ही शेष रहता है। इसी अभिप्रायसे यहां भव्यत्वभावको सादि बतलाया है। वस्तुतः द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा उसमें सादिता सम्भव नहीं है।

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८६ ॥

जीव अभव्यसिद्धिक कितने काल रहते हैं ? ॥ १८६ ॥

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १८७ ॥

जीव अभव्यसिद्धिक अनादि-अनन्त काल तक रहते हैं ॥ १८७ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८८ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार जीव सम्यग्दृष्टि कितने काल रहते हैं ? ॥ १८८ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

जीव सम्यग्दृष्टि कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १८९ ॥

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १९० ॥

अधिकसे अधिक वे साधिक छ्यासठ सागरोपम काल तक सम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९० ॥

खइयसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९१ ॥

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कितने काल रहते हैं ? ॥ १९१ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥ उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १९२ ॥ अधिकसे अधिक वे साधिक तेतीस सागरोपम काल तक क्षायिकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९३ ॥

वेदगसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९४ ॥

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कितने काल रहते हैं ? ॥ १९४ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९५ ॥ उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि ॥ १९६ ॥

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १९५ ॥ अधिकसे

अधिक वे छ्यासठ सागरोपम काल तक वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९७ ॥

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि कितने काल रहते हैं ? ॥ १९७ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९९ ॥

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ १९८ ॥ तथा अधिकसे अधिक वे अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहते हैं ॥ १९९ ॥

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०० ॥

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कितने काल रहते हैं ? ॥ २०० ॥

जहण्णेण एयसमओ ॥ २०१ ॥ उक्कस्सेण छावलियाओ ॥ २०२ ॥

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ २०१ ॥ अधिकसे अधिक वे छह आवली तक सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ २०२ ॥

मिच्छादिट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ॥ २०३ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके कालकी प्ररूपणा मतिअज्ञानी जीवोंके समान है ॥ २०३ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०४ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार जीव संज्ञी कितने काल रहते हैं ? ॥ २०४ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २०५ ॥ उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २०६ ॥

जीव संज्ञी कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक रहते हैं ॥ २०५ ॥ अधिकसे अधिक वे सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र काल तक संज्ञी रहते हैं ॥ २०६ ॥

असण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०७ ॥

जीव असंज्ञी कितने काल रहते हैं ? ॥ २०७ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २०८ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

जीव असंज्ञी कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक रहते हैं ॥ २०८ ॥ अधिकसे अधिक वे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक असंज्ञी रहते हैं ॥ २०९ ॥

आहाराणुवादेण आहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१० ॥

आहारमार्गणाके अनुसार जीव आहारक कितने काल रहते हैं ? ॥ २१० ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं ॥२११॥ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ २१२ ॥

जीव आहारक कमसे कम तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक रहते हैं ॥२११॥ अधिकसे अधिक वे अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक आहारक रहते हैं ॥ २१२ ॥

अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१३ ॥

जीव अनाहारक कितने काल रहते हैं ? ॥ २१३ ॥

जहण्णेणेगसमओ ॥ २१४ ॥ उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१५ ॥

जीव अनाहारक कमसे कम एक समय रहते हैं ॥ २१४ ॥ तथा अधिकसे अधिक वे तीन समय तक अनाहारक रहते हैं ॥ २१५ ॥

अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

अयोगिकेवलीकी अपेक्षा जीव अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक अनाहारक रहते हैं ॥ २१६ ॥

॥ एक जीवकी अपेक्षा कालानुगम समाप्त हुआ ॥ २ ॥

---

३. एगजीवेण अंतरं

एगजीवेण अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अन्तरानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंका अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ॥ २ ॥

कोई एक जीव नरकसे निकलकर तिर्यंच अथवा मनुष्य गर्भज पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहांपर वह सर्वजघन्य आयुस्थितिके भीतर नारकायुको बांधकर मरा और फिरसे नरकमें जाकर उत्पन्न हो गया। इस प्रकार नारकियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र प्राप्त हो जाता है।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ३ ॥

उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ३ ॥

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ४ ॥

इस प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी जीवोंका नरकगतिसे अन्तर होता है ॥ ४ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ॥ ५ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक होता है ॥ ६ ॥

तिर्यंचोंमेंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और वहां क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक रहकर फिरसे तियचोंमें उत्पन्न हुए जीवके उपर्युक्त जघन्य काल पाया जाता है।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ७ ॥

उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक होता है ॥ ७ ॥

तिर्यंचोंमेंसे निकलकर अन्य तीन गतियोंमें गया हुआ जीव वहां अधिकसे अधिक शतपृथक्त्व सागरोपम काल तक ही रहता है, इससे अधिक नहीं रहता है।

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणी पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता मणुसगदीए मणुस्सा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुस-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८ ॥

तिर्यंचगतिमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ८ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ९ ॥

उनका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ९ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ॥ १० ॥

उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १० ॥

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११ ॥

देवगतिमें देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ११ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

देवगतिमें देवोंका अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ॥ १२ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ॥ १३ ॥

उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १३ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवा देवगदिभंगो ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंका अन्तर सामान्य देवगतिके समान होता है ॥ १४ ॥

सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १५ ॥

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १५ ॥

जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं ॥ १६ ॥

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंका अन्तर कमसे कम मुहूर्तपृथक्त्व काल तक होता है ॥ १६ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १७ ॥

उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १७ ॥

बम्हबम्हुत्तर-लांतवकाविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥१८॥

ब्रम्ह-ब्रम्होत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥

जहण्णेण दिवसपुधत्तं ॥ १९ ॥

ब्रम्ह-ब्रम्होत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंका अन्तर कमसे कम दिवसपृथक्त्व काल तक होता है ॥ १९ ॥

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २० ॥

उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ २० ॥

सुक्कमहासुक्क-सदारसहस्सारकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥

शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ २१ ॥

जहण्णेण पक्खपुधत्तं ॥ २२ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका अन्तर कमसे कम पक्षपृथक्त्व काल तक होता है ॥ २२ ॥ उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ २३ ॥

आणदपाणद-आरणअच्चदकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥२४॥

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥

जहण्णेण मासपुधत्तं ॥ २५ ॥ उक्कस्समणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥२६॥

उक्त देवोंका अन्तर कमसे कम मासपृथक्त्व काल तक होता है ॥ २५ ॥ उनका उक्त अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ २६ ॥

णवगेवज्जविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २७ ॥

नौ ग्रैवेयकविमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ २७ ॥

जहण्णेण वासपुधत्तं ॥२८॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥२९॥

नौ ग्रैवेयकविमानवासी देवोंका अन्तर कमसे कम वर्षपृथक्त्व काल तक होता है ॥ २८ ॥ तथा उनका उक्त अन्तर अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ २९ ॥

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥३०॥

अनुदिशोंसे लेकर अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ३० ॥

जहण्णेण वासपुधत्तं ॥ ३१ ॥ उक्कस्सेण वे सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३२ ॥

अनुदिशोंसे लेकर अपराजित विमान पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर कमसे कम वर्षपृथक्त्व काल तक होता है ॥ ३१ ॥ तथा उनका वह अन्तर अधिकसे अधिक साधिक दो सागरोपम प्रमाण काल तक होता है ॥ ३२ ॥

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३३ ॥

सर्वार्थसिद्धि-विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ३३ ॥

णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३४ ॥

सर्वार्थसिद्धि-विमानवासी देवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ३४ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३५ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ३५ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३६ ॥

एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक होता है ॥ ३६ ॥

उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ३७ ॥

एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम प्रमाण काल तक होता है ॥ ३७ ॥

बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३८ ॥

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ३८ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३९ ॥ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ४० ॥

उक्त एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक होता है ॥३९॥ तथा अधिकसे अधिक वह असंख्यात लोक प्रमाण काल तक होता है ॥ ४० ॥

सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४१ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ४१ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४२ ॥ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ ॥ ४३ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ४२ ॥ तथा अधिकसे अधिक वह अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक होता है ॥ ४३ ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४४ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ४४ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४५ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ४५ ॥ तथा अधिकसे अधिक वह असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ४६ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४७ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, तथा उन्हींके बादर और सूक्ष्म एवं पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥४७॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४८ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ४८ ॥ तथा अधिकसे अधिक वह असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५० ॥

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव तथा इन्हींके बादर और सूक्ष्म एवं पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५० ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५१ ॥ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ५२ ॥

उक्त वनस्पतिकायिक व निगोद जीवों आदिका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक होता है ॥ ५१ ॥ तथा अधिकसे अधिक वह असंख्यात लोक प्रमाण काल तक होता है ॥

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५३ ॥

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५३ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५४ ॥ उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५५ ॥

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ५४ ॥ तथा अधिकसे अधिक वह अढ़ाई पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक होता है ॥ ५५ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५६ ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५७ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

उक्त त्रसकायिकादि जीवोंका अन्तर कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ५७ ॥ तथा अधिकसे अधिक वह असंख्यात पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ५८ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५९ ॥

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५९ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६० ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ॥ ६० ॥ तथा अधिकसे अधिक वह असंख्यात पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ६१ ॥

कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६२ ॥

काययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ६२ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६३ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६४ ॥

काययोगी जीवोंका अन्तर कमसे कम एक समय होता है ॥ ६३ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ६४ ॥

ओरालियकायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ६५ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६६ ॥ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ६६ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम काल तक होता है ॥६७॥

वेउव्वियकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६८ ॥

वैक्रियककाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ६८ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६९ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

वैक्रियिककाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ६९ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ७० ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७१ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ७१ ॥

जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरेयाणि ॥ ७२ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं ॥ ७३ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका जघन्य अन्तर कुछ अधिक दस हजार वर्ष होता है ॥७२॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ७३ ॥

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥७४॥

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ७६ ॥

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ७५ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है ॥७६॥

कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७७ ॥

कार्मणकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ७७ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ ७८ ॥ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ ॥ ७९ ॥

कार्मणकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ ७८ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल तक होता है ॥ ७९ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८० ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ८० ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥८१॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

स्त्रीवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण काल तक होता है ॥ ८१ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ८२ ॥

पुरिसवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८३ ॥

पुरुषवेदियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ८३ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ८४ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

पुरुषवेदियोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ८४ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ ८५ ॥

णवुंसयवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८६ ॥

नपुंसकवेदियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ८६ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८७ ॥ उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ८८ ॥

नपुंसकवेदियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ८७ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व मात्र होता है ॥ ८८ ॥

अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८९ ॥

अपगतवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ८९ ॥

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९० ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ९१ ॥

उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ९० ॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्‌गलपरिवर्तन प्रमाण होता है ॥ ९१ ॥

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९२ ॥

क्षपककी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ ९२ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई-माणकसाई-मायकसाई-लोभकसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ९३ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ९३ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ ९४ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

उक्त क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ ९४ ॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ९५ ॥

अकसाई अवगदवेदाण भंगो ॥ ९६ ॥

अकषायी जीवोंका अन्तर अपगतवेदी जीवोंके समान होता है ॥ ९६ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥९७॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९८ ॥ उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि ॥

मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है ॥ ९८ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ (१३२) सागरोपम काल तक होता है ॥ ९९ ॥

विभंगणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०० ॥

विभंगज्ञानियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०० ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०१ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

विभंगज्ञानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १०१ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १०२ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०३ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०४ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १०५ ॥

आभिनिबोधिक आदि उक्त चार ज्ञानवाले जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १०४ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक होता है ॥

केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०६ ॥

केवलज्ञानियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०६ ॥

णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०७ ॥

केवलज्ञानी जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १०७ ॥

संजमाणुवादेण संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०८ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिक व छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०८ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ११० ॥

उक्त संयत आदि जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १०९ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक होता है ॥ ११० ॥

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १११ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतों और यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १११ ॥

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११२ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ११३ ॥

उपशमकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यात-शुद्धिसंयतोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥११२॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक होता है ॥ ११३ ॥

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ११४ ॥

क्षपककी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ११४ ॥

असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११५ ॥

असंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ११५ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११६ ॥ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ११७ ॥

असंयतोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ ११६ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि मात्र होता है ॥ ११७ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११८ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ११८ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११९ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२० ॥

चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण मात्र होता है ॥ ११९ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १२० ॥

अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२१ ॥

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १२१ ॥

णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १२२ ॥

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १२२ ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १२३ ॥

अवधिदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२३ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १२४ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा केवलज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२४ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२५ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोत लेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १२५ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२६ ॥ उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १२६ ॥ तथा उन्हींका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण काल तक होता है ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२८ ॥

तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १२८ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १२९ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १३० ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥

णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३२ ॥

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १३२ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३३ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १३३ ॥

जहण्णेणंतोमुहुत्तं ॥ १३४ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १३५ ॥

उक्त सम्यग्दृष्टि आदि जीवोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है ॥ १३४ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक होता है ॥ १३५ ॥

खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १३६ ॥

णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ १३७ ॥

सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १३८ ॥

जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३९ ॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १४० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर जघन्यसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक होता है ॥१३९॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर अर्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र काल तक होता है ॥

मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ॥ १४१ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा मत्यज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १४१ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४२ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १४२ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥१४३॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥

संज्ञी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है ॥ १४३ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ॥ १४४ ॥

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४५ ॥

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १४५ ॥

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४६ ॥ उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १४७ ॥

असंज्ञी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है ॥ १४६ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व प्रमाण काल तक होता है ॥ १४७ ॥

आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४८ ॥

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १४८ ॥

जहण्णेण एगसमयं ॥ १४९ ॥ उक्कस्सेण तिण्णिसमयं ॥ १५० ॥

आहारक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय मात्र होता है ॥ १४९ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट अन्तर तीन समय प्रमाण होता है ॥ १५० ॥

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १५१ ॥

अनाहारक जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ १५१ ॥

॥ एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

४. णाणाजीवेहि भंगविचओ

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया णियमा अत्थि ॥ १ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव नियमसे हैं ॥ १ ॥

विचय शब्दका अर्थ विचार होता है। इससे यह समझना चाहिये कि इस प्रकरणमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सामान्य और विशेष रूपसे गति आदि चौदह मार्गणाओंमें जीवोंके अस्तित्व और नास्तित्वरूप दोनों भंगोंका विचार किया जानेवाला है। तदनुसार यहां सर्वप्रथम नरकगतिमें सामान्यरूपसे नारकियोंके अस्तित्व-नास्तित्वका विचार करते हुए यह निर्दिष्ट किया गया है कि नारकी जीव सदा ही रहते हैं, उनका अभाव कभी नहीं होता।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ २ ॥

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव नियमसे हैं ॥ २ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणी पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा मणुस-पज्जत्ता मणुसणीओ णियमा अत्थि ॥ ३ ॥

तिर्यंच गतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त; तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी नियमसे हैं ॥ ३ ॥

मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि, सिया णत्थि ॥ ४ ॥

मनुष्य अपर्याप्त कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं भी होते हैं ॥ ४ ॥

देवगदीए देवा णियमा अत्थि ॥ ५ ॥

देवगतिमें देव नियमसे हैं ॥ ५ ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु ॥ ६ ॥

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि-विमानवासियों तक देवोंका शाश्वतिक अस्तित्व जानना चाहिये ॥ ६ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥७॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त व अपर्याप्त जीव नियमसे हैं ॥७॥

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥ ८ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा वे ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव नियमसे हैं ॥ ८ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥ ९ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, बादर व सूक्ष्म, पर्याप्त व अपर्याप्त, तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, पर्याप्त व अपर्याप्त एवं त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्त जीव नियमसे हैं ॥ ९ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि ॥ १० ॥

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव नियमसे हैं ॥ १० ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि, सिया णत्थि ॥ ११ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कदाचित् होते भी हैं और कदाचित् नहीं भी होते हैं ॥ ११ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा णियमा अत्थि ॥१२॥

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव नियमसे हैं ॥१२॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई णियमा अत्थि ॥ १३ ॥

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीव नियमसे हैं ॥ १३ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणी केवलणाणी णियमा अत्थि ॥ १४ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव नियमसे हैं ॥ १४ ॥

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा णियमा अत्थि ॥ १५ ॥

संयममार्गणानुसार सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव नियमसे हैं ॥ १५ ॥

सुहुमसांपराइयसंजदा सिया अत्थि, सिया णत्थि ॥ १६ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं भी होते हैं ॥ १६ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी णियमा अत्थि ॥ १७ ॥

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव नियमसे हैं ॥ १७ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्म-लेस्सिया सुक्कलेस्सिया णियमा अत्थि ॥ १८ ॥

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीव नियमसे हैं ॥ १८ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णियमा अत्थि ॥ १९ ॥

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव नियमसे हैं ॥ १९ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइय-वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी णियमा अत्थि ॥

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि, जीव नियमसे हैं ॥ २० ॥

उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ २१ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं भी होते हैं ॥ २१ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी णियमा अत्थि ॥ २२ ॥

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव नियमसे हैं ॥ २२ ॥

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा णियमा अत्थि ॥ २३ ॥

आहारमार्गणानुसार आहारक और अनाहारक जीव नियमसे हैं ॥ २३ ॥

॥ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

५. दव्वपमाणाणुगमो

दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १ ॥

द्रव्यप्रमाणानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥

असंखेज्जा ॥ २ ॥

नरकगतिमें नारकी जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ २ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३ ॥

कालकी अपेक्षा नारकी जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ ॥ ४ ॥ पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त नारकी जीव असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण हैं ॥ ४ ॥ वे जगप्रतरके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण हैं ॥ ५ ॥

तासिं सेढीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं बिदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ ६ ॥

उन जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित उसके प्रथम वर्गमूल प्रमाण है ॥ ६ ॥

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ७ ॥

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकियोंका द्रव्यप्रमाण है ॥ ७ ॥

यहां प्रथम पृथिवीके नारकियोंका प्रमाण जो सामान्य नारकियोंके बराबर बतलाया गया है वह प्रतरके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात जगश्रेणीरूप आलापकी अपेक्षा समझना चाहिये। वस्तुतः प्रथम पृथिवीके नारकी सामान्य नारकियोंसे कम हैं। उनकी विष्कम्भसूची एक रूपके असंख्यातवें भागसे कम है।

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ८ ॥

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८ ॥

असंखेज्जा ॥ ९ ॥

द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ९ ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १० ॥

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ १० ॥

खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ११ ॥

तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ ॥ १२ ॥

जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र उस श्रेणीका आयाम असंख्यात योजनकोटि है ॥१२॥

पढमादियाणं सेडिवग्गमूलाणं संखेज्जाणमण्णोण्णब्भासो ॥ १३ ॥

उपर्युक्त असंख्यात कोटि योजनोंका प्रमाण प्रथमादिक संख्यात जगश्रेणीवर्गमूलोंके परस्पर गुणनफल रूप है ॥ १३ ॥

अभिप्राय यह है कि जगश्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे लेकर नीचेके बारह वर्गमूलोंको परस्पर गुणित करनेपर जो राशि प्राप्त हो उतना द्वितीय पृथिवीके नारकियोंका द्रव्यप्रमाण है। उसके प्रथम वर्गमूलसे लेकर दस वर्गमूलोंको परस्पर गुणित करनेपर जो राशि प्राप्त हो उतना तृतीय पृथिवीके नारकियोंका द्रव्यप्रमाण है। इसी प्रकार आगेकी पृथिवियोंके नारकियोंका भी द्रव्यप्रमाण जानना चाहिये।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ १४ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ १४ ॥

अणंता ॥ १५ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १५ ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १६ ॥

वे कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १७ ॥

उक्त तिर्यंच जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ १७ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ १८ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ १८ ॥

असंखेज्जा ॥ १९ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ २० ॥

उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यंच द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ १९ ॥ वे कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ २० ॥

खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ २१ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंके द्वारा क्रमशः देवअवहारकालकी अपेक्षा असंख्यातगुणे हीन कालसे, संख्यातगुणे हीन कालसे, संख्यातगुणे कालसे और असंख्यातगुणे हीन कालसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ २१ ॥

मणुसगदीए मणुस्सा मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ २२ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ २२ ॥

असंखेज्जा ॥ २३ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ २४ ॥

मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ २३ ॥ वे कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ २४ ॥

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥ २५ ॥ तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ ॥ २६ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥२५॥ उस जगश्रेणीके असंख्यातवें भागकी श्रेणी (पंक्ति) का आयाम असंख्यात योजनकोटि है ॥

मणुस-मणुसअपज्जत्तएहि रूवं रूवा पक्खित्तएहि सेडी अवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ २७ ॥

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसके ही तृतीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उसे शलाकारूपसे स्थापित कर एक अंकसे अधिक मनुष्यों और एक अंकसे अधिक मनुष्य अपर्याप्तोंके द्वारा जगश्रेणी अपहृत होती है ॥ २७ ॥

मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ २८ ॥

मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियां द्रव्यप्रमाणसे कितनी हैं ? ॥ २८ ॥

कोडाकोडाकोडीए उवरिं कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो ॥ २९ ॥

कोड़ाकोड़ाकोड़िके ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़िके नीचे छह वर्गोंके ऊपर और सात वर्गोंके नीचे अर्थात् छठे और सातवें वर्गके बीचकी संख्या प्रमाण मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियां हैं ॥

देवगदीए देवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ३० ॥

देवगतिमें देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ३० ॥

असंखेज्जा ॥ ३१ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३२ ॥

देवगतिमें देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ३१ ॥ वे कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३२ ॥

खेत्तेण पदरस्स बेछप्पण्णंगुलसदवग्गपडिभाएण ॥ ३३ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा देवोंका प्रमाण जगप्रतरके दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गरूप प्रतिभागसे प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ३४ ॥

भवनवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ३४ ॥

असंखेज्जा ॥ ३५ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३६ ॥

भवनवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ३५ ॥ कालकी अपेक्षा वे असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३६ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ ॥ ३७ ॥ पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण हैं ॥ ३७ ॥ उपर्युक्त असंख्यात जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ३८ ॥

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण ॥ ३९ ॥

उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलको सुच्यंगुलके ही वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी है ॥ ३९ ॥

वाणवेंतरदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ४० ॥

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ४० ॥

असंखेज्जा ॥ ४१ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ४२ ॥

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ४१ ॥ कालकी अपेक्षा वे असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ४२ ॥

खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण ॥ ४३ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा वानव्यन्तर देवोंका प्रमाण जगप्रतरके संख्यात सौ योजनोंके वर्गरूप प्रतिभागसे प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

जोदिसिया देवा देवगदिभंगो ॥ ४४ ॥

ज्योतिषी देवोंका प्रमाण देवगतिके प्रमाणके समान है ॥ ४४ ॥

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ४५ ॥

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ४५ ॥

असंखेज्जा ॥ ४६ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ४७ ॥

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ४६ ॥ वे कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसार्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ४७ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ४८ ॥ पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४९ ॥

उपर्युक्त देव क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण हैं ॥ ४८ ॥ वे असंख्यात जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ४९ ॥

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलस्स वग्गमूलं बिदियं तदियवग्गमूलगुणिदेण ॥

उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित उसीके द्वितीय वर्गमूल प्रमाण हैं ॥ ५० ॥

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुढवीभंगो ॥ ५१ ॥

सनत्कुमारसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके कल्पवासी देवोंका प्रमाण सप्तम पृथिवीके समान है ॥ ५१ ॥

आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ५२ ॥

आनतसे लेकर अपराजित विमान तक विमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५२ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५३ ॥ एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ ५४ ॥

उपर्युक्त देव द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ ५३ ॥ उनके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ ५४ ॥

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ५५ ॥

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५५ ॥

असंखेज्जा ॥ ५६ ॥

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ५६ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ५७ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५७ ॥

अणंता ॥ ५८ ॥ अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥

उपर्युक्त प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव अनन्त हैं ? ॥ ५८ ॥ उपर्युक्त जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ ५९ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ६० ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त नौ प्रकारके एकेन्द्रिय जीव अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ ६० ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ६१ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६१ ॥

असंखेज्जा ॥ ६२ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ६३ ॥

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादिक जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ६२ ॥ कालकी अपेक्षा वे असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ६३ ॥

खेत्तेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरं अवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ६४ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीवोंके द्वारा क्रमशः सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे, सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ६४ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ६५ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक

प्रत्येकशरीर और उन्हींके अपर्याप्त, तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उन्हीं चार सूक्ष्मोंके पर्याप्त व अपर्याप्त ये प्रत्येक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६५ ॥

असंखेज्जा लोगा ॥ ६६ ॥

उपर्युक्त जीवोंमें प्रत्येक जीवराशि असंख्यात लोक प्रमाण है ॥ ६६ ॥

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता दव्व-पमाणेण केवडिया ? ॥ ६७ ॥

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६७ ॥

असंखेज्जा ॥ ६८ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ६९ ॥

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादि जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ६८ ॥ कालकी अपेक्षा वे असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ६९ ॥

खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ७० ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ७० ॥

बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ७१ ॥

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ७१ ॥

असंखेज्जा ॥ ७२ ॥ असंखेज्जावलियवग्गो आवलियघणस्स अंतो ॥ ७३ ॥

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ७२ ॥ उस असंख्यातका प्रमाण असंख्यात आवलियोंके वर्गरूप है जो आवलीके घनके भीतर आता है ॥ ७३ ॥

बादरवाउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ७४ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ७४ ॥

असंखेज्जा ॥ ७५ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ७६ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ७५ ॥ वे कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ७६ ॥

खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि ॥ ७७ ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ७८ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात जगप्रतर प्रमाण हैं ॥ ७७ ॥ उन असंख्यात जगप्रतरोंका प्रमाण लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७८ ॥

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ७९ ॥

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, बादर निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त, बादर निगोद जीव अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त; ये प्रत्येक जीव राशियां द्रव्यप्रमाणसे कितनी हैं ? ॥ ७९ ॥

अणंता ॥ ८० ॥ अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि द्रव्यप्रमाणसे अनन्त है ॥ ८० ॥ वे प्रत्येक जीव राशियां कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होतीं हैं ॥ ८१ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ८२ ॥

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण है ॥ ८२ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणंभंगो ॥

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण क्रमशः पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥ ८३ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ८४ ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और सत्य, असत्य व उभय ये तीन वचनयोगी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८४ ॥

देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

पांचों मनोयोगी और उक्त तीन वचनयोगी जीव द्रव्यप्रमाणसे देवोंके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ८५ ॥

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ८६ ॥

वचनयोगी और असत्यमृषा (अनुभय) वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८६ ॥

असंखेज्जा ॥ ८७ ॥ असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ८८ ॥

वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ८७ ॥ वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ८८ ॥

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभाग-वग्गपडिभाएण ॥ ८९ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगियों द्वारा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ८९ ॥

कायजोगि - ओरालियकायजोगि - ओरालियमिस्सकायजोगि - कम्मइयकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९० ॥

काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९० ॥

अणंता ॥ ९१ ॥ अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥

उपर्युक्त काययोगी आदि जीवराशियोंमें प्रत्येक अनन्त हैं ॥ ९१ ॥ कालकी अपेक्षा वे अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होती हैं ॥ ९२ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ९३ ॥

उपर्युक्त जीवराशियां क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ ९३ ॥

वेउव्वियकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९४ ॥ देवाणं संखेज्जदिभागूणो ॥

वैक्रियिककाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९४ ॥ वैक्रियिककाययोगी देवोंके संख्यातवें भागसे कम हैं ॥ ९५ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९६ ॥ देवाणं संखेज्जदिभागो ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९६ ॥ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे देवोंके संख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ ९७ ॥

आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९८ ॥ चदुवण्णं ॥ ९९ ॥

आहारकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९८ ॥ आहारककाययोगी द्रव्यप्रमाणसे चौवन हैं ॥ ९९ ॥

आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०० ॥ संखेज्जा ॥ १०१ ॥

आहारमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०० ॥ आहारमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे संख्यात हैं ॥ १०१ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०२ ॥ देवीहि सादिरेयं ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०२ ॥ स्त्रीवेदी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवियोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १०३ ॥

पुरिसवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०४ ॥ देवेहि सादिरेयं ॥ १०५ ॥

पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०४ ॥ पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १०५ ॥

णवुंसयवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०६ ॥ अणंता ॥ १०७ ॥

नपुंसकवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०६ ॥ नपुंसकवेदी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १०८ ॥

नपुंसकवेदी कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १०९ ॥

नपुंसकवेदी क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ १०९ ॥

अवगदवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११० ॥ अणंता ॥ १११ ॥

अपगतवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११० ॥ अपगतवेदी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११२ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११२ ॥

अणंता ॥११३॥ अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥

उपर्युक्त चारों कषायवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ११३ ॥ कालकी अपेक्षा वे अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंके द्वारा अपहृत नहीं होते हैं ॥ ११४ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ११५ ॥

उक्त चारों कषायवाले जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ ११५ ॥

अकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११६ ॥ अणंता ॥ ११७ ॥

अकषायी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११६ ॥ अकषायी जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ११७ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयभंगो ॥ ११८ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मत्यज्ञानी और श्रुत-अज्ञानियोंका द्रव्यप्रमाण नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ११८ ॥

विभंगणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११९ ॥ देवेहि सादिरेयं ॥ १२० ॥

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११९ ॥ विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १२० ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२१ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२१ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२२ ॥

उक्त तीन ज्ञानवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १२२ ॥

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १२३ ॥

उक्त तीन ज्ञानवाले जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १२३ ॥

मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२४ ॥ संखेज्जा ॥ १२५ ॥

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२४ ॥ संख्यात हैं ॥ १२५ ॥

केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२६ ॥ अणंता ॥ १२७ ॥

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२६ ॥ अनन्त हैं ॥ १२७ ॥

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत और सामायिक-छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२८ ॥

कोडिपुधत्तं ॥ १२९ ॥

संयत और सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कोटिपृथक्त्व प्रमाण हैं ॥

परिहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३० ॥ सहस्सपुधत्तं ॥ १३१ ॥

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३० ॥ परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे सहस्रपृथक्त्व प्रमाण हैं ॥ १३१ ॥

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३२ ॥ सदपुधत्तं ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३२ ॥ सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे शतपृथक्त्व प्रमाण हैं ॥ १३३ ॥

जहाक्खादविहार-सुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३४ ॥ सदसहस्सपुधत्तं ॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३४ ॥ यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे शतसहस्रपृथक्त्व प्रमाण हैं ॥ १३५ ॥

संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१३६॥ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥

संयतासंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३६ ॥ पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १३८ ॥

उनके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १३८ ॥

असंजदा मदिअण्णाणिभंगो ॥ १३९ ॥

असंयतोंका द्रव्यप्रमाण मति-अज्ञानियोंके समान है ॥ १३९ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १४० ॥ असंखेज्जा ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४० ॥ असंख्यात हैं ॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १४२ ॥

चक्षुदर्शनी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥

खेत्तेण चक्खुदंसणीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंके द्वारा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ १४३ ॥

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ १४४ ॥

अचक्षुदर्शनियोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १४४ ॥

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

अवधिदर्शनियोंका प्रमाण अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १४६ ॥

केवलदर्शनियोंका प्रमाण केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४६ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया असंजदभंगो ॥ १४७ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १४७ ॥

तेउलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१४८॥ जोदिसियदेवेहि सादिरेयं ॥१४९॥

तेजोलेश्यावाले द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४८ ॥ ज्योतिषी देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥

पम्मलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १५० ॥

पद्मलेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५० ॥

सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो ॥ १५१ ॥

पद्मलेश्यावाले जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥

सुक्कलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १५२ ॥ पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १५३ ॥

शुक्ललेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५२ ॥ पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १५३ ॥

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १५४ ॥

उनके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १५४ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१५५॥ अणंता ॥१५६॥

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५५ ॥ अनन्त हैं ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १५७ ॥

भव्यसिद्धिक कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १५७ ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १५८ ॥

भव्यसिद्धिक जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ १५८ ॥

अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १५९ ॥ अणंता ॥ १६० ॥

अभव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५९ ॥ अनन्त हैं ॥ १६० ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मादिट्ठी उवसमसम्मादिट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १६१ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६१ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

उपर्युक्त जीवराशियोंमें प्रत्येक पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १६२ ॥

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १६३ ॥

उक्त जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १६३ ॥

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ १६४ ॥

मिथ्यादृष्टियोंका द्रव्यप्रमाण असंयत जीवोंके समान है ॥ १६४ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१६५॥ देवेहि सादिरेयं ॥१६६॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६५ ॥ द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा वे देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १६६ ॥

असण्णी असंजदभंगो ॥ १६७ ॥

असंज्ञी जीवोंका द्रव्यप्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १६७ ॥

आहाराणुवादेण आहारा आणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१६८॥ अणंता ॥

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६८ ॥ अनन्त हैं ॥ १६९ ॥

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १७० ॥

आहारक और अनाहारक जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १७० ॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १७१ ॥

आहारक और अनाहारक जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोक प्रमाण हैं ॥ १७१ ॥

॥ द्रव्यप्रमाणानुगम समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

६. खेत्ताणुगमो

खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १ ॥

क्षेत्रानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २ ॥

नरकगतिमें नारकी जीव उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें नारकी जीव उपर्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥

सव्वलोए ॥ ५ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहते हैं ? ॥ ५ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणी पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७ ॥

उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यंच उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी स्वस्थान व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य स्वस्थान व उपपाद पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९ ॥

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११ ॥

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १० ॥ उक्त तीन प्रकारके मनुष्य समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११ ॥

असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा ॥ १२ ॥

समुद्घातकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मनुष्य लोकके असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्वलोकमें रहते हैं ॥ १२ ॥

मणुसअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १४ ॥

मनुष्य अपर्याप्त स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १३ ॥ मनुष्य अपर्याप्त उपर्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १४ ॥

देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

देवगतिमें देव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १५ ॥ देव उपर्युक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १६ ॥

भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभंगो ॥ १७ ॥

भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंका क्षेत्र देवगतिके समान है ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १८ ॥ सव्वलोगे ॥ १९ ॥

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १८ ॥ उपर्युक्त एकेन्द्रिय जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १९ ॥

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ २० ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ २१ ॥

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥२०॥ उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव स्वस्थानसे लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥२१॥

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २२ ॥ सव्वलोए ॥ २३ ॥

उक्त बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीव समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २२ ॥ उक्त तीन बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २३ ॥

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २५ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इन्हीं तीनोंके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २४ ॥ उपर्युक्त द्वीन्द्रियादिक जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २५ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २७ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २६ ॥ उक्त पदोंसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २७ ॥

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ २९ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥२८॥ समुद्घातकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २९ ॥

पंचिंदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३० ॥ पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव उक्त तीन पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय सुहुमपुढविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३२ ॥ सव्वलोगे ॥ ३३ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक तथा इन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३२ ॥ उक्त पदोंसे वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३३ ॥

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३५ ॥

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३४ ॥ स्वस्थानसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३६ ॥ सव्वलोगे ॥ ३७ ॥

उक्त बादर पृथिवीकायिकादि समुद्घात व उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३६ ॥ समुद्घात व उपपादसे वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर तेजकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३८ ॥ उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४१ ॥

बादर वायुकायिक और उनके ही अपर्याप्त स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४० ॥ स्वस्थानसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ? ॥ ४२ ॥

बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त समुद्घात व उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४३ ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ ४४ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४३ ॥ स्वस्थान, समुद्घात व उपपादसे वे लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४४ ॥

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥४५॥ सव्वलोए ॥४६॥

वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद जीव, निगोद जीव पर्याप्त, निगोद जीव अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त, ये स्वस्थान, समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४५ ॥ उक्त पदोंसे वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४६ ॥

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त और बादर निगोद जीव अपर्याप्त; ये स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४७ ॥ स्वस्थानकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४९ ॥ सव्वलोए ॥ ५० ॥

उक्त जीव समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४९ ॥ उक्त बादर वनस्पतिकायिक आदि समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५० ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥५१॥

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रकी परूपणा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥ ५१ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५३ ॥

योगमार्गणाके अनुसार पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५२ ॥ उक्त दोनों पदोंसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५४ ॥ सव्वलोए ॥ ५५ ॥

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ५४ ॥ उक्त पदोंसे वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५६ ॥ सव्वलोए ॥

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ५६ ॥ स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५७ ॥

उववादं णत्थि ॥ ५८ ॥

औदारिककाययोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ५८ ॥

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६० ॥

वैक्रियिककाययोगी स्वस्थान और समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ५९ ॥ स्वस्थान व समुद्घातसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

उववादो णत्थि ॥ ६१ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ६१ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६३ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६२ ॥ स्वस्थानकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६३ ॥

समुग्घाद-उववादा णत्थि ॥ ६४ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं ॥ ६४ ॥

आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो ॥ ६५ ॥

आहारकाययोगियोंके क्षेत्रकी प्ररूपणा वैक्रियिककाययोगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ ६५ ॥

आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो ॥ ६६ ॥

आहारमिश्रकाययोगियोंके क्षेत्रकी प्ररूपणा वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ ६६ ॥

कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ? ॥ ६७ ॥ सव्वलोए ॥ ६८ ॥

कार्मणकाययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६७ ॥ वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७० ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान, समुद्‌घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६९ ॥ उक्त पदोंसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७० ॥

णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७१ ॥ सव्वलोए ॥

नपुंसकवेदी जीव स्वस्थान, समुद्‌घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७१ ॥ उक्त तीनों पदोंसे वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७४ ॥

अपगतवेदी जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७३ ॥ अपगतवेदी जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ७६ ॥

अपगतवेदी जीव समुद्‌घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७५ ॥ समुद्‌घातकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकोंमें रहते हैं ॥

उववादं णत्थि ॥ ७७ ॥

अपगतवेदी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ७७ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंके क्षेत्रकी प्ररूपणा नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ७८ ॥

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ ७९ ॥

अकषायी जीवोंके क्षेत्रकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ ७९ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुद-अण्णाणी णवुंसयवेदभंगो ॥ ८० ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥

विभंगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८२ ॥

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव स्वस्थान व समुद्‌घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८१ ॥ विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव उक्त दो पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

उववादं णत्थि ॥ ८३ ॥

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ८३ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८५ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८४ ॥ उक्त पदोंसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८७ ॥

केवलज्ञानी जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८६ ॥ केवलज्ञानी जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ८९ ॥

समुद्घातकी अपेक्षा केवलज्ञानी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८८ ॥ समुद्घातकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

उववादं णत्थि ॥ ९० ॥

केवलज्ञानियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ९० ॥

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा अकसाईभंगो ॥ ९१ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत और यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत जीवोंके क्षेत्रकी प्ररूपणा अकषायी जीवोंके समान है ? ॥ ९१ ॥

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहार-सुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभंगो ॥ ९२ ॥

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके क्षेत्रकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ ९२ ॥

असंजदा णवुंसयभंगो ॥ ९३ ॥

असंयत जीवोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ९३ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ९४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९५ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी जीव स्वस्थानसे और समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ९४ ॥ चक्षुदर्शनी जीव उक्त दो पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९५ ॥

उववादं सिया अत्थि सिया णत्थि। लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि। जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि केवडिखेत्ते ? ॥ ९६ ॥

चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद कथंचित् होता है, और कथंचित् नहीं भी होता है। लब्धिकी अपेक्षा उनके उपपाद पद होता है, किन्तु निर्वृत्तिकी अपेक्षा वह नहीं होता। यदि

लब्धिकी अपेक्षा उनके उपपाद पद होता है तो उसकी अपेक्षा वे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ ९६ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९७ ॥

उपपादकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९७ ॥

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ ९८ ॥ ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ ९९ ॥ केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १०० ॥

अचक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र असंयत जीवोंके समान है ॥ ९८ ॥ अवधिदर्शनियोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ९९ ॥ तथा केवलदर्शनियोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १०० ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असंजदभंगो ॥ १०१ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र असंयतोंके समान है ॥ १०१ ॥

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ १०२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १०३ ॥

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १०२ ॥ उक्त दो लेश्यावाले जीव इन पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥

सुक्कलेस्सिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ १०४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १०५ ॥

शुक्लेश्यावाले जीव स्वस्थान और उपपाद पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १०४ ॥ उक्त दो पदोंसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १०५ ॥

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥

शुक्लेश्यावाले जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १०६ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ १०७ ॥ सव्वलोगे ॥ १०८ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १०७ ॥ उक्त तीनों पदोंसे वे सर्व लोकमें रहते हैं ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ १०९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११० ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १०९ ॥ उक्त दो पदोंसे वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११० ॥

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥

उक्त सम्यग्दृष्टि व क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १११ ॥

वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११३ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥११२॥ उक्त पदोंकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११३ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥११४॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११४ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११५ ॥

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ ११६ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र असंयत जीवोंके समान है ॥ ११६ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥११७॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११८ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११७ ॥ संज्ञी जीव उक्त तीनों पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११८॥

असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११९ ॥ सव्वलोगे ॥

असंज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११९ ॥ असंज्ञी जीव उक्त तीनों पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२० ॥

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥१२१॥ सव्वलोगे ॥ १२२ ॥

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १२१ ॥ आहारक जीव उक्त तीनों पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२२ ॥

अणाहारा केवडिखेत्ते ? ॥ १२३ ॥ सव्वलोगे ॥ १२४ ॥

अनाहारक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १२३ ॥ अनाहारक जीव सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२४ ॥

॥ क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

७. फोसणाणुगमो

फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएहि सत्थाणेहि केवडिखेत्तं फोसिदं ? ॥ १ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २ ॥

स्पर्शनानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीवोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १ ॥ नरकगतिमें नारकियोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥३॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४ ॥

उक्त नारकियोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३ ॥ उक्त पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ४ ॥

छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ५ ॥

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त नारकियोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ ५ ॥

पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाण-समुग्घाद-उववादपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७ ॥

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीवोंके द्वारा स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६ ॥ प्रथम पृथिवीके नारकियों द्वारा उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ७ ॥

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सप्तम पृथिवी तकके नारकियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ८ ॥ स्वस्थान पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ९ ॥

समुग्घाद-उववादेहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १० ॥ लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, एग-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११ ॥

उक्त नारकियोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १० ॥ समुद्घात व उपपाद पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग; अथवा चौदह भागोंमेंसे क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ११ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२ ॥ सव्वलोगो ॥ १३ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १२ ॥ तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १४ ॥ उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यंचों द्वारा स्वस्थान पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १५ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदि-भागो सव्वलोगो वा ॥ १७ ॥

उक्त चार प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १६ ॥ उक्त पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १७ ॥

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८ ॥ स्वस्थानसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १९ ॥

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ २१ ॥

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २० ॥ समुद्घातकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ २३ ॥

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा उपपाद पदकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२ ॥ उपपाद पदकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २३ ॥

मणुस-अपज्जत्ताणं पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ २४ ॥

मनुष्य अपर्याप्तोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ॥ २४ ॥

देवगदीए देवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-चोद्दस भागा वा देसूणा ॥ २६ ॥

देवगतिमें देवोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५ ॥ स्वस्थान पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

देवोंके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २७ ॥ समुद्घातकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह और नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २८ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ३० ॥

उपपादकी अपेक्षा देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २९ ॥ उपपादकी अपेक्षा देवोंके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३० ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठा वा अट्ठ-चोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ३२ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३१ ॥ उपर्युक्त देवोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा चौदह भागोंमें साढ़े तीन भाग, अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३२ ॥

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठा वा अट्ठ-णवचोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ३४ ॥

समुद्घातकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३३ ॥ समुद्घातकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा चौदह भागोंमें कुछ कम साढ़े तीन भाग, अथवा आठ व नौ भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३४ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३६ ॥

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३५ ॥ उपपाद पदकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ३६ ॥

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादं देवगदिभंगो ॥ ३७ ॥

स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा सौधर्म व ईशान कल्पवासी देवोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा देवगतिके समान है ॥ ३७ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्ढ-चोद्दस-भागा वा देसूणा ॥ ३८ ॥

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? उपपाद पदकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा चौदह भागोंमें कुछ कम डेढ़ भाग प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ ३८ ॥

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सार-कप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्धादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४० ॥

सनत्कुमारसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देवों द्वारा स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३९ ॥ उपर्युक्त देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४० ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो, तिण्णि-अद्धुट्ठ-चत्तारि-अद्धपंचम-पंच-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४२ ॥

उक्त देवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४१ ॥ उपपाद पदकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा क्रमसे चौदह भागोंमें कुछ कम तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पांच भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४२ ॥

आणद जाव अच्चुदकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्धादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४४ ॥

आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके विमानवासी देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४३ ॥ उपर्युक्त देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ? ॥ ४४ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धछट्ठ-छचोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ४६ ॥

उपर्युक्त देवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४५ ॥ उपपादकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े पांच या छह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४६ ॥

णवगेवज्ज जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

नौ ग्रैवेयकोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तकके विमानवासी देवों द्वारा स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४७ ॥ उक्त पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ४८ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४९ ॥ सव्वलोगो ॥ ५० ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ४९ ॥ उक्त पदोंसे वे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ५० ॥

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५१ ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ५२ ॥

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ५१ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ५२ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५३ ॥ सव्वलोगो ॥ ५४ ॥

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५३ ॥ समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उनके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ५४ ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५५ ॥ उपर्युक्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ ५८ ॥

समुद्घात व उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५७ ॥ समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥५९॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ६० ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितने क्षेत्रका स्पर्श करते हैं ? ॥ ५९ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ६० ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ ६२ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके द्वारा समुद्घातोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६१ ॥ समुद्घातोंकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग, अथवा असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ६२ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त जीवोंके द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६३ ॥ उपपादकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ६४ ॥

पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६६ ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ६५ ॥ स्वस्थानकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं ॥ ६६ ॥

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६८ ॥ सव्वलोगो वा ॥ ६९ ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके द्वारा समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६७ ॥ पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त दो पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ६८ ॥ अथवा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उन दो पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-सुहुमपुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७० ॥ सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७० ॥ उपर्युक्त जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ७१ ॥

बादरपुढविकाइय - बादरआउकाइय - बादरतेउकाइय - बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७३ ॥

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उन्हींके अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७२ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ७३ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७५ ॥ सव्वलोगो वा ॥ ७६ ॥

समुद्घात और उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ७४ ॥

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ७५ ॥ अथवा उक्त पदोंकी अपेक्षा उनके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ७६ ॥

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७८ ॥

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७७ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ७८ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८० ॥ सव्वलोगो वा ॥ ८१ ॥

समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंके द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥७९॥ समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ८० ॥ अथवा समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उनके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ८१ ॥

बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८२ ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८३ ॥

बादर वायुकायिक और उनके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८२ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८३ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८४ ॥ सव्वलोगो वा ॥ ८५ ॥

उपर्युक्त जीव समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८४ ॥ वे समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ८५ ॥

सूत्रमें जो 'वा' शब्द प्रयुक्त है उससे यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये कि बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा तीन लोकोंके संख्यातवें भागको तथा मनुष्य और तिर्यंच लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श करते हैं। मारणान्तिक और उपपाद पदोंसे वे सर्व लोकका स्पर्श करते हैं।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८६ ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८६ ॥ स्वस्थान पदोंसे वे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८७ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८८ ॥ लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८९ ॥ सव्वलोगो वा ॥ ९० ॥

समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है? ॥ ८८ ॥ उनके द्वारा उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ८९ ॥ अथवा समुद्घात व उपपादसे उनके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ९० ॥

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९१ ॥ सव्वलोगो ॥ ९२ ॥

वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोद जीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं? ॥ ९१ ॥ उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ९२ ॥

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९४ ॥

बादर वनस्पतिकायिक व बादर निगोद जीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं? ॥ ९३ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ९४ ॥

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९५ ॥ सव्वलोगो ॥ ९६ ॥

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है? ॥ ९५ ॥ समुद्घात व उपपाद पदोंसे उनके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ९६ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्तभंगो ॥

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥ ९७ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९९ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १०० ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं? ॥ ९८ ॥ उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ९९ ॥ अथवा वे स्वस्थान पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ १०० ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०२ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १०३ ॥

उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है? ॥ १०१ ॥ उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १०२ ॥ अथवा, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग या सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १०३ ॥

उववादो णत्थि ॥ १०४ ॥

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १०४ ॥

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०५ ॥ सव्वलोगो ॥ १०६ ॥

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १०५ ॥ उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥

ओरालियकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०७ ॥ सव्वलोगो ॥ १०८ ॥

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥१०७॥ औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥

उववादं णत्थि ॥ १०९ ॥

औदारिककाययोगियोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १०९ ॥

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ११० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १११ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११२ ॥

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥११०॥ वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १११ ॥ अतीत कालकी अपेक्षा वे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११२ ॥

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ११३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११४ ॥ अट्ठ-तेरहचोद्दसभागा देसूणा ॥ ११५ ॥

उक्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ११३ ॥ समुद्घातकी अपेक्षा वे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११४ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा वे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११५ ॥

उववादं णत्थि ॥ ११६ ॥

वैक्रियिककाययोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ ११६ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ११७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११८ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ११७ ॥ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११८ ॥

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ ११९ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं ॥ ११९ ॥

आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२१ ॥

आहारकाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२० ॥ आहारकाययोगी जीव उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १२१ ॥

उववादं णत्थि ॥ १२२ ॥

आहारकाययोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १२२ ॥

आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२४ ॥

आहारमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२३ ॥ स्वस्थान पदोंसे वे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १२४ ॥

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ १२५ ॥

आहारमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं ॥ १२५ ॥

कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२६ ॥ सव्वलोगो ॥१२७॥

कार्मणकाययोगी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १२६ ॥ कार्मणकाययोगियों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट हैं ॥ १२७ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥१२८॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२९ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा ॥ १३० ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२८ ॥ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १२९ ॥ अतीत कालकी अपेक्षा वे स्वस्थान पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ १३० ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १३१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३२ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १३३ ॥

स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीव समुद्घातोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १३१ ॥ समुद्घातोंकी अपेक्षा वे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १३२ ॥ समुद्घात पदसे अतीत कालकी अपेक्षा वे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ १३३ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १३४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥ सव्वलोगो वा ॥ १३६ ॥

उपपादकी अपेक्षा उक्त स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १३४ ॥ उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १३५ ॥ अथवा अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा उपपाद पदसे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १३६ ॥

णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १३७ ॥ सव्वलोगो ॥ १३८ ॥

नपुंसकवेदी जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १३७ ॥ नपुंसकवेदी जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १३८ ॥

अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १३९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १४० ॥

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १३९ ॥ स्वस्थान पदोंसे वे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १४० ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४२ ॥ असंखेज्जा वा भागा ॥ १४३ ॥ सव्वलोगो वा ॥ १४४ ॥

अपगतवेदियोंने समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १४१ ॥ समुद्घातकी अपेक्षा उन्होंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४२ ॥ अथवा, लोकका असंख्यात बहुभाग स्पर्श किया है ॥ १४३ ॥ अथवा, सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १४४ ॥

उववादं णत्थि ॥ १४५ ॥

अपगतवेदियोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १४५ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ १४६ ॥

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ १४७ ॥

अकषायी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ १४७ ॥

णाणाणुवादेण मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४८ ॥ सव्वलोगो ॥ १४९ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १४८ ॥ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

विभंगणाणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥१५०॥ लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १५१ ॥ अट्ठ-चोद्दभागा देसूणा ॥ १५२ ॥

विभंगज्ञानी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किये हैं ? ॥ १५० ॥ स्वस्थान पदोंसे उन्होंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५१ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५२ ॥

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १५३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५४ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा ॥ १५५ ॥ सव्वलोगो वा ॥ १५६ ॥

समुद्घातकी अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १५३ ॥ समुद्घातकी अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवोंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५५ ॥ अथवा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा उन्होंने सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १५६ ॥

उववादं णत्थि ॥ १५७ ॥

विभंगज्ञानी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १५७ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १५८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५९ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा ॥ १६० ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंने स्वस्थान व समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १५८ ॥ उपर्युक्त जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥ छ-चोद्दसभागा देसूणा ॥ १६३ ॥

उक्त जीवोंने उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १६१ ॥ उक्त जीवोंने उपपाद पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६२ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

मणपज्जवणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६५ ॥

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १६४ ॥ स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे उन्होंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥

उववादं णत्थि ॥ १६६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १६६ ॥

केवलणाणी अवगदवेदभंगो ॥ १६७ ॥

केवलज्ञानी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा अपगदवेदियोंके समान है ॥ १६७ ॥

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा अकसाइभंगो ॥ १६८ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत और यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत जीवोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा अकषायी जीवोंके समान है ॥ १६८ ॥

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद [परिहारसुद्धिसंजद] सुहुमसांपराइयसंजदाणं मणपज्जवणाणिभंगो ॥ १६९ ॥

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ १६९ ॥

संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७१ ॥

संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १७० ॥ स्वस्थान पदोंसे उन्होंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७१ ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७३ ॥ छ-चोद्दसभागा देसूणा ॥ १७४ ॥

समुद्घातोंकी अपेक्षा संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १७२ ॥ समुद्घातोंकी अपेक्षा उन्होंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १७४ ॥

उववादं णत्थि ॥ १७५ ॥

संयतासंयत जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १७५ ॥

असंजदाणं णवुंसयभंगो ॥ १७६ ॥

असंयत जीवोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ १७६ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७८ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १७९ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १७७ ॥ चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने स्वस्थान पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १७९ ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो

॥ १८१ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा ॥ १८२ ॥ सव्वलोगो वा ॥ १८३ ॥

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८० ॥ समुद्घात पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १८१ ॥ अतीत कालकी अपेक्षा उन्हींके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १८२ ॥ अथवा सर्व लोक ही स्पृष्ट है ॥ १८३ ॥

उववादं सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ १८४ ॥

चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है ॥

लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि ॥ १८५ ॥

उनके लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद होता है, किन्तु निर्वृत्तिकी अपेक्षा वह नहीं होता है ॥ १८५ ॥

जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८७ ॥ सव्वलोगो वा ॥ १८८ ॥

यदि लब्धिकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद होता है तो उनके द्वारा उससे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८६ ॥ उससे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥१८७॥ अथवा उनके द्वारा उससे अतीत कालकी अपेक्षा सर्व लोक ही स्पृष्ट है ॥ १८८ ॥

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ १८९ ॥

अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ १८९ ॥

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १९० ॥

अवधिदर्शनी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १९० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १९१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १९१ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणं असंजदभंगो ॥१९२॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ १९२ ॥

तेउलेस्सियाणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १९३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९४ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १९५ ॥

तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १९३ ॥ उनके द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १९४ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १९५ ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १९६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो

॥ १९७ ॥ अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १९८ ॥

समुद्घातकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १९६ ॥ उनके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १९७ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १९९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०० ॥ दिवड्ढ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २०१ ॥

उपपादकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १९९ ॥ उनके द्वारा उपपाद पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २०० ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २०१ ॥

पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०३ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २०४ ॥

पद्मलेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २०२ ॥ उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २०३ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २०४ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥ पंच-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २०७ ॥

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २०५ ॥ उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २०६ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २०७ ॥

सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०९ ॥ छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २१० ॥

शुक्ललेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २०८ ॥ उक्त पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया गया है ॥ २०९ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ॥ २१० ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २११ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २१२ ॥ छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २१३ ॥

शुक्ललेश्यावाले जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २११ ॥ समुद्घात पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ? ॥ २१२ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ? ॥ २१३ ॥

असंखेज्जा वा भागा ॥ २१४ ॥ सव्वलोगो वा ॥ २१५ ॥

अथवा प्रतर समुद्घातगत उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट है ॥२१४॥ तथा लोकपूरण समुद्घातगत उनके द्वारा सर्व लोक ही स्पृष्ट है ॥ २१५ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २१६ ॥ सव्वलोगो ॥ २१७ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंके द्वारा स्वस्थान, समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २१६ ॥ उक्त पदोंसे उनके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१७ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २१८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २१९ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२० ॥

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २१८ ॥ स्वस्थान पदोंसे उन्होंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २१९ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ॥ २२० ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२२ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२३ ॥ असंखेज्जा वा भागा वा ॥ २२४ ॥ सव्वलोगो वा ॥ २२५ ॥

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२१ ॥ सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २२२ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २२३ ॥ अथवा, प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा उनके द्वारा असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ २२४ ॥ अथवा, लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा उनके द्वारा सर्व लोक ही स्पृष्ट है ॥ २२५ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२७ ॥ छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२८ ॥

उक्त सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२६ ॥ सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २२७ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २२८ ॥

खइयसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३० ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २३१ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २२९ ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २३० ॥ अथवा, उनके द्वारा अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट किये गये हैं ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३३ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २३४ ॥ असंखेज्जा वा भागा वा ॥ २३५ ॥ सव्वलोगो वा ॥ २३६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २३२ ॥ समुद्घात पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २३३ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥२३४॥ अथवा, उक्त जीवोंके द्वारा प्रतर समुद्घातसे असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट है ॥ २३५ ॥ अथवा लोकपूरण समुद्घातसे उनके द्वारा सर्व लोक ही स्पृष्ट है ॥ २३६ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥

उपपादकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २३७ ॥ उपपादकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २३८ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४० ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २४१ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ २३९ ॥ वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ २४० ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा वे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ २४१ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४२ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४३ ॥ छ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २४४ ॥

उक्त वेदकसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २४२ ॥ वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४३ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २४४ ॥

उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४५ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४६ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २४७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २४५ ॥ उपशमसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४६ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २४७ ॥

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४८ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४९ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥२४८॥ समुद्घात व उपपाद पदोंसे उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४९ ॥

सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५० ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५१ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २५० ॥ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २५१ ॥ अथवा अतीत कालकी अपेक्षा उन्होंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५२ ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५३ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५४ ॥ अट्ठ-बारहचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५३ ॥ उनके द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २५४ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ और बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २५५ ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५६ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५७ ॥ एक्कारह-चोद्दसभागा देसूणा ॥ २५८ ॥

उक्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥२५६॥ उनके द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २५७ ॥ तथा अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २५८ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५९ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६० ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २६१ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५९ ॥ उनके द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २६० ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २६१ ॥

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ २६२ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं ॥ २६२ ॥

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ २६३ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्पर्शनकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ २६३ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २६४ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६५ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ २६६ ॥

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २६४ ॥

संज्ञी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २६५ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं ॥ २६६ ॥

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २६७ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६८ ॥ अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २६९ ॥ सव्वलोगो वा ॥ २७० ॥

समुद्घातोंकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २६७ ॥ संज्ञी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २६८ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २६९ ॥ अथवा, मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा उनके द्वारा सर्व लोक ही स्पृष्ट है ॥ २७० ॥

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७१ ॥ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २७२ ॥ सव्वलोगो वा ॥ २७३ ॥

उक्त संज्ञी जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? ॥ २७१ ॥ उपपादकी अपेक्षा उनके द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया गया है ॥ २७२ ॥ अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उनके द्वारा सर्व लोक ही स्पर्श किया गया है ॥ २७३ ॥

असण्णी मिच्छाइट्ठिभंगो ॥ २७४ ॥

असंज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र मिथ्यादृष्टियोंके समान है ॥ २७४ ॥

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७५ ॥ सव्वलोगो ॥ २७६ ॥

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २७५ ॥ आहारक जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥२७६॥

अणाहारा केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७७ ॥ सव्वलोगो ॥ २७८ ॥

आहारक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २७७ ॥ अनाहारक जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २७८ ॥

॥ स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

---

८. णाणाजीवेण कालाणुगमो

णाणाजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १ ॥ सव्वद्धा ॥ २ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ १ ॥ नाना जीवोंकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकी जीव सर्व काल रहते हैं ॥ २ ॥

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४ ॥ सव्वद्धा ॥ ५ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी कितने काल रहते हैं ? ॥ ४ ॥ उपर्युक्त जीव सन्तानकी अपेक्षा वहां सर्व काल रहते हैं ॥ ५ ॥

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६ ॥ जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७ ॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८ ॥

मनुष्य अपर्याप्त जीव कितने काल रहते हैं ॥ ६ ॥ मनुष्य अपर्याप्त जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ७ ॥ तथा उत्कर्षसे वे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक रहते हैं ॥ ८ ॥

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९ ॥ सव्वद्धा ॥ १० ॥

देवगतिमें देव कितने काल रहते हैं ? ॥ ९ ॥ देवगतिमें देव सर्व काल रहते हैं ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा ॥ ११ ॥

इसी प्रकार भवनवासी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक सब देव सर्व काल ही रहते हैं ॥ ११ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२ ॥ सव्वद्धा ॥ १३ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय,

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ १२ ॥ उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १३ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया, आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्ता-पज्जत्ता तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १४ ॥ सव्वद्धा ॥ १५ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, अप्कायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, तेजकायिक, तेजकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर तेजकायिक, बादर तेजकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त; वायुकायिक, वायुकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, निगोद जीव, निगोद जीव पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त, तथा त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त; ये सब जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ १४ ॥ उपर्युक्त सब जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १५ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६ ॥ सव्वद्धा ॥ १७ ॥

योगमार्गणाके अनुसार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ १६ ॥ उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १७ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८ ॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९ ॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ १८ ॥ वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९ ॥ तथा उनका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ २० ॥

आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१ ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ २२ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३ ॥

आहारककाययोगी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ २१ ॥ आहारककाययोगी जीव जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ २२ ॥ तथा उत्कर्षसे वे अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं ॥ २३ ॥

आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २४ ॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

आहारकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ २४ ॥ आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं ॥ २५ ॥ तथा उत्कर्षसे वे अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं ॥ २६ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २७ ॥ सव्वद्धा ॥ २८ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ २७ ॥ उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ २८ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २९ ॥ सव्वद्धा ॥ ३० ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ २९ ॥ उपर्युक्त चारों कषायोंवाले और अकषायी जीव सर्व काल ही रहते हैं ॥ ३० ॥

णाणाणुवादेण मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३१ ॥ सव्वद्धा ॥ ३२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ३१ ॥ वे सर्व काल रहते हैं ॥ ३२ ॥

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धि-संजदा परिहार-सुद्धिसंजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३३ ॥ सव्वद्धा ॥ ३४ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिक व छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धि-संयत, यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ३३ ॥ वे सर्व काल रहते हैं ॥ ३४ ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३५ ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६ ॥ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ३५ ॥ वे जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ ३६ ॥ तथा उत्कर्षसे वे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ ३७ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३८ ॥ सव्वद्धा ॥ ३९ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ३८ ॥ वे सर्व काल रहते हैं ॥ ३९ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलिस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४० ॥ सव्वद्धा ॥ ४१ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीव कितने काल रहते हैं ॥४०॥ वे सर्व काल रहते हैं ? ॥४१॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४२ ॥ सव्वद्धा ॥ ४३ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ४२ ॥ वे सर्व काल रहते हैं ॥ ४३ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४४ ॥ सव्वद्धा ॥ ४५ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ४४ ॥ वे सर्व काल रहते हैं ॥ ४५ ॥

उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४६ ॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल रहते हैं ॥ ४६ ॥ वे जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते ॥४७॥ उत्कर्षसे वे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक रहते हैं ॥

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥४९॥ जहण्णेण एगसमयं ॥५०॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ४९ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टि जीव जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ ५० ॥ उत्कर्षसे वे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक रहते हैं ॥ ५१ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५२ ॥ सव्वद्धा ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ५२ ॥ संज्ञी और असंज्ञी जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ५३ ॥

आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५४ ॥ सव्वद्धा ॥ ५५ ॥

आहारक व अनाहारक जीव कितने काल रहते हैं ? ॥ ५४ ॥ आहारक व अनाहारक जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ५५ ॥

॥ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

९. णाणाजीवेण अंतराणुगमो

णाणाजीवेहि अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १ ॥ णत्थि अंतरं ॥ २ ॥ णिरंतरं ॥ ३ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १ ॥ उनका अन्तर नहीं होता ॥ २ ॥ नारक राशि निरन्तर है ॥ ३ ॥

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ४ ॥

इस प्रकार सातों पृथिवियोंमें ही नारकी जीव अन्तरसे रहित होते हुए निरन्तर हैं ॥ ४ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीणमंतरं केवचिरं कालादो होंति [होदि] ? ॥ ५ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ६ ॥ णिरंतरं ॥ ७ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५ ॥ उनका अन्तर नहीं होता ॥ ६ ॥ वे जीव निरन्तर हैं ॥ ७ ॥

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८ ॥ जहण्णेण एगसमओ ॥ ९ ॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १० ॥

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ८ ॥ मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ ९ ॥ तथा उत्कर्षसे उनका अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक होता है ॥ १० ॥

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११ ॥ णत्थि अंतरं ॥ १२ ॥ णिरंतरं ॥ १३ ॥

देवगतिमें देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ११ ॥ देवगतिमें देवोंका अन्तर नहीं होता ॥ १२ ॥ वे निरन्तर हैं ॥ १३ ॥

भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभंगो ॥ १४ ॥

भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि-विमानवासी देवों तक देवोंके अन्तरकी प्ररूपणा देवगतिके अन्तरके समान है ॥ १४ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १५ ॥ णत्थि अंतरं ॥ १६ ॥ णिरंतरं ॥ १७ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १५ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ १६ ॥ वे निरन्तर हैं ॥ १७ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय - आउकाइय - तेउकाइय - वाउकाइय - वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १८ ॥ णत्थि अंतरं ॥ १९ ॥ णिरंतरं ॥ २० ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त; ये नौ पृथिवीकायिक जीव, इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजकायिक, नौ वायुकायिक, नौ वनस्पतिकायिक और नौ निगोद जीव; तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त-अपर्याप्त; तथा त्रसकायिक व त्रसकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥१८॥ उनका अन्तर नहीं होता ॥१९॥ ये सब जीवराशियां निरन्तर हैं ॥२०॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २१ ॥ णत्थि अंतरं ॥ २२ ॥ णिरंतरं ॥ २३ ॥

योगमार्गणाके अनुसार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ २१ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ २२ ॥ ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ २३ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २४ ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ २५ ॥ उक्कस्सेण बारहमुहुत्तं ॥ २६ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ २४ ॥ उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ २५ ॥ तथा उत्कर्षसे वह बारह मुहूर्त मात्र होता है ॥ २६ ॥

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २७ ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ २८ ॥ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २९ ॥

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ २७ ॥ उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ २८ ॥ तथा उत्कर्षसे वह वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है ॥ २९ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३० ॥ णत्थि अंतरं ॥ ३१ ॥ णिरंतरं ॥ ३२ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥३०॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ३१ ॥ ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाइ - माणकसाइ - मायकसाइ - लोभकसाइ - अकसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३३ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ३४ ॥ णिरंतरं ॥ ३५ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ३३ ॥ उनका अन्तर नहीं होता ॥ ३४ ॥ ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३५ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३६ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ३७ ॥ णिरंतरं ॥ ३८ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ३६ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ३७ ॥ ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३८ ॥

संजमाणुवादेण संजदा सामाइय - छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३९ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ४० ॥ णिरंतरं ॥ ४१ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिक-छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत, यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥३९॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ४० ॥ ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ४१ ॥

सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४२ ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ ४३ ॥ उक्कस्सेण छम्मासाणि ॥ ४४ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ४२ ॥ उनका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ ४३ ॥ तथा उत्कर्षसे वह छह मास तक होता है ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-केवलदंसणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४५ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ४६ ॥ णिरंतरं ॥ ४७ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ४५ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ४६ ॥ ये जीवराशिय निरन्तर हैं ॥ ४७ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४८ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ४९ ॥ णिरंतरं ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ४८ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ४९ ॥ ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५० ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥५१॥ णत्थि अंतरं ॥ ५२ ॥ णिरंतरं ॥ ५३ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५१ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ५२ ॥ वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५३ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि - खइयसम्माइट्ठि - वेदगसम्माइट्ठि - मिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५४ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ५५ ॥ णिरंतरं ॥ ५६ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५४ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ५५ ॥ वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५६ ॥

उवसमसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५७ ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ ५८ ॥ उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि ॥ ५९ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ५७ ॥ उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ ५८ ॥ तथा उत्कर्षसे वह सात रात-दिन प्रमाण होता है ॥

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६० ॥ जहण्णेण एगसमयं ॥ ६१ ॥ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६२ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥६०॥ उनका अन्तर जघन्यसे एक समय मात्र होता है ॥ ६१ ॥ तथा उत्कर्षसे वह पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है ॥ ६२ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६३ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ६४ ॥ णिरंतरं ॥ ६५ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुसार संज्ञी व असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ६३ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ६४ ॥ वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ६५ ॥

आहाराणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६६ ॥ णत्थि अंतरं ॥ ६७ ॥ णिरंतरं ॥ ६८ ॥

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक और अनाहारक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ ६६ ॥ उनका अन्तर नहीं होता है ॥ ६७ ॥ वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ६८ ॥

॥ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

---

१०. भागाभागाणुगमो

भागाभागाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १ ॥ अणंतभागो ॥ २ ॥

भागाभागानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव सर्व जीवोंकी अपेक्षा कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १ ॥ नरकगतिमें नारकी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥

अनन्तवें भाग, असंख्यातवें भाग और संख्यातवें भाग इन तीनका नाम भाग; तथा अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग और संख्यात बहुभाग इन तीनका नाम अभाग है । जिस अधिकारके द्वारा उक्त भाग और अभाग परिज्ञात किये जाते हैं उस अधिकारका नाम भागाभागानुगम है । इस अधिकारमें इनकी प्ररूपणा करते हुए यहां यह कहा गया है कि नारकी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भाग तथा अन्य सब जीव अनन्त बहुभाग मात्र हैं ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

इसी प्रकार पृथक् पृथक् सात पृथिवीयोंमें नारकियोंके भागाभागकी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? ॥ ४ ॥ अणंता भागा ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ४ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग मात्र हैं ॥ ५ ॥

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६ ॥ अणंतभागो ॥ ७ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तियचं पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तियञ्च योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव; तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और मनुष्य अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ६ ॥ वे सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥७॥

देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८ ॥ अणंतभागो ॥ ९ ॥

देवगतिमें देव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ८ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ९ ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा ॥ १० ॥

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक भागाभागका क्रम जानना चाहिये ॥ १० ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ११ ॥ अणंता भागा ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ११ ॥ एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ १२ ॥

बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १३ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ १४ ॥

बादर एकेन्द्रिय जीव और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १३ ॥ वे सर्व जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १४ ॥

सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १५ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १५ ॥ वे सर्व जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १६ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥१७॥ संखेज्जा भागा ॥१८॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १७ ॥ वे सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ॥ १८ ॥

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १९ ॥ संखेज्जदिभागो ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १९ ॥ वे सर्व जीवोंके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ २० ॥

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं

केवडिओ भागो ? ॥ २१ ॥ अणंता भागा ॥ २२ ॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ २१ ॥ वे सर्व जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ २२ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया [वाउकाइया] बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइय-पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २३ ॥ अणंतभागो ॥ २४ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक व पृथिवीकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक व बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक व सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त; इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजकायिक, [नौ वायुकायिक,] बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर एवं उनके पर्याप्त व अपर्याप्त; तथा त्रसकायिक व त्रसकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ २३ ॥ वे सब पृथक् पृथक् सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ २४ ॥

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २५ ॥ अणंता भागा ॥ २६ ॥

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ २५ ॥ वे सर्व जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ २६ ॥

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ॥ २७ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ २८ ॥

बादर वनस्पतिकायिक व बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त, तथा बादर निगोद जीव व बादर निगोद जीव पर्याप्त-अपर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ २७ ॥ वे सर्व जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ २८ ॥

सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २९ ॥ असंखेज्जा भागा ॥ ३० ॥

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ २९ ॥ वे सर्व जीवोंके असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ३० ॥

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३१ ॥ संखेज्जा भागा ॥ ३२ ॥

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त व सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ३१ ॥ वे सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ३२ ॥

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३३ ॥ संखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त व सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ३३ ॥ वे सर्व जीवोंके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ३४ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि - पंचवचिजोगि - वेउव्वियकायजोगि - वेउव्वियमिस्स-कायजोगि-आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३५ ॥ अणंतो भागो ॥ ३६ ॥

योगमार्गणाके अनुसार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ३५ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ३६ ॥

कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३७ ॥ अणंता भागा ? ॥ ३८ ॥

काययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ॥ ३७ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ३८ ॥

ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३९ ॥ संखेज्जा भागा ॥

औदारिककाययोगी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ३९ ॥ वे सब जीवोंके संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ४० ॥

ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४१ ॥ संखेज्जदि-भागो ॥ ४२ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ४१ ॥ वे सब जीवोंके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ४२ ॥

कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४३ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥

कार्मणकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ४३ ॥ वे सब जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ४४ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४५ ॥ अणंतो भागो ॥ ४६ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और अपगतवेदी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ४५ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ४६ ॥

णवुंसयवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४७ ॥ अणंता भागा ॥ ४८ ॥

नपुंसकवेदी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ४७ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ४८ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४९ ॥ चदुब्भागो देसूणा [णो] ॥ ५० ॥

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ४९ ॥ वे सब जीवोंके कुछ कम चतुर्थ भाग प्रमाण हैं ॥ ५० ॥

लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥५१॥ चदुब्भागो सादिरेगो ॥५२॥

लोभकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ५१ ॥ वे सब जीवोंके साधिक चतुर्थ भाग प्रमाण हैं ॥ ५२ ॥

अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५३ ॥ अणंतो भागो ॥ ५४ ॥

अकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ५३ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ५४ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥५५॥ अणंता भागा ॥ ५६ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ५५ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ५६ ॥

विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५७ ॥ अणंतभागो ॥ ५८ ॥

विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ५७ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावण-सुद्धि-संजदा परिहार-सुद्धि-संजदा सुहुमसांपराइय-सुद्धि-संजदा जहाक्खादविहार-सुद्धि-संजदा संजदासंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५९ ॥ अणंतभागो ॥ ६० ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिक-छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत, यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत और संयतासंयत जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ५९ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ६० ॥

असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६१ ॥ अणंता भागा ॥ ६२ ॥

असंयत जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ६१ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ६२ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ॥ ६३ ॥ अणंतभागो ॥ ६४ ॥

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ६३ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ६४ ॥

अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६५ ॥ अणंता भागा ॥ ६६ ॥

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ६५ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ६६ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६७ ॥ तिभागो सादिरेगो ॥ ६८ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ६७ ॥ वे सब जीवोंके साधिक एक त्रिभाग प्रमाण हैं ॥ ६८ ॥

णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६९ ॥ तिभागो देसूणो ॥ ७० ॥

नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥६९॥ वे सब जीवोंके कुछ कम एक त्रिभाग प्रमाण हैं ॥ ७० ॥

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥७१॥ अणंतभागो ॥ ७२ ॥

तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ७१ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ७२ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७३ ॥ अणंता भागा ॥ ७४ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥७३॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ७४ ॥

अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७५ ॥ अणंतभागो ॥ ७६ ॥

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ७५ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ७६ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७७ ॥ अणंतो भागो ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ७७ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ७८ ॥

मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७९ ॥ अणंता भागा ॥ ८० ॥

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ७९ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ८० ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८१ ॥ अणंतभागो ॥

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ८१ ॥ वे सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं ॥ ८२ ॥

असण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८३ ॥ अणंता भागा ॥ ८४ ॥

असंज्ञी जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ८३ ॥ वे सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ८४ ॥

आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८५ ॥ असंखेज्जा भागा ॥ ८६ ॥

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ८५ ॥ वे सब जीवोंके असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ॥ ८६ ॥

अणाहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८७ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

अनाहारक जीव सब जीवोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ८७ ॥ वे सब जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ८८ ॥

॥ भागाभागानुगम समाप्त हुआ ॥ १० ॥

---

११. अप्पाबहुगाणुगमो

अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंच गदीओ समासेण ॥ १ ॥

अल्पबहुत्वानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार संक्षेपसे गतियां पांच हैं ॥ १ ॥

गति सामान्यसे एक प्रकारकी; सिद्धगति और असिद्धगतिके भेदसे दो प्रकारकी; देवगति, अदेवगति और सिद्धगतिके भेदसे तीन प्रकारकी; नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिके भेदसे चार प्रकारकी; तथा नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगतिके भेदसे पांच प्रकारकी है । इस प्रकारसे गति अनेक प्रकारकी है । प्रकृतमें यहां पांच गतियोंके आश्रयसे अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है, यह अभिप्राय समझना चाहिये ।

सव्वत्थोवा मणुसा ॥ २ ॥ णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३ ॥ देवा असंखेज्जगुणा ॥ ४ ॥ सिद्धा अणंतगुणा ॥ ५ ॥ तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ ६ ॥

मनुष्य सबसे स्तोक हैं ॥ २ ॥ मनुष्योंसे नारकी असंख्यातगुणें हैं ॥ ३ ॥ नारकियोंसे देव असंख्यातगुणें हैं ॥ ४ ॥ देवोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ ५ ॥ सिद्धोंसे तिर्यंच अनन्तगुणे हैं ॥ ६ ॥

अट्ठ गदीओ समासेण ॥ ७ ॥

संक्षेपसे गतियां आठ हैं ॥ ७ ॥

वे आठ गतियां इस प्रकार हैं— नारकी, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मनुष्यनी, देव, देवी और सिद्ध ।

सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ ॥ ८ ॥ मणुस्सा असंखेज्जगुणा ॥ ९ ॥ णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १० ॥ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ११ ॥ देवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १३ ॥ सिद्धा अणंतगुणा ॥ १४ ॥ तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ १५ ॥

मनुष्यनी सबसे स्तोक हैं ॥ ८ ॥ मनुष्यनियोंसे मनुष्य असंख्यातगुणे हैं ॥ ९ ॥ मनुष्योंसे नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ १० ॥ नारकियोंसे पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं ॥ ११ ॥ योनिमती तिर्यंचोंसे देव संख्यातगुणे हैं ॥१२॥ देवोंसे देवियां संख्यातगुणी हैं ॥१३॥ देवियोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १४ ॥ सिद्धोंसे तिर्यंच अनन्तगुणे हैं ॥ १५ ॥

इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचिंदिया ॥१६॥ चउरिंदिया विसेसाहिया ॥१७॥ तीइंदिया विसेसाहिया ॥ १८ ॥ बीइंदिया विसेसाहिया ॥ १९ ॥ अणिंदिया अणंतगुणा ॥ २० ॥ एइंदिया अणंतगुणा ॥ २१ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार पंचेन्द्रिय सबसे स्तोक हैं ॥ १६ ॥ पंचेन्द्रियोंसे चतुरिन्द्रिय विशेष अधिक हैं ॥ १७ ॥ चतुरिन्द्रियोंसे त्रीन्द्रिय विशेष अधिक हैं ॥ १८ ॥ त्रीन्द्रियोंसे द्वीन्द्रिय विशेष अधिक हैं ॥ १९ ॥ द्वीन्द्रियोंसे अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २० ॥ अनिन्द्रिय जीवोंसे एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २१ ॥

इसी इन्द्रियमार्गणाके अनुसार अन्य प्रकारसे भी उस अल्पबहुत्वका निर्देश करते हैं—

सव्वत्थोवा चउरिंदियपज्जत्ता ॥ २२ ॥ पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २३ ॥ बीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २४ ॥ तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २५ ॥ पंचिंदिय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ २६ ॥ चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २७ ॥ तीइंदिय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २८ ॥ बीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २९ ॥ अणिंदिया अणंतगुणा ॥ ३० ॥ बादरेइंदियपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ३१ ॥ बादरेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥ बादरेइंदिया विसेसाहिया ॥ ३३ ॥ सुहुमेइंदियअपज्जत्ता

असंखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥ सुहुमेइंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ३५ ॥ सुहुमेइंदिया विसेसाहिया ॥ ३६ ॥ एइंदिया विसेसाहिया ॥ ३७ ॥

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त सबसे स्तोक हैं ॥ २२ ॥ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तोंसे पंचेन्द्रिय पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ २३ ॥ पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ २४ ॥ द्वीन्द्रिय पर्याप्तोंसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ २५ ॥ त्रीन्द्रिय पर्याप्तोंसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ २६ ॥ पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ २७ ॥ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तोंसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ २८ ॥ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तोंसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ २९ ॥ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तोंसे अनिन्द्रिय अनन्तगुणे हैं ॥ ३० ॥ अनिन्द्रियोंसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अनन्तगुणे हैं ॥ ३१ ॥ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ३२ ॥ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे बादर एकेन्द्रिय विशेष अधिक हैं ॥ ३३ ॥ बादर एकेन्द्रियोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३४ ॥ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ३५ ॥ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय विशेष अधिक हैं ॥ ३६ ॥ सूक्ष्म एकेन्द्रियोंसे एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३७ ॥

कायाणुवादेण सव्वत्थोवा तसकाइया ॥ ३८ ॥ तेउक्काइया असंखेज्जगुणा ॥ ३९ ॥ पुढविकाइया विसेसाहिया ॥ ४० ॥ आउकाइया विसेसाहिया ॥ ४१ ॥ वाउकाइया विसेसाहिया ॥ ४२ ॥ अकाइया अणंतगुणा ॥ ४३ ॥ वणप्फदिकाइया अणंतगुणा ॥ ४४ ॥

कायमार्गणाके अनुसार त्रसकायिक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ ३८ ॥ त्रसकायिकोंसे तेजकायिक जीव असंख्यातगुणे है ॥ ३९ ॥ तेजकायिकोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४० ॥ पृथिवीकायियोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४१ ॥ अप्कायिकोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४२ ॥ वायुकायिकोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ४३ ॥ अकायिकोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ४४ ॥

इसी अल्पबहुत्वको अन्य प्रकारसे भी बतलाते हैं–

सव्वत्थोवा तसकाइयपज्जत्ता ॥ ४५ ॥ तसकाइय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४६ ॥ तेउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४७ ॥ पुढविकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४८ ॥ आउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४९ ॥ वाउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५० ॥ तेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ५१ ॥ पुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५२ ॥ आउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५३ ॥ वाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५४ ॥ अकाइया अणंतगुणा ॥ ५५ ॥ वणप्फदिकाइय-अपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ५६ ॥ वणप्फदिकाइय-पज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ५७ ॥ वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ५८ ॥ णिगोदा विसेसाहिया ॥ ५९ ॥

त्रसकायिक पर्याप्त जीव सबसे स्तोक हैं ॥ ४५ ॥ त्रसकायिक पर्याप्तोंसे त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ४६ ॥ त्रसकायिक अपर्याप्तोंसे तेजकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ४७ ॥ तेजकायिक अपर्याप्तोंसे पृथिवीकायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ४८ ॥ पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे अप्कायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ४९ ॥ अप्कायिक अपर्याप्तोंसे वायुकायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ५० ॥ वायुकायिक अपर्याप्तोंसे तेजकायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ५१ ॥ तेजकायिक पर्याप्तोंसे पृथिवीकायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ५२ ॥ पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे अप्कायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ५३ ॥ अप्कायिक पर्याप्तोंसे वायुकायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ५४ ॥ वायुकायिक पर्याप्तोंसे अकायिक अनन्तगुणे हैं ॥ ५५ ॥ अकायिकोंसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुणे हैं ॥ ५६ ॥ वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ५७ ॥ वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ५८ ॥ वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५९ ॥

प्रकृत मार्गणाके आश्रयसे ही अन्य प्रकारसे भी उस अल्पबहुत्वको बतलाते हैं—

सव्वत्थोवा तसकाइया ॥ ६० ॥ बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥ बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥ बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥ बादरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६४ ॥ बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६५ ॥ बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६६ ॥ सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥ सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया ॥ ६८ ॥ सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ॥ ६९ ॥ सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ॥ ७० ॥ अकाइया अणंतगुणा ॥ ७१ ॥ बादरवणप्फदिकाइया अणंतगुणा ॥ ७२ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥ वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७४ ॥ णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥

त्रसकायिक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ ६० ॥ त्रसकायिकोंसे बादर तेजकायिक असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥ बादर तेजकायिकोंसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर असंख्यातगुणे हैं ॥६२॥ बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरोंसे निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥ निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीवोंसे बादर पृथिवीकायिक असंख्यातगुणे हैं ॥ ६४ ॥ बादर पृथिवीकायिकोंसे बादर अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं ॥ ६५ ॥ बादर अप्कायिकोंसे बादर वायुकायिक असंख्यातगुणे हैं ॥ ६६ ॥ बादर वायुकायिकोंसे सूक्ष्म तेजकायिक असंख्यातगुणे हैं ॥ ६७ ॥ सूक्ष्म तेजकायिकोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ६८ ॥ सूक्ष्म पृथिवीकायिकोंसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेष अधिक हैं ॥ ६९ ॥ सूक्ष्म अप्कायिकोंसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७० ॥ सूक्ष्म वायुकायिकोंसे अकायिक अनन्तगुणे हैं ॥ ७१ ॥ अकायिकोंसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं ॥ ७२ ॥ बादर वनस्पतिकायिकोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे

हैं ॥ ७३ ॥ सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंसे वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७४ ॥ वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७५ ॥

आगे चौथे प्रकारसे भी इसी अल्पबहुत्वका कथन करते हैं—

सव्वत्थोवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता ॥ ७६ ॥ तसकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥ तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७८ ॥ वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥७९॥ बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥८०॥ बादरपुढविकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८१ ॥ बादरआउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥ बादरवाउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥ बादरतेउ-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥ बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८५ ॥ बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥ बादरपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥ बादरआउकाइय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८८ ॥ बादरवाउ-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८९ ॥ सुहुमतेउकाइय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ९० ॥ सुहुमपुढविकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९१ ॥ सुहुमआउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९२ ॥ सुहुमवाउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९३ ॥ सुहुमतेउकाइय-पज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ९४ ॥ सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९५ ॥ सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९६ ॥ सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९७ ॥ अकाइया अणंतगुणा ॥ ९८ ॥ बादरवणप्फदिकाइय-पज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ९९ ॥ बादरवणप्फदिकाइय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १०० ॥ बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०१ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १०३ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०४ ॥ वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०५ ॥ णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ १०६ ॥

बादर तेजकायिक पर्याप्त सबसे स्तोक हैं ॥ ७६ ॥ बादर तेजकायिकोंसे त्रसकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ७७ ॥ त्रसकायिक पर्याप्तोंसे त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७८ ॥ त्रसकायिक अपर्याप्तकोंसे वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ७९ ॥ वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंसे बादर निगोद जीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८० ॥ बादर निगोद जीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्तोंसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८१ ॥ बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८२ ॥ बादर अप्कायिक पर्याप्तोंसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८३ ॥ बादर वायुकायिक पर्याप्तोंसे बादर तेजकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८४ ॥ बादर तेजकायिक अपर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८५ ॥ बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तोंसे निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीव अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८६ ॥

निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीव अपर्याप्तोंसे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८७ ॥ बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८८ ॥ बादर अप्कायिक अपर्याप्तोंसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८९ ॥ बादर वायुकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ९० ॥ सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ९१ ॥ सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ९२ ॥ सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ९३ ॥ सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ९४ ॥ सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९५ ॥ सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ९६ ॥ सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ९७ ॥ सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ९८ ॥ अकायिक जीवोंसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुणे हैं ॥ ९९ ॥ बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ १०० ॥ बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ १०१ ॥ बादर वनस्पतिकायिकोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ १०२ ॥ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ १०३ ॥ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ १०४ ॥ सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंसे वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ १०५ ॥ वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०६ ॥

जोगाणुवादेण सव्वत्थोवा मणजोगी ॥१०७॥ वचिजोगी संखेज्जगुणा ॥१०८॥ अजोगी अणंतगुणा ॥ १०९ ॥ कायजोगी अणंतगुणा ॥ ११० ॥

योगमार्गणाके अनुसार मनोयोगी सबसे स्तोक हैं ॥ १०७ ॥ मनोयोगियोंसे वचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १०८ ॥ वचनयोगियोंसे अयोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १०९ ॥ अयोगियोंसे काययोगी अनन्तगुणे हैं ॥ ११० ॥

इसी योगमार्गणाका आश्रय करके यहां अन्य प्रकारसे भी अल्पबहुत्व कहा जाता है—

सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी ॥ १११ ॥ आहारकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥ वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥ सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११४॥ मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११५॥ सच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११६॥ असच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११७ ॥ मणजोगी विसेसाहिया ॥ ११८ ॥ सच्चवचि-जोगी संखेज्जगुणा ॥ ११९ ॥ मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२० ॥ सच्च-मोसवचि-जोगी संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥ वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२२ ॥ असच्च-

ओरालियबिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥ वचिजोगी विसेसाहिया ॥ १२४ ॥ अजोगी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥ कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा ॥ १२६ ॥ ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥ ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२८ ॥ कायजोगी विसेसाहिया ॥ १२९ ॥

आहारमिश्रकाययोगी सबसे स्तोक हैं ॥ १११ ॥ आहारमिश्रकाययोगियोंसे आहारकाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११२ ॥ आहारकाययोगियोंसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं ॥ ११३ ॥ वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंसे सत्यमनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११४ ॥ सत्यमनोयोगियोंसे मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११५ ॥ मृषामनोयोगियोंसे सत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११६ ॥ सत्य-मृषामनोयोगियोंसे असत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११७ ॥ असत्यमृषामनोयोगियोंसे मनोयोगी विशेष अधिक हैं ॥ ११८ ॥ मनोयोगियोंसे सत्यवचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११९ ॥ सत्यवचनयोगियोंसे मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२० ॥ मृषावचनयोगियोंसे सत्यमृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२१ ॥ सत्यमृषावचनयोगियोंसे वैक्रियिककाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२२ ॥ वैक्रियिककाययोगियोंसे असत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२३ ॥ असत्यमृषावचनयोगियोंसे वचनयोगी विशेष अधिक हैं ॥ १२४ ॥ वचनयोगियोंसे अयोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १२५ ॥ अयोगियोंसे कार्मणकाययोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १२६ ॥ कार्मणकाययोगियोंसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं ॥ १२७ ॥ औदारिकमिश्रकाययोगियोंसे औदारिककाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२८ ॥ औदारिककाययोगियोंसे काययोगी विशेष अधिक हैं ॥ १२९ ॥

वेदाणुवादेण सव्वत्थोवा पुरिसवेदा ॥१३० ॥ इत्थिवेदा संखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥ अवगदवेदा अणंतगुणा ॥ १३२ ॥ णवुंसयवेदा अणंतगुणा ॥ १३३ ॥

वेदमार्गणाके अनुसार पुरुषवेदी सबसे स्तोक हैं ॥ १३० ॥ पुरुषवेदियोंसे स्त्रीवेदी संख्यातगुणे हैं ॥ १३१ ॥ स्त्रीवेदियोंसे अपगतवेदी अनन्तगुणे हैं ॥ १३२ ॥ अपगतवेदियोंसे नपुंसकवेदी अनन्तगुणे हैं ॥ १३३ ॥

इसी वेदमार्गणामें अन्य प्रकारसे भी अल्पबहुत्व कहा जाता है—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पयदं । सव्वत्थोवा सण्णिणवुंसयवेदगब्भोवक्कंतिया ॥

यहां पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका अधिकार है। संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १३४ ॥

सण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १३५ ॥

संज्ञी नपुंसक गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १३५ ॥

सण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १३६ ॥

सण्णि-णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १३७ ॥

संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥१३७॥

सण्णि-णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन पर्याप्तोंसे संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ १३८ ॥

सण्णिइत्थि-पुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया असंखेज्जवासाउआ दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन अपर्याप्तोंसे संज्ञी स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक असंख्यातवर्षायुष्क ये दोनों तुल्य व असंख्यातगुणे हैं ॥ १३९ ॥

असण्णिणवुंसयवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४० ॥

उनसे असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४० ॥

असण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४१ ॥

उनसे असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणित हैं ॥ १४१ ॥

असण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

उनसे असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४२ ॥

असण्णि णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

उनसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ १४३ ॥

असण्णि-णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १४४ ॥

उनसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १४४ ॥

कसायाणुवादेण सव्वत्थोवा अकसाई ॥ १४५ ॥ माणकसाई अणंतगुणा ॥ १४६ ॥ कोधकसाई विसेसाहिया ॥ १४७ ॥ मायकसाई विसेसाहिया ॥ १४८ ॥ लोभकसाई विसेसाहिया ॥ १४९ ॥

कषायमार्गणाके अनुसार अकषायी जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १४५ ॥ उनसे मानकषायी अनन्तगुणे हैं ॥ १४६ ॥ उनसे क्रोधकषायी विशेष अधिक हैं ॥ १४७ ॥ उनसे मायाकषायी विशेष अधिक हैं ॥ १४८ ॥ उनसे लोभकषायी विशेष अधिक हैं ॥ १४९ ॥

णाणाणुवादेण सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणी ॥ १५० ॥ ओहिणाणी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥ आभिणिबोहिय-सुदणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ॥ १५२ ॥ विभंगणाणी असंखेज्जगुणा ॥ १५३ ॥ केवलणाणी अणंतगुणा ॥ १५४ ॥ मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा ॥ १५५ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मनःपर्ययज्ञानी जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १५० ॥ उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ॥ १५१ ॥ उनसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों ही तुल्य विशेष अधिक हैं ॥ १५२ ॥ उनसे विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ॥ १५३ ॥ उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं ॥ १५४ ॥ उनसे मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी दोनों ही तुल्य व अनन्तगुणे हैं ॥ १५५ ॥

संजमाणुवादेण सव्वत्थोवा संजदा ॥ १५६ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥ णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा ॥ १५८ ॥ असंजदा अणंतगुणा ॥

संयममार्गणानुसार संयत जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १५६ ॥ संयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं ॥ १५७ ॥ संयतासंयतोंसे न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १५८ ॥ उनसे असंयत अनन्तगुणे हैं ॥ १५९ ॥

इसी मार्गणामें अन्य प्रकारसे भी अल्पबहुत्व कहते हैं–

सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा ॥ १६० ॥ परिहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥ जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६२ ॥ सामाइ-च्छेदोवट्ठावण-सुद्धिसंजदा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥ संजदा विसेसाहिया ॥ १६४ ॥ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥ णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा ॥ १६६ ॥ असंजदा अणंतगुणा ॥ १६७ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १६० ॥ उनसे परिहार-शुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं ॥ १६१ ॥ उनसे यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं ॥ १६२ ॥ उनसे सामायिक-शुद्धिसंयत और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणे हैं ॥ १६३ ॥ उनसे संयत विशेष अधिक हैं ॥ १६४ ॥ उनसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं ॥ १६५ ॥ उनसे न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १६६ ॥ उनसे असंयत अनन्तगुणे हैं ॥ १६७ ॥

अब यहां तीव्र, मन्द और मध्यम स्वरूपसे स्थित संयमका अल्पबहुत्व कहा जाता है–

सव्वत्थोवा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी ॥ १६८ ॥ परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १६९ ॥ तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७० ॥ सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७१ ॥ सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७२ ॥ तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७३ ॥ जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७४ ॥

सामायिक-छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयतकी जघन्य चारित्रलब्धि सबसे स्तोक हैं ॥ १६८ ॥ उससे परिहार-शुद्धिसंयतकी जघन्य चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १६९ ॥ इससे उसीकी उत्कृष्ट

चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७० ॥ उससे सामायिक-छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयतकी उत्कृष्ट चारित्र-लब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७१ ॥ उससे सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतकी जघन्य चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७२ ॥ उससे उसीकी उत्कृष्ट चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७३ ॥ उससे यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतकी अजघन्यानुत्कृष्ट चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७४ ॥

दंसणाणुवादेण सव्वत्थोवा ओहिदंसणी ॥ १७५ ॥ चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा ॥ १७६ ॥ केवलदंसणी अणंतगुणा ॥ १७७ ॥ अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ॥ १७८ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुसार अवधिदर्शनी सबसे स्तोक हैं ॥ १७५ ॥ उनसे चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणे हैं ॥ १७६ ॥ उनसे केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं ॥ १७७ ॥ उनसे अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे हैं ॥ १७८ ॥

लेस्साणुवादेण सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सिया ॥ १७९ ॥ पम्मलेस्सिया असंखेज्जगुणा ॥ १८० ॥ तेउलेस्सिया संखेज्जगुणा ॥ १८१ ॥ अलेस्सिया अणंतगुणा ॥ १८२ ॥ काउलेस्सिया अणंतगुणा ॥ १८३ ॥ णीललेस्सिया विसेसाहिया ॥ १८४ ॥ किण्णलेस्सिया विसेसाहिया ॥ १८५ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार शुक्ललेश्यावाले सबसे स्तोक हैं ॥ १७९ ॥ उनसे पद्मलेश्यावाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १८० ॥ उनसे तेजोलेश्यावाले संख्यातगुणे हैं ॥ १८१ ॥ उनसे लेश्यारहित अर्थात् अयोगी व सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १८२ ॥ उनसे कापोतलेश्यावाले अनन्तगुणे हैं ॥ १८३ ॥ उनसे नीललेश्यावाले विशेष अधिक हैं ॥ १८४ ॥ उनसे कृष्णलेश्यावाले विशेष अधिक हैं ॥ १८५ ॥

भवियाणुवादेण सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया ॥ १८६ ॥ णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अणंतगुणा ॥ १८७ ॥ भवसिद्धिया अणंतगुणा ॥ १८८ ॥

भव्यमार्गणाके अनुसार अभव्यसिद्धिक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १८६ ॥ उनसे न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८७ ॥ उनसे भव्यसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८८ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मामिच्छाइट्ठी ॥ १८९ ॥ सम्माइट्ठी असंखेज्ज-गुणा ॥ १९० ॥ सिद्धा अणंतगुणा ॥ १९१ ॥ मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा ॥ १९२ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १८९ ॥ उनसे सम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९० ॥ उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १९१ ॥ उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं ॥ १९२ ॥

अब प्रकृत मार्गणामें अन्य प्रकारसे भी अल्पबहुत्व कहा जाता है—

सव्वत्थोवा सासणसम्माइट्ठी ॥ १९३ ॥ सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १९४ ॥ उवसमसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९५ ॥ खइयसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥ वेदग-

सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९७ ॥ सम्माइट्ठी विसेसाहिया ॥ १९८ ॥ सिद्धा अणंतगुणा ॥ १९९ ॥ मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा ॥ २०० ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे स्तोक हैं ॥ १९३ ॥ उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणे हैं ॥ १९४ ॥ उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९५ ॥ उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९६ ॥ उनसे वेदगसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९७ ॥ उनसे सम्यग्दृष्टि विशेष अधिक हैं ॥१९८॥ उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥१९९॥ उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं ॥ २०० ॥

सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी ॥ २०१ ॥ णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा ॥ २०२ ॥ असण्णी अणंतगुणा ॥ २०३ ॥

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी सबसे स्तोक हैं ॥ २०१ ॥ उनसे न संज्ञी न असंज्ञी ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०२ ॥ उनसे असंज्ञी अनन्तगुणे हैं ॥ २०३ ॥

आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा ॥२०४॥ बंधा अणंतगुणा ॥२०५॥ आहारा असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

आहारमार्गणाके अनुसार अनाहारक अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ २०४ ॥ उनसे अनाहारक बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०५ ॥ उनसे आहारक असंख्यातगुणे हैं ॥ २०६ ॥

॥ अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

महादंडओ

एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कादव्वो भवदि ॥ १ ॥

आगे सब जीवोंके विषयमें महादण्डक किया जाता है ॥ १ ॥

यह महादण्डक प्रकृत क्षुद्रकबन्धके ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें— विशेषतः अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारमें— सूचित अर्थकी प्ररूपणा करनेके कारण इस क्षुद्रकबन्धकी चूलिकाके समान है, ऐसा समझना चाहिये ।

सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गब्भोवक्कंतिया ॥ २ ॥

मनुष्य पर्याप्त गर्भोपक्रान्तिक सबसे स्तोक हैं ॥ २ ॥

मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३ ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंसे मनुष्यनियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३ ॥

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४ ॥

मनुष्यनियोंसे सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४ ॥

बादरतेउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५ ॥

उनसे बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५ ॥

अणुत्तरविजय-वेजयंत-जयंत-अवराजितविमाणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ६ ॥

उनसे अनुत्तरोंमें विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी देव असंख्यात-गुणे हैं ॥ ६ ॥

अणुदिसविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ७ ॥

उनसे अनुदिशविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ७ ॥

उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ८ ॥

उनसे उपरिम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ८ ॥

उवरिम-मज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ९ ॥

उनसे उपरिम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९ ॥

उवरिम-हेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १० ॥

उनसे उपरिम-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणित हैं ॥ १० ॥

मज्झिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ११ ॥

उनसे मध्यम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ११ ॥

मज्झिम-मज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥

उनसे मध्यम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १२ ॥

मज्झिम-हेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १३ ॥

उनसे मध्यम-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १३ ॥

हेट्ठिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १४ ॥

उनसे अधस्तन-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १४ ॥

हेट्ठिम-मज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १५ ॥

उनसे अधस्तन-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १५ ॥

हेट्ठिम-हेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

उनसे अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १६ ॥

आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १७ ॥ आणद-पाणदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १८ ॥ सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥ छट्ठीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥ सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २१ ॥ सुक्क-महासुक्ककप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २२ ॥ पंचमपुढविणेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २३ ॥ लांतव-काविट्ठकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २४ ॥ चउत्थीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २५ ॥ बम्ह-बम्हुत्तरकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २६ ॥ तदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २७ ॥ माहिंदकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २८ ॥ सणक्कुमारकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ २९ ॥ विदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३० ॥ मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३१ ॥ ईसाणकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३३ ॥ सोधम्मकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥३५॥ पढमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥ भवणवासिया देवा असंखेज्जगुणा ॥३७॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥३८॥ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ३९ ॥ वाणवेंतरदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४० ॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ४१ ॥ जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा ॥४२॥ देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥४३॥ चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥ पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४५ ॥ बेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥४६॥ तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥४७॥ पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥ चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४९ ॥ तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५० ॥ बेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५१ ॥ बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥५२॥ बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥५३॥ बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५४ ॥ बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥ बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५६ ॥ बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५७ ॥ बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥ बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥ बादरपुढविकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६० ॥ बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥ बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥ सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥ सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६४ ॥ सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६५ ॥ सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६६ ॥ सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥ सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६८ ॥ सुहुमआउकाइया पज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६९ ॥ सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ७० ॥ अकाइया अणंतगुणा ॥ ७१ ॥

उनसे आरण-अच्युतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १७ ॥ उनसे आनत-प्राणतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १८ ॥ उनसे सप्तम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ १९ ॥ उनसे छठी

पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥२०॥ उनसे शतार-सहस्रारकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥२१॥ उनसे शुक्र-महाशुक्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २२ ॥ उनसे पंचम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २३ ॥ उनसे लान्तव-कापिष्ठकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २४ ॥ उनसे चतुर्थ पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥२५॥ उनसे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥२६॥ उनसे तृतीय पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २७ ॥ उनसे माहेन्द्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २८ ॥ उनसे सानत्कुमारकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥२९॥ उनसे द्वितीय पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ ३० ॥ उनसे मनुष्य अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ३१ ॥ उनसे ईशानकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३२ ॥ उनसे ईशानकल्पवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३३ ॥ उनसे सौधर्मकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥३४॥ उनसे सौधर्मकल्पवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥३५॥ उनसे प्रथम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ ३६ ॥ उनसे भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३७ ॥ उनसे भवनवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३८ ॥ उनसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९ ॥ उनसे वानव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४० ॥ उनसे वानव्यन्तर देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ४१ ॥ उनसे ज्योतिषी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४२ ॥ उनसे ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ४३ ॥ उनसे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ४४ ॥ उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ४५ ॥ उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ४६ ॥ उनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ४७ ॥ उनसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ४८ ॥ उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ४९ ॥ उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ५० ॥ उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ५१ ॥ उनसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५२ ॥ उनसे बादर निगोद जीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥५३॥ उनसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५४ ॥ उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५५ ॥ उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५६ ॥ उनसे बादर तेजकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५७ ॥ उनसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥५८॥ उनसे निगोद जीव बादर निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥५९॥ उनसे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ६० ॥ उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥ उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२ ॥ उनसे सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥ उनसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ६४ ॥ उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ६५ ॥ उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ६६ ॥ उनसे सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ६७ ॥ उनसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ६८ ॥ उनसे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ६९ ॥ उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त विशेष अधिक हैं ॥ ७० ॥ उनसे अकायिक अनन्तगुणे हैं ॥ ७१ ॥

बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ७२ ॥ बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥ बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७४ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७५ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥ सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७७ ॥ वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७८ ॥ णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ ७९ ॥

उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुणे हैं ॥ ७२ ॥ उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ७३ ॥ उनसे बादर वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥७४॥ उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ७५ ॥ उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ ७६ ॥ उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७७ ॥ उनसे वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७८ ॥ निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७९ ॥

॥ क्षुद्रकबान्ध समाप्त हुआ ॥ २ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स

तदियखंडो

३. बंध-सामित्त-विचओ

जो सो बंधसामित्तविचओ णाम तस्स इमो दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥१॥

जो वह बन्धस्वामित्वविचय है उसका यह निर्देश ओघ और आदेशकी अपेक्षासे दो प्रकारका है ॥ १ ॥

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगके निमित्तसे जो जीव एवं कर्मोंका एकत्वपरिणाम होता है उसे बन्ध कहते हैं। विचय, विचारणा, मीमांसा और परीक्षा ये समानार्थक शब्द हैं। चूंकि इस अनुयोगद्वारमें उक्त बन्धके स्वामियोंका विचार या मीमांसा की गई है, अतएव यह अनुयोगद्वार बन्ध-स्वामित्वविचय इस नामसे कहा जाता है। उस बन्ध-स्वामित्वविचयका यह निर्देश ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका है।

अब ओघकी अपेक्षा बन्धस्वामित्वका विचार करते हुए सर्वप्रथम चौदह गुणस्थान जाननेके योग्य हैं, यह सूचित करनेके लिये आगेका सूत्र आता है—

ओघेण बंधसामित्तविचयस्स चोद्दस जीवसमासाणि णादव्वाणि भवंति ॥ २ ॥

ओघकी अपेक्षा बन्धस्वामित्वविचयके विषयमें चौदह जीवसमास जानने योग्य हैं ॥ २ ॥

आगे उन्हीं चौदह जीवसमासोंका (गुणस्थानोंका) नामनिर्देश किया जाता है—

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा अणियट्टि-बादर-सांपराइयपइट्ठ-उवसमा खवा सुहुम-सांपराइय-पइट्ठउवसमा खवा उवसंत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था खीण-कसाय-वीयराय-छदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवली ॥ ३ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्त-

संयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक, अनिवृत्ति-बादर-साम्परायिक-प्रविष्ट उपशमक व क्षपक, सूक्ष्म-साम्परायिक-प्रविष्ट उपशमक व क्षपक, उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली; ये वे चौदह जीवसमास हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार चौदह जीवसमासोंके स्वरूपका स्मरण कराकर प्रकृत बन्धस्वामित्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

एदेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं पयडिबंधवोच्छेदो कादव्वो भवदि ॥ ४ ॥

इन चौदह जीवसमासोंसे सम्बन्धित प्रकृतिबन्धव्युच्छेद कहा जाता है ॥ ४ ॥

जिन प्रकृतियोंका जिस गुणस्थानमें बन्धव्युच्छेद होता है उसी गुणस्थान तक उनके बन्धक (बन्धस्वामी) हैं, उससे आगेके गुणस्थानोंमें उनका बन्ध नहीं होता है; यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये। तदनुसार यहां उन्हीं चौदह गुणस्थानोंके आश्रयसे कर्मप्रकृतियोंके बन्धका व्युच्छेद (विनाश) कहा जाता है।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं जसकित्ति-उच्चागोद-पंचण्हमंतराइयाण को बंधो को अबंधो ? ॥ ५ ॥

पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इन सोलह प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ५ ॥

'बन्ध' शब्दसे यहां बन्धकका (बन्धस्वामीका) अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये।

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुम-सांपराइय-सुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। सुहुम-सांपराइय-सुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्म-साम्परायिक-शुद्धिसंयत उपशमक व क्षपक तक उपर्युक्त जीव ज्ञानावरणीयादि सोलह प्रकृतियोंके बन्धक हैं। सूक्ष्म-साम्परायिक-शुद्धिसंयतके अन्तिम समयमें जाकर उनका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष जीव अबन्धक हैं ॥ ६ ॥

णिद्दाणिद्दा - पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थ-विहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ७ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान आदि चार संस्थान, वज्रनाराचसंहनन आदि चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इन पच्चीस प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ७ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ८ ॥

उपर्युक्त पचीस प्रकृतियोंके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ८ ॥

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ९ ॥

निद्रा और प्रचला इन दो दर्शनावरणीय प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ९ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट-शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरणकालके संख्यातवें भाग जाकर उनका बन्धव्युच्छेद होता है। ये बन्धक हैं, शेष जीव अबन्धक हैं ॥ १० ॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ११ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ११ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १२ ॥

सातावेदनीयके मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक हैं। सयोगिकेवलिकालके अन्तिम समयमें जाकर उसका बन्धव्युच्छेद होता है। इतने गुणस्थानवाले जीव उसके बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १२ ॥

असादावेदणीय - अरदि - सोग - अथिर - असुह - अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १३ ॥

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन छह प्रकृतियोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १३ ॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥१४॥

उक्त छह प्रकृतियोंके मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १४ ॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तीइंदिय - चउरिंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि - आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १५ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नारकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्म; इन सोलह प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १६ ॥

उक्त सोलह प्रकृतियोंके मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १६ ॥

अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोभ-मणुसगइ-ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसंघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १७ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया व लोभ, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभवज्रनाराचसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी; इन नौ प्रकृतियोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १७ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

उक्त प्रकृतियोंके मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १८ ॥

पच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १९ ॥

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया व लोभ; इन चार प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १९ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २० ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥२०॥

पुरिसवेद-कोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २१ ॥

पुरुषवेद और संज्वलन क्रोधका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २१ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादर-सांपराइय-पइट्ठउवसमा खवा बंधा । अणियट्टि-बादरद्धाए सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २२ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण-बादर-साम्परायिक-प्रविष्ट उपशामक एवं क्षपक तक बन्धक हैं । अनिवृत्ति-बादरकालके शेषमें संख्यात बहुभाग जाकर उनका बन्धव्युच्छेद होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २२ ॥

अभिप्राय यह है कि अन्तरकरणके करनेपर जो अनिवृत्तिकरणका काल शेष रहता है उसमें संख्यातका भाग देनेपर जो लब्ध हो उतने मात्र उक्त अनिवृत्तिकरणकालके शेष रह जानेपर पुरुषवेद और संज्वलनक्रोधका बन्ध व्युच्छिन्न होता है ।

माण-मायसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २३ ॥

संज्वलन मान और मायाका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ २३ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादरसांपराइयपविट्ठ-उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २४ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण-बादर-सांपरायिक-प्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बन्धक हैं। अनिवृत्ति-बादरकालके शेषके शेषमें संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष जीव अबन्धक हैं ॥ २४ ॥

अभिप्राय यह है कि संज्वलन क्रोधकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर जो अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातवें भाग मात्र शेष रहता है उसमेंसे संख्यात बहुभाग मात्र काल जाकर एक भाग मात्र कालके शेष रह जानेपर संज्वलन मानका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। तत्पश्चात् उसमेंसे भी संख्यात बहुभाग मात्र कालके बीत जानेपर संज्वलन मायाका बन्ध व्युच्छिन्न होता है।

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २५ ॥

संज्वलन लोभका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २५ ॥

मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि-बादरसांपराइय-पविट्ठ-उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्ति-बादर-साम्परायिक-प्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बन्धक हैं। अनिवृत्तिबादरकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २६ ॥

हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २७ ॥

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २७ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पविट्ठ-उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २८ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट-उपशमक और क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण-कालके अन्तिम समयमें जाकर उक्त प्रकृतियोंका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २८ ॥

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २९ ॥

मनुष्यायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २९ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३० ॥

मनुष्यायुके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ३० ॥

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ३१ ॥

देवायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३१ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अपमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३२ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत; ये उसे देवायुके बन्धक हैं। अप्रमत्तसंयतकालके संख्यातवें भाग जाकर उसका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ३२ ॥

देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि - अगुरुवलहुव - उवघाद - परघाद - उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ३३ ॥

देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण; इन नामकर्म प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३३ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३४ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभागोंको बिताकर इनका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ३५ ॥

आहारशरीर और आहारशरीरअंगोपांग नामकर्मोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ३५ ॥

अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३६ ॥

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण-प्रविष्ट उपशामक व क्षपक बन्धक हैं। अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभागोंको बिताकर उनका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥३६॥

तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ३७ ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ३७ ॥

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा बंधा । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट उपशामक और क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभागोंको बिताकर उसका बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ३८ ॥

अब यहां तीर्थंकर प्रकृतिके कारणोंके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणाम-गोदं कम्मं बंधंति ? ॥ ३९ ॥

कितने कारणोंसे जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्मको बांधते हैं ? ॥ ३९ ॥

तीर्थंकर प्रकृतिका चूंकि उच्चगोत्रके साथ अविनाभाव पाया जाता है, इसीलिये उसे यहां 'गोत्र' नामसे भी कहा गया है।

तत्थ इमेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणाम-गोदं कम्मं बंधंति ॥ ४० ॥

जीव वहां (मनुष्यगतिमें) इन सोलह कारणोंसे तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्मको बांधते हैं ॥

दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खण-लव-पडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगसंपण्णदाए यथाथामे तथातवे साहूणं पासुअपरिचागदाए साहूणं समाहिसंधारणाए साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए अरहंतभत्तीए बहुसुदभत्तीए पवयणभत्तीए पवयणवच्छलदाए पवयणप्पभावणदाए अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए, इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणाम-गोदं कम्मं बंधंति ॥४१॥

दर्शनविशुद्धता, विनयसंपन्नता, शील-व्रतोंमें निरतिचारिता, छह आवश्यकोंमें अपरिहीनता, क्षण-लवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसंपन्नता, यथाशक्ति-तथा-तप, साधुओंकी प्रासुकपरित्यागता, साधुओंकी समाधिसंधारणा, साधुओंकी वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, अरहंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना और अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता; इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्मको बांधते हैं ॥ ४१ ॥

१. दर्शनसे अभिप्राय यहां सम्यग्दर्शनका है। तीन मूढता, आठ शंकादि दोष, छह अनायतन और आठ मद; इन पच्चीस दोषोंसे रहित निर्मल सम्यग्दर्शनका नाम दर्शनविशुद्धता है।

२. विनय तीन प्रकारका है— ज्ञानविनय, दर्शनविनय और चारित्रविनय, इनमें बार बार ज्ञानके विषयमें उपयोगयुक्त रहना तथा बहुत श्रुतके ज्ञाता उपाध्यायादिकी व श्रुतकी भक्ति करना, इसका नाम ज्ञानविनय है। सर्वज्ञप्रतिपादित जीवादि तत्त्वोंका मूढतादि समस्त दोषोंसे

रहित निर्मल श्रद्धान करना, यह दर्शनविनय है। निर्दोष शील-व्रतोंका परिपालन करते हुए आवश्यकोंकी हानि न होने देनेका नाम चारित्रविनय है। इस तीन प्रकारके विनयकी परिपूर्णता ही विनयसम्पन्नता कही जाती है।

३. हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पापोंके परित्यागको व्रत तथा उन व्रतोंके रक्षणको शील कहा जाता है। मद्यपान करने, मांसभक्षण करने, एवं कषायादिका परित्याग न करनेको अतिचार कहते हैं। इन अतिचारोंसे रहित शील-व्रतोंका परिपालन करना, यह शीलव्रतेष्वनतिचारता (शील-व्रतोंमें अनतिचारता) कही जाती है।

४. समता, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग ये; छह आवश्यक हैं। मित्र व शत्रु आदि रूप इष्टानिष्ट पदार्थोंके विषयमें राग-द्वेषके परित्यागका नाम समता है। अतीत, अनागत और वर्तमान काल सम्बन्धी पांच परमेष्ठियोंमें भेद न करके 'णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं' इत्यादि वाक्योंके उच्चारणपूर्वक नमस्कार करनेको स्तव कहते हैं। ऋषभादि तीर्थंकर, भरतादि केवली तथा आचार्य एवं चैत्यालयादिका भेद करके उनका पृथक् पृथक् गुणानुस्मरण करते हुए शब्दोच्चारणपूर्वक जो नमस्कार किया जाता है उसे वंदना कहा जाता है। चौरासी लाख गुणोंसे सहित महाव्रतोंके विषयमें उत्पन्न हुए मलके दूर करनेको प्रतिक्रमण कहते हैं। महाव्रतोंका विनाश अथवा उन्हें दूषित करनेवाले कारण न उत्पन्न हो सकें, ऐसा मैं करूंगा; इस प्रकार मनसे आलोचना करके चौरासी लाख व्रतोंकी शुद्धिको ग्रहण करना, यह प्रत्याख्यान कहलाता है। शरीर व आहारकी ओरसे मन एवं वचनकी प्रवृत्तिको हटाकर चित्तको एकाग्रतापूर्वक ध्येय वस्तुकी ओर लगाना, इसे व्युत्सर्ग कहा जाता है। इस प्रकारके इन छह आवश्यकोंकी परिपूर्णताका नाम आवश्यकापरिहीनता है।

५. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं व्रत-शीलादिविषयक मलको दूर करके उन्हें सदा निर्मल रखनेका नाम क्षण-लवप्रतिबोधनता है।

६. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिका नाम लब्धि और इससे होनेवाले हर्षका नाम संवेग है। इस लब्धिरूप सम्पत्तिकी पूर्णताका नाम लब्धिसम्पन्नता है।

७. थामका अर्थ बल-वीर्य होता है। अत एव अपने बल-वीर्यके अनुसार बाह्य एवं अभ्यन्तर दोनों प्रकारके तपके आचरणको यथाथाम-तथातप (शक्तितस्तप) कहा जाता है।

८. अनन्तज्ञान-दर्शनादिके साधनेमें तत्पर रहनेवाले महात्मा साधु कहलाते हैं; जिन सम्यग्दर्शनादिके निमित्तसे आस्रव नष्ट होते हैं उनका साधुओंके लिये परित्याग (दान) करना, यह साधुओंकी प्रासुकपरित्यागता कहलाती है। अभिप्राय यह कि दयाभावसे साधुओंके लिये रत्नत्रयका प्रदान करना, यह साधुओंके लिये प्रासुकपरित्याग कहा जाता है। यह महर्षियोंके ही सम्भव है, गृहस्थोंके सम्भव नहीं है।

९. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमें अवस्थित होनेका नाम समाधि है। उसको समीचीन रीतिसे धारण करना या सिद्ध करना, यह साधुओंकी समाधिसंधारणता है।

१०. आपद्ग्रस्त साधुके विषयमें जो परिचर्या आदि की जाती है उसका नाम वैयावृत्य है। जीव जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अर्हद्भक्ति एवं प्रवचनवत्सलता आदिसे संयुक्त होता हुआ वैयावृत्यमें प्रवृत्त होता है, यह साधुओंकी वैयावृत्ययोगयुक्तता कहलाती है।

११. जो घातिचतुष्टयको अथवा आठों ही कर्मोंको नष्ट करके समस्त पदार्थोंके ज्ञाता द्रष्टा हो चुके हैं वे (सकल व निकल परमात्मा) अरहंत कहलाते हैं। उनमें भक्ति रखना— तदुपदिष्ट अनुष्ठानमें प्रवृत्त होना, इसे अरहंतभक्ति कहते हैं।

१२. बारह अंगोंके पारगामी बहुश्रुत कहलाते हैं। उनमें भक्ति रखना—उनके द्वारा कथित आगमार्थका चिन्तन करना, यह बहुश्रुतभक्ति कहलाती है।

१३. 'प्र' का अर्थ प्रकृष्ट या श्रेष्ठ (सर्वज्ञ) होता है, उस प्रकृष्ट अर्थात् सर्वज्ञका जो वचन (वाणी) है वह प्रवचन कहा जाता है। इस निरुक्तिके अनुसार सिद्धान्त या बारह अंगोंको प्रवचन समझना चाहिये। इस प्रवचनमें भक्ति रखना—उसमें प्ररूपित क्रियाओंका अनुष्ठान करना, इसे प्रवचनभक्ति कहा जाता है।

१४. बारह अंगस्वरूप प्रवचनमें होनेवाले देशव्रती, महाव्रती एवं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंको भी प्रवचन कहा जाता है। उनमें अनुराग रखनेका नाम प्रवचनवत्सलता है।

१५. आगमार्थका नाम प्रवचन है। उसकी कीर्तिको विस्तृत करना या बढ़ाना यह प्रवचनप्रभावनता कहलाती है।

१६. अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णका अर्थ 'बार बार' तथा ज्ञानोपयोगका अर्थ भावश्रुत और द्रव्यश्रुत होता है। इस दोनों प्रकारके श्रुतमें निरन्तर उद्युक्त रहना, इसे अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता समझनी चाहिये।

इन सोलह कारणोंसे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा पृथक् पृथक् एक एक कारणमें भी चूंकि अन्य सब कारणोंका अन्तर्भाव होता है, अत एव एक एक कारणसे भी उक्त तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध माना गया है। अथवा, सम्यग्दर्शनके होनेपर शेष पन्द्रह कारणोंमें एक दो आदि अन्य कारणोंका भी संयोग होनेपर उस तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है, ऐसा समझना चाहिये।

जस्स इणं तित्थयरणाम-गोदकम्मस्स उदएण सदेवासुर-माणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्जा पूजणिज्जा वंदणिज्जा णमंसणिज्जा णेदारा धम्म-तित्थयरा जिणा केवलिणो हवंति ॥ ४२ ॥

जिन जीवोंके इस तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्मका उदय होता है वे उसके उदयसे देव, असुर और मनुष्य लोकके अर्चनीय, पूजनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, नेता, धर्म-तीर्थके कर्ता, जिन व केवली होते हैं ॥ ४२ ॥

जल, चन्दन, पुष्प, नैवेद्य एवं फल आदिके द्वारा अपनी भक्तिको प्रकाशित करना; इसका नाम अर्चा है। उक्त द्रव्योंके साथ इन्द्रध्वज, कल्पवृक्ष व महामह आदि विशेष यज्ञोंके अनुष्ठानको पूजा कहा जाता है। हे भगवन्! आप आठ कर्मोंसे रहित व केवलज्ञानसे समस्त चराचर लोकके ज्ञाता द्रष्टा हैं, इस प्रकारकी प्रशंसाका नाम वंदना है। पांच अंगोंसे जिनेन्द्रके चरणोंमें गिरना, यह नमस्कार कहलाता है। रत्नत्रयस्वरूप धर्मसे चूंकि संसाररूप समुद्रको तरा जाता है, अतएव वह तीर्थ कहा जाता है। इस धर्म-तीर्थके कर्ता जिन, केवली व नेता हुआ करते हैं; यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु पंचणाणावरण-छदंसणावरण-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ४३ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अंतराय; इन कर्मोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ४३ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥४४॥

मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ ४४ ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ४५ ॥

निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद,

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, न्यग्रोधपरिमण्डल आदि चार संस्थान, वज्रनाराच आदि चार संहनन, तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इन प्रकृतियोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ४५ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ४६ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष नारकी अबन्धक हैं ॥

मिच्छत्त - णवुंसयवेद - हुंडसंठाण - असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ४७ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ४७ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ४८ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष नारकी अबन्धक हैं ॥ ४८ ॥

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ४९ ॥

मनुष्यायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ४९ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष नारकी अबन्धक हैं ॥ ५० ॥

तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ५१ ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ५१ ॥

असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ५२ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष नारकी अबन्धक हैं ॥ ५२ ॥

एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेयव्वं ॥ ५३ ॥

इस प्रकार बन्धकी यह व्यवस्था उपरिम तीन पृथिवियोंमें भी जानना चाहिये ॥ ५३ ॥

चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए पुढवीए एवं चेव णेदव्वं । णवरि विसेसो तित्थयरं णत्थि ॥ ५४ ॥

चौथी, पांचवीं और छठी पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिये । विशेषता केवल यह है कि इन पृथिवियोंमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्भव नहीं है ॥ ५४ ॥

सत्तमाए पुढवीए णेरइया पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग - भय - दुगुंछा-पंचिंदियजादि - ओरालिय-तेजा - कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग - वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास - अगुरुवलहुव-

उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर [-सुहा] सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥

सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ५५ ॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ५७ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, न्यग्रोधपरिमण्डल आदि चार संस्थान, वज्रनाराच आदि चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इन प्रकृतियोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ५७ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ५८ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ५८ ॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-तिरिक्खाउ-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ५९ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन; इन प्रकृतियोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ५९ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ६० ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ६० ॥

मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उच्चागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ६१ ॥

मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ६१ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ६२ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥६२॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय - सादासाद-अट्ठकसाय - पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा - कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस - बादर-पज्जत्त -पत्तेयसरीर-[थिरा] थिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति - णिमिण - उच्चागोद - पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ६३ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असातावेदनीय, आठ कसाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र, और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ६३ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ ६४ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं है ॥६४॥

णिद्दाणिद्दा - पयलापयला - थीणगिद्धि - अणंताणुबंधि - कोध - माण - माया - लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-मणुसाउ -तिरिक्खगइ - मणुसगइ - ओरालियसरीर-चउसंठाण - ओरालिय-सरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि - उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ६५ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पांच संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ६५ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ६६ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ६६ ॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय- चउरिंदियजादि-हुंडसंठाण - असंपत्तसेवट्टसंघडण - णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि - आदाव -थावर-सुहुम - अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ६७ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नारकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्मोंका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ६७ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ६८ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष तिर्यंच अबन्धक हैं ॥ ६८ ॥

अपच्चक्खाणकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ६९ ॥

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ?॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ७१ ॥

देवायुका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ७१ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ७२ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ७२ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-तिरिक्खाउ-मणुस्साउ-तिरिक्खगइ-मणुस्सगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-छसंघडण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइ-मणुस्सगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदावुज्जोव-दोविहायगइ-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-[दुभग-] सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ७३ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गति व मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगतियां, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, [दुर्भग,] सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ७३ ॥

सव्वे एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ ७४ ॥

ये सब ही उनके बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ ७४ ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि विसेसो, बेट्ठाणी अपच्चक्खाणावरणीयं जधा पंचिंदियतिरिक्खभंगो ॥ ७५ ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त एवं मनुष्यनियोंमें तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान जानना चाहिये। विशेषता इतनी है कि निद्रानिद्रा आदि द्विस्थानिक प्रकृतियों और अप्रत्याख्यानावरणीयचतुष्ककी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है ॥ ७५ ॥

मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ॥ ७६ ॥

मनुष्य अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ॥ ७६ ॥

देवगदीए देवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसाणुपुव्वि-अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ७७ ॥

देवगतिमें देवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है? ॥७७॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥७८॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ७९ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है? ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ८० ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष देव अबन्धक हैं ॥८०॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-एइंदियजादि-हुंडसंठाण - असंपत्तसेवट्टसंघडण - आदाव-थावर-णामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ८१ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, आताप और स्थावर; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ८१ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ८२ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ८२ ॥

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ८३ ॥

मनुष्यायुका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ८३ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष देव अबन्धक हैं ॥ ८४ ॥

तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ८५ ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ८५ ॥

असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ८६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि देव बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष देव अबन्धक हैं ॥ ८६ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं देवभंगो । णवरि विससो, तित्थयरं णत्थि ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी प्ररूपणा सामान्य देवोंके समान है । विशेषता केवल यह है कि इन देवोंके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है ॥ ८७ ॥

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवाणं देवभंगो ॥ ८८ ॥

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देवोंकी प्ररूपणा सामान्य देवोंके समान है ॥ ८८ ॥

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवाणं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं भंगो ॥ ८९ ॥

सानत्कुमार कल्पसे लेकर शतार-सहस्रारकल्पवासी देवों तककी प्ररूपणा प्रथम पृथिवीके नारकियोंके समान है ॥ ८९ ॥

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु पंचणाणावरणीय - छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि- [अरदि-] सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ - पंचिंदिय-जादि-ओरालिय - तेजा - कम्मइयसरीर - समचउरससंठाण -ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसह-

संघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव - उवघाद-परघाद - उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग -सुस्सर - आदेज्ज-जस-कित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ९० ॥

आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक विमानवासी देवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, [अरति,] शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ९० ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ ९१ ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ - इत्थिवेद-चउसंठाण-चउसंघडण-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ९२ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ९२ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ९३ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष देव अबन्धक हैं ॥

मिच्छत्त - णवुंसयवेद - हुंडसंठाण - असंपत्तसेवट्टसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ९४ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ९४ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ९५ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष देव अबन्धक हैं ॥ ९५ ॥

मणुस्साउस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ९६ ॥

मनुष्यायुका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ९६ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ९७ ॥

तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ९८ ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ९८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ९९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ९९ ॥

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुस्साउ-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥१००॥

अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा-मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १०० ॥

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १०१ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं। ॥ १०१ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ॥१०२॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त व अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त व अपर्याप्त, और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त; इनकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ॥ १०२ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १०३ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १०३ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइय-सुद्धि-संजदेसु उवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइय-सुद्धि-संजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १०४ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतोंमें उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १०४ ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थ-विहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १०५ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १०६ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥१०६॥

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १०७ ॥

निद्रा और प्रचलाका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १०७ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पविट्ठ-सुद्धि-संजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणसंजदद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १०८ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट-शुद्धि-संयतोंमें उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण-संयतकालके संख्यातवें भाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १०८ ॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १०९ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १०९ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ११० ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक हैं। सयोगिकेवलिकालके अन्तिम समयमें

अक्षर बन्धव्युच्छेद होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ११० ॥

असादावेदणीय - अरदि - सोग - अथिर - असुह - अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १११ ॥

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १११ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदो त्ति बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥११२॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-णिरयाणुपुव्वी-आदाव-थावर - सुहुम - अपज्जत्त - साहारणसरीर-णामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ११३ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नारकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ११३ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ११४ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ११४ ॥

अपच्चक्खाणावरणीयकोध - माण-माया - लोभ - मणुसगइ - ओरालियसरीर - ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडण - मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ११५ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया व लोभ, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ११५ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

पच्चक्खाणावरणकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ११७ ॥

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥११८॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥११८॥

पुरिसवेद-कोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ११९ ॥

पुरुषवेद और संज्वलन क्रोधका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ ११९ ॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि-बादर-सांपराइय-पविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे संखेज्जाभागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १२० ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण-बादर-साम्परायिक-प्रविष्ट उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं ? अनिवृत्तिकरण-बादर-कालके शेषमें संख्यात बहुभागोंके बीत जानेपर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १२० ॥

माण-मायासंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १२१ ॥

संज्वलन मान और मायाका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १२१ ॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टि-बादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १२२ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। अनिवृत्ति-बादर-कालके शेषके शेषमें संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १२३ ॥

संज्वलन लोभका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १२३ ॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टि-बादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १२४ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। अनिवृत्तिकरण-बादरकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥१२४॥

हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १२५ ॥

हास्य, रति, भय और जुगुप्साका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥१२५॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पविट्ठ-उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १२६ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण-कालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १२६ ॥

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १२७ ॥

मनुष्यायुका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १२७ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १२८ ॥

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १२९ ॥

देवायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १२९ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्त-संजदा बंधा । अप्पमत्तद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १३० ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयत बन्धक हैं । अप्रमत्तकालके संख्यातवें भाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १३० ॥

देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय - तेजा - कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण - वेउव्विय-सरीरअंगोवंग - वण्ण - गंध - रस - फास - देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास - पसत्थविहायगइ - तस - बादर - पज्जत्त - पत्तेयसरीर - थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १३१ ॥

देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रि-यिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण नामकर्म; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १३१ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा बंधा । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १३२ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं । अपूर्वकरण-कालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥१३२॥

आहारसरीर-आहारअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १३३ ॥

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्मोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १३३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा बंधा । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १३४ ॥

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशामक व क्षपक बन्धक हैं । अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १३४ ॥

तित्थयरणामाए को बंधो को अबंधो ? ॥ १३५ ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १३५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा बंधा । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १३६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बन्धक हैं । अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ताणं च पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो ॥ १३७ ॥

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और निगोद जीव; ये बादर, सूक्ष्म और इनके पर्याप्त व अपर्याप्त तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ॥ १३७ ॥

तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं सो चेव भंगो । णवरि विसेसो, मणुस्साउ-मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उच्चागोदं णत्थि ॥ १३८ ॥

तेजकायिक और वायुकायिक एवं इनके बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त व अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके ही समान है । विशेषता केवल यह है कि मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र ये प्रकृतियां इनके सम्भव नहीं हैं ॥ १३८ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताणमोघं णेदव्वं जाव तित्थयरे त्ति ॥ १३९ ॥

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तोंकी तीर्थंकर प्रकृति तक प्रकृत प्ररूपणा ओघके समान जानना चाहिये ॥ १३९ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरे त्ति ॥ १४० ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी और काययोगियोंमें तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान जानना चाहिये ॥ १४० ॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १४१ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं है ॥ १४१ ॥

ओरालियकायजोगीणं मणुसगइभंगो ॥ १४२ ॥

औदारिककाययोगियोंकी प्ररूपणा मनुष्यगतिके समान है ॥ १४२ ॥

णवरि विसेसो, सादावेदणीयस्स मणजोगिभंगो ॥ १४३ ॥

विशेषता यह है कि सातावेदनीयकी प्ररूपणा मनोयोगियोंके समान है ॥ १४३ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-असादावेदणीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १४४ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १४५ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १४५ ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-ओरालियसरीर-चउसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १४६ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पांच संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १४६ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १४७ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १४७ ॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १४८ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १४८ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १४९ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १४९ ॥

मिच्छत्त-णउंसयवेद-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-चदुजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १५० ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, मनुष्यायु, चार जातियां, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १५० ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १५१ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १५१ ॥

देवगइ - वेउव्वियसरीर - वेउव्वियसरीरअंगोवंग - देवगइपाओग्गाणुपुव्वी - तित्थयर-णामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १५२ ॥

देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १५२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १५३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १५३ ॥

वेउव्वियकायजोगीणं देवगईए भंगो ॥ १५४ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंकी प्ररूपणा देवगतिके समान है ॥ १५४ ॥

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं देवगइभंगो ॥ १५५ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा देवगतिके समान है ॥ १५५ ॥

णवरि विसेसो, बेट्ठाणियासु तिरिक्खाउअं णत्थि मणुस्साउअं णत्थि ॥ १५६ ॥

विशेषता केवल इतनी है कि द्विस्थानिक प्रकृतियोंमें तिर्यगायु नहीं है और मनुष्यायु भी नहीं है ॥ १५६ ॥

आहारकायजोगि - आहारमिस्सकायजोगीसु पंचणाणावरणीय - छदंसणावरणीय-सादासाद-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा - देवाउ - देवगइ - पंचिंदिय-जादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद - उस्सास - पसत्थविहायगइ - तस - बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति - णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १५७ ॥

आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १५७ ॥

पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १५८ ॥

प्रमत्तसंयत बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १५८ ॥

कम्मइयकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-असादावेदनीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइ-पाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १५९ ॥

कार्मणकाययोगियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय-जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १६० ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १६१ ॥

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १६१ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १६२ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥१६२॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १६३ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १६३ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १६४ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १६४ ॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-चउजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १६५ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, चार जातियां, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १६६ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १६६ ॥

देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरंगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १६७ ॥

देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक हैं ? ॥ १६७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १६८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १६८ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णवुंसयवेदेसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ १६९ ॥.

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १७० ॥

वेट्ठाणी ओघं ॥ १७१ ॥

द्विस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७१ ॥

द्विस्थानिक पदसे यहां मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें बन्धकी योग्यतासे अवस्थित प्रकृतियोंको ग्रहण किया गया है।

णिद्दा य पयला य ओघं ॥ १७२ ॥

निद्रा और प्रचला प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७२ ॥

असादावेदणीयमोघं ॥ १७३ ॥

आसातावेदनीयकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७३ ॥

एक्कट्ठाणी ओघं ॥ १७४ ॥

एकस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७४ ॥

एक मात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जो प्रकृतियां बन्धयोग्य होकर स्थित हैं उनकी एकस्थानिक संज्ञा है। उन एकस्थानिकोंकी प्ररूपणा ओघके समान जानना चाहिये।

अपच्चक्खाणावरणीयमोघं ॥ १७५ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीयकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७५ ॥

पच्चक्खाणावरणीयमोघं ॥ १७६ ॥

प्रत्याख्यानावरणीयकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७६ ॥

हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं ॥ १७७ ॥

हास्य व रतिसे लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक जो प्रकृतियां हैं इनकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७७ ॥

अवगदवेदएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १७८ ॥

अपगतवेदियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १७८ ॥

अणियट्टिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥१७९॥

अनिवृत्तिकरणसे लेकर सूक्ष्म-साम्परायिक उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। सूक्ष्म-साम्परायिक-शुद्धिसंयतकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १७९ ॥

सादावेदणीयस्स को अबंधो ? ॥ १८० ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १८० ॥

अणियट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा । सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १८१ ॥

अनिवृत्तिकरणसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक हैं । सयोगकेवलिकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १८१ ॥

कोधसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १८२ ॥

संज्वलन क्रोधका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १८२ ॥

अणियट्टी उवसमा खवा बंधा । अणियट्टिबादरद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १८३ ॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती उपशमक व क्षपक बन्धक हैं । बादर अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १८३ ॥

माण-मायासंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १८४ ॥

संज्वलन मान और मायाका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १८४ ॥

अणियट्टी उवसमा खवा बंधा । अणियट्टिबादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १८५ ॥

अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक बन्धक हैं । अनिवृत्तिकरण-बादर-कालके शेष रहे कालके शेषमें भी संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ १८६ ॥

संज्वलन लोभका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १८६ ॥

अणियट्टी उवसमा खवा बंधा । अणियट्टि-बादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ १८७ ॥

अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक बन्धक हैं । बादर-अनिवृत्तिकरणकालके अन्तिम समयको जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ १८७ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाईसु पंचणाणावरणीय-[चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-] चदुसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १८८ ॥

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, [चार दर्शनावरणीय, साता-वेदनीय,] चार संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ १८८ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १८९ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके उपशमक और क्षपक तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १८९ ॥

बेट्ठाणी ओघं ॥ १९० ॥

स्त्यानगृद्धि आदि द्विस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९० ॥

जाव पच्चक्खाणावरणीयमोघं ॥ १९१ ॥

प्रत्याख्यानावरणीय तक सब प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९१ ॥

पुरिसवेदे ओघं ॥ १९२ ॥

पुरुषवेदकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९२ ॥

हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं ॥ १९३ ॥

हास्य व रतिसे लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान प्ररूपणा है ॥ १९३ ॥

माणकसाईसु पंचणाणावरणीय - चउदंसणावरणीय - सादावेदणीय - तिण्णिसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १९४ ॥

मानकषायी जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मान आदि तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १९५ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १९५ ॥

बेट्ठाणि जाव पुरिसवेद-कोधसंजलणाणमोघं ॥ १९६ ॥

द्विस्थानिक प्रकृतियोंको आदि लेकर पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध तक ओघके समान प्ररूपणा है ॥ १९६ ॥

हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं ॥ १९७ ॥

हास्य व रतिसे लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान प्ररूपणा है ॥ १९७ ॥

मायकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-दोण्णिसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ १९८ ॥

मायाकषायी जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, माया व लोभ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ १९९ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ १९९ ॥

बेट्ठाणि जाव माणसंजलणे त्ति ओघं ॥ २०० ॥

द्विस्थानिक प्रकृतियोंको लेकर संज्वलन मान तक ओघके समान प्ररूपणा है ॥ २०० ॥

हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं ॥ २०१ ॥

हास्य व रतिसे लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान प्ररूपणा है ॥ २०१ ॥

लोभकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २०२ ॥

लोभकषायी जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका कौन बन्धक हैं और कौन अबन्धक है ? ॥ २०२ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २०३ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २०३ ॥

सेसं जाव तित्थयरे त्ति ओघं ॥ २०४ ॥

तीर्थंकर प्रकृति तक शेष प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २०४ ॥

अकसाईसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २०५ ॥

अकषायी जीवोंमें सातावेदनीयका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ २०५ ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ और सयोगकेवली बन्धक हैं। सयोगकेवलिकालके अन्तिम समयको जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २०६ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि - सुदअण्णाणि - विभंगणाणीसु पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-सोलसकसाय-अट्ठणोकसाय-तिरिक्खाउ-मणुसाउ- देवाउ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर - पंचसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणु-

पुव्वि-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोव-दोविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २०७ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, पांच संस्थान, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग; पांच संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गति, मनुष्यगति व देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगतियां, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीच व ऊंच गोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २०७ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २०८ ॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥२०८॥

एक्कट्ठाणी ओघं ॥ २०९ ॥

एकस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २०९ ॥

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २१० ॥

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २१० ॥

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा । सुहुमसांपराइय-अद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २११ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक व क्षपक तक बन्धक हैं। सूक्ष्म-साम्परायिककालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

णिद्दा य पयला य ओघं ॥ २१२ ॥

निद्रा और प्रचलाकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २१२ ॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २१३ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २१३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २१४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं है ॥ २१४ ॥

सेसमोघं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि त्ति भाणिदव्वं ॥

असातावेदनीय आदि तीर्थंकर प्रकृति तक शेष प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेषता केवल इतनी है कि उनके बन्धकोंकी प्ररूपणामें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर, ऐसा कहना चाहिये ॥ २१५ ॥

इसका कारण यह है कि यहां जिन आभिनिबोधिक आदि तीन ज्ञानोंका प्रकरण है वे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे नीचेके गुणस्थानोंमें नहीं पाये जाते हैं।

मणपज्जवणाणीसु पंचणाणावरणीय - चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २१६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २१६ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइयसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २१७ ॥

प्रमत्तसंयतसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक-संयतकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २१८ ॥

निद्रा और प्रचलाका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २१८ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अपुव्वकरण-पइट्ठ-उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २१९ ॥

प्रमत्तसंयतसे लेकर अपूर्वकरण-प्रविष्ट उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण-कालके संख्यातवें भाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं शेष अबन्धक हैं ॥ २१९ ॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २२० ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २२० ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २२१ ॥

प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २२१ ॥

सेसमोघं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि पमत्तसंजदप्पहुडि त्ति भाणिदव्वं ॥२२२॥

तीर्थंकर प्रकृति तक शेष प्रकृतियोंके बन्धाबन्धकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेषता यह है कि उनकी प्ररूपणामें 'प्रमत्तसंयतसे लेकर' ऐसा कहना चाहिये ॥ २२२ ॥

इसका कारण यह है कि प्रकृत मनःपर्ययज्ञान प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे नीचे सम्भव नहीं है।

केवलणाणीसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २२३ ॥

केवलज्ञानियोंमें सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २२३ ॥

सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २२४ ॥

सयोगकेवली बन्धक हैं। सयोगकेवलीकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २२४ ॥

संजमाणुवादेण संजदेसु मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २२५ ॥

संयममार्गणानुसार संयत जीवोंमें प्रकृत प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥२२५॥

णवरि विसेसो, सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २२६ ॥

विशेषता इतनी है कि सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २२७ ॥

प्रमत्तसंयतसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक हैं। सयोगकेवलीकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २२७ ॥

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धि-संजदेसु पंचणाणावरणीय-[चउदंसणावरणीय]-सादावेदणीय-लोभसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २२८ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयतोंमें पांच ज्ञानावरणीय [चार दर्शनावरणीय,] सातावेदनीय, संज्वलनलोभ, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २२८ ॥

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥

प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक व क्षपक तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २२९ ॥

सेसं मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २३० ॥

शेष प्रकृतियोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २३० ॥

परिहारसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्वियसरीरंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास - देवाणुपुव्वि - अगुरुअलहुअ - उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगदि-तस - बादर-पज्जत्त - पत्तेयसरीर-थिर- सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २३१ ॥

परिहारशुद्धिसंयतोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २३१ ॥

पमत्त-अप्पमत्त संजदा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २३२ ॥

प्रमत्त और अप्रमत्त संयत बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २३२ ॥

असादावेदणीय - अरदि - सोग - अथिर - असुह - अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २३३ ॥

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २३३ ॥

पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २३४ ॥

प्रमत्तसंयत तक बन्धक है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २३४ ॥

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २३५ ॥

देवायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २३५ ॥

पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा । अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २३६ ॥

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत बन्धक हैं । अप्रमत्तसंयतकालका संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २३६ ॥

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २३७ ॥

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्मका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥

अप्पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २३८ ॥

अप्रमत्तसंयत बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २३८ ॥

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-जस-कित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २३९ ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयतोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥२३९॥

सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २४० ॥

सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥

जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदेसु सादावेदनीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥२४१॥

यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयतोंमें सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

उवसंतकसाय-वीदराग-छदुमत्था खीणकसाय-वीयराग-छदुमत्था सजोगिकेवली बंधा । सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण [बंधो] वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २४२ ॥

उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ और सयोगिकेवली बन्धक हैं । सयोगकेवलीकालके अन्तिम समयमें जाकर [बन्ध] व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २४२ ॥

संजदासंजदेसु पंचणाणावरणीय - छदंसणावरणीय-सादासाद-अट्ठकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवाउ-देवगइ - पंचिंदियजादि - वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण - वेउव्वियसरीरअंगोवंग - वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइ - पाओग्गाणुपुव्वी-अगुरु-वलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थ विहायगइ - तस-बादर - पज्जत्त - पत्तेयसरीर - थिराथिर सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २४३ ॥

संयतासंयतोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, असातावेदनीय, आठकषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २४३ ॥

संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २४४ ॥

संयतासंयत बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं है ॥ २४४ ॥

असंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-वेउव्वियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २४५ ॥

असंयतोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण ये चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगति व देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुअलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ॥ २४५ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा । एदे बंधा, अबंधा, णत्थि ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २४६ ॥

बेट्ठाणी ओघं ॥ २४७ ॥

द्विस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २४७ ॥

एक्कट्ठाणी ओघं ॥ २४८ ॥

एकस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २४८ ॥

मणुस्साउ-देवाउआणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २४९ ॥

मनुष्यायु और देवायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २४९ ॥

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २५० ॥

तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २५१ ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक और कौन अबन्धक है ? ॥ २५१ ॥

असंजदसम्माइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २५२ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २५२ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीणमोघं णेदव्वं जाव तित्थयरे त्ति ॥

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २५३ ॥

णवरि विसेसो, सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २५४ ॥

इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २५५ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २५५ ॥

ओहिदंसणी ओहिणाणि भंगो ॥२५६॥ केवलदंसणी केवलणाणि भंगो ॥२५७॥

अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २५६ ॥ केवलदर्शनियोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २५७ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमसंजदभंगो ॥ २५८ ॥

लेश्यामार्गणानुसार कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले और कापोत लेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है ॥ २५८ ॥

तेउलेस्सिय - पम्मलेसिएसु पंचणाणावरणीय - छदंसणावरणीय - सादावेदणीय-चउ-संजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय - तेजा - कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण - वेउव्वियसरीरअंगोवंग - वण्ण - गंध - रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरु-अलहुअ-उवघाद-परघादुस्सास पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २५९ ॥

तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २५९ ॥

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥२६०॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥

वेदगाणी ओघं ॥ २६१ ॥ असादावेदणीयमोघं ॥ २६२ ॥

द्विस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६१ ॥ असातावेदनीयकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६२ ॥

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-एइंदियजादि - हुंडसंठाण - असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-णामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २६३ ॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, आताप और स्थावर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २६३ ॥

मिच्छाइट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २६४ ॥

मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २६४ ॥

अपच्चक्खाणावरणीयमोघं ॥ २६५ ॥ पच्चक्खाण चउक्कमोघं ॥ २६६ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीयचतुष्ककी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६५ ॥ प्रत्याख्यानावरण-चतुष्ककी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २६६ ॥

मणुस्साउअस्स ओघभंगो ॥ २६७ ॥ देवाउअस्स ओघभंगो ॥ २६८ ॥

मनुष्यायुकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥२६७॥ देवायुकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? अप्पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २६९ ॥

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? अप्रमत्तसंयत बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २६९ ॥

तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ? असंजदसम्माइट्ठी जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २७० ॥

तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २७० ॥

पम्मलेस्सिएसु मिच्छत्तदंडओ णेरइयभंगो ॥ २७१ ॥

पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यात्वदण्डककी प्ररूपणा नारकियोंके समान है ॥ २७१ ॥

सुक्कलेस्सिएसु जाव तित्थयरे त्ति ओघभंगो ॥ २७२ ॥

शुक्लेश्यावाले जीवोंमें तीर्थंकर प्रकृति तक ओघके समान प्ररूपणा है ॥ २७२ ॥

णवरि विसेसो, सादावेदणीयस्स मणजोगिभंगो ॥ २७३ ॥

विशेषता इतनी है कि सातावेदनीयकी प्ररूपणा मनोयोगियोंके समान है ॥ २७३ ॥

बेट्ठाणि-एक्कट्ठाणीणं णवगेवज्जविमाणवासियदेवाणंभंगो ॥ २७४ ॥

द्विस्थानिक और एकस्थानिक प्रकृतियोंकी प्ररूपणा नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंके समान है ॥ २७४ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धियाणमोघं ॥ २७५ ॥

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २७५ ॥

अभवसिद्धिएसु पंचणाणावरणीय - णवदंसणावरणीय - सादासाद - मिच्छत्त-सोलस-कसाय-णवणोकसाय - चदुआउ - चदुगइ - पंचजादि - ओरालिय - वेउव्विय - तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियअंगोवंग - छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास - चत्तारिआणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदावुज्जोव - दोविहायगइ - तस-बादर - थावर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर - थिराथिर-सुहासुह - सुभग-दुभग-सुस्सर - दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, चार आयु, चार गतियां, पांच जातियां, औदारिक, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक व वैक्रियिक अंगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगतियां, त्रस, बादर, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीच व उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २७६ ॥

सव्वे एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २७७ ॥

ये सभी बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २७७ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठीसु खइयसम्माइट्ठीसु आभिणिबोहियणाणिभंगो ॥२७८॥

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रकृत प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है ॥ २७८ ॥

णवरि सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २७९ ॥

विशेषता यह है कि सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥२७९॥

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा, सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २८० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक बन्धक हैं, सजोगकेवलीकालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है ? ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २८० ॥

वेदयसम्मादिट्ठीसु पंचणाणावरणीय - छदंसणावरणीय - सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा - कम्मइयसरीर-समच-

उरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ती-णिमिण-तित्थयरुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २८१ ॥

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें पांच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय; इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २८१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं । अबन्धक नहीं हैं ॥ २८२ ॥

असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २८३ ॥

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, और अयशःकीर्ति नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २८३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २८४ ॥

अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोह-मणुस्साउ-मणुसगइ-ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसाणुपुव्वीणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया व लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन और मनुष्यानुपूर्वी नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २८५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २८६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष, अबन्धक हैं ॥ २८६ ॥

पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २८७ ॥

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २८७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥२८८॥

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २८९ ॥

देवायुका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २८९ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा । अप्पमत्तद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २९० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं। अप्रमत्तकालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ? ॥ २९० ॥

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २९१ ॥

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्मोंका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २९१ ॥

अप्पमत्तसंजदा बंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २९२ ॥

अप्रमत्तसंयत बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ २९२ ॥

उवसमसम्मादिट्ठीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २९३ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २९३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा बंधा । सुहुमसांपराइय-उवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २९४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक तक बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमककालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २९५ ॥

निद्रा और प्रचलाका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २९५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा । अपुव्वकरणउवसमद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ २९६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण उपशमक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण उपशम-कालका संख्यातवां भाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥२९६॥

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ २९७ ॥

सातावेदनीयका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २९७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीयराग-छदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि ॥ २९८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं ॥ २९८ ॥

असादावेदणीय - अरदि - सोग - अथिर - असुह - अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ २९९ ॥

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, और अयशःकीर्ति नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ २९९ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तक बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ३०० ॥

अपच्चक्खाणावरणीयमोहिणाणिभंगो ॥ ३०१ ॥ णवरि आउवं णत्थि ॥ ३०२ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीय चतुष्क आदिकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३०१ ॥ विशेष इतना है कि उनके आयुकर्मका बन्ध सम्भव नहीं है ॥ ३०२ ॥

पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ३०३ ॥

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ॥ ३०३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३०४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥३०४॥

पुरिसवेद-कोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ३०५ ॥

पुरुषवेद और संज्वलनक्रोधका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३०५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टिउवसमद्धाए सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३०६ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक तक बन्धक हैं। अनिवृत्तिकरण उपशामककालके शेषमें संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

माण-मायासंजलणाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ३०७ ॥

संज्वलन मान और मायाका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३०७ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टिउवसमद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३०८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक तक बन्धक हैं। अनिवृत्तिकरण उपशामककालके शेषके शेषमें संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ३०८ ॥

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ? ॥ ३०९ ॥

संज्वलन लोभका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३०९ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टिउवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३१० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक तक बन्धक हैं। अनिवृत्तिकरण उपशामककालके अन्तिम समयमें जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ३११ ॥

हास्य, रति, भय और जुगुप्साका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३११ ॥

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३१२ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण उपशामक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण उपशामकालके अन्तिम समयको प्राप्त होकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥

देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय-गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ? ॥ ३१३ ॥

देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर नामकर्मका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥ ३१३ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरण उवसमा बंधा। अपुव्वकरणुवसमद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३१४ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण उपशामक तक बन्धक हैं। अपूर्वकरण उपशामकालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥३१४॥

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगाणं को बंधो। को अबंधो ॥ ३१५ ॥

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांगका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है ? ॥

अप्पमत्तापुव्वकरणउवसमा बंधा । अपुव्वकरणुवसमद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा ॥ ३१६ ॥

अप्रमत्त और अपूर्वकरण उपशामक बन्धक हैं । अपूर्वकरण उपशामककालके संख्यात बहुभाग जाकर बन्ध व्युच्छिन्न होता है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ॥ ३१६ ॥

सासणसम्मादिट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ॥ ३१७ ॥ सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा मतिअज्ञानियोंके समान है ॥ ३१७ ॥ सम्यग्मिथ्या-दृष्टियोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है ॥ ३१८ ॥

मिच्छाइट्ठीणमभवसिद्धिय भंगो ॥ ३१९ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा अभव्यसिद्धिक जीवोंके समान है ॥ ३१९ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु जाव तित्थयरे त्ति ओघभंगो ॥ ३२० ॥

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी जीवोंमें तीर्थंकर प्रकृति तक प्रकृत प्ररूपणा ओघके समान है ॥

णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स चक्खुदंसणिभंगो ॥ ३२१ ॥

विशेषता इतनी है कि सातावेदनीयकी प्ररूपणा चक्षुदर्शनियोंके समान है ॥ ३२१ ॥

असण्णीसु अभवसिद्धियभंगो ॥ ३२२ ॥

असंज्ञी जीवोंमें प्रकृत प्ररूपणा अभव्यसिद्धिक जीवोंके समान है ॥ ३२२ ॥

आहाराणुवादेण आहारएसु ओघं ॥३२३॥ अणाहारएसु कम्मइयभंगो ॥३२४॥

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥३२३॥ अनाहारकोंकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३२४ ॥

॥ इस प्रकार बन्धस्वामित्वविचयानुगम समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स

४. चउत्थे खंडे वेयणामहाधियारे कदिअणियोगद्दारं

कृति व वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारों स्वरूप महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके प्रारम्भमें श्री गौतम गणधरके द्वारा जो मंगल किया गया था उसे वहांसे लेकर भगवान् भूतबली भट्टारक यहां वेदना महाधिकारके प्रारम्भमें स्थापित करते हुए सर्व प्रथम जिनोंको नमस्कार करते हैं—

णमो जिणाणं ॥ १ ॥

जिनोंको नमस्कार हो ॥ १ ॥

जिन नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकारके हैं। उनमें 'जिन' यह शब्द नामजिन है। स्थापना जिन सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापनाके भेदसे दो प्रकारके हैं। जिन भगवान्के आकाररुपसे स्थित-द्रव्य सद्भावस्थापनाजिन है। उस आकारसे रहित जिस द्रव्यमें जिन भगवान्की कल्पना की जाती है वह असद्भावस्थापनाजिन है।

द्रव्यजिन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारके हैं। जो जीव जिनप्राभृतका ज्ञाता होकरभी वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित होता है वह आगमद्रव्यजिन कहलाता है। नोआगम-द्रव्यजिन ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारके हैं। उनमें ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यजिन भावी, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकारके हैं। भविष्य कालमें जिन पर्यायसे परिणत होनेवाला भावी द्रव्य जिन कहा जाता है। तद्व्यतिरिक्त द्रव्यजिन सचित्त, अचित्त और तदुभयके भेदसे तीन प्रकारके हैं। इनमें ऊंट, घोड़ा और हाथियों आदि के विजेता सचित्त द्रव्यजिन तथा हिरण्य, सुवर्ण, मणि और मोती आदिकोंके विजेता अचित्तद्रव्यजिन कहे जाते हैं। सुवर्ण आदिसे निर्मित आभूषणोंसहित कन्यादिकोंके विजेताओंको सचित्ताचित्त द्रव्यजिन जानना चाहिये।

आगम और नोआगमके भेदसे भावजिन दो प्रकारके है। उनमें जिनप्राभृतका जानकार होकर वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे संयुक्त जीव आगमभाव जिन है। नो आगमभावजिन उपयुक्त और तत्परिणतके भेदसे दो प्रकारके है। इनमें जिनस्वरूपको ग्रहण करनेवाले ज्ञानसे परिणत

जीवको उपयुक्त भावजिन तथा जिनपर्यायसे परिणत जीवको तत्परिणत भावजिन जानना चाहिये। इन सब जिन भेदोंमें यहां तत्परिणतभावजिन और स्थापनाजिनको नमस्कार किया गया है।

स्थापना जिनमें चूंकि तत्परिणतभावजिनके उन गुणोंका अध्यारोप किया जाता है, अतएव उसको नमस्कार करना भी मंगलकारक है। मंगलका अर्थ पाप-मलका गालन होता है। सो वह मंगलकर्ताके विशुद्ध परिणामोंके अनुसार जिस प्रकार तत्परिणतभावजिनको नमस्कार करनेसे होता है उसी प्रकार स्थापनानिक्षेपके आश्रयसे जिनमें तत्परिणतभावजिनके गुणोंका अध्यारोप किया गया है उन जिनप्रतिमाओंको भी नमस्कार आदिके करनेसे सम्भव है। जिन तो यथार्थमें वीतराग हैं, अतएव वे स्वयं किसीके पाप-मलका विनाश नहीं करते हैं, किन्तु उनके आश्रयसे स्तोताके परिणामोंके अनुसार उसके पापका विनाश स्वयमेव होता है।

यहां 'जिन' शब्दसे पांचों ही परमेष्ठियोंका ग्रहण समझना चाहिये कारण यह कि सकलजिन और देशजिनके भेदसे जिन दो प्रकारके हैं। इनमें जो घातिया कर्मोंका क्षय कर चुके हैं वे अरहन्त और सिद्ध तो सकलजिन कहे जाते हैं। साथही आचार्य, उपाध्याय और साधुभी तीव्र कषाय, इन्द्रिय एवं मोहके जीत लेनेके कारण देशजिन माने गये हैं।

णमो ओहिजिणाणं ॥ २ ॥

अवधिजिनोंको नमस्कार हो ॥ २ ॥

गुण और गुणीमें अभेदकी विवक्षासे यहां 'अवधि' शब्दसे अवधिज्ञानियोंको ग्रहण किया गया है। जो महर्षि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र स्वरूप रत्नत्रयके साथ देशावधिके धारक हैं उन महर्षियोंको नमस्कार है, यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

णमो परमोहिजिणाणं ॥ ३ ॥

परमावधिजिनोंको नमस्कार हो ॥ ३ ॥

देशावधि, परमावधि और सर्वावधिके भेदसे अवधिज्ञान तीन प्रकारका है। इनमेंसे देशावधिके धारक जिनोंको पूर्वसूत्रमें नमस्कार करके अब इस सूत्रके द्वारा परमावधिके धारक जिनोंको नमस्कार किया जा रहा है। परम शब्दका अर्थ श्रेष्ठ या उत्कृष्ट होता है। तदनुसार जो देशावधिकी अपेक्षा उत्कृष्ट अवधिज्ञानके धारक महर्षि हैं उनको इस सूत्रके द्वारा नमस्कार किया जा रहा है।

यह परमावधिज्ञान चूंकि देशावधिकी अपेक्षा महान् विषयवाला होकर मनःपर्ययज्ञानके समान संयत मनुष्योंमें ही उत्पन्न होता है, अपने उत्पन्न होनेके भवमें ही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है, और अप्रतिपाती अर्थात् सम्यक्त्व व चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व एवं असंयमको प्राप्त होनेवाला भी नहीं है; इसलिये उसे देशावधिकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझना चाहिये।

णमो सव्वोहिजिणाणं ॥ ४ ॥

जो अवधिज्ञान सबको विषय करनेवाला है वह सर्वावधि कहा जाता है। उस सर्वावधिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४ ॥

यहां 'सर्व' शब्दसे समस्त द्रव्योंको ग्रहण न करके उनके एक देशभूत रूपी (पुद्गल) द्रव्यको ही ग्रहण करना चाहिये। कारण यह कि अवधिज्ञानका विषयरूपी द्रव्य है, अरूपी द्रव्य उसका विषय नहीं है।

णमो अणंतोहिजिणाणं ॥ ५ ॥

अनन्तावधिजिनोंको नमस्कार हो ॥ ५ ॥

जिस ज्ञानका विषयकी अपेक्षा अन्त और अवधि नहीं है उस अनन्त व निरवधि ज्ञानस्वरूप जिनोंको इस सूत्रके द्वारा नमस्कार किया गया है।

णमो कोट्ठबुद्धीणं ॥ ६ ॥

कोष्ठबुद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ६ ॥

कोष्ठ नाम कुठिया (मिट्टीसे निर्मित एक धान्य रखनेका पात्र विशेष) का है। जिस प्रकार कोष्ठ गेहूं जौ आदि अनेक प्रकारके अनाजोंके धारण करनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार जो बुद्धि समस्त द्रव्य-पर्यायोंके ग्रहणमें समर्थ होती है वह कोष्ठ बुद्धि कही जाती है। इस कोष्ठबुद्धिसे संयुक्त जिनोंको नमस्कार हो। यद्यपि सूत्र में 'जिन' पद नहीं है, फिर भी यहां तथा आगे भी पूर्वसूत्रोंसे उसकी अनुवृत्ति लेना चाहिये।

णमो बीजबुद्धीणं ॥ ७ ॥

बीजबुद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ७ ॥

जिस प्रकार बीज मूल, अंकुर, पत्र, पोरे और स्कन्ध आदिकोंका आधार होता है उसी प्रकार जो पद बारह अंगोंके अर्थका आधारभूत होता है वह बीज तुल्य होनेसे बीज कहा जाता है। इस बीज पदको विषय करनेवाले मतिज्ञानकी भी कार्यमें कारणके उपचारसे 'बीज' संज्ञा है। तात्पर्य यह कि जो बुद्धि संख्यात पदोंके द्वारा अनन्त अर्थोंसे सम्बद्ध उस बीज पदको ग्रहण करती है उसे बीजबुद्धि समझना चाहिये। जिस प्रकार उत्तम रीतिसे जोती गई उपजाऊ भूमिमें योग्य काल आदिरूप सामग्रीकी सहायतासे बोया गया बीज प्रचुर धान्यको उत्पन्न करता है उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकी अधिकतासे प्राप्त हुई इस बीज बुद्धिके आश्रयसे जीव किसी एक ही बीजपदको ग्रहण करके उसके आश्रयसे अनेक पदार्थोंके ग्रहणमें समर्थ होता है। ऐसी बीजबुद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार है, यह सूत्रका अभिप्राय है।

णमो पदाणुसारीणं ॥ ८ ॥

पदानुसारी ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ८ ॥

पद प्रमाणपद और मध्यमपद आदिके भेदसे अनेक प्रकारका है। उनमेंसे यहां प्रमाण और मध्यम आदि पदोंका प्रयोजन न होनेसे बीजपदको ग्रहण करना चाहिये। जो बुद्धिपदका अनुसरण या अनुकरण करती है वह पदानुसारी बुद्धि कही जाती है। अभिप्राय यह कि बीज-बुद्धिसे बीजपदको जानकर यहां यह इन अक्षरोंका लिंग होता है और इनका नहीं; इस प्रकार विचार करके जो बुद्धि समस्त श्रुतके अक्षर-पदोंको ग्रहण किया करती है उसे पदानुसारी बुद्धि समझना चाहिये। वह पदानुसारी बुद्धि अनुसारी, प्रतिसारी और तदुभयसारीके भेदसे तीन प्रकारकी है। जो बुद्धि बीजपदसे अधस्तन पदोंको ही बीजपदस्थित लिंगसे जानती है वह प्रतिसारी बुद्धि कही जाती है। जो इसके विपरीत उससे उपरिम पदोंको ही जानती है वह अनुसारी बुद्धि कहलाती है। जो उक्त बीजपदके पार्श्वभागोंमें स्थित पदोंको नियमसे अथवा विना नियम भी जानती है उसे तदुभयसारी बुद्धि जानना चाहिये। यहां इन पदानुसारी जिनोंको नमस्कार किया गया है।

णमो संभिण्णसोदाराणं ॥ ९ ॥

संभिन्न श्रोता जिनोंको नमस्कार हो ॥ ९ ॥

जो श्रोत्रेन्द्रिय श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके प्रकृष्ट क्षयोपशमसे अनेक अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक शब्दोंको एक साथ ग्रहण कर सकते हैं वे संभिन्नश्रोता कहलाते हैं। वे बारह योजन लंबे और नौ योजन चौड़े चक्रवर्तीके कटकमें स्थित हाथी, घोड़ा, ऊंट और मनुष्य आदिके एक साथ उत्पन्न हुए अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक शब्दोंको पृथक् पृथक् समान समयमें ही ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं, ऐसे संभिन्नश्रोता यदि चार अक्षौहिणीके हाथी व घोड़ा आदि अपनी भाषामें एक साथ बोलते है तो उनके शब्दोंको अलग अलग एक साथ सुनकर उनका उत्तर दे सकते हैं। उन संभिन्नश्रोता जिनोंको नमस्कार हो।

णमो उजुमदीणं ॥ १० ॥

ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञानियोंको नमस्कार हो ॥ १० ॥

ऋजुका अर्थ सरल या वक्रतासे रहित होता है। मतिसे अभिप्राय दूसरेकी मति (विचारकोटि) स्थित पदार्थका है। इससे यह अभिप्राय हुआ कि जो सरलतापूर्वक दूसरेके मनोगत, वचनगत और कायगत पदार्थको जानते हैं वे ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञानी कहलाते हैं। ये ऋजुमति-मन:पर्ययज्ञानी द्रव्यकी अपेक्षा जघन्यसे औदारिक शरीरकी एक समयमें होनेवाली निर्जराको तथा उत्कर्षसे चक्षुइन्द्रियकी एक समयमें निर्जराको जानते हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा वे जघन्यसे गव्यूतिपृथक्त्व (२ कोससे ९ कोस तक) और उत्कर्षसे योजनपृथक्त्व प्रमाण क्षेत्रवर्ती अर्थको जानते हैं। कालकी अपेक्षा जघन्यसे अतीत व अनागत इन दो भवों (वर्तमान भवके साथ तीन भवों) और उत्कर्षसे सात भवों (वर्तमान भवके साथ आठ भवों) को जानते हैं। भावकी अपेक्षा वे जघन्यसे जघन्य द्रव्यवर्ती और उत्कर्षसे उत्कृष्ट द्रव्यवर्ती तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भाग मात्र भावों (पर्यायों) को

जानते हैं। जघन्यके ऊपर और उत्कृष्टके नीचे सब मध्यम विकल्प समझने चाहिये। उन ऋजुमति-मनःपर्ययज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो विउलमदीणं ॥ ११ ॥

विपुलमति-मनःपर्ययज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ११ ॥

विपुल शब्दका अर्थ विस्तृत होता है। इससे यह अभिप्राय हुआ कि जो सरलता, कुटिलता और उभय स्वरूपसे भी दूसरेके मनोगत, वचनगत एवं कायगत पदार्थको जानते हैं वे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी कहलाते हैं। वे द्रव्यकी अपेक्षा जघन्यसे एक समयरूप इन्द्रियनिर्जराको तथा उत्कर्षसे मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागको जानते हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा वे जघन्यसे योजन-पृथक्त्वरूप क्षेत्रके भीतर तथा उत्कर्षसे घनफलरूप पैंतालीस लाख योजनप्रमाण मनुष्य क्षेत्रके भीतर स्थित वस्तुको जानते हैं। कालकी अपेक्षा वे जघन्यसे सात-आठ भवोंको तथा उत्कर्षसे असंख्यात भवोंको जानते हैं। भावकी अपेक्षा वे अपने विषयभूत द्रव्यकी असंख्यात पर्यायोंको जानते हैं। इस प्रकारके विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो दसपुव्वियाणं ॥ १२ ॥

दशपूर्वी जिनोंको नमस्कार हो ॥ १२ ॥

ये दशपूर्वी भिन्न और अभिन्नके भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें ग्यारह अंगोंको पढ़कर तत्पश्चात् परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका; इन पांच अधिकारोंमें विभक्त दृष्टिवादके पढ़ते समय उत्पादपूर्व आदिके क्रमसे दसवें विद्यानुप्रवादपूर्वके समाप्त होनेपर जब तथा सात सौ क्षुद्र विद्यायें सिद्ध होकर 'भगवन्, क्या आज्ञा देते हैं ?' ऐसा कहती हुई उपस्थित होती हैं तब जो उन सब विद्याओंके लोभको प्राप्त होता है वह भिन्नदशपूर्वी कहा जाता है। किन्तु जो कर्म-क्षयका अभिलाषी होनेसे उनके विषयमें जो लोभको नहीं प्राप्त होता है वह अभिन्नदशपूर्वी कहलाता है। उनमें यहां अभिन्नदशपूर्वी जिनोंको नमस्कार किया गया है।

णमो चोद्दसपुव्वियाणं ॥ १३ ॥

चौदहपूर्वी श्रुतकेवली जिनोंको नमस्कार हो ॥ १३ ॥

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं ॥ १४ ॥

अष्टांग महानिमित्तोंमें कुशलताको प्राप्त हुए जिनोंको नमस्कार हो ॥ १४ ॥

वे अष्टांगनिमित्त ये हैं— अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष।

१. मनुष्य और तिर्यंचोंके अंग-प्रत्यंगोंके साथ उनकी वात-पित्तादि प्रकृति, सात धातुओं और वर्ण-रसादिको देखकर तीनों कालोंसम्बन्धी सुख-दुःखादिको जान लेना; यह अंग महानिमित्त कहलाता है। २. मनुष्य और तिर्यंचोंके अनेक प्रकारके शब्दोंको सुनकर तीनों कालों सम्बन्धी सुख-दुःखादिको जान लेनेका नाम स्वर महानिमित्त है। ३. शिर, मुख एवं कन्धे

आदिपर स्थित तिल व मशा आदिको देखकर तीनों कालों सम्बन्धी सुख-दुःखादिके जान लेनेको व्यञ्जन महानिमित्त कहा जाता है। ४. हाथ और पांव आदिके ऊपर वर्तमान स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवृक्ष, शंख, चक्र, चन्द्र, सूर्य एवं कमल आदि चिह्नोंको देखकर तीर्थंकर, चक्रवर्ती एवं बलदेव आदि पदोंके ऐश्वर्यको जान लेना; यह लक्षण नामक महानिमित्त है। अभिप्राय यह कि उपर्युक्त चिन्होंमें यदि एक सौ आठ हों तो तीर्थंकर, चौंसठ हों तो चक्रवर्ती तथा बत्तीस हों तो बलदेव आदि (नारायण-प्रतिनारायण) पदोंकी प्राप्ति समझना चाहिये। ५. शरीर-छायाकी विपरीतताको तथा देव, दानव, राक्षस एवं मनुष्य-तिर्यंचोंके द्वारा छेदे गये शस्त्र, वस्त्र और आभूषण आदिको देखकर तीनों कालोंके सुख-दुःखको जानना; यह छिन्न नामका महानिमित्त है। ६. पृथिवीकी सघनता एवं स्निग्ध-रूक्ष आदि गुणोंको देखकर सोना, चांदी और तांबा आदिके अवस्थानको तथा पूर्वादि दिशाविभागसे स्थित सेना आदिको देखकर जय-पराजय आदिके जान लेनेको भौम महानिमित्त कहा जाता है। ७. वातादि दोषोंसे रहित होकर रात्रीके अन्तिम भागमें देखे गये चन्द्र-सूर्यादिरूप शुभ तथा तैलस्नानादिरूप अशुभ स्वप्नोंको सुनकर भावी सुख-दुःखादिके जान लेनेका नाम स्वप्न महानिमित्त है। वह स्वप्न छिन्नस्वप्न और मालास्वप्नके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें परस्परके सम्बन्धसे रहित जो हाथी एवं सिंह आदिका देखना है वह छिन्नस्वप्न कहा जाता है। जैसे-जिनमाताके द्वारा देखे जानेवाले सोलह स्वप्न। पूर्वापर घटनासे सम्बन्ध जो स्वप्न देखा जाता है वह मालास्वप्न कहलाता है। ८. सूर्य, चन्द्र, और ग्रह-नक्षत्रके उदय एवं अस्त आदिको देखकर उसके निमित्तसे सुख-दुःखादिके जान लेनेका नाम अन्तरिक्ष महानिमित्त है। जो इन आठ महानिमित्तोंमें कुशल होते हैं उनके लिये यहां नमस्कार किया गया है।

णमो विउव्वणपत्ताणं ॥ १५ ॥

विक्रियाऋद्धिको प्राप्त हुए जिनोंको नमस्कार हो ॥ १५ ॥

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामरूपित्व; इस प्रकारसे विक्रियाऋद्धि आठ प्रकारकी है। उनमें मेरू प्रमाण शरीरको संकुचित करके परमाणु प्रमाण शरीरसे स्थित होना अणिमा नामक विक्रियाऋद्धि है। परमाणु प्रमाण शरीरको मेरू पर्वतके बराबर करनेको महिमाऋद्धि कहते हैं। मेरू प्रमाण शरीरसे मकड़ीके तंतुओंपरसे चलनेमें निमित्तभूत शक्तिका नाम लघिमा है। भूमिमें स्थित रहकर हाथसे चन्द्र व सूर्यके बिम्बको छूनेकी शक्तिको प्राप्तिऋद्धि कहा जाता है। कुलाचल और मेरू पर्वत सम्बन्धी पृथिवीकायिक जीवोंको बाधा न पहुंचाकर उनके भीतरसे जा सकनेका नाम प्राकाम्यऋद्धि है। सब जीवों तथा ग्राम, नगर एवं खेडे आदिकोंके भोगनेकी जो शक्ति उत्पन्न होती है वह ईशित्व ऋद्धि कही जाती है। मनुष्य, हाथी, सिंह, एवं घोड़े आदिरूप अपनी इच्छासे विक्रिया करनेकी शक्तिका नाम वशित्वऋद्धि है अथवा समस्त प्राणिओंको वशमें कर सकनेका नाम वशित्वऋद्धि है। इच्छित रूपके ग्रहण करनेकी शक्तिका नाम कामरूपित्व है। इस आठ प्रकारकी विक्रियाशक्तिसे संयुक्त जिनोंको नमस्कार हो।

णमो विज्जाहराणं ॥ १६ ॥

विद्याधर जिनोंको नमस्कार हो ॥ १६ ॥

जातिविद्या, कुलविद्या और तपविद्याके भेदसे विद्या तीन प्रकारकी है। उनमें मातृपक्षसे जो विद्यायें प्राप्त होती हैं वे जातिविद्यायें तथा पितृपक्षसे प्राप्त होनेवाली विद्यायें कुलविद्यायें कहलाती हैं। महोपवासादिरूप तपश्चरणके द्वारा सिद्ध की जानेवाली विद्याओंको तपविद्यायें समझना चाहिये। ये विद्यायें जिनके होती हैं वे विद्याधर कहलाते हैं। उनमेंसे विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाले असंयमी विद्याधरोंको छोड़कर जिन्होंने विद्याओंके परित्यागपूर्वक संयमको ग्रहण कर लिया है उनको तथा जो सिद्ध हुई विद्याओंके उपयोगकी इच्छा नहीं करते हैं उन विद्याधरोंको ही यहां नमस्कार किया गया है।

णमो चारणाणं ॥ १७ ॥

चारण-ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ १७ ॥

जल, जंघा, तन्तु, फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणीके भेदसे चारण-ऋद्धिधारक जिन आठ प्रकारके हैं।

उनमें जो ऋषि जलकायिक जीवोंको पीड़ा न पहुंचाकर जलको न छूते हुए इच्छानुसार भूमिके समान जलसे ऊपरसे गमन कर सकते हैं वे जलचारण कहलाते हैं। इसी प्रकारसे जो साधु तन्तु, फल, फूल और बीजके ऊपरसे जा-आ सकते हैं उन्हें क्रमसे तन्तुचारण, फलचारण, पुष्पचारण और बीजचारण समझना चाहिये। भूमिमें पृथिवीकायिक जीवोंको बाधा न पहुंचा करके जो अनेक सौ योजन गमन कर सकते हैं वे जंघाचारण कहलाते हैं। धूम, अग्नि, पर्वत, वृक्ष और तन्तुसमूहके आश्रयसे जो ऋषि ऊपर चढ़नेकी शक्तिसे संयुक्त होते हैं वे श्रेणीचारण कहे जाते हैं। भूमिसे चार अंगुल ऊपर आकाशमें गमन करनेवाले ऋषि आकाशचारण कहलाते हैं। इन चारण-ऋषीश्वरोंको यहां नमस्कार किया गया है।

णमो पण्णसमणाणं ॥ १८ ॥

प्रज्ञाश्रमणोंको नमस्कार हो ॥ १८ ॥

औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और परिणामिके भेदसे प्रज्ञा चार प्रकारकी है। इनमें पूर्व जन्मसम्बन्धी चार प्रकारकी निर्मल बुद्धिके बलसे विनयपूर्वक बारह अंगोंका अवधारण करके जो प्रथमतः देवोंमें और तत्पश्चात अविनष्ट संस्कारके साथ मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं वे वहां पढ़ने, सुनने व पूछने आदिकी क्रियासे रहित होते हुए भी उक्त बुद्धिसे संयुक्त होते हैं उनकी वह बुद्धि औत्पत्तिकी कहलाती है। ऐसे औत्पत्तिप्रज्ञाश्रमण छह मासके उपवाससे कृश होते हुए भी उस बुद्धिके माहात्म्यको प्रकट करनेके लिये पूछनेरूप क्रियामें प्रवृत्त हुए चौदहपूर्वीको भी उत्तर देते हैं। विनयपूर्वक बारह अंगोंको पढ़नेवालेके जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम वैनयिकी प्रज्ञा है,

अथवा परोपदेशसे उत्पन्न बुद्धि भी वैनयकी प्रज्ञा कहलाती है। गुरुके उपदेशके बिना तपश्चरणके बलसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम कर्मजा प्रज्ञा है, अथवा औषधसेवाके बलसे जो उत्पन्न होती है उस बुद्धिको कर्मजा प्रज्ञा समझना चाहिये। अपनी जातिविशेषसे उत्पन्न बुद्धि परिणामिकी प्रज्ञा कही जाती है।

णमो आगासगामीणं ॥ १९ ॥

आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो ॥ १९ ॥

जिस ऋद्धिके प्रभावसे जीव खड़ा होकर, पद्मासन अथवा अन्य कायोत्सर्ग आदि आसनोंसे भी आकाशमें गमन कर सकता है वह आकाशगामी ऋद्धि कही जाती है। इस आकाशगामित्व ऋद्धिके धारकोंसे आकाशचारणोंमें यह विशेषता समझना चाहिये कि वे चारित्रके परिपालनमें कुशल होनेसे आकाशमें गमन करते हुए भी जीवोंको बाधा नहीं पहुंचाते हैं, तथा वे पादप्रक्षेपपूर्वकही आकाशमें गमन किया करते हैं। किन्तु आकाशगामिनी ऋद्धिके धारक पद्मासन और कायोत्सर्ग आदि अनेक प्रकारके आसनोंके साथ आकाशमें गमन करते हुए जीवपीड़ा परिहारमें समर्थ नहीं होते हैं। यहां आकाशगामी जिनोंको नमस्कार किया गया है।

णमो आसीविसाणं ॥ २० ॥

आशीर्विष जिनोंको नमस्कार हो ॥ २० ॥

जिस ऋद्धिके प्रभावसे 'तेरा शिरच्छेद हो' ऐसा कहनेपर जीवका तत्काल शिर कट जाता है, 'तू मर जा' ऐसा कहनेपर जीव सहसा मर जाता है, तथा 'तू निर्विष हो जा' ऐसा कहनेपर विषपीडित प्राणी तत्क्षण निर्विष हो जाता है, वह आशीर्विष ऋद्धि कहलाती है। यहां यह विशेषता समझनी चाहिये कि इस प्रकारके वचनशक्तिसे संयुक्त जिन कभी उस ऋद्धिके प्रभावसे अन्य जीवोंका निग्रह-अनुग्रह नहीं किया करते हैं, क्योंकि, वैसा करनेपर उनमें जिनत्वही नहीं रह सकता है। इस सूत्रके द्वारा इस आशीर्विष ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार किया गया है।

णमो दिट्ठिविसाणं ॥ २१ ॥

दृष्टिविष जिनोंको नमस्कार हो ॥ २१ ॥

जिस ऋद्धिके प्रभावसे उत्कृष्ट तपस्वी साधुके द्वारा क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखा गया प्राणी तत्काल विषसे संतप्त होकर मर जाता है वह दृष्टिविषऋद्धि कहलाती है। यहां दृष्टि शब्दसे मनको भी ग्रहण करना चाहिये। इससे दृष्टिविष ऋद्धिके धारक साधु चक्षुसे देखनेके समान जिसके विषयमें मर जानेका मनसे विचार भी करते हैं वह तत्काल मर जाता है, यह अभिप्राय समझना चाहिये इस दृष्टिविष ऋद्धिके धारक जिनोंको यहां नमस्कार किया गया है।

णमो उग्गतवाणं ॥ २२ ॥

उग्रतप ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २२ ॥

ये उग्रतप ऋद्धिके धारक दो प्रकारके हैं— उग्रोग्रतप-ऋद्धिधारक और अवस्थित-उग्रतपऋद्धि धारक। उनमें जो एक उपवासको करके पारणा करनेके पश्चात् फिर दो उपवास करता है, पश्चात् इसी क्रमसे तीन उपवास करता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक उपवासको बढ़ाते हुए अधिक वृद्धिके जीवन पर्यन्त उपवासोंको किया करता है वह साधु उग्रोग्रतप ऋद्धिका धारक माना जाता है।

जो दीक्षाके समय एक उपवासको करके पारणा करता है और तत्पश्चात् एक दिनके अन्तरसे किसी निमित्तको पाकर षष्ठोपवासी हो जाता है। फिर उस षष्ठोपवाससे विहार करते हुए अष्टमोपवासी हो जाता है। इस प्रकार दशम और द्वादशम आदिके क्रमसे नीचे न गिरकर जो जीवन पर्यन्त विहार करता है वह अवस्थित-उग्रतप-ऋद्धिका धारक कहा जाता है। इन दोनों तपोंका उत्कृष्ट फल मोक्षही है, अन्य स्वर्गादि तो अनुत्कृष्ट फल हैं। इन उग्रतप ऋद्धिधारक जिनोंको यहां नमस्कार किया गया है।

णमो दित्ततवाणं ॥ २३ ॥

दीप्ततप-ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २३ ॥

जिसके प्रभावसे चतुर्थ व शरीरमें षष्ठोपवासादि करते हुए साधुके अनुपम दीप्ति उत्पन्न होती है वह दीप्ततप ऋद्धि कहलाती है। इस ऋद्धिको धारण करनेवाले साधु दीप्ततप कहे जाते हैं। उन दीप्ततप ऋद्धिधारक जिनोंको यहां नमस्कार किया गया है।

णमो तत्ततवाणं ॥ २४ ॥

तप्ततप ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २४ ॥

जिस तपके द्वारा मूत्र, मल और शुक्रादि तप्त अर्थात् भस्म हो जाते हैं वह तप्ततप है। इस सूत्र द्वारा उक्त ऋद्धिसे सहित जिनोंको नमस्कार किया गया है।

णमो महातवाणं ॥ २५ ॥

महातप ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २५ ॥

जो मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय; इन चार ज्ञानोंके सामर्थ्यसे मन्दरपंक्ति व सिंह-निक्रीडित आदि सब प्रकारके महान् उपवासोंको किया करते हैं वे इस महातप ऋद्धिके धारक होते हैं। उन महातप ऋद्धिधारी मुनीवरोंको मन, वचन, व कायसे नमस्कार हो; यह सूत्रका अभिप्राय है।

णमो घोरतवाणं ॥ २६ ॥

घोरतपऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २६ ॥

उपवासोंमें छह मासका उपवास, अवमोदर्य तपोंमें एक ग्रास, वृत्तिपरिसंख्याओंमें चतुष्पथ (चौरस्ते) में भिक्षाकी प्रतिज्ञा, रसपरित्यागोंमें उष्ण जलयुक्त ओदनका भोजन; विविक्तशय्यासनोंमें वृक और व्याघ्र आदि हिंस्र जीवोंसे सेवित वनोंमें निवास; कायक्लेशोंमें तीव्र हिमालय आदिके

अन्तर्गत देशोंमें खुले आकाशके नीचे अथवा वृक्षमूलमें ध्यान ग्रहण करना; इस प्रकारसे जो भयानक बाह्य तपोंका आचरण करते हुए दुष्कर अभ्यन्तर तपोंका भी अनुष्ठान किया करते हैं वे घोरतपऋद्धिके धारक होते हैं । इन घोरतप ऋषिश्वरोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

णमो घोरपरक्कमाणं ॥ २७ ॥

घोरपराक्रम ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २७ ॥

तीनों लोकोंका उपसंहार करने, पृथिवीतलको निगलने; समस्त समुद्रके जलको सुखाने तथा जल, अग्नि, एवं शिला-पर्वतादिके बरसानेकी शक्तिका नाम घोरपराक्रम है । उस घोरपराक्रम ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

णमो घोरगुणाणं ॥ २८ ॥

घोरगुण जिनोंको नमस्कार हो ॥ २८ ॥

णमो घोरगुणबंभचारीणं ॥ २९ ॥

अघोरगुणब्रम्हचारी जिनोंको नमस्कार हो ॥ २९ ॥

पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति स्वरूप चारित्रका नाम ब्रम्ह है । अघोरका अर्थ शान्त होता है । इस प्रकारसे जो महर्षि शान्त गुणोंसे संयुक्त उस ब्रम्हका आचरण करते हैं वे अघोर ब्रम्हचारी कहलाते हैं । अभिप्राय यह है कि जो साधु तपके प्रभावसे राष्ट्र विप्लव, मारि, दुर्भिक्ष और वध-बन्धनादिके रोकनेमें समर्थ होते हैं उन्हें अघोरब्रम्हचारी जानना चाहिये । यहां सन्धिके कारण सूत्रमें अकारका लोप हो गया है । उन अघोर ब्रम्हचारी जिनोंको नमस्कार हो ।

णमो आमोसहिपत्ताणं ॥ ३० ॥

आमर्षौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३० ॥

जिनका आमर्ष अर्थात् स्पर्श औषधपनेको प्राप्त है वे आमर्षौषधिऋद्धिसे संयुक्त होते हैं । अभिप्राय यह है कि तपके सामर्थ्यसे जिन महर्षियोंका स्पर्श सब प्रकारकी औषधिके स्वरूपको प्राप्त कर चुका है वे आमर्षौषधिप्राप्त कहलाते हैं । उनको नमस्कार हो ।

णमो खेलोसहिपत्ताणं ॥ ३१ ॥

खेलौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३१ ॥

खेल शब्दसे श्लेष्म, लार, नासिकामल और विप्रुष आदिका ग्रहण होता है । जिनका यह खेल औषधित्वको प्राप्त हो गया है वे खेलौषधिप्राप्त ऋषि हैं । उनको नमस्कार हो ।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं ॥ ३२ ॥

जल्लौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३२ ॥

शरीरका बाह्य मल (पसीना आदि) जल्ल कहलाता है। वह जिनके तपके प्रभावसे औषधिपनेको प्राप्त हो गया है वे जल्लौषधिप्राप्तजिन कहे जाते हैं। उनको नमस्कार हो।

णमो विट्ठोसहिपत्ताणं ॥ ३३ ॥

विष्टौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३३ ॥

विष्टा शब्द मलमूत्रादिका वाचक है। जिनके वे मलमूत्रादि औषधित्वको प्राप्त हो गये हैं वे विष्टौषधिप्राप्त जिन हैं। उनको नमस्कार हो।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं ॥ ३४ ॥

सर्वौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३४ ॥

जिनके रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र, फुप्फुस एवं मल-मूत्रादि ये सब औषधिपनेको प्राप्त हो गये हैं वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं। उनको नमस्कार हो।

णमो मणबलीणं ॥ ३५ ॥

मनबल ऋद्धि युक्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३५ ॥

बारह अंगोमें निर्दिष्ट त्रिकाल विषयक अनन्त अर्थ व व्यञ्जन पर्यायोंसे परिपूर्ण छह द्रव्योंका निरन्तर चिन्तन करते हुए भी खेदको प्राप्त न होना, इसका नाम मनबल है। यह मनबल जिनके पाया जाता है वे मनबली कहलाते हैं। उन मनबली ऋषियोंको नमस्कार हो।

णमो वचिबलीणं ॥ ३६ ॥

वचनबली ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥

बारह अंगोंकी बहुत बार आवृत्ति करके भी जो खेदको नहीं प्राप्त होते हैं वे वचनबली कहलाते हैं। उनको नमस्कार हो।

णमो कायबलीणं ॥ ३७ ॥

कायबली ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३७ ॥

जो तीनों लोकोंको हाथकी अंगुलिसे उठाकर उन्हें अन्यत्र रखनेमें समर्थ होते हैं वे कायबली कहलाते हैं। इन कायबल ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो।

णमो खीरसवीणं ॥ ३८ ॥

क्षीरस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३८ ॥

क्षीरका अर्थ दूध होता है। जिस ऋद्धिके प्रभावसे हाथमें रखा गया रुक्ष भोजन तत्काल दूधस्वरूप परिणत हो जाता है वह क्षीरस्रवी ऋद्धि कहलाती है, अथवा जिसके प्रभावसे वचन दूधके समान मधुर प्रतिभासित होते हैं वह भी क्षीरस्रवी ऋद्धि कही जाती है। उस क्षीरस्रवी ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो।

णमो सप्पिसवीणं ॥ ३९ ॥

सर्पिस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३९ ॥

सर्पिष् शब्दका अर्थ घृत होता है । तपके प्रभावसे जिनके अंजली पुटमें गिरे हुए सब आहार घृत स्वरूपसे परिणत हो जाते हैं वे सर्पिस्रवी कहलाते हैं । उनको नमस्कार हो ।

णमो महुसवीणं ॥ ४० ॥

मधुस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४० ॥

मधु शब्दसे गुड, खांड, और शक्कर आदिका ग्रहण किया जाता है । जो हाथमें रखे हुए समस्त आहारोंको गुड, खांड और शक्करके स्वादस्वरूप परिणत करनेमें समर्थ हैं वे मधुस्रवी जिन हैं । उनको मन, वचन व कायसे नमस्कार हो ।

णमो अमडसवीणं ॥ ४१ ॥

अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

जिनके हाथमें आया हुआ आहार अमृतस्वरूपसे परिणित हो जाता है वे अमृतस्रवी जिन हैं उन अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

णमो अक्खीणमहाणसाणं ॥ ४२ ॥

अक्षीणमहानस ऋद्धिधारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४२ ॥

अक्षीणमहानस शब्दके देशामर्शक होनेके कारण उससे अक्षीणवसति जिनोंका भी ग्रहण होता है । अभिप्राय यह है कि जिन महर्षियोंके द्वारा आहार ग्रहण कर लेने पर शेष भोजन चक्रवर्तीकी समस्त सेनाके द्वारा भी उपभोग करनेपर हानिको प्राप्त नहीं होता है वे अक्षीणमहानस ऋद्धिधारक कहलाते हैं । इसी प्रकार जिनके चार हाथ प्रमाण भी गुफामें अवस्थित रहनेपर चक्रवर्तीका समस्त सैन्य भी उस गुफामें समा सकता है वे अक्षीणावास ऋद्धिधारक कहलाते हैं । उन अक्षीणमहानस जिनोंको नमस्कार हो ।

णमो लोए सव्वसिद्धायदणाणं ॥ ४३ ॥

लोकमें सब सिद्धायतनोंको नमस्कार हो ॥ ४३ ॥

'सर्व सिद्ध' इस वचनसे यहां पूर्वमें कहे हुए समस्त जिनोंको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उक्त जिनोंको छोड़कर अन्य कोई देशसिद्ध व सर्वसिद्ध नहीं पाये जाते हैं । सब सिद्धोंके जो आयतन हैं वे सर्वसिद्धायतन कहे जाते हैं । इससे कृत्रिम व अकृत्रिम जिनगृह, जिनप्रतिमा तथा ईषत्प्राग्भार, ऊर्जयन्त, चम्पापुर व पावानगर आदि क्षेत्रों एवं निषीधिकाओंको भी ग्रहण करना चाहिये । उन सिद्धायतनोंको नमस्कार हो ।

णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स ॥ ४४ ॥

वर्धमान बुद्ध ऋषिको नमस्कार हो ॥ ४४ ॥

इस प्रकार यहां ४४ सूत्रों द्वारा मंगल करके अब आगे ग्रन्थका सम्बन्ध प्रगट करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अग्गेणियस्स पुव्वस्स पंचमस्स वत्थुस्स चउत्थो पाहुडो कम्मपयडी णाम ॥४५॥

अग्रायणी पूर्वकी पंचम वस्तुके चतुर्थ प्राभृतका नाम कर्मप्रकृति है ॥ ४५ ॥

दृष्टिवाद नामक बारहवें अंगके पांच भेदोंमें जो पूर्वगत है वह उत्पादपूर्व व अग्रायणीय-पूर्व आदिके भेदसे चौदह प्रकारका है। इनमें द्वितीय अग्रायणीय पूर्वमें 'वस्तु' नामसे प्रसिद्ध ये चौदह अधिकार हैं-- पूर्वान्त, अपरान्त, ध्रुव, अध्रुव, चयनलब्धि, अध्रुवसम्प्रणिधान, कल्प, अर्थ, भौमावयाद्य, सर्वार्थ, कल्पनिर्याण, अतीत-अनागतकाल, सिद्ध और बुद्ध। इनमेंसे यहां पांचवा चयनलब्धि नामका अधिकार प्रकृत है। उसमेंके बीस प्राभृतोंमेंसे यहां कर्मप्रकृति प्राभृत नामका चतुर्थ प्राभृत विवक्षित है। उसमें ये चौबीस अधिकार हैं– कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम. उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, सात-असात, दीर्घ-ह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्त, निधत्त-अनिधत्त, निकाचित-अनिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कन्ध और अल्पबहुत्व। इन चौबीस अधिकारोंमेंसे यहां प्रथम कृति अनुयोगद्वार प्रकृत है। इस कृति अनुयोगद्वारकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्र कहा जाता है।

कदि त्ति सत्तविहा कदी-णामकदी ठवणकदी दव्वकदी गणणकदी गंथकदी करणकदी भावकदी चेदि ॥ ४६ ॥

कृति सात प्रकारकी है-- नामकृति, स्थापनाकृति, द्रव्यकृति, गणनाकृति, ग्रन्थकृति, करणकृति और भावकृति ॥ ४६ ॥

इनके अर्थकी प्ररूपणा आगे स्वयं सूत्रकारके द्वारा की गई है, अतः यहां उनका स्वरूप नहीं निर्दिष्ट किया गया है। अब इन सात कृतियोंमेंसे किस नयके लिये कौन-सी कृतियां अभीष्ट हैं, इसकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्रप्रबन्ध प्राप्त होता है—

कदिणयविभासणदाए को णओ काओ कदीओ इच्छदि ? ॥ ४७ ॥

कृतियोंके नयोंके व्याख्यानमें कौन नय किन कृतियोंकी इच्छा करता है ? ॥ ४७ ॥

णइगम-ववहार-संगहा सव्वाओ ॥ ४८ ॥

नैगम, व्यवहार और संग्रह ये तीन नय सब कृतियोंको स्वीकार करते हैं ॥ ४८ ॥

उजुसुदो ट्ठवणकदिं णेच्छदि ॥ ४९ ॥

ऋजुसूत्र नय स्थापनाकृतिको स्वीकार नहीं करता है ॥ ४९ ॥

अभिप्राय यह है कि ऋजुसूत्र स्थापनाकृतिको छोड़कर शेष सब कृतियोंको स्वीकार करता है। ऋजुसूत्र नय शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें यहां अशुद्ध ऋजुसूत्र नय विवक्षित है, क्योंकि, स्थापना कृतिको छोड़कर अन्य सब कृतियां उसीकी विषय हो सकती हैं। शुद्ध ऋजुसूत्र नय तो अर्थपर्यायको विषय करनेके कारण केवल भावकृतिको ही विषय करता है, उसको छोड़कर वह अन्य किसी भी कृतिको स्वीकार नहीं करता है।

सद्दादओ णामकदिं भावकदिं च इच्छंति ॥ ५० ॥

शब्दादिक नय नामकृति और भावकृतिको स्वीकार करते हैं ॥ ५० ॥

इस प्रकार उक्त कृतियोंकी नयविषयताका कथन अब आगे निक्षेपप्ररूपणासे किया जाता है—

जा सा णामकदी णाम सा जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, जीवस्स च अजीवस्स च, जीवस्स च अजीवाणं च, जीवाणं च अजीवस्स च जीवाणंच अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि कदि त्ति सा सव्वा णामकदी णाम ॥ ५१ ॥

जो वह नामकृति है वह एक जीवके, एक अजीवके, बहुत जीवोंके, बहुत अजीवोंके, एक जीव और एक अजीवके, एक जीव और बहुत अजीवोंके; बहुत जीवों और एक अजीवके, तथा बहुत जीवों और बहुत अजीवोंमें जिसका 'कृति' ऐसा नाम किया जाता है वह सब नामकृति कहलाती है ॥ ५१ ॥

नामकृति उपर्युक्त एक व अनेक जीवाजीवादि आठकोंही विषय करती है, क्यों कि, इनसे अधिक भंग सम्भव नहीं हैं। इन आठ भंगोंमें जिसका 'कृति' ऐसा नाम किया जाता है वह अपने आपमें रहनेवाली 'कृति' संज्ञा आधारके भेदसे आठ प्रकार और अवान्तर भेदसे करोड़ों भेदोंको प्राप्त होती है। वह सब नामकृति कहलाती है।

जा सा ठवणकदी णाम सा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जंति कदि त्ति सा सव्वा ठवणकदी णाम ॥ ५२ ॥

जो वह स्थापनाकृति है वह काष्ठकर्मोंमें, अथवा चित्रकर्मोंमें, अथवा पोत्तकर्मोंमें, अथवा लेप्यकर्मोंमें, अथवा लयनकर्मोंमें, अथवा शैलकर्मोंमें, अथवा गृहकर्मोंमें अथवा भित्तिकर्मोंमें अथवा दन्तकर्मोंमें, अथवा भेण्डकर्मोंमें, अथवा अक्ष या वराटक; तथा इनको आदि लेकर अन्य भी जो 'कृति' इस प्रकार स्थापनाद्वारा स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाकृति कही जाती है ॥५२॥

सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापनाके भेदसे स्थापना दो प्रकारकी है। इनमें यहां पहिले सद्भावस्थापनाके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं— नाचना, हँसना, गाना तथा तुरई एवं वीणा आदि बाजोंके बजाने रूप क्रियायोंमें प्रवृत्त हुए देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्योंकी काष्ठसे निर्मित

प्रतिमाओंको काष्ठकर्म कहते हैं। वस्त्र, भित्ति एवं पटिये आदिपर नाचने आदिकी क्रियाओंमें प्रवृत्त हुए देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्योंका जो चित्र खींचा जाता है उसे चित्रकर्म कहते हैं। पोत्तका अर्थ वस्त्र होता है। उससे की गई प्रतिमाओंका नाम पोत्तकर्म है। कट (तृण), शर्करा (शक्कर) व मृत्तिका आदिके लेपका नाम लेप्य है। उससे निर्मित प्रतिमाओंका नाम लेप्यकर्म है। लयनका अर्थ पर्वत होता है। उसमें निर्मित प्रतिमाओंका नाम लयनकर्म है। शैलका अर्थ पत्थर होता है। उसमें निर्मित प्रतिमाओंका नाम शैलकर्म है। गृहोंसे अभिप्राय यहां जिनगृहादिकोंका है। उनमें की गई प्रतिमाओंका नाम गृहकर्म है। अभिप्राय यह कि घोड़ा, हाथी, मनुष्य एवं वराह (शूकर) आदिके स्वरूपसे निर्मित घर गृहकर्म कहलाते है। घरकी दीवालोंमें उनसे अभिन्न रची गई प्रतिमाओंका नाम भित्तिकर्म है। हाथीके दांतोंपर खोदी हुई प्रतिमाओंका नाम दन्तकर्म है। भेंडसे निर्मित प्रतिमाओंका नाम भेंडकर्म है। ये दस सद्भावस्थापनाके उदाहरण हैं।

असद्भावस्थापनाकृतिके उदाहरण अक्ष और वराटक आदि जानने चाहिये। 'अक्ष' शब्दसे द्यूत (जुआ) के पाँसों और गाडींके धुराका तथा वराटक शब्दसे कौडियोंका ग्रहण होता है। उपलक्षणरूपसे यहां स्तम्भकर्म, तुलाकर्म, हलकर्म और मुसलकर्म आदिको ग्रहण करना चाहिये। जिसमें स्थापित किया जाता है वह स्थापना है। 'अमा' अर्थात् अभेदरूपसे स्थापना अर्थात् सद्भाव व असद्भावरूप स्थापनामें 'यह कृति है' इस प्रकार जो स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाकृति कही जाती है।

जा सा दव्वकदी णाम सा दुविहा आगमदो दव्वकदी चेव णोआगमदो दव्वकदी चेव ॥ ५३ ॥

जो वह द्रव्यकृति है वह आगमद्रव्यकृति और नोआगमद्रव्यकृतिके भेदसे दो प्रकारकी है ॥

आगम, सिद्धान्त व श्रुतज्ञान; इन शब्दोंका एकही अर्थ है। जो आप्तवचन पूर्वापरविरोध आदि दोषोंके समूहसे रहित होकर सब पदार्थोंका प्रकाशक होता है वह आगम कहलाता है। इस आगमसे जो द्रव्यकी कृति है वह आगमद्रव्यकृति कहलाती है। इस आगमद्रव्यकृतिसे भिन्न नोआगमद्रव्यकृति जानना चाहिये। इस प्रकार द्रव्यकृतिके कृतिकी दो भेदोंकी प्ररूपणा करके अब आगे आगमभेदोंके प्ररूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं-

जा सा आगमदो दव्वकदी णाम तिस्से इमे अट्ठाहियारा भवंति-ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं ॥ ५४ ॥

जो वह आगमसे द्रव्यकृति है उसके ये अर्थाधिकार हैं- स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम ॥ ५४ ॥

ये आगमके नौ अधिकार हैं। इनमें जो पुरुष वृद्ध व व्याधिपीड़ितके समान भावआगममें धीरे धीरे संचार करता है वह उस प्रकारके संस्कारसे युक्त पुरुष और वह भावागम भी

स्थित होकर प्रवृत्ति करनेसे-- रुक रुक कर चलनेसे-- स्थित कहलाता है। जिनका अर्थ नैःसंग-वृत्ति है। अभिप्राय यह कि जिस संस्कारसे पुरुष भावागममें अस्खलित स्वरूपसे संचार करता है उससे युक्त पुरुष और वह भावगम भी 'जित' कहा जाता है। जिस जिस विषयमें प्रश्न किया जाता है उस उसमें अतिशय शीघ्रतापूर्वक प्रवृत्तिका नाम परिचित है। अभिप्राय यह कि क्रमसे, अक्रमसे और अनुभयस्वरूपसे भावागमरूपी समुद्रमें मछलीके समान अत्यन्त चंचलतापूर्ण प्रवृत्ति करनेवाला प्राणी और वह भावागम भी परिचित कहा जाता है।

शिष्योंके पढ़ानेका नाम वाचना है। वह चार प्रकार है नन्दा, भद्रा, जया और सौम्या। इनमें अन्य दर्शनोंको पूर्वपक्ष रूपसे स्थापित करके उनका निराकरण करते हुए अपने पक्षको स्थापित करनेवाली व्याख्या नन्दा कहलाती है। युक्तियों द्वारा समाधान करके पूर्वापर विरोधका परिहार करते हुए सिद्धान्तमें स्थित समस्त पदार्थोंकी व्याख्याका नाम भद्रा है। पूर्वापर-विरोधके परिहारके विना सिद्धान्तके अर्थोंका कथन करना, यह जया वाचना कहलाती है। कहीं कहीं स्खलनपूर्ण वृत्तिसे जो व्याख्या की जाती है वह सौम्या वाचना कही जाती है। इन चार प्रकारकी वाचनाओंको प्राप्त हुआ आगम वाचनोपगत कहलाता है। अभिप्राय यह है कि जो दूसरोंको ज्ञान करानेके लिये समर्थ होता है उसे वाचनोपगत जानना चाहिये। इस आगमार्थका व्याख्यान करनेवालोंको और सुननेवालोंको भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारोंका शुद्धि-पूर्वकही करनेमें और सुननेमें प्रवृत्त होना चाहिये।

तीर्थंकर जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए बीजपदको सूत्र कहते हैं। उस सूत्रके साथ उत्पन्न होकर जो श्रुतज्ञान गणधर देवमें अवस्थित होता है उसका नाम सूत्रसम है। बारह अंगोंका विषय अर्थ कहलाता है, उस अर्थके साथ जो आगम रहता है उसे अर्थसम कहते हैं। अभिप्राय इसका यह है कि द्रव्यसूत्रके धारक आचार्योंकी अपेक्षा न करके संयमके निमित्तसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जो द्वादशांग श्रुत स्वयंबुद्धोंको प्राप्त होता है उसे अर्थसम समझना चाहिये। गणधर देवके द्वारा रचा गया द्रव्यश्रुत ग्रन्थ कहलाता है, उसके साथ जो द्वादशांगश्रुत बोधितबुद्ध आचार्योंमें अवस्थित रहता है उसका नाम ग्रन्थसम है। 'नाना मिनोति' इस निरूक्तिके अनुसार जो अनेक प्रकारसे अर्थका परिच्छेद न करता जो जानता है उसे नाम कहते हैं। अभिप्राय यह एक आदि अक्षरको लेकर बारह अंगोंसम्बन्धी अनुयोगोंके मध्यमें स्थित द्रव्यश्रुत-ज्ञानके समस्त भेदोंको नाम समझना चाहिये। उस नामके साथ जो शेष आचार्योंमें श्रुतज्ञान उत्पन्न व स्थित होता है वह नामसम कहलाता है। घोषका अर्थ अनुयोग है, उस अनुयोगके साथ जो उत्पन्न होता है वह घोषसम कहलाता है।

अब इन आगमों विषयक उपयोगोंकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेक्खणा वा थय-थुदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया ॥ ५५ ॥

उन नौ आगमोंविषयक वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा और भी इनको आदि लेकर जो अन्य हैं वे उपयोग हैं ॥ ५५ ॥

अन्य भव्य जीवोंके लिये शक्त्यनुसार उन नौ आगमोंविषयक ग्रन्थके अर्थकी जो प्ररूपणा की जाती है वह वाचना उपयोग है। उक्त आगमोंमें नहीं जाने हुए अर्थके विषयमें पूछना, इसका नाम पृच्छना उपयोग है। आचार्य भट्टारकोंके द्वारा कथित अर्थके निश्चय करनेका नाम प्रतिच्छना उपयोग है। ग्रहण किया हुआ अर्थ विस्मृत न हो जावे, एतदर्थ वार वार भावागमका परिशीलन करना; यह परिवर्तना उपयोग कहलाता है। कर्मोंकी निर्जराके लिये पूर्ण रूपसे हृदयंगम किये गये श्रुतज्ञानके परिशीलन करनेका नाम अनुप्रेक्षणा उपयोग है। सब अंगोंके विषयकी प्रधानतासे बारह अंगोंके उपसंहार करनेको स्तव कहते हैं। इसमें जो वाचना, पृच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षणा स्वरूप उपयोग होता है उसे भी उपचारसे स्तव कहा जाता है। बारह अंगोंमें एक अंगके उपसंहारका नाम स्तुति है। साथ ही उसमें जो उपयोग होता है वह उसे भी स्तुति ही जानना चाहिये। एक अंगके एक अधिकारके उपसंहार और तद्विषयक उपयोगका नाम धर्मकथा है। 'इनको आदि लेकर और भी जो अन्य हैं' ऐसा 'सूत्रमें' कहनेपर उससे अन्य जो कृति व वेदना आदि अधिकार हैं उनके उपसंहार विषयक उपयोगोंका भी ग्रहण करना चाहिये। 'उपयोग' शब्द यद्यपि सूत्रमें नहीं है तो भी अर्थापत्तिसे उसका यहां अध्याहार करना चाहिये। इस प्रकार यहां ये आठ श्रुतज्ञानोपयोग कहे गये हैं।

यहां कृति अनुयोगद्वार प्रकृत है। तद्विषयक इन उपयोगोंको इस प्रकार समझना चाहिये— अन्य जीवोंके लिये कृतिके अर्थकी प्ररूपणा करना, वाचना कहलाती है। कृतिविषयक अज्ञात अर्थके विषयमें पूछनेका नाम पृच्छना है। तद्विषयक प्ररूपित किये जानेवाले अर्थका निश्चय करनेको प्रतीच्छना कहते हैं। विस्मरण न होने देनेके लिये वार वार कृतिके अर्थका परिशीलन करना, परिवर्तना कहलाती है। कर्मनिर्जराके लिये सांगीभूत कृतिका पुनः पुनः विचार करना अनुप्रेक्षणा कही जाती है। कृतिके उपसंहारके समस्त अनुयोगद्वारोंविषय उपयोगका नाम स्तव है। कृतिके एक अनुयोगद्वार विषयक उपयोगका नाम स्तुति है। एक मार्गणाविषयक उपयोग धर्मकथा कहलाता है। इस प्रकार ये कृतिविषयक आठ उपयोग हैं।

इन उपयोगोंसे भिन्न जीव चाहे श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे सहित हो अथवा उसके विनष्ट क्षयोपशमवाला हो, वह अनुपयुक्त कहलाता है।

अब आगे नयोंके आश्रयसे अनुपयुक्तोंकी प्ररूपणा की जाती है—

णेगम-ववहाराणमेगो अणुवजुतो आगमदो दव्वकदी अणेया वा अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी ॥ ५६ ॥

नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा एक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति है अथवा अनेक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति है ॥ ५६ ॥

संगहणयस्स एयो वा अणेया वा अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी ॥ ५७ ॥

संग्रह नयकी अपेक्षा एक अथवा अनेक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति है ॥ ५७ ॥

उजुसुदस्स एओ अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी ॥ ५८ ॥

ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा एक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति है ॥ ५८ ॥

सद्दणयस्स अवत्तव्वं ॥ ५९ ॥

शब्दनयकी अपेक्षा अवक्तव्य है ॥ ५९ ॥

सा सव्वा आगमदो दव्वकदी णाम ॥ ६० ॥

वह सब आगमसे द्रव्यकृति कहलाती है ॥ ६० ॥

जा सा णोआगमदो दव्वकदी णाम सा तिविहा-जाणुगसरीरदव्वकदी भवियदव्वकदी जाणुगसरीर-भविय तव्वदिरित्तदव्वकदी चेदि ॥ ६१ ॥

जो वह नोआगमसे द्रव्यकृति है वह तीन प्रकारकी है– ज्ञायकशरीर द्रव्यकृति, भावी द्रव्यकृति और ज्ञायकशरीर भावीव्यतिरिक्त द्रव्यकृति ॥ ६१ ॥

कृतिप्राभृतके जानकार जीवका जो शरीर है तत्स्वरूप द्रव्यकृति ज्ञायकशरीर नोआगम-द्रव्यकृति कहलाती है । जो भविष्यमें कृति पर्यायस्वरूपसे परिणत होनेवाला है तत्स्वरूप द्रव्यकृति भावी नोआगम द्रव्यकृति कही जाती है । इन दोनोंसे भिन्न द्रव्यकृतिको तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकृति समझना चाहिये ।

आगे इन्हीं तीनों कृतियोंकी विशेष प्ररूपणा की जाती है–

जा सा जाणुगसरीर दव्वकदी णाम तिस्से इमे अत्थाहियारा भवंति-ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं ॥ ६२ ॥

जो वह ज्ञायकशरीर द्रव्यकृति है उसके ये अर्थाधिकार हैं– स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम ॥ ६२ ॥

उनमें धीरे धीरे अपने विषयमें वर्तमान कृतिअनुयोग स्थित कहलाता है । बिना रुकावटके मन्द गतिसे अपने विषयमें संचार करनेवाला कृतिअनुयोग जित कहलाता है । रुकावटके विना अति शीघ्र गतिसे घुमाए हुए कुम्हारके चक्रके समान जो कृतिअनुयोग अपने विषयमें संचार करनेमें समर्थ है वह परिजित है । नन्दा-भद्रा आदिके स्वरूपको प्राप्त कृतिविषयक श्रुतज्ञानका नाम वाचनोपगत है । जिन भगवान्‌के मुखसे निकला हुआ जो बीजपद अनन्त अर्थोंके ग्रहण करनेमें समर्थ है वह सूत्र कहलाता है; इस सूत्रके साथ गणधर देवोंमें उत्पन्न हुए कृतिअनुयोग-द्वारका नाम सूत्रसम है । ग्रन्थ और बीज पदोंके विना संयमके प्रभावसे केवलज्ञानके समान जो स्वयंबुद्धोंमें कृतिअनुयोग उत्पन्न होता है वह अर्थके साथ रहनेसे अर्थसम कहा जाता है । अरहन्त

देवके द्वारा जिस शब्दकलापका अर्थ कहा गया है तथा जो गणधरोंसे ग्रन्थित किया गया है ऐसे शब्दकलापका नाम ग्रन्थ है। उससे उत्पन्न होकर भद्रबाहु आदि स्थविरोंमें रहनेवाला कृतिअनुयोग ग्रन्थके साथ रहनेसे ग्रन्थ सम कहलाता है। बुद्धिविहीन पुरुषोंके भेदसे एक दो अक्षर आदिकोंसे हीन कृतिअनुयोग 'नाना मिनोति' अर्थात् जो नाना अर्थोंको ग्रहण करता है वह नाम है, इस निरुक्तिके अनुसार 'नाम' कहा जाता है। उसके साथ रहनेवाले भावकृतिअनुयोगको नामसम कहते हैं। उस कृतिअनुयोगद्वारका एक अनुयोग घोष कहलाता है। उससे उत्पन्न कृति अनुयोगको और उससे न उत्पन्न होकर भी जो उसके समान है ऐसे कृतिअनुयोगको भी घोषसम कहते हैं। इस प्रकार कृतिअनुयोग नौ प्रकारका होनेसे उसके ज्ञायक भी नौ होते है।

तस्स कदिपाहुडजाणयस्स चुद-चइद-चत्तदेहस्स इमं सरीरमिदि सा सव्वा जाणुगसरीरदव्वकदी णाम ॥ ६३ ॥

च्युत, च्यावित और त्यक्त शरीरवाले उस कृतिप्राभृतज्ञायकका यह शरीर है, ऐसा जानकर वह सब ज्ञायकशरीरद्रव्यकृति कहलाती है ॥ ६३ ॥

आयुके क्षयसे जिसका शरीर स्वयं विनष्ट हुआ है ऐसा कृतिप्राभृतका ज्ञायक जीव च्युतदेह कहलाता है। जिसका शरीर उपसर्गके द्वारा नष्ट हुआ है ऐसा कृतिप्राभृतका जानकार साधु च्यावितदेह कहा जाता है। भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमनकी विधिसे शरीरको छोड़नेवाला कृतिप्राभृतका जानकार साधु त्यक्तदेह कहलाता है। इन च्युत, च्यावित और त्यक्त देहवाले कृतिप्राभृतके ज्ञायकोंका यह शरीर है, ऐसा मानकर वे सब शरीर ज्ञायकशरीर द्रव्यकृति कहलाते हैं।

जा सा भवियदव्वकदी णाम-जे इमे कदि त्ति अणियोगद्दारा भविओवकरणदाए जो ट्ठिदो जीवो ण य पुण ताव तं करेदि सा सव्वा भविओदव्वकदी णाम ॥ ६४ ॥

जो वह भावी द्रव्यकृति है उसका स्वरूप इस प्रकार है-- जो ये कृतिअनुयोगद्वार हैं भविष्यमें उनके उपादान कारण स्वरूपसे जो स्थित होकर भी वर्तमानमें उसे नहीं कर रहा है वह सब भावी द्रव्यकृति है ॥ ६४ ॥

जा सा जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी णाम सा अणेयविहा। तं जहा—गंथिम-वाइम-वेदिम-पूरिम-संघादिम-आहोदिम-णिक्खोदिम-ओवेल्लिम-उव्वेल्लिम-वण्ण-चुण्ण-गंध-विलेवणादीणि जे चामण्णे एवमादिया सा सव्वा जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी णाम ॥

जो वह ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न द्रव्यकृति है वह अनेक प्रकारकी है। वह इस प्रकारसे- ग्रन्थिम, वाइम, वेदिम, पूरिम, संघातिम, आहोदिम, णिक्खोदिम, ओवेल्लिम, उद्वेल्लिम, वर्ण, चूर्ण, गन्ध और विलेपन आदि तथा और जो अन्य इसी प्रकार हैं वह सब ज्ञायकशरीर-भावि-व्यतिरिक्त द्रव्यकृति कही जाती है ॥ ६५ ॥

उनमें गूंथनेरूप क्रियासे सिद्ध हुए पुष्पमाला आदि द्रव्यको ग्रन्थिम कहते हैं। बुनना क्रियासे सिद्ध हुए सूप, टिपारी, चंगेर (एक प्रकारकी बड़ी टोकरी) चालनी, कम्बल और वस्त्रादि द्रव्य वाइम कहलाते हैं। वेदन क्रियासे सिद्ध हुए सुति (सोम निकालनेका स्थान), इंधुव (भट्टी), कोश और पल्य आदि द्रव्य वेदिम कहे जाते हैं। पूरण क्रियासे सिद्ध हुए तालावका बांध व जिनगृहका चबूतरा आदि द्रव्योंका नाम पूरिम है। लकड़ी, ईंट और पत्थर आदिकी संघातन क्रियासे सिद्ध हुए कृत्रिम जिनभवन, गृह, प्राकार और स्तूप आदि द्रव्य संघातिम कहलाते हैं। आहोदिम क्रियासे सिद्ध हुए नीम, आम, जामुन और जंबीर आदि द्रव्योंको आहोदिम कहते हैं। आहोदिम क्रियासे यहां सचित्त और अचित्त द्रव्योंकी रोपज क्रियाको ग्रहण करना चाहिये। खोदने रूप पुष्करिणी, वापी, कूप, सिद्ध हुए तडाग, लयन और सुरंग आदि द्रव्य णिक्खोदिम कहलाते हैं। ओवेल्लन क्रियासे सिद्ध हुए एकगुणे, दुगुणे एवं तिगुणे डोरा आदि द्रव्य ओवेल्लिम कहे जाते हैं। ग्रन्थिम व वाइम आदि द्रव्योंके उद्वेल्लनसे उत्पन्न द्रव्य उद्वेल्लिम कहे जाते हैं। चित्रकार एवं वर्णोंके उत्पादनमें निपुण दूसरोंकी भी क्रियासे सिद्ध मनुष्य व घोड़ा आदि अनेक आकाररूप द्रव्य वर्ण कहे जाते हैं। चूर्णन क्रियासे सिद्ध हुए पिष्ट, पिष्टिका और कणिका आदि द्रव्योंको चूर्ण कहते हैं। बहुत द्रव्योंके संयोगसे उत्पादित गन्धप्रधान द्रव्यका नाम गन्ध है। घिसे व पीसे गये चन्दन और कुंकुम आदि द्रव्य विलेपन कहे जाते हैं। 'इनको आदि लेकर जो और द्रव्य हैं' इस सूत्र वचनसे जोड़कर व काटकर बनाये गये द्विसंयोगादि द्रव्योंके अस्तित्वकी प्ररूपणा की गई है।

जा सा गणणकदी णाम सा अणेयविहा। तं जहा-एओ णोकदी, दुवे अवत्तव्वा कदि त्ति-वा णोकदि त्ति वा, तिप्पहुडि जाव संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा कदी, सा सव्वा गणणकदी णाम ॥ ६६ ॥

जो वह गणनकृति है वह अनेक प्रकार है। वह इस प्रकारसे— एक संख्या नोकृति है, दो संख्या कृति और नोकृति रूपसे अवक्तव्य है, तीनको आदि लेकर संख्यात, असंख्यात व अनन्त संख्यायें कृति कहलाती हैं। वह सब गणनकृति कही जाती है ॥ ६६ ॥

'एक' यह नोकृति है। इसका कारण यह है कि जो राशि वर्गित होकर वृद्धिको प्राप्त होती है तथा जो अपने वर्गमेंसे अपने ही वर्गमूलको कम करके वर्ग करनेपर वृद्धिको प्राप्त होती है उसे कृति कहते हैं। 'एक' संख्याका वर्ग करनेपर चूंकि वह वृद्धि नहीं होती तथा उसमेंसे वर्गमूलको कम कर देनेपर वह निर्मूलही नष्ट हो जाती है इसी लिये 'एक' संख्या नोकृति है, ऐसा सूत्रमें कहा है। यह 'एक' संख्या गणनाका प्रकार मात्र है।

दो अंकोंका वर्ग करनेपर चूंकि वृद्धि देखी जाती है, अतः 'दो' को नोकृति नहीं कहा जा सकता है। और चूंकि उसके वर्गमेंसे मूलको कम करके वर्गित करनेपर वह वृद्धिको प्राप्त नहीं होती, किन्तु पूर्वोक्त राशि ही रहती है; अतः 'दो' को कृति भी नहीं कहा जा सकता है। यह विचार करके 'दो' संख्याको अवक्तव्य कहा गया है। यह द्वितीय गणनाकी जाति है।

तीनको आदि लेकर जिस किसी भी संख्याके वर्गित करनेपर चूंकि वह बढ़ती है और उसमेंसे वर्गमूलको कम करके पुनः वर्ग करनेपर वृद्धिको भी प्राप्त होती है; इसी कारण उसे 'कृति' कही जाती है। यह तृतीय गणनाकृतिका विधान है। इनके अतिरिक्त चतुर्थ कोई गणनाकृति नहीं हैं, क्यों कि, इन तीनोंको छोड़कर और दूसरी कोई गणना पायी नहीं जाती। अभिप्राय यह है कि 'एक-एक' ऐसी गणना करनेपर नोकृतिगणना, 'दो-दो' इस प्रकार गणना करनेपर अवक्तव्य गणना, तथा 'तीन-चार व पांच' इत्यादि क्रमसे गणना करनेपर कृतिगणना कहलाती है। इस प्रकार गणनाकृति तीन प्रकार ही है।

जा सा गंथकदी णाम सा लोए वेदे समए सद्दपबंधणा अक्खरकव्वादीणं जा च गंथरचणा कीरदे सा सव्वा गंथकदी णाम ॥ ६७ ॥

जो वह ग्रन्थकृति है वह लोकमें, वेदमें व समयमें शब्दसन्दर्भरूप अक्षरात्मक काव्यादिकोंके द्वारा जो ग्रन्थरचना की जाती है वह सब ग्रन्थकृति कहलाती है ॥ ६७ ॥

यह ग्रन्थकृति नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकारकी है। उनमें भाव ग्रन्थकृति आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारकी है। इनमें ग्रन्थकृति प्राभृतका जानकार उपयुक्त जीव आगमभावग्रन्थकृति कहलाता है। नोआगमभाव ग्रन्थकृति श्रुत और नोश्रुतके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमें श्रुत तीन प्रकारका है-- लौकिक, वैदिक और सामायिक। इनमेंसे प्रत्येक द्रव्य और भाव श्रुतके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे शब्दात्मक द्रव्यश्रुत तद्व्यतिरिक्त नोआगम-द्रव्यग्रन्थकृतिमें गर्भित है। हाथी, घोड़ा, तंत्र, कोटिल्य एवं वात्सायन कामशास्त्रादि विषयक ज्ञान लौकिक भावश्रुत ग्रन्थ कहलाता है। द्वादशांगादिविषयक बोधका नाम वैदिक भावश्रुत ग्रन्थ है। तथा नैयायिक, वैशेषिक, लोकायत, सांख्य, मीमांसक और बौद्ध; इत्यादि दर्शनोंको विषय करनेवाला बोध सामायिक भावश्रुत ग्रन्थ कहा जाता है। इनकी शब्दसंदर्भरूप अक्षर-काव्योंद्वारा प्रतिपाद्य अर्थको विषय करनेवाली जो ग्रन्थरचना की जाती है वह श्रुतग्रन्थकृति कही जाती है। नोश्रुतग्रन्थ-कृति अभ्यन्तर और बाह्यके भेदसे दो प्रकारकी है। इनमें अभ्यन्तर नोश्रुतग्रन्थकृति मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चौदह प्रकारकी तथा बाह्य नोश्रुतग्रन्थकृति क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, यान, शयनासन, कुप्य और भाण्डके भेदसे दस प्रकारकी है। ये क्षेत्रादि ग्रन्थ (परिग्रह) चूंकि अभ्यन्तर ग्रन्थके कारण होते हैं अतएव व्यवहार नयकी अपेक्षा कारणमें कार्यका उपचार करके इन्हें भी ग्रन्थ कहा जाता है। इनके परित्यागका नाम निर्ग्रन्थता है। मिथ्यात्वादिरूप उपर्युक्त चौदहकी 'ग्रन्थ' यह संज्ञा निश्चय नयकी अपेक्षा समझना चाहिये; क्यों कि, वे कर्मबन्धके कारण हैं। इनके परित्यागका नाम निर्ग्रन्थता है।

जा सा करणकदी णाम सा दुविहा मूलकरणकदी चेव उत्तरकरणकदी चेव। जा सा मूलकरणकदी णाम सा पंचविहा ओरालियसरीरमूल करणकदी वेउव्वियसरीर मूलकरण-

कदी आहारसरीर मूलकरणकदी तेयासरीरमूलकरणकदी कम्मइयसरीरमूलकरणकदी चेदि ॥

करणकृति दो प्रकारकी है— मूलकरणकृति और उत्तरकरणकृति। इनमें मूलकरणकृति पांच प्रकारकी है— औदारिकशरीर मूलकरणकृति, वैक्रियिकशरीर मूलकरणकृति, तैजसशरीर मूलकरण-कृति और कार्मणशरीर मूलकरणकृति ॥ ६८ ॥

सब करणोंमें शरीरको मूलकरण माना जाता है, कारण कि अन्य करणोंकी प्रवृत्ति उसके ही निमित्तसे होती है। वह औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणके भेदसे पांच प्रकारका है। इन पांच शरीरात्मक मूलकरणोंका जो संघातन आदिरूप कार्य है उसे मूलकरणकृति कही जाती है। शरीरके अतिरिक्त जो तलवार, बसूला, परशु एवं कुदारी आदि अन्य करण हैं उनके कार्यको उत्तरकरणकृति जाननी चाहिये। इन सबके कार्यको जो कृति कही गयी है वह 'क्रियते इति कृतिः' इस निरुक्तिके अनुसार भावकी प्रधानतासे कही गया है। 'क्रियते अनया' इस व्युत्पत्तिके अनुसार करणकी प्रधानतासे उक्त मूल और उत्तर करणोंको कृति समझनी चाहिये। अब उपर्युक्त पांच भेदोंमें प्रत्येकके भेदोंको बतलानेके लिये आगेका सूत्र प्राप्त होता है—

जा सा ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरमूलकरणकदी णाम सा तिविहा-संघादण-कदी परिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी चेदि। सा सव्वा ओरालिय-वेउव्विय-आहार-सरीरमूलकरणकदी णाम ॥ ६९ ॥

जो वह औदारिक-वैक्रियिक-आहारकशरीर मूलकरणकृति है वह तीन प्रकारकी है— संघातनकृति, परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति। वह सब औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरमूलकरणकृति है ॥ ६९ ॥

इनमेंसे विवक्षित शरीरके परमाणुओंका निर्जराके विना जो संचय होता है उसे संघातन-कृति कहते हैं। उन्हीं विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंकी संचयके विना जो निर्जरा होती है वह परिशातनकृति कहलाती है। तथा विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंका जो आगमन और निर्जरा एकही साथ होती है उसे संघातन-परिशातनकृति कही जाती है। उनमेंसे तिर्यंच और मनुष्योंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति ही होती है, क्यों कि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंकी निर्जरा नहीं पायी जाती। द्वितीय समयसे लेकर आगेके समयोंमें उन्हींके औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है, क्यों कि, द्वितीयादिक समयोंमें अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन औदारिकशरीरके स्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों पाये जाते हैं। तथा तिर्यंच और मनुष्यों द्वारा उत्तर शरीरके उत्पन्न करनेपर औदारिकशरीरकी परिशातनकृति होती है, क्यों कि, उस समय औदारिकशरीरके स्कन्धोंका आगमन सम्भव नहीं है।

देव व नारकियोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति होती है, क्यों कि, उस समय वैक्रियिक शरीरके स्कन्धोंकी निर्जरा नहीं होती। उन्हींके द्वितीयादिक समयोंमें

उसकी संघातन-परिशातनकृति होती है, क्यों कि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों एक साथ देखे जाते हैं। तथा उत्तर शरीरका उत्पादन कर मूल शरीरमें प्रविष्ट हुए देव व नारकीके मूलशरीरकी परिशातनकृति होती है, क्यों कि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंका आगमन नहीं होता।

इसी प्रकार आहारशरीरको उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें उसकी संघातनकृति, द्वितीयादि समयोंमें संघातन-परिशातनकृति तथा मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेपर परिशातनकृति जाननी चाहिये।

जा सा तेजा-कम्मइयसरीरमूलकरणकदी णाम सा दुविहा परिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी चेदि। सा सव्वा तेजा-कम्मइयसरीरमूलकरणकदी णाम ॥ ७० ॥

जो वह तैजस-कार्मणशरीरमूलकरणकृति है वह दो प्रकारकी है— परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति। वह सब तैजस-कार्मणशरीरमूलकरणकृति है ॥ ७० ॥

अयोगकेवलीके जानेके इन दोनों शरीरोंकी परिशातनकृति होती है। इसका कारण यह है कि उनके योगका अभाव हो जानेसे बन्धका सर्वथा विनाश हो चुका है। अयोगकेवलीको छोड़कर अन्य सब ही संसारी जीवोंके उक्त दोनो शरीरोंकी संघातन-परिशातनकृति ही होती है, क्यों कि, संसारमें सर्वत्र उनका आगमन और निर्जरा दोनों पाये जाते हैं। इन दोनों शरीरोंकी संघातनकृति सम्भव नहीं है, क्योंकि बन्ध, सत्त्व और उदयसे रहित हुए सिद्ध जीवोंके बन्धके कारणोंकी सम्भवना न रहनेसे उनके इन दोनों शरीरोंका नवीन बन्ध सम्भव नहीं हैं। ये सब तैजसशरीर और कार्मणशरीररूप मूलकरणकृतियां हैं, ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त सूत्रोंद्वारा मूलकरणकृतियोंके सत्त्वकी प्ररूपणा करके अब आगे उत्तरकरणकृतिकी प्ररूपणा की जाती है—

जा सा उत्तरकरणकदी णाम सा अणेयविहा। तं जहा— असि-वासि-परसु-कुडारी-चक्क-दंड-वेयणालिया-सलाग-मट्टिय-सुत्तोदयादीणमुवसंपदसण्णिज्झे ॥ ७१ ॥

जो वह उत्तरकरणकृति है वह अनेक प्रकारकी है। यथा— असि, वासि, परशु, कुदारी, चक्र, डण्ड, वेम, नालिका, शलाका, मृत्तिका, सूत्र और उदकादिकोंका सामीप्य कार्योंमें होता है॥

औदारिकादि पांच शरीर जीवके साथ रहते हुए चूंकि अन्य सब करणोंके कारण हैं, अतएव वे मूलकरण माने गये हैं। उनके कारण होनेसे इन असि व वासि आदिको उत्तरकरण समझना चाहिये। वह उत्तरकरणकृति अनेक प्रकारकी है।

जो द्रव्यका आश्रय करते हैं वे उपसंपद अर्थात् कार्य कहलाते हैं। उनकी समीपताका नाम उपसंपदसान्निध्य है, इसलिये असि, वासि, परशु, कुदारी, चक्र, दण्ड, वेम, नालिका, शलाका, मृत्तिका, सूत्र और उदक आदि कार्योंकी समीपताके आश्रयसे उत्तरकरण कहलाते हैं।

जे चामण्णे एवमादिया सा सव्वा उत्तरकरणकदी णाम ॥ ७२ ॥

इसी प्रकार और भी जो अन्यकरण हैं वे सब उत्तरकरणकृति कहलाती हैं ॥ ७२ ॥

कारण यह कि इसके इतने ही कारण है, इस प्रकार करणोंकी नियत संख्या सम्भव नहीं है।

जा सा भावकरणकदी [भावकदी] णाम सा उवजुत्तो पाहुडजाणगो ॥ ७३ ॥

कृतिप्राभृतका जानकार जो उपयोग युक्त जीव है वह सब भाव करणकृति (भावकृति) है ॥

सा सव्वा भावकदी णाम ॥ ७४ ॥

वह सब भावकृति है ॥ ७४ ॥

एदासिं कदीणं काए कदीए पयदं ? गणणकदीए पयदं ॥ ७५ ॥

इन कृतियोंमें कौन-सी कृति प्रकृत है ? गणनकृति प्रकृत है ॥ ७५ ॥

॥ इस प्रकार कृतिअनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स चउत्थे-वेयणाखंडे

२. वेदणाणियोगद्दारे १. वेयणणिक्खेवो

वेदणा त्ति । तत्थ इमाणि वेयणाए सोलस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति— वेदणणिक्खेवे वेदणणयविभासणदाए वेदणणामविहाणे वेदणदव्वविहाणे वेदणखेत्तविहाणे वेदणकालविहाणे वेदणभावविहाणे वेदणपच्चयविहाणे वेदणसामित्तविहाणे वेदण-वेदणविहाणे वेदणगइविहाणे वेदणअंणतरविहाणे वेदणसण्णियासविहाणे वेयणपरिमाणविहाणे वेयणभागाभागविहाणे वेयणअप्पाबहुगे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदना अधिकार प्रकरण प्राप्त है । उसमें वेदनाके ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं— वेदनानिक्षेप वेदनानयविभाषणता, वेदनानामविधान, वेदनाद्रव्यविधान, वेदनाक्षेत्रविधान, वेदनाकालविधान, वेदनाभावविधान, वेदनाप्रत्ययविधान, वेदनास्वामित्वविधान, वेदना-वेदनाविधान, वेदनागतिविधान, वेदना-अनन्तरविधान, वेदनासान्निकर्षविधान, वेदनापरिमाणविधान, वेदनाभागाभागविधान और वेदनाअल्पबहुत्व ॥ १ ॥

१. वेदना शब्दके अनेक अर्थ हैं । उनमें कौनसा अर्थ यहां विवक्षित है, इसका उल्लेख वेदनानिक्षेप अनुयोगद्वारमें किया गया है । २. उपर्युक्त नामादि निक्षेपरूप व्यवहार किस किस नयकी अपेक्षासे होता है, इसका विवेचन वेदननयविभाषणता अनुयोगद्वारमें किया गया है । ३. जीवमें बन्ध, उदय और सत्त्व रूपसे जो पुद्गलस्कन्ध अवस्थित हैं उनके विषयमें किस किस नयका कहां कहां कैसा प्रयोग होता हैं; इसकी प्ररूपणा वेदनानामविधान अनुयोगद्वारमें की गई है । ४. अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन जो पुद्गलस्कन्ध जीवसे सम्बन्ध होते हैं उनका नाम वेदनाद्रव्य है, वह वेदनारूप द्रव्य अनेक प्रकारका है, इसका विचार वेदना द्रव्यविधान अनुयोगद्वारमें किया गया है । ५. वेदनाद्रव्योंकी अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर घनलोक प्रमाण तक होती है, इसका विवेचन वेदनाक्षेत्रविधान अनुयोगद्वारमें किया गया है । ६. वह वेदनाद्रव्य वेदनाके स्वरूपको न छोड़कर जघन्य और उत्कर्ष रूपसे कितने काल रहता है, इसकी प्ररूपणा वेदनाकालविधान अनुयोगद्वारमें की गई है । ७. वेदनाद्रव्य-स्कन्धमें संख्यात, असंख्यात और अनन्तगुणे भावभेदोंका प्रतिषेध करके अनन्तानन्त भावभेदोंके सद्भावकी प्ररूपणा वेदनाभावविधान अनुयोगद्वारमें की गई है । ८. वेदनाप्रत्ययविधान अनुयोग-

द्वारमें उक्त वेदनाद्रव्यके क्षेत्र, काल और भावोंके कारणोंका विवेचन किया गया है। ९. एक आदिके संयोगसे आठ भंगरूप जो जीव और नोजीव आदि हैं– वे वेदनाके स्वामी होते हैं व नहीं होते हैं, इसकी प्ररूपणा नयोंके आश्रयसे वेदनास्वामित्व अनुयोगद्वारमें की गई है। १०. एक दो आदिके संयोगसे भेदको प्राप्त हुई बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त प्रकृतियोंके भेदसे जो वेदनाके अनेक विकल्प होते हैं– उनकी प्ररूपणा नयोंके आश्रयसे वेदना-वेदनाविधान अनुयोगद्वारमें की गई है। ११. द्रव्यादिके भेदसे भेदको प्राप्त हुई वेदना क्या स्थित है, क्या अस्थित है, और क्या स्थित-अस्थित है; इसका विचार नयोंके आश्रयसे वेदनागतिविधान अनुयोगद्वारमें किया गया है। १२. वेदना-अनन्तरविधान अनुयोगद्वारमें नयविवक्षाके अनुसार एक एक समयप्रबद्धरूप अनन्तर बन्ध, नाना समयप्रबद्धरूप परम्पराबन्ध तथा उभयबन्धरूप कर्मपुद्गलस्कन्धोंकी प्ररूपणा नयविवक्षाके अनुसार की गई है। १३. द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप वेदनाके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य एवं अजघन्यमेंसे किसी एकको मुख्य करके शेष पद क्या उत्कृष्ट होते हैं या अनुत्कृष्ट आदि होते हैं; इसकी परीक्षा वेदनासंनिकर्षविधान अनुयोगद्वारमें की गई है। १४. वेदनापरिमाण-विधान अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंके काल और क्षेत्रके भेदसे मूल व उत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणकी प्ररूपणा की गई है। १५. प्रकृत्यर्थता, स्थित्यर्थता और क्षेत्रप्रत्यासमें उत्पन्न प्रकृतियां सब प्रकृति-योंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं; इसका विचार वेदनाभागाभागविधान अनुयोगद्वारमें किया गया है। १६. तथा वेदना-अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारमें इन्हीं तीन प्रकारकी प्रकृतियोंके एक दूसरोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार इस वेदना महाधिकारमें इन सोलह अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा की गई है–

वेयणणिक्खेवे त्ति चउव्विहे वेयणणिक्खेवे ॥ २ ॥

अब क्रमसे वेदनानिक्षेप अधिकार प्रकरण प्राप्त है। वह वेदनाका निक्षेप चार प्रकारका है ॥

णामवेयणा ट्ठवणवेयणा दव्ववेयणा भाववेयणा चेदि ॥ ३ ॥

नामवेदना, स्थापनावेदना, द्रव्यवेदना और भाववेदना ॥ ३ ॥

उनमेंसे एक जीव व अनेक जीव आदि आठ प्रकारके बाह्य अर्थका अवलम्बन न करनेवाला 'वेदना' शब्द नामवेदना है।

'वह वेदना यह है' इस प्रकार अभेदरूपसे अन्य पदार्थमें वेदनारूपसे जिसका अध्य-वसाय होता है उसका नाम स्थापनावेदना है। वह स्थापनावेदना सद्भावस्थापना और असद्भाव-स्थापनाके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे जो द्रव्यका भेद प्रायः वेदनाके समान है उसमें इच्छित वेदनाद्रव्यकी स्थापना करना, इसे सद्भावस्थापनावेदना कहते हैं। जो द्रव्यका भेद वेदनाके समान नहीं है उसमें वेदनाद्रव्यकी कल्पना करनेको असद्भावस्थापनावेदना कहा जाता है।

द्रव्यवेदना दो प्रकारकी है– आगमद्रव्यवेदना और नोआगमद्रव्यवेदना। जो जीव

वेदनाप्राभृतका जानकार है, किन्तु तद्विषयक उपयोगसे रहित है वह आगमद्रव्यवेदना है। नोआगम-द्रव्यवेदना ज्ञायकशरीर, भावी व तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारकी है। उनमेंसे ज्ञायकशरीर-नोआगमद्रव्यवेदना भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारकी है। जो जीव भविष्यमें वेदनाअनुयोगद्वारके उपादान कारण स्वरूपसे परिणत होनेवाला है वह भावी नोआगम-द्रव्यवेदना है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यवेदना कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे कर्म नोआगमद्रव्यवेदना ज्ञानावरणादिके भेदसे आठ प्रकारकी तथा नोकर्म नोआगमद्रव्य-वेदना सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारकी है। उनमेंसे सचित्त द्रव्यवेदना सिद्ध जीव द्रव्य है। अचित्त द्रव्यवेदना पुद्‌गल, काल, आकाश, धर्म और अधर्म द्रव्य हैं। मिश्र द्रव्यवेदना संसारी जीवद्रव्य है, क्यों कि कर्म और नोकर्मका जीवके साथ समवाय है वह जीव और अजीवसे भिन्न नहीं देखा जाता है।

भाववेदना आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे जो जीव वेदनानु-योगद्वारका जानकार होकर उसमें उपयुक्त है वह आगमभाववेदना है। नोआगमभाववेदना जीव-भाववेदना और अजीवभाववेदनाके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे जीवभाववेदना औदयिक आदिके भेदसे पांच प्रकारकी है। आठ प्रकारके कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुई वेदना औदयिक वेदना है। कर्मोंके उपशमसे उत्पन्न हुई वेदना औपशमिक वेदना है। उनके क्षयसे उत्पन्न हुई वेदना क्षायिक वेदना है। उनके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई अवधिज्ञानादिस्वरूप वेदना क्षायोपशमिक वेदना है। जीवत्व, भव्यत्व व उपयोग आदि स्वरूप वेदना पारिणामिक वेदना है। अजीवभाववेदना दो प्रकारकी है-- औदयिक और पारिणामिक। उनमें प्रत्येक पांच रस, पांच वर्ण, दो गन्ध और आठ स्पर्श आदिके भेदसे अनेक प्रकारकी है।

॥ वेदनानिक्षेप समाप्त हुआ ॥ १ ॥

---

२. वेयण-णयविभासणदा

वेयण-णयविभासणदाए को णओ काओ वेयणाओ इच्छदि ॥ १ ॥

वेदना-नयविभाषणता अधिकारके अनुसार कौन नय किन वेदनाओंको स्वीकार करता है? ॥ १ ॥

पिछले वेदनानिक्षेप अनुयोगद्वारमें 'वेदना' शब्दके अनेक अर्थ निर्दिष्ट किये गये हैं। उनमें प्रकृतमें कौन-सा अर्थ ग्राह्य है, यह नयभेदोंकी अपेक्षा करता है। इसीलिये यहां यह वेदना-नयविभाषणता अधिकार प्राप्त हुआ है।

णेगम-ववहार-संगहा सव्वाओ ॥ २ ॥

नैगम, व्यवहार और संग्रह ये तीन नय उपर्युक्त सभी वेदनाओंको स्वीकार करते हैं ॥२॥

उजुसुदो ट्ठवणं णेच्छदि ॥ ३ ॥

ऋजुसूत्र नय स्थापनानिक्षेपको स्वीकार नहीं करता है ॥ ३ ॥

कारण इसका यह है कि ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा पुरुषके संकल्पके अनुसार एक पदार्थका अन्य पदार्थ रूपसे परिणमन नहीं पाया जाता है ।

सद्दणओ णामवेयणं भाववेयणं च इच्छदि ॥ ४ ॥

शब्दनय नामवेदना और भाववेदनाको स्वीकार करता है ॥ ४ ॥

उपर्युक्त वेदनाओंमेंसे यहां द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा बन्ध, सत्त्व एवं उदयस्वरूप नो-आगमकर्मद्रव्य वेदना; ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा उदयगत कर्मद्रव्यवेदना; तथा शब्दनयकी अपेक्षा कर्मके बन्ध और उदयसे उत्पन्न भाववेदना प्रकृत है ।

॥ वेदना-नयविभाषणता समाप्त हुई ॥ २ ॥

३. वेयणणामविहाणं

वेयणाणामविहाणे त्ति । णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा दंसणावरणीयवेयणा वेयणीयवेयणा मोहणीयवेयणा आउववेयणा णामवेयणा गोदवेयणा अंतराइयवेयणा ॥ १ ॥

अब वेदनानामविधान अधिकार प्राप्त है। नैगम व व्यवहार नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय-वेदना, दर्शनावरणीयवेदना, वेदनीयवेदना, मोहनीयवेदना, आयुवेदना, नामवेदना, गोत्रवेदना और अन्तरायवेदना; इस प्रकार वेदना आठ भेदरूप है ॥ १ ॥

इस वेदनानामविधान अधिकारमें प्रकृत वेदनाके भेदों और उनके नामोंकी प्ररूपणा की गई है । तदनुसार यहां द्रव्यार्थिक (नैगम व व्यवहार) नयकी अपेक्षा नोआगमकर्मवेदना यहां प्रकृत है । प्रकृत सूत्रके द्वारा यहां उसके आठ भेदों और उनके नामोंकी प्ररूपणा की गई है । नामप्ररूपणामें इन ज्ञानावरणीयवेदना आदि पदोंको सार्थक समझना चाहिये । जैसे– जो ज्ञानका आवरण करता है वह ज्ञानावरणीय कर्मद्रव्य कहलाता है । इस ज्ञानावरणीयस्वरूप जो वेदना है उसे ज्ञानावरणीयवेदना समझना चाहिये ।

संगहस्स अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणा ॥ २ ॥

संग्रहनयकी अपेक्षा आठों ही कर्मोंकी एक वेदना होती है ॥ २ ॥

इस नामके आश्रयसे यहां वेदनाके विधानकी प्ररूपणा पूर्वके समान करनी चाहिये, क्योंकि, उससे यहां कोई विशेषता नहीं है। इस नयकी अपेक्षा नामविधानकी प्ररूपणा करते समय आठोंही कर्मोंकी वेदना, ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि, संग्रहनयकी अपेक्षा 'आठ' इस संख्यामें ज्ञानावरणादि कर्मोंके सब भेद सम्भव है। सूत्रमें जो एक 'वेदना' शब्द प्रयुक्त है उससे वेदनाके सब भेदोंकी अविनाभाविनी एक वेदना जातिका ग्रहण होता है, क्यों कि इनके बिना संग्रह वचन सम्भव नहीं है। संग्रहनयका काम एक सामान्य धर्म द्वारा अवान्तर सब भेदोंका संग्रह करना है। अभिप्राय यह कि नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा प्रकृत वेदना आठ प्रकारकी बतलाई है। किन्तु यह संग्रहनय उन आठोंही कर्मोंकी एक वेदना जातिको स्वीकार करता है, क्योंकि, उक्त संग्रहनयमें अभेदकी प्रधानता है। यही कारण है कि इस नयकी अपेक्षा आठोंही कर्मोंकी एक वेदना कही गई है।

उजुसुदस्स णो-णाणावरणीयवेयणा णो दंसणावरणीयवेयणा णो मोहणीयवेयणा णो आउअवेयणा णो णामवेयणा णो गोदवेयणा णो अंतराइयवेयणा, वेयणीयं चेव वेयणा ॥

ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा न ज्ञानावरणीयवेदना है, न दर्शनावरणीयवेदना है, न मोहनीय-वेदना है, न आयुवेदना है, न नामवेदना है, न गोत्रवेदना है और न अन्तरायवेदना है। उसकी अपेक्षा एक वेदनीय ही वेदना है ॥ ३ ॥

वेदनाका अर्थ सुख-दुःख होता है, क्यों कि, लोकमें ऐसा ही व्यवहार देखा जाता है। ये सुख-दुःख वेदनीयरूप पुद्गलस्कन्धको छोड़कर अन्य कर्मद्रव्योंसे नहीं उत्पन्न होते हैं। यदि उक्त सुख-दुखका किसी अन्य कर्मसे उत्पन्न होना सम्भव हो तो फिर वेदनीय कर्मका कोई कार्य ही नहीं रह जाता है, इसीलिये उक्त वेदनीय कर्मके अभावका प्रसंग अनिवार्य होगा इसलिये प्रकृतमें सब कर्मोंका प्रतिषेध करके उदयगत वेदनीयद्रव्यको ही 'वेदना' ऐसा कहा है।

सद्दणयस्स वेयणा चेव वेयणा ॥ ४ ॥

शब्द नयकी अपेक्षा वेदना ही वेदना है ॥ ४ ॥

शब्द नयकी अपेक्षा वेदनीय द्रव्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ सुख-दुःख अथवा आठ कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुआ जीवका परिणाम वेदना कहलाता है। इस नयकी अपेक्षा कर्मद्रव्यको वेदना नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, शब्द नयका विषय द्रव्य सम्भव नहीं है।

॥ इस प्रकार वेदनानामविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

--०※०--

४. वेयणदव्वविहाणं

वेयणादव्वविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति— पदमीमांसा सामित्तमप्पाबहुए त्ति ॥ १ ॥

अब वेदनाद्रव्यविधानका प्रकरण है। उसमें पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

प्रकृत वेदनाद्रव्यविधान अनुयोगद्वारमें वेदनारूप जो द्रव्य है उसके विधानस्वरूप उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य आदि भेदोंकी प्ररूपणा की गई है। उसमें पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार जाननेके योग्य हैं। इनमेंसे पदमीमांसा अनुयोगद्वारमें उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि पदोंकी मीमांसा (विचार) की गई है। स्वामित्व अनुयोगद्वारमें उक्त उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट आदि पदोंके योग्य जीवोंकी प्ररूपणा की गई है। और अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारमें उन्हींकी हीनाधिकता बतलाई गई है।

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेदना दव्वदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ? ॥ २ ॥

पदमीमांसा अधिकारप्राप्त है। ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्यसे क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है और क्या अजघन्य है ? ॥ २ ॥

यह पृच्छासूत्र है। तदनुसार इसमें यह पूछा गया है कि उक्त ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है, और क्या अजघन्य है। प्रकृत सूत्रके देशामर्शक होनेसे यहां सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ओज, युग्म, ओम, विशिष्ट और नोम-नोविशिष्ट; इन नौ पद विषयक अन्य नौ पृच्छाओंको भी ग्रहण करना चाहिये।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा ॥ ३ ॥

उक्त ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट भी है, अनुत्कृष्ट भी है, जघन्य भी है, और अजघन्य भी है ॥ ३ ॥

उपर्युक्त प्रश्नोंके उत्तर स्वरूप यहां यह कहा गया है कि वह ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, क्योंकि, भवस्थितिके अन्तिम समयमें वर्तमान गुणितकर्मांशिक सप्तम पृथिवीके नारकीके उसका उत्कृष्ट द्रव्य पाया जाता है। कथंचित् वह अनुत्कृष्ट है, क्यों कि, कर्मस्थितिके अन्तिम समयवर्ती उक्त गुणितकर्मांशिक नारकीको छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र उसका अनुत्कृष्ट द्रव्य पाया जाता है। कथंचित् वह जघन्य है, क्यों कि, क्षपितकर्मांशिक जीवके क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें उसका जघन्य द्रव्य पाया जाता है। कथंचित् वह अजघन्य भी है, क्योंकि, उक्त क्षपितकर्मांशिक जीवको छोड़कर अन्यत्र उसका अजघन्य द्रव्य पाया जाता है।

यहां गुणितकर्मांशिक और क्षपितकर्मांशिकका स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये— जो जीव पूर्वकोटिपृथक्त्व और दो हजार सागरोपमोंसे (त्रसस्थितिकाल) हीन सत्तर कोडाकोडि सागरोपम प्रमाण बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें रहा है, वहां रहते हुए भी जिसने पर्याप्त भवोंको अधिक और अपर्याप्त भवोंको अल्प संख्यामें ग्रहण किया है, जो उपर्युक्त पर्याप्त भवोंमें उत्पन्न होता हुआ लंबी आयुको लेकर तथा अपर्याप्त भवोंमें उत्पन्न होता हुआ अल्प आयुको ले करके उत्पन्न हुआ है, जो आयुबन्धकालमें आयुबन्धके योग्य जघन्य योगसे उस आयुको बांधता रहा है, जिसका उत्कर्षणद्रव्य क्षपितकर्मांशिक, क्षपित-घोलमान और गुणित-घोलमान जीवोंकी अपेक्षा अधिक तथा अपकर्षणद्रव्य उन्हींकी अपेक्षा अल्प रहा है; जो अनेक बार उत्कृष्ट योगस्थानोंमें तथा बहुत संक्लेश परिणामोंमें वर्तमान रहा है; इस प्रकार बादर पृथिवीकायिकोंमें परिभ्रमण करके तत्पश्चात् जो बादर त्रस पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ है, वहां उत्पन्न होते हुए भी जिसने दीर्घ आयुके साथ पर्याप्त भवोंको अधिक प्रमाणमें तथा अल्प आयुके साथ अपर्याप्त भवोंको अल्प प्रमाणमें धारण किया है, जिसका उत्कर्षण द्रव्य अधिक और अपकर्षण द्रव्य हीन रहा है, जो वहांपर बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको तथा बहुत संक्लेश परिणामोंको प्राप्त हुआ है; इस प्रकार परिभ्रमण करके जो अन्तिम भवग्रहणमें सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ है, वहांपर जो सर्वलघु अन्तमुहूर्त कालमें सब पर्याप्तियोंको पूर्ण करके पर्याप्त हुआ है, अपने जीवितकालमें जो बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको और बहुत संक्लेश परिणामोंको प्राप्त हुआ है, इस प्रकार परिभ्रमण करते हुए जो अन्तमुहूर्त मात्र आयुके शेष रहनेपर योगयव मध्यके ऊपर अन्तमुहूर्त कालतक स्थित रहा है तथा द्विचरम और त्रिचरम समयमें जो उत्कृष्ट संक्लेशको तथा चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ है; इस प्रकारका जीव उस नारक भवके अन्तिम समयमें वर्तमान होता हुआ गुणित-कर्मांशिक कहलाता है। (यह अभिप्राय आगे सूत्र ७ से ३२ में प्रगट किया है)

जो जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सत्तर कोडाकोडि सागरोपम प्रमाण काल तक सूक्ष्म निगोद जीवोंके मध्यमें रहा है, फिर वहांसे निकलकर जो बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें उत्पन्न होता हुआ सर्वलघु कालमें सब पर्याप्तियोंको पूर्ण करके पर्याप्त हो गया है, तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें मरणको प्राप्त होकर पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता हुआ जो गर्भमें सात मासके बीतनेपर जन्मको प्राप्त हुआ है, पुनः आठ वर्षका होकर जिसने संयमको प्राप्त कर लिया है, इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संयमको पालन करके जो थोड़ीसी आयुके शेष रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्त होता हुआ उस अल्पकालीन मिथ्यात्वयुक्त असंयमके साथ मरणको प्राप्त होकर दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ है, वहां सर्वलघुकालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर जिसने अन्तर्मुहूर्तमें ही सम्यक्त्वको प्राप्त होते हुए कुछ कम दस हजार वर्ष तक उसका परिपालन किया है, तत्पश्चात् आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर उसके साथ मरणको प्राप्त होता हुआ जो बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है, पुनः सूक्ष्म

निगोद जीवोंमें उत्पन्न होकर तत्पश्चात् फिरसे भी जो बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है, इस प्रकारसे परिभ्रमण करते हुए जिसने अनेकवार देवों व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर बत्तीस वार संयमको प्राप्त होते हुए चार वार कषायोंको उपशमाया है और पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र संयमासंयम एवं सम्यक्त्वको प्राप्त किया है, इस प्रकारसे परिभ्रमण करता हुआ जो अन्तिम भवमें फिरसे पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर सर्व लघुकाल (सात मासके अनन्तर) में जन्मको प्राप्त हुआ है तथा आठ वर्षकी अवस्थामें जिसने संयमको धारण कर लिया है, तत्पश्चात् कुछ कम पूर्वकोटि काल तक उसका परिपालन करके जो आयुके अल्प शेष रह जानेपर क्षपणामें उद्यत होकर छद्मस्थ अवस्थाके अन्तिम समयको प्राप्त हो चुका है; उसे क्षपितकर्मांशिक समझना चाहिये। (यह भाव आगेके ४०. से ७५ सूत्रोंमें मूल ग्रन्थकर्ताके द्वारा प्रगट किया गया है)

एवं सत्तणं कम्माणं ॥ ४ ॥

इसी प्रकार सात कर्मोंकी भी वेदनाके उत्कृष्ट आदि पदों की मीमांसा है ॥ ४ ॥

अभिप्राय यह कि जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मकी पदमीमांसा की गई है उसी प्रकार वह शेष सात कर्मोंकी भी जानना चाहिये. क्योंकि, इससे उसमें कोई विशेषता नहीं है।

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे ॥ ५ ॥

स्वामित्व दो प्रकारका है- जघन्य पदविषयक और उत्कृष्ट पदविषयक ॥ ५ ॥

सूत्रमें 'पदे' यह सप्तमी विभक्ति नहीं हैं, किन्तु प्रथमा विभक्ति है। यहां एकारका आदेश हो जानेसे 'पदे' यह रूप हो गया है। यहां 'पद' शब्दको स्थानवाचक समझना चाहिये। जिस स्वामित्वका जघन्य पद है वह जघन्यपद कहलाता है, और जिस स्वामित्वका उत्कृष्ट पद है वह उत्कृष्टपद कहलाता है। अथवा 'पदे' इसे सप्तमी विभक्त्यन्त भी मानकर उससे जघन्य पदमें (पदविषयक) एक स्वामित्व और उत्कृष्ट पदमें दूसरा स्वामित्व, इस प्रकार वह स्वामित्व दो ही प्रकारका है, यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये।

अब इनमें उत्कृष्ट पदविषयक स्वामित्वकी प्ररूपणा करते हुए प्रथमतः सत्ताईस (६-३२) सूत्रों द्वारा द्रव्यकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय सम्बन्धी वेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है—

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ ६ ॥

स्वामित्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट पदविषयक ज्ञानावरणीय वेदना द्रव्यसे उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥ ६ ॥

जो जीवो बादरपुढवीजीवेसु बेसागरोवमसहस्सेहि सादिरेगेहि ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो ॥ ७ ॥

जो जीव बादर पृथिकायिक जीवोंमें कुछ अधिक दो हजार सागरोपमसे कम कर्मस्थिति ज्ञानावरणीयकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण काल तक रहा हो ॥ ७ ॥

तत्थ य संसरमाणस्स बहुवा पज्जत्तभवा (थोवा अपज्जत्तभवा) ॥ ८ ॥

वहां परिभ्रमण करनेवाले जीवके पर्याप्त भव बहुत और अपर्याप्त भव थोड़े होते हैं ॥८॥

अभिप्राय यह है कि बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें परिभ्रमण करते हुए जिसने पर्याप्त भव थोड़े तथा अपर्याप्त भव बहुत ग्रहण किये हैं। भवोंकी यह बहुता और अल्पता क्षपितकर्मांशिक, क्षपितघोलमान और गुणितघोलमान जीवोंके भवोंकी अपेक्षा समझना चाहिये।

दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ ॥ ९ ॥

पर्याप्तकाल दीर्घ और अपर्याप्तकाल थोड़े होते हैं ॥ ९ ॥

अभिप्राय यह है कि पर्याप्तोंमें उत्पन्न होता हुआ जो दीर्घ आयुवाले पर्याप्त जीवोंमें ही उत्पन्न हुआ है तथा उनमें भी सर्वलघु कालमें जिसने पर्याप्तियोंको पूर्ण करके पर्याप्तकालको क्षपितकर्मांशिक आदिकी अपेक्षा दीर्घ और अपर्याप्तकालको अल्प किया है।

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गेण जहण्णएण जोगेण बंधदि ॥१०॥

जब जब वह आयुको बांधता है तब तब आयुबन्धके योग्य जघन्य परिणामयोगसे ही आयुको बांधता रहा है ॥ १० ॥

उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे ॥

उपरिम स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद होता है और अधस्तन स्थितियोंके निषेकका जघन्यपद होता है ॥ ११ ॥

सूत्रमें प्रयुक्त 'उक्कस्सपदे' और 'जहण्णपदे' इन दोनों पदोंको प्रथमान्त समझना चाहिये, न कि सप्तम्यन्त। अभिप्राय इसका यह है कि प्रकृत जीवका उत्कर्षण द्रव्य क्षपितकर्मांशिक, क्षपितघोलमान और गुणितघोलमानकी अपेक्षा बहुत तथा अपकर्षण द्रव्य इन्हीं तीनोंकी अपेक्षा अल्प रहता है।

बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ १२ ॥

बहुत बहुत बार जो उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

चूंकि उत्कृष्ट योगस्थानोंके द्वारा बहुत कर्मप्रदेशोंका आगमन होता है, अतः सूत्रमें 'बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है' ऐसा कहा गया है।

बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि ॥ १३ ॥

बहुत बहुत बार जो बहुत संक्लेशरूप परिणामवाला होता है ॥ १३ ॥

बहुत संक्लेश परिणामोंसे चूंकि बहुत द्रव्यका उत्कर्षण और उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ करता है, अतः सूत्रमें वैसा निर्दिष्ट किया गया है।

एवं संसरिदूण बादरतसपज्जत्तएसुववण्णो ॥ १४ ॥

इस प्रकार परिभ्रमण करके जो बादर त्रस पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

त्रसका उत्कृष्ट योग स्थावरके योगसे असंख्यातगुणा होनेके कारण चूंकि उसके द्वारा कर्मका संकलन अधिक होता है, अत एव यहां बादर त्रस पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होनेका निर्देश किया गया है।

तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ पज्जत्तभवा, थोवा अपज्जत्तभवा ॥ १५ ॥

वहां परिभ्रमण करते हुए जिसने पर्याप्त भवोंको अधिक और अपर्याप्त भवोंको अल्प मात्रमें ग्रहण किया है ॥ १५ ॥

दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ ॥ १६ ॥

वहां जिसका पर्याप्तकाल दीर्घ और अपर्याप्तकाल थोड़ा रहा है ॥ १६ ॥

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि ॥१७॥

जो जब जब आयुको बांधता है तब तब उसके योग्य जघन्य योगसे ही बांधता है ॥

उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे ॥ १८ ॥

जो उपरिम स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद और नीचेकी स्थितियोंके निषेकका जघन्यपद करता है ॥ १८ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय पिछले ग्यारहवे सूत्रके समान समझना चाहिये।

बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ १९ ॥

बहुत बहुत बार जो उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

बहुसो बहुसो बहुसंकिलेस परिणामो भवदि ॥ २० ॥

बहुत बहुत बार जो बहुत संक्लेश परिणामवाला होता है ॥ २० ॥

एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो ॥

इस प्रकार परिभ्रमण करके जो अन्तिम भवग्रहणमें नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥

तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्सेण जोगेण आहारिदो ॥

जिसने कर्मस्थितिके समान यहां भी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होकर उत्कृष्ट योगके द्वारा कर्मपुद्गलस्कन्धको ग्रहण किया ॥ २२ ॥

उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदो ॥ २३ ॥

उत्कृष्ट वृद्धिसे जो वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २३ ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ २४ ॥

अन्तर्मुहूर्त द्वारा जो सर्वलघु कालमें सभी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ ॥ २४ ॥

तत्थ भवट्ठिदी तेत्तीससागरोवमाणि ॥ २५ ॥

वहां [सातवीं पृथिवीमें] जो तेतीस सागरोपम प्रमाण काल तक अवस्थित रहा है ॥२५॥

आउअमणुपालेंतो बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ २६ ॥

जो आयुका उपभोग करता हुआ बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त हुआ है ॥

बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि ॥ २७ ॥

जो बहुत बहुत बार बहुत संक्लेश परिणामवाला हुआ है ॥ २७ ॥

एवं संसरिदूण थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्ध-मच्छिदो ॥ २८ ॥

इस प्रकार परिभ्रमण करके जीवितके थोडासा शेष रहजानेपर योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहा ॥ २८ ॥

श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र जो आठ समय योग्य योगस्थान हैं उनका नाम योगयव-मध्य है । अंकसंदृष्टिमें द्वीन्द्रिय पर्याप्तके सर्वजघन्य परिणामयोगस्थानसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणामयोगस्थान पर्यन्त सब योगस्थानोंकी रचना जो पंक्तिके आकारसे की जाती है उनका काल अपनी संख्याकी अपेक्षा मध्यमें स्थूल (आठ समयरूप) और दोनों पार्श्वभागोंमें चूंकि सूक्ष्म (४, ५, ६, ७, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २) है; अत एव वह रचना जौके आकारकी हो जाती है । इसीलिये उनके मध्यमें अवस्थित आठ समयरूप योगस्थानोंके 'यवमध्य' रूपसे सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये । उसके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा । यह इस सूत्रका अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये ।

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ २९ ॥

अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तर आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहा ॥ २९ ॥

दुचरिम-तिचरिमसमए उक्कस्ससंकिलेसं गदो ॥ ३० ॥

द्विचरम व त्रिचरम समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥

इन दो समयोंको छोड़कर अन्य समयोंमें निरन्तर उत्कृष्ट संक्लेशके साथ चूंकि बहुत काल तक रहना सम्भव नहीं है, अत एव इन दो समयोंमें ही उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ, ऐसा सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया है ।

चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो ॥ ३१ ॥

चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥

बहुत द्रव्यका संग्रह चूंकि उत्कृष्ट योगसे ही सम्भव है, अत एव सूत्रमें चरम व द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ, ऐसा कहा गया है।

चरिमसमयतब्भवत्थो जादो। तस्स चरिमसमयतब्भवत्थस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा ॥ ३२ ॥

इस प्रकारसे जो क्रमशः उक्त भव सम्बधी आयुको बिताता हुआ उस नारक भवके अन्तिम समयमें स्थित हुआ है उस चरम समयवर्ती तद्भवस्थ हुए उपर्युक्त जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ ३२ ॥

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ ३३ ॥

ज्ञानावरणीयकी उपर्युक्त उत्कृष्ट वेदनासे भिन्न उसकी अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना है ॥ ३३ ॥

पूर्वमें ज्ञानावरणीयका जो उत्कृष्ट द्रव्य निर्दिष्ट किया गया है उसको छोड़कर उसका शेष सब द्रव्य अनुत्कृष्ट वेदनास्वरूप है। यथा– अपकर्षणके वश उसके उत्कृष्ट द्रव्यमेंसे एक परमाणुके हीन होनेपर शेष सब रहा द्रव्य अनुत्कृष्ट कहा जाएगा। यह उस अनुत्कृष्ट द्रव्यका प्रथम विकल्प होगा। इस प्रकार दो तीन आदि परमाणुओंके क्रमसे उत्तरोत्तर हीन होनेवाला उसका द्रव्य अनुत्कृष्ट द्रव्य ही कहा जाएगा और वह क्रमसे उक्त अनुत्कृष्टके द्वितीय तृतीय आदि विकल्परूप होगा। इनमें उक्त उत्कृष्ट द्रव्यसे एक समयप्रबद्ध मात्र हीन उन अनुत्कृष्ट प्रदेशस्थानोंका स्वामी क्षपितकर्मांशिक ही होता है। उससे आगेके अनुत्कृष्ट प्रदेशस्थानोंके स्वामी गुणितघोलमान, क्षपितघोलमान और क्षपितकर्मांशिक जीवोंको समझना चाहिये।

एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं ॥ ३४ ॥

इसी प्रकारसे आयुकर्मको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी भी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

विशेष यहां इतना जानना चाहिये कि त्रसस्थितिसे हीन मोहनीयकी चालीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम तथा नाम व गोत्रकी उक्त त्रसस्थितिसे हीन बीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम स्थिति प्रमाण उक्त जीवको बादर एकेन्द्रियोंमें घुमाना चाहिये।

अब आगे १२ सूत्रों द्वारा आयु कर्मकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनाके स्वामीकी प्ररूपणा की जाती है--

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउववेदणा दव्वदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ ३५ ॥

स्वामित्वसे उत्कृष्ट पदमें आयु कर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है? ॥

जो जीवो पुव्वकोडाउओ परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु दीहाए आउवबंधगद्धाए तप्पाओग्गसंकिलेसेण उक्कस्सजोगे बंधदि ॥ ३६ ॥

जो जीव पूर्वकोटि प्रमाण आयुसे युक्त होकर परभव सम्बन्धी पूर्वकोटि प्रमाण आयुको जलचर जीवोंमें बांधता हुआ दीर्घ आयुबन्धकालमें तत्प्रायोग्य संक्लेशके साथ उत्कृष्ट योगमें बांधता है ॥

जिस जीवके द्रव्यकी अपेक्षा आयु कर्मकी उत्कृष्ट वेदना सम्भव है उसकी यहां तीन विशेषतायें दिखलायी गई हैं– उनमें प्रथम विशेषता यह है कि उसकी भुज्यमान आयु पूर्वकोटि प्रमाण होनी चाहिये। इसका कारण यह है कि जो पूर्वकोटिके त्रिभागको आबाधा करके परभव सम्बन्धी आयुको बांधा करते हैं उन्हींके आयुका उत्कृष्ट बन्धककाल सम्भव है, अन्य जीवोंके वह सम्भव नहीं है। सो वह पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण आबाधा पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले जीवके ही हो सकती है, अन्यके नहीं हो सकती है।

दूसरी विशेषता उसमें यह होती है कि वह परभवकी आयुको बांधते समय जलचर जीवोंकी ही आयुको बांधता है और उसे भी पूर्वकोटि प्रमाणमें बांधता है। सूत्रमें जो 'परभव सम्बन्धी' ऐसा कहा है उससे यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये कि जिस प्रकार ज्ञानावरणादि अन्य कर्मोंका उदय बन्धावलीके पश्चात् बन्धभवमें ही प्रारम्भ होता है उस प्रकार आयु कर्मका उदय बन्धभवमें सम्भव नहीं हैं, किन्तु उसका उदय परभवमें ही होता है। जलचर जीवोंमें आयुके बांधनेका कारण यह है कि उनमें विवेकका अभाव होनेसे संक्लेश कम होता है और इससे उनके अधिक द्रव्यकी निर्जरा नहीं होती।

तीसरी विशेषता उसकी यह है कि वह उपर्युक्त परभव सम्बन्धी आयुको दीर्घ आयुबन्धक कालमें उसके योग्य संक्लेशके साथ उत्कृष्ट योगमें बांधता है। 'उसके योग्य संक्लेशके साथ' यह कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार शेष कर्म उत्कृष्ट विशुद्धि और उत्कृष्ट संक्लेशके साथ बांधे जाते हैं उस प्रकार आयु कर्म उत्कृष्ट संक्लेशके साथ नहीं बांधा जाता है, किन्तु वह उसके योग्य मध्यम संक्लेशके साथ ही बांधा जाता है।

जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥ ३७ ॥

योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा ॥ ३७ ॥

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ३८ ॥

अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक रहा ॥३८॥

कमेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु जलचरेसु उववण्णो ॥ ३९ ॥

फिर क्रमसे कालको प्राप्त होकर पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले जलचर जीवोंमें उत्पन्न हुआ ॥

परभव सम्बन्धी आयुके बांध लेनेपर तत्पश्चात् भुज्यमान आयुका कदलीघात नहीं होता, किन्तु उसका वेदन यथास्वरूपसे ही होता है; इस अभिप्रायको प्रगट करनेके लिये यहां सूत्रमें 'क्रमसे कालको प्राप्त होकर' ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार बांधी गई उस आयुका अपकर्षण-स्वरूपसे घात न करके वहां उत्पन्न हुआ, इस भावको प्रगट करनेके लिये सूत्रमें 'पूर्वकोटि प्रमाण

आयुवालोंमें उत्पन्न हुआ' ऐसा कहा गया है। सूत्रमें 'जलचर जीवोंमें उत्पन्न हुआ' यह जो कहा गया है उसका अभिप्राय यह है कि जीव जिस प्रकार देवगति आदि अन्य कर्मोंको बांधकर भी वहां न उत्पन्न हो अन्यत्र भी उत्पन्न हो सकता है उस प्रकार आयुके विषयमें यह सम्भावना नहीं है। किन्तु जिस गति सम्बन्धी आयु बांधी गई है वहां ही जीव निश्चयसे उत्पन्न होता है, अन्यत्र उत्पन्न नहीं होता।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ४० ॥

अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा अति शीघ्र सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्तक हुआ ॥ ४० ॥

पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेका वह अन्तर्मुहूर्त काल जघन्य भी है और उत्कृष्ट भी हैं। उसमें उत्कृष्ट कालका प्रतिषेध करनेके लिये 'सर्वलघु' पदका ग्रहण किया है। उत्कृष्ट कालके प्रतिषेध करनेका कारण यह है कि दीर्घ कालके द्वारा बहुत गोपुच्छाओंके गल जानेसे बहुत निषेकोंकी निर्जरा सम्भव है जो प्रकृतमें अभीष्ट नहीं है। एक-दो पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेपर पर्याप्त हुआ जीव आयुबन्धके योग्य नहीं होता, किन्तु सभी-पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ जीव ही आयुबन्धके योग्य होता है; इस बातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्तक हुआ' ऐसा कहा गया है।

अंतोमुहुत्तेण पुणरवि परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु ॥ ४१ ॥

अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा फिर भी वह जलचरोंमें परभव सम्बन्धी पूर्वकोटि प्रमाण आयुको बांधता है ॥ ४१ ॥

अन्य आयुबन्धकों आयुबन्धकालकी अपेक्षा चूंकि जलचर जीवों सम्बन्धी आयुबन्धक-काल दीर्घ होता है, अत एव फिरसे भी यहां उन जलचर जीवों सम्बन्धी पूर्वकोटि प्रमाण आयुको बंधाया गया है।

दीहाए आउअबंधगद्धाए तप्पाओग्गउक्कस्सजोगेण बंधदि ॥ ४२ ॥

दीर्घ आयुबन्धककालके भीतर उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे उस आयुको बांधता है ॥४२॥

जोगजवमज्झस्सुवरि अंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥ ४३ ॥

योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा ॥ ४३ ॥

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ४४ ॥

अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहा ॥ ४४ ॥

बहुसो बहुसो सादद्धाए जुत्तो ॥ ४५ ॥

बहुत बहुत बार साताकालसे युक्त हुआ ॥ ४५ ॥

सातावेदनीयके बन्धके योग्य कालका नाम साताकाल और असातावेदनीयके बन्धके योग्य संक्लेशकालका नाम असाताकाल है। अवलम्बना करणके द्वारा गलनेवाले बहुत द्रव्यका निषेध करनेके लिये यहां साताकालस्वरूपसे बहुत बार परिणमाया गया है।

से काले परभवियमाउअं णिल्लेविहिदि त्ति तस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा ॥

तदनन्तर समयमें वह परभव सम्बन्धी आयुकी बन्धव्युच्छित्ति करेगा, अतः उसके आयुवेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ ४६ ॥

अभिप्राय इस सत्रका यह है कि जो जीव पूर्वकोटिके त्रिभागमें उत्कृष्ट आयुबन्धक कालके भीतर उसके योग्य उत्कृष्ट योगके द्वारा परभव सम्बन्धी आयुको बांधकर जलचर जीवोंमें उत्पन्न हुआ है तथा वहांपर जिसने सर्वजघन्य पर्याप्तिपूर्णताके कालमें छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकरके व तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल जीवित रह करके अन्तर्मुहूर्त कम उस पूर्वकोटि प्रमाण सब ही भुज्यमान आयुका सदृश खण्डस्वरूपसे कदलीघातके द्वारा एक ही समयमें घात कर डाला है और उस घात करनेके ही समयमें फिरसे भी जो जलचर सम्बन्धी पूर्वकोटि प्रमाण दूसरी एक परभविक आयुके बन्धको प्रारम्भ करता हुआ उत्कृष्ट आयुबन्धक कालके भीतर उसके योग्य उत्कृष्ट योगके द्वारा उसके बन्धको अनन्तर समयमें समाप्त करनेवाला है; उसके द्रव्यकी अपेक्षा आयु कर्मकी उत्कृष्ट वेदना होती है।

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सं ॥ ४७ ॥

उपर्युक्त उत्कृष्ट द्रव्यसे भिन्न द्रव्य उसकी (आयुकी) अनुत्कृष्ट वेदना है ॥ ४७ ॥

इस प्रकार आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट द्रव्यवेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा करके अब आगे उन्हींकी जघन्य द्रव्यवेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है—

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ? ॥ ४८ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें द्रव्यकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी जघन्य वेदना किसके होती है ? ॥

जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठि-दिमच्छिदो ॥ ४९ ॥

जो जीव सूक्ष्म निगोद जीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहा है ॥ ४९ ॥

तत्थ य संसरमाणस्स बहुवा अपज्जत्तभवा थोवा पज्जत्तभवा ॥ ५० ॥

वहां सूक्ष्म निगोद जीवोंमें परिभ्रमण करते हुए जिसके अपर्याप्त भव बहुत और पर्याप्त भव थोड़े रहे हैं ॥ ५० ॥

दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ ॥ ५१ ॥

जिसका अपर्याप्तकाल बहुत और पर्याप्तकाल थोड़ा रहा है ॥ ५१ ॥

क्षपित-घोलमान और गुणित-घोलमान अपर्याप्तककालसे जिसका अपर्याप्तकाल दीर्घ तथा उन्हींके पर्याप्तकालसे जिसका पर्याप्तकाल थोड़ा होता है, ऐसा यहां अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये।

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गुक्कस्सजोगेण बंधदि ॥ ५२ ॥

जब जब आयुको बांधता है तब तब जो उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे ही उसे बांधता है ॥

उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे ॥

जो उपरिम स्थितियोंके निषेकका जघन्य पद और अधस्तन स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद करता है ॥ ५३ ॥

अभिप्राय यह है क्षपित-घोलमान और गुणित-घोलमानके अपकर्षणसे क्षपितकर्मांशिकका अपकर्षण बहुत और उन्हींके उत्कर्षणसे उसका उत्कर्षण स्तोक होता है।

यहां सूत्रमें किये गये 'बहुसो बहुसो' इस निर्देशसे यह अभिप्राय समझना चाहिये कि कदाचित् जघन्ययोगस्थानोंके असम्भव होनेपर जो एक आधवार उत्कृष्ट योगस्थानको भी प्राप्त होता है।

बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ ५४ ॥

बहुत बहुत बार जो जघन्य योगस्थानोंको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि ॥ ५५ ॥

बहुत बहुत बार जो मन्द संक्लेशरूप परिणामोंसे युक्त होता है ॥ ५५ ॥

एवं संसरिदूण बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ५६ ॥

इस प्रकार परिभ्रमण करके जो बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ५७ ॥

अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा सर्वलघु कालमें जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है ॥ ५७ ॥

पर्याप्तियोंकी पूर्णताका काल जघन्य भी एक समय आदिरूप नहीं है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है; इस बातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' पदका ग्रहण किया है।

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो ॥ ५८ ॥

अन्तर्मुहूर्त कालमें जो मृत्युको प्राप्त होकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है ॥

पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें चूंकि संयमगुणश्रेणिके द्वारा दीर्घ काल तक संचित कर्मकी निर्जरा की जा सकती है; अत एव सूत्रमें 'पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ' ऐसा कहा गया है।

सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ ॥ ५९ ॥

सर्वलघु कालमें योनिसे निकलनेरूप जन्मसे उत्पन्न होकर आठ वर्षका हुआ ॥ ५९ ॥

गर्भमें आनेके प्रथम समयसे लेकर कोई जीव सात मास ही गर्भमें रहकर उससे निकलते हैं, कोई आठ मास, कोई नौ मास और कितने ही जीव दस मास रहकर उस गर्भसे निकलते हैं।

सूत्रमें निर्दिष्ट सर्वलघु कालसे यहां सात मासोंका ग्रहण करना चाहिये। इस गर्भनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न होकर जो आठ वर्षका हुआ है। गर्भसे बाहिर आनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्ष बीत जानेपर जीव संयमग्रहणके योग्य होता है, इसके पहले संयम ग्रहणके योग्य नहीं होता; यह इस सूत्रका भाव समझना चाहिये।

संजमं पडिवण्णो ॥ ६० ॥

संयमको प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥

तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो ॥ ६१ ॥

वहां कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थिति काल तक संयमका पालन करके जीवितसे थोडासा शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ॥ ६१ ॥

सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो ॥ ६२ ॥

मिथ्यात्व सम्बन्धी असंयमकालमें सबसे स्तोक रहा ॥ ६२ ॥

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो ॥ ६३ ॥

मिथ्यात्वके साथ मरणको प्राप्त होकर दस हजार वर्ष प्रमाण आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ६४ ॥

वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त कालमें सब पर्याप्तियोंसे हुआ ॥ ६४ ॥

अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो ॥ ६५ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥

तत्थ य भवट्ठिदिं दसवाससहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो ॥ ६६ ॥

वह कुछ कम दस हजार वर्ष (भवस्थिति) तक सम्यक्त्वका पालन कर जीवितके थोडासा शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ॥ ६६ ॥

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ६७ ॥

मिथ्यात्वके साथ मृत्युको प्राप्त होकर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ६८ ॥

सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त कालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ ॥ ६८ ॥

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीव-पज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ६९ ॥

अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर मरणको प्राप्त होकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ठिदिखंडयघादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण पुणरवि बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ७० ॥

पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकाण्डकघातशलाकाओंके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालमें कर्मको हतसमुत्पत्तिक (ह्रस्व) करके फिर भी बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ ॥ ७० ॥

एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामइत्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजमकंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि-पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो ॥ ७१ ॥

इस प्रकार नाना भवग्रहणोंके द्वारा आठ संयमकाण्डकोंका पालन करके, चार बार कषायोंको उपशमा करके तथा पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र संयमासंयमकाण्डकों व सम्यक्त्व-काण्डकोंका पालन करके; इस प्रकार परिभ्रमण कर अन्तिम भवग्रहणमें फिरसे भी पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ॥ ७१ ॥

अभिप्राय यह है कि चार बार संयमको प्राप्त करनेपर एक संयमकाण्डक पूर्ण होता है। ऐसे संयमकाण्डक अधिकसे अधिक आठ ही होते हैं। कारण यह कि इसके पश्चात् जीव संसारमें नहीं रहता-- वह नियमसे मुक्त होता है-- इन संयमकाण्डकोंमें कषायकी उपशामना (उपशमश्रेणिपर आरोहण) चार बार ही होता है, इससे अधिक बार वह सम्भव नहीं है। इतने संयमकाण्डकोंमें जीव संयमासंयमकाण्डकोंको अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भाग तथा सम्यक्त्वकाण्डकोंको वह इनसे विशेष अधिक करता है।

सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ ॥ ७२ ॥

वहां सर्वलघु (सात मास) कालमें योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न होकर आठ वर्षका हुआ ॥ ७२ ॥

संजमं पडिवण्णो ॥ ७३ ॥

उसी समय संयमको प्राप्त हुआ ॥ ७३ ॥

तत्थ भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति य खवणाए अब्भुट्ठिदो ॥ ७४ ॥

वहां कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थिति तक संयमका परिपालन करके जीवितके थोडासा शेष रह जानेपर क्षपणामें उद्यत हुआ ॥ ७४ ॥

चरिमसमयछदुमत्थो जादो । तस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीयवेदणा दव्वदो जहण्णा ॥ ७५ ॥

इस प्रकार क्षपणाको करते हुए जो अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थ हुआ है उस अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थके ज्ञानावरणीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ ७५ ॥

चरमसमयवर्ती छद्मस्थसे अभिप्राय यहां क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयको प्राप्त होनेका है । कारण यह कि छद्म नाम आवरणका है, उस आवरणमें जो स्थित रहता है वह छद्मस्थ है; यह 'छद्मस्थ' शब्दका निरुक्त्यर्थ होता है ।

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ ७६ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा इस जघन्यसे भिन्न ज्ञानावरणीयकी सब वेदना अजघन्य कही जाती है ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं । णवरि विसेसो मोहणीयस्स खवणाए अब्भुट्ठिदो चरिमसमयकसाई जादो । तस्स चरिमसमयसकसाइस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा ॥ ७७ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मकी भी जघन्य द्रव्यवेदना जानना चाहिये । विशेष इतना है कि मोहनीयकी क्षपणामें उद्यत हुआ जीव सकषाय भावके अन्तिम समयको जब प्राप्त होता है तब उस अन्तिम समयवर्ती सकषायीके द्रव्यकी अपेक्षा मोहनीयकी वेदना जघन्य होती है ॥ ७७ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ ७८ ॥

इससे भिन्न उक्त तीनों कर्मोंकी अजघन्य द्रव्यवेदना जानना चाहिये ॥ ७८ ॥

जघन्य द्रव्यके ऊपर उत्तरोत्तर परमाणुक्रमसे वृद्धिके होनेपर जितने उसके विकल्प सम्भव हैं वे सब इस अजघन्य वेदनाके अन्तर्गत हैं, यह अभिप्राय समझना चाहिये ।

अब आगे ३० (७९-१०८) सूत्रोंके द्वारा वेदनीय कर्म सम्बन्धी जघन्य द्रव्यवेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है--

सामित्तेण जहण्णपदे वेदणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ? ॥ ७९ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें वेदनीय वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥

जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियकम्मट्ठिदिमच्छिदो ॥ ८० ॥

जो जीव सूक्ष्म निगोद जीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण रहा है ॥ ८० ॥

तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ अपज्जत्तभवा थोवा पज्जत्तभवा ॥ ८१ ॥

उनमें परिभ्रमण करते हुए जिसके अपर्याप्त भव स्तोक होते हैं ॥ ८१ ॥

दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ ॥ ८२ ॥

उक्त अपर्याप्त और पर्याप्त भवोंमें जिसका अपर्याप्तकाल बहुत और पर्याप्तकाल अल्प रहा है ॥ ८२ ॥

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गउक्कस्सएण जोगेण बंधदि ॥

जब जब वह आयुको बांधता है तब तब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगसे बांधता है ॥ ८३ ॥

उवरिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे ॥

जो उपरिम स्थितियोंके निषेकका जघन्य पद और अधस्तन स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद करता है ॥ ८४ ॥

बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ ८५ ॥

बहुत बहुत बार वह जघन्य योगस्थानोंको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥

बहुसो बहुसो मंदसकिलेसपरिणामो भवदि ॥ ८६ ॥

बहुत बहुत बार मन्द संक्लेश परिणामोंसे संयुक्त होता है ॥ ८६ ॥

एवं संसरिदूण बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ८७ ॥

इस प्रकार संसरण करके जो बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥८७॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ८८ ॥

सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त कालमें जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है ॥ ८८ ॥

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो ॥ ८९ ॥

अन्तर्मुहूर्तमें जो मृत्युको प्राप्त होकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है ॥८९॥

सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ ॥ ९० ॥

वहांपर जो सर्वलघु कालमें योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न होकर आठ वर्षका हुआ है ॥

संजमं पडिवण्णो ॥ ९१ ॥

तदनन्तर समयमें जो संयमको प्राप्त हुआ है ॥ ९१ ॥

तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो ॥ ९२ ॥

वहां जो कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थिति तक संयमका पालन करके जीवितके थोड़ा शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया है ॥ ९२ ॥

सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो ॥ ९३ ॥

इस प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जो उस मिथ्यात्वसम्बन्धी असंयमकालमें थोड़ा ही रहा है ॥ ९३ ॥

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो ॥ ९४ ॥

तत्पश्चात् जो उस मिथ्यात्वके साथ मृत्युको प्राप्त होकर दस हजार वर्षकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥ ९४ ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ९५ ॥

वहां जो अन्तर्मुहूर्तमें सर्वलघु कालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है ॥ ९५ ॥

अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो ॥ ९६ ॥

इस प्रकारसे पर्याप्त होकर जो अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त हो चुका है ॥ ९६ ॥

तत्थ य भवट्ठिदिं दसवाससहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीवदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो ॥ ९७ ॥

वहां कुछ कम दस हजार वर्ष प्रमाण भवस्थिति तक उस सम्यक्त्वका पालन करके जो जीवितके थोड़ा शेष रह जानेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया है ॥ ९७ ॥

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ ९८ ॥

उस मिथ्यात्वके साथ कालको प्राप्त होकर जो बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥ ९८ ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ९९ ॥

वहां जो अन्तर्मुहूर्त द्वारा सर्वलघु कालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ है ॥ ९९ ॥

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ १०० ॥

वहां अन्तर्मुहूर्तमें मृत्युको प्राप्त होकर जो सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ट्ठिदिखंडयघादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण पुणरवि बादर पुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो ॥ १०१ ॥

पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिकाण्डकघातोंद्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र कालमें कर्मको हतसमुत्पत्तिक करके जो फिरसे भी बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥ १०१ ॥

एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामइत्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजमकंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता, एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो ॥ १०२ ॥

इस प्रकार नाना भवग्रहणोंमें आठ संयमकाण्डकोंका पालन करके, चार बार कषायोंको

उपशमा कर तथा पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण संयमासंयमकाण्डकों व सम्यक्त्वकाण्डकोंका पालन करके; इस प्रकार परिभ्रमण करके अन्तिम भवग्रहणमें फिरसे भी जो पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है ॥ १०२ ॥

सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ ॥ १०३ ॥

वहां जो सर्वलघु कालमें योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न होकर आठ वर्षका हुआ है ॥

संजमं पडिवण्णो ॥ १०४ ॥

आठ वर्षका होनेपर जो संयमको प्राप्त हुआ है ॥ १०४ ॥

अंतोमुहुत्तेण खवणाए अब्भुट्ठिदो ॥ १०५ ॥

इस प्रकार संयमको प्राप्त करके जो अन्तर्मुहूर्तमें क्षपणाके लिये उद्यत हुआ है ॥१०५॥

अंतोमुहुत्तेण केवलणाणं केवलदंसणं च समुप्पादइत्ता केवली जादो ॥ १०६ ॥

तत्पश्चात् जो अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान और केवलदर्शनको उत्पन्न कर केवली हो गया है ॥

तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं केवलिविहारेण विहरित्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति चरिमसमयभवसिद्धियो जादो ॥ १०७ ॥

वहां कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थिति प्रमाण काल तक केवलीके रूपमें विहार करके जीवितके थोड़ासा शेष रह जानेपर जो अन्तिम समयवर्ती भव्यसिद्धिक हुआ है ॥ १०७ ॥

तस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स वेदणीयवेयणा जहण्णा ॥ १०८ ॥

उस अन्तिम समयवर्ती भव्यसिद्धिकके वेदनीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ १०९ ॥

उपर्युक्त वेदनाके विरुद्ध उसकी जघन्य वेदना द्रव्यकी अपेक्षा अजघन्य होती है ॥१०९॥

एवं णामा-गोदाणं ॥ ११० ॥

इसी प्रकार द्रव्यकी अपेक्षा नाम व गोत्र कर्मकी भी जघन्य एवं अजघन्य वेदनाकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥ ११० ॥

जिस प्रकार वेदनीय कर्मके जघन्य व अजघन्य द्रव्यकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार नाम और गोत्र कर्मकी भी प्ररूपणा करना चाहिये; क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

सामित्तेण जहण्णपदे आउगवेदणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ? ॥ १११ ॥

स्वामित्वकी अपेक्षा जघन्य पदमें आयु कर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥ १११ ॥

जो जीवो पुव्वकोडाउओ अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु आउअं बंधदि रहस्साए आउअबंधगद्धाए ॥ ११२ ॥

जो पूर्वकोटिकी आयुवाला जीव नीचे सप्तम पृथिवीके नारकियोंमें थोड़े आयुबन्धक काल द्वारा आयुको बांधता है ॥ ११२ ॥

जो पूर्वकोटि आयुवाला जीव सातवीं पृथिवीकी आयुको बांधता है वह अवलम्बनाकरणके द्वारा आयुकर्मके बहुतसे द्रव्यको गलाता है, इसीलिये यहां पूर्वकोटि आयुवाले जीवको ग्रहण किया गया है। परभव सम्बन्धी आयुकर्मके उपरिम द्रव्यका अपकर्षण वश नीचे गिरनेका नाम अवलम्बनाकरण है।

तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि ॥ ११३ ॥

उसे तत्प्रायोग्य जघन्य योगसे बांधता है ॥ ११३ ॥

जोगजवमज्झस्स हेट्ठदो अंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥ ११४ ॥

योगयवमध्यके नीचे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा है ॥ ११४ ॥

पढमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ११५ ॥

प्रथम जीवगुणहानिस्थानान्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहा ॥ ११५ ॥

कमेण कालगदसमाणो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो ॥ ११६ ॥

फिर क्रमसे मृत्युको प्राप्त होकर नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ ॥ ११६ ॥

जिसने परभव सम्बन्धी आयुको बांध लिया है वह कदलीघात नहीं करता है, यह नियम है। इसीलिये जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिके त्रिभाग तक अवलम्बनाकरणको करके व अपवर्तनाघातके द्वारा परभविक आयुको न घातकर नारकियोंमें उत्पन्न हुआ है, यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण जहण्णजोगेण आहारिदो ॥

उसी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवने जघन्य उपपाद योगके द्वारा आहारग्रहण किया ॥ ११७ ॥

जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो ॥ ११८ ॥

जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ११८ ॥

अंतोमुहुत्तेण सव्वचिरेण कालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ११९ ॥

अन्तर्मुहूर्तस्वरूप सर्वदीर्घकाल द्वारा पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ ॥ ११९ ॥

पर्याप्तकालमें जितना आयुका अपकर्षण होता है, उसकी अपेक्षा वह अपर्याप्तकालमें जघन्य योगके द्वारा बहुत हुआ करता है। इसीलिये प्रकृत सूत्रमें अपर्याप्तकालकी दीर्घता सूचित की गई है।

तत्थ य भवट्ठिदिं तेत्तीसं सागरोवमाणि आउअमणुपालयंतो बहुसो बहुसो असादद्धाए जुत्तो ॥ १२० ॥

वहां भवस्थिति तक तेतीस सागरोपम प्रमाण आयुका पालन करता हुआ बहुत बार असाताकाल (असातावेदनीयके बन्धयोग्य काल) से युक्त हुआ ॥ १२० ॥

थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति से काले परभवियमाउअं बंधिहिदि त्ति तस्स आउववेदणा दव्वदो जहण्णा ॥ १२१ ॥

जीवितके स्तोक शेष रह जानेपर जो अनन्तर समयमें परभविक आयुको बांधेगा, उसके आयुकर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ १२१ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ १२२ ॥

इस जघन्य द्रव्यवेदना भिन्न उसकी अजघन्यद्रव्यवेदना जानना चाहिये ॥ १२२ ॥

दीपशिखारूप जघन्य द्रव्यके ऊपर जो उत्तरोत्तर परमाणुके क्रमसे वृद्धि हुआ करती है वह सब जघन्य द्रव्यसे भिन्न अजघन्य द्रव्यके अन्तर्गत समझना चाहिये ।

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ १२३ ॥

अब यहां अल्पबहुत्व अधिकारका प्रकरण है— उसमें जघन्य पद, उत्कृष्ट पद और जघन्योत्कृष्ट पद; इस प्रकार ये तीन अनुयोगद्वार हैं ॥ १२३ ॥

इनमें आठ कर्मोंके जघन्य द्रव्य विषयक अल्पबहुत्वका नाम जघन्यपद-अल्पबहुत्व है । उनके उत्कृष्ट द्रव्य विषयक अल्पबहुत्वको उत्कृष्टपद-अल्पबहुत्व कहते हैं । जघन्य व उत्कृष्ट द्रव्यको विषय करनेवाला अल्पबहुत्व जघन्योत्कृष्टपद-अल्पबहुत्व कहलाता है ।

जहण्णपदेण सव्वत्थोवा आयुगवेयणा दव्वदो जहण्णिया ॥ १२४ ॥

जघन्यपद अल्पबहुत्वकी अपेक्षा द्रव्यसे आयुकर्मकी जघन्य वेदना सबसे स्तोक है ॥

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ ॥

द्रव्यसे जघन्य नाम व गोत्रकी वेदनायें दोनों ही आपसमें तुल्य होकर उससे असंख्यातगुणी हैं ॥ १२५ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ॥ १२६ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदनायें तीनों ही आपसमें तुल्य होकर नाम व गोत्रकी वेदनासे विशेष अधिक हैं ॥ १२६ ॥

मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया ॥ १२७ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य मोहनीयकी वेदना उक्त तीन घातिया कर्मोंकी वेदनासे विशेष अधिक है ॥ १२७ ॥

वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया ॥ १२८ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य वेदनीयकी वेदना विशेष अधिक है ॥ १२८ ॥

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा दव्वदो उक्कस्सिया ॥ १२९ ॥

उत्कृष्ट पदके आश्रित द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट आयुकी वेदना सबसे स्तोक है ॥ १२९ ॥

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ [दो वि तुल्लाओ] असंखेज्जगुणाओ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट नाम व गोत्रकी वेदनायें दोनों ही समान होकर आयुकी वेदनासे असंख्यातगुणी हैं ॥ १३० ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ॥ १३१ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मोंकी वेदनायें तीनों ही आपसमें तुल्य होकर उनसे विशेष अधिक हैं ॥ १३१ ॥

मोहणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया ॥ १३२ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट मोहनीयकी वेदना उनसे विशेष अधिक है ॥ १३२ ॥

वेदणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया ॥ १३३ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट वेदनीयकी वेदना उससे विशेष अधिक है ॥ १३३ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा दव्वदो जहण्णिया ॥ १३४ ॥

जघन्योत्कृष्ट पदके आश्रयसे द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य आयुकर्मकी वेदना सबसे स्तोक है ॥

सा चेव उक्कस्सिया असंखेज्जगुणा ॥ १३५ ॥

उसीकी उत्कृष्ट वेदना उससे असंख्यातगुणी है ॥ १३५ ॥

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ [दो वि तुल्लाओ] असंखेज्जगुणाओ ॥

द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य नाम व गोत्र कर्मकी वेदनायें दोनों ही तुल्य होकर उससे असंख्यातगुणी हैं ॥ १३६ ॥

णाणावरणीय दंसणावरणीय अंतराइयवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ॥ १३७ ॥

द्रव्यसे जघन्य ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदनायें तीनों ही तुल्य व उनसे विशेष अधिक हैं ॥ १३७ ॥

मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया ॥ १३८ ॥

द्रव्यसे जघन्य मोहनीयकी वेदना उनसे विशेष अधिक है ॥ १३८ ॥

वेदणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया ॥ १३९ ॥

द्रव्यसे जघन्य वेदनीयकी वेदना उससे विशेष अधिक है ॥ १३९ ॥

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ ॥

द्रव्यसे उत्कृष्ट नाम व गोत्रकी वेदनायें दोनों ही तुल्य होकर उससे असंख्यात-गुणी हैं ॥ १४० ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ॥ १४१ ॥

द्रव्यसे उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदनायें तीनों ही तुल्य व उनसे विशेष अधिक हैं ॥ १४१ ॥

मोहणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया ॥ १४२ ॥

द्रव्यसे उत्कृष्ट मोहनीयकी वेदना उनसे विशेष अधिक है ॥ १४२ ॥

वेयणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया ॥ १४३ ॥

द्रव्यसे उत्कृष्ट वेदनीयकी वेदना उससे विशेष अधिक है ॥ १४३ ॥

[दव्व विहाण चूलिया]

एत्तो जं भणिदं 'बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि जहण्णाणि च' एत्थ अप्पाबहुगं दुविहं जोगप्पाबहुगं चेव पदेसअप्पाबहुगं चेव ॥ १४४ ॥

पूर्वमें जो यह कहा गया है कि बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है और बहुत बहुत बार जघन्य योगस्थानोंको भी प्राप्त होता है, यहां अल्पबहुत्व दो प्रकारका है— योगअल्पबहुत्व और प्रदेश-अल्पबहुत्व ॥ १४४ ॥

सूत्रसूचित अर्थके प्रकाशित करनेका नाम चूलिका है। प्रकृत द्रव्यविधान अनुयोगद्वारमें उत्कृष्ट स्वामित्वकी प्ररूपणा करते हुए 'बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है' यह कहा गया है तथा जघन्य स्वामित्वकी प्ररूपणामें 'बहुत बहुत बार जघन्य योगस्थानोंको प्राप्त होता है' यह कहा गया है, किन्तु वहां उसका स्पष्टीकरण नहीं किया है। अतएव उसका स्पष्टीकरण करनेके लिये यह चूलिका अधिकार प्राप्त हुआ है।

प्रदेशबन्धका कारण योग है। तदनुसार योग-अल्पबहुत्व कारण और प्रदेश-अल्पबहुत्व कार्य है। उनमें पहिले कारणस्वरूप योग-अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा जीवसमासोंके आश्रयसे की जाती है—

सव्वत्थोवो सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो ॥ १४५ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तका जघन्य योग सबसे स्तोक है ॥ १४५ ॥

यहां जघन्य योगसे प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होकर विग्रहगतिमें वर्तमान सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तक जघन्य उपपादयोगको ग्रहण करना चाहिये।

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १४६ ॥

उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १४६ ॥

बीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १४७ ॥

उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १४७ ॥

तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १४८ ॥

उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १४८ ॥

चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १४९ ॥

उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १४९ ॥

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५० ॥

उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १५० ॥

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५१ ॥

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १५१ ॥

सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५२ ॥

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १५२ ॥

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५३ ॥

उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १५३ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५४ ॥

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १५४ ॥

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५५ ॥

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १५५ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५६ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १५६ ॥

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५७ ॥

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १५७ ॥

बीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५८ ॥

द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १५८ ॥

तीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १५९ ॥

त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १५९ ॥

चदुरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६० ॥

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १६० ॥

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६१ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १६१ ॥

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६२ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १६२ ॥

बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६३ ॥

द्वीन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १६३ ॥

तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६४ ॥

त्रीन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १६४ ॥

चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६५ ॥

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १६५ ॥

असण्णि पंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६६ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १६६ ॥

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६७ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य योग असंख्यातगुणा है ॥ १६७ ॥

बीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६८ ॥

द्वीन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १६८ ॥

तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १६९ ॥

त्रीन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १६९ ॥

चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १७० ॥

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १७० ॥

असण्णि पंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १७१ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १७१ ॥

सण्णि पंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥ १७२ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ॥ १७२ ॥

एवमेक्केक्कस्स जोगगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७३ ॥

इस प्रकार प्रत्येक योगस्थानका गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥१७३॥

इस प्रकार योगअल्पबहुत्वको कहकर अब आगेके सूत्र द्वारा उसके कार्यस्वरूप प्रदेश-अल्पबहुत्वकी सूचना की जाती है—

पदेसअप्पाबहुए त्ति जहा जोगअप्पाबहुगं णीदं तधा णेदव्वं । णवरि पदेसा अप्पाए त्ति भाणिदव्वं ॥ १७४ ॥

जिस प्रकार योगअल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकारसे प्रदेशअल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेष इतना है कि योगके स्थानमें यहां 'प्रदेश' ऐसा कहना चाहिये ॥

जोगट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥

योगस्थानोंकी प्ररूपणामें ये दस अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं ॥ १७५ ॥

यहां योगके अनेक भेदोंमेंसे नोआगमभावयोगके अन्तर्गत जुंजणयोगके भेदभूत उपपाद-योग, एकान्तानुवृद्धियोग और परिणाम योगोंको ग्रहण करना चाहिये; क्यों कि, कर्मप्रदेशोंका आगमन इनको छोड़कर अन्य किसी योगके द्वारा नहीं होता ।

अविभागपडिच्छेदपरूवणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा अंतरपरूवणा ठाणपरूवणा अणंतरोवणिधा, परंपरोवणिधा, समयपरूवणा, वड्ढिपरूवणा अप्पाबहुए त्ति ॥ १७६ ॥

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थान-प्ररूपणा, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व; ये उक्त दस अनुयोगद्वार हैं ॥ १७६ ॥

अविभागपडिच्छेदपरूवणाए एक्केक्कम्हि जीवपदेसे केवडिया जोगाविभाग-पडिच्छेदा ? ॥ १७७ ॥

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाके अनुसार एक एक जीवप्रदेशके आश्रित कितने योगाविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं ? ॥ १७७ ॥

असंखेज्जा लोगा जोगाविभागपडिच्छेदा ॥ १७८ ॥

एक एक जीवप्रदेशके आश्रित असंख्यात लोक प्रमाण योगाविभागप्रतिच्छेद होते हैं ॥

एक जीवप्रदेशपर जो जघन्य योग स्थित है उसको असंख्यात लोकोंसे भाजित करनेपर जो एक भाग प्राप्त हो उसका नाम अविभागप्रतिच्छेद है । इस अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाणसे एक एक जीवप्रदेशपर असंख्यात लोक मात्र योगाविभाग प्रतिच्छेद रहते हैं, यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये ।

एवडिया जोगाविभाग पडिच्छेदा ॥ १७९ ॥

एक एक जीव प्रदेशपर इतने मात्र योगाविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ॥ १७९ ॥

वग्गणपरूवणदाए असंखेज्जलोगजोगाविभागपडिच्छेदाणमेया वग्गणा भवदि ॥

वर्गणाप्ररूपणाके अनुसार असंख्यात लोक मात्र योगाविभाग प्रतिच्छेदोंकी एक वर्गणा होती है ॥ १८० ॥

एवमसंखेज्जाओ वग्गणाओ सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ॥ १८१ ॥

इस प्रकार श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात वर्गणायें होती हैं ॥ १८१ ॥

जितने जीव प्रदेशयोगविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा समान हों उनके समूहका नाम एक वर्गणा है। इसके आगे योगाविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा परस्पर समान, परन्तु पूर्व वर्गणा सम्बन्धी जीवप्रदेशोंके योगाविभागप्रतिच्छेदोंसे अधिक व आगेकी वर्गणाओं सम्बन्धी एक एक जीवप्रदेशस्थ योगाविभागप्रतिच्छेदोंसे हीन; ऐसे अन्य जीवप्रदेशोंके समूहका नाम दूसरी वर्गणा है। इस प्रकारके विधानसे ग्रहण की गई वे सब वर्गणायें श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं।

फद्दयपरूवणाए असंखेज्जाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तीयो, तमेगं फद्दयं होदि ॥ १८२ ॥

स्पर्धकप्ररूपणाके अनुसार श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र जो असंख्यात वर्गणायें हैं उनका एक स्पर्धक होता है ॥ १८२ ॥

जिन एक एक जीव प्रदेशपर समान संख्यामें जघन्य योगके अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं उन प्रत्येक जीव प्रदेशोंका नाम वर्ग व उनके समूहका नाम प्रथम वर्गणा है। इसके आगे पूर्व वर्गके अविभाप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा एक अविभागप्रतिच्छेद मात्रसे अधिक जितने जीव प्रदेश हों उन सबके समूहका नाम द्वितीय वर्गणा है। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अविभाग-प्रतिच्छेदसे वृद्धिंगत योगाविभागप्रतिच्छेदोंसे युक्त जीवप्रदेशोंके समूहसे क्रमशः तृतीय-चतुर्थ आदि वर्गणायें होती हैं। ये वर्गणायें एक स्पर्धकमें जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात होती हैं।

एवमसंखेज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ १८३ ॥

इस प्रकार एक योगस्थानमें श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात स्पर्धक होते हैं ॥

अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स फद्दयस्स केवडियमंतरं ? असंखेज्जा लोगा अंतरं ॥

अन्तरप्ररूपणाके अनुसार एक एक स्पर्धकका कितना अन्तर होता है ? असंख्यात लोक प्रमाण अन्तर होता है ॥ १८४ ॥

प्रथम स्पर्धकके उपर प्रथम स्पर्धकके ही बढ जानेपर द्वितीय स्पर्धक होता है। कारण इसका यह है कि प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी एक वर्गसे द्वितीय स्पर्धकसम्बन्धी प्रथम वर्गणाका एक वर्ग अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा दुगुणा ही होता है।

एवदियमंतरं ॥ १८५ ॥

सब स्पर्धकोंके बीचमें इतना ही अन्तर होता है ॥ १८५ ॥

ठाणपरूवणाए असंखेज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि । तमेगं जहण्णयं जोगट्ठाणं भवदि ॥ १८६ ॥

स्थानप्ररूपणाके अनुसार श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र जो असंख्यात स्पर्धक हैं उनका एक जघन्य योगस्थान होता है ॥ १८६ ॥

एवमसंखेज्जाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ १८७ ॥

इस प्रकार वे योगस्थान असंख्यात हैं, जो श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ १८७ ॥

अणंतरोवणिधाए जहण्णए जोगट्ठाणे फद्दयाणि थोवाणि ॥ १८८ ॥

अनन्तरोपनिधाके अनुसार जघन्य योगस्थानमें स्पर्धक स्तोक हैं ॥ १८८ ॥

बिदिए जोगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि ॥ १८९ ॥

उनसे दूसरे योगस्थानमें वे स्पर्धक विशेष अधिक हैं ॥ १८९ ॥

तदिए जोगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि ॥ १९० ॥

उनसे तृतीय योगस्थानमे वे स्पर्धक विशेष अधिक हैं ॥ १९० ॥

एवं विसेसाहियाणि विसेसाहियाणि जाव उक्कस्सजोगट्ठाणेत्ति ॥ १९१ ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थान तक वे उत्तरोत्तर विशेष अधिक, विशेष अधिक हैं ॥ १९१ ॥

विसेसो पुण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि फद्दयाणि ॥ १९२ ॥

विशेषका प्रमाण अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र स्पर्धक हैं ॥ १९२ ॥

परंपरोवणिधाए जहण्णजोगट्ठाणफद्दएहिंतो तदो सेडीए असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा ॥ १९३ ॥

परंपरोनिधानके अनुसार जघन्य योगस्थान सम्बन्धी स्पर्धकोंसे श्रेणिके असंख्यातवें भाग स्थान जाकर वे दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९३ ॥

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव उक्कस्स जोगट्ठाणेत्ति ॥ १९४ ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थान तक वे दुगुणी दुगुणी वृद्धिको प्राप्त होते गये हैं ॥ १९४ ॥

एगजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं सेडीए असंखेज्जदिभागो णाणाजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

एकयोगदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण और नानायोग-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १९५ ॥

णाणाजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि । एगजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ १९६ ॥

नानायोगदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। उनसे एक योगदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ १९६ ॥

समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥

समयप्ररूपणाके अनुसार चार समय रहनेवाले योगस्थान श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ १९७ ॥

पंचसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडिए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ १९८ ॥

पांच समयवाले योगस्थान श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र है ॥ १९८ ॥

एवं छसमइयाणि सत्तसमइयाणि अट्ठसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ १९९ ॥

इसी प्रकार छह समयवाले, सात समयवाले और आठ समयवाले योगस्थान श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ १९९ ॥

पुणरवि सत्तसमइयाणि छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि उवरि तिसमइयाणि बिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ २०० ॥

फिरसे भी सात समयवाले, छह समयवाले, पांच समयवाले, चार समयवाले तथा ऊपर तीन समयवाले व दो समयवाले योगस्थान श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र हैं ॥ २०० ॥

वड्ढिपरूवणदाए अत्थि असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि संखेज्जभागवड्ढि-हाणि संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी ॥ २०१ ॥

वृद्धिप्ररूपणाके अनुसार योगस्थानोंमें असंख्यातभाग वृद्धि-हानि, संख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि और असंख्यातगुणवृद्धि-हानि; इतनी वृद्धियां व हानियां होती हैं ॥ २०१ ॥

तिण्णिवड्ढि तिण्णीहाणीओ केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण एगसमयं ॥२०२॥

तीन वृद्धियां और तीन हानियां कितने काल होती हैं? जघन्यसे वे एक समय होती हैं ॥ २०२ ॥

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २०३ ॥

उत्कर्षसे उक्त तीन हानि-वृद्धियोंका काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥

असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण एगसमओ ॥२०४॥

असंख्यातगुणवृद्धि और हानि कितने काल होती हैं? जघन्यसे वे एक समय होती हैं ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०५ ॥

उक्त वृद्धि और हानि उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होती है ॥ २०५ ॥

अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि जोगट्ठाणाणि ॥ २०६ ॥

अल्पबहुत्वके अनुसार आठ समय योग्य योगस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ २०६ ॥

दोसु वि पासेसु सत्तसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥

दोनों ही पार्श्वभागोंमें सात समय योग्य योगस्थान दोनोंही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणें हैं ॥ २०७ ॥

दोसु वि पासेसु छसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥

दोनों ही पार्श्वभागोंमें छह समय योग्य योगस्थान दोनों हीं तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २०८ ॥

दोसु वि पासेसु पंचसमइयाणि जोगट्ठाणाणि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥

दोनों ही पार्श्वभागोंमें पांच समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २०९ ॥

दोसु वि पासेसु चदुसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥

दोनों ही पार्श्वभागोंमें चार समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २१० ॥

उवरि तिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २११ ॥

उनसे तीन समय योग्य उपरिम योगस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २११ ॥

बिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २१२ ॥

उनसे दो समय योग्य योगस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २१२ ॥

जाणि चेव जोगट्ठाणाणि ताणि चेव पदेसबंधट्ठाणाणि । णवरि पदेसबंधट्ठाणाणि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि ॥ २१३ ॥

जो योगस्थान हैं वे ही प्रदेशबन्धस्थान हैं। विशेष इतना है कि प्रदेशबन्धस्थान प्रकृतिविशेषसे विशेष अधिक हैं ॥ २१३ ॥

॥ वेदना-द्रव्यविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स चउत्थेखंडे-वेयणाए

५. वेयणखेत्तविहाणं

वेयणखेत्तविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥

अब 'वेदनाक्षेत्रविधान' अनुयोगद्वार अधिकार प्राप्त है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार जाननेके योग्य हैं ॥ १ ॥

नाम-स्थापनादिके भेदसे क्षेत्र अनेक प्रकारका है। उसमें यहां नोआगमद्रव्यक्षेत्रस्वरूप लोकाकाश प्रकृत है। 'लोक्यन्ते जीवादयः पदार्थाः यस्मिन् असौ लोकः' इस निरुक्तिके अनुसार जहांपर जीवादिक पदार्थ देखे जाते हैं-- पाये जाते हैं- उसका नाम लोकाकाश है। आठ प्रकारके कर्मद्रव्यका नाम कर्मवेदना है। इस कर्मवेदनाका जो क्षेत्र है वह कर्मवेदनाक्षेत्र कहा जाता है। प्रकृत अनुयोगद्वारमें चूंकि इस कर्मवेदनाके क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है, अतएव इस अनुयोगद्वारको वेदनाक्षेत्रविधान इस नामसे कहा गया है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।

पदमीमांसा सामित्तं अप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

वे तीन अनुयोगद्वार ये हैं-- पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ॥ २ ॥

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो किं उक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ॥ ३ ॥

पदमीमांसाके आश्रयसे ज्ञानावरणीय कर्मकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है, और क्या अजघन्य है ? ॥ ३ ॥

प्रकृत पदमीमांसा अनुयोगद्वारमें चूंकि कर्मवेदना सम्बन्धी क्षेत्रके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि पदोंका विचार किया गया है, अतएव उसकी 'पदमीमांसा' यह सार्थक संज्ञा है। इसमें इन पदोंका विचार करते हुए सर्वप्रथम यहां ज्ञानावरण कर्मवेदनासम्बन्धी क्षेत्रके उन उत्कृष्ट आदि चार पदोंके विषयमें यह पूछा गया है कि ज्ञानावरणीयकी वेदना क्या उत्कृष्ट होती है, क्या अनुत्कृष्ट होती है, क्या जघन्य होती है, और क्या अजघन्य होती है।

इस पृच्छाका उत्तर आगेके सूत्र द्वारा दिया जाता है--

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णावा अजहण्णा वा ॥ ४ ॥

वह उत्कृष्ट भी है, अनुत्कृष्ट भी है, जघन्य भी है, और अजघन्य भी है ॥ ४ ॥

इनमें उसकी उत्कृष्ट क्षेत्रवेदना आठ राजु मात्र क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए महामत्स्यके पायी जाती है। इस मत्स्यको छोड़कर अन्यके वह अनुत्कृष्ट होती है। तीन समयवर्ती आहारक और तीन समयवर्ती तद्भवस्थ हुए सूक्ष्म निगोद जीवके वह जघन्य और उसके सिवाय अन्यके वह अजघन्य देखी जाती है।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ५ ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मकी क्षेत्र वेदनाविषयक पदोंका यहां विचार किया गया है उसी प्रकारसे शेष सात कर्मोंकी क्षेत्रवेदना विषयक पदोंका विचार करना चाहिये ॥ ५ ॥

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे ॥ ६ ॥

स्वामित्व दो प्रकारका है— जघन्य पदविषयक और उत्कृष्ट पदविषयक ॥ ६ ॥

सामान्यतया नामस्थापनादिके भेदसे जघन्य चार प्रकारका है। उनमें भी द्रव्य जघन्यके दो भेद हैं— आगमद्रव्यजघन्य और नोआगमद्रव्यजघन्य। इनमें ज्ञायकशरीरादिके भेदसे नोआगम-द्रव्यजघन्य भी तीन प्रकारका है। उनमें भी तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यजघन्यके दो भेद हैं— ओघ-जघन्य और आदेशजघन्य। इनमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा ओघजघन्य भी चार प्रकारका है। उनमें द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य एक परमाणु है। क्षेत्रजघन्य कर्मक्षेत्रजघन्य और नोकर्मक्षेत्रजघन्यके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें सूक्ष्म निगोद जीवकी जो जघन्य अवगाहना है उसे कर्मक्षेत्रजघन्य और आकाशके एक प्रदेशको नोकर्मक्षेत्र जघन्य जानना चाहिये। कालकी अपेक्षा जघन्य एक समय माना गया है। परमाणुमें अवस्थित स्निग्धत्व आदिके अविभागी अंशको भावजघन्य जानना चाहिये।

उक्त द्रव्य-क्षेत्रादिकी अपेक्षा आदेशजघन्य भी चार प्रकारका है। इनमें द्रव्यकी अपेक्षा आदेशजघन्य जैसे-तीन प्रदेशी स्कन्धकी अपेक्षा दो प्रदेशी स्कन्ध व चार प्रदेशी स्कन्धकी अपेक्षा तीन प्रदेशी स्कन्ध आदि। तीन आकाशप्रदेशोंमें अवगाहको प्राप्त द्रव्यकी अपेक्षा दो आकाश-प्रदेशोंमें अवगाहको प्राप्त द्रव्य क्षेत्रकी अपेक्षा आदेशजघन्य माना जाता है। इसी प्रकार शेष प्रदेशोंकी अपेक्षा भी इस आदेश क्षेत्रजघन्यकी कल्पना करना चाहिये। तीन समयादि परिणत द्रव्यकी अपेक्षा दो समयादि परिणत द्रव्य कालकी अपेक्षा आदेशजघन्य होता है। इसी प्रकार तीन आदि गुणोंसे (अंशोंसे) परिणत द्रव्यकी अपेक्षा दो आदि गुणोंसे परिणत द्रव्यको भावकी अपेक्षा आदेशजघन्य जानना चाहिये। इन सबमें ओघजघन्य प्रकरण प्राप्त है।

जिस प्रकार जघन्यके इन भेद-प्रभेदोंका यहां स्वरूप कहा गया है उसी प्रकार यथा-सम्भव उत्कृष्टके भी उन भेद-प्रभेदोंका स्वरूप स्वयं जानना चाहिये।

इस प्रकार पदमीमांसाको समाप्त करके अब आगे स्वामित्व अधिकारके आश्रित प्ररूपणा की जाती है—

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ ७ ॥

स्वामित्व अधिकारके आश्रयसे ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥ ७ ॥

जो मच्छो जोयणसहस्सिओ सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो ॥८॥

जो एक हजार योजनकी अवगाहनावाला मत्स्य स्वयम्भूरमण समुद्रके बाह्य तटपर स्थित है ॥ ८ ॥

यहां स्वयम्भूरमण समुद्रके बाह्य तटसे उस समुद्रके परभागवर्ती भूमिप्रदेशको ग्रहण करना चाहिये, न कि उसकी अवयवभूत बाह्य वेदिकाको; क्योंकि, वहां आगेके सूत्र (९) में निर्दिष्ट तनुवातवलयके संसर्गकी सम्भावना नहीं है ।

वेयणसमुग्घादेण समुहदो ॥ ९ ॥

जो वेदनासमुद्घातसे समुद्घात अवस्थाको प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥

वेदनाके वश होकर जीवके प्रदेश जो विस्तार व ऊंचाईमें तिगुणे फैल जाते हैं उसका नाम वेदनासमुद्घात है । इस वेदनासमुद्घातमें सबके आत्मप्रदेश तिगुणे ही फैलते हों ऐसा यद्यपि नियम नहीं है, क्योंकि, उसमें यथायोग्य वेदनाके अनुसार एक दो प्रदेशों आदिकी भी वृद्धि सम्भव है; परन्तु उत्कृष्ट क्षेत्रका अधिकार होनेसे ऐसे वेदनासमुद्घातोंकी यहां विवक्षा नहीं है, यह इस सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये ।

कायलेस्सियाए लग्गो ॥ १० ॥

जो काकलेश्यासे संलग्न है ॥ १० ॥

काकलेश्यासे अभिप्राय तनुवातवलयका है । कारण यह कि उसका वर्ण काक (कौवें) के समान है । अभिप्राय यह है कि किसी पूर्ववैरी देवके द्वारा स्वयम्भूरमण समुद्रसे उठाकर जो महामत्स्य उसके बाह्य भागमें लोकनालीके समीप पटका गया है तथा जो वहां तीव्र वेदनाके वशीभूत होकर वेदनासमुद्घातसे परिणत होता हुआ तनुवातवलयसे सम्बद्ध लोकनालीके बाह्यभाग तक अपने आत्मप्रदेशोंसे संलग्न हुआ है ।

पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो तिण्णि विग्गहकंदयाणि कादूण ॥ ११ ॥

फिर भी जो तीन विग्रहकाण्डकोंको करके मारणान्तिक समुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

विग्रहका अर्थ कुटिलता या मोड़ है । तथा काण्डकका अर्थ बाणके समान सीधी गति है । अभिप्राय यह कि जिस महामत्स्यने वहां वेदनासमुद्घातपूर्वक मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त

होते हुए विग्रहगतिमें दो विग्रहों (मोडों) के साथ तीन काण्डकोंको किया है। वे तीन काण्डक इस प्रकार जानने चाहिये— वह लोकनालीकी वायव्यदिशासे बाणके समान सीधी गतिके साथ साधिक अर्ध राजुमात्र दक्षिण दिशामें आया। यह एक काण्डक हुआ। पश्चात् वहांसे मुड़कर फिर बाणके समान सीधी गतिसे एक राजुमात्र पूर्व दिशामें आया। यह दूसरा काण्डक हुआ। तत्पश्चात् वहांसे मुड़कर फिर भी सीधी गतिमें छह राजुमात्र नीचे गया। यह तीसरा काण्डक हुआ। इस प्रकारसे जो तीन विग्रहकाण्डकोंको करके मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुआ है।

से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उप्पज्जहिदि त्ति तस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा ॥ १२ ॥

इस प्रकारसे जो अनन्तर समयमें नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाला है उस उपर्युक्त महामत्स्यके ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १२ ॥

तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा ॥ १३ ॥

महामत्स्यके उपर्युक्त उत्कृष्ट क्षेत्रसे भिन्न उक्त ज्ञानावरण कर्मकी अनुत्कृष्ट वेदना है ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंके भी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट वेदना क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥ १४ ॥ पदमीमांसा समाप्त हुई ॥

सामित्तेण उक्कस्सपदे वेदणीयवेदणा खेत्तदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ १५ ॥

स्वामित्वसे उत्कृष्ट पदमें वेदनीय कर्मकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥

अण्णदरस्स केवलिस्स केवलिसमुग्घादेण समुहदस्स सव्वलोगं गदस्स तस्स वेदणीयवेदणाखेत्तदो उक्कस्सा ॥ १६ ॥

केवलिसमुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त होकर उसमें लोकपूरण अवस्थाको प्राप्त हुए अन्यतर केवलीके उस वेदनीय कर्मकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १६ ॥

सूत्रमें जो 'अन्यतर' शब्दका प्रयोग किया गया है— उससे अवगाहनाभेदों और भरतादि क्षेत्र विशेषोंका प्रतिषेध समझना चाहिये।

तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा ॥ १७ ॥

उक्त उत्कृष्ट क्षेत्रवेदनासे भिन्न उस वेदनीय कर्मकी क्षेत्रवेदना अनुत्कृष्ट होती है ॥१७॥

एवमाउव-णामा-गोदाणं ॥ १८ ॥

इस प्रकार आयु नाम व गोत्र कर्मके उत्कृष्ट एवं अनुत्कृष्ट वेदनाक्षेत्रोंकी प्ररूपणा करना चाहिये। ॥ १८ ॥

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णिया कस्स ? ॥ १९ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदोंके आश्रित ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा किसके होती है ? ॥ १९ ॥

अण्णदरस्स सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स तिसमयआहारयस्स तिसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स सव्वजहण्णियाए सरीरोग्गाहणाए वट्टमाणस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा ॥ २० ॥

अन्यतर सूक्ष्म निगोद जीव लब्ध्यपर्याप्तक, जो कि त्रिसमयवर्ती आहारक होता हुआ तद्भवस्थ होनेके तृतीय समयमें वर्तमान है, जघन्य योगवाला है, और शरीरकी सर्वजघन्य अवगाहनामें वर्तमान है; अन्य सूक्ष्म निगोद लब्ध्यअपर्याप्तक जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ २० ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ २१ ॥

उससे भिन्न उक्त ज्ञानावरणीय कर्मकी अजघन्य वेदना होती है ॥ २१ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २२ ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मकी जघन्य व अजघन्य क्षेत्रवेदनाओंकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी जघन्य व अजघन्य क्षेत्रवेदनाओंकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥२२॥

अप्पाबहुए त्ति । तत्थ इमाणि तिण्णि अणिओगद्दाराणि-जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ २३ ॥

अब यहां अल्पबहुत्वका अधिकार है। उसकी प्ररूपणामें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— जघन्य पदमें, उत्कृष्ट पदमें और जघन्योत्कृष्ट पदमें ॥ २३ ॥

जहण्णपदे अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ तुल्लाओ ॥ २४ ॥

जघन्य पदमें आठों ही कर्मोंकी क्षेत्र वेदनायें समान हैं ॥ २४ ॥

इसका कारण यह है कि आठों ही कर्मोंकी वह जघन्य क्षेत्रवेदना तृतीय समयवर्ती आहारक होकर उस भवोंमें अवस्थित होनेके तृतीय समयमें वर्तमान सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके ही होती है।

उक्कस्सपदे णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ थोवाओ ॥ २५ ॥

उत्कृष्ट पदके आश्रयसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन कर्मोंकी वेदनायें क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही समान व स्तोक हैं ॥ २५ ॥

वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २६ ॥

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इनकी क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट वेदनायें चारों ही समान व पूर्वकी उन वेदनाओंसे असंख्यातगुणी हैं ॥ २६ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ खेत्तदो जहण्णियाओ तुल्लाओ थोवाओ ॥ २७ ॥

जघन्योत्कृष्ट पदके आश्रित आठों ही कर्मोंकी क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य वेदनायें तुल्य व स्तोक हैं ॥ २७ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २८ ॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मकी वेदनायें क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही तुल्य व पूर्वोक्त वेदनाओंसे असंख्यातगुणी हैं ॥ २८ ॥

वेदणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २९ ॥

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मोंकी वेदनायें क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट चारों भी तुल्य व पूर्वोक्त वेदनाओंसे असंख्यातगुणित हैं ॥ २९ ॥

एत्तो सव्व जीवेसु ओगाहणमहादंडओ कायव्वो भवदि ॥ ३० ॥

अब यहां सब जीव समासोंमें यह अवगाहनामहादण्डक किया जाता है ॥ ३० ॥

सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा ॥ ३१ ॥

सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवकी जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक है ॥ ३१ ॥

सुहुमवाउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

उससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३२ ॥

सुहुमतेउकाइयअपज्जतयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥

उससे सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३३ ॥

सुहुमआउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥

उससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३४ ॥

सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३५ ॥

उससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३५ ॥

बादरवाउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

उससे बादर वायुकायिक अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३६ ॥

बादरतेउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

उससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३७ ॥

बादरआउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥

उससे बादर जलकायिक अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३८ ॥

बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ३९ ॥

उससे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ३९ ॥

बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

उससे बादर निगोद जीव अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४० ॥

णिगोदपदिट्ठिदअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ४१ ॥

उससे निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४१ ॥

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४२ ॥

बीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ४३ ॥

उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४३ ॥

तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४४ ॥

चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ४५ ॥

उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४५ ॥

पंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ४६ ॥

उससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ४६ ॥

सुहुमणिगोदजीवणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥

उससे सूक्ष्म निगोद जीव निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥४७॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ४८ ॥

उससे उसके ही अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ४८ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ४९ ॥

उससे उसके ही पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ४९ ॥

सुहुमवाउक्काइयपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥

उससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ५० ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ५१ ॥

उससे उसीके अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ५१ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ५२ ॥

उससे उसीके पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है ॥ ५२ ॥

सुहुमतेउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥५३॥

उससे सूक्ष्म तेजकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥५३॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ५४ ॥

उससे उसके ही अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ५४ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ५५ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है ॥५५॥

सुहुमआउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥५६॥

उससे सूक्ष्म जलकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥५६॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ५७ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ५७ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ५८ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ५८ ॥

सुहुमपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥५९॥

उससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६० ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६० ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६१ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६१ ॥

बादरवाउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥६२॥

उससे बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥

तस्सेव णिवत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६३ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६३ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६४ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६४ ॥

बादरतेउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥६५॥

उससे बादर तेजकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥६५॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६६ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६६ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६७ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६७ ॥

बादरआउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥

उससे बादर जलकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥६८॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ६९ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ६९ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७० ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ७० ॥

बादरपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥७१॥

उससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७२ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ७२ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७३ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है ॥ ७३ ॥

बादरणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ७४ ॥

उससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ७४ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७५ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ७५ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७६ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ७६ ॥

णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥

उससे निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ७७ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७८ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ७८ ॥

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ॥ ७९ ॥

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ॥ ७९ ॥

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ८० ॥

बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ॥ ८१ ॥

उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ॥ ८१ ॥

तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८२ ॥

चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८३ ॥

पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

उससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८४ ॥

तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८५ ॥

उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८५ ॥

चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८६ ॥

बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८७ ॥

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८८ ॥

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८८ ॥

पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ८९ ॥

उससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ८९ ॥

तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ९० ॥

उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ९० ॥

चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ९१ ॥

बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ९२ ॥

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ९३ ॥

पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ॥ ९४ ॥

उससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है ॥ ९४ ॥

अब यहां प्रकृत अल्पबहुत्वमें जो संख्यातगुणित व असंख्यातगुणित रूपसे गुणकार कहा गया है वह कहां कितना विवक्षित है, इस प्रकार उसके प्रमाणकी प्ररूपणा की जाती है।

सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

एक सूक्ष्म जीवकी अवगाहनासे दूसरे सूक्ष्म जीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है ॥ ९५ ॥

सुहुमादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९६ ॥

सूक्ष्म जीवकी अवगाहनासे बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ९६ ॥

बादरादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ ९७ ॥

बादर जीवकी अवगाहनासे सूक्ष्मकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है ॥ ९७ ॥

बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९८ ॥

एक बादरकी अवगाहनासे दूसरे बादरकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ९८ ॥

जिनके बादर नामकर्मका उदय पाया जाता है वे बादर कहे जाते हैं। इस प्रकारके लक्षणसे यहां उस बादर नामकर्मसे संयुक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका भी ग्रहण समझना चाहिये। जहां एक बादर जीवकी अपेक्षा दूसरे बादर जीवकी अवगाहना असंख्यातगुणी कही गई है वहां असंख्यातसे पल्योपमके असंख्यातवें भागको ग्रहण करना चाहिये।

बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो संखेज्जा समया ॥ ९९ ॥

एक बादरकी अवगाहनासे दूसरे बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार संख्यातसमय है ॥

द्वीन्द्रियादि निर्वृत्त्यपर्याप्त और पर्याप्त जीवोंमें जो उस अवगाहनाका गुणकार संख्यात-गुणा कहा गया है वहां 'संख्यात' से संख्यात समयोंको ग्रहण करना चाहिये । पूर्व सूत्रसे चूंकि वहां भी पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार प्राप्त होता था, अतः उसका प्रतिषेध करनेके लिये यह दूसरा सूत्र रचा गया है ।

॥ वेदना क्षेत्रविधान समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स चउत्थखंडे-वेयणाए

६. वेयणकालविहाणं

वेयणकालविहाणे त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥

अब वेदनाकालविधान अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं ॥ १ ॥

यहां नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल, सामाचारकाल, अद्धाकाल, प्रमाणकाल और भावकालके भेदसे काल सात प्रकारका है। उनमें 'काल' यह शब्द नामकाल है। 'वह यह काल है' इस प्रकार जो बुद्धिसे अन्य द्रव्यमें कालका आरोप किया जाता है वह स्थापनाकाल कहलाता है।

आगम द्रव्यकाल व नोआगमद्रव्यकालके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है। उनमें काल प्राभृतका जानकार होता हुआ जो जीव वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित है वह आगमद्रव्य-काल है। नोआगमद्रव्यकाल, ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकाल, भावी नोआगमद्रव्यकाल और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकालके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमें भी तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकाल प्रधान और अप्रधानके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें लोकाकाशके प्रदेश (असंख्यात) प्रमाण जो काल द्रव्य है वह प्रधान द्रव्यकाल है। वह शेष पांच द्रव्योंके परिणमनका कारण होकर रत्नोंकी राशिके समान प्रदेशसमूहसे रहित होता हुआ अमूर्त व अनादिनिधन है। अप्रधान द्रव्यकाल सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमें दंशकाल व मशककाल आदि सचित्तकाल है। धूलिकाल, कर्दमकाल, उष्णकाल, वर्षाकाल एवं शीतकाल आदि अचित्तकाल है। डांसोंके साथ प्रवर्तमान शीतकाल आदि मिश्रकाल कहा जाता है। सामाचारकाल लौकिक और लोकोत्तरीयके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें कर्षण (जोतना) और बीज बोने आदिका काल लौकिक सामाचार काल माना जाता है। वंदनाकाल, नियमकाल, स्वाध्यायकाल और ध्यानकाल आदिको लोकोत्तरीयकाल जानना चाहिये। अद्धाकाल, अतीत अनागत और वर्तमानके भेदसे तीन प्रकारका है। पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी आदिरूप काल प्रमाणकाल है जो अनेक प्रकारका है।

भावकाल आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें जो जीव कालप्राभृतका जानकार होता हुआ वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे सहित है उसका नाम आगमभाव काल है। औदयिक आदि पांच भावों स्वरूप कालको नोआगमभावकाल समझना चाहिये। इन सब काल भेदोंमें यहां प्रमाण काल प्रकृत है। इस अनुयोगद्वारमें चूंकि वेदनासम्बन्धी कालका व्याख्यान किया गया है, अत एव इसका 'काल विधान' यह सार्थक नाम जानना चाहिये।

पदमीमांसा सामित्तमप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

वे ज्ञातव्य तीन अनुयोगद्वार ये हैं— पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार हैं ॥

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा कालदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ? ॥ ३ ॥

पदमीमांसा अधिकारके आश्रयसे ज्ञानावरणीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है और क्या अजघन्य है ? ॥ ३ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा ॥ ४ ॥

उक्त ज्ञानावरणीय वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट भी है, अनुत्कृष्ट भी है, जघन्य भी है और अजघन्य भी है ॥ ४ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ५ ॥

इसी प्रकार शेष सातों ही कर्मोंके उत्कृष्ट आदि पदोंकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥ ५ ॥

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे ॥ ६ ॥

स्वामित्व दो प्रकार है— जघन्य पदविषयक और उत्कृष्ट पदविषयक ॥ ६ ॥

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ ७ ॥

स्वामित्वके आश्रयसे उत्कृष्ट पदविषयक ज्ञानावरणीयवेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥ ७ ॥

अण्णदरस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छाइट्ठिस्स सव्वाहिपज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स कम्मभूमियस्स अकम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स वा असंखेज्जवासाउअस्स वा देवस्स वा मणुस्सस्स वा तिरिक्खस्स वा णेरइयस्स वा इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसयवेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा खगचरस्स वा सागार-जागार-सुदोवजोगजुत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सट्ठिदिसंकिलेसे वट्टमाणस्स, अधवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा ॥ ८ ॥

अन्यतर पंचेन्द्रिय जीवके— जो संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज अथवा कर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्न है, संख्यातवर्षायुष्क अथवा असंख्यात-

पर्याप्तक है; देव, मनुष्य, तिर्यंच अथवा नारकी है; स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसकवेदमेंसे किसी भी वेदसे संयुक्त है; जलचर, थलचर अथवा नभचर है; साकार उपयोगवाला है, जागृत है, श्रुतोपयोगसे युक्त है, उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध योग्य उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेशमें वर्तमान है, अथवा कुछ मध्यम संक्लेश परिणामसे युक्त है; उसके ज्ञानावरणीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ ८॥

सूत्रमें जो 'अन्यतर' शब्दको ग्रहण किया है उससे अवगाहना आदिकी विशेषताका प्रतिषेध समझना चाहिये। मिथ्यादृष्टि जीवोंके अतिरिक्त चूंकि उपरिम सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीव ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिको नहीं बांधते हैं, अतएव मिथ्यादृष्टि पदके द्वारा उनका प्रतिषेध कर दिया गया है। मिथ्यादृष्टियोंमें भी उसकी उत्कृष्ट स्थितिको सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुए जीव ही बांधते हैं, पर्याप्तियोंसे अपर्याप्त जीव उसे नहीं बांधते हैं; यह विशेषता प्रगट करनेके लिये यहां 'सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त' ऐसा कहा गया है। पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके होते हैं– कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज, उनमें पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए संज्ञी पर्याप्तक जीव ही उसकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधते हैं, भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुए (अकर्मभूमिज) उसकी उत्कृष्ट स्थितिको नहीं बांधते है; यह सूचित करनेके लिये यहां कर्मभूमिज पदको ग्रहण किया गया है उक्त सूत्रमें प्रयुक्त 'अकर्मभूमिज' शब्दसे देव-नारकियोंको तथा 'कर्मभूमिप्रतिभाग' से स्वयम्प्रभ पर्वतके बाह्य भागमें उत्पन्न जीवोंको ग्रहण करना चाहिये। दर्शनोपयोगवाले जीव चूंकि ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिको नहीं बांधते हैं, अतः सूत्रमें 'साकार उपयोगयुक्त' ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार चूंकि सुप्त अवस्थामें उसकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है, अतः 'जागार' पदके द्वारा जागृत अवस्थाका निर्देश किया गया है। 'श्रुतोपयोगयुक्त' पदसे मतिज्ञानका निषेध समझना चाहिये। इस प्रकार इन विशेषताओंवाला जीव ही चूंकि उक्त ज्ञानावरण कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है, अतः कालकी अपेक्षा ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट वेदना उसीके होती है, यह इस सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ ९ ॥

उससे भिन्न उक्त ज्ञानावरणकी कालकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट वेदना होती है ॥ ९ ॥

ज्ञानावरणका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण होता है। उससे एक समय कम, दो समय कम, एवं तीन समय कम आदि विविध स्थिति भेदोंको अनुत्कृष्ट समझना चाहिये

एवं छण्णं कम्माणं ॥ १० ॥

इसी प्रकार शेष छह कर्मोंसम्बन्धी काल वेदनाके भी उत्कृष्ट स्वामित्वकी प्ररूपणा समझना चाहिये ॥ १० ॥

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ ११ ॥

स्वामित्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट पदविषयक आयु कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥ ११ ॥

अण्णदरस्स मणुस्सस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स वा सण्णिस्स सम्माइट्ठिस्स वा [मिच्छाइट्ठिस्स वा] सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स कम्मभूमियस्स वा कम्मभूमि-पडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसयवेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा सागार-जागार-तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा [तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा] उक्कस्सियाए आबाधाए जस्स तं देवणिरयाउअं पढमसमए बंधंतस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा ॥ १२ ॥

जो कोई मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी है, सम्यग्दृष्टि है, [अथवा मिथ्यादृष्टि है], सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, कर्मभूमि या कर्मभूमिप्रतिभागमें उत्पन्न हुआ है, संख्यात वर्षकी आयुवाला है; स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसकवेदमेंसे किसी भी वेदसे संयुक्त है; जलचर अथवा थलचर है, साकार उपयोगसे सहित है, जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेशसे [अथवा विशुद्धिसे] संयुक्त है, तथा जो उत्कृष्ट आबाधाके साथ देव व नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुको बांधनेवाला है, उसके उक्त आयुके बांधनेके प्रथम समयमें आयुकर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १२ ॥

यहां सूत्रमें जो 'अन्यतर' पदका ग्रहण किया गया है उससे अवगाहना, कुल, जाति, एवं वर्णादिकी विशेषताका अभाव जाना जाता है। देवोंकी उत्कृष्ट आयुको मनुष्य तथा नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुको मनुष्य व संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी बांधते हैं, इस अभिप्रायको प्रगट करनेके लिये सूत्रमें 'मनुष्य और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच' इन पदोंको ग्रहण किया गया है। देवोंकी उत्कृष्ट आयुको सम्यग्दृष्टि तथा नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुको मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं, इस भावको दिखलानेके लिये 'सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि' ऐसा निर्देश किया गया है। देवोंकी उत्कृष्ट आयु पन्द्रह कर्मभूमियोंमें वर्तमान मनुष्योंके द्वारा ही बांधी जाती हैं, परन्तु नारकियोंकी उत्कृष्ट आयु पन्द्रह कर्मभूमियोंके साथ कर्मभूमिप्रतिभागमें भी वर्तमान जीवोंके द्वारा बांधी जाती है; यह अभिप्राय 'कर्मभूमि' और 'कर्मभूमिप्रतिभाग' में उत्पन्न हुए इन पदोंके द्वारा सूचित किया गया है। 'संख्यातवर्षायुष्क' से यह अभिप्राय समझना चाहिये कि देव व नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुको संख्यात वर्षकी आयुवाले ही बांधते है, असंख्यात वर्षकी आयुवाले नहीं बांधते। देवोंकी उत्कृष्ट आयुको स्थलचारी संयत मनुष्य ही बांधते हैं, परन्तु नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुको स्थलचारी मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंके साथ जलचारी व स्थलचारी संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि भी बांधते है; इस अभिप्रायको प्रगट करनेके लिये सूत्रमें 'जलचर और स्थलचर' ऐसा कहा गया है। जिस प्रकार ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट संक्लेशके साथ बांधी जाती है उस प्रकार आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट संक्लेश अथवा उत्कृष्ट विशुद्धिके द्वारा नहीं बांधी जाती है, इस अभिप्रायको सूचित करनेके लिये सूत्रमें 'तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और तत्प्रायोग्य विशुद्ध' ऐसा निर्देश किया गया है। आयुकी यह उत्कृष्ट स्थिति चूंकि उत्कृष्ट आबाधाके विना नहीं बांधती है, इसीलिये यहां 'उत्कृष्ट आबाधामें' ऐसा कहा गया है। चूंकि यह उत्कृष्ट आबाधा द्वितीयादि समयोंमें नहीं होती

है, इसीलिये यहां सूत्रमें पूर्वकोटिके त्रिभागको आबाधा करके देव व नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुको बांधनेवाले जीवके बन्धके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट आयुकी वेदना होती है, ऐसा कहा गया है ।

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ १३ ॥

आयुकर्मकी उस उत्कृष्ट वेदनासे भिन्न उसकी अनुत्कृष्ट वेदना होती है ॥ १३ ॥

इस अनुत्कृष्ट कालवेदनाके स्वामी असंख्यात हैं । जैसे— जिसने पूर्वकोटिके त्रिभागको आबाधा करके तेत्तीस सागरोपम प्रमाण आयुको बांधा है वह तो उस आयुकी उत्कृष्ट कालवेदनाका स्वामी है, किन्तु जिसने उसे एक समयसे कम बांधा है वह उसकी अनुत्कृष्ट कालवेदनाका स्वामी है । इसी प्रकार दो समय कम, तीन समय कम, इत्यादि क्रमसे उत्तरोत्तर एक एक समय कम उक्त आयुके बांधनेवाले सब ही उसकी अनुत्कृष्ट कालवेदनाके स्वामी होंगे । यह इस सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये ।

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेदणा कालदो जहण्णिया कस्स ? ॥ १४ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदके आश्रित ज्ञानावरणीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥ १४ ॥

अण्णदरस्स चरिमसमय छदुमत्थस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा ॥

जो भी जीव छद्मस्थ अवस्थाके अन्तिम समयमें वर्तमान है उसके ज्ञानावरणीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ १५ ॥

इसका कारण यह है कि छद्मस्थ अवस्थाके अन्तिम समयमें उस ज्ञानावरणकी स्थिति एक समय मात्र ही शेष रह जाती है ।

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ १६ ॥

इस जघन्य वेदनासे भिन्न उसकी कालकी अपेक्षा अजघन्य वेदना होती है ॥ १६ ॥

इस अजघन्य कालवेदनाके स्वामी द्विचरम समयवर्ती क्षीणकषाय, त्रिचरम समयवर्ती क्षीणकषाय, इस क्रमसे अनेक समझने चाहिये ।

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं ॥ १७ ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरणकी जघन्य और अजघन्य कालवेदनाओंकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार दर्शनावरणीय एवं अन्तराय कर्मोंकी भी जघन्य व अजघन्य कालवेदनाके स्वामित्वकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥ १७ ॥

सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णिया कस्स ? ॥ १८ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदके आश्रित वेदनीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥ १८ ॥

अण्णदरस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स तस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा ॥

जो भी जीव भव्यसिद्धिककालके अन्तिम समयमें स्थित है उसके वेदनीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ १९ ॥

अभिप्राय यह है कि अयोगिकेवली गुणस्थानके अन्तिम समयमें वर्तमान भव्य जीवके उक्त वेदनीय कर्मकी वेदना जघन्य होती है, क्योंकि, वहां उसकी एक समय मात्र ही स्थिति शेष रहती है।

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ २० ॥

उस जघन्य वेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य स्थितिवेदना होती है ॥ २० ॥

इसके भी स्वामियोंकी विविधता यथा सम्भव वेदनीय कर्मके समान ही समझना चाहिये।

एवं आउअ-णामागोदाणं ॥ २१ ॥

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मोंकी भी जघन्य एवं अजघन्य कालवेदनाओंकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥ २१ ॥

सामित्तेण जहण्णपदे मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णिया कस्स ? ॥ २२ ॥

स्वामित्वके आश्रयसे जघन्य पदविषयक मोहनीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥ २२ ॥

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयसकसाइयस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णा ॥

जो भी क्षपक सकषाय अवस्थाके अन्तिम समयमें स्थित है उसके मोहनीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ २३ ॥

अभिप्राय यह है कि सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें वर्तमान क्षपक जीवके उस मोहनीय कर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है।

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ २४ ॥

मोहनीय कर्मकी उक्त जघन्य वेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है ॥ २४ ॥ स्वामित्व समाप्त हुआ ॥

अप्पाबहुए त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणिओगद्दाराणि-जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ २५ ॥

अब अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार अधिकार प्राप्त है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— जघन्य पदमें, उत्कृष्ट पदमें और जघन्य-उत्कृष्ट पदमें ॥ २५ ॥

जहण्णपदेण अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ कालदो जहण्णियाओ तुल्लाओ ॥२६॥

जघन्य पदके आश्रित आठों ही कर्मोंकी, कालकी अपेक्षा जघन्य वेदनायें तुल्य हैं ॥

इसका कारण यह है कि प्रकृतमें जघन्य कालवेदना-स्वरूपसे यह आठों ही कर्मोंकी एक समयवाली एक स्थिति विवक्षित है।

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया ॥ २७ ॥

उत्कृष्ट पदके आश्रयसे कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट आयुकी वेदना सबसे स्तोक है ॥ २७ ॥

णामा-गोदवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ॥

उससे नाम व गोत्र कर्मकी कालसे उत्कृष्ट वे वेदनायें दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणी हैं ॥ २८ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ॥ २९ ॥

उनसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मकी कालसे उत्कृष्ट वेदनायें चारों ही तुल्य व विशेष अधिक हैं ॥ २९. ॥

मोहणीयस्स वेयणा कालदो उक्कस्सिया संखेज्जगुणा ॥ ३० ॥

उनसे मोहनीय कर्मकी कालसे उत्कृष्ट वेदना संख्यातगुणी है ॥ ३० ॥

जहण्णुक्कस्सपदे अण्णेसिं [अट्ठण्णं] पि कम्माणं वेयणाओ कालदो जहण्णियाओ तुल्लाओ थोवाओ ॥ ३१ ॥

जघन्य-उत्कृष्ट पदमें कालकी अपेक्षा आठों ही कर्मोंकी जघन्य वेदनायें परस्पर तुल्य व स्तोक हैं ॥ ३१ ॥

आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

उनसे आयु कर्मकी कालसे उत्कृष्ट वेदना असंख्यातगुणी है ॥ ३२ ॥

णामा-गोदवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ॥

उससे कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट नाम व गोत्र कर्मकी वेदनायें दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणी हैं ॥ ३३ ॥

णाणावरणीय - दंसणावरणीय - वेयणीय-अंतराइयवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ॥ ३४ ॥

उनसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मकी कालसे उत्कृष्ट वेदनायें चारों ही तुल्य व विशेष अधिक हैं ॥ ३४ ॥

मोहणीयवेयणा कालदो उक्कस्सिया संखेज्जगुणा ॥ ३५ ॥

इनसे मोहनीय कर्मकी कालसे उत्कृष्ट वेदना संख्यातगुणी है ॥३५॥ अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥

कालविहाणे पढमा चूलिया

एत्तो मूलपयडिट्ठिदिबंधे पुव्वं गमणिज्जे तत्थ इमाणि चत्तारि अणियोगद्दाराणि ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा णिसेयपरूवणा आबाधाकंदयपरूवणा अप्पाबहुए त्ति ॥ ३६ ॥

अब यहां मूलप्रकृतिस्थितिबन्धपूर्वमें ज्ञातव्य है। उसमें ये चार अनुयोगद्वार हैं– स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, आबाधाकाण्डकप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ॥ ३६ ॥

पूर्वोक्त पदमीमांसादि तीन अनुयोगद्वारोंसे काल विधानकी प्ररूपणा की जा चुकी है। अब यहां इस कालविधानमें प्ररूपित अर्थोंके विवरणरूप यह चूलिका प्राप्त हुई है। चूंकि पूर्वोक्त विषयके बोधका कारण मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध है, अत एव उसके ज्ञापनमें ये चार अनुयोगद्वार प्राप्त होते हैं। यह इसका अभिप्राय जानना चाहिये।

ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवा सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि ॥

स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ ३७ ॥

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ३८ ॥

उनसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ३८ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ३९ ॥

उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ३९ ॥

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४० ॥

उनसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४० ॥

बीइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ४१ ॥

उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ४१ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४२ ॥

उनसे उसीके पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४२ ॥

तीइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४३ ॥

उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४३ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४४ ॥

उनसे उसके ही पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४४ ॥

चउरिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४५ ॥

उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४५ ॥

तस्सेव्व पज्जत्तयस्स ठ्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४६ ॥

उनसे उसीके पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४६ ॥

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स ठ्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४७ ॥

उनसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४७ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स ठ्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४८ ॥

उनसे उसीके पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४८ ॥

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स ठ्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४९ ॥

उनसे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ४९ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स ठ्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ५० ॥

उनसे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ५० ॥

सव्वत्थोवा सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेसविसोहिट्ठाणाणि ॥ ५१ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ ५१ ॥

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५२ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थानोंसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५२ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५३ ॥

उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५३ ॥

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५४ ॥

उनसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५४ ॥

बीइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५५ ॥

उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५५ ॥

बीइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५६ ॥

द्वीन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५६ ॥

तीइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५७ ॥

त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५७ ॥

तीइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५८ ॥

त्रीन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५८ ॥

चउरिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ५९ ॥

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ५९ ॥

चउरिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ६० ॥

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ६० ॥

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ६१ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ६२ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२ ॥

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ६३ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ६४ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ६४ ॥

सव्वत्थोवो संजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो ॥ ६५ ॥

संयत जीवका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है ॥ ६५ ॥

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ॥ ६६ ॥

उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है ॥ ६६ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहियो ॥ ६७ ॥

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ६७ ॥

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ६८ ॥

उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ६८ ॥

सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ६९ ॥

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ६९ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७० ॥

उससे उसीके अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७० ॥

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७१ ॥

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७१ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७२ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७२ ॥

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७३ ॥

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७३ ॥

बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ७४ ॥

द्वीन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ७४ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७५ ॥

उसीके अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७५ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७६ ॥

उसीके अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७६ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७७ ॥

उसीके पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७७ ॥

तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७८ ॥

त्रीन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७८ ॥

तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ७९ ॥

त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ७९ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८० ॥

उसीके अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८० ॥

तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८१ ॥

त्रीन्द्रिय पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८१ ॥

चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८२ ॥

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८२ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८३ ॥

उसी अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८३ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८४ ॥

उसी अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८४ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८५ ॥

उसी पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८५ ॥

असण्णि पंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ८६ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ८६ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८७ ॥

उसीके अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८७ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८८ ॥

उसी अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८८ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ ८९ ॥

उसीके पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ ८९ ॥

संजदस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९० ॥

संयतका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९० ॥

संजदासंजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९१ ॥

संयतासंयतका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९१ ॥

तस्सेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९२ ॥

उसी संयतासंयतका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९३ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९४ ॥

उससे उसी असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९४ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९५ ॥

उससे उसी असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९५ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९६ ॥

उससे उसी असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९६ ॥

सण्णिमिच्छाइट्ठिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९७ ॥

संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९७ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९८ ॥

उससे उसी अपर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९८ ॥

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ ९९ ॥

उससे उसी अपर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ९९ ॥

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ १०० ॥

उससे उसी पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ १०० ॥

स्थितिबन्ध समाप्त हुआ ॥

णिसेयपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा ॥ १०१ ॥

निषेकप्ररूपणामें ये दो अनुयोगद्वार हैं— अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा ॥ १०१ ॥

अणंतरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयाणं तिण्णिवाससहस्साणि आबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तीसं सागरोवमकोडाकोडियो त्ति ॥ १०२ ॥

अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवोंके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी तीन हजार वर्षप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें निषिक्त है, वह बहुत है, जो प्रदेशाग्र द्वितीय समयमें निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, इस प्रकार वह उत्कर्षसे तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक उत्तरोत्तर विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥१०२॥

जिन जीवोंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उन्हींके उसका आबाधाकाल तीस हजार वर्ष प्रमाण होता है; उससे कम स्थितिको बांधनेवाले जीवोंके वह सम्भव नहीं है। इसी लिये यहां 'पंचेन्द्रिय' पदसे एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियोंका, 'संज्ञी' से असंज्ञियोंका, 'मिथ्यादृष्टि' से सम्यग्दृष्टियोंका और 'पर्याप्त' पदसे अपर्याप्त जीवोंका निषेध प्रगट किया गया है; क्यों कि, उनके उनका उक्त उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। उनकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवोंके उक्त आबाधाकालमें इन चार कर्मोंके प्रदेशोंका निक्षेप (निषेकरचना) सम्भव नहीं है, यह अभिप्राय सूत्रमें 'आबाधा' के ग्रहणसे सूचित किया गया है।

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं मोहणीयस्स सत्तवाससहस्साणि आबाहं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडि त्ति ॥ १०३ ॥

पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि एवं पर्याप्तक जीवोंके मोहनीय कर्मकी सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशाग्र द्वितीय समयमें निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निषिक्त है वह उससे हीन है; इस प्रकार वह उत्कर्षसे सत्तर कोड़ाकोड़ि सागरोपम तक विशेष हीन होता गया है ॥

यहां पंचेन्द्रिय आदि पदोंके ग्रहणका अभिप्राय पूर्वके ही समान समझना चाहिये।

पंचिंदियाणं सण्णीणं सम्मादिट्ठीणं वा मिच्छादिट्ठीणं वा पज्जत्तयाणमाउअस्स पुव्वकोडितिभागमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं; एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तेतीससागरोवमाणि त्ति ॥ १०४ ॥

पंचेन्द्रिय, संज्ञी एवं सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवोंके आयु कर्मकी एक पूर्वकोटिके तृतीय भाग प्रमाण आबाधाको छोड़कर प्रथम समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह बहुत है, द्वितीय समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, तृतीय समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह विशेष हीन है; इस प्रकार उत्कर्षसे तेतीस सागरोपम तक वह विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥ १०४ ॥

चूंकि पूर्वकोटित्रिभागके प्रथम समयमें वर्तमान संयत सम्यग्दृष्टि जीवोंके देवायुका तेतीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तथा उक्त त्रिभागके प्रथम समयमें वर्तमान किन्हीं मिथ्यादृष्टि जीवोंके नारकायुका उतना मात्र उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है, अत एव इस अपेक्षासे सूत्रमें 'सम्यग्दृष्टि' और 'मिथ्यादृष्टि' पदोंको ग्रहण किया गया है।

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं णामा-गोदाणं बेवाससहस्साणि आबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदिय समए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं; एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण वीसं सागरोवमकोडाकोडियो त्ति ॥ १०५ ॥

पंचेन्द्रिय, संज्ञी व मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवोंके नाम और गोत्र कर्मोंकी दो हजार वर्ष प्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रदेशपिण्ड प्रथम समयमें निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशपिण्ड द्वितीय समयमें निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशपिण्ड तृतीय समयमें निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है; इस प्रकार उत्कर्षसे बीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम तक विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥ १०५ ॥

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणमपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणमाउववज्जाणमंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं; एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण अंतोकोडाकोडियो त्ति ॥ १०६ ॥

पंचेन्द्रिय, संज्ञी व मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक जीवोंके आयुके बिना शेष सात कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधाको छोड़कर जो प्रदेशपिण्ड प्रथम समयमें निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशपिण्ड द्वितीय समयमें निषिक्त है वह विशेष हीन है, प्रदेशपिण्ड तृतीय समयमें निषिक्त है वह विशेष हीन है; इस प्रकार उत्कर्षसे अन्तःकोड़ाकोड़ि सागरोपम तक विशेष हीन होता गया है ॥

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं चउरिंदिय-तीइंदिय-बीइंदियाणं बादरेइंदिय-अपज्जत्तयाणं सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणमाउअस्स अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जाव पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण पुव्वकोडीयो त्ति ॥ १०७ ॥

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, और बादर एकेन्द्रिय ये अपर्याप्तक तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक व अपर्याप्तक जीवोंके आयु कर्मकी अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधाको छोड़कर प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र निषिक्त है वह बहुत है, द्वितीय समयमें जो प्रदेशाग्र निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है। तृतीय समयमें जो प्रदेशाग्र निषिक्त है वह विशेष हीन है; इस प्रकार उत्कर्षसे पूर्वकोटि तक विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥ १०७ ॥

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादरएइंदियपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणं आउअवज्जाणं अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तद्रियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सस्स सागरोवमसदस्स सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमस्स तिण्णि-सत्तभागा सत्त-सत्तभागा बे-सत्तभागा पडिवुण्णा त्ति ॥ १०८ ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आयु कर्मसे रहित सात कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधाको छोड़कर प्रथम समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह बहुत है, द्वितीय सययमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, तृतीय समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है; इस प्रकार विशेष हीन विशेष हीन होकर उत्कर्षसे हजार सागरोपमोंके सौ सागरोपमोंके, पचास सागरोपमोंके, पच्चीस सागरोपमके और एक सागरोपमके चार कर्म, मोहनीय एवं नाम-गोत्र कर्मोंके क्रमसे सात भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{3}{7}$), सात भाग ($\frac{7}{7}$) और दो भागों ($\frac{2}{7}$) तक चला गया है ॥ १०८ ॥

अभिप्राय यह है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक हजार सागरोपमोंके सात भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{1000 \times 3}{7}$), मोहनीय कर्मका उसके सात भागोंमेंसे सातों भाग ($\frac{1000 \times 7}{7}$), और नाम व गोत्र कर्मोंका उसके सात भागोंमेंसे दो भाग ($\frac{1000 \times 2}{7}$), प्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय जीवोंके चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ सागरोपमोंके सात भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{100 \times 3}{7}$), मोहनीयका उसके सात भागोंमेंसे सातों भाग ($\frac{100 \times 7}{7}$), और नाम व गोत्र कर्मोंका उसके सात भागोंमेंसे दो भाग ($\frac{100 \times 2}{7}$), प्रमाण होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके भी यथाक्रमसे पचास, पच्चीस और एक सागरोपमके उक्त भागोंका कर्म जानना चाहिये।

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादरएइंदियपज्जत्तयाणमाउअपुव्वकोडितिभागं बेमासं सोलसरादिंदियाणि सादिरेयाणि चत्तारिवासाणि सत्तवाससहस्साणि सादिरेयाणि आबाहं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो पुव्वकोडि त्ति ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आयु कर्मकी यथाक्रमसे पूर्वकोटिके तृतीय भाग, दो मास, साधिक सोलह दिवस, चार वर्ष, और साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रदेशपिण्ड प्रथम समयमें निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशपिण्ड द्वितीय समयमें निषिक्त है वह विशेष हीन है और जो प्रदेशपिण्ड तृतीय समयमें निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है; इस प्रकार उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग व पूर्वकोटि तक वह विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥ १०९ ॥

भुज्यमान उत्कृष्ट आयु असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके पूर्वकोटि, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तोंके छह मास, त्रीन्द्रिय पर्याप्तोंके उनचास-रात-दिन, द्वीन्द्रिय पर्याप्तोंके बारह वर्ष और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंके बाईस हजार वर्ष प्रमाण सम्भव है। तदनुसार क्रमसे उनके आयुकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटिके तृतीय भाग, दो मास, साधिक सोलह रात-दिन, चार वर्ष और साधिक सात हजार वर्ष मात्र इस आबाधाको छोड़कर उनके बांधे गये आयु कर्मकी निषेक रचना होती है, यहां यह अभिप्राय समझना चाहिये।

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादरेइंदियअपज्जत्तयाणं सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमाउववज्जाणमंतोमुहुत्तयाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण [सागरोवमसहस्सस्स] सागरोवमसदस्स सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमस्स तिण्णि-सत्तभागा सत्त-सत्तभागा बे-सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण उणया पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण उणया त्ति ॥ ११० ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक जीवोंके आयुकर्मसे रहित शेष सात कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधाको छोड़कर प्रथम समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह बहुत है, द्वितीय समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, तृतीय समयमें जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, इस प्रकार उत्कर्षसे हजार सागरोपम, सौ सागरोपम, पचास सागरोपम, पच्चीस सागरोपम, और एक सागरोपमके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन और पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन तीन, सात और दो भागों तक विशेष हीन विशेष हीन चला गया है ॥

अभिप्राय यह है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और द्वीन्द्रिय; इन अपर्याप्त जीवोंके आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन एक हजार, एक सौ, पचास और पच्चीस सागरोपमों सात भागोंमेंसे क्रमशः तीन, सात और दो भाग प्रमाण तथा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंके उनकी उत्कृष्ट स्थिति पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागरोपमाके उक्त सात भागोंमें तीन, सात और दो भाग मात्र बांधती है। उनकी अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधाको छोड़कर शेष स्थिति तक निषेक रचना होती है।

परंपरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं पज्जत्तयाणं अट्ठण्णं कम्माणं जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा, एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदी त्ति ॥ १११ ॥

परम्परोपनिधाकी अपेक्षा संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके आठ कर्मोंका जो प्रथम समयमें प्रदेशाग्र है उससे वह पल्योपमके असंख्यातवें भाग जाकर दुगुणाहीन हुआ है, इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक वह दुगुणा हीन दुगुणा हीन होता चला गया है ॥ १११ ॥

एयपदेस गुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि ॥ ११२ ॥

एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है ॥ ११२ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ॥११३॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ ११४ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं ॥ ११४ ॥

एयपदेगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ ११५ ॥

उनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ ११५ ॥

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणमपज्जत्तयाणं चउरिंदिय-तीइंदिय-बीइंदिय-एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणमाउववज्जाणं जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा, एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥ ११६ ॥

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय तथा बादर व सूक्ष्म एकेन्द्रिय इन पर्याप्तक अपर्याप्तक जीवोंके आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंका जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें है उससे पल्योपमके असंख्यातवें भाग जाकर वह दुगुणा हीन हुआ है, इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक वह दुगुणा दुगुणा हीन होता गया है ॥ ११६ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि ॥ ११७ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात वर्गमूलोंके बराबर है ॥ ११७ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ॥११८॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके वर्गमूलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥११८॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ ११९ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक है ॥ ११९ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ १२० ॥

उनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ १२० ॥

आबाधकंदयपरूवणदाए ॥ १२१ ॥

अब आबाधाकाण्डकप्ररूपणाका अधिकार है ॥ १२१ ॥

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणमाउववज्जाणमुक्कस्सियादो ट्ठिदीदो समए समए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तमोसरिदूण एयमाबाहाकंदयं करेदि । एसकमो जाव जहण्णिया ट्ठिदि त्ति ॥ १२२ ॥

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर व सूक्ष्म एकेन्द्रिय इन पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंके आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे समय समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र नीचे उतर कर एक आबाधाकाण्डकको करता है । यह क्रम जघन्य स्थिति तक है ॥ १२२ ॥

अभिप्राय यह है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके विवक्षित कर्मके उत्कृष्ट आबाधाकालके अन्तिम समयकी विवक्षा कर उक्त कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है, एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है, दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है, तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक समय कम होकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन उत्कृष्ट स्थिति तकका बन्ध होता है । इतनी स्थिति विशेषोंका एक आबाधाकाण्डक होता है । इसी प्रकार आबाधाकालके द्विचरम समयकी विवक्षा कर उसके आश्रयसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन विवक्षित कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको और उससे उत्तरोत्तर एक एक समय हीन होकर पुनः उस पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन तक उसकी स्थितिको बांधता है । इतनी स्थिति विशेषोंका द्वितीय आबाधाकाण्डक होता है । इसी क्रमसे उस आबाधाकालके त्रिचरम समयकी विवक्षामें तृतीय आबाधाकाण्डक और चतुश्चरम आदि समयोंकी विवक्षामें चतुर्थ आदि आबाधाकाण्डक होते हैं । इस प्रकार विवक्षित कर्मकी उस उत्कृष्ट स्थितिके उत्तरोत्तर हीन होते हुए उसकी जघन्य स्थिति तक समझना चाहिये ।

अप्पाबहुए त्ति ॥ १२३ ॥

अब अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारका अधिकार प्राप्त है ॥ १२३ ॥

पंचिदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्हं कम्माणमाउववज्जाणं सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा ॥ १२४ ॥

संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्तक व अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवोंके आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है ॥ १२४ ॥

आबाहट्ठाणाणि आबाहाकंदयाणि च दोवि तुल्लाणि संखेज्जगुणाणि ॥ १२५ ॥

आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणे हैं ॥ १२५ ॥

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया ॥ १२६ ॥

उनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है ॥ १२६ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १२७ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ १२७ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ १२८ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ १२८ ॥

एयमाबाहाकंदयमसंखेज्जगुणं ॥ १२९ ॥

एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है ॥ १२९ ॥

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ॥ १३० ॥

जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है ॥ १३० ॥

ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ १३१ ॥

स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ १३१ ॥

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ १३२ ॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ १३२ ॥

पंचिदियाणं सण्णीमसण्णीणं पज्जत्तयाणमाउअस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा ॥

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके आयुकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है ॥१३३॥

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ १३४ ॥

जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ १३४ ॥

आबाहट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ १३५ ॥

आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं ॥ १३५ ॥

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया ॥ १३६ ॥

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है ॥ १३६ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १३७ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ १३७ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ १३८ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ १३८ ॥

ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १३९ ॥

स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ १३९ ॥

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ १४० ॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ १४० ॥

पंचिदियाणं सण्णीमसण्णीणमपज्जत्तयाणं चउरिंदियाणं बीइंदियाणं तीइंदियाणं एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तयाणमाउअस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा ॥ १४१ ॥

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों तथा चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एवं सूक्ष्म एकेन्द्रिय; इन पर्याप्त-अपर्याप्तकोंके आयुकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है ॥ १४१ ॥

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ १४२ ॥

जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ १४२ ॥

आबाहट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ १४३ ॥

आबाधास्थान संख्यातगुणे है ॥ १४३ ॥

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया ॥ १४४ ॥

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है ॥ १४४ ॥

ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ १४५ ॥

स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ १४५ ॥

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ १४६ ॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ १४६ ॥

पंचिदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणं आउववज्जाणमाबाहट्ठाणाणि आबाहाकंदयाणि च दोवि तुल्लाणि थोवाणि ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय; इन पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक जीवोंके आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंके आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व स्तोक हैं ॥ १४७ ॥

जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है ॥ १४८ ॥

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया ॥ १४९ ॥

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है ॥ १४९ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १५० ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे है ॥ १५० ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ १५१ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ १५१ ॥

एयमबाधाकंदयमसंखेज्जगुणं ॥ १५२ ॥

एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है ॥ १५२ ॥

ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १५३ ॥

स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ १५३ ॥

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ १५४ ॥

जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ १५४ ॥

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ १५५ ॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ १५५ ॥

एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणं आउववज्जाणमाबाहट्ठाणाणि आबाहाकंदयाणि च दोण्णि तुल्लाणि थोवाणि ॥ १५६ ॥

बादर व सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंके आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व स्तोक हैं ॥ १५६ ॥

जहण्णिया आबाहा असंखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

जघन्य आबाधा असंख्यातगुणी है ॥ १५७ ॥

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया ॥ १५८ ॥

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है ॥ १५८ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १५९ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ १५९ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ १६० ॥

एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ १६० ॥

एयमाबाहाकंदयमसंखेज्जगुणं ॥ १६१ ॥

एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है ॥ १६१ ॥

ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ १६२ ॥

स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ १६२ ॥

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ॥ १६३ ॥

जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है ॥ १६३ ॥

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ १६४ ॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ १६४ ॥ अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥

कालविहाणे बिदिया चूलिया

ठिदिबंधज्झवसाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि तिण्णि आणिओगद्दाराणि जीवसमुदाहारो पडियसमुदाहारो ट्ठिदिसमुदाहारो त्ति ॥ १६५ ॥

अब स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानप्ररूपणा अधिकारप्राप्त है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं– जीवसमुदाहार, प्रकृतिसमुदाहार और स्थितिसमुदाहार ॥ १६५ ॥

जीवसमुदाहारे त्ति जे ते णाणावरणीयस्स बंधा जीवा ते दुविहा : सादबंधा चेव असादबंधा चेव ॥ १६६ ॥

उनमें जीवसमुदाहार प्रकृत है। तदनुसार जो ज्ञानावरणीयके बन्धक जीव है वे दो प्रकार है– सातबन्धक और असातबन्धक ॥ १६६ ॥

तत्थ जे ते सादबंधा जीवा ते तिविहा चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा बिट्ठाणबंधा ॥

उनमें जो सातबन्धक जीव हैं वे तीन प्रकारके हैं– चतुःस्थानबन्धक, त्रिस्थानबन्धक और द्विस्थानबन्धक ॥ १६७ ॥

सातावेदनीयका अनुभाग गुड, खांड, शक्कर और अमृतके स्वरूपसे चार प्रकारका है। उनमें जो जिस स्थानमें चारों प्रकारका अनुभाग बन्ध पाया जाता है वह चतुःस्थान अनुभाग तथा उसके बन्धक जीव चतुःस्थान बन्धक कहलाते हैं। इसी प्रकार त्रिस्थान और द्विस्थानबन्धकोका भी स्वरूप समझना चाहिये।

असादबंधा जीवा तिविहा– बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा चउट्ठाणबंधा त्ति ॥ १६८ ॥

असातबन्धक जीव तीन प्रकारके हैं– द्विस्थानबन्धक, त्रिस्थानबन्धक और चतुःस्थानबन्धक ॥ १६८ ॥

असातावेदनीयका अनुभाग निंब, कांजीर, विष और हालाहल स्वरूपसे चार प्रकारका है। उसमेंसे जिस अनुभागबन्धमें दो स्थान संभव हो उसका नाम द्विस्थान और उसके बन्धक जीवोंका नाम द्विस्थान बन्धक है। इसी प्रकार त्रिस्थान बन्धक और चतुःस्थान बन्धकोंका भी स्वरूप समझना चाहिये।

सव्वविसुद्धा सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा ॥ १६९ ॥

सातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव सब (द्विस्थान और त्रिस्थानबन्धकों) से विशुद्ध हैं ॥

तीव्र कषायका अभाव होकर जो उसकी मन्दता होती है उसका नाम विशुद्धि है। अथवा जघन्य स्थिति बन्धके कारणभूत जीवपरिणामको विशुद्धि समझना चाहिये।

तिट्ठाणबंधा जीवा संकलिट्ठदरा ॥ १७० ॥

उक्त चतुःस्थान बन्धकोंकी अपेक्षा त्रिस्थान बन्धक जीव संक्लिष्टतर हैं ॥ १७० ॥

बिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा ॥ १७१ ॥

उनसे द्विस्थान बन्धक जीव संक्लिष्टतर हैं ॥ १७१ ॥

सव्वविसुद्धा असादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा ॥ १७२ ॥

असातावेदनीयके द्विस्थानबन्धक जीव सबसे विशुद्ध हैं ॥ १७२ ॥

तिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा ॥ १७३ ॥

त्रिस्थानबन्धक जीव उनकी अपेक्षा संक्लिष्टतर हैं ॥ १७३ ॥

चउट्ठाणबंधा जीवा संकलिट्ठदरा ॥ १७४ ॥

उनसे चतुःस्थानबन्धक जीव संक्लिष्टतर हैं ॥ १७४ ॥

सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियं ट्ठिदिं बंधंति ॥ १७५ ॥

सातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणीयकी स्थितिको बांधते हैं ॥ १७५ ॥

सादस्स तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति ॥

साताके त्रिस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणीयकी अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधते हैं ॥१७६॥

सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा सादस्स चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति ॥ १७७ ॥

साताके द्विस्थानबन्धक जीव सातावेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिको बांधते हैं ॥ १७७ ॥

असादस्स बेट्ठाणबंधा जीवा सत्थाणेण णाणावरणीयस्स जहण्णियं ट्ठिदिं बंधंति ॥

असातावेदनीयके द्विस्थानबन्धक जीव स्वस्थानसे ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिको बांधते हैं ॥ १७८ ॥

असादस्स तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति ॥ १७९ ॥

असातावेदनीयके त्रिस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणीयकी अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधते हैं ॥ १७९ ॥

असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति ॥ १८० ॥

असातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव असातावेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिको बांधते हैं ॥

तेसिं दुविहा सेडिपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा ॥ १८१ ॥

उनकी श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकारकी है— अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा ॥ १८१ ॥

अणंतरोवणिधाए सादस्स चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा ॥ १८२ ॥

अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा साता वेदनीयके चतुःस्थानबन्धक व त्रिस्थानबन्धक जीव तथा असातावेदनीयके द्विस्थानबन्धक त्रिस्थानबन्धक जीव ये ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिके बन्धक स्वरूपसे स्तोक हैं ॥ १८२ ॥

बिदियाए ट्ठिदिए जीवा विसेसाहिया ॥ १८३ ॥

उनसे द्वितीय स्थितिके बन्धक जीव विशेष अधिक है ॥ १८३ ॥

तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया ॥ १८४ ॥

उनसे तृतीय स्थितिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १८४ ॥

एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १८५ ॥

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपमों तक वे विशेष अधिक विशेष अधिक हैं ॥ १८५ ॥

तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १८६ ॥

उसके आगे वे शतपृथक्त्व सागरोपमों तक विशेष हीन विशेष हीन हैं ॥ १८६ ॥

सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदिए जीवा थोवा ॥ १८७ ॥

साताके द्विस्थानबन्धक जीव और असाताके चतुःस्थानबन्धक जीवोंमें ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिके बन्धक स्तोक हैं ॥ १८७ ॥

बिदियाए ट्ठिदिए जीवा विसेसाहिया ॥ १८८ ॥

उनसे उसकी द्वितीय स्थितिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १८८ ॥

तदियाए ट्ठिदिए जीवा विसेसाहिया ॥ १८९ ॥

उनसे तृतीय स्थितिके बन्धक जीव विशेष अधिक है ॥ १८९ ॥

एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १९० ॥

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थिति तक जीवोंका प्रमाण विशेष अधिक विशेष अधिक होता गया है ॥ १९० ॥

तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव सादस्स असादस्स उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥

इसके आगे साता व असाता वेदनीयकी उत्कृष्ट स्थिति तक वे विशेष हीन विशेष हीन होते गये हैं ॥ १९१ ॥

परंपरोवणिधाए सादस्स चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा ॥ १९२ ॥

परंपरोपनिधाकी अपेक्षा साताके चतुःस्थानबन्धक व त्रिस्थानबन्धक जीव (तथा असाताके द्विस्थानबन्धक व त्रिस्थानबन्धक जीव) ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिके बन्धक जीवोंकी अपेक्षा उनसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग जाकर दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए है ॥ १९२ ॥

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झं ॥ १९३ ॥

इस प्रकार यवमध्य तक वे दुगुणी दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९३ ॥

तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा ॥ १९४ ॥

इसके आगे पल्योपमके असंख्यातवें भाग जाकर वे दुगुणी हानिको प्राप्त हुए हैं ॥१९४॥

एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १९५ ॥

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थिति तक वे दुगुणी दुगुणी हानिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९५ ॥

सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा-असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदिए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा ॥

सातावेदनीयके द्विस्थानबन्धक जीव व असातवेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव ज्ञानावर-णीयकी जघन्य स्थितिके बन्धक जीवोंकी अपेक्षा उससे पल्योपमके असंख्यातवें भाग जाकर दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९६ ॥

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १९७ ॥

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपमों तक वे दुगुणी दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥१९७॥

तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा ॥ १९८ ॥

इसके आगे पल्योपमका असंख्यातवें भाग जाकर वे दुगुणी हानिको प्राप्त हुए हैं ॥

एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव सादस्स असादस्स उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥१९९॥

इस प्रकार साता व असाता वेदनीयकी उत्कृष्ट स्थिति तक वे दुगुणे दुगुणे हीन हुए हैं ॥

एगजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि ॥ २०० ॥

एकजीवद्गुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात वर्गमूल प्रमाण हैं ॥

णाणाजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ॥

नानाजीव दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपमके वर्गमूलके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ २०१ ॥

णाणाजीवदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ २०२ ॥

नानाजीवदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं ॥ २०२ ॥

एगजीवदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ २०३ ॥

एकजीवद्गुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ २०३ ॥

सादस्स असादस्स य बिट्ठाणयम्मि णियमा अणागारपाओग्गट्ठाणाणि ॥ २०४ ॥

साता व असाता वेदनीयके द्विस्थानिक अनुभागमें निश्चयसे अनाकार उपयोग योग्य स्थान होते हैं ॥ २०४ ॥

सागारपाओग्गट्ठाणाणि सव्वत्थ ॥ २०५ ॥

साकार उपयोगके योग्य स्थान सर्वत्र हैं ॥ २०५ ॥

सादस्स चउट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि ॥ २०६ ॥

सातावेदनीयके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक हैं ॥ २०६ ॥

उवरि संखेज्जगुणाणि ॥ २०७ ॥

उनसे यवमध्यसे उपरिम स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २०७ ॥

सादस्स तिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २०८ ॥

उनसे साता वेदनीयके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २०८ ॥

उवरिसंखेज्जगुणाणि ॥ २०९ ॥

उनसे यवमध्यके उपरिम स्थान संख्यातगुणे है ॥ २०९ ॥

सादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्ज-गुणाणि ॥ २१० ॥

उनसे साता वेदनीयके द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके एकान्तत साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१० ॥

मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २११ ॥

उनसे मिश्र स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे है ॥ २११ ॥

सादस्स चेव बिट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१२ ॥

उनसे साताके ही द्विस्थानिक यवमध्यके ऊपर मिश्र स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥

असादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसायारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१३ ॥

उनसे असाताके द्विस्थानिक यवमध्यके नीचे एकान्ततः साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१३ ॥

मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१४ ॥

उनसे मिश्र स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१४ ॥

असादस्स चेव बिट्ठाणियजवमज्झस्सुवरि मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१५ ॥

उनसे असातावेदनीयके ही द्विस्थानिक यवमध्यके ऊपर मिश्रस्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१५ ॥

एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१६ ॥

उनसे एकान्तत-साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुणे है ॥ २१६ ॥

असादस्स तिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१७ ॥

उनसे असाता वेदनीयके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१७ ॥

उवरि संखेज्जगुणाणि ॥ २१८ ॥

उनसे उसके ऊपरके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१८ ॥

असादस्स चउट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २१९ ॥

उनसे असातावेदनीयके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २१९ ॥

सादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ॥ २२० ॥

उनसे सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ २२० ॥

ज-ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ २२१ ॥

उससे ज-स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २२१ ॥

आबाधासे सहित जो जघन्य स्थितिबन्ध होता है उसका नाम ज-स्थितिबन्ध और उस आबाधासे रहित जो जघन्य स्थितिबन्ध होता है उसका नाम जघन्य स्थितिबन्ध है, यह ज-स्थितिबन्ध और जघन्य स्थितिबन्धमें भेद समझना चाहिये।

असादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ २२२ ॥

उससे असातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २२२ ॥

ज-ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ २२३ ॥

उससे ज-स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २२३ ॥

जत्तो उक्कस्सयं दाहं गच्छदि सा ट्ठिदी संखेज्जगुणा ॥ २२४ ॥

उसमें जिसके कारण प्राणी उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होता है वह स्थिति संख्यातगुणी है ॥

दाहका अर्थ संक्लेश है । अतः उत्कृष्ट दाहसे यहां उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशको समझना चाहिये ।

अंतोकोडाकोडी संखेज्जगुणा ॥ २२५ ॥

उससे अन्तःकोडाकोडिका प्रमाण संख्यातगुणा है ॥ २२५ ॥

सादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि ॥ २२६ ॥

उससे सातावेदनीयके द्विस्थानिक यवमध्यके ऊपरके एकान्तत साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २२६ ॥

सादस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ २२७ ॥

उनसे सातावेदनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २२७ ॥

ज-ट्ठिदिबंधो विसेसाहियो ॥ २२८ ॥

उससे ज-स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २२८ ॥

दाहट्ठिदी विसेसाहिया ॥ २२९ ॥

उससे दाहस्थिति विशेष अधिक है ॥ २२९ ॥

असादस्स चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरिमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ २३० ॥

उससे असातावेदनीयके चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपरके स्थान विशेष अधिक हैं ॥

असादस्स उक्कस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ २३१ ॥

उनसे असातावेदनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २३१ ॥

ज-ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ॥ २३२ ॥

उससे ज-स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ॥ २३२ ॥

एदेण अट्ठपदेण सव्वत्थोवा सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा ॥ २३३ ॥

इस-अर्थपदके आश्रयसे सातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ २३३ ॥

तिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा ॥ २३४ ॥

त्रिस्थान बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ॥ २३४ ॥

बिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा ॥ २३५ ॥

द्विस्थानबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ॥ २३५ ॥

असादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा ॥ २३६ ॥

असाता वेदनीयके द्विस्थानबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ॥ २३६ ॥

चउट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

चतुःस्थानबन्धक जीव संख्यातगुणे है ॥ २३७ ॥

तिट्ठाणबंधा जीवा विसेसाहिया ॥ २३८ ॥

त्रिस्थानबन्धक जीव विशेष अधिक है ॥ २३८ ॥ जीव समुदाहार समाप्त हुआ ॥

पडयिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि पमाणाणुगमो अप्पाबहुए त्ति ॥ २३९ ॥

अब प्रकृतिसमुदाहारका अधिकार है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार हैं– प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व ॥ २३९ ॥

पमाणाणुगमे णाणावरणीयस्स असंखेज्जा लोगा ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि ॥

प्रमाणानुगमके अनुसार ज्ञानावरणीयके असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसान-स्थान हैं ॥ २४० ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २४१ ॥

इसी प्रकार शेष सात कर्मोंके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंका प्रमाण जानना चाहिये ॥ २४१ ॥ प्रमाणानुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥

अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवा आउअस्स ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि ॥ २४२ ॥

अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारके अनुसार आयु कर्मके स्थितिबन्धाध्यवसान सबसे स्तोक हैं ॥

णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥२४३॥

नाम व गोत्रके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि चत्तारि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २४४ ॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय; इन चारों ही कर्मोंके स्थितिबन्धा-ध्यवसानस्थान तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २४४ ॥

मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २४५ ॥

उनसे मोहनीयके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २४५ ॥

प्रकृतिसमुदाहार समाप्त हुआ ॥

ठिदिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि पगणणा अणुकट्ठी तिव्व-मंददा त्ति ॥ २४६ ॥

अब स्थिति समुदाहारका अधिकार है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— प्रगणना, अनुकृष्टि और तीव्र-मन्दता ॥ २४६ ॥

पगणणाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदिए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥ २४७ ॥

प्रगणना अनुयोगद्वारका अधिकार है। तदनुसार ज्ञानावरणीयके जघन्य स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसान असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २४७ ॥

बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥ २४८ ॥

द्वितीय स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २४८ ॥

तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्जवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जालोगा ॥ २४९ ॥

तृतीय स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण है ॥ २४९ ॥

एवमसंखेज्जा लोगा असंखेज्जा लोगा जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति ॥ २५० ॥

जिस प्रकार पूर्वोक्त तीन स्थितियोंके अध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक सब ही उपरिम स्थितियोंके अध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ २५० ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २५१ ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरण कर्मके प्रकृतिस्थिति-अध्यवसानस्थानोंकी प्ररूपणा की गई उसी प्रकार शेष सातों कर्मोंके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ २५१ ॥

तेसिं दुविधा सेडिपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा ॥ २५२ ॥

उक्त स्थानोंकी श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार है— अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा ॥२५२॥

अणंतरोवणिधाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि ॥ २५३ ॥

अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिसम्बन्धी स्थितिबन्धाध्यवसान-स्थान स्तोक हैं ॥ २५३ ॥

बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ २५४ ॥

द्वितीय स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान विशेष अधिक हैं ॥ २५४ ॥

तदियाए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ २५५ ॥

तृतीय स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान विशेष हैं ॥ २५५ ॥

एवं विसेसाहियाणि विसेसाहियाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥ २५६ ॥

इस प्रकार वे उत्कृष्ट स्थिति तक अनन्तर अनन्तर क्रमसे उत्तरोत्तर विशेष अधिक विशेष अधिक हैं ॥ २५६ ॥

एवं छण्णं कम्माणं ॥ २५७ ॥

इसी प्रकार आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी अनन्तरोपनिधाकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ २५७ ॥

आउअस्स जहण्णियाए ट्ठिदिए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि ॥ २५८ ॥

आयु कर्मकी जघन्य स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान स्तोक हैं ॥ २५८ ॥

बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २५९ ॥

द्वितीय स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २५९ ॥

तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २६० ॥

तृतीय स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २६० ॥

एवमसंखेज्जगुणाणि असंखेज्जगुणाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥ २६१ ॥

इस प्रकार वे उत्कृष्ट स्थिति तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे होते गये हैं ॥

परंपरोवणिधाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा ॥ २६२ ॥

परम्परोपनिधाकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिके स्थितिबन्धध्यवसानस्थानोंकी अपेक्षा उनसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र जाकर वे दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ २६२ ॥

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥ २६३ ॥

इस प्रकार वे उत्कृष्ट स्थिति तक दुगुणी दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ २६३ ॥

एयट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥

एक स्थितिसम्बन्धी अध्यवसानोंके दुगुण-दुगुणवृद्धिहानि स्थानोंका अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ २६४ ॥

णाणाट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि अंगुलवग्गमूलछेदणाणि असंखेज्जदिभागो ॥ २६५ ॥

नानास्थितिबन्धाध्यवसानों सम्बन्धी दुगुण-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर अंगुल सम्बन्धी वर्गमूलके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ २६५ ॥

णाणाठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ २६६ ॥

नानास्थितिबन्धाध्यवसानदुगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर स्तोक हैं ॥ २६६ ॥

एयट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ २६७ ॥

एक स्थितिबन्धाध्यवसानदुगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ २६७ ॥

एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं ॥ २६८ ॥

इसी प्रकार आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी प्ररूपणा करना चाहिये ॥ २६८ ॥

अणुकड्ढीए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जाणि ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि ताणि बिदियाए ट्ठिदीए बंधज्झवसाणट्ठाणाणि अपुव्वाणि ॥ २६९ ॥

अनुकृष्टिकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थितिमें जो स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान हैं द्वितीय स्थितिमें वे बन्धाध्यवसानस्थान अपूर्व ही होते हैं ॥ २६९ ॥

एवमपुव्वाणि अपुव्वाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ॥ २७० ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक अपूर्व अपूर्व स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान होते गये हैं ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २७१ ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकी अनुकृष्टिकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मोंके विषयमें अनुकृष्टिकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ २७१ ॥

तिव्व-मंददाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणं सव्वमंदाणुभागं ॥ २७२ ॥

तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी जघन्य स्थिति सम्बन्धी जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है ॥ २७२ ॥

तिस्से चेव उक्कस्समणंतगुणं ॥ २७३ ॥

उससे उसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है ॥ २७३ ॥

बिदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणमणंतगुणं ॥ २७४ ॥

उससे द्वितीय स्थितिका जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है ॥ २७४ ॥

तिस्से चेव उक्कस्समणंतगुणं ॥ २७५ ॥

उससे उसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है ॥ २७५ ॥

तदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणमणंतगुणं ॥ २७६ ॥

उससे तृतीय स्थितिका जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान स्थान अनन्तगुणा है ॥२७६॥

तिस्से चेव उक्कस्सयमणंतगुणं ॥ २७७ ॥

उससे उसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है ॥ २७७ ॥

एवमणंतगुणा जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति ॥ २७८ ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक वे अनन्तगुणे अनन्तगुणे हैं ॥ २७८ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २७९ ॥

जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकी तीव्र-मन्दता सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मोंके विषयमें भी उस तीव्र मन्दताके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ २७९ ॥

॥ वेदना-काल-विधान समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स चउत्थेखंडे-वेयणाए

७. वेयणभावविहाणं

वेयणभावविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥

अब वेदनाभावविधान अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है, उसमें ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भाव भाव के भेदसे भाव चार प्रकारका है। उनमें 'भाव' यह शब्द नामभाव है। सद्भाव और असद्भाव स्वरूपसे 'वह भाव यह है' इस प्रकार अभेदस्वरूपसे जो अन्य पदार्थमें कल्पना की जाती है वह स्थापनाभाव कहलाता है। द्रव्यभाव आगमद्रव्यभाव और नोआगम द्रव्यभावके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें जो भाव प्राभृतका ज्ञाता वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित है उसका नाम आगम द्रव्यभाव है। नोआगम द्रव्यभाव ज्ञायक शरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यभावके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमें भी तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यभाव कर्मद्रव्यभाव और नोकर्म द्रव्यभावके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंकी जो अज्ञानादिको उत्पन्न करनेकी शक्ति है उसे कर्मद्रव्यभाव कहते है। नोकर्म द्रव्यभाव सचित्त द्रव्यभाव और अचित्त द्रव्यभावके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें केवलज्ञान और केवलदर्शनादि स्वरूप भावका नाम सचित्त द्रव्यभाव है। अचित्त द्रव्यभाव मूर्त द्रव्यभाव और अमूर्त द्रव्यभावके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें वर्ण, गन्ध, रस, वे स्पर्शादिरूप भावका नाम मूर्त द्रव्यभाव तथा अवगाहना आदिस्वरूप भावका नाम अमूर्त द्रव्यभाव है। भावभाव आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें जो भावप्राभृतका ज्ञाता होकर वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे सहित है उसे आगम भावभाव कहते हैं। नोआगम भावभाव तीव्र-मन्दभाव व निर्जरा-भावके भेदसे दो प्रकारका है। इन सब भावके भेद-प्रभेदोंमें यहां कर्मभावका अधिकार है। वेदनाका जो भाव है- वह वेदना भाव है। उसकी चूंकि इस अधिकारमें उस वेदनाके भावभूत कर्मभावकी प्ररूपणा की गई है, अत एव इसका 'वेदनाभावविधान' यह सार्थक नाम है।

पदमीमांसा सामित्तमप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

वे तीन अनुयोगद्वार ये हैं- पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ॥ २ ॥

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा भावदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ? ॥ ३ ॥

पदमीमांसामें ज्ञानावरणीयवेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है, क्या अनुत्कृष्ट होती है, क्या जघन्य होती है, और क्या अजघन्य होती है ? ॥ ३ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा ॥ ४ ॥

उक्त ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्ट भी होती है, अनुत्कृष्ट भी होती है, जघन्य भी होती है, और अजघन्य भी होती है ॥ ४ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ५ ॥

इसी प्रकार शेष सात कर्मोंके विषय प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे ॥ ६ ॥

स्वामित्व दो प्रकारका है— जघन्य पदविषयक और उत्कृष्ट पदविषयक ॥ ६ ॥

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ ७ ॥

स्वामित्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट पदमें भावसे ज्ञानावरणीयकी उत्कृष्ट वेदना किसके होती है ? ॥

अण्णदरेण पंचिंदिएण सण्णिमिच्छाइट्ठिणा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदेण सागारुवजोगेण जागारेण णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठेण बंधल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि ॥ ८ ॥

अन्यतर पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त अवस्थाको प्राप्त, साकार उपयोगयुक्त, जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त ऐसे जिस जीवके द्वारा वह बांधा गया है और जिस जीवके उसका सत्त्व है उसके उक्त ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ ८ ॥

इस सूत्रमें जो जीव उत्कृष्ट अनुभागको बांधता है उसके स्वरूपका दिग्दर्शन कराते हुए सर्व प्रथम यह कहा गया है कि वह संज्ञी पंचेन्द्रिय होना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध सम्भव नहीं है। 'अन्यतर' शब्दके द्वारा यहां यह अभिप्राय व्यक्त किया गया है कि उक्त उत्कृष्ट अनुभागके बांधनेवाले उन संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंमें वेद आदिकी विशेषता अपेक्षित नहीं है— वह किसी भी वेद एवं विविध अवगाहना आदिसे संयुक्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके हो सकता है। उक्त उत्कृष्ट अनुयोगबन्ध चूंकि अपर्याप्तकाल, दर्शनोपयोगकाल और सुप्त अवस्थामें सम्भव नहीं है; अत एव यहां सूत्रमें पर्याप्त, साकार उपयोग (ज्ञानोपयोग) युक्त और जागृत अवस्थाको सूचित करनेवाले 'पज्जत्त' आदि शब्दोंको ग्रहण किया गया है। उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा ही वह उत्कृष्ट बन्ध होता है, ऐसा कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि वह मन्द, मन्दतर, मन्दतम, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम इन छह संक्लेशस्थानोंमेंसे प्रारम्भके पांच संक्लेशस्थानोंमें नहीं होता है; किन्तु अन्तिम तीव्रतम संक्लेश-

स्थानमें ही होता है। इस प्रकारके जीवके द्वारा बांधा गया वह अनुभाग जिसके सत्त्वस्वरूपसे अवस्थित होता है उसके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, यह सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

तं एइंदियस्स वा बीइंदियस्स वा तीइंदियस्स वा चउरिंदियस्स वा पंचिंदियस्स वा सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा बादरस्स वा सुहुमस्स वा पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा अण्णदरस्स जीवस्स अण्णदरियाए गदीए वट्टमाणयस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा ॥ ९ ॥

उक्त उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व एकेन्द्रिय, अथवा द्वीन्द्रिय, अथवा त्रीन्द्रिय, अथवा चतुरिन्द्रिय, अथवा पंचेन्द्रिय, अथवा संज्ञी, अथवा असंज्ञी, अथवा बादर, अथवा सूक्ष्म, अथवा पर्याप्त, अथवा अपर्याप्त, इस प्रकार किसी अन्यतर जीवके अन्यतम गतिमें विद्यमान होनेपर होता है; अतएव उक्त किसी भी जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ ९ ॥

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ १० ॥

उससे भिन्न उसकी अनुत्कृष्ट भाववेदना होती है ॥ १० ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ ११ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायके सम्बन्धी भाववेदनाकी प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ ११ ॥

सामित्तेण उक्कस्सपदे वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ १२ ॥

स्वामित्वसे उत्कृष्ट पदमें वेदनीयवेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥ १२ ॥

अण्णदरेण खवगेण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेण चरिमसमयबद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि ॥ १३ ॥

जिस अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत क्षपकके द्वारा अन्तिम समयमें उसका अनुभाग बांधा गया है उसके तथा जिसके उसका सत्त्व है उसके वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १३ ॥

उसका सत्त्व किनके होता है, इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहा जाता है--

तं खीणकसायवीदरागछदुमत्थस्स वा सजोगिकेवलिस्स वा तस्स वेयणीय वेयणा भावदो उक्कस्सा ॥ १४ ॥

उसका सत्त्व क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थके और सयोगिकेवलीके होता है, अतएव उनके वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १४ ॥

अभिप्राय यह है कि जो सूक्ष्मसाम्पराय संयत सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागको बांधकर क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानोंको प्राप्त हुआ है उसके भी वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है। सूत्रमें अयोगिकेवलीका ग्रहण द्वितीय 'वा' शब्दसे समझना चाहिये।

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ १५ ॥

उपर्युक्त उत्कृष्ट वेदनासे भिन्न उसकी अनुत्कृष्ट वेदना है ॥ १५ ॥

एवं णामा-गोदाणं ॥ १६ ॥

जिस प्रकार वेदनीयकी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट भाववेदनाओंकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार नाम व गोत्र कर्मोंकी भी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट भाववेदनाओंकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥

इसका कारण यह है कि यशकीर्ति नामकर्म और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध उक्त सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके अन्तिम समयमें पाया जाता है।

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउववेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ? ॥ १७ ॥

स्वामित्वसे उत्कृष्ट पदमें आयुकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ॥

अण्णदरेण अप्पमत्तसंजदेण सागार-जागारतप्पाओग्गविसुद्धेण बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि ॥ १८ ॥

साकार उपयोगसे संयुक्त, जागृत और उसके योग्य विशुद्धिसे सहित जिस अन्यतर अप्रमत्तसंयतके द्वारा आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग बांधा गया है उसके तथा जिसके उसका सत्त्व भी है उसके आयुकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १८ ॥

उसके योग्य विशुद्धिसे यह अभिप्राय समझना चाहिये कि अतिशय विशुद्धि और अतिशय संक्लेशके द्वारा आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध नहीं होता है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व किसके होता है, इसे आगेके सूत्र द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है--

तं संजदस्स वा अणुत्तरविमाणवासियदेवस्स वा तस्स आउववेयणा भावदो उक्कस्सा ॥ १९ ॥

उसके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व संयतके और अनुत्तरविमानवासी देवके होता है। अतएव उसके आयु कर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ॥ १९ ॥

'संयत' से यहां अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन तीन उपशामकों तथा उपशान्तकषायों और प्रमत्तसंयतोंका ग्रहण करना चाहिये। प्रमत्तसंयतोंमें उस प्रमत्तसंयतके उसके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व समझना चाहिये जो कि अप्रमत्तसंयत अवस्थामें उसके उत्कृष्ट अनुभागको बांधकर तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है।

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ २० ॥

उपर्युक्त आयुकी उत्कृष्ट भाववेदनासे भिन्न उसकी अनुत्कृष्ट भाववेदना जानना चाहिये ॥

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ? ॥ २१ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ॥

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीय वेयणा भावदो जहण्णा ॥ २२ ॥

अन्यतर क्षपक अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थ जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ २२ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ २३ ॥

उपर्युक्त ज्ञानावरणीयकी जघन्य भाववेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य भाववेदना होती है ॥

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं ॥ २४ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय और अन्तरायकी भी जघन्य अजघन्य भाववेदना जानना चाहिये ॥ २४ ॥

सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ? ॥ २५ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स असादवेदयस्स तस्स वेयणीय-वेयणा भावदो जहण्णा ॥ २६ ॥

असातावेदनीयका वेदन करनेवाले अन्तिम समयवर्ती भवसिद्धिक अन्यतर क्षपकके वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ २६ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ २७ ॥

उपर्युक्त वेदनीयकी जघन्य भाववेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य भाववेदना होती है ॥

सामित्तेण जहण्णपदे मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ? ॥ २८ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें मोहनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ॥

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयसकसाइस्स तस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णा ॥

अन्तिम समयवर्ती सकषाय अन्यतर क्षपकके मोहनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ २९ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ ३० ॥

उपर्युक्त उत्कृष्ट वेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है ॥ ३० ॥

सामित्तेण जहण्णपदे आउअवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ? ॥ ३१ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें आयुकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥३१॥

अण्णदरेण मणुस्सेण वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएण वा परियत्तमाणमज्झिम-परिणामेण अपज्जत्ततिरिक्खाउअं बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्मं अत्थि तस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा ॥ ३२ ॥

जिस अन्यतर मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिवाला जीवने परिवर्तमान मध्यम परिणामसे अपर्याप्त तिर्यंच सम्बन्धी आयुका बन्ध किया है उसके, और जिसके इसका सत्त्व होता है उसके आयुकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ ३२ ॥

यहां मनुष्य पदके द्वारा यह सूचित किया गया है कि देव और नारकी जीव अपर्याप्त तिर्यंच सम्बन्धी आयुको नहीं बांधा करते हैं। जो संक्लेश व विशुद्धिरूप परिणाम प्रतिसमयमें वर्धमान और हीयमान होते हैं वे अपरिवर्तमान परिणाम कहलाते हैं और जिन परिणामोंमें अवस्थित रहते हुए परिणामान्तरको प्राप्त होकर एक दो आदि समयोंमें आना सम्भव है उनका नाम परिवर्तमान परिणाम है। ये उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारके हैं। उनमें अतिशय जघन्य व अतिशय उत्कृष्ट परिणाम आयुबन्धके योग्य नहीं हैं। उन दोनोंके मध्यमें जो परिणाम अवस्थित हैं उन्हें परिवर्तमान मध्यम परिणाम समझना चाहिये।

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ ३३ ॥

आयुकी उपर्युक्त उत्कृष्ट वेदनासे भिन्न उसकी जघन्य वेदना होती है ॥ ३३ ॥

सामित्तेण जहण्णपदे णामवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ? ॥ ३४ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें नामकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥

अण्णदरेण सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण हदसमुप्पत्तिय-कम्मेण परियत्तमाण-मज्झिमपरिणामेण बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि तस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा ॥३५॥

हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जो अन्यतर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामके द्वारा कर्मका बन्ध करता है उसके और जिसके इसका सत्त्व है उसके नाम कर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ ३५ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ ३६ ॥

उपर्युक्त नामकर्मकी जघन्य उत्कृष्ट वेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है ॥

सामित्तेण जहण्णपदे गोदवेदणा भावदो जहण्णिया कस्स ? ॥ ३७ ॥

स्वामित्वसे जघन्य पदमें गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ॥३७॥

अण्णदरेण बादरतेउ-वाउजीवेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदेण सागार-जागार सव्वविसुद्धेण-हदसमुप्पत्तियकम्मेण उच्चागोदमुव्वेल्लिदूण णीचागोदं बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि तस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा ॥ ३८ ॥

सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुए, साकार उपयोगसे संयुक्त, जागृत, सर्वविशुद्ध ऐसे हत-समुत्पत्तिक कर्मवाले जिस अन्यतर बादर तेजकायिक या वायुकायिक जीवने उच्च गोत्रकी उद्वेलना करके नीच गोत्रका बन्ध किया है व जिसके उसका सत्त्व है उसके गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ ३८ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णा ॥ ३९ ॥

उपर्युक्त गोत्रकी जघन्य वेदनासे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है ॥ ३९ ॥

स्वामित्व समाप्त हुआ ॥

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि - जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ ४० ॥

अब अल्पबहुत्वका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— जघन्य पदविषयक अल्पबहुत्व, उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्व और जघन्य-उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्व ॥ ४० ॥

सव्वत्थोवा मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया ॥ ४१ ॥

भावकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य वेदना सबसे स्तोक है ॥ ४१ ॥

अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ४२ ॥

उससे भावकी अपेक्षा अन्तराय कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ४२ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीयवेयणाओ भावदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ ॥ ४३ ॥

उससे भावकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीयकी जघन्य वेदनायें दोनों ही परस्पर तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ ४३ ॥

आउववेदणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ४४ ॥

उनसे भावकी अपेक्षा आयु कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ४४ ॥

गोदवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ४५ ॥

उससे भावकी अपेक्षा गोत्र कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ४५ ॥

णामवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ४६ ॥

उससे भावकी अपेक्षा नाम कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ४६ ॥

वेयणीयवेदणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ४७ ॥

उससे भावकी अपेक्षा वेदनीय कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ४७ ॥

जघन्य पदविषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा भावदो उक्कस्सिया ॥ ४८ ॥

उत्कृष्ट पदका अवलम्बन लेकर भावकी अपेक्षा आयु कर्मकी उत्कृष्ट वेदना सबसे स्तोक है ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ भावदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ ॥ ४९ ॥

भावकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तरायकी उत्कृष्ट वेदनायें तीनों ही तुल्य होकर आयुकर्मकी उस उत्कृष्ट वेदनासे अनन्तगुणी है ॥ ४९ ॥

मोहणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा ॥ ५० ॥

उससे भावकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५० ॥

णामा-गोदवेयणाओ भावदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ ॥५१॥

उससे भावकी अपेक्षा नाम व गोत्रकी उत्कृष्ट वेदनायें दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणी हैं ॥

वेदणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा ॥ ५२ ॥

उनसे भावकी अपेक्षा वेदनीयकी उत्कृष्ट वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५२ ॥

उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया ॥ ५३ ॥

जघन्य-उत्कृष्ट पदसे भावकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य वेदना सबसे स्तोक है ॥ ५३ ॥

अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ५४ ॥

उससे भावकी अपेक्षा अन्तरायकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५४ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ ॥ ५५ ॥

उससे भावकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीयकी जघन्य वेदनायें दोनों ही तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ ५५ ॥

आउअवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ५६ ॥

उनसे भावकी अपेक्षा आयुकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५६ ॥

गोदवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ५७ ॥

उससे भावकी अपेक्षा गोत्र कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५७ ॥

णामवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ५८ ॥

उससे भावकी अपेक्षा नाम कर्मकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५८ ॥

वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा ॥ ५९ ॥

उससे भावकी अपेक्षा वेदनीयकी जघन्य वेदना अनन्तगुणी है ॥ ५९ ॥

आउअवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा ॥ ६० ॥

उससे भावकी अपेक्षा आयुकी उत्कृष्ट वेदना अनन्तगुणी है ॥ ६० ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ भावदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ ॥ ६१ ॥

उससे भावकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तरायकी उत्कृष्ट वेदनायें तीनों ही तुल्य होती हुईं अनन्तगुणी हैं ॥ ६१ ॥

मोहणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा ॥ ६२ ॥

उनसे भावकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट वेदना अनन्तगुणी है ॥ ६२ ॥

णामा-गोदवेयणाओ भावदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ ॥६३॥

उससे भावकी अपेक्षा नाम व गोत्रकी उत्कृष्ट वेदनायें दोनों ही तुल्य होती हुईं अनन्तगुणी हैं ॥ ६३ ॥

वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा ॥ ६४ ॥

उनसे भावकी अपेक्षा वेदनीयकी उत्कृष्ट वेदना अनन्तगुणी है ॥ ६४ ॥

॥ जघन्य-उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥

सादं जसुच्च-दे-कं ते-आ-वे-मणु अणंतगुणहीणा ।
ओ-मिच्छ-के-असादं वीरिय-अणंताणु-संजलणा ॥ १ ॥

सातावेदनीय, यशःकीर्ति व उच्चगोत्र ये दो प्रकृतियां, देवगति, कार्मणशरीर, तैजसशरीर, आहारकशरीर, वैक्रियिकशरीर, और मनुष्यगति ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हीन हैं । औदारिकशरीर, मिथ्यात्व, केवलज्ञानावरण-केवलदर्शनावरण-असातावेदनीय व वीर्यान्तराय ये चार प्रकृतियां अनन्तानुबन्धिचतुष्टय और संज्वलनचतुष्टय ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हीन है । ॥ १ ॥

अट्ठाभिणि-परिभोगे चक्खू तिण्णि तिय पंचणोकसाया ।
णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा य पयला य ॥ २ ॥

चार प्रत्याख्यानावरण और चार अप्रत्याख्यानावरण ये आठ कषाय, आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तराय ये दो, चक्षुदर्शनावरण, तीन त्रिक अर्थात् श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तराय ये तीन प्रकृतियां, अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय ये तीन प्रकृतियां, मनःपर्यायज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि और दानान्तराय ये तीन प्रकृतियां, अर्थात् नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा ये पांच नोकषाय निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा और प्रचला; ये प्रकृतियां क्रमशः उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हीन हैं ॥ २ ॥

अजसो णीचागोदं णिरय-तिरिक्खगइ इत्थि पुरिसो य ।
रदि-हस्सं देवाऊ णिरयाऊ मणुय-तिरिक्खाऊ ॥ ३ ॥

अयशःकीर्ति और नीचगोत्र ये दो, नरकगति, तिर्यग्गति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, रति, हास्य, देवायु, नारकायु, मनुष्यायु और तिर्यग्गायु ये प्रकृतियां अनुभागकी अपेक्षा उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हीन हैं ॥ ३ ॥

एत्तो उक्कस्सओ चउसट्ठिपदियो महादंडओ कायव्वो भवदि ॥ ६५ ॥

अब आगे चौंसठ पदवाला उत्कृष्ट महादण्डक किया जाता है ॥ ६५ ॥

सव्वतिव्वाणुभागं सादावेदणीयं ॥ ६६ ॥

सातावेदनीय प्रकृति सबसे तीव्र अनुभागवाली संयुक्त है ॥ ६६ ॥

जसगित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ ६७ ॥

उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्र ये दोनों भी परस्पर तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हीन है ॥

देवगदी अणंतगुणहीणा ॥ ६८ ॥

उनसे देवगति अनन्तगुणी हीन है ॥ ६८ ॥

कम्मइयसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ६९ ॥ तेयासरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७० ॥ आहारसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७१ ॥ वेउव्वियसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७२ ॥

उससे कार्मणशरीर अनन्तगुणा हीन है ॥ ६९ ॥ उससे तैजसशरीर अनन्तगुणा हीन है ॥ ७० ॥ उससे आहारकशरीर अनन्तगुणा हीन है ॥ ७१ ॥ उससे वैक्रियिकशरीर अनन्तगुणा हीन है ॥ ७२ ॥

मणुसगदी अणंतगुणहीणा ॥ ७३ ॥ ओरालियसरीरमणंतगुणहीणं ॥ ७४ ॥ मिच्छत्तमणंतगुणहीणं ॥ ७५ ॥

उससे मनुष्यगति अनन्तगुणी हीन है ॥ ७३ ॥ उससे औदारिकशरीर अनन्तगुण हीन है ॥ ७४ ॥ उससे मिथ्यात्व प्रकृति अनन्तगुणी हीन है ॥ ७५ ॥

केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं असादवेदणीयं वीरियंतराइयं च चत्तारि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ ७६ ॥

उससे केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, असातावेदनीय और वीर्यान्तराय ये चारों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हीन हैं ॥ ७६ ॥

अणंताणुबंधिलोभो अणंतगुणहीणो ॥ ७७ ॥ माया विसेसहीणा ॥ ७८ ॥ कोधो विसेसहीणो ॥ ७९ ॥ माणो विसेसहीणो ॥ ८० ॥

केवलज्ञानावरणीय आदिकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी लोभ अनन्तगुणा हीन है ॥ ७७ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी माया विशेष हीन है ॥ ७८ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी क्रोध विशेष हीन है ॥ ७९ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी मान विशेष हीन है ॥ ८० ॥

संजलणाए लोभो अणंतगुणो ॥ ८१ ॥ माया विसेसहीणा ॥ ८२ ॥ कोधो विसेसहीणो ॥ ८३ ॥ माणो विसेसहीणो ॥ ८४ ॥

अनन्तानुबन्धी मानसे संज्वलन लोभ अनन्तगुणा हीन है ॥ ८१ ॥ उससे संज्वलन माया विशेष हीन है ॥ ८२ ॥ उससे संज्वलन क्रोध विशेष हीन है ॥ ८३ ॥ उससे संज्वलन मान विशेष हीन है ॥ ८४ ॥

पच्चक्खाणावरणीयलोभो अणंतगुणहीणो ॥ ८५ ॥ माया विसेसहीणा ॥ ८६ ॥ कोधो विसेसहीणो ॥ ८७ ॥ माणो विसेसहीणो ॥ ८८ ॥

संज्वलन मानसे प्रत्याख्यानावरण लोभ अनन्तगुणा हीन है ॥ ८५ ॥ उससे प्रत्याख्यानावरण माया विशेष हीन है ॥ ८६ ॥ उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोध विशेष हीन है ॥ ८७ ॥ उससे प्रत्याख्यानावरण मान विशेष हीन हैं ॥ ८८ ॥

अपच्चक्खाणावरणीयलोभो अणंतगुणहीणो ॥ ८९ ॥ माया विसेसहीणा ॥ ९० ॥ कोधो विसेसहीणो ॥ ९१ ॥ माणो विसेसहीणो ॥ ९२ ॥

प्रत्याख्यानावरण मानसे अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ अनन्तगुणा हीन है ॥ ८९ ॥ उससे अप्रत्याख्यानावरण माया विशेष हीन है ॥ ९० ॥ उससे अप्रत्यख्यानावरण क्रोध विशेष हीन है ॥ ९१ ॥ उससे अप्रत्याख्यानावरण मान विशेष हीन है ॥ ९२ ॥

आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ ९३ ॥

उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय ये दोनों ही तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हीन हैं ॥ ९३ ॥

चक्खुदंसणावरणीयमणंतगुणहीणं ॥ ९४ ॥

उनसे चक्षुदर्शनावरणीय प्रकृति अनन्तगुणी हीन है ॥ ९४ ॥

सुदणाणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च तिण्णि अणंतगुणहीणाणि ॥

श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय ये तीनों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई चक्षुदर्शनावरणीयसे अनन्तगुणी हीन हैं ॥ ९५ ॥

ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाहंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ ९६ ॥

उनसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय; ये तीनों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हीन हैं ॥ ९६ ॥

मणपज्जवणाणावरणीयं थीणगिद्धी दाणंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुण-हीणाणि ॥ ९७ ॥

उनसे मनःपर्ययज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धि और दानान्तराय; ये तीनों ही तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हीन हैं ॥ ९७ ॥

णवुंसयवेदो अणंतगुणहीणो ॥ ९८ ॥ अरदि अणंतगुणहीणा ॥ ९९ ॥ सोगो अणंतगुणहीणो ॥ १०० ॥ भयमणंतगुणहीणं ॥ १०१ ॥

उपर्युक्त मनःपर्ययज्ञानावरणीय आदिकी अपेक्षा नपुंसकवेद प्रकृति अनन्तगुणी हीन है ॥९८॥ उससे अरति अनन्तगुणी हीन है ॥ ९९ ॥ उससे शोक अनन्तगुणा हीन है ॥१००॥ उससे भय अनन्तगुणा हीन है ॥ १०१ ॥

दुगुंछा अणंतगुणहीणा ॥ १०२ ॥ णिद्दाणिद्दा अणंतगुणहीणा ॥ १०३ ॥ पयलापयला अणंतगुणहीणा ॥ १०४ ॥ णिद्दा य अणंतगुणहीणा ॥ १०५ ॥ पयला अणंतगुणहीणा ॥ १०६ ॥

भयसे जुगुप्सा अनन्तगुणी हीन है ॥ १०२ ॥ उससे निद्रानिद्रा अनन्तगुणी हीन है ॥ १०३ ॥ उससे प्रचला प्रचला अनन्तगुणी हीन है ॥ १०४ ॥ उससे निद्रा अनन्तगुणी हीन है ॥ १०५ ॥ उससे प्रचला अनन्तगुणी हीन है ॥ १०६ ॥

अजसकित्ती णीचागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि ॥ १०७ ॥

उससे अयशःकीर्ति और नीचगोत्र ये दोनों प्रकृतियां तुल्य होकर अनन्तगुणी हीन हैं ॥

णिरयगई अणंतगुणहीणा ॥ १०८ ॥ तिरिक्खगई अणंतगुणहीणा ॥ १०९ ॥ इत्थिवेदो अणंतगुणहीणो ॥ ११० ॥ पुरिसवेदो अणंतगुणहीणो ॥ १११ ॥

उक्त अयशःकीर्ति आदिकी अपेक्षा नरकगति अनन्तगुणी हीन है ॥ १०८ ॥ उससे तिर्यग्गति अनन्तगुणी हीन है ॥ १०९ ॥ उससे स्त्रीवेद अनन्तगुणा हीन है ॥ ११० ॥ उससे पुरुषवेद अनन्तगुणा हीन है ॥ १११ ॥

रदी अणंतगुणहीणा ॥ ११२ ॥ हस्समणंतगुणहीणं ॥ ११३ ॥ देवाउअमणंत-

गुणहीणं ॥ ११४ ॥ णिरयाउअमणंतगुणहीणं ॥ ११५ ॥ मणुस्साउअमणंतगुणहीणं ॥ ११६ ॥ तिरिक्खाउअमणंतगुणहीणं ॥ ११७ ॥

पुरुषवेदसे रति अनन्तगुणी हीन है ॥ ११२ ॥ उससे हास्य अनन्तगुणा हीन है ॥ ११३ ॥ उससे देवायु अनन्तगुणी हीन है ॥ ११४ ॥ उससे नारकायु अनन्तगुणा हीन है ॥ ११५ ॥ उससे मनुष्यायु अनन्तगुणी हीन है ॥ ११६ ॥ उससे तिर्यगायु अनन्तगुणी हीन है ॥ ११७ ॥

॥ इस प्रकार चौंसठ पदवाला उत्कृष्ट महादण्डक समाप्त हुआ ॥

संज-मण-दाणमोही लाभं सुदचक्खु-भोगं चक्खुं च ।
आभिणिबोहिय परिभोग विरिय णव णोकसायाइं ॥ ४ ॥

संज्वलनचतुष्क, मनःपर्ययज्ञानावरण, दानान्तराय, अवधिज्ञानावरण, लाभान्तराय, श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगान्तराय, चक्षुदर्शनावरण, आभिनिबोधिकज्ञानावरण, परिभोगान्तराय, वीर्यान्तराय और नौ नोकषाय; ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हैं ॥ ४ ॥

के-प-णि-अट्ठ-त्तिय-अण-मिच्छा-ओ-वे-तिरिक्ख-मणुसाऊ ।
तेय-कम्मसरीर तिरिक्ख-णिरय-देव-मणुवगई ॥ ५ ॥

केवलज्ञानावरण व केवलदर्शनावरण, प्रचला, निद्रा, आठ कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मिथ्यात्व, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तिर्यग्गति, नरकगति, देवगति और मनुष्यगति; ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर अनुभागकी अपेक्षा अनन्तगुणी हैं ॥ ५ ॥

णीचागोदं अजसो असादमुच्चं जसो तहा सादं ।
णिरयाऊ देवाऊ आहारसरीरणामं च ॥ ६ ॥

नीचगोत्र, अयशःकीर्ति, असातावेदनीय, उच्चगोत्र, यशःकीर्ति तथा सातावेदनीय, नारकायु, देवायु और आहारशरीर; ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हैं ॥ ६ ॥

एत्तो जहण्णओ चउसट्ठिपदिओ महादंडओ कायव्वो भवदि ॥ ११८ ॥

अब आगे चौंसठ पदवाला जघन्य महादण्डक किया जाता है ॥ ११८ ॥

सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणं ॥ ११९ ॥ मायासंजलणमणंतगुणं ॥ १२० ॥ माणसंजलणमणंतगुणं ॥ १२१ ॥ कोधसंजलणमणंतगुणं ॥ १२२ ॥

संज्वलनलोभ सबसे मन्द अनुभागवाला है ॥ ११९ ॥ उससे संज्वलन माया अनन्तगुणी है ॥ १२० ॥ उससे संज्वलन मान अनन्तगुणा है ॥ १२१ ॥ उससे संज्वलन क्रोध अनन्तगुणा है ॥

मणपज्जवणाणावरणीयं दाणंतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि ॥ १२३ ॥

संज्वलन क्रोधसे मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय ये दोनों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ १२३ ॥

ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि ॥ १२४ ॥

उनसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय ये तीनों ही प्रकृतिय तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ १२४ ॥

सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि ॥ १२५ ॥

उनसे श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय ये तीनों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ १२५ ॥

चक्खुदंसणावरणीयमणंतगुणं ॥ १२६ ॥

उनसे चक्षुदर्शनावरणीय अनन्तगुणी हैं ॥ १२६ ॥

आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि ॥

उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय ये दोनों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ १२७ ॥

विरियंतराइयमणंतगुणं ॥ १२८ ॥ पुरिसवेदो अणंतगुणो ॥ १२९ ॥ हस्समणंतगुणं ॥ १३० ॥ रदी अणंतगुणा ॥ १३१ ॥ दुगुंछा अणंतगुणा ॥ १३२ ॥ भयमणंतगुणं ॥ १३३ ॥ सोगो अणंतगुणो ॥ १३४ ॥ अरदी अणंतगुणा ॥ १३५ ॥ इत्थिवेदो अणंतगुणो ॥ १३६ ॥ णवुंसयवेदो अणंतगुणो ॥ १३७ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय आदिसे वीर्यान्तराय अनन्तगुणा है ॥ १२८ ॥ उससे पुरुषवेद अनन्तगुणा है ॥ १२९ ॥ उससे हास्य अनन्तगुणा है ॥ १३० ॥ उससे रति अनन्तगुणी है ॥ १३१ ॥ उससे जुगुप्सा अनन्तगुणी है ॥ १३२ ॥ उससे भय अनन्तगुणा है ॥ १३३ ॥ उससे शोक अनन्तगुणा है ॥ १३४ ॥ उससे अरति अनन्तगुणी है ॥ १३५ ॥ उससे स्त्रीवेद अनन्तगुणा है ॥ १३६ ॥ उससे नपुंसकवेद अनन्तगुणा है ॥ १३७ ॥

केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि ॥१३८॥

नपुंसकवेदसे केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ये दोनों ही प्रकृतियां तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ १३८ ॥

पयला अणंतगुणा ॥ १३९ ॥ णिद्दा अणंतगुणा ॥ १४० ॥ पच्चक्खाणावरणीय-माणो अणंतगुणो ॥ १४१ ॥ कोधो विसेसाहिओ ॥ १४२ ॥ माया विसेसाहिया ॥ १४३ ॥ लोभो विसेसाहिओ ॥ १४४ ॥

उनसे प्रचला अनन्तगुणी है ॥ १३९ ॥ उससे निद्रा अनन्तगुणी है ॥ १४० ॥ उससे प्रत्याख्यानावरणीय मान अनन्तगुणा है ॥ १४१ ॥ उससे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध विशेष अधिक है ॥ १४२ ॥ उससे प्रत्याख्यानावरणीय माया विशेष अधिक है ॥ १४३ ॥ उससे प्रत्याख्यानावरणीय लोभ विशेष अधिक है ॥ १४४ ॥

अपच्चक्खाणावरणीयमाणो अणंतगुणो ॥ १४५ ॥ कोधो विसेसाहिओ ॥ १४६ ॥ माया विसेसाहिया ॥ १४७ ॥ लोभो विसेसाहिओ ॥ १४८ ॥

प्रत्याख्यानावरणीय लोभसे अप्रत्याख्यानावरणीय मान अनन्तगुणा है ॥ १४५ ॥ उससे अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध विशेष अधिक है ॥ १४६ ॥ उससे अप्रत्याख्यानावरणीय माया विशेष अधिक है ॥ १४७ ॥ उससे अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ विशेष अधिक है ॥ १४८ ॥

णिद्दाणिद्दा अणंतगुणा ॥ १४९ ॥ पयलापयला अणंतगुणा ॥ १५० ॥ थीणगिद्धी अणंतगुणा ॥ १५१ ॥ अणंताणुबंधिमाणो अणंतगुणो ॥ १५२ ॥ कोधो विसेसाहिओ ॥ १५३ ॥ माया विसेसाहिया ॥ १५४ ॥ लोभो विसेसाहिओ ॥ १५५ ॥

अप्रत्याख्यानावरणीय लोभसे निद्रानिद्रा अनन्तगुणी है ॥ १४९ ॥ उससे प्रचलाप्रचला अनन्तगुणी है ॥ १५० ॥ उससे स्त्यानगृद्धि अनन्तगुणी है ॥ १५१ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी मान अनन्तगुणा है ॥ १५२ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी क्रोध विशेष अधिक है ॥ १५३ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी माया विशेष अधिक है ॥ १५४ ॥ उससे अनन्तानुबन्धी लोभ विशेष अधिक है ॥

मिच्छत्तमणंतगुणं ॥ १५६ ॥ ओरालियसरीरमणंतगुणं ॥ १५७ ॥ वेउव्विय-सरीरमणंतगुणं ॥ १५८ ॥ तिरिक्खाउअमणंतगुणं ॥ १५९ ॥ मणुसाउअमणंतगुणं ॥ १६० ॥ तेजइयसरीरमणंतगुणं ॥ १६१ ॥ कम्मइयसरीरमणंतगुणं ॥ १६२ ॥

अनन्तानुबन्धी लोभसे मिथ्यात्व अनन्तगुणा है ॥ १५६ ॥ उससे औदारिकशरीर अनन्तगुणा है ॥ १५७ ॥ उससे वैक्रियिकशरीर अनन्तगुणा है ॥ १५८ ॥ उससे तिर्यगायु अनन्तगुणी है ॥ १५९ ॥ उससे मनुष्यायु अनन्तगुणी है ॥ १६० ॥ उससे तैजसशरीर अनन्तगुणा है ॥ १६१ ॥ उससे कार्मणशरीर अनन्तगुणा है ॥ १६२ ॥

तिरिक्खगदी अणंतगुणा ॥ १६३ ॥ णिरयगदी अणंतगुणा ॥ १६४ ॥ मणुसगदी अणंतगुणा ॥ १६५ ॥ देवगदी अणंतगुणा ॥ १६६ ॥

कार्मणशरीरसे तिर्यग्गति अनन्तगुणी है ॥ १६३ ॥ उससे नरकगति अनन्तगुणी है ॥ १६४ ॥ उससे मनुष्यगति अनन्तगुणी है ॥ १६५ ॥ उससे देवगति अनन्तगुणी है ॥ १६६ ॥

नीचागोदमणंतगुणं ॥ १६७ ॥ अजसकित्ती अणंतगुणा ॥ १६८ ॥ असादावेद-णीयमणंतगुणं ॥ १६९ ॥ जसकित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि ॥ १७० ॥ सादावेदणीयमणंतगुणं ॥१७१॥ णिरयाउअमणंतगुणं ॥१७२॥ देवाउअमणंतगुणं ॥ १७३ ॥ आहारसरीरमणंतगुणं ॥ १७४ ॥

देवगतिसे नीचगोत्र अनन्तगुणा है ॥ १६७ ॥ उससे अयशःकीर्ति अनन्तगुणी है ॥ १६८ ॥ उससे असातावेदनीय अनन्तगुणी है ॥ १६९ ॥ उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्र दोनों ही तुल्य होती हुई अनन्तगुणी हैं ॥ १७० ॥ उनसे सातावेदनीय अनन्तगुणी है ॥ १७१ ॥ उससे नारकायु अनन्तगुणी है ॥ १७२ ॥ उससे देवायु अनन्तगुणी है ॥ १७३ ॥ उससे आहारशरीर अनन्तगुणा है ॥ १७४ ॥ चौंसठ पदवाला जघन्य महादण्डक समाप्त हुआ ॥

१. वेयणभावविहाण पढमा-चूलिया

सम्मत्तुप्पत्ती वि य सावय-विरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते ॥ ७ ॥
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा ।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणा य सेडीओ ॥ ८ ॥

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि श्रावक अर्थात् देशव्रती, विरत अर्थात् महाव्रती, अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करनेवाला, दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला, चारित्रमोहका उपशम करनेवाला उपशान्तकषाय, क्षपक, क्षीणमोह और स्वस्थान जिन व योगनिरोधमें प्रवृत्त जिन; इन स्थानोंमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। परन्तु निर्जराका काल उससे विपरीत (उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हीन) है ॥ ७–८ ॥

अब इन दो गाथाओं द्वारा प्ररूपित ग्यारह गुणश्रेणियोंका स्पष्टीकरण आगेके २२ (१७५–९६) सूत्रों द्वारा किया जाता है--

सव्वत्थोवो दंसणमोहउवसामयस्स गुणसेडिगुणो ॥ १७५ ॥

दर्शनमोहका उपशम करनेवालेका गुणश्रेणिगुणाकार सबसे स्तोक है ॥ १७५ ॥

संजदासंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १७६ ॥

उससे संयतासंयतका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥ १७६ ॥

अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १७७ ॥

उससे अधःप्रवृत्तसंयत (स्वस्थानसंयत) का गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥

अणंताणुबंधी विसंजोएंतस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १७८ ॥

उससे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवालेका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥

दंसणमोहक्खवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १७९ ॥

उससे दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवालेका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥ १७९ ॥

कसायउवसामगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १८० ॥

उससे चारित्रमोहका उपशम करनेवालेका गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है ॥ १८० ॥

उवसंतकसाय-वीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १८१ ॥

उससे उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थका गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है ॥ १८१ ॥

कसायखवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १८२ ॥

उससे चारित्रमोहकी क्षपणा करनेवालेका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥ १८२ ॥

खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १८३ ॥

उससे क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥ १८३ ॥

अधापवत्तकेवलिसंजलदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १८४ ॥

उससे अधःप्रवृत्तकेवली संयतका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥ १८४ ॥

जोगणिरोधकेवलिसंजलदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो ॥ १८५ ॥

उससे योगनिरोधकेवली संयतका गुणश्रेणिगुणाकार असंख्यातगुणा है ॥ १८५ ॥

अब आगे उक्त गुणश्रेणिनिर्जराका काल विपरीत किस प्रकार है, इसका स्पष्टीकरण किया जाता है—

सव्वत्थोवो जोगणिरोधकेवलिसंजदस्स गुणसेडिकालो ॥ १८६ ॥

योगनिरोध केवली संयतका वह गुणश्रेणिकाल सबसे स्तोक है ॥ १८६ ॥

अधापवत्तकेवलिसंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १८७ ॥

उससे अधःप्रवृत्त केवली संयतका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १८७ ॥

खीणकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १८८ ॥

उससे क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १८८ ॥

कसायखवगस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १८९ ॥

उससे चारित्रमोहक्षपकका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १८९ ॥

उवसंतकसाय वीयराय छदुमत्थस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९० ॥

उससे उपशान्तकषाय-वीतराग-छद्मस्थका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९० ॥

कसायउवसामयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९१ ॥

उससे चारित्रमोहोपशामकका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९१ ॥

दंसणमोहक्खवयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९२ ॥

उससे दर्शनमोहक्षपकका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९२ ॥

अणंताणुबंधिविसंजोएंतस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९३ ॥

उससे अनन्तानुबन्धीके विसंयोजकका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९३ ॥

अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९४ ॥

उससे अधःप्रवृत्तसंयतका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९४ ॥

संजदासंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९५ ॥

उससे संयतासंयतका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९५ ॥

दंसणमोहउवसामयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो ॥ १९६ ॥

उससे दर्शनमोहोपशामकका गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है ॥ १९६ ॥

॥ प्रथम चूलिका समाप्त हुई ॥

२. वेयणभावविहाणे विदिय-चूलिया

एत्तो अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि बारस अणियोगद्दाराणि ॥ १९७ ॥

यहां अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंकी प्ररूपणामें ये बारह अनुयोगद्वार हैं ॥ १९७ ॥

'अनुभागबन्धाध्यवसान' से यहां कार्यमें कारणका उपचार करके अनुभागस्थानोंको ग्रहण करना चाहिये ।

अविभागपडिच्छेदपरूवणा ट्ठाणपरूवणा अंतरपरूवणा कंदयपरूवणा ओज-जुम्मपरूवणा छट्ठाणपरूवणा हेट्ठ ट्ठाणपरूवणा समयपरूवणा वड्ढिपरूवणा जवमज्झपरूवणा पज्जवसाणपरूवणा अप्पाबहुए त्ति ॥ १९८ ॥

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा; अन्तरप्ररूपणा, काण्डकप्ररूपणा, ओज-युग्मप्ररूपणा, षटस्थानप्ररूपणा; अधस्तनस्थानप्ररूपणा, समयप्ररूपणा; वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्य-प्ररूपणा, पर्यवसानप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ॥ १९८ ॥

अविभागपडिच्छेदपरूवणदाए एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि केवडिया अविभागपडिच्छेदा ? अणंता अविभागपडिच्छेदा सव्वजीवेहि अणंतगुणा, एवदिया अविभागपडिच्छेदा ॥ १९९ ॥

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाके आश्रयसे एक एक स्थानमें कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ? अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, जो सब जीवोंसे अनन्तगुणे होते हैं। इतने अविभागप्रतिच्छेद एक एक स्थानमें होते हैं ॥ १९९ ॥

जघन्य अनुभागस्थानसम्बन्धी सब परमाणुओंके समूहको एकत्रित करके उनमें जो सबसे मन्द अनुभागवाला परमाणु हो उसके वर्ण, गन्ध और रसको छोड़कर केवल स्पर्शके बुद्धिसे तब तक खण्ड करना चाहिये जब तक कि उसका खण्ड हो सकता हो। इस प्रकारसे जो अन्तिम खण्ड उपलब्ध हो उसका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। इस अन्तिम खण्डके प्रमाणसे सभी स्पर्शखण्डोंके खण्डित करनेपर एक अनुभागस्थानमें सब जीवोंकी अपेक्षा अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। इन सब खण्डोंकी पृथक् पृथक् 'वर्ग' यह संज्ञा है।

ठाणपरूवणदाए केवडियाणि ट्ठाणाणि ? असंखेज्जलोगट्ठाणाणि। एवदियाणि ट्ठाणाणि ॥ २०० ॥

स्थानप्ररूपणामें स्थान कितने हैं ? असंख्यात लोक प्रमाण इतने स्थान हैं ॥ २०० ॥

अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स ट्ठाणस्स केवडियमंतरं ? सव्वजीवेहि अणंतगुणं एवडियमंतरं ॥ २०१ ॥

अन्तरप्ररूपणामें एक एक स्थानका अन्तर कितना है ? सब जीवोंसे अनन्तगुणा इतना अन्तर है ॥ २०१ ॥

कंदयपरूवणदाए अत्थि अणंतभागपरिवड्ढिकंदयं असंखेज्जभागपरिवड्ढिकंदयं संखेज्जभागपरिवड्ढिकंदयं संखेज्जगुणपरिवड्ढिकंदयं असंखेज्जगुणपरिवड्ढिकंदयं अणंतगुणपरिवड्ढिकंदयं ॥ २०२ ॥

काण्डकप्ररूपणामें अनन्तभागवृद्धिकाण्डक, असंख्यातभागवृद्धिकाण्डक, संख्यातभागवृद्धिकाण्डक, संख्यातगुणवृद्धिकाण्डक, असंख्यातगुणवृद्धिकाण्डक, और अनन्तगुणवृद्धिकाण्डक है ॥२०२॥

ओजजुम्मपरूवणदाए अविभागपडिच्छेदाणि कदजुम्माणि, ट्ठाणाणि कदजुम्माणि, कंदयाणि कदजुम्माणि ॥ २०३ ॥

ओजयुग्मप्ररूपणामें अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्म हैं, स्थान कृतयुग्म हैं, और काण्डक कृतयुग्म हैं ॥ २०३ ॥

ओजराशि दो प्रकारकी होती है– कलिओज, और तेजोज। जिस राशिमें चारका भाग देनेपर एक अंक शेष रहता है वह कलिओजराशि कहलाती है। जैसे १३ ($१३ \div ४ = ३$ शेष १) जिस राशिमें चार का भाग देनेपर तीन अंक शेष रहते हैं उसे तेजोज कहते हैं। जैसे १५

(१५÷४=३ शेष ३) । युग्मका अर्थ सम होता है । वह कृतयुग्म और बादर युग्मके भेदसे दो प्रकारका है । जिस राशिमें चारका भाग देनेपर कुछ भी शेष नहीं रहता है वह राशि कृतयुग्म कही जाती है । जैसे १६ (१६÷४=४ शेष ०) जिस राशिमें चारका भाग देनेपर दो अंक शेष रहते हैं वह राशि बादरयुग्म कही जाती है । जैसे १४ (१४÷४=३ शेष २) ।

छट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ? सव्वजीवेहि अणंतभागपरिवड्ढी । एवदिया परिवड्ढी ॥ २०४ ॥

षट् स्थानप्ररूपणामें अनन्तभागवृद्धि किस वृद्धिके द्वारा वृद्धिगत हुई है ? अनन्तभागवृद्धि जीवोंसे (जीवराशिसे) वृद्धिगत हुई है । इतनी मात्र वृद्धि है ॥ २०४ ॥

असंखेज्जभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ? ॥ २०५ ॥

असंख्यातभागवृद्धि किस वृद्धिके द्वारा होती है ? ॥ २०५ ॥

असंखेज्जलोगभागपरिवड्ढीए । एवदिया परिवड्ढी ॥ २०६ ॥

उक्त वृद्धि असंख्यातलोकभागवृद्धि द्वारा होती है । इतनी वृद्धि होती है ॥ २०६ ॥

संखेज्जभागवड्ढी काए परिवड्ढीए ? ॥ २०७ ॥

संख्यातभागवृद्धि किस वृद्धि द्वारा वृद्धिको प्राप्त होती है ? ॥ २०७ ॥

जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स संखेज्जभागपरिवड्ढी । एवदिया परिवड्ढी ॥

संख्यातभागवृद्धि कम जघन्य असंख्यात (उत्कृष्ट संख्यात) की वृद्धिसे वृद्धिगत होती है । इतनी वृद्धि होती है ॥ २०८ ॥

संखेज्जगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ? ॥ २०९ ॥

संख्यातगुणवृद्धि किस वृद्धिसे वृद्धिगत होती है ? ॥ २०९ ॥

जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स संखेज्जगुणपरिवड्ढी एवदिया परिवड्ढी ॥

वह एक कम जघन्य असंख्यातकी वृद्धिसे वृद्धिगत होती है । इतनी मात्र वृद्धि होती है ॥ २१० ॥

असंखेज्जगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ? ॥ २११ ॥

असंख्यातगुणवृद्धि किस वृद्धिके द्वारा वृद्धिगत होती है ? ॥ २११ ॥

असंखेज्जलोगगुणपरिवड्ढी एवदिया परिवड्ढी ॥ २१२ ॥

वह असंख्यात लोकोंसे वृद्धिगत होती है । इतनी वृद्धि होती है ॥ २१२ ॥

अणंतगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ? ॥ २१३ ॥

अनन्तगुणवृद्धि किस वृद्धिसे वृद्धिगत होती है ? ॥ २१३ ॥

सव्वजीवेहि अणंतगुणपरिवड्ढी, एवदिया परिवड्ढी ॥ २१४ ॥

अनन्तगुणवृद्धि सब जीवोंसे वृद्धिंगत होती है, इतनी वृद्धि होती है ॥ २१४ ॥

हेट्ठाट्ठाणपरूवणाए अणंतभागब्भहियं कंदयं गंतूण असंखेज्जभागब्भहियं ट्ठाणं ॥

अधस्तनस्थानप्ररूपणामें अनन्तवें भागसे अधिक काण्डक प्रमाण जाकर असंख्यातवें भागसे अधिक स्थान होता है ॥ २१५ ॥

असंखेज्जभागब्भहियं कंदयं गंतूण संखेज्जभागब्भहियं ट्ठाणं ॥ २१६ ॥

असंख्यातवें भागसे अधिक काण्डक जाकर संख्यातवें भागसे अधिक स्थान होता है ॥

संखेज्जभागब्भहियं कंदयं गंतूण संखेज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं ॥ २१७ ॥

संख्यातवें भागसे अधिक काण्डक जाकर संख्यातगुणा अधिकस्थान होता है ॥ २१७ ॥

संखेज्जभागुणब्भहियं कंदयं गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं ॥ २१८ ॥

संख्यातगुणा अधिक काण्डक जाकर असंख्यातगुणा अधिक स्थान होता है ॥ २१८ ॥

असंखेज्जगुणब्भहियं कंदयं गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं ॥ २१९ ॥

असंख्यातगुणा अधिक काण्डक जाकर अनन्तगुणा स्थान उत्पन्न होता है ॥ २१९ ॥

अणंतभागब्भहियाणं कंदयवग्गं कंदयं च गंतूण संखेज्जभागब्भहिट्ठाणं ॥ २२० ॥

अनन्तभाग अधिक अर्थात् अनन्तभागवृद्धियोंके काण्डकका वर्ग और एक काण्डक जाकर संख्यातभागवृद्धिका स्थान होता है ॥ २२० ॥

असंखेज्जभागब्भहियाणं कंदयवग्गं कंदयं च गंतूण संखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं ॥

असंख्यातभागवृद्धियोंका काण्डकवर्ग व एक काण्डक जाकर संख्यातगुणवृद्धिका स्थान होता है ॥ २२१ ॥

संखेज्जभागब्भहियाणं कंदयवग्गं कंदयं च गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं ॥

संख्यातभागवृद्धियोंका काण्डकवर्ग और एक काण्डक जाकर (१६+४) असंख्यात गुणवृद्धिका स्थान होता है ॥ २२२ ॥

संखेज्जगुणब्भहियाणं कंदयवग्गं कंदयं च गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं ॥२२३॥

संख्यातगुणवृद्धियोंका काण्डकवर्ग और एक काण्डक (१६+४) जाकर अनन्तगुण-वृद्धिका स्थान होता है ॥ २२३ ॥

संखेज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंदयघणो बेकंदयवग्गा कंदयं च ॥

संख्यातगुण वृद्धिके नीचे अनन्तभागवृद्धियोंका काण्डकघन दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है ॥ २२४ ॥

असंखेज्जगुणस्स हेट्ठदो असंखेज्जभागब्भहियाणं कंदयघणो बेकंदयवग्गा कंदयं च ॥ २२५ ॥

असंख्यातगुणवृद्धिस्थानके नीचे असंख्यातभागवृद्धियोंका एक काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक (४ ³+[४ ²×२]+४) होता है ॥ २२५ ॥

अणंतगुणस्स हेट्ठदो संखेज्जभागब्भहियाणं कंदयघणो बेकंदयवग्गा कंदयं च ॥

अनन्तगुणवृद्धिस्थानके नीचे संख्यातभागवृद्धिस्थानोंका एक काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक (४ ³+[४ ²×२]+४) होता है ॥ २२६ ॥

असंखेज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंदयवग्गावग्गो तिण्णिकंदयघणा तिण्णिकंदयवग्गा कंदयं च ॥ २२७ ॥

असंख्यातगुणवृद्धिके नीचे अनन्तभागवृद्धियोंका एक काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डकवर्ग और एक काण्डक [४ ²=१६; १६ ²=२५६; +२५६+(४ ³×३)+(४ ²×३)+४] होता है ॥ २२७ ॥

अणंतगुणस्स हेट्ठदो असंखेज्जभागब्भहियाणं कंदयवग्गावग्गो तिण्णिकंदयघणा तिण्णिकंदयवग्गा कंदयं च ॥ २२८ ॥

अनन्तगुणवृद्धिकोंके नीचे असंख्यातभागवृद्धियोंका एक काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है। [(४×४×१६)+(४ ³×३)+(४ ²×३)×४] ॥२२८॥

अणंतगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंदयो पंचहदोचत्तारिकंदयवग्गावग्गा छकंदयघणा चत्तारिकंदयवग्गा कंदयं च ॥ २२९ ॥

अनन्तगुणवृद्धिके नीचे अनन्तभागवृद्धियोंका पांच बार गुणित काण्डक, चार काण्डकवर्गावर्ग, छह काण्डकघन, चार काण्डकवर्ग और एक काण्डक [(४×४×४×४×४)+(४×४×१६×४)+(४ ³×६)+(४ ²×४)+४] होता है ॥ २२९ ॥

समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥

समयप्ररूपणामें चार समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ॥ २३० ॥

पंचसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जालोगा ॥ २३१ ॥

पांच समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २३१ ॥

एवं छसमइयाणि सत्तसमइयाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥ २३२ ॥

इस प्रकार छह समय, सात समय और आठ समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ॥ २३२ ॥

पुणरवि सत्तसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥२३३॥

फिरसे भी सात समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥

एवं छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥ २३४ ॥

इसी प्रकार छह समय योग्य, पांच समय योग्य और चार समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ॥ २३४ ॥

उवरि तिसमइयाणि बिसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ॥

आगे तीन समय योग्य और दो समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २३५ ॥

एत्थ अप्पाबहुअं ॥ २३६ ॥

अब यहां अल्पबहुत्व किया जाता है ॥ २३६ ॥

सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि ॥ २३७ ॥

आठ समय योग्य अनुबन्धाध्यवसानस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ २३७ ॥

दोसु वि पासेसु सत्तसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २३८ ॥

दोनों ही पार्श्वभागोंमें सात समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान दोनों ही तुल्य होकर पूर्वोक्त स्थानोंसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २३८ ॥

एवं छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि ॥ २३९ ॥

इस प्रकार छह समय योग्य, पांच समय योग्य और चार समय योग्य स्थानोंका अल्पबहुत्व समझना चाहिये ॥ २३९ ॥

उवरि तिसमइयाणि ॥ २४० ॥

आगेके तीन समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २४० ॥

बिसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २४१ ॥

दो समय योग्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २४१ ॥

सुहुमतेउक्काइया पवेसणेण असंखेज्जा लोगा ॥ २४२ ॥

सूक्ष्म तेजकायिक जीव प्रदेशकी अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २४२ ॥

अगणिकाइया असंखेज्जागुणा ॥ २४३ ॥

उनसे अग्निकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ २४३ ॥

कायट्ठिदि असंखेज्जगुणा ॥ २४४ ॥

अग्निकायिकोंकी कायस्थिति उनसे असंख्यातगुणी है ॥ २४४ ॥

अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २४५ ॥

अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २४५ ॥

वड्ढिपरूवणदाए अत्थि अणंतभागवड्ढि-हाणी असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी अणंतगुणवड्ढि-हाणी ॥

वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धि-हानि, असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यातभाग-वृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि, असंख्यातगुणवृद्धि-हानि और अनन्तगुणवृद्धि-हानि होती है ॥२४६॥

पंचवड्ढि-पंचहाणीओ केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २४७ ॥

पांच वृद्धियां व हानियां कितने काल होती है ? ॥ २४७ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ २४८ ॥

जघन्यसे वे एक समय होती हैं ॥ २४८ ॥

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २४९ ॥

उत्कर्षसे वे आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक होती हैं ? ॥ २४९ ॥

अणंतगुणवड्ढि-हाणीयो केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २५० ॥

अनन्तगुणवृद्धि और हानि कितने काल होती हैं ॥ २५० ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ २५१ ॥

जघन्यसे वे एक समय होती हैं ॥ २५१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

उत्कृष्टसे वे अन्तर्मुहूर्त काल तक होती हैं ॥ २५२ ॥

जवमज्झपरूवणदाए अणंतगुणवड्ढी अणंतगुणहाणी च जवमज्झं ॥ २५३ ॥

यवमध्यकी प्ररूपणामें अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि यवमध्य हैं ॥ २५३ ॥

पज्जवसाणपरूवणदाए अणंतगुणस्स उवरि अणंतगुणं भविस्सदि त्ति पज्जवसाणं ॥

पर्यवसानप्ररूपणामें सब स्थानोंकी पर्यवान अनन्तगुणके ऊपर अनन्तगुणा होगा, यह पर्यवसान है ॥ २५४ ॥

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि अणंतरोवणिधा परंपरो-वणिधा ॥ २५५ ॥

अल्पबहुत्व इस अधिकारमें अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा ये दो अनुयोगद्वार हैं ॥

तत्थ अणंतरोवणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतगुणब्महियाणि ट्ठाणाणि ॥ २५६ ॥

उनमें अनन्तरोपनिधासे अनन्तगुणवृद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ २५६ ॥

असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २५७ ॥

उनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २५७ ॥

संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २५८ ॥

उनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २५८ ॥

संखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २५९ ॥

उनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २५९ ॥

असंखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २६० ॥

उनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २६० ॥

अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २६१ ॥

उनसे अनन्तभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २६१ ॥

परंपरोवणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि ॥ २६२ ॥

परम्परोपनिधामें अनन्तभागवृद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ २६२ ॥

असंखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २६३ ॥

उनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे है ॥ २६३ ॥

संखेज्जभागब्भहियट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २६४ ॥

उनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २६४ ॥

संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २६५ ॥

उनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २६५ ॥

असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २६६ ॥

उनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २६६ ॥

अणंतगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २६७ ॥

उनसे अनन्तगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २६७ ॥

॥ द्वितीय चूलिका समाप्त हुई ॥

३. वेयणभावविहाणे तदिया चूलिया

जीवसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि-एयट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीवकालपमाणाणुगमो वड्ढिपरूवणा जवमज्झपरूवणा फोसणपरूवणा अप्पाबहुए त्ति ॥ २६८ ॥

जीवसमुदाहार इस अधिकारमें ये आठ अनुयोगद्वार हैं— एकस्थानजीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थान जीवप्रमाणानुगम सान्तरस्थान-जीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकालप्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ॥ २६८ ॥

एयट्ठाण जीवपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि जीवा जदि होंति एक्को वा दो वा तिण्णि वा जाव उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २६९ ॥

एकस्थानजीवप्रमाणानुगमसे एक एक स्थानमें जीव यदि होते हैं तो वे एक, दो, तीन अथवा उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग तक होते हैं ॥ २६९ ॥

णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि अविरहिदट्ठाणाणि एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २७० ॥

निरन्तरस्थान-जीवप्रमाणानुगमसे जीवोंसे सहित स्थान एक, अथवा दो, अथवा तीन, इस प्रकार उत्कर्षसे वे आवलीके असंख्यातवें भाग तक होते हैं ॥ २७० ॥

सांतरट्ठाण जीवपमाणाणुगमेण जीवेहि विरहिदाणि ट्ठाणाणि एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ २७१ ॥

सान्तरस्थान-जीवप्रमाणानुगमसे जीवोंसे रहित स्थान एक, अथवा दो, अथवा तीन, इस प्रकार उत्कर्षसे वे असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं ॥ २७१ ॥

णाणाजीवकालपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्मि णाणा जीवा केवचिरं कालादो होंदि ? ॥ २७२ ॥

नानाजीव-कालप्रमाणानुगमसे एक एक स्थानमें नाना जीवोंका कितना काल है ? ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ २७३ ॥

उनका जघन्य काल एक समय है ॥ २७३ ॥

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २७४ ॥

उत्कृष्ट काल उनका आवलीके असंख्यातवें भाग है ॥ २७४ ॥

वड्ढिपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा ॥ २७५ ॥

वृद्धिप्ररूपणा अधिकारमें ये दो अनुयोगद्वार हैं, अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा ॥

अणंतरोवणिधाए जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे थोवा जीवा ॥ २७६ ॥

अनन्तरोपनिधासे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं ॥ २७६ ॥

विदिए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया ॥ २७७ ॥

जीव द्वितीय अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानमें उनसे विशेष अधिक हैं ॥ २७७ ॥

तदिए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया ॥ २७८ ॥

जीव तृतीय अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानमें उनसे विशेष अधिक हैं ॥ २७८ ॥

एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव जवमज्झं ॥ २७९ ॥

इस प्रकार वे यवमध्य तक विशेष अधिक विशेष अधिक हैं ॥ २७९ ॥

तेण परं विसेसहीणा ॥ २८० ॥

इसके आगे वे विशेष हीन हैं ॥ २८० ॥

एवं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्सअणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे त्ति ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान तक उक्त जीव विशेषहीन हैं ॥ २८१ ॥

परंपरोवणिधाए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणजीवेहिंतो तत्तो असंखेज्जलोगं गंतूण दुगुणवड्ढिदा ॥ २८२ ॥

परम्परोपनिधासे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानके जो जीव हैं उनसे असंख्यात लोक मात्र जाकर वे दुगुणी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ २८२ ॥

एवं दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झं ॥ २८३ ॥

इस प्रकार यवमध्य तक वे दूनी दूनी वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ २८३ ॥

तेण परमसंखेज्जलोगं गंतूण दुगुणहीणा ॥ २८४ ॥

उससे आगे असंख्यात लोक जाकर वे दूनी हानिको प्राप्त हुए है ॥ २८४ ॥

एवं दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिय अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे त्ति ॥ २८५ ॥

इस प्रकारसे वे उत्कृष्ट अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक दूनी हानिको प्राप्त हुए हैं ॥ २८५ ॥

एगजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जा लोगा ॥ २८६ ॥

एक जीवके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानों सम्बन्धी दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २८६ ॥

णाणाजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-[हाणि] ट्ठाणंतराणि आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २८७ ॥

नाना जीवों सम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानों सम्बन्धी दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ २८७ ॥

णाणाजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ २८८ ॥

नाना जीवों सम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसान दुगुणवृद्धि हानिस्थानान्तर स्तोक हैं ॥२८८॥

एयजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ २८९ ॥

उनसे एक जीव सम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसानदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ २८९ ॥

जवमज्झपरूवणाए ट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं ॥ २९० ॥

यवमध्यकी प्ररूपणा करनेपर स्थानोंके असंख्यातवें भागमें यवमध्य होता है ॥ २९० ॥

जवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि ॥ २९१ ॥

यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक हैं ॥ २९१ ॥

उवरिमसंखेज्जगुणाणि ॥ २९२ ॥

ऊपरके स्थान उनसे असंख्यातगुणे हैं ॥ २९२ ॥

फोसणपरूवणदाए तीदे काले एय जीवस्स उक्कस्सए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो थोवो ॥ २९३ ॥

स्पर्शनप्ररूपणाकी अपेक्षा अतीत कालमें एक जीवके उत्कृष्ट अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानमें स्पर्शनका काल स्तोक है ॥ २९३ ॥

जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो असंखेज्जगुणो ॥ २९४ ॥ [४]

उससे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंमें स्पर्शनका काल असंख्यातगुणा है ॥२९४॥

कंदयस्स फोसणकालो तत्तियो चेव ॥ २९५ ॥

काण्डकका स्पर्शनकाल उतना ही है ॥ २९५ ॥

जवमज्झफोसणकालो असंखेज्जगुणो ॥ २९६ ॥ [८]

उससे यवमध्यका स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है ॥ २९६ ॥

कंदयस्स उवरि फोसणकालो असंखेज्जगुणो ॥ २९७ ॥ [३।२]

उससे काण्डकके ऊपर वह स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है ॥ २९७ ॥

जवमज्झस्स उवरि कंदयस्स हेट्ठदो फोसणकालो असंखेज्जगुणो ॥२९८॥ [७।६।५]

उससे यवमध्यके ऊपर और काण्डकके नीचे स्पर्शनका काल असंख्यातगुणा है ॥ २९८ ॥ [७।६।५]

कंदयस्स उवरि जवमज्झस्स हेट्ठदो फोसणकालो तत्तियो चेव ॥२९९॥ [७।६।५]

काण्डकके ऊपर और यवमध्यके नीचे स्पर्शनकाल उतना ही है ॥२९९॥ [७।६।५]

जवमज्झस्स उवरिं फोसणकालो विसेसाहिओ [७।६।५।४।३।२] ॥ ३०० ॥

उनसे यवमध्यके ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है ॥ ३०० ॥ [७।६।५।४।३।२]

कंदयस्स हेट्ठदो फोसणकालो विसेसाहिओ [४।५।६।७।८।७।६।५] ॥ ३०१ ॥

उससे काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है ॥३०१॥ [४।५।६।७।८।७।६।५]

कंदयस्स उवरिं फोसणकालो विसेसाहिओ [५।६।७।८।७।६।५।४।३।२] ॥३०२॥

इससे काण्डकके ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है [५।६।७।८।७।६।५।४।३।२] ॥

सव्वेसु ट्ठाणेसु फोसणकालो विसेसाहिओ [४।५।६।७।८।७।६।५।४।३।२] ॥३०३॥

इससे सब स्थानोंमें स्पर्शनकाल विशेष अधिक है [४।५।६।७।८।७।६।५।४।३।२] ॥

अप्पाबहुए त्ति उक्कस्सए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा थोवा ॥ ३०४ ॥

अल्पबहुत्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानमें जीव स्तोक हैं ॥ ३०४ ॥

जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

उनसे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३०५ ॥

कंदयस्स जीवा तत्तिया चेव ॥ ३०६ ॥

काण्डकके जीव उतने ही हैं ॥ ३०६ ॥

जवमज्झस्स जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ३०७ ॥

उनसे यवमध्यके जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३०७ ॥

कंदयस्स उवरिं जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ३०८ ॥

उनसे काण्डकके ऊपर जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३०८ ॥

जवमज्झस्स उवरिं कंदयस्स हेट्ठिमदो जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ३०९ ॥

उनसे यवमध्यके ऊपर और काण्डकके नीचे जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३०९ ॥

कंदयस्स उवरिं जवमज्झस्स हेट्ठिमदो जीवा तत्तिया चेव ॥ ३१० ॥

काण्डकके ऊपर और यवमध्यके नीचे जीव उतने ही हैं ॥ ३१० ॥

जवमज्झस्स उवरिं जीवा विसेसाहिया ॥ ३११ ॥

उनसे यवमध्यके ऊपर जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३११ ॥

कंदयस्स हेट्ठदो जीवा विसेसाहिया ॥ ३१२ ॥

उनसे काण्डकके नीचे जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३१२ ॥

कंदयस्स उवरिं जीवा विसेसाहिया ॥ ३१३ ॥

उनसे काण्डकके ऊपर जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३१३ ॥

सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाहिया ॥ ३१४ ॥

उनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३१४ ॥

॥ तृतीय चूलिका समाप्त हुई ॥ ७ ॥

---

८. वेयणपच्चयविहाणं

वेयणपच्चयविहाणे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदनाप्रत्ययविधान अनियोगद्वार अधिकार प्राप्त है ॥ १ ॥

प्रत्ययसे अभिप्राय कारणका है। इस अनुयोगद्वारमें चूंकि ज्ञानावरणादि कर्मोंके कारण की प्ररूपणा की गई है, अतएव इस अनुयोगद्वारका नाम 'वेदन प्रत्यय विधान' निर्दिष्ट किया गया है।

णेगम-ववहार-संगहाणं णाणावरणीयवेयणा पाणादिवादपच्चए ॥ २ ॥

नैगम, व्यवहार और संग्रह नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना प्राणातिपात प्रत्ययसे होती है ॥ २ ॥

प्राणियोंके प्राणोंका जो विनाश किया जाता है उसका नाम प्राणातिपात है। साथ ही वह जिस मन वचन और कायके व्यापारादिसे किया जाता है उस व्यापारको भी प्राणातिपातके अन्तर्गत जानना चाहिये। इस प्राणातिपात प्रत्ययके द्वारा ज्ञानावरणकी वेदना होती है। पांच इन्द्रियां, मन, वचन, काय ये तीन बल तथा उच्छ्वास-निश्वास व आयु ये दस प्राण माने जाते हैं।

मुसावादपच्चए ॥ ३ ॥

मृषावाद (असत्य वचन) प्रत्ययसे ज्ञानावरणीयवेदना होती है ॥ ३ ॥

अदत्तादाणपच्चए ॥ ४ ॥

अदत्तादान प्रत्ययसे ज्ञानावरणीयवेदना होती है ॥ ४ ॥

विना दी हुई वस्तुको ग्रहण और तद्विषयक परिणामको यहां अदत्तादान समझना चाहिये।

मेहुणपच्चए ॥ ५ ॥

मैथुन प्रत्ययसे ज्ञानावरणीयवेदना होती है ॥ ५ ॥

परिग्गहपच्चए ॥ ६ ॥

क्षेत्रादि बाह्य वस्तुओं व उनके ग्रहणके कारणभूत आत्मपरिणाम स्वरूप परिग्रह प्रत्ययसे ज्ञानावरणीयवेदना होती है ॥ ६ ॥

रादिभोयणपच्चए ॥ ७ ॥

रात्रि भोजन व तद्विषयक परिणामरूप प्रत्ययसे ज्ञानावरणीयवेदना होती है ॥ ७ ॥

एवं कोह-माण-माया-लोह-राग-दोस-मोह-पेम्मपच्चए ॥ ८ ॥

इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह और प्रेम प्रत्ययसे ज्ञानावरणीय-वेदना होती है ॥ ८ ॥

हृदय दाहादिका कारणभूत जो जीवका परिणाम होता है उसका नाम क्रोध है। ज्ञान व ऐश्वर्य आदिके निमित्तसे जो उद्धततारूप परिणाम उत्पन्न होता है उसे मान कहा जाता है। अपने अन्तःकरणके भावको आच्छादित करनेके लिये जो आचरण किया जाता है उसे माया समझना चाहिये। बाह्य वस्तुओंके विषयमें जो ममत्व-बुद्धि हुआ करती है उसे लोभ कहते हैं। माया, लोभ, तीनों वेद, हास्य और रति; ये सब रागके अन्तर्गत तथा क्रोध, मान, अरति, शोक, जुगुप्सा और भय; ये सब द्वेषके अन्तर्गत माने गये हैं। क्रोधादि चार कषायों, हास्यादि नौ नोकषायों और मिथ्यात्वके समूहको मोह जानना चाहिये। प्रीतिरूप परिणामका नाम प्रेम है। इन पृथक् पृथक् कारणोंके द्वारा ज्ञानावरणीयवेदना उत्पन्न होती है। यद्यपि उपर्युक्त प्रत्यय परस्पर एक दूसरेमें प्रविष्ट हैं, फिर भी उनमें कथंचित् भेद भी जानना चाहिये।

णिदाणपच्चए ॥ ९ ॥

निदान प्रत्ययसे ज्ञानावरणीय वेदना होती है ॥ ९ ॥

चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण और प्रति नारायण आदि पदोंका जो परभवमें अभिलाषा की जाती है उसे निदान कहा जाता है।

अब्भक्खाण-कलह-पेसुण्ण-अरइ-उवहि-णियदि-माण-माय-मोस-मिच्छणाण-मिच्छ-दंसण-पओअपच्चए ॥ १० ॥

अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, मेय, मोष, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और प्रयोग; इन प्रत्ययोंसे ज्ञानावरणीयवेदना होती है।

कषायके वशीभूत होकर जो दोष दूसरेमें नहीं है उनको प्रगट करना, इसका नाम अभ्याख्यान है। कषायके वश तलवार, लाठी, अथवा वचन आदिके द्वारा दूसरेको कष्ट पहुचाना, इसका नाम कलह है। क्रोधादिके वश होकर दूसरेके दोषोंको प्रगट करना पैशून्य कहलाता है। पुत्र व कलत्र आदिमें अनुराग रखना रति और इससे विपरीत अरति कही जाती है। जो बाह्य पदार्थ क्रोधादि कषायको उत्पन्न करनेवाले होते है उनका नाम उपधि है। निकृतिसे अभिप्राय छल-कपटका है। मान शब्दसे यहां मापने व तोलनेके उपकरणों (प्रस्थ, एवं सेर व आध सेर आदि) को ग्रहण

किया गया है। इनके हीन वा अधिक रखनेसे ज्ञानावरणीयका बन्ध होता है। माय शब्दसे यहां मेय को ग्रहण करना चाहिये। कारण यह कि प्राकृतमें 'ए ए छच्च समाणा' इत्यादि सूत्रके द्वारा एकारके स्थानमें आकार आदेश हो जाता है। मेयसे अभिप्राय मापने व तोलनेके योग्य जौ और गेहूं आदि पदार्थोंका है। ये चूंकि मापने व तोलनेवालेके असद् व्यवहारके कारण होते हैं, अतः इनको भी ज्ञानावरण कर्मके बन्धका निमित्त माना गया है। मोष शब्दसे यहां चोरीको ग्रहण किया है सांख्य, एवं मिमांसक आदि अन्य दर्शनोंकी रुचिसे सम्बद्ध ज्ञानका नाम मिथ्याज्ञान है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका नाम मिथ्यादर्शन है। मन, वचन और काय इन योगोंकी प्रवृत्तिका नाम प्रयोग है। इन सब कारणोंसे ज्ञानावरणीयकी वेदना होती है। तत्त्वार्थ सूत्रमें (८–१) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इनको सामान्य रूपसे बन्धका कारण कहा गया है। उससे यहां कुछ विरोध नहीं समझना चाहिये। कारण यह कि यहां क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, दोष, मोह, प्रेम, निदान, अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, मेय और मोष; ये सब कषायके अन्तर्गत हैं। मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शनको मिथ्यात्वके अन्तर्गत तथा प्रयोग प्रत्ययको योगके अन्तर्गत समझना चाहिये।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ११ ॥

इसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी वेदनाके प्रत्ययोंकी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

उज्जुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा जोगपच्चए पयडि-पदेसग्गं ॥ १२ ॥

ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना योगप्रत्ययसे प्रकृति व प्रदेशाग्र (प्रदेश समूह) रूप होती है ॥ १२ ॥

कसायपच्चए ट्ठिदि-अणुभागवेयणा ॥ १३ ॥

उक्त ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा कषाय प्रत्ययके द्वारा ज्ञानावरणकी स्थितिवेदना और अनुभाग वेदना होती है ॥ १३ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १४ ॥

जिस प्रकार ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयके प्रत्ययोंकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार उक्त नयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके प्रत्ययोंकी भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ १४ ॥

सद्दणयस्स अवत्तव्वं ॥ १५ ॥

शब्दनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना अवक्तव्य है ॥ १५ ॥

शब्दनयमें समास आदिकी सम्भावना न होनेसे योग-प्रत्ययके द्वारा ज्ञानावरणीयकी प्रकृति व प्रदेशरूप वेदना तथा कषाय-प्रत्ययसे उसकी स्थिति व अनुभाग रूप वेदना होती है, इस प्रकार उक्त नयकी अपेक्षासे कहना शक्य नहीं है। अतएव शब्दनयकी अपेक्षा उसे यहां अवक्तव्य कहा गया है।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १६ ॥

इसी प्रकार शब्दनयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंकी वेदना विषयमें भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

॥ वेदना-प्रत्यय-विधान समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

---

९. वेयणसामित्तविहाणं

वेयणसामित्तविहाणे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदनास्वामित्वविधान प्रकृत है ॥ १ ॥

णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा सिया जीवस्स वा ॥ २ ॥

नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् जीवके होती है ॥

सिया णोजीवस्स वा ॥ ३ ॥

कथंचित् वह नोजीवके होती है ॥ ३ ॥

अनन्तानन्त विस्रसोपचयोंके साथ उपचयको प्राप्त होनेवाले पुद्गलस्कन्धका नाम नोजीव है, क्यों कि, उसमें ज्ञान-दर्शनका अभाव भी है। उससे पृथग्भूत न होनेके कारण उससे सम्बद्ध जीवको भी यहां नोजीव पदसे ग्रहण किया गया है।

सिया जीवाणं वा ॥ ४ ॥

उक्त वेदना कथंचित् बहुत जीवोंके होती है ॥ ४ ॥

सिया णोजीवाणं वा ॥ ५ ॥

कथंचित् वह बहुत नोजीवोंके होती है ॥ ५ ॥

सिया जीवस्स च णोजीवस्स च ॥ ६ ॥

वह कथंचित् एक जीव और एक नोजीव इन दोनोंके होती है ॥ ६ ॥

सिया जीवस्स च णोजीवाणं च ॥ ७ ॥

वह कथंचित् एक जीवके और बहुत नोजीवोंके होती हैं ॥ ७ ॥

सिया जीवाणं च णोजीवस्स च ॥ ८ ॥

वह कथंचित् बहुत जीवोंके और एक नोजीवके होती है ॥ ८ ॥

सिया जीवाणं च णोजीवाणं च ॥ ९ ॥

कथंचित् वह बहुत जीवों और बहुत नोजीवोंके होती है ॥ ९ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १० ॥

इसी प्रकार नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंकी वेदनाके सम्बधमें भी जानना चाहिये ॥ १० ॥

संगहणयस्स णाणावरणीयवेयणा जीवस्स वा ॥ ११ ॥

शुद्ध संग्रह नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना एक जीवके होती है ॥ ११ ॥

जीवाणं वा ॥ १२ ॥

अशुद्ध संग्रह नयकी अपेक्षा वह बहुत जीवोंके होती है ॥ १२ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १३ ॥

इसी प्रकार शुद्ध और अशुद्ध संग्रह नयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंकी वेदनाके विषयमें भी जानना चाहिये ॥ १३ ॥

सद्दुजुसुदाणं णाणावरणीयवेयणा जीवस्स ॥ १४ ॥

शब्द और ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना एक जीवके होती है ॥ १४ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १५ ॥

इसी प्रकार इन दोनों नयोंकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंकी वेदनाके स्वामित्वको समझना चाहिये ॥ १५ ॥

॥ वेदनस्वामित्व विधान समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

---

१०. वेयणवेयणविहाणं

वेयणवेयणविहाणे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदनवेदनविधान अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है ॥ १ ॥

'वेद्यते इति वेदना' अर्थात् जिसका वेदन होता है वह वेदना है, इस निरुक्तिके अनुसार यहां प्रथम वेदना पदसे आठ प्रकारके कर्म पुद्गलस्कन्धकी विवक्षा है तथा द्वितीय वेदना शब्दका अर्थ 'वेदनं वेदना' इस निरुक्तिके अनुसार है। इस प्रकार आठ प्रकारके कर्म पुद्गल-स्कन्धोंका जो अनुभवन होता है उसका विधान (प्ररूपणा) करनेके कारण इस अनुयोगद्वारका वेदन-वेदन-विधान यह सार्थक नाम है।

सव्वं पि कम्मं पयडि त्ति कट्टु णेगमणयस्स ॥ २ ॥

नैगम नयकी अपेक्षा सभी कर्मको प्रकृति मानकर यह प्ररूपणा की जा रही है ॥ २ ॥

जो पर्याय भविष्यमें उत्पन्न होनेवाली है उसका वर्तमानमें संकल्प करके ग्रहण करनेका नाम नैगम नय है । जो अज्ञानादिको उत्पन्न करती है वह प्रकृति कहलाती है । उक्त नैगम नयकी अपेक्षा बद्ध, उदीर्ण और उपशान्त स्वरूपसे स्थित सभी कर्म प्रकृतिरूप हैं । जो पुद्गलस्कन्ध फलदान स्वरूपसे परिणत है वह उदीर्ण कहलाता है । मिथ्यात्व और अविरति आदि परिणामोंके द्वारा जो पुद्गलस्कन्ध कर्मरूपताको प्राप्त हो रहा है वह बध्यमान कहा जाता है । तथा जो पुद्गलस्कन्ध उक्त दोनों अवस्थाओंसे भिन्न है वह उपशान्त कहा जाता है ।

णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणिया वेयणा ॥ ३ ॥

ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है ॥ ३ ॥

कोई भी कर्म बन्धकालमें अपना फल नहीं दिया करता है, इसलिये इस अपेक्षासे यद्यपि बध्यमान कर्मको वेदना नहीं कहा जा सकता है; फिर भी चूंकि वह उत्तर कालमें फल देनेवाला है, अतएव यहां ज्ञानावरणीयकी वेदनाको बध्यमान वेदना कहा गया हैं ।

सिया उदिण्णा वेयणा ॥ ४ ॥

ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् उदीर्ण वेदना है ॥ ४ ॥

सिया उवसंता वेदणा ॥ ५ ॥

ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उपशान्त वेदना है ॥ ५ ॥

सिया बज्झमाणियाओ वेयणाओ ॥ ६ ॥

ज्ञानावरणीयकी वेदनायें कथंचित् बध्यमान वेदनायें हैं ॥ ६ ॥

सिया उदिण्णाओ वेयणाओ ॥ ७ ॥

ज्ञानावरणीयकी वेदनायें कथंचित् उदीर्ण वेदनायें हैं ॥ ७ ॥

सिया उवसंताओ वेयणाओ ॥ ८ ॥

कथंचित् उपशान्त वेदनायें हैं ॥ ८ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च ॥ ९ ॥

वह कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना है ॥ ९ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च ॥ १० ॥

वह कथंचित् बध्यमान एक वेदना और उदीर्ण अनेक वेदनास्वरूप है ॥ १० ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च ॥ ११ ॥

वह कथंचित् बध्यमान अनेक वेदनवेदनाओंरूप और उदीर्ण एक वेदना है ॥ ११ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च ॥ १२ ॥

वह कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण अनेक वेदनाओंरूप है ॥ १२ ॥

सिया बज्झमाणिया च उवसंता च ॥ १३ ॥

वह कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदना है ॥ १३ ॥

सिया बज्झमाणिया च उवसंताओ च ॥ १४ ॥

वह कथंचित् बध्यमान एक और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ १४ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उवसंता च ॥ १५ ॥

वह कथंचित् बध्यमान अनेक और उपशान्त एक वेदना है ॥ १५ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उवसंताओ च ॥ १६ ॥

वह कथंचित् बध्यमान अनेक और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ १६ ॥

सिया उदिण्णा च उवसंता च ॥ १७ ॥

वह कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना है ॥ १७ ॥

सिया उदिण्णा च उवसंताओ च ॥ १८ ॥

वह कथंचित् उदीर्ण एक और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ १८ ॥

सिया उदिण्णाओ च उवसंता च ॥ १९ ॥

वह कथंचित् उदीर्ण अनेक और उपशान्त एक वेदना है ॥ १९ ॥

सिया उदिण्णाओ च उवसंताओ च ॥ २० ॥

वह कथंचित् उदीर्ण अनेक और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ २० ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च ॥ २१ ॥

वह कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना है ॥ २१ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंताओ च ॥ २२ ॥

वह कथंचित् बध्यमान व उदीर्ण एक तथा उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ २२ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंता च ॥ २३ ॥

वह कथंचित् बध्यमान एक, उदीर्ण अनेक और उपशान्त एक वेदना है ॥ २३ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंताओ च ॥ २४ ॥

वह कथंचित् बध्यमान एक तथा उदीर्ण और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ २४ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च उवसंता च ॥ २५ ॥

वह कथंचित् बध्यमान अनेक तथा उदीर्ण और उपशान्त एक वेदना है ॥ २५ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च उवसंताओ च ॥ २६ ॥

वह कथंचित् बध्यमान अनेक, उदीर्ण एक और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥२६॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च उवसंता च ॥ २७ ॥

वह कथंचित् बध्यमान व उदीर्ण अनेक तथा उपशान्त एक वेदना है ॥ २७ ॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च उवसंताओ च ॥ २८ ॥

वह कथंचित् बध्यमान, अनेक उदीर्ण और उपशान्त अनेक वेदनाओंरूप है ॥ २८ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २९ ॥

इसी प्रकार नैगम नयकी शेष सात कर्मोंके वेदनावेदनविधानकी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥

ववहारणयस्स णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणियावेयणा ॥ ३० ॥

व्यवहार नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है ॥ ३० ॥

सिया उदिण्णा वेयणा ॥ ३१ ॥

वह कथंचित् उदीर्ण वेदना है ॥ ३१ ॥

सिया उवसंता वेयणा ॥ ३२ ॥

वह कथंचित् उपशान्त वेदना है ॥ ३२ ॥

सिया उदिण्णाओ वेयणाओ ॥ ३३ ॥

कथंचित् उदीर्ण वेदनायें हैं ॥ ३३ ॥

सिया उवसंताओ वेयणाओ ॥ ३४ ॥

कथंचित् उपशान्त वेदनायें हैं ॥ ३४ ॥

सिया बज्झमाणिया उदिण्णा च ॥ ३५ ॥

कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना है ॥ ३५ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च ॥ ३६ ॥

कथंचित् बध्यमान एक और उदीर्ण अनेक वेदनायें हैं ॥ ३६ ॥

सिया बज्झमाणिया च उवसंता च ॥ ३७ ॥

कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदना है ॥ ३७ ॥

सिया बज्झमाणिया च उवसंताओ च ॥ ३८ ॥

कथंचित् बध्यमान एक और उपशान्त अनेक वेदनायें हैं ॥ ३८ ॥

सिया उदीण्णा च उवसंता च ॥ ३९ ॥

कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना है ॥ ३९ ॥

सिया उदिण्णा च उवसंताओ च ॥ ४० ॥

कथंचित् उदीर्ण एक और उपशान्त अनेक वेदनायें हैं ॥ ४० ॥

सिया उदिण्णाओ च उवसंता च ॥ ४१ ॥

कथंचित् उदीर्ण अनेक और उपशान्त एक वेदनायें ॥ ४१ ॥

सिया उदिण्णाओ च उवसंताओ च ॥ ४२ ॥

कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त अनेक वेदनायें हैं ॥ ४२ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च ॥ ४३ ॥

कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना है ॥ ४३ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंताओ च ॥ ४४ ॥

कथंचित् बध्यमान व उदीर्ण एक तथा उपशान्त अनेक वेदनायें हैं ॥ ४४ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंता च ॥ ४५ ॥

कथंचित् बध्यमान एक, उदीर्ण अनेक, और उपशान्त एक वेदना है ॥ ४५ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंताओ च ॥ ४६ ॥

कथंचित् बध्यमान एक तथा उदीर्ण और उपशान्त अनेक वेदनायें हैं ॥ ४६ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ४७ ॥

इसी प्रकार व्यवहार नयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके वेदनाविधानकी भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

संगहणयस्स णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणिया वेयणा ॥ ४८ ॥

संग्रहनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है ॥ ४८ ॥

सिया उदिण्णा वेयणा ॥ ४९ ॥

कथंचित् उदीर्ण वेदना है ॥ ४९ ॥

सिया उवसंता वेयणा ॥ ५० ॥

कथंचित् उपशान्त वेदना है ॥ ५० ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च ॥ ५१ ॥

कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना है ॥ ५१ ॥

सिया बज्झमाणिया च उवसंता च ॥ ५२ ॥

कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदना है ॥ ५२ ॥

सिया उदिण्णा च उवसंता च ॥ ५३ ॥

कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना है ॥ ५३ ॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च ॥ ५४ ॥

कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना है ॥ ५४ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ५५ ॥

इसी प्रकार संग्रहनयकी अपेक्षासे शेष सात कर्मोंके सम्बन्धमें भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ ५५ ॥

उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा उदिण्णफलपत्तविवागावेयणा ॥ ५६ ॥

ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्मकी वेदना उदीर्णके फलको प्राप्तविपाकवाली वेदना है ॥ ५६ ॥

ऋजुसूत्रनयका विषय वर्तमान पर्याय है। अतएव उसकी अपेक्षा जो कर्मबन्ध जिस समयमें अज्ञानको उत्पन्न करता है उसी समयमें ज्ञानावरणीयकी वेदना होती है। इसके अनन्तर समयमें ज्ञानावरणीयवेदना सम्भव नहीं है, क्यों कि, उस समय ज्ञानावरणरूपसे परिणत पुद्गल-स्कन्धकी कर्म पर्याय नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार अज्ञान उत्पन्न करनेके पूर्व समयमें भी उक्त ज्ञानावरणीयवेदना सम्भव नहीं है, क्योंकि उस समय उसके अज्ञानके उत्पादनरूप शक्ति नहीं है।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ५७ ॥

इसी प्रकार ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके सम्बधमें भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥

सद्दणयस्स अवत्तव्वं ॥ ५८ ॥

शब्दनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना अवक्तव्य है ॥ ५८ ॥

॥ वेदनवेदनविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १० ॥

---

११. वेयणगदिविहाणं

वेयणगदिविहाणे त्ति ॥ १ ॥

'वेदनागतिविधान' अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है ॥ १ ॥

णेगम-ववहार-संगहाणं णाणावरणीयवेयणा सिया अवट्ठिदा ॥ २ ॥

नैगम, व्यवहार और संग्रह नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् अवस्थित है ॥

अभिप्राय यह है कि राग-द्वेष, भय व वेदना आदिके कारण जीवप्रदेशोंके चंचल होनेपर उनमें समवायको प्राप्त कर्मप्रदेश भी चूंकि चंचलताको प्राप्त होते हैं, कारण यहां उक्त नयोंकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् अस्थित कही गई है ।

सिया ट्ठिदाट्ठिदा ॥ ३ ॥

उक्त वेदना कथंचित् स्थित-अस्थित है ॥ ३ ॥

जो छद्मस्थ जीव व्याधि व वेदनाके उपस्थित होनेपर भी उनसे संक्लेशको नहीं प्राप्त होते हैं उनके कितने ही जीवप्रदेशोंमें चंचलता नहीं होती है, इसीलिये उनमें समवायको प्राप्त कर्मप्रदेश भी चंचलतासे रहित (स्थित) होते हैं । तथा वहींपर चूंकि कुछ जीवप्रदेशोंमें चंचलता भी पायी जाती है, अत एव उनमें समवेत कर्मप्रदेश भी चंचलता (अस्थितता) को प्राप्त होते हैं। इसी अपेक्षासे यहां ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् स्थित-अस्थित कही गई है ।

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ ४ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंके विषयमें जानना चाहिये ॥४॥

वेयणीयवेयणा सिया ट्ठिदा ॥ ५ ॥

वेदनीय कर्मकी वेदना कथंचित् स्थित है ॥ ५ ॥

चूंकि योगसे रहित हुए अयोगकेवलीके जीवप्रदेशोंमें चंचलता नहीं पायी जाती है, अत एव उनमें समवेत कर्मप्रदेश भी चंचलतासे रहित होते हैं । इसी अपेक्षासे यहां वेदनीयकी वेदना कथंचित् स्थित कही गई है ।

सिया अट्ठिदा ॥ ६ ॥

कथंचित् वह अस्थित है ॥ ६ ॥

सिया ट्ठिदाट्ठिदा ॥ ७ ॥

कथंचित् वह स्थित-अस्थित है ॥ ७ ॥

एवमाउव-णामा-गोदाणं ॥ ८ ॥

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मोंकी वेदनाके सम्बन्धमें जानना चाहिये ॥ ८ ॥

उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा सिया ट्ठिदा ॥ ९ ॥

ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी वेदना कथंचित् स्थित है ॥ ९ ॥

सिया अट्ठिदा ॥ १० ॥

कथंचित् वह अस्थित है ॥ १० ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ११ ॥

इसी प्रकार ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा सात कर्मोंके विषयमें जानना चाहिये ॥ ११ ॥

सद्दणयस्स अवत्तव्वं ॥ १२ ॥

शब्द नयकी अपेक्षा वह अवक्तव्य है ॥ १२ ॥

॥ इस प्रकार वेदनागतिविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

---

१२. वेयणअणंतरविहाणं

वेयणअणंतरविहाणे त्ति ॥ १ ॥

वेदना-अनन्तरविधान अनुयोगद्वार अधिकार प्राप्त है ॥ १ ॥

णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा अणंतरबंधा ॥ २ ॥ परंपरबंधा ॥ ३ ॥ तदुभयबंधा ॥ ४ ॥

नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना अनन्तरबन्ध है ॥ २ ॥ वह परम्पराबन्ध भी है ॥ ३ ॥ तथा वह तदुभयबन्ध भी है ॥ ४ ॥

कार्मणवर्गणा स्वरूपसे स्थित पुद्गलस्कन्ध मिथ्यादर्शनादि कारणोंके द्वारा जब कर्म पर्यायको प्राप्त होते हैं तब उनका बन्ध उक्त पर्यायसे परिणत होनेके प्रथम समयमें अनन्तरबन्ध कहा जाता है। वे चूंकि कार्मण वर्गणारूप पर्यायके छोड़नेके अनन्तर समयमें ही कर्म पर्यायसे परिणत होते हैं इसीलिये उनके बन्धको अनन्तरबन्धता कही गई है। बन्धके द्वितीय समयसे लेकर कर्म-पुद्गलस्कन्ध और जीवप्रदेशोंका जो बन्ध होता है वह परम्पराबन्ध कहलाता है। चूंकि उन कर्म-पुद्गलोंका बन्ध प्रथम समयमें होता है तथा उन्हींका वह बन्ध द्वितीय और तृतीय आदि समयोंमें भी निरन्तर होता है, इसी लिये उस बन्धको परम्पराबन्ध कहा जाता है। तथा जीव द्वारा चूंकि उन दोनोंमें एकता पायी जाती है, इसीलिये उनके बन्धको तदुभयबन्धता भी कही जाती है।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ५ ॥

इसी प्रकार नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके विषयमें भी जानना चाहिये ॥ ५ ॥

संगहणयस्स णाणावरणीयवेयणा अणंतरबंधा ॥ ६ ॥ परंपरबंधा ॥ ७ ॥

संग्रहनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना अनन्तरबन्ध है ॥ ६ ॥ तथा वह परम्पराबन्ध भी है ॥ ७ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ ८ ॥

इसी प्रकार संग्रहनयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके विषयमें भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥

उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा परंपरबंधा ॥ ९ ॥

ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना परम्पराबन्ध है ॥ ९ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ १० ॥

इसी प्रकार ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके सम्बन्धमें भी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ १० ॥

सद्दणयस्स अवत्तव्वं ॥ ११ ॥

शब्दनयकी अपेक्षा वह अवक्तव्य है ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार वेदना अनन्तरविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

---

१३. वेयणसण्णियासविहाणं

वेयणसण्णियासविहाणे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदनासंनिकर्षविधान अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है ॥ १ ॥

जो सो वेयणसण्णियासो सो दुविहो सत्थाणवेयणसण्णियासो चेव परत्थाणवेयण-सण्णियासो चेव ॥ २ ॥

जो वह वेदनासंनिकर्ष है वह दो प्रकारका है— स्वस्थानवेदनासंनिकर्ष और परस्थान-वेदनासंनिकर्ष ॥ २ ॥

'संणियास' शब्दका अर्थ संनिकर्ष [संयोग] और संनिकाश [समानता] भी होता है। जघन्य और उत्कृष्ट इन दो भेदोंमें विभक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव पदोंमेंसे किसी एक पदकी विवक्षा करनेपर शेष तीन पद क्या उत्कृष्ट होते हैं, अनुत्कृष्ट होते है, जघन्य होते हैं, और या अजघन्य होते हैं; इस प्रकारकी परीक्षाका नाम संनिकर्ष [या संनिकाश] है। वह स्वस्थान और परस्थानके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें किसी एक ही कर्मकी विवक्षा करके उक्त पदोंकी जो परीक्षा की जाती है उसका नाम स्वस्थान संनिकर्ष है। आठों कर्मोंके विषयमें उक्त पदोंकी परीक्षा करना, यह परस्थान संनिकर्ष कहा जाता है। इस अनुयोगद्वारमें प्रथमतः ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंमेंसे एक एककी विवक्षा करके उक्त पदोंकी प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् परस्थानसंनिकर्षकी प्ररूपणामें आठों कर्मोंके विषयमें सामान्यरूपसे उक्त पदोंकी परीक्षा की गई है।

जो सो सत्थाणवेयणसण्णियासो सो दुविहो— जहण्णओ सत्थाणवेयणसण्णियासो चेव उक्कस्सओ सत्थाणवेयणसण्णियासो चेव ॥ ३ ॥

जो वह स्वस्थानवेदनासंनिकर्ष है वह दो प्रकारका है– जघन्य स्वस्थानवेदनासंनिकर्ष और उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासंनिकर्ष ॥ ३ ॥

जो सो जहण्णओ सत्थाणवेयणसण्णियासो सो थप्पो ॥ ४ ॥

जो वह जघन्य स्वस्थानवेदनासंनिकर्ष है उसकी प्ररूपणा इस समय स्थगित की जाती है ॥ ४ ॥

जो सो उक्कस्सओ सत्थाणवेयणसण्णियासो सो चउव्विहो दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि ॥ ५ ॥

जो वह उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासंनिकर्ष है वह चार प्रकारका है– द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे ॥ ५ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ६ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके वह क्षेत्रकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ६ ॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ७ ॥

वह नियमसे अनुत्कृष्ट होती हुई असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ७ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ८ ॥

उक्त जीवके वह कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट ? ॥ ८ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ ९ ॥ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणा ॥ १० ॥

उसके वह कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ॥ ९ ॥ उत्कृष्टकी अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट एक समय हीन होती है ॥ १० ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ११ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट ? ॥ ११ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ १२ ॥ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा ॥

भावकी अपेक्षा वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ॥ १२ ॥ उत्कृष्टकी अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट वेदनाषट्स्थानपतित होती है ॥ १३ ॥

यदि द्विचरम समयवर्ती नारकी उत्कृष्ट संक्लेशके साथ उत्कृष्ट प्रत्ययद्वारा उत्कृष्ट अनुभागको बांधता है तो उसके उत्कृष्ट भाववेदना होती है । परन्तु यदि तदनुकूल उत्कृष्ट प्रत्ययविशेष नहीं है तो नियमसे अनुत्कृष्ट भाववेदना होती है ।

यह अनुत्कृष्ट भाववेदना इन छह प्रकारकी हानियोंमें पतित है–

अणंतभागहीणा वा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा अणंतगुणहीणा वा ॥ १४ ॥

वह अनुत्कृष्ट भाववेदना अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन और अनन्तगुणहीन होती है ॥ १४ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ १५ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके वह द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट ? ॥ १५ ॥

णियमा अणुक्कस्सा ॥ १६ ॥

वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ॥ १६ ॥

चउट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा ॥ १७ ॥

वह अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन इन चार स्थानोंमें पतित है ॥ १७ ॥

तस्स कालदो किं उक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ १८ ॥

उसके उक्त वेदना कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ १८ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ १९ ॥

वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ १९ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा— असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा ॥ २० ॥

यह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन और संख्यातगुणहीन इन तीन स्थानोंमें पतित है ॥ २० ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २१ ॥

उसके उक्त वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥ २१ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ २२ ॥

भावकी अपेक्षा वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ॥ २२ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा ॥ २३ ॥

वह उत्कृष्टकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट छह स्थानोंमें पतित है ॥ २३ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २४ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके वह द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २४ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ २५ ॥

उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ २५ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पंचट्ठाणपदिदा ॥ २६ ॥

यह अनुत्कृष्ट वेदना उत्कृष्टकी अपेक्षा अनन्तगुणहानिसे रहित शेष पांच स्थानोंमें पतित है ॥ २६ ॥

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ॥ २७ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २७ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ २८ ॥

वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ २८ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा ॥ २९ ॥

वह अनुत्कृष्ट वेदना उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुण-हीन और असंख्यातगुणहीन इन स्थानोंमें पतित है ॥ २९ ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ३० ॥

उसके उक्त वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥ ३० ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ ३१ ॥

वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ ३१ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा ॥ ३२ ॥

वह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टकी अपेक्षा छहों-स्थानोंमें पतित है ॥ ३२ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ३३ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥ ३३ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ ३४ ॥

वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ ३४ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पंचट्ठाणपदिदा ॥ ३५ ॥

वह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टकी अपेक्षा पांच स्थानोंमें पतित है ॥ ३५ ॥

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ३६ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ३६ ॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥३७॥ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा ॥

वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ ३७ ॥ वह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टकी अपेक्षा चार स्थानोंमें पतित है ॥ ३८ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥३९॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥

उसके कालकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ३९ ॥ वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ ४० ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा– असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा ॥ ४१ ॥

वह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन और संख्यातगुणहीन इन तीन स्थानोंमें पतित है ॥ ४१ ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ ४२ ॥

जिस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें प्रत्येककी विवक्षासे ज्ञानावरण कर्मकी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट वेदनाकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंकी भी प्रकृत प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥

जिस जीवके वेदनीय कर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ४३ ॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ४४ ॥

वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ४४ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ४५ ॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥ ४६ ॥ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणा ॥ ४७ ॥

उसके कालकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥ ४५ ॥ वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ॥ ४६ ॥ वह अनुत्कृष्ट उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कम है ॥ ४७ ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ४८ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ ४९ ॥

उसके भावकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥४८॥ वह उसके नियमतः अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणीहीन होती है ॥ ४९ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ५० ॥ णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा ॥ ५१ ॥

जिस जीवके वेदनीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥ ५० ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट और चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ ५१ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ५२ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ५३ ॥

उसके कालकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥५२॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ५३ ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ५४ ॥ उक्कस्सा भाववेयणा ॥ ५५ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ॥ ५४ ॥ उसके वह भाववेदना उत्कृष्ट होती है ॥ ५५ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ५६ ॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥५७॥ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पंचट्ठाणपदिदा ॥

जिसके वेदनीयकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ५६ ॥ उसके वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ॥ ५७ ॥ उत्कृष्टकी अपेक्षा यह अनुत्कृष्ट पांच स्थानोंमें पतित है ॥ ५८ ॥

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ५९ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ६० ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ५९ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ६० ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ६१ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ ६२ ॥

उसके भावकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ६१ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणी हीन होती है ॥ ६२ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ६३ ॥ णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा ॥ ६४ ॥

जिसके वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ६३ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ ६४ ॥

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥६५॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ६५ ॥ वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है ॥ ६६ ॥

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा असंखेज्जगुण-हीणा वा ॥ ६७ ॥

उत्कृष्टकी अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट असंख्यातभागहीन और असंख्यातगुणहीन इन दो स्थानोंमें पतित होती है ॥ ६७ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ६८ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ६९ ॥

उसके कालकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ६८ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ६९ ॥

एवं णामा-गोदाणं ॥ ७० ॥

इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्मोंके विषयमें भी प्रकृत प्ररूपणा जानना चाहिये ॥७०॥

जस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ७१ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ७२ ॥

जिस जीवके आयु कर्मकी वेदना द्रव्यसे उत्कृष्ट होती है उसके वह क्या क्षेत्रसे उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ७१ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥७३॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्ज-गुणहीणा ॥ ७४ ॥

उसके उक्त वेदना कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ७३ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट व असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ७४ ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ७५ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ ७६ ॥

उसके उक्त वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ ७५ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणी हीन होती है ॥ ७६ ॥

जस्स आउअवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? ॥

जिस जीवके आयुकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके वह द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥ ७७ ॥

णियमा अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा ॥

वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट होती हुई संख्यातगुणहीन व असंख्यातगुणहीन इन दो स्थानोंमें पतित होती है ॥ ७८ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा वा ॥ ७९ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ८० ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ॥ ७९ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ८० ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? ॥ ८१ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ ८२ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥ ८१ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणी हीन होती है ॥ ८२ ॥

जस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? ॥ ८३ ॥ णियमा अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा ॥

जिसके आयुकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥८३॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट होती हुई संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन इन दो स्थानोंमें पतित होती है ॥ ८४ ॥

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? ॥ ८५ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ८६ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥ ८५ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुण हीन होती है ॥ ८६ ॥

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? ॥ ८७ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ ८८ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥ ८७ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणी हीन होती है ॥ ८८ ॥

जस्स आउअवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? ॥ ८९ ॥ णियमा अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा ॥ ९० ॥

जिस जीवके आयुकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥ ८९ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट होती हुई संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन इन तीन स्थानोंमें पतित होती है ॥ ९० ॥

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ॥ ९१ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ९२ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ॥ ९१ ॥ वह उसके नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ ९२ ॥

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ ९३ ॥ णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा– असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा ॥ ९४ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? ॥ ९३ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट होती हुई असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन इन चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ ९४ ॥

जो सो थप्पो जहण्णओ सत्थाणवेयणसण्णियासो सो चउव्विहो– दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि ॥ ९५ ॥

जिस जघन्य स्वस्थानवेदनासंनिकर्षको स्थगित किया था वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे चार प्रकारका है ॥ ९५ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ९६ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ ९७ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य? ॥ ९६ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ ९७ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ९८ ॥ जहण्णा ॥ ९९ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य? ॥ ९८ ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ ९९ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १०० ॥ जहण्णा ॥ १०१ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य? ॥ १०० ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ १०१ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १०२ ॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा– असंखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जभाग-ब्भहिया वा संखेज्जगुणब्भहिया असंखेज्जगुणब्भहिया वा ॥ १०३ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १०२ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होती हुई असंख्यातभाग अधिक, संख्यातभाग अधिक, संख्यातगुण अधिक और असंख्यातगुण अधिक इन चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ १०३ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा [अजहण्णा] ? ॥ १०४ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १०५ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या [अजघन्य] ? ॥ १०४ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १०५ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १०६ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुण-ब्भहिया ॥ १०७ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १०६ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १०७ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १०८ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा– अणंतभाग-ब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जब्भागवहिया वा संखेज्जगुणब्भहिया वा असंखेज्जगुणब्भहिया वा ॥ १०९ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १०८ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य अनन्तभाग अधिक, असंख्यातभाग अधिक, संख्यातभाग अधिक, संख्यातगुण अधिक और असंख्यातगुण अधिक; इन पांच स्थानोंमें पतित है ॥ १०९ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ११० ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १११ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ११० ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १११ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ११२ ॥ जहण्णा ॥ ११३ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ११२ ॥ उसके उक्त वेदना जघन्य होती है ॥ ११३ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ११४ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा ॥ ११५ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ११४ ॥ वह उसके जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य पांच स्थानोंमें पतित होती है ॥ ११५ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ११६ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ ११७ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ॥ ११६ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ ११७ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ११८ ॥ जहण्णा ॥ ११९ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ११८ ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ ११९ ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ १२० ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय कर्मोंकी जघन्य वेदनासम्बन्धी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ १२० ॥

जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १२१ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १२२ ॥

जिसके वेदनीय कर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह क्या क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १२१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यात-गुणी अधिक होती है ॥ १२२ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १२३ ॥ जहण्णा ॥ १२४ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १२३ ॥ उसके वह जघन्य होती है ॥ १२४ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १२५ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ १२६ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १२५ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य अनन्तगुणी अधिक है ॥ १२६ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १२७ ॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ १२८ ॥

जिसके वेदनीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १२७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होती हुई असंख्यात-भाग अधिक आदि स्थानोंमें पतित होती है ॥ १२८ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा [अजहण्णा] ? ॥ १२९ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १३० ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १२९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १३० ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १३१ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुण-ब्भहिया ॥ १३२ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १३१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १३२ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १३३ ॥ जहण्णा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा ॥ १३४ ॥

जिस जीवके वेदनीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १३३ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य अनन्तभाग अधिक आदि पांच स्थानोंमें पतित होती है ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १३५ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १३६ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १३५ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १३६ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १३७ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ? ॥ १३८ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १३७ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है ॥

जस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १३९ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा ॥ १४० ॥

जिस जीवके वेदनीयकी अपेक्षा भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १३९ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य अनन्तभाग अधिक आदि पांच स्थानोंमें पतित होती है ॥ १४० ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १४१ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १४२ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १४१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १४२ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १४३ ॥ जहण्णा ॥ १४४ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १४३ ॥ उसके वह जघन्य होती है ॥ १४४ ॥

जस्स आउअवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १४५ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १४६ ॥

जिसके आयुकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १४५ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १४६ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १४७ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १४८ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १४७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १४८ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १४९ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुण-ब्भहिया ॥ १५० ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १४९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १५० ॥

जस्स आउअवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १५१ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १५२ ॥

जिस जीवके आयुकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १५१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १५२ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १५३ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १५४ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १५३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १५४ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १५५ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा ॥ १५६ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १५५ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य छह स्थानोंमें पतित है ॥

जस्स आउअवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १५७ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १५८ ॥

जिस जीवके आयुकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १५७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यात-गुणी अधिक होती है ॥ १५८ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १५९ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १६० ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १५९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १६० ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १६१ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुण-ब्भहिया ॥ १६२ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १६१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १६२ ॥

जस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १६३ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १६४ ॥

जिस आयुकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १६३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २६४ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १६५ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ १६६ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १६५ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ १६६ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १६७ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १६८ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १६७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १६८ ॥

जस्स णामवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥१६९॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १७० ॥

जिसके नामकर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १६९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होकर असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १७० ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १७१ ॥ जहण्णा ॥ १७२ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १७१ ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ १७२ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १७३ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ १७४ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १७३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १७४ ॥

जस्स णामवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १७५ ॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ १७६ ॥

जिसके नामकर्मकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १७५ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होकर चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ १७६ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १७७ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १७८ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १७७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १७८ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १७९ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा ॥ १८० ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १७९ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य छह स्थानोंमें पतित होती है ॥ १८० ॥

जस्स णामवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १८१ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा ॥ १८२ ॥

जिस जीवके नामकर्मकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १८१ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य पांच स्थानोंमें पतित होती है ॥ १८२ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १८३ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ १८४ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १८३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १८४ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १८५ ॥ णियमा अजहण्णा अणंत-गुणब्भहिया ॥ १८६ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १८५ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १८६ ॥

जस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥१८७॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ १८८ ॥

जिसके नामकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १८७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होकर चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ १८८ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १८९ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ १९० ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १८९ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ १९० ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १९१ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १९२ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १९१ ॥ वह उसके नियमसे अजघन्य होकर असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १९२ ॥

जस्स गोदवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥१९३॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ १९४ ॥

जिसके गोत्रकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १९३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ १९४ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १९५ ॥ जहण्णा ॥ १९६ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १९५ ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ १९६ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ १९७ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ १९८ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १९७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ १९८ ॥

जस्स गोदवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥१९९॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ २०० ॥

जिसके गोत्रकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ १९९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होकर चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ २०० ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २०१ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २०२ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २०१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २०२ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २०३ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ २०४ ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २०३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ २०४ ॥

जस्स गोदवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २०५ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा ॥ २०६ ॥

जिस जीवके गोत्रकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह क्या द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २०५ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य पांच स्थानोंमें पतित होती है ॥ २०६ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २०७ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २०८ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २०७ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी होती है ॥ २०८ ॥

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २०९ ॥ णियमा अजहण्णा अणंत-गुणब्भहिया ॥ २१० ॥

उसके भावकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २०९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ २१० ॥

जस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ॥ २११ ॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ २१२ ॥

जिसके गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्यकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २११ ॥ वह उसके नियमसे अजघन्य होती हुई चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ २१२ ॥

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २१३ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ २१४ ॥

उसके क्षेत्रकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २१३ ॥ वह उसके नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २१४ ॥

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २१५ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्ज-गुणब्भहिया ॥ २१६ ॥

उसके कालकी अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २१५ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २१६ ॥

जो सो परत्थाणवेयणसण्णियासो सो दुविहो जहण्णओ परत्थाणवेयणसण्णियासो चेव उक्कस्सओ परत्थाणवेयणसण्णियासो चेव ॥ २१७ ॥

जो वह परस्थान वेदनासंनिकर्ष है वह दो प्रकारका है जघन्य परस्थान वेदनासंनिकर्ष और उत्कृष्ट परस्थानवेदनासंनिकर्ष ॥ २१७ ॥

जो सो जहण्णओ परत्थाणवेयणसण्णियासो जो थप्पो ॥ २१८ ॥

जो वह जघन्य परस्थान वेदनासंनिकर्ष है वह अभी स्थगित रखा जाता है ॥ २१८ ॥

जो सो उक्कस्सओ परत्थाणवेयणसण्णियासो सो चउव्विहे—दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि ॥ २१९ ॥

जो वह उत्कृष्ट परस्थान वेदनासंनिकर्ष है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा चार प्रकारका है ॥ २१९ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ॥ २२० ॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा ॥ २२१ ॥ अणंतभागहीणा वा असंखेज्जभागहीणा वा ॥ २२२ ॥

जिस ज्ञानावरणीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २२० ॥ उसके वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्टकी अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट दो स्थानोंमें पतित है ॥ २२१ ॥ वह अनन्तभागहीन अथवा असंख्यातभागहीन होती है ॥ २२२ ॥

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २२३ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ २२४ ॥

उसके आयु कर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २२३ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणी हीन होती है ॥ २२४ ॥

एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं ॥ २२५ ॥

इसी प्रकारसे आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंके प्रकृत संनिकर्षकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ २२५ ॥

जस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ॥ २२६ ॥ णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा ॥ २२७ ॥ असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा ॥

जिसके आयु कर्मकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके सात कर्मोंकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ॥ २२६ ॥ वह नियमसे अनुत्कृष्ट चार स्थानोंमें पतित है ॥ २२७ ॥ वह असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन इन चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ २२८ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दंसणावरणीय मोहणीय अंतराइयवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २२९ ॥ उक्कस्सा ॥ २३० ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट ॥ २२९ ॥ वह उसके उत्कृष्ट होती है ॥ २३० ॥

तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २३१ ॥ णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा ॥ २३२ ॥

उसके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २३१ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट और असंख्यातगुणहीन होती है ॥ २३२ ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ २३३ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायके संनिकर्षकी भी प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २३३ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा खेत्तदो उक्कसिया णत्थि ॥ २३४ ॥

जिसके वेदनीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट नहीं होती ॥ २३४ ॥

तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २३५ ॥ उक्कस्सा ॥ २३६ ॥

उसके आयु, नाम और गोत्रकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २३५ ॥ वह उसके उत्कृष्ट होती है ॥ २३६ ॥

एवमाउअ-णामा-गोदाणं ॥ २३७ ॥

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्रकी भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २३७ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं वेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २३८ ॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा असंखेज्जभागहीणा ॥ २३९ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ॥ २३८ ॥ उसके वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्टकी अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट असंख्यातभागहीन होती है ॥

तस्स आउअवेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २४० ॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा ॥ २४१ ॥

उसके आयुकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ॥ २४० ॥ वह उसके उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्टकी अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ २४१ ॥

एवं छण्णं कम्माणं आउववज्जाणं ॥ २४२ ॥

इस प्रकार शेष छह कर्मोंकी भी प्रकृत प्ररूपणा करनी (जाननी) चाहिये ॥ २४२ ॥

जस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स सत्ताण्णं कम्माणं वेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥२४३॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा ॥२४४॥ असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा ॥

जिसके आयुकी वेदना कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके सात कर्मोंकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २४३ ॥ उसके वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्टकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट तीन स्थानोंमें पतित होती है ॥ २४४ ॥ वे तीन स्थान ये हैं– उक्त वेदना असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन और संख्यातगुणहीन ॥ २४५ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २४६ ॥ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा ॥ २४७ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥२४६॥ उसके वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्टसे अनुत्कृष्ट छह स्थानोंमें पतित होती है ॥

तस्स वेयणीय-आउव-णामा-गोदवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २४८ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ २४९ ॥

उसके वेदनीय आयु, नाम और गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २४८ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणहीन होती है ॥ २४९ ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ २५० ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायके भी संनिकर्षकी प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २५० ॥

जस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ २५१ ॥ जदि अत्थि भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २५२ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ २५३ ॥

जिस जीवके वेदनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदना भावकी अपेक्षा कथंचित् होती है और कथंचित् नहीं भी होती है ॥ २५१ ॥ यदि होती है तो वह भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है या अनुत्कृष्ट ? ॥२५२॥ वह नियमसे अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणहीन होती है ॥ २५३ ॥

तस्स मोहणीय वेयणा भावदो णत्थि ॥ २५४ ॥

उक्त जीवके मोहनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा नहीं होती है ॥ २५४ ॥

तस्स आउअवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २५५ ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ २५६ ॥

उसके आयुकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २५५ ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट होकर अनन्तगुणी हीन होती है ॥ २५६ ॥

तस्स णामा-गोदवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥२५७॥ उक्कस्सा ॥

उसके नाम व गोत्र कर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २५७ ॥ वह उत्कृष्ट होती है ॥ २५८ ॥

एवं णामा-गोदाणं ॥ २५९ ॥

इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्मकी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २५९ ॥

जस्स आउअवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स सत्तण्णं कम्माणं भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ? ॥ २६० ॥ णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा ॥ २६१ ॥

जिसके आयुकी वेदना भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके सात शेष कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? ॥ २६० ॥ उसके वह नियमसे अनुत्कृष्ट और अनन्तगुणी हीन होती है ॥ २६१ ॥

जो सो थप्पो जहण्णओ परत्थाणवेयणसण्णियासो सो चउव्विहो दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि ॥ २६२ ॥

जो जघन्य परस्थान वेदनासंनिकर्ष स्थगित किया गया था वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे चार प्रकारका है ॥ २६२ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २६३ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा ॥ २६४ ॥ अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा ॥ २६५ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २६३ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्यसे वह अजघन्य इन दो स्थानोंमें पतित है ॥ २६४ ॥ अनन्तभाग अधिक और असंख्यातभाग अधिक ॥ २६५ ॥

तस्स वेयणीय-णामा-गोदवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २६६ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया ॥ २६७ ॥

उसके वेदनीय, नाम और गोत्रकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥२६६॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातवें भाग अधिक होती है ॥२६७॥

तस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया णत्थि ॥ २६८ ॥

उसके मोहनीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य नहीं होती ॥ २६८ ॥

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २६९ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २७० ॥

उसके आयुकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २६९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २७० ॥

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं ॥ २७१ ॥

इसी प्रकारसे दर्शनावरणीय और अन्तरायकी भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥२७१॥

जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणा दव्वदो जहण्णिया णत्थि ॥ २७२ ॥

जिसके वेदनीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य नहीं होती ॥ २७२ ॥

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २७३ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २७४ ॥

उसके आयुकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २७३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २७४ ॥

तस्स णामा-गोदवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २७५ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा ॥ २७६ ॥ अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा ॥ २७७ ॥

उसके नाम और गोत्रकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २७५ ॥ वह उसके जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्यसे वह अजघन्य इन दो स्थानोंमें पतित होती है ॥२७६॥ अनन्तभाग अधिक और असंख्यातभाग अधिक ॥२७७॥

एवं णामा-गोदाणं ॥ २७८ ॥

इसी प्रकार नाम और गोत्रकी भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २७८ ॥

जस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं वेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २७९ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया ॥

जिसके मोहनीयकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २७९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातवें भाग अधिक होती है ॥ २८० ॥

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २८१ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २८२ ॥

उसके आयुकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २८१ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २८२ ॥

जस्स आउअवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २८३ ॥ णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा ॥ २८४ ॥

जिसके आयुकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके शेष सात कर्मोंकी वेदना द्रव्यकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २८३ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य होकर चार स्थानोंमें पतित होती है ॥ २८४ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २८५ ॥ जहण्णा ॥ २८६ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके शेष सात कर्मोंकी वेदना उस क्षेत्रकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २८५ ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ २८६ ॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥ २८७ ॥

इसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २८७ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-अंतरायवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २८८ ॥ जहण्णा ॥ २८९ ॥

जिसके ज्ञानावरणीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २८८ ॥ वह उसके जघन्य होती है ॥ २८९ ॥

तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २९० ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २९१ ॥

उसके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २९० ॥ उसके वह अजघन्य होकर असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २९१ ॥

तस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णिया णत्थि ॥ २९२ ॥

उसके मोहनीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य नहीं होती है ॥ २९२ ॥

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं ॥ २९३ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तरायकी भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २९४ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणा कालदो जहण्णिया णत्थि ॥ २९४ ॥

जिसके वेदनीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य नहीं होती है ॥ २९४ ॥

तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २९५ ॥ जहण्णा ॥ २९६ ॥

उसके आयु, नाम और गोत्रकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २९५ ॥ उसके उक्त आयु आदिकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ २९६ ॥

एवमाउअ-णामा-गोदाणं ॥ २९७ ॥

जिस प्रकार यहां वेदनीयके संनिकर्षकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मके संनिकर्षकी भी प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ २९७ ॥

जस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ २९८ ॥ णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ॥ २९९ ॥

जिसके मोहनीयकी वेदना कालकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके शेष सात कर्मोंकी वेदना कालकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ २९८ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है ॥ २९९ ॥

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३०० ॥ जहण्णा ॥ ३०१ ॥

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके दर्शनावरणीय और अन्तरायकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३०० ॥ उसके इन दोनों कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है ॥ ३०१ ॥

तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३०२ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ ३०३ ॥

उसके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३०२ ॥ उसके इन कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ ३०३ ॥

तस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया णत्थि ॥ ३०४ ॥

उसके मोहनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य नहीं होती है ॥ ३०४ ॥

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं ॥ ३०५ ॥

भावकी अपेक्षा जिस प्रकार ज्ञानावरणीयके संनिकर्षकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकारसे दर्शनावरणीय और अन्तरायके संनिकर्षकी प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ ३०५ ॥

जस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया णत्थि ॥ ३०६ ॥

जिस जीवके वेदनीय कर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती हैं उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य नहीं होती है ॥ ३०६ ॥

तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३०७ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ ३०८ ॥

उसके आयु, नाम और गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?

॥ ३०७ ॥ उसके इन कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ ३०८ ॥

जस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३०९ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ ३१० ॥

जिसके मोहनीयकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके सात शेष कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३०९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ ३१० ॥

जस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा तस्स छण्णं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३११ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ ३१२ ॥

जिसके आयु कर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके नामकर्मको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३११ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ ३१२ ॥

तस्स णामवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३१३ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा ॥ ३१४ ॥

उसके नामकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥३१३॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य छह स्थानोंमें पतित होती है ॥ ३१४ ॥

जस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३१५ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ ३१६ ॥

जिसके नामकर्मकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके आयुको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३१५ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ ३१६ ॥

तस्स आउअवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३१७ ॥ जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा ॥ ३१८ ॥

उसके आयुकी वेदना क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३१७ ॥ उसके वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्यकी अपेक्षा वह अजघन्य छह स्थानोंमें पतित होती है ॥ ३१८ ॥

जस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ? ॥ ३१९ ॥ णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया ॥ ३२० ॥

जिसके गोत्रकी वेदना भावकी अपेक्षा जघन्य होती है उसके शेष सात कर्मोंकी वेदना भावकी अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? ॥ ३१९ ॥ उसके वह नियमसे अजघन्य और अनन्तगुणी अधिक होती है ॥ ३२० ॥

॥ वेदनासंनिकर्ष अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

१४. वेयणपरिमाणविहाणं

वेयणपरिमाणविहाणे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदनापरिमाणविधान अनुयोगद्वारका अधिकार है ॥ १ ॥

तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पगदिअट्ठदा समयपबद्धट्ठदा खेत्तपच्चा-सए त्ति ॥ २ ॥

उसमें ये तीन अनुयोगद्वार है प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास ॥ २ ॥

पगदिअट्ठदाए णाणावरणीय-दंसणावरणीय कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ३ ॥ णाणावरणीय-दंसणावरणीय कम्मस्स असंखेज्जलोग पयडीओ ॥ ४ ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ ५ ॥

प्रकृति-अर्थता अधिकारकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ ३ ॥ ज्ञानावरण और दर्शनावरण असंख्यात लोक प्रमाण प्रकृतियां हैं ॥ ४ ॥ इतनी मात्र उनकी प्रकृतियां हैं ॥ ५ ॥

वेदणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ६ ॥ वेयणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ ॥ ७ ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ ८ ॥

वेदनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ॥ ६ ॥ वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां है ॥ ७ ॥ उसकी इतनी ही प्रकृतियां हैं ॥ ८ ॥

सातावेदनीय और असातावेदनीय इस प्रकार दो भेद हैं। जितने स्वभाव होते हैं उतनीही प्रकृतियां होती हैं।

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ९ ॥ मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ ॥ १० ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ ११ ॥

मोहनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ९ ॥ मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां है ॥ १० ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ ११ ॥

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीक्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलनक्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भेदसे मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां है ।

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १२ ॥ आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ ॥ १३ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ १४ ॥

आयुकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १२ ॥ आयु कर्मकी चार प्रकृतियां है ॥ १३ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां है ॥ १४ ॥

देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक पर्यायको धारण करनेवाली आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं ।

णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १५ ॥ णामस्स कम्मस्स असंखेज्ज-लोगमेत्तपयडीओ ॥ १६ ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ १७ ॥

नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ १५ ॥ नामकर्मकी असंख्यात लोक मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १६ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ १७ ॥

नामकर्मकी गति, आदि ९३ त्र्याणव प्रकृतियां है ।

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १८ ॥ गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ ॥ १९ ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ २० ॥

गोत्र कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १८ ॥ गोत्र कर्मकी दो प्रकृतियां हैं ॥ १९ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ २० ॥

उच्चगोत्र और नीच गोत्र इस प्रकार दो प्रकृतियां है ।

अंतराइयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ २१ ॥ अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ ॥ २२ ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ २३ ॥

अन्तराय कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ २१ ॥ अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां है ॥ २२ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ २३ ॥

अन्तरायकर्मकी दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये पांच प्रकृतियां हैं ।

समयपबद्धट्ठदाए ॥ २४ ॥

अब समयप्रबद्धार्थताका अधिकार है ॥ २४ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ २५ ॥ णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं तीसं सागरोवम-कोडाकोडीयो समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए ॥ २६ ॥ एवदियाओ पयडीओ ॥ २७ ॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ २५ ॥ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मकी एक एक प्रकृति तीस कोड़ाकोड़ि सागरोपमोंको समय प्रवद्धार्थसे उक्त तीन गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी है ॥ २६ ॥ उक्त तीन कर्मोंकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ २७ ॥

कर्म स्थितिके प्रथम समयमें बांधे गये कर्मस्कन्धका नाम एक समयप्रबद्धार्थता है; द्वितीय समयमें बांधे गये कर्मस्कन्धका नाम द्वितीय समयप्रबद्धार्थता है। इस प्रकार कर्मस्थितिके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिये। फिर एक समयप्रबद्धार्थताको स्थापित कर तीस कोडाकोडी सागरोपमसे गुणित करनेपर एक एक कर्मकी इतनी प्रकृतियां होती है।

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ २८ ॥ वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं पण्णारससागरोवमकोडाकोडीओ समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए ॥ २९ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ३० ॥

वेदनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ २८ ॥ तीस और पन्द्रह कोड़ाकोड़ि सागरोपमोंके समयप्रबद्धार्थसे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी मात्र वेदनीय कर्मकी एक एक प्रकृति हैं ॥ २९ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ ३० ॥

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ३१ ॥ मोहणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी सत्तरि चत्तालीसं वीसं पण्णारसदससागरोवमकोडाकोडीयो समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए ॥ ३२ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ३३ ॥

मोहनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ ३१ ॥ सत्तर, चालीस, बीस, पन्द्रह और दस कोड़ाकोड़ि सागरोपमोंके समयप्रबद्धार्थतासे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी मोहनीय कर्मकी एक एक प्रकृति है ॥ ३२ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां है ॥ ३३ ॥

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ३४ ॥ आउअस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अंतोमुहुत्तमंतोमुहुत्तं समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए ॥ ३५ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ३६ ॥

आयु कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ ३४ ॥ अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तको समयप्रबद्धार्थतासे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी आयु कर्मकी एक एक प्रकृति है ॥ ३५ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां है ॥ ३६ ॥

णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ३७ ॥ णामस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी वीसं, अट्ठारस, सोलस, पण्णारस, चोद्दस, बारस, दससागरोवम कोडाकोडीयो समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए ॥ ३८ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ३९ ॥

नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ३७ ॥ बीस, अठारह, सोलह, पन्द्रह, चौदह, बारह और दस कोड़ाकोड़ि सागरोपमोंके समयप्रबद्धार्थतासे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी नामकर्मकी एक एक प्रकृति है ॥ ३८ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां है ॥ ३९ ॥

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ४० ॥ गोदस्स कम्मस्स एक्केका पयडी बीसं दस सागरोवम कोडाकोडीओ समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए ॥ ४१ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ४२ ॥

गोत्र कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ ४० ॥ बीस और दस कोड़ाकोड़ि सागरोपमोंके समयप्रबद्धार्थतासे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी गोत्र कर्मकी एक एक प्रकृति है ॥ ४१ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ ४२ ॥

खेत्तपच्चासे त्ति ॥ ४३ ॥

अब क्षेत्रप्रत्यास अनुयोगद्वारका अधिकारप्राप्त है ॥ ४३ ॥

क्षेत्रप्रत्याससे अभिप्राय यहां जीवके द्वारा अवलम्बित क्षेत्रकी क्षेत्रप्रत्याससंज्ञा है ।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ४४ ॥ णाणावरणीयस्स कम्मस्स जो मच्छो जोयणसहस्सओ सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरल्लए तडे अच्छिदो, वेयण-समुग्घादेण समुहदो, काउलेस्सियाए लग्गो, पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो, तिण्णि विग्गहगदिकंदयाणि काऊण से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जिहदि त्ति ॥ ४५ ॥ खेत्तपच्चासेण गुणिदाओ ॥ ४६ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ४७ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ४४ ॥ जो एक हजार योजन प्रमाण मत्स्य स्वयम्भूरमण समुद्रके बाह्य तटपर स्थित है, वेदनासमुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त हुआ है, कापोतलेश्यासे संलग्न है, फिर भी मारणांतिकसमुद्घातको प्राप्त हुआ है, तीन विग्रह काण्डकोंको करके अनन्तर समयमें नीचे सातवीं पृथीवींक नारकियोंमें उत्पन्न होगा, उसके ज्ञानावरणीय कर्मकी जो प्रकृतियां हैं ॥ ४५ ॥ उन्हें उक्त क्षेत्रप्रत्याससे गुणित करनेपर जो प्राप्त है ॥ ४६ ॥ इतनी ज्ञानावरणीयकी प्रकृतियां हैं ॥ ४७ ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंके सम्बन्धमें भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ ४८ ॥

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ४९ ॥ वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केका पयडी अण्णदरम्मि केवलिम्मि केवलिसमुग्घादेण समुग्घादस्स सव्वलोगं गदस्स ॥५०॥ खेत्तपच्चासेण गुणिदाओ ॥ ५१ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ५२ ॥

वेदनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ॥ ४९ ॥ केवलिसमुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त होकर सर्व लोकको प्राप्त हुए अन्यतर केवलीके जो वेदनीय कर्मकी एक एक प्रकृति होती है ॥ ५० ॥ उसे क्षेत्रप्रत्याससे गुणित करनेपर वेदनीय कर्मकी क्षेत्रप्रत्यास प्रकृतियोंका प्रमाण होता है ॥ ५१ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ ५२ ॥

एवमाउअ-णामा-गोदाणं ॥ ५३ ॥

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मोंके सम्बन्धमें भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥

॥ वेदनापरिमाणविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

१५. वेयणभागाभागविहाणं

वेयणभागाभागविहाणे त्ति ॥ १ ॥

अब वेदना भागाभागविधान अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है ॥ १ ॥

तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि-पयडिअट्ठदा समयपबद्धट्ठदा खेत्तपच्चासे त्ति ॥ २ ॥

उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास ॥ २ ॥

पयडिअट्ठदाए णाणावरणीय - दंसणावरणीयकम्मस्स पयडीओ सव्वपयडीणं केवडियो भागो ॥ ३ ॥ दुभागूणो देसूणो ॥ ४ ॥

प्रकृत्यर्थतासे ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियां सब प्रकृतियोंके कितने वें भाग प्रमाण हैं ? ॥ ३ ॥ वे सब प्रकृतियोंके कुछ कम द्वितीय भाग प्रमाण हैं ॥ ४ ॥

वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ सव्वपयडीणं केवडियो भागो ? ॥ ५ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ ६ ॥

वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम और गोत्र और अन्तराय कर्मकी प्रकृतियां सब प्रकृतियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? ॥ ५ ॥ वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ६ ॥

समयपबद्धट्ठदाए ॥ ७ ॥

अब समयप्रबद्धार्थका अधिकार है ॥ ७ ॥

णाणावरणीय-दंसणावरणीयकम्मस्स एक्केका पयडी तीसं तीसं सागरोवमकोडा-कोडीओ समयपबद्धट्ठदाए गुणिदाए सव्वपयडीणं केवडिओ भागो ? ॥ ८ ॥ दुभागो देसूणो ॥ ९ ॥

तीस तीस कोडाकोडि सागरोपमोंको समयप्रबद्धार्थतासे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी मात्र ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीयकी एक एक प्रकृति सब प्रकृतियोंके कितने भाग प्रमाण है ? ॥ ८ ॥ वे उनके कुछ कम द्वितीय भाग प्रमाण हैं ॥ ९ ॥

एवं वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयाणं च णेयव्वं ॥ १० ॥ णवरि विसेसो सव्वपयडीणं केवडीओ भागो ? ॥ ११ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ १२ ॥

इसी प्रकार समयप्रबद्धार्थताके आश्रयसे वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायके सम्बन्धमें भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ १० ॥ विशेष इतना है कि वे सब प्रकृतियोंके कितने भाग प्रमाण है ? ॥ ११ ॥ वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १२ ॥

खेत्तपच्चासे त्ति ॥ १३ ॥

अब क्षेत्रप्रत्यास अनुयोगद्वारका अधिकार है ॥ १३ ॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी जो मच्छो जोयणसहस्सियो सयंभूरमण-समुद्दस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो, वेयणसमुग्घादेण समुहदो, काउलेस्सियाए लग्गो, पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो, तिण्णि विग्गहकंडयाणि काऊण से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जिहदि त्ति खेत्तपच्चासाएण गुणिदाओ सव्वपयडीणं केवडिओ भागो ? ॥ १४ ॥ दुभागो देसूणो ॥ १५ ॥

जो महामत्स्य एक हजार योजनप्रमाण अवगाहनासे युक्त होता हुआ स्वयंभूरमण समुद्रके बाहिरी तटपर स्थित है, वेदनासमुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त है, कापोतलेश्यासे संलग्न है, फिर जो मारणान्तिक समुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त हुआ है, तीन विग्रहकाण्डकोंको करनेके अनन्तर समयमें नारकियोंमें उत्पन्न होगा; इस क्षेत्रप्रत्याससे समयप्रबद्धार्थताप्रकृतियोंको गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी ज्ञानावरण कर्मकी एक एक प्रकृति होती है । ये प्रकृतियां सब प्रकृतियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? ॥ १४ ॥ वे उनके कुछ कम द्वितीय भाग प्रमाण हैं ॥ १५ ॥

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं ॥ १६ ॥ णवरि मोहणीय-अंतरायइस्स सव्वपयडीणं केवडिओ भागो ? ॥ १७ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ १८ ॥

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मके सम्बन्धमें कहना चाहिये ॥ १६ ॥ विशेष इतना हैं कि मोहनीय और अन्तरायकी प्रकृत प्रकृतियां सब प्रकृतियोंके कितनेवें भाग प्रमाण है ? ॥ १७ ॥ वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ १८ ॥

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अण्णदरस्स केवलिस्स केवलसमुग्घादेण समुहदस्स सव्वलोगं गयस्स खेत्तपच्चासएण गुणिदाओ सव्व-पयडीणं केवडिओ भागो ? ॥ १९ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

केवलिसमुद्घातसे समुद्घातको प्राप्त होकर सर्व लोकको प्राप्त हुए अन्यतर केवलीके इस क्षेत्रप्रत्याससे समयप्रबद्धार्थकता प्रकृतियोंको गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उतनी मात्र वेदनीय कर्मकी एक एक प्रकृति होती है। ये प्रकृतियां सब प्रकृतियोंके कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? ॥ १९ ॥ वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ २० ॥

एवमाउअ-णामा-गोदाणं ॥ २१ ॥

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मके सम्बन्धमें कहना चाहिये ॥ २१ ॥

॥ वेदनाभागाभागविधान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

---

१६. वेयणअप्पाबहुगं

वेयणअप्पाबहुए त्ति ॥ १ ॥

अब वेदना अल्पबहुत्वका अधिकार है ॥ १ ॥

तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति–पयडिअट्ठदा समयपबद्धट्ठदा खेत्तपच्चासए त्ति ॥ २ ॥

उसमें ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य है प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास ॥२॥

पयडिअट्ठदाए सव्वत्थोवा गोदस्स कम्मस्स पयडिओ ॥ ३ ॥

प्रकृत्यर्थताकी अपेक्षा गोत्र कर्मकी प्रकृतियां सबसे स्तोक हैं ॥ ३ ॥

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ तत्तियाओ चेव ॥ ४ ॥

वेदनीय कर्मकी प्रकृतियां उतनी ही हैं ॥ ४ ॥

आउअस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ५ ॥

आयु कर्मकी प्रकृतियां उनसे संख्यातगुणी हैं ॥ ५ ॥

अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ ॥ ६ ॥

अन्तराय कर्मकी प्रकृतियां उनसे विशेष अधिक हैं ॥ ६ ॥

मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ७ ॥

मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे संख्यातगुणी हैं ॥ ७ ॥

णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ८ ॥

नामकर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी हैं ॥ ८ ॥

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ९ ॥

दर्शनावरणीयकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी है ॥ ९ ॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ ॥ १० ॥

ज्ञानावरणीयकी प्रकृतियां उनसे विशेष अधिक हैं ॥ १० ॥

समयपबद्धट्ठदाए सव्वत्थोवा आउअस्स कम्मस्स पयडीओ ॥ ११ ॥

समयप्रबद्धार्थताकी अपेक्षा आयु कर्मकी प्रकृतियां सबसे स्तोक हैं ॥ ११ ॥

गोदस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १२ ॥

गोत्र कर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी हैं ॥ १२ ॥

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ ॥ १३ ॥

वेदनीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे विशेष अधिक हैं ॥ १३ ॥

अंतराइयस्स कस्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १४ ॥

अन्तराय कर्मकी प्रकृतियां उनसे संख्यातगुणी हैं ॥ १४ ॥

मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १५ ॥

मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे संख्यातगुणी हैं ॥ १५ ॥

णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १६ ॥

नामकर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी हैं ॥ १६ ॥

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १७ ॥

दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी हैं ॥ १७ ॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ ॥ १८ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे विशेष अधिक हैं ॥ १८ ॥

खेत्तपच्चासए त्ति सव्वत्थोवा अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ ॥ १९ ॥

क्षेत्रप्रत्यासकी अपेक्षा अन्तराय कर्मकी प्रकृतियां सबसे स्तोक है ॥ १९ ॥

मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ ॥ २० ॥

मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे संख्यातगुणी हैं ॥ २० ॥

आउअस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २१ ॥

आयु कर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी हैं ॥ २१ ॥

गोदस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २२ ॥

गोत्र कर्मकी प्रकृतियां उनसे संख्यातगुणी हैं ॥ २२ ॥

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ ॥ २३ ॥

वेदनीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे विशेष अधिक है ॥ २३ ॥

णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २४ ॥

नामकर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी है ॥ २४ ॥

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ २५ ॥

दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे असंख्यातगुणी है ॥ २५ ॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ ॥ २६ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियां उनसे विशेष अधिक है ॥ २६ ॥

॥ वेदना-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

इस प्रकार वेदनाखण्ड खण्ड समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

तस्स पंचमेखंडे – वग्गणाए

३. फासाणिओगद्दारं

फासे त्ति ॥ १ ॥

अब स्पर्श अनुयोगद्वार प्रकृत है ॥ १ ॥

तत्थ इमाणि सोलस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति– फासणिक्खेवे फासणय-विभासणदाए फासणामविहाणे फासदव्वविहाणे फासखेत्तविहाणे फासकालविहाणे फासभाव-विहाणे फासपच्चयविहाणे फाससामित्तविहाणे फासफासविहाणे फासगइविहाणे फासअणंतर-विहाणे फाससण्णियासविहाणे फासपरिमाणविहाणे फासभागाभागविहाणे फासअप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

उसमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं– स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनाम-विधान, स्पर्शद्रव्यविधान, स्पर्शक्षेत्रविधान, स्पर्शकालविधान, स्पर्शभावविधान, स्पर्शप्रत्ययविधान, स्पर्शस्वामित्वविधान, स्पर्श-स्पर्शविधान, स्पर्शगतिविधान, स्पर्शअनन्तरविधान, स्पर्शसंनिकर्षविधान, स्पर्शपरिमाणविधान- स्पर्शभागाभागविधान और स्पर्श अल्पबहुत्व ॥ २ ॥

फासणिक्खेवे त्ति ॥ ३ ॥

उपर्युक्त सोलह अधिकारोंमें प्रथम स्पर्शनिक्षेप अधिकृत है– उसकी प्ररूपणा की जाती हैं ॥ ३ ॥

तेरसविहे फासणिक्खेवे– णामफासे ठवणफासे दव्वफासे एयखेत्तफासे अणंतर-खेत्तफासे देसफासे तयफासे सव्वफासे फासफासे कम्मफासे बंधफासे चेदि ॥ ४ ॥

वह स्पर्शनिक्षेप तेरह प्रकारका है– नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बन्धस्पर्श, भव्यस्पर्श और भावस्पर्श ॥ ४ ॥

यहां 'स्पर्श' शब्दके जो वे तेरह अर्थ निर्दिष्ट किये गये हैं उन्हें सामान्यसे समझना चाहिये, क्यों कि विशेषरूपसे उसके और भी अनेक अर्थ हो सकते हैं। (इसके स्वरूपका निर्देश आगे मूल ग्रन्थ कर्ताने स्वयं ही सूत्रों द्वारा किया है)

फासणयविभासणदाए ॥ ५ ॥

स्पर्शनयविभाषणताका अधिकार है ॥ ५ ॥

को णओ के फासे इच्छदि ? ॥ ६ ॥

कौन नय किन स्पर्शोंको स्वीकार करता है ? ॥ ६ ॥

सव्वे एदे फासा बोद्धव्वा होंति णेगमनयस्स ।
णेच्छदि य बंध-भवियं ववहारो संगहणओ य ॥ ७ ॥

नैगमनयके ये सब स्पर्श विषय होते हैं। नैगम नय इन सब ही स्पर्शोंको स्वीकार करता है; यह अभिप्राय जानना चाहिये। व्यवहारनय और संग्रहनय बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्श इन स्पर्शोंको स्वीकार नहीं करते हैं ॥ ७ ॥

एयक्खेत्तमणंतरबंधं भवियं च णेच्छदुज्जुसुदो ।
णामं च फासफासं भावप्फासं च सद्दणओ ॥ ८ ॥

ऋजुसूत्र एकक्षेत्रस्पर्श; अनन्तरस्पर्श, बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शको स्वीकार नहीं करता शब्दनय नामस्पर्श, स्पर्शस्पर्श और भावस्पर्शको ही स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

जो सो णामफासो णाम सो जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा जीवस्स च अजीवस्स च जीवस्स च अजीवाणं च जीवाणं च अजीवस्स च जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णाम कीरदि फासे त्ति सो सव्वो णामफासो णाम ॥ ९ ॥

जो वह नामस्पर्श है वह एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव तथा नाना जीव और नाना अजीव; इनमेंसे जिसका 'स्पर्श' ऐसा नाम किया जाता है उसका नाम स्पर्श है ॥ ९ ॥

जो सो ठवणफासो णाम सो कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जदि फासे त्ति सो सव्वो ठवणफासो णाम ॥ १० ॥

जो वह स्थापनास्पर्श है वह काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म, भित्तिकर्म, दन्तकर्म और भेंडकर्म; इनमें तथा अक्ष और वराटक एवं इनको आदि लेकर और भी जो हैं उनके विषयमें जो 'यह स्पर्श है' इस प्रकारकी बुद्धिपूर्वक अभेदकी स्थापना की जाती है वह सब स्थापनास्पर्श है ॥ १० ॥

यहां काष्ठकर्म आदि पदोंके द्वारा 'सद्भावस्थापनाके' विषयका तथा अक्ष व वराटक पदोंके द्वारा असद्भावस्थापनाके विषयका निर्देश किया गया है। 'जे चामण्णे एवमादिया' इस प्रकारके जो अन्य भी हैं। इसका सम्बन्ध उक्त दोनों प्रकारकी स्थापनाके विषयमें जोड़ना चाहिये।

जो सो दव्वफासो णाम ॥ ११ ॥ जं दव्वं दव्वेण पुसदि सो सव्वो दव्वफासो णाम ॥ १२ ॥

अब द्रव्य स्पर्शका अधिकार है ॥ ११ ॥ जो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे स्पर्शको प्राप्त होता है वह सब द्रव्यस्पर्श है ॥ १२ ॥

अभिप्राय यह कि एक पुद्‌गल द्रव्यका जो शेष पुद्‌गल द्रव्योंके साथ संयोग अथवा समवाय होता है उसे द्रव्यस्पर्श जानना चाहिये, अथवा जीव द्रव्यका जो पुद्‌गल द्रव्यके साथ संयोग सम्बन्ध है उसे द्रव्यस्पर्श जानना चाहिये।

जो सो एयक्खेत्तफासो णाम ॥ १३ ॥ जं दव्वमेयक्खेत्तणे पुसदि सो दव्वो एयक्खेत्तफासोणाम ॥ १४ ॥

अब एकक्षेत्रस्पर्शका अधिकार है ॥ १३ ॥ जो द्रव्य एक क्षेत्रके साथ स्पर्श करता है वह सब एकक्षेत्रस्पर्श है ॥ १४ ॥

जो सो अणंतरक्खेत्तफासो णाम ॥ १५ ॥ जं दव्वमणंतरक्खेत्तेण पुसदि सो सव्वो अणंतरक्खेत्तफासो णाम ॥ १६ ॥

अब अनन्तरक्षेत्रस्पर्शका अधिकार है ॥ १५ ॥ जो द्रव्य अनन्तर क्षेत्रके साथ स्पर्श करता है वह सब अनन्तरक्षेत्रस्पर्श है ॥ १६ ॥

आकाशके दो प्रदेशोंमें स्थित द्रव्योंका जो अन्य दो आकाश प्रदेशों व तीन आदि आकाश प्रदेशोंमें स्थित द्रव्योंके साथ स्पर्श होता है उसका नाम अनन्तरक्षेत्रस्पर्श है, यह अभिप्राय समझना चाहिये।

जो सो देसफासो णाम ॥ १७ ॥ जं दव्वदेसं देसेण पुसदि सो सव्वो देसफासो णाम ॥ १८ ॥

अब देशस्पर्शका अधिकार है ॥ १७ ॥ जो द्रव्य एक देशरूपसे स्पर्श करता है वह सब देशस्पर्श है ॥ १८ ॥

एक द्रव्यके अवयवका अन्य द्रव्यके अवयवके साथ जो स्पर्श होता है उसका नाम देशस्पर्श है, ऐसा समझना चाहिये।

जो सो तयफासो णाम ॥ १९ ॥ जं दव्वं तयं वा णोतयं वा पुसदि सो सव्वो तयफासो णाम ॥ २० ॥

अब त्वक्स्पर्शका अधिकार है ॥ १९ ॥ जो द्रव्य त्वचा या नोत्वचाका स्पर्श करता है वह सब त्वक्स्पर्श है ॥ २० ॥

जो सो सव्वफासो णाम ॥ २१ ॥ जं दव्वं सव्वेण फुसदि, जहा, परमाणु-दव्वमिदि, सो सव्वो सव्वफासो णाम ॥ २२ ॥

अब सर्वस्पर्शका अधिकार है ॥ २१ ॥ जो द्रव्य परमाणुके समान सबका सब सर्वात्मना स्पर्श करता है, वह सब सर्वस्पर्श है ॥ २२ ॥

जो सो फासफासो णाम ॥ २३ ॥ सो अट्ठविहो– कक्खडफासो मउवफासो गरुवफासो लहुवफासो णिद्धफासो रूक्खफासो सीदफासो उण्हफासो । सो सव्वो फासफासो णाम ॥ २४ ॥

अब स्पर्शस्पर्शका अधिकार है ॥ २३ ॥ वह आठ प्रकारका है - कर्कशस्पर्श, मृदुस्पर्श, गुरुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्धस्पर्श, रूक्षस्पर्श, शीतस्पर्श और उष्णस्पर्श । वह सब स्पर्शस्पर्श है ॥२४॥

जो सो कम्मफासो ॥ २५ ॥ सो अट्ठविहो– णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-मोहणीय-आउ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मफासो । सो सव्वो कम्मफासो णाम ॥ २६ ॥

अब कर्मस्पर्शका अधिकार है ॥ २५ ॥ वह आठ प्रकारका है - ज्ञानावरणीयकर्मस्पर्श, दर्शनावरणीयकर्मस्पर्श, वेदनीयकर्मस्पर्श, मोहनीयकर्मस्पर्श, आयुकर्मस्पर्श, नामकर्मस्पर्श, गोत्र-कर्मस्पर्श और अन्तरायकर्मस्पर्श । वह सब कर्मस्पर्श है ॥ २६ ॥

जो सो बंधफासो णाम ॥ २७ ॥ सो पंचविहो– ओरालियसरीरबंधफासो एवं वेउव्विय-आहार-तेया-कम्मइयसरीर बंधफासो । सो सव्वो बंधफासो णाम ॥ २८ ॥

अब बन्धस्पर्शका अधिकार है ॥ २७ ॥ वह पांच प्रकारका है– औदारिक शरीरबन्ध-स्पर्श, इसी प्रकार वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरबन्धस्पर्श । वह सब बन्धस्पर्श है ॥

जो सो भवियफासो णाम ॥ २९ ॥ जहा विस-कूड-जंत-पंजर-कंदय-वग्गुरादीणि कत्तारो समोद्दियारो य भवियो फुसणदाए णो य पुण ताव-तं फुसदि सो सव्वो भवियफासो णाम ॥ ३० ॥

अब भव्यस्पर्शका अधिकार है ॥ २९ ॥ सो वह भव्यस्पर्श इस प्रकार है– विष, कूट, यन्त्र, पंजर, कन्दक और पशुको फँसानेका जाल आदि तथा इनके करनेवाले और इन्हें इच्छित स्थानमें रखनेवाले स्पर्शनके योग्य होंगे परन्तु अभी उन्हें स्पर्श नहीं करते; वह सब भव्यस्पर्श है ॥

जिसका पान आदि करनेपर प्राणोंका विनाश होता है उसका नाम विष (शंखिया आदि) है । जो यन्त्र कौवा व चूहों आदिके पकड़नेके लिये बनाया जाता है वह कूट कहलाता है । जिसके भीतर सिंह व व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंको फसाया जाता है उसे यन्त्र कहते हैं । जिसके भीतर तोता आदि पक्षियोंको परतंत्र रखा जाता है उसका नाम पंजर है ।

हाथीके पकड़नेके लिये जो गड्ढा आदि बनाया जाता है उसे कन्दक समझना चाहिये। जिस फांसके द्वारा हिरण आदिको पकडा जाता है वह वागुरा कही जाती है । इन सब पंच विशेषोंको उनके निर्माताओंको और उनका यथेच्छ उपयोग करनेवालोंको भव्यस्पर्शके अन्तर्गत समझना चाहिये । इन सबको जो यहां 'भव्यस्पर्श' नामसे कहा गया है वह स्पर्शकी योग्यताकी दृष्टिसे जानना चाहिये ।

जो सो भावफासो णाम ॥ ३१ ॥ उवजुत्तो पाहुडजाणओ सो सव्वो भावफासो णाम ॥ ३२ ॥

अब भावस्पर्शका अधिकार है ॥ ३१ ॥ जो स्पर्शप्राभृतका ज्ञाता होकर वर्तमानमें उसमें उपयुक्त है वह सब भावस्पर्श है ॥ ३२ ॥

एदेसिं फासाणं केण फासेण पयदं ? कम्मफासेण पयदं ॥ ३३ ॥

इन स्पर्शोंमेंसे प्रकृतमें कौन स्पर्श लिया गया है ? इन स्पर्शोंमेंसे प्रकृतमें कर्मस्पर्शकी विवक्षा है ॥ ३३ ॥

॥ स्पर्श अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

४. कम्माणिओगद्दारं

कम्मे त्ति ॥ १ ॥

अब यहां महाकर्म प्रकृति प्राभृतमें प्ररूपित चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे चौथा कर्म नामका अनुयोगद्वार अधिकृत है ॥ १ ॥

तत्थ इमाणि सोलस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति– कम्मणिक्खेवे कम्मणयविभासणदाए कम्मणामविहाणे कम्मदव्वविहाणे कम्मखेत्तविहाणे कम्मकालविहाणे कम्मभावविहाणे कम्मपच्चयविहाणे कम्मसामित्तविहाणे कम्मकम्मविहाणे कम्मगइविहाणे कम्मअणंतरविहाणे कम्मसंणियासविहाणे कम्मपरिमाणविहाणे कम्मभागाभागविहाणे कम्म-अप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

उसमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं– कर्मनिपेक्ष, कर्मनयविभाषणता, कर्मनामविधान, कर्मद्रव्यविधान, कर्मक्षेत्रविधान, कर्मकालविधान, कर्मभावविधान, कर्मप्रत्ययविधान, कर्मस्वामित्व-विधान, कर्मकर्मविधान, कर्मगतिविधान, कर्मअनन्तरविधान, कर्मसंनिकर्षविधान, कर्मपरिमाणविधान, कर्मभागाभागविधान और कर्मअल्पबहुत्व ॥ २ ॥

कम्मणिक्खेवे त्ति ॥ ३ ॥ दसविहे कम्मणिक्खेवे– नामकम्मे ठवणकम्मे दव्वकम्मे पओअकम्मे समुदाणकम्मे आधाकम्मे इरियावहकम्मे तवोकम्मे किरियाकम्मे भावकम्मे चेदि ॥ ४ ॥

अब कर्मनिपेक्षका अधिकार है ॥ ३ ॥ कर्मनिपेक्ष दस प्रकारका है– नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म ॥ ४ ॥

कम्मणयविभासणदाए को णओ के कम्मे इच्छदि ? ॥ ५ ॥

कर्मनयविभाषणताकी अपेक्षा कौन नय किन कर्मोंको स्वीकार करता है ? ॥ ५ ॥

णेगम-ववहार-संगहा सव्वाणि ॥ ६ ॥

नैगम, व्यवहार और संग्रहनय सब कर्मोंको स्वीकार करते हैं ॥ ६ ॥

उजुसुदो ट्ठवणकम्मं णेच्छदि ॥ ७ ॥

ऋजुसूत्र नय स्थापनाकर्मको स्वीकार नहीं करता ॥ ७ ॥

सद्दणओ णामकम्मं भावकम्मं च इच्छदि ॥ ८ ॥

शब्दनय नामकर्म और भावकर्मको स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

जं तं णामकम्मं णाम ॥ ९ ॥ तं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा जीवस्स च अजीवस्स च जीवस्स च अजीवाणं च जीवाणं च अजीवस्स च जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि कम्मे त्ति तं सव्वं णामकम्मं णाम ॥ १० ॥

अब नामकर्म अधिकार प्राप्त है ॥ ९ ॥ एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव तथा नाना जीव और नाना अजीव; इनमेंसे जिसका कर्म ऐसा नाम रखा जाता है वह सब नामकर्म है ॥

जं तं ठवणकम्मं णाम ॥ ११ ॥ तं कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जदि कम्मे त्ति तं सव्वं ठवणकम्मं णाम ॥ १२ ॥

अब स्थापना कर्मका अधिकार है ॥ ११ ॥ काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म, भित्तिकर्म, दन्तकर्म और भेण्डकर्म; इनमें तथा अक्ष और वराटक एवं इनको आदि लेकर और भी जो 'यह कर्म है' इस प्रकार कर्मरूपसे एकत्वके संकल्पद्वारा बुद्धिमें प्रस्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापना कर्म है ॥ १२ ॥

जं तं दव्वकम्मं णाम ॥ १३ ॥ जाणि दव्वाणि सब्भावकिरियाणिप्फण्णाणि तं सव्वं दव्वकम्मं णाम ॥ १४ ॥

अब द्रव्यकर्मका अधिकार है ॥ १३ ॥ जो द्रव्य सद्भावक्रियासे निष्पन्न हैं वह सब द्रव्यकर्म है ॥ १४ ॥

जीवादि द्रव्योंका जो अपने अपने स्वरूपसे परिणमन हो रहा है उसका नाम सद्भाव क्रिया है। जैसे – जीव द्रव्यका ज्ञान-दर्शनस्वरूपसे परिणमन। इस प्रकारकी क्रियाओंसे जो विविध द्रव्योंकी निष्पत्ति होती है उस सबको द्रव्यकर्म जानना चाहिये।

जं तं पओअकम्मं णाम ॥ १५ ॥ तं तिविहं– मणपओअकम्मं वचिपओअकम्मं कायपओअकम्मं ॥ १६ ॥ तं संसारावत्थाणं जीवाणं सजोगिकेवलीणं वा ॥ १७ ॥ तं सव्वं पओअकम्मं णाम ॥ १८ ॥

अब प्रयोगकर्म अधिकार प्राप्त है ॥ १५ ॥ वह तीन प्रकारका है– मनःप्रयोग कर्म, वचनप्रयोगकर्म और कायप्रयोगकर्म ॥ १६ ॥ वह संसार अवस्थामें स्थित जीवोंके और सयोगिकेवलियोंके होता है ॥ १७ ॥ वह सब प्रयोगकर्म है ॥ १८ ॥

जं तं समुदाणकम्मं णाम ॥ १९ ॥ तं अट्ठविहस्स वा सत्तविहस्स वा छव्विहस्स वा कम्मस्स समुदाणदाए गहणं पवत्तदि तं सव्वं समुदाणकम्मं णाम ॥ २० ॥

अब समवदान कर्मका अधिकार है ॥ १९ ॥ यतः आठ प्रकारके, सात प्रकारके, और छह प्रकारके कर्मका भेदरूपसे ग्रहण होता है; अतः वह सब समवदानकर्म है ॥ २० ॥

समवदानतासे यहां भेदका अभिप्राय है । मिथ्यादर्शनादिके कारण जो कार्मण पुद्गलस्कन्ध आठ प्रकार, सात प्रकार और छह प्रकारके कर्मस्वरूपसे परिणमन होता है उस सबको समवदानकर्म समझना चाहिये ।

जं तमाधाकम्मं णाम ॥ २१ ॥ तं ओद्दावण-विद्दावण-परिदावण-आरंभकदणिप्फण्णं तं सव्वं आधाकम्मं णाम ॥ २२ ॥

अब अधःकर्मका अधिकार है ॥ २१ ॥ वह उपद्रावण, विद्रावण, परितापन और आरम्भ रूप कार्यसे निष्पन्न होता है; वह सब आधाकर्म है ॥ २२ ॥

जीवको उपद्रवित करनेका नाम उपद्रावण, अंगविच्छेदन आदिरूप व्यापारका नाम विद्रावण; सन्ताप उत्पन्न करनेका नाम परितापन और प्राणियोंके प्राणोंके वियोग करनेका नाम आरम्भ है । कृत शब्दका अर्थ कार्य है । उक्त उपद्रावण आदि कार्योंके द्वारा जो औदारिक शरीर निष्पन्न होता है उसे आधाकर्म जानना चाहिये ।

जं तमीरियावहकम्मं णाम ॥ २३ ॥ तं छदुमत्थवीयरायाणं सजोगिकेवलीणं वा तं सव्वमीरियावहकम्मं णाम ॥ २४ ॥

अब ईर्यापथकर्मका अधिकार है ॥ २३ ॥ वह छद्मस्थवीतरागोंके और सयोगिकेवलियोंके होता है । वह सब ईर्यापथकर्म है ॥ २४ ॥

ईर्याका अर्थ यहां योग है । जिस कर्मका पथ अर्थात् कारण एक मात्र योग ही रहता है उसको ईर्यापथकर्म जानना चाहिये । वह छद्मस्थवीतरागोंके उपशान्तकषाय व क्षीणकषाय इन दो गुणस्थानवर्ती जीवोंके तथा सयोगिकेवली जिनोंके होता है, अन्य संसारी प्राणियोंके वह सम्भव नहीं है; क्योंकि, उनके कर्मके कारण भूत योगके सिवाय यथा सम्भव कषाय एवं प्रमाद आदि भी पाये जाते हैं ।

जं तं तवोकम्मं णाम ॥ २५ ॥ तं सब्भंतरबाहिरं बारसविहं तं सव्वं तवोकम्मं णाम ॥ २६ ॥

अब तपःकर्मका अधिकार है ॥ २५ ॥ वह आभ्यन्तर और बाह्यके भेदसे बारह प्रकारका है । वह सब तपःकर्म है ॥ २६ ॥

जं तं किरियाकम्मं णाम ॥ २७ ॥ तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम ॥ २८ ॥

अब क्रियाकर्मका अधिकार है ॥ २७ ॥ आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन वार करना, तीन वार अवनति, चार वार सिर नवाना और बारह आवर्त, यह सब क्रियाकर्म है ॥ २८ ॥

यह क्रियास्वरूप कर्म आत्माधीन, पदाहिन, तिक्खुत्त, तियोणद, चतुःशिर और द्वादशावर्तके भेदसे छह प्रकारका है । उनमें परवशतासे रहित होकर जो केवल आत्मसापेक्ष क्रिया की जाती है उसका नाम आत्माधीन क्रियाकर्म है । वंदनाके समय गुरु, जिनदेव व जिनालयको प्रदक्षिणापूर्वक जो नमस्कार किया जाता है वह पदाहिण (प्रदक्षिण) क्रियाकर्म कहा जाता है । एकही दिनमें संध्या कालोंमें उक्त प्रदक्षिणा एवं नमस्कार आदिके तीन वार करनेका नाम तिक्खुत्त क्रियाधर्म है । उक्त वंदना आदि केवल तीन संध्याकालोंमें ही किये जाते हों, ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, अन्य समयमें उनका निषेध नहीं है, परन्तु उन संध्याकालोंमें वे नियमसे करने योग्य हैं; यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये । ओणदका अर्थ अवनमन या भूमिमें स्थित होना है । वह तीन वार किया जाता है- १. जिनदर्शन करके हर्षपूर्वक जिन भगवान्के आगे बैठना, २. पश्चात् उठ करके व जिनेन्द्रादिसे प्रार्थना करके पुनः बैठना, ३. तत्पश्चात् फिरसे उठते हुए सामायिक दण्डकसे आत्मशुद्धि करके शरीरादिसे ममत्वके परित्यागपूर्वक जिनगुणोंका चिन्तन आदि करते हुए फिरसे भी भूमिमें बैठना । सामायिकके आदिमें, उसकी समाप्तिमें, थोस्सामिदण्डकके प्रारम्भमें और उसके अन्तमें शिरको झुकाकर जो नमस्कार किया जाता है; उसका नाम चतुःशिर है । सामायिक एवं थोस्सामिदण्डकके आदि-अन्तमें जो मन, वचन और कायके बारह (४×३) विशुद्धिपरावर्तन वार होते हैं वे द्वादशावर्त कहे जाते हैं ।

जं तं भावकम्मं णाम ॥ २९ ॥ उवजुत्तो पाहुड-जाणगो तं सव्वं भावकम्मं णाम ॥

अब भावकर्मका अधिकार है ॥ २९ ॥ जो तद्विषयक उपयोगसे युक्त हो करके कर्मप्राभृतका ज्ञाता है वह सब भावकर्म है ॥ ३० ॥

एदेसिं कम्माणं केण कम्मेण पयदं ? समोदाणकम्मेण पयदं ॥ ३१ ॥

इन सब कर्मोंमेंसे यहां कौनसा कर्म प्रकृत है ? उनमें यहां समवधान कर्म प्रकृत है ॥

॥ इस प्रकार कर्मानियोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

५. पयडिअणियोगद्दारं

पयडि त्ति तत्थ इमाणि पयडीए सोलस अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥ पयडिणिक्खेवे पयडिणयविभासणदाए पयडिणामविहाणे पयडिदव्वविहाणे पयडिखेत्तविहाणे पयडिकालविहाणे पयडिभावविहाणे पयडिपच्चयविहाणे पयडिसामित्तविहाणे पयडिपयडिविहाणे पयडिगदिविहाणे पयडिअंतरविहाणे पयडिसण्णियासविहाणे पयडिपरिमाणविहाणे पयडिभागाभागविहाणे पयडिअप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

अब यहां महाकर्म प्रकृति प्राभृतके अन्तर्गत कृति आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंमें पांचवें प्रकृति अनुद्वारकी प्ररूपणा की जाती है। उसमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥ प्रकृतिनिक्षेप, प्रकृतिनयविभाषणता, प्रकृतिनामविधान, प्रकृतिद्रव्यविधान, प्रकृतिक्षेत्रविधान, प्रकृतिकालविधान, प्रकृतिभावविधान, प्रकृतिप्रत्ययविधान, प्रकृतिस्वामित्वविधान, प्रकृति-प्रकृतिविधान, प्रकृतिगतिविधान, प्रकृति-अन्तरविधान, प्रकृतिसंनिकर्षविधान, प्रकृतिपरिमाणविधान, प्रकृतिभागाभागविधान और प्रकृति-अल्पबहुत्व ॥ २ ॥

पयडिणिक्खेवे त्ति ॥ ३ ॥ चउव्विहो पयडिणिक्खेवो– णामपयडी ट्ठवणपयडी दव्वपयडी भावपयडी चेदि ॥ ४ ॥

उक्त सोलह अनुयोगद्वारोंमें प्रकृति निक्षेपका अधिकार है ॥ ३ ॥ वह प्रकृतिनिक्षेप चार प्रकारका है - नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति ॥ ४ ॥

पयडिणयविभासणदाए को णओ काओ पयडीओ इच्छदि ? ॥ ५ ॥

प्रकृतिनयविभाषणताकी अपेक्षा कौन नय किन प्रकृतियोंको स्वीकार करता है ? ॥ ५ ॥

णेगम-ववहार-संगहा सव्वाओ ॥ ६ ॥ उजुसुदो ट्ठवणपयडिं णेच्छदि ॥ ७ ॥ सद्दणओ णामपयडिं भावपयडिं च णेच्छदि ॥ ८ ॥

नैगम व्यवहार और संग्रह ये तीन नय सब प्रकृतियोंको स्वीकार करते हैं ॥ ६ ॥ ऋजुसूत्र नय स्थापनाप्रकृतिको नहीं स्वीकार करता ॥ ७ ॥ तथा शब्द नय नामप्रकृति और भावप्रकृति इन दोको ही स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

जा सा णामपयडी णाम सा जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, जीवस्स च, अजीवस्स च, जीवस्स च, अजीवाणं च, जीवाणं च, अजीवस्स च, जीवाणं च, अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि पयडि त्ति सा सव्वा णामपयडी णाम ॥ ९ ॥

इनमें जो नामप्रकृति है उसका स्वरूप इस प्रकार है - एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव तथा नाना जीव और नाना अजीव इस प्रकार इनके प्राभृतसे जिसका 'प्रकृति' ऐसा नाम करते हैं वह सब नामप्रकृति है ॥ ९ ॥

जा सा ठवणपयडी णाम सा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे ठवणाए ठविज्जंति पगदि त्ति सा सव्वा ठवणपयडी णाम ॥ १० ॥

जो वह स्थापनाप्रकृति है उसका स्वरूप इस प्रकार है— काष्ठकर्मोमें चित्रकर्मोमें, पोत्तकर्मोमें, लेप्यकर्मोमें, लयनकर्मोमें, शैलकर्मोमें, गृहकर्मोमें, भित्तिकर्मोमें, दन्तकर्मोमें, भेण्डकर्मोमें तथा अक्ष या वराटक एवं इनको आदि लेकर अन्य जो भी हैं उनमें जो 'यह प्रकृति है' इस प्रकार अभेदरूपसे स्थापना की जाती है वह सब स्थापना प्रकृति है ॥ १० ॥

जा सा दव्वपयडी णाम सा दुविहा— आगमदो दव्वपयडी चेव णोआगमदो दव्वपयडी चेव ॥ ११ ॥ जा सा आगमदो दव्वपयडी णाम तिस्से इमे अत्थाधियारा— ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं ॥ १२ ॥

द्रव्यप्रकृति दो प्रकारकी होती है— आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति ॥ ११ ॥ इनमें जो आगमद्रव्यप्रकृति है उसके ये अर्थाधिकार हैं— स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम ॥ १२ ॥

जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थुइ-धम्मकहा वा, जे चामण्णे एवमादिया ॥ १३ ॥ अणुवजोगा दव्वे त्ति कट्टु जावदिया अणुवजुत्ता दव्वा सा सव्वा आगमदो दव्वपयडी णाम ॥ १४ ॥

उक्त नौ आगमों विषयक जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति और धर्मकथा तथा इनको आदि लेकर और भी हैं वे सब प्रकृतिविषयक उपयोग हैं ॥ १३ ॥ जो जीव प्रकृतिप्राभृतको जानते हुए भी वर्तमानमें तद्विषयक उपयोगसे रहित हैं वे सब द्रव्य हैं, ऐसा समझकर जितने वे अनुपयुक्त द्रव्य हैं वे सब आगमद्रव्य प्रकृति कहे जाते हैं ॥१४॥

जा सा णोआगमदो दव्वपयडी णाम सा दुविहा— कम्मपयडी चेव णोकम्म-पयडी चेव ॥ १५ ॥ जा सा कम्मपयडी णाम सा थप्पा ॥ १६ ॥

नोआगमद्रव्यप्रकृति दो प्रकारकी है— कर्मप्रकृति और नोकर्मप्रकृति ॥ १५ ॥ उनमें जो कर्मप्रकृति है उसे इस समय स्थगित किया जाता है ॥ १६ ॥

जा सा णोकम्मपयडी णाम सा अणेयविहा ॥ १७ ॥ घड-पिढर-सरावारंजणो-लुंचणादीणं विविहभायणविसेसाणं मट्टिया पयडी, धाणतप्पणादीणं च जव-गोधूमा पयडी सा सव्वा णोकम्मपयडी णाम ॥ १८ ॥

दूसरे भेदरूप जो नोकर्मद्रव्य प्रकृति है वह अनेक प्रकारकी है ॥ १७ ॥ घट,

थाली, सकोरा, अरंजण और उलुंचण आदि अनेक प्रकारके भाजनविशेषोंकी प्रकृति मिट्टी है। धान और तर्पण आदिकी प्रकृति जौ और गेहूं है। यह सब नोकर्मप्रकृति हैं ॥ १८ ॥

जा सा थप्पा कम्मपयडी णाम सा अट्ठविहा– णाणावरणीयकम्मपयडी, एवं दंसणावरणीय-वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मपयडी चेदि ॥ १९ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मप्रकृति, इसी प्रकार दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मप्रकृति है ॥ १९ ॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ २० ॥ णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ– आभिणिबोहिय णाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ २१ ॥

ज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ २० ॥ ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं– आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ २१ ॥

जं तमाभिणिबोहियणाणावरणीयं णाम कम्मं तं चउव्विहं वा चउवीसदिविधं वा अट्ठावीसदिविधं वा बत्तीसदिविधं वा णादव्वाणि भवंति ॥ २२ ॥

आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म चार प्रकारका, चौबीस प्रकारका, अट्ठाईस प्रकारका और बत्तीस प्रकारका जानना चाहिये ॥ २२ ॥

चउव्विहं ताव ओग्गहावरणीयं ईहावरणीयं अवायावरणीयं धारणावरणीयं चेदि ॥ २३ ॥

उसके चार भेद ये हैं अवग्रहावरणीय, ईहावरणीय, अवायावरणीय और धारणावरणीय ॥

जं तं ओग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं दुविहं– अत्थोग्गहावरणीयं चेव वंजणोग्गहावरणीयं चेव ॥ २४ ॥ जं तं अत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं थप्पं ॥ २५ ॥

उनमें अवग्रहावरणीय कर्म दो प्रकारका है– अर्थावग्रहावरणीय और व्यञ्जनावग्रहावरणीय ॥ २४ ॥ जो अर्थावग्रहावरणीय कर्म है उसे इस समय स्थगित किया जाता है ॥ २५ ॥

जं तं वंजणोग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं चउव्विहं– सोदिंदियवंजणोग्गहावरणीयं घाणिंदियवंजणोग्गहावरणीयं जिब्भिंदियवंजणोग्गहावरणीयं फासिंदियवंजणोग्गहावरणीयं चेव ॥ २६ ॥

जो व्यंजनावग्रहावरणीय कर्म है वह चार प्रकारका है– श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरणीय, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरणीय, जिह्वेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरणीय और स्पर्शनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरणीय ॥

जं तं थप्पमत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ २७ ॥ चक्खिंदियअत्थोग्गहावरणीयं सोदिंदियअत्थोग्गहावरणीयं घाणिंदियअत्थोग्गहावरणीयं जिब्भिंदियअत्थो-

ग्गहावरणीयं फासिंदियअत्थोग्गहावरणीयं णोइंदियअत्थोग्गहावरणीयं । तं सव्वं अत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं ॥ २८ ॥

जिस अर्थावग्रहावरणीय कर्मको पूर्वमें स्थगित किया गया था वह छह प्रकारका है ॥२७॥ जैसे– चक्षुइन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय, श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय, जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रहावरणीय, स्पर्शनेन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय और नोइन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय; यह सब अर्थावग्रहावरणीय कर्म है ॥ २८ ॥

जं तं ईहावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ २९ ॥ चक्खिंदिय-ईहावरणीयं सोइंदिय-ईहावरणीयं घाणिंदिय-ईहावरणीयं जिब्भिंदिय-ईहावरणीयं फासिंदिय-ईहावरणीयं णोइंदिय-ईहावरणीयं तं सव्वमीहावरणीयं णाम कम्मं ॥ ३० ॥

जो ईहावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है ॥ २९ ॥ जैसे– चक्षुइन्द्रिय-ईहावरणीय, श्रोत्रेन्द्रिय-ईहावरणीय, घ्राणेन्द्रिय-ईहावरणीय, जिह्वेन्द्रिय-ईहावरणीय, स्पर्शनेन्द्रिय-ईहावरणीय और नोइन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म; यह सब ईहावरणीय कर्म है ॥ ३० ॥

जं तं आवायावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ ३१ ॥ चक्खिंदियआवायावरणीयं सोदिंदियआवायावरणीयं, घाणिंदियआवायावरणीयं, जिब्भिंदियआवायावरणीयं फासिंदियआवायावरणीयं, णोइंदियआवायावरणीयं । तं सव्वं आवायावरणीयं णाम कम्मं ॥

जो आवायावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है ॥ ३१ ॥ जैसे– चक्षुइन्द्रियावायावरणीय, श्रोतेन्द्रियावायावरणीय, घ्राणेन्द्रियावरणीय, जिह्वेन्द्रियावरणीय, स्पर्शनेन्द्रियावरणीय और नोइन्द्रियावरणीय कर्म; यह सब अवायावरणीय कर्म है ॥ ३२ ॥

जं तं धारणावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ ३३ ॥ चक्खिंदियधारणावरणीयं सोदिंदियधारणावरणीयं घाणिंदियधारणावरणीयं जिब्भिंदियधारणावरणीयं णोइंदियधारणावरणीयं तं सव्वं धारणावरणीयं णाम कम्मं ॥ ३४ ॥

जो धारणावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है ॥ ३३ ॥ जैसे– चक्षुइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, श्रोत्रइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, घ्राणइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, जिह्वाइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, स्पर्शनइन्द्रियधारणावरणीय कर्म और नोइन्द्रियधारणावरणीय कर्म; यह सब धारणावरणीय कर्म है ॥ ३४ ॥

एवमाभिणिबोहियणाणावरणीयस्स कम्मस्स चउव्विहं वा चदुवीसदिविधं वा अट्ठावीसदिविधं वा बत्तीसदिविधं वा अडदालीसदिविधं वा चोदालसदविधं वा अट्ठसट्ठि-सदविधं वा बाणउदि-सदविधं वा बेसद-अट्ठासीदिविधं वा तिसद-छत्तीसविधं वा तिसद-चुलसीदिविधं वा णादव्वाणि भवंति ॥ ३५ ॥

इस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्मके चार भेद, चौबीस भेद, अट्ठाईस भेद,

बत्तीस भेद, अड़तालीस भेद, एक सौ चवालीस भेद, एक सौ अड़सठ भेद, एक सौ बानवे भेद, दो सौ अठासी भेद, तीन सौ छत्तीस भेद और तीन सौ चौरासी भेद ज्ञातव्य हैं ॥ ३५ ॥

मूलमें मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार प्रकारका है। इनमें प्रत्येक चूंकि पांच इन्द्रियों और मनके आश्रयसे उत्पन्न होता है अत एव ४ को ६ से गुणित करनेपर उसके २४ भेद हो जाते हैं। परन्तु व्यंजनावग्रह चूंकि मन और चक्षुइन्द्रियके बिना चार ही इन्द्रियोंसे उत्पन्न होता है, अतः उसके ४ ही भेद होते हैं। उनको उक्त २४ भेदोंमें मिलानेपर उसके २८ भेद हो जाते हैं। इनमें पूर्वोक्त ४ मूल भेदोंके मिला देनेपर उसके ३२ भेद होते हैं। उक्त ४, २४, २८ और ३२ भेदोंमें प्रत्येक चूंकि बहु आदि ६ पदार्थोंको और उनके विपक्षभूत एक व एकविध आदिके साथ १२ पदार्थोंको ग्रहण किया करते हैं, अत एव उनको क्रमशः ६ और १२ से गुणित करनेपर सूत्रोक्त सब भेद इस प्रकारसे प्राप्त हो जाते हैं— ४×६=२४, २४×६=१४४, २८×६=१६८, ३२×६=१९२; ४×१२=४८, २४×१२=२८८, २८×१२=३३६, ३२×१२=३८४.

तस्सेव आभिणिबोहियणाणावरणीयकम्मस अण्णा परूवणा कायव्वा भवदि ॥३६॥

उसी आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्मकी अन्य प्ररूपणा की जाती है।

ओग्गहे योदाणे साणे अवलंबणा मेहा ॥ ३७ ॥ ईहा ऊहा अपोहा मग्गणा गवेसणा मीमांसा ॥ ३८ ॥ अवायो ववसायो बुद्धी विण्णाणी आउंडी पच्चाउंडी ॥ ३९ ॥ धरणी धारणा ट्ठवणा कोट्ठा पदिट्ठा ॥ ४० ॥ सण्णा सदी मदी चिंता चेदि ॥ ४१ ॥

अवग्रह, अवधान, सान, अवलम्बना और मेधा; ये अवग्रहके पर्याय वाची नाम हैं ॥३७॥ ईहा, ऊहा, अपोहा, मार्गणा, गवेषणा और मीमांसा; ये ईहाके समानार्थक नाम हैं ॥ ३८ ॥ अवाय, व्यवसाय, बुद्धि, विज्ञप्ति, आमुण्डा और प्रत्यामुण्डा; ये अवायके पर्याय नाम हैं ॥ ३९ ॥ धरणी, धारणा, स्थापना, कोष्ठा और प्रतिष्ठा; ये धारणाके एकार्थ नाम हैं ॥ ४० ॥ संज्ञा, स्मृति, मति और चिन्ता; ये आभिनिबोधिक ज्ञानके एकार्थवाची नाम हैं ॥ ४१ ॥

एवमाभिणिबोहियणाणावरणीयस्स कम्मस्स अण्णा परूवणा कदा होदि ॥ ४२ ॥

इस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्मकी अन्य प्ररूपणा की गई है ॥ ४२ ॥

सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ४३ ॥

श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ४३ ॥

अवग्रहादिरूप चार प्रकारके मतिज्ञानके द्वारा जाने गये पदार्थके सम्बन्धसे जो अन्य पदार्थका बोध होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। वह दो प्रकारका है शब्दलिंगज और अशब्द-लिंगज। इनमें धूमरूप लिंग (साधन) से जो अग्निका परिज्ञान हुआ करता है उसे अशब्दलिंगज तथा शब्दके आश्रयसे जो अर्थका बोध होता है उसे शब्दलिंगज श्रुतज्ञान कहा जाता है। जो

साध्यके अभावमें कभी नहीं पाया जाता है, उसे लिंग (हेतु) जानना चाहिये। इस श्रुतज्ञानका जो आवरण करता है उसे श्रुतज्ञानावरण कहा जाता है।

सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स संखेज्जाओ पयडीओ ॥ ४४ ॥ जावदियाणि अक्खराणि अक्खरसंजोगा वा ॥ ४५ ॥

श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी संख्यात प्रकृतियां हैं ॥ ४४ ॥ अथवा जितने अक्षर हैं और जितने अक्षरसंयोग हैं उतनी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियां हैं ॥ ४५ ॥

तेसिं गणिदगाधा भवदि–

संजोगावरणट्ठं चउसट्ठिं थावए दुवे रासिं।
अण्णोण्णसमब्भासो रूवूणं णिद्दिसे गणिदं ॥ ४६ ॥

उन अक्षरसंयोगोंकी गणनामें यह गाथा उपयोगी है– संयोगावरणोंके प्रमाण को लानेके लिये चौसठ संख्याप्रमाण दो राशि स्थापित करें। पश्चात् उनका परस्पर गुणा करनेपर जो लब्ध हो उसमेंसे एक कम करनेपर समस्त संयोगाक्षरोंका प्रमाण होता है ॥ ४६ ॥

अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ और औ; ये नौ स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके भेदसे २७ (९×३) होते हैं। क वर्ग ५, च वर्ग ५, ट वर्ग ५, त वर्ग ५ और प वर्ग ५, तथा अन्तस्थ (य, र, ल, व) ४, और ऊष्म (श, ष, स, ह) ४; इस प्रकार व्यंजनाक्षर ३३ हैं। इसके अतिरिक्त अयोगवाह ४ (अं, अः ≍क ≍प) हैं। इन सबका योग ६४ (स्वर २७ + व्यंजन ३३ + अयोगवाह ४=६४) होता है। इनके आश्रयसे श्रुतज्ञान और तदावरणके भी ६४ भेद होते हैं। उपर्युक्त ६४ अक्षरोंके एक-द्विसंयोगी आदि भंग चूंकि १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने होते हैं, अत एव श्रुतज्ञान और तदावरणके भी इतने ही भेद जानना चाहिये।

तस्सेव सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स वीसदिविधा परूवणा कायव्वा भवदि ॥४७॥

उसी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी वीस प्रकारकी प्ररूपणा की जाती है ॥ ४७ ॥

पज्जय-अक्खर-पद-संघादय- पडिवत्ति-जोगदाराइं।
पाहुडपाहुड-वत्थू पुव्व समासा य बोद्धव्वा ॥ ४८ ॥

पज्जयावरणीयं पज्जयसमासावरणीयं अक्खरावरणीयं अक्खरसमासावरणीयं पदावरणीयं पदसमासावरणीयं संघादावरणीयं संघादसमासावरणीयं पडिवत्तिआवरणीयं पडिवत्तिसमासावरणीयं अणियोगद्दारावरणीयं अणियोगद्दारसमासावरणीयं पाहुडपाहुडावरणीयं पाहुडपाहुडसमासावरणीयं पाहुडावरणीयं पाहुडसमासावरणीयं वत्थुआवरणीयं वत्थुसमासावरणीयं पुव्वावरणीयं पुव्वसमासावरणीयं चेदि ॥ ४९ ॥

पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृत-

समास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास; ये श्रुतज्ञानके बीस भेद जानने चाहिये ॥ ४८ ॥ तथा पर्यायावरणीय, पर्यायसमासावरणीय, अक्षरावरणीय, अक्षरसमासावरणीय, पदावरणीय, पदसमासावरणीय, संघातावरणीय, संघातसमासावरणीय, प्रतिपत्ति-आवरणीय, प्रतिपत्तिसमासावरणीय, अनुयोगद्वारावरणीय, अनुयोगद्वारसमासावरणीय, प्राभृतप्राभृतावरणीय, प्राभृतप्राभृतसमासावरणीय, प्राभृतावरणीय, प्राभृतसमासावरणीय, वस्तु-आवरणीय, वस्तुसमासावरणीय, पूर्वावरणीय और पूर्वसमासावरणीय; ये श्रुतज्ञानावरणके बीस भेद हैं ॥ ४९ ॥

तस्सेव सुदणाणावरणीयस्स अण्णं परूवणं कस्सामो ॥५०॥ पावयणं पवयणीयं पवयणट्ठो गदीसु मग्गणदा आदा परंपरलद्धी अणुत्तरं पवयणं पवयणी पवयणद्धा पवयणसण्णियासो णयविधी णयंतरविधी भंगविधी भंगविधिविसेसो पुच्छाविधि पुच्छाविधिविसेसो तच्चं भूदं भव्वं भवियं अवितथं अविहदं वेदणायं सुद्धं सम्माइट्ठी हेदुवादो णयवादो पवरवादो मग्गवादो सुदवादो परवादो लोइयवादो लोगुत्तरीयवादो अग्गं मग्गं जहाणुमग्गं पुव्वं जहाणुपुव्वं पुव्वादिपुव्वं चेदि ॥ ५१ ॥

उसी श्रुतज्ञानावरणकी अन्य प्ररूपणा की जाती है ॥ ५० ॥ प्रावचन, प्रवचनीय, प्रवचनार्थ, गतियोंमें मार्गणता, आत्मा, परम्परालब्धि, अनुत्तर, प्रवचन, प्रवचनी, प्रवचनाद्धा, प्रवचन-संनिकर्ष, नयविधि, नयान्तरविधि, भंगविधि, भंगविधिविशेष, पृच्छाविधि, पृच्छाविधिविशेष, तत्त्व, भूत, भव्य, भविष्यत्, अवितथ, अविहत, वेद, न्याय्य, शुद्ध, सम्यग्दृष्टि, हेतुवाद, नयवाद, प्रवरवाद, मार्गवाद, श्रुतवाद, परवाद, लौकिकवाद, लोकोत्तरीयवाद, अग्र्य, मार्ग, यथानुमार्ग, पूर्व, यथानुपूर्व और पूर्वातिपूर्व; ये इकतालीस श्रुतज्ञानके पर्यायनाम हैं ॥ ५१ ॥ इनका विशेष अर्थ धवला (पु. १३, पृ. २८०--८९) से जानना चाहिये ।

ओहिणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ५२ ॥

अवधिज्ञानावरण कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ५२ ॥

ओहिणाणावरणीयस्स कम्मस्स असंखेज्जाओ पयडीओ ॥ ५३ ॥

अवधिज्ञानावरण कर्मकी असंख्यात प्रकृतियां हैं ॥ ५३ ॥

तं च ओहिणाणं दुविहं भवपच्चइयं चेव गुणपच्चइयं चेव ॥ ५४ ॥ जं तं 'भवपच्चइयं' तं देव-णेरइयाणं ॥ ५५ ॥ जं तं गुणपच्चइयं तं तिरिक्ख-मणुस्साणं ॥ ५६ ॥

वह अवधिज्ञान दो प्रकारका है— भवप्रत्यय, अवधिज्ञान और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान ॥ ५४ ॥ जो वह भवप्रत्यय अवधिज्ञान है वह देवों और नारकियोंके होता है ॥ ५५ ॥ तथा जो वह गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है वह तिर्यंचों और मनुष्योंके होता है ॥ ५६ ॥

तं च अणेयविहं— देसोही परमोही सव्वोही हायमाणयं वड्ढमाणयं अवट्ठिदं अणवट्ठिदं अणुगामी अणणुगामी सप्पडिवादी अप्पडिवादी एयक्खेत्तमणेयक्खेत्तं ॥ ५७ ॥

वह अनेक प्रकारका है– देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, हीयमान, वर्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, सप्रतिपाती अप्रतिपाती, एकक्षेत्र और अनेक क्षेत्र ॥ ५७ ॥

खेत्तदो ताव अणेयसंठाणसंठिदा ॥ ५८ ॥ सिरिवच्छ-कलस-संख-सोत्थिय-णंदावत्तादीणि संठाणाणि णादव्वाणि भवंति ॥ ५९ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमको प्राप्त जीवप्रदेश अनेक आकारोंमें संस्थान स्थित होते हैं ॥ ५८ ॥ वे श्रीवत्स, कलश, शंख, स्वस्तिक (सांथिया) और नन्दावर्त आदि आकार जानने योग्य हैं ॥ ५९ ॥

कालदो ताव समयावलिय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पलिदोवम-सागरोवमादओ विधओ णादव्वा भवंति ॥ ६० ॥

कालकी अपेक्षा तो समय, आवलि, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम और सागरोपम आदि ज्ञातव्य हैं ॥ ६० ॥

ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणिगोदजीवस्स ।
जद्देही तद्देही जहण्णिया खेत्तदो ओही ॥ ६१ ॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जितनी जघन्य अवगाहना होती है उतना अवधिज्ञान जघन्य क्षेत्र है ॥ ६१ ॥

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा ।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥ ६२ ॥

जहां अवधिज्ञानका क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । वहां काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । जहां क्षेत्र घनांगुलके संख्यातवां भाग है वहां काल आवलिके संख्यातवें भाग है । जहां क्षेत्र घनांगुलप्रमाण है वहां काल कुछ कम एक आवलि प्रमाण है । जहां काल एक आवलि प्रमाण है वहां क्षेत्र घनांगुलपृथक्त्व प्रमाण है ॥ ६२ ॥

आवलियपुधत्तं घणहत्थो तह गाउअं मुहुत्तंतो ।
जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णवीसं तु ॥ ६३ ॥

जहां काल आवलिपृथक्त्व प्रमाण है वहां क्षेत्र घनहाथप्रमाण है । जहां क्षेत्र घनकोस प्रमाण है वहां काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । जहां क्षेत्र घनयोजन प्रमाण है वहां काल भिन्नमुहूर्त प्रमाण है । जहां काल कुछ कम एक दिवस प्रमाण है वहां क्षेत्र पच्चीस घनयोजन प्रमाण है ॥६३॥

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुअलोए वासपुधत्तं च रूजगम्मि ॥ ६४ ॥

जहां क्षेत्र घनरूप भरतवर्ष है वहां काल आधा मास है । जहां क्षेत्र घनरूप जम्बूदीप

है वहां काल साधिक एक मास है। जहां क्षेत्र घनरूप मनुष्यलोक है वहां काल एक वर्ष है। जहां क्षेत्र घनरूप रूचकवर द्वीप है वहां काल वर्षपृथक्त्व है ॥ ६४ ॥

संखेज्जदिमे काले दीव-समुद्दा हवंति संखेज्जा।
कालम्मि असंखेज्जे दीव-समुद्दा असंखेज्जा ॥ ६५ ॥

जहां काल संख्यात वर्ष प्रमाण होता है वहां क्षेत्र संख्यात द्वीप-समुद्र प्रमाण होता है और जहां काल असंख्यात वर्ष प्रमाण होता है वहां क्षेत्र असंख्यात द्वीप-समुद्र प्रमाण होता है ॥

कालो चदुण्ण वुड्ढी कालो भजिदव्वो खेत्तवुड्ढीए।
वुड्ढीए दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्तकाला दु ॥ ६६ ॥

काल चारोंकी वृद्धिको लिये हुए होता है– कालवृद्धिके होनेपर द्रव्य, क्षेत्र और भावकी वृद्धि नियमतः होती है। क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालकी वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती है। तथा द्रव्य और पर्यायकी वृद्धिके होनेपर क्षेत्र और कालकी वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती है ॥ ६६ ॥

तेया-कम्मसरीरं तेयादव्वं च भासदव्वं च।
बोद्धव्वमसंखेज्जा दीव-समुद्दा य वासा य ॥ ६७ ॥

जहां तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तैजसवर्गणा और भाषावर्गणा द्रव्य होता है वहां क्षेत्र घनरूप असंख्यात द्वीप-समुद्र और काल असंख्यात वर्ष मात्र होता है ॥ ६७ ॥

अभिप्राय यह है कि जो अवधिज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा तैजसशरीररूप पिण्डको ग्रहण करता है वह क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षस्वरूप प्रतीत व अनागत कालको विषय करता है। जो अवधिज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा कार्मणशरीरको ग्रहण करता है वह भी क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षस्वरूप अतीत एवं अनागत कालको ही विषय करता है, परन्तु विशेष इतना समझना चाहिये कि तैजस-शरीरको विषय करनेवाले उस अवधिज्ञानकी अपेक्षा इसका क्षेत्र और काल असंख्यातगुणा है। जो अवधिज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा विस्रसोपचय रहित एक तैजस वर्गणाको विषय करता है वह भी क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको तथा कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षोंको ही विषय करता है, परन्तु विशेषता यह है कि कार्मणशरीरको विषय करनेवाले अवधिज्ञानके क्षेत्र और कालकी अपेक्षा इसका क्षेत्र और काल असंख्यातगुणा है। जो अवधिज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा भाषा द्रव्य वर्गणाके एक स्कन्धको विषय करता है वह भी क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको तथा कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षोंको ही विषय करता है, परन्तु विशेषता इतनी है कि एक तैजस वर्गणाको विषय करनेवाले उपर्युक्त अवधिज्ञानके क्षेत्र और काल असंख्यातगुणे हैं। यहां अवधिज्ञानकी जो यह

द्रव्यके साथ क्षेत्र और कालकी प्ररूपणा की गई है वह तिर्यंच और मनुष्योंके आश्रयसे की गई है, यह विशेष समझना चाहिये ।

देवोंके अवधिज्ञानके विषयकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका गाथासूत्र प्राप्त होता है-

पणुवीस जोयणाणं ओही वेंतर-कुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोयणाणं जो दिसियाणं जहण्णोही ॥ ६८ ॥

व्यन्तर और भवनवासियोंका जघन्य अवधिज्ञान पच्चीस घनयोजन प्रमाण क्षेत्रको और ज्योतिषियोंका वह जघन्य अवधिज्ञान संख्यात घनयोजन प्रमाण क्षेत्रको विषय करता है ॥ ६८ ॥

व्यन्तर और भवनवासियोंका वह जघन्य अवधिज्ञान कालकी अपेक्षा कुछ कम एक दिनको विषय करता है । इतना यहां विशेष समझना चाहिये कि ज्योतिषी देवोंकी जघन्य अवधिज्ञान संख्यात घनयोजन प्रमाण क्षेत्रको विषय करता हुआ भी उक्त व्यन्तर और भवनवासियोंके क्षेत्रसे संख्यातगुणित क्षेत्रको विषय करता है । उनके कालकी अपेक्षा ज्योतिषियोंके अवधिज्ञानका काल अधिक है ।

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेस जोदिसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सं ओहिविसओ दु ॥ ६९ ॥

असुरकुमारोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषय असंख्यात करोड़ घनयोजन प्रमाण तथा ज्योतिषियों तक शेष देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषय असंख्यात हजार घनयोजन प्रमाण है ॥६९॥

दस प्रकारके भवनवासियोंमें असुरकुमारोंके अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात करोड़ घनयोजन प्रमाण है तथा शेष आठ प्रकारके व्यन्तर, नौ प्रकारके भवनवासी और पांच प्रकारके ज्योतिषी देवोंके अवधिज्ञानका वह उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात हजार घनयोजन प्रमाण है । इनका अवधिज्ञान नीचेके क्षेत्रको अल्प मात्रामें तथा तिरछे क्षेत्रको अधिक मात्रामें ग्रहण करता है । असुरकुमारोंके अवधिज्ञानका काल उत्कृष्ट रूपसे असंख्यात वर्ष प्रमाण तथा शेष व्यन्तर, भवनवासी और ज्योतिषी देवोंके भी अवधिज्ञानका वह उत्कृष्ट काल असंख्यात वर्ष प्रमाण ही है । परन्तु विशेष इतना है कि असुरकुमारोंके उस उत्कृष्ट कालसे उनका यह उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा हीन है ।

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं तु सणक्कुमार-माहिंदा ।
तच्चं तु बम्ह-लंतय सुक्क-सहस्सारया चोत्थ ॥ ७० ॥

सौधर्म और ईशान कल्पके देव पहिली पृथिवी तक, सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देव दूसरी पृथिवी तक, ब्रम्ह और लान्तव कल्पके देव तीसरी पृथिवी तक, तथा शुक्र और सहस्रार कल्पके देव चौथी पृथिवी तक जानते हैं ॥ ७० ॥

यह अवधिज्ञानका क्षेत्र नीचेकी ओरका निर्दिष्ट किया गया है। उक्त देव अवधिज्ञानके द्वारा ऊपर अपने अपने विमानके शिखर पर्यन्त ही जानते हैं। उनके अवधिज्ञानके कालका प्रमाण ब्रम्ह-ब्रम्होत्तर कल्पतक क्रमसे असंख्यात वर्ष, पल्योपमके असंख्यातवें भाग, और पल्योपमके असंख्यातवें भाग, मात्र है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पसे ऊपर उपरिम ग्रैवेयक तक उक्त अवधिज्ञानके विषयभूत कालका प्रमाण कुछ कम पल्योपम मात्र है।

आणद-पाणदवासी तह आरण-अच्चुदा य जे देवा।
पस्संति पंचमखिदिं छट्ठिम गेवज्जया देवा॥ ७१॥

आनन्त-प्राण तक कल्पवासी और आरण-अच्युत कल्पवासी देव पांचवीं पृथिवी तक तथा ग्रैवेयकके देव छठी पृथिवी तक देखते हैं॥ ७१॥

सव्वं च लोगणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागं च॥ ७२॥

अनुत्तरोंमें रहनेवाले जो देव हैं वे सब ही लोकनालीको देखते हैं। ये सब देव अपने क्षेत्रके जितने प्रदेश हों उतनी बार अपने अपने कर्ममें मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका भाग देनेपर जो अन्तिम रूपगतपुद्गलद्रव्य लब्ध आता है उसे जानते हैं॥ ७२॥

इस प्रकार देशावधिके विषयभूत द्रव्य-क्षेत्रादिका निरूपण करके अब आगे परमावधिके विषयभूत उक्त द्रव्य-क्षेत्रादिकी प्ररूपणाके लिये आगेका गाथासूत्र प्राप्त होता है—

परमोहि असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि समयकालो दु।
रूवगद लहइ दव्वं खेत्तोवमअगणिजीवेहि॥ ७३॥

परमावधिज्ञानका क्षेत्र असंख्यात घनलोक प्रमाण और उसका समयरूप काल भी असंख्यात लोक प्रमाण है। वह द्रव्यकी अपेक्षा क्षेत्रोपम अग्निकायिक जीवोंके द्वारा परिच्छिन्न होकर प्राप्त हुए रूपगत द्रव्यको जानता है॥ ७३॥

यह परमावधिज्ञान संयतोंके ही होता है, असंयतोंके नहीं होता तथा उसका धारक जीव मिथ्यात्व एवं असंयतभावको कभी भी नहीं प्राप्त होता है। इससे यह भी समझना चाहिये कि परमावधि ज्ञानी जीव मर करके देवोंमें भी नहीं होता है, क्योंकि, वहां संयमका अभाव है। उसका उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात घनलोक प्रमाण तथा उत्कृष्ट काल भी असंख्यात लोक प्रमाण है। क्षेत्रसे अभिप्राय अग्निकायिक जीवोंके अवगाहनास्थानोंका है। इस क्षेत्रसे जिनकी तुलना की जाती है, उन अग्निकायिक जीवोंको क्षेत्रोपम जानना चाहिये। उनको शलाकारूपसे स्थापित कर उनके द्वारा परिच्छिन्न जो अनन्त परमाणु समारब्ध रूपगत द्रव्य प्राप्त होता है वह उसके विषयभूत उत्कृष्ट द्रव्यका प्रमाण जानना चाहिये।

तेयासरीरलंबो उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणिणिसु ।
गाउअ जहण्णओही णिरएसु अ जोयणुक्कस्सं ॥ ७४ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंके अवधिज्ञानका द्रव्य तैजसशरीरका संचयभूत उत्कृष्ट द्रव्य होता है। नारकियोंमें जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र गव्यूति प्रमाण और उत्कृष्ट क्षेत्र योजन प्रमाण है ॥ ७४ ॥

उक्कस्स माणुसेसु य माणुस-तेरिच्छए जहण्णोही ।
उक्कस्स लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमपडिवादी ॥ ७५ ॥

उत्कृष्ट अवधिज्ञान मनुष्योंके तथा जघन्य अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यंच दोनोंके होता है। उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र लोक प्रमाण है। यह प्रतिपाती है, इससे आगेके अवधिज्ञान अप्रतिपाती हैं ॥ ७५ ॥

अभिप्राय यह है कि उत्कृष्ट अवधिज्ञान देव, नारकी और तिर्यंचोंके नहीं होता; किन्तु वह मनुष्योंके और उनमें भी महर्षियोंके ही होता है, न कि साधारण मनुष्योंके। जघन्य अवधिज्ञान देव व नारकियोंके नहीं होता, किन्तु मनुष्य व तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंके ही होता है। औदारिक शरीरमें एक घनलोकका भाग देनेपर जो प्राप्त हो वह जघन्य अवधिके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण होता है। क्षेत्र उसका जघन्य अवगाहना मात्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग है। इस जघन्य अवधिज्ञानके विषयभूत कालका प्रमाण आवलिका असंख्यातवां भाग है। मनुष्योंमें उत्कृष्ट अवधिज्ञानका द्रव्य एक परमाणु तथा उसका क्षेत्र व काल दोनों असंख्यात लोक मात्र है।

देशावधिके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण लोक और कालका प्रमाण एक समय कम पल्य है। देशावधिज्ञानी जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जानेपर चूंकि उसका उसी भवमें विनाश पाया जाता है, अतः वह प्रतिपाती है। किन्तु परमावधि और सर्वावधि ये दोनों अवधिज्ञान नष्ट न होकर चूंकि जीवके केवलज्ञानकी प्राप्ति होने तक अवस्थित रहते हैं, अत एव ये दोनों ज्ञान अप्रतिपाती हैं। इस प्रकार जघन्यसे उत्कृष्ट तक जितने उस अवधिज्ञानके विकल्प सम्भव हैं उतनी अवधिज्ञानावरणीयकी प्रकृतियां समझना चाहिये।

मणपज्जवणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ७६ ॥ मणपज्जणाणावरणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ– उजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं चेव विउलमदि मणपज्जवणाणावरणीयं चेव ॥ ७७ ॥

मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ७६ ॥ मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं– ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय ॥

जं तं उजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं तं तिविहं– उजुगं मणोगदं जाणदि उजुगं वचिगदं जाणदि उजुगं कायगदं जाणदि ॥ ७८ ॥

जो वह ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञानावरणीय कर्म है वह तीन प्रकारका है उसके द्वारा आव्रियमाण ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञान ऋजुमनोगत अर्थको जानता है, ऋजुवचनगत अर्थको जानता है और ऋजुकायगत अर्थको जानता है ॥ ७८ ॥

यथार्थ मन, वचन और कायके व्यापारका नाम ऋजु तथा संशय, विपर्यय व अनध्यवसायरूप मन, वचन एवं कायके व्यापारका नाम अनृजु है। इनमें अचिन्तन अथवा अर्ध चिन्तनको अनध्यवसाय, अस्थिर प्रत्ययको संशय और अयथार्थ चिन्तनको विपर्यय कहा जाता है। यह ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञान जो ऋजुस्वरूपसे मनको प्राप्त अर्थ उसको ही जानता है, अनृजु मनोगत अर्थको अचिन्तित, अर्धचिन्तित अथवा विपरीत स्वरूपसे चिन्तित अर्थको– नहीं जानता है।

इस प्रकार ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञान चूंकि तीन प्रकारका है अत एव उसका आवारक ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञानावरण भी तीन प्रकारका है, यह अभिप्राय समझना चाहिये।

मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता जीविद-मरणं लाहालाहं सुह-दुक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं कव्वडविणासं मंडबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अइवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठि दुवुट्ठि सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेम-भय-रोग कालसंजुत्ते अत्थे वि जाणदि ॥ ७९ ॥

मनके द्वारा मानसको जानकर मन:पर्यायज्ञान कालसे विशेषित दूसरोंकी संज्ञा, स्मृति, मति, चिन्ता, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, सुखदु:ख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, खेट विनाश, कर्वटविनाश, मटम्बविनाश, पट्टनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुवृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेत्र-अक्षेत्र, भय और रोग रूप पदार्थोंको भी जानता है ॥ ७९ ॥

मन शब्दसे यहां कार्यमें कारणका उपचार करके मतिज्ञानका ग्रहण किया गया है। अभिप्राय यह कि ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञानी जीव मतिज्ञानसे दूसरोंके मनको ग्रहण करके मन:पर्ययज्ञानके द्वारा उस मनमें स्थित संज्ञा व स्मृति आदिको जानता है।

किर्चिभूओ–अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि णो अवत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि ॥ ८० ॥

उक्त ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञानके विषयभूत पदार्थकी प्ररूपणा फिरसे भी कुछ की जाती है– व्यक्तमनवाले अपने और दूसरे जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको जानता है, अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको नहीं जानता ॥ ८० ॥

'व्यक्त' का अर्थ यहां संशय, विपर्यय व अनध्यवसायसे रहित तथा 'मन' का अर्थ कार्यमें कारणका उपचार करनेसे चिन्ता अभीष्ट है। अत एव अभिप्राय यह हुआ कि जिनका चिन्तन संशयादिसे रहित सरल है ऐसे स्वयं और दूसरे जीवों सम्बन्धी वस्त्वन्तरको वह ऋजुमति-मन:पर्यय जानता है; किन्तु अव्यक्त मनवाले जीवोंके मनोगत वस्तुको नहीं जानता है। यहां

'एए छच्च समाणा' इस प्राकृत नियमके अनुसार णकारवर्ती अकारके दीर्घ हो जानेसे 'वत्तमाणाणं' ऐसा निष्पन्न हुआ है। अथवा, प्रकृत 'वत्तमाणाणं' पदका अर्थ 'वर्तमान जीवोंका' ऐसा भी किया जा सकता है। तदनुसार अभिप्राय यह होगा कि उक्त ऋजुमति-मनःपर्ययज्ञान वर्तमान जीवोंके वर्तमान मनोगत तीनों कालों सम्बन्धी वस्तुको जानता है, अतीत व अनागत मनोगत वस्तुको नहीं जानता है।

कालदो जहण्णेण दो-तिण्णिभवग्गहणाणि ॥८१॥ उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि ॥

कालकी अपेक्षा जघन्यसे वह दो-तीन भवोंको जानता है ॥ ८१ ॥ उत्कर्षसे वह सात और आठ भवोंको जानता है ॥ ८२ ॥

अभिप्राय यह है कि जघन्यसे वह वर्तमान भवग्रहणके विना दो भवोंको तथा वर्तमान भवग्रहणके साथ तीन भवग्रहणोंको जानता है। इसी प्रकार उत्कर्षसे वह वर्तमान भवग्रहणके विना सात भवग्रहणोंको तथा वर्तमान भवग्रहणके साथ आठ भवग्रहणोंको जानता है।

जीवाणं गदिमागदिं पदुप्पादेदि ॥ ८३ ॥

जीवोंकी गति और आगतिको जानता है ॥ ८३ ॥

अभिप्राय यह कि वह उपर्युक्त कालमें जीवोंकी गति-आगति आदिको जानता है।

खेत्तदो तावं जहण्णेण गाउवपुधत्तं उक्कस्सेण जोयणपुधत्तस्स अब्भंतरदो, णो बहिद्धा ॥ ८४ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा वह जघन्यसे गव्यूतिपृथक्त्व प्रमाण क्षेत्र और उत्कर्षसे योजनपृथक्त्व प्रमाण क्षेत्रके भीतरकी बातको जानता है, इससे बाहरकी बातको नहीं जानता है ॥ ८४ ॥

तं सव्वमुजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं ॥ ८५ ॥

वह सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ८५ ॥

अभिप्राय यह कि जो कर्म उस सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानको आवृत्त करता है वह सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म कहा जाता है।

जं तं विउलमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं– उज्जुगमणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगमणुज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगमणुज्जुगं कायगदं जाणदि ॥

जो वह विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है– ऋजुमनोगतको जानता है, अनृजुमनोगतको जानता है, ऋजुवचनगतको जानता है, अनृजुवचनगतको जानता है, ऋजुकायगतको जानता है और अनृजुकायगतको जानता है ॥ ८६ ॥

पूर्वके समान यहां भी विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीयसे विपुलमतिमनःपर्ययका ग्रहण समझना चाहिये।

मणेण माणसं पडिविंदइत्ता ॥ ८७ ॥ परेसिं सण्णा सदि मदि जीविद-मरणं लाहालाहं सुह-दुःक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं कव्वडविणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अदिवुट्टि अणावुट्टि सुवुट्ठि दुवुट्ठि सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेमं भयरोग कालसंपजुत्ते अत्थे जाणदि ॥ ८८ ॥

मन अर्थात् मतिज्ञानसे मनोवर्गणारूप स्कन्धोंसे निर्मित मनको अथवा मतिज्ञानके विषयको ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ८७ ॥ इस विपुलमतिमनःपर्ययके द्वारा जीव दूसरे जीवोंकी कालसे विशेषित संज्ञा, स्मृति, मति, चिन्ता, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, खेटविनाश, कर्वटविनाश, मडम्बविनाश, पट्टनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेत्र-अक्षेत्र, भय और रोग रूप इन अर्थोंको जानता है ॥ ८८ ॥

किंचि भूओ– अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि अवत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि ॥ ८९ ॥

उसकी विषयप्ररूपणा कुछ और भी की जाती है- वह व्यक्त मनवाले स्वयं अपने और दूसरे जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको जानता है, तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको भी जानता है ॥ ८९ ॥

कालदो ताव जहण्णेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि ॥ ९० ॥ जीवाणं गदिमागदिं पदुप्पादेदि ॥ ९१ ॥

वह कालकी अपेक्षा जघन्यसे सात-आठ भवोंको और उत्कर्षसे असंख्यात भवोंको जानता है ॥ ९० ॥ वह इतने कालवर्ती जीवोंकी गति और आगति आदिको जानता है ॥ ९१ ॥

खेत्तदो ताव जहण्णेण जोयणपुधत्तं ॥ ९२ ॥ उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो णो बहिद्धा ॥ ९३ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा वह जघन्यसे योजनपृथक्त्व प्रमाण क्षेत्रगत अर्थको जानता है ॥ ९२ ॥ तथा उत्कर्षसे वह मानुषोत्तर शैलके भीतर स्थित जीवोंके त्रिकालगोचर मनोगत अर्थको जानता है, उससे बाहर नहीं जानता है ॥ ९३ ॥

तं सव्वं विउलमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं ॥ ९४ ॥

यह सब उक्त विपुलमतिमनःपर्ययको आवृत करनेवाला विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ९४ ॥

केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ९५ ॥ केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स एया चेव पयडी ॥९६॥ तं च केवलणाणं सगलं संपुण्णं असवत्तं ॥९७॥

केवलज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ ९५ ॥ केवलज्ञानावरणीयकी एक ही प्रकृति है ॥९६॥ वह केवलज्ञान सकल अखण्ड है, सम्पूर्ण है, और असपत्न विपक्षसे रहित है ॥

सइं भयवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुर-माणुसस्स लोगस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ड्ढिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं माणो माणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मंसमं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति ॥ ९८ ॥ केवलणाणं ॥ ९९ ॥

स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञानसे देखनेवाले भगवान् केवली देवलोक, असुरलोक और मनुष्यलोककी आगति, गति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा जीवादि द्रव्योंका संयोग) अनुभाग, तर्क, कला, मन, मानसिक (मनसे चिन्तित अर्थ) मुक्त, कृत, प्रतिसेवित, आदिकर्म, (द्रव्योंकी सादिता) अरहःकर्म, (अनादिता,) सब लोकों, सब जीवों और सब भावोंको सम्यक् प्रकारसे युगपत् जानते हैं, देखते हैं, और विहार करते हैं ॥ ९८ ॥ ऐसा वह केवलज्ञान है ॥ ९९ ॥

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १०० ॥ दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ– णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥१०१॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ १०२ ॥

दर्शनावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १०० ॥ दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियां हैं– निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ॥ १०१ ॥ उसकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १०३ ॥ वेयणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ– सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव । एवडियाओ पयडीओ ॥ १०४ ॥

वेदनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ १०३ ॥ वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं– सातावेदनीय और असातावेदनीय उसकी इतनी ही प्रकृतियां होती हैं ॥ १०४ ॥

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १०५ ॥ मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीस पयडीओ ॥ १०६ ॥ तं च मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चेव चरित्तमोहणीयं चेव ॥ १०७ ॥

मोहनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ १०५ ॥ मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां है ॥ १०६ ॥ वह मोहनीय कर्म दो प्रकारका है– दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ॥ १०७ ॥

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधदो एयविहं ॥ १०८ ॥ तस्स संतकम्मं पुण तिविहं– सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं ॥ १०९ ॥

जो वह दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है ॥ १०८ ॥ किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकारका है– सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ १०९ ॥

जं तं चरित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं– कसायवेदणीयं णोकसायवेयणीयं चेव ॥ ११० ॥ जं तं कसायवेयणीयं कम्मं तं सोलसविहं– अणंताणुबंधि कोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोहं, पच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोहं, कोह-संजलणं, माणसंजलणं, मायासंजलणं, लोभसंजलणं चेदि ॥ १११ ॥

जो वह चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है– कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय ॥ ११० ॥ जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है– अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ॥ १११ ॥

जं तं णोकसायवेयणीयं कम्मं तं णवविहं– इत्थिवेद पुरिसवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा चेदि ॥ ११२ ॥ एवडियाओ पयडीओ ॥ ११३ ॥

जो नोकषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है– स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसंकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ॥ ११२ ॥ नोकषायवेदनीयकी इतनी प्रकृतियां हैं ॥ ११३ ॥

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ११४ ॥ आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडिओ– णिरयाउअं तिरिक्खाउअं मणुस्साउअं देवाउअं चेदि । एवडियाओ पयडीओ ॥ ११५ ॥

आयुकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ११४ ॥ आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं नारकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु । उसकी इतनी प्रकृतियां होती हैं ॥ ११५ ॥

णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ११६ ॥ णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडिणामाणि– गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्विणामं अगुरुगलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदि तस-थावर बादर-सुहुम पज्जत्त-अपज्जत्त पत्तेय-साहारणसरीर थिराथिर सुहासुह सुभग-दुभग सुस्सर-दुस्सर, आदेज्ज-अणादेज्ज जसकित्ति-अजसकित्ति णिमिण तित्थयरणामं चेदि ॥ ११७ ॥

नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ११६ ॥ नामकर्मकी ब्यालीस पिण्डप्रकृतियां हैं– गतिनामकर्म, जातिनामकर्म, शरीरनामकर्म, शरीरबन्धननामकर्म, शरीरसंघातनामकर्म, शरीरसंस्थान-नामकर्म, शरीरांगोपांगनामकर्म, शरीरसंहनननामकर्म, वर्णनामकर्म, गन्धनामकर्म, रसनामकर्म, स्पर्श-नामकर्म, आनुपूर्वीनामकर्म, अगुरुलघुनामकर्म, उपघातनामकर्म, परघातनामकर्म, उच्छ्वासनामकर्म,

आतापनामकर्म, उद्योतनामकर्म, विहायोगतिनामकर्म, त्रसनामकर्म, स्थावरनामकर्म, बादरनामकर्म, सूक्ष्मनामकर्म, पर्याप्तनामकर्म, अपर्याप्तनामकर्म, प्रत्येकशरीरनामकर्म, साधारणशरीरनामकर्म, स्थिरनामकर्म, अस्थिरनामकर्म, शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, दुर्भगनामकर्म, सुस्वरनामकर्म, दुस्वरनामकर्म, आदेयनामकर्म, अनादेयनामकर्म, यशःकीर्तिनामकर्म, अयशःकीर्तिनामकर्म, निर्माणनामकर्म और तीर्थंकरनामकर्म ॥ ११८ ॥

जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं– णिरयगइणामं तिरिक्खगइणामं मणुस्सगदिणामं देवगदिणामं ॥ ११९ ॥

जो वह गतिनामकर्म है वह चार प्रकारका है – नरकगति नामकर्म, तिर्यञ्चगति नामकर्म, देवगति नामकर्म और मनुष्यगति नामकर्म ॥ ११९ ॥

जं तं जादिणामं तं पंचविहं– एइंदियजादिणामं बेइंदियजादिणामं तेइंदियजादिणामं चउरिंदियजादिणामं पंचिंदियजादिणामं चेदि ॥ १२० ॥

जो वह जाति नामकर्म है वह पांच प्रकारका है– एकेन्द्रियजातिनामकर्म, द्वीन्द्रियजातिनामकर्म, त्रीन्द्रियजातिनामकर्म, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म, और पंचेन्द्रियजातिनामकर्म ॥ १२० ॥

जं तं सरीरणामं तं पंचविहं– ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेजइयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि ॥ १२१ ॥

जो वह शरीर नामकर्म है वह पांच प्रकारका है – औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर नामकर्म ॥ १२१ ॥

जं तं सरीरबंधणणामं तं पंचविहं– ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजइयसरीरबंधणणामं कम्मइयसरीर बंधणणामं चेदि ॥

जो वह शरीरबन्धन नामकर्म है वह पांच प्रकारका है-- औदारिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरबन्धन, आहारकशरीरबन्धन, तैजसशरीरबन्धन और कार्मणशरीरबन्धन नामकर्म ॥ १२१ ॥

जं तं सरीरसंघादणणामं तं पंचविहं– ओरालियसरीरसंघादणणामं वेउव्वियसरीरसंघादणणामं आहारसरीरसंघादणणामं तेजइयसरीरसंघादणणामं कम्मइयसरीरसंघादणणामं चेदि ॥ १२३ ॥

जो वह शरीरसंघातन नामकर्म है वह पांच प्रकारका है- औदारिकशरीरसंघातन, वैक्रियिकशरीरसंघातन, आहारकशरीरसंघातन, तैजसशरीरसंघातन और कार्मणशरीरसंघातन नामकर्म ॥

जं तं सरीरसंठाणणामं तं छव्विहं– समचउरसरीरसंठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीर संठाणणामं चेदि ॥ १२४ ॥

जो वह शरीरसंस्थान नामकर्म है वह छह प्रकारका है– समचतुरस्रशरीरसंस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थान, स्वातिशरीरसंस्थान, कुब्जशरीरसंस्थान, वामनशरीरसंस्थान और हुण्डशरीरसंस्थान नामकर्म ॥ १२४ ॥

जं तं सरीरअंगोवंगणामं तं तिविहं– ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि ॥ १२५ ॥

जो वह शरीरआंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकारका है– औदारिकशरीरआंगोपांग, वैक्रियिकशरीरआंगोपांग और आहारकशरीरआंगोपांग नामकर्म ॥ १२५ ॥

जं तं सरीरसंघडणणामं तं छव्विहं– वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि ॥ १२६ ॥

जो वह शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है– वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन, वज्रनाराचशरीरसंहनन, नाराचशरीरसंहनन, अर्धनाराचशरीरसंहनन, कीलितशरीरसंहनन और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म ॥ १२६ ॥

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं– किण्णवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हलिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि ॥ १२७ ॥

जो वह वर्ण नामकर्म है वह चार प्रकारका है– कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, रुधिरवर्ण, शुक्लवर्ण, और हरिद्रवर्ण नामकर्म ॥ १२७ ॥

जं तं गंधणामं तं दुविहं– सुरहिगंधणामं दुरहिगंधणामं चेदि ॥ १२८ ॥

जो वह गन्ध नामकर्म है वह दो प्रकारका है– सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध नामकर्म ॥

जं तं रसणामं तं पंचविहं– तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबिलणामं महुरणामं चेदि ॥ १२९ ॥

जो वह रसनामकर्म है वह पांच प्रकारका है– तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल और मधुर नामकर्म ॥ १२९ ॥

जं तं फासणामं तमट्ठविहं– कक्खडणामं मउअणामं गरुवणामं लहुअणामं णिद्धणामं लहुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि ॥ १३० ॥

जो वह स्पर्श नामकर्म है वह आठ प्रकारका है– कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण नामकर्म ॥ १३० ॥

जं तं आणुपुव्विणामं तं चउव्विहं– णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामं तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामं देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामं चेदि ॥

जो वह आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकारका है नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म ॥ १३१ ॥

णिरगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १३२ ॥ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबाहल्लाणि तिरियपदराणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ॥

नरकगति नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥१३२॥ नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी हैं । उसकी इतनी ही मात्र प्रकृतियां है ॥

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १३४ ॥ तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ लोओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ॥ १३५ ॥

तिर्यंगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ १३४ ॥ तिर्यंगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां लोकको जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी हैं । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १३५ ॥

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १३६ ॥ मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि उड्ढकवाडछेदणणिप्फण्णाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणावियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ॥ १३७ ॥

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १३६ ॥ मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां उर्ध्वकपाटछेदनसे निष्पन्न पैंतालीस लाख योजन बाहल्यस्वरूप तिर्यक्प्रतरोंको जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी हैं । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १३७ ॥

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १३८ ॥ देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ णवजोयणसदबाहल्लाणि तिरियपदराणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ॥ १३९ ॥

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १३८ ॥ देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी हैं । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥

एत्थ अप्पाबहुगं ॥ १४० ॥

अब यहां अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की जाती है ॥ १४० ॥

सव्वत्थोवाओ णिरगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ ।। १४१ ।।

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां सबसे स्तोक हैं ।। १४१ ।।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जदिगुणाओ ।। १४२ ।।

उनसे देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणित हैं ।। १४२ ।।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ संखेज्जगुणाओ ।। १४३ ।।

उनसे मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां संख्यातगुणी हैं ।। १४३ ।।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।। १४४ ।।

उनसे तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १४४ ।।

भूओ अप्पाबहुअं ।। १४५ ।।

फिर भी उस अल्पबहुत्त्वको कहते हैं ।। १४५ ।।

सव्वत्थोवा मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ ।। १४६ ।। निरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।। १४७ ।। देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।। १४८ ।। तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।। १४९ ।।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां सबसे अल्प हैं ।। १४६ ।। उनसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १४७ ।। उनसे देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १४८ ।। उनसे तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १४९ ।।

अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं ।। १५० ।।

अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम आतापनाम, उद्योतनाम विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम, और तीर्थकरनाम; ये नामकर्मकी अपिण्ड प्रकृतियां हैं ।। १५० ।।

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ।। १५१ ।। गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव । एवडियाओ पयडीओ ।। १५२ ।।

गोत्रकर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ १५१ ॥ गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियां हैं-- उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १५२ ॥

अंतराइयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १५३ ॥ अंतराइयस्स कम्मस्स पंचपयडीओ– दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं विरियंतराइयं चेदि । एवडियाओ पयडीओ ॥ १५४ ॥

अन्तरायकर्मकी कितनी प्रकृतियां है ? ॥ १५३ ॥ अन्तरायकर्मकी पांच प्रकृतियां हैं-- दानान्तराय; लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १५४ ॥

जा सा भावपयडी णाम सा दुविहा– आगमदो भावपयडी चेव णोआगमदो भावपयडी चेव ॥ १५५ ॥

जो वह भावप्रकृति है वह दो प्रकारकी है-- आगमभावप्रकृति और नोआगमभावप्रकृति ॥

जा सा आगमदो भावपयडी णाम तिस्से इमो णिद्देसो ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं । जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया उवजोग । भावे त्ति कट्टु जावदिया उवजुत्ता भावा सा-सव्वा आगमदो भावपयडी णाम ॥ १५६ ॥

उनमें जो वह आगमभावकृति है उसका यह निर्देश है- स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम । तथा इनमें जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा और स्तव, स्तुति व धर्मकथा तथा इनको आदि लेकर और जो उपयोग हैं ‘ वे सब भाव है ’ ऐसा समझकर जितने उपयुक्त भाव हैं वह सब आगमभावकृति है ॥

जा सा णोआगमदो भावपयडी णाम सा अणेयविहा । तं जहा-सुर-असुर-णाग-सुवण्ण-किण्णर-किंपुरिस-गरुड-गंधव्व - जक्ख-रक्खस - मणुअ-महोरग-मिय - पसु-पक्खि-दुवय-चउप्पय-जलचर-थलचर-खगचर-देव-मणुस्स-तिरिक्ख - णेरइयणियगुणा पयडी सा सव्वा णोआगमदो भावपयडी णाम ॥ १५७ ॥

जो वह नोआगमभावप्रकृति है वह अनेक प्रकारकी है । यथा- सुर, असुर, नाग, सुपर्ण, किन्नर, किंपुरुष, गरूड, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुज, महोरग, मृग, पशु, पक्षी, द्विपद, चतुष्पद, जलचर, स्थलचर, खगचर, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी; इन जीवोंकी जो अपनी अपनी प्रकृति है वह सब नोआगमभावप्रकृति है ॥ १५७ ॥

एदासिं पयडीणं काए पयडीए पयदं ? कम्मपयडीए पयदं ॥ १५८ ॥

इन प्रकृतियोंमें किस प्रकृतिका प्रकरण है ? कर्म प्रकृतिका प्रकरण है ॥ १५८ ॥

सेसं वेदणाए भंगो ॥ १५९ ॥

शेष अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा वेदना अनुयोगद्वारके समान है ॥ १५९ ॥

॥ इस प्रकार प्रकृतिनामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

६. बंधणाणियोगद्दारं

बंधणे त्ति चउव्विहा कम्मविभासा– बंधो बंधगा बंधणिज्जं बंधविहाणे त्ति ॥१॥

उक्त चौबीस अनुयोगद्वारोंमें अब बन्धन नामका छठा अनुयोगद्वार अधिकारप्राप्त है। उसमें 'बन्धन' की कर्मविभाषा कर्मबन्धनका व्याख्यान चार प्रकारका है– बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्धविधान ॥ १ ॥

अभिप्राय यह है कि 'बन्धन' इस शब्दको जब 'बन्धः बन्धनं' इस प्रकार भाव-साधनमें सिद्ध किया जाता है तब उस अर्थ बन्धका एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ संयोग तथा द्रव्यका उसके भावोंके साथ समवाय - होता है। 'बध्नातीति बन्धनः' इस प्रकारसे यदि उस बन्धन शब्दको कर्तृसाधनमें निष्पन्न किया जाता है तो उसका अर्थ बन्धकद्रव्य व भाव रूप बन्धका कर्ता (आत्मा)– होता है। 'बध्यते इति बन्धनः' इस प्रकारसे यदि उसे कर्मसाधनमें सिद्ध किया जाता है तो उसका अर्थ बन्धनीय– बन्धके योग्य पुद्गल द्रव्य– होता है। तथा यदि उसे 'बध्यते अनेन इति बन्धनम्' इस प्रकारसे करणसाधनमें सिद्ध किया जाता है तो उसका अर्थ बन्धविधान– प्रकृतित्व स्थिति आदिरूप बन्ध भेद होता है। इस प्रकार बन्धन शब्दके उक्त चारों अर्थोंकी विवक्षा करके इस अनुयोगद्वारमें क्रमसे बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्ध भेदोंकी प्ररूपणा की गई है।

जो सो बंधो णाम सो चउव्विहो– णामबंधो ट्ठवणबंधो दव्वबंधो भावबंधो चेदि ॥ २ ॥

बन्धके चार भेद हैं– नामबन्ध, स्थापनाबन्ध, द्रव्यबन्ध और भावबन्ध ॥ २ ॥

बंधणयविभासणदाए को णओ के बंधे इच्छदि ? ॥ ३ ॥ णेगम-ववहार-संगहा सव्वे बंधे ॥४॥ उजुसुदो ठवणबंधं णेच्छदि ॥५॥ सद्दणओ णामबंधं भावबंधं च इच्छदि ॥

नयकी अपेक्षा बन्धका विशेष विचार करनेपर कौन नय किन बन्धोंको स्वीकार करता है ? ॥ ३ ॥ नैगम, व्यवहार और संग्रह नय सब बन्धोंको स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥ ऋजुसूत्रनय स्थापनाबन्धको स्वीकार नहीं करता ॥ ५ ॥ शब्दनय नामबन्ध और भावबन्धको स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

जो सो णामबंधो णाम सो जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा जीवस्स च अजीवस्स च जीवस्स च अजीवाणं च जीवाणं च अजीवस्स च जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि बंधो त्ति सो सव्वो णामबंधो णाम ॥ ७ ॥

जो वह नामबन्ध है वह इस प्रकार है एक जीव, एक अजीव, बहुत जीव, बहुत अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और बहुत अजीव, बहुत जीव और एक अजीव तथा बहुत जीव और बहुत अजीव; इन आठमेंसे जिसका 'बन्ध' यह नाम किया है वह सब सब नामबन्ध है ॥ ७ ॥

जो सो ट्ठवणबंधो णाम सो दुविहो– सब्भावट्ठवणबंधो चेव असब्भावट्ठवणबंधो चेव ॥ ८ ॥

स्थापना बन्ध दो प्रकारका है · सद्भावस्थापना बन्ध और असद्भावस्थापना बन्ध ॥ ८ ॥

जो सो सब्भावासब्भावट्ठवणबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो · कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया सब्भाव-असब्भावट्ठवणाए ठविज्जदि बंधो त्ति सो सव्वो सब्भाव-असब्भावट्ठणबंधो णाम ॥ ९ ॥

जो वह सद्भावस्थापनाबन्ध और असद्भावस्थापनाबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है– काष्ठकर्मोंमें, चित्रकर्मोंमें, पोत्तकर्मोंमें, लेप्यकर्मोंमें, लयनकर्मोंमें, शैलकर्मोंमें, गृहकर्मोंमें, भित्तिकर्मोंमें, दन्तकर्मोंमें और भेण्डकर्मोंमें तथा अक्ष या कौड़ी इनको आदि लेकर और भी जो दूसरे पदार्थ अभेदस्वरूपसे सद्भावनास्थापना तथा असद्भावसास्थापनामें 'यह बन्ध है' इस रूपसे स्थगित किये जाते हैं वह सब सद्भावस्थापनाबन्ध और असद्भावस्थापनाबन्ध है ॥ ९ ॥

जो सो दव्वबंधो णाम सो थप्पो ॥ १० ॥

जो वह द्रव्यबन्ध है उसे इस समय स्थगित किया जा सकता है ॥ १० ॥

जो सो भावबंधो णाम सो दुविहो– आगमदो भावबंधो चेव णोआगमदो भावबंधो चेव ॥ ११ ॥

जो वह भावबन्ध है वह दो प्रकारका है– आगमभावबन्ध और नोआगमभावबन्ध ॥ ११ ॥

जो सो आगमदो भावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं, जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थुदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया उवजोगा भावे त्ति कट्टु जावदिया उवजुत्ता भावा सो सव्वो आगमदो भावबंधो णाम ॥१२॥

जो वह आगमभावबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है- स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, गन्थसम, नामसम और घोषसम; इस नौ प्रकार श्रुतज्ञानके विषयमें जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तुव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनको आदि लेकर और भी जो अन्य उपयोग हैं उनमें भावरूपसे जितने उपयुक्त भाव हैं वह सब आगमभाव बन्ध है ॥

जो सो णोआगमदो भावबंधो णाम सो दुविहो- जीव भावबंधो चेव अजीव भावबंधो चेव ॥ १३ ॥

जो वह नोआगमभावबन्ध है वह दो प्रकारका है- जीव नोआगम भावबन्ध और अजीव नोआगम भावबन्ध ॥ १३ ॥

जो सो जीवभावबंधो णाम सो तिविहो विवागपच्चइयो जीवभावबंधो चेव अविवागपच्चइओ जीवभावबंधो चेव तदुभयपच्चइओ जीव भावबंधो चेव ॥ १४ ॥

जीवभावबन्ध तीन प्रकारका है- विपाकप्रत्ययिकजीवभावबन्ध, अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध और तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबन्ध ॥ १४ ॥

कर्मोंके उदय और उदीरणाका नाम विपाक तथा इन दोनोंके अभावमें जो उनका उपशम अथवा क्षय होता है उसका नाम अविपाक है। विपाकके निमित्तसे होनेवाले भावको विपाकप्रत्यय तथा अविपाकके निमित्तसे होनेवाले भावको अविपाकप्रत्यय कहा जाता है। कर्मोंके उदय और उदीरणासे तथा उनके उपशम और क्षयसे भी जो भाव उदित होता है उसको तदुभय-प्रत्यय जीवभावबन्ध जानना चाहिये।

जो सो विवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम तत्थ इमो णिद्देसो- देवे त्ति वा मणुस्से त्ति वा तिरिक्खे त्ति वा णेरइए त्ति वा इत्थिवेदे त्ति वा पुरिसवेदे त्ति वा णवुंसयवेदे त्ति वा कोहवेदे त्ति वा माणवेदे त्ति वा मायवेदे त्ति वा लोहवेदे त्ति वा रागवेदे त्ति वा दोसवेदे त्ति वा मोहवेदे त्ति वा किण्हलेस्से त्ति वा णीललेस्से त्ति वा काउलेस्से त्ति वा तेउलेस्से त्ति वा पम्मलेस्से त्ति वा सुक्कलेस्से त्ति वा असंजदे त्ति वा अविरदे त्ति वा अण्णाणे त्ति वा मिच्छादिट्ठि त्ति वा जे चामण्णे एवमादिया कम्मोदयपच्चइया उदयविवागणिप्पण्णा भावा सो सव्वो विवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम ॥ १५ ॥

जो वह विपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है- देवभाव, मनुष्य-भाव, तिर्यंचभाव, नारकभाव, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोधवेद, मानवेद, मायावेद, लोभवेद, रागवेद, दोषवेद, मोहवेद, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या, असंयतभाव, अविरतभाव, अज्ञानभाव और मिथ्यादृष्टिभाव; तथा इसी प्रकार और भी जो कर्मोदय-प्रत्ययिक उदयविपाकसे उत्पन्न हुए भाव हैं वे सब विपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध हैं ॥ १५ ॥

उपर्युक्त सब देव-नारकादि भाव चूंकि विवक्षित देवगति नामकर्म आदिके उदयसे उत्पन्न हुआ करते हैं, अत एव उनको विपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्धभाव कहा गया है।

जो सो अविवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम सो दुविहो– उवसमियो अविवागपच्चइयो जीवभावबंधो चेव खइयो अविवागपच्चइओ जीवभावबंधो चेव ॥ १६ ॥

जो वह अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध है वह दो प्रकारका है– औपशमिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध और क्षायिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध ॥ १६ ॥

जो सो उवसमिओ अविवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– से उवसंतकोहे उवसंतमाणे उवसंतमाए उवसंतलोहे उवसंतरागे उवसंतदोसे उवसंतमोहे उवसंतकसायवियरागछदुमत्थे उवसमियं सम्मत्तं उवसमियं चारित्तं जे चामण्णे एवमादिया उवसमिया भावा सो सव्वो उवसमियो अविवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम ॥ १७ ॥

जिस जीवका क्रोध उपशान्त हो गया है, जिसका मान उपशान्त हो गया है, जिसकी माया उपशान्त हो गई है, जिसका लोभ उपशान्त हो गया है, जिसका राग उपशान्त हो गया है, जिसका दोष उपशान्त हो गया है और जिसका मोह उपशान्त हो गया है उन जीवोंके तथा जिसका पच्चीस प्रकारका समस्त ही चारित्रमोह उपशान्त हो गया है ऐसे उपशान्त कषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीवके भी जो जीवभाग होता है वह औपशमिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध कहा जाता है। इसके अतिरिक्त औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र तथा इनको आदि लेकर और भी जो औपशमिक भाव हैं उन सबको औपशमिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध जानना चाहिये ॥ १७ ॥

जो सो खइओ अविवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– से खीणकोहे खीणमाणे खीणमाये खीणलोहे खीणरागे खीणदोसे खीणमोहे खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्थे खइयसम्मत्तं खइयचारित्तं खइया दाणलद्धी खइया लाहलद्धी खइया भोगलद्धी खइया परिभोगलद्धी खइया वीरियलद्धी केवलणाणं केवलदंसणं सिद्धे बुद्धे परिणिव्वुदे सव्वदुक्खाणमंतयडे त्ति जे चामण्णे एवमादिया खइया भावा सो सव्वो खइयो अविवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम ॥ १८ ॥

जो वह क्षायिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध है उसका निर्देश यह है– जिस जीवका क्रोध क्षीण हो चुका है, जिसका मान क्षीण हो चुका है, जिसकी माया क्षीण हो चुकी है, जिसका लोभ क्षीण हो चुका है, जिसका राग क्षीण हो चुका है, जिसका दोष क्षीण हो चुका है, और जिसका अट्ठाईस प्रकारका मोह क्षीण हो चुका है; उन जीवोंके तथा जिसका पच्चीस भेदरूप समस्त चारित्रमोह क्षीण हो चुका है ऐसे क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थके भी जो जीवभाव उत्पन्न होता है वह भी क्षायिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध कहलाता है। इसके अतिरिक्त क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दानलब्धि, क्षायिक लाभलब्धि, क्षायिक भोगलब्धि, क्षायिक परिभोगलब्धि, क्षायिक वीर्यलब्धि, केवलज्ञान, केवलदर्शन, सिद्धत्व, बुद्धत्व, परिनिर्वृतत्व,

सर्व दुःख-अन्तकृतत्व एवं इनको आदि लेकर और भी जो क्षायिक भाव है उस सबको क्षायिक अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबन्ध जानना चाहिये ॥ १८ ॥

जो सो तदुभयपच्चइयो जीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो— खओवसमियं एइंदियलद्धि त्ति वा खओवसमियं बीइंदियलद्धि त्ति वा खओवसमियं तीइंदियलद्धि त्ति वा खओवसमियं चउरिंदियलद्धि त्ति वा खओवसमियं पंचिंदियलद्धि त्ति वा खओवसमियं मदिअण्णाणि त्ति वा खओवसमियं सुदअण्णाणि त्ति वा खओवसमियं विहंगणाणि त्ति वा खओवसमियं आभिणिबोहियणाणि त्ति वा खओवसमियं सुदणाणि त्ति वा खओवसमियं ओहिणाणि त्ति वा खओवसमियं मणपज्जवणाणि त्ति वा खओवसमियं चक्खुदंसणि त्ति वा खओवसमियं अचक्खुदंसणि त्ति वा खओवसमियं ओहिदंसणि त्ति वा खओवसमियं सम्मामिच्छत्तलद्धि त्ति वा खओवसमियं सम्मत्तलद्धि त्ति वा खओवसमियं संजमासंजमलद्धि त्ति वा खओवसमियं संजमलद्धि त्ति वा खओवसमियं दाणलद्धि त्ति वा खओवसमियं लाहलद्धि त्ति वा खओवसमियं भोगलद्धि त्ति वा खओवसमियं परिभोगलद्धि त्ति वा खओवसमियं वीरियलद्धि त्ति वा खओसमियं से आयारधरे त्ति वा खओवसमियं सूदयडधरे त्ति वा खओवसमियं ठाणधरे त्ति वा खओवसमियं समवायधरे त्ति वा खओवसमियं वियाह-पण्णत्तिधरे त्ति वा खओवसमियं णाहधम्मधरे त्ति वा खओवसमियं उवासयज्झेणधरे त्ति वा खओवसमियं अंतयडधरे त्ति वा खओवसमियं अणुत्तरोववादियदसधरे त्ति वा खओअ-समियं पण्णवागरणधरे त्ति वा खओवसमियं विवागसुत्तधरे त्ति वा खओवसमियं दिट्ठिवादधरे त्ति वा खओवसमियं गणि त्ति वा खओवसमियं वाचगे त्ति वा खओवसमियं दसपुव्वहरे त्ति वा खओवसमियं चोद्दसपुव्वहारे त्ति वा जे चामण्णे एवमादिया खओवसमियभावा सो सव्वो तदुभयपच्चइओ जीवभावबंधो-णाम ॥ १९ ॥

जो वह तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है— क्षायोपशमिक एकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक द्वीन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक त्रीन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक चतुरिन्द्रिय-लब्धि, क्षायोपशमिक पंचेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक मत्यज्ञानी, क्षायोपशमिक श्रुताज्ञानी, क्षायोपशमिक विभंगज्ञानी, क्षायोपशमिक आभिनिबोधिकज्ञानी, क्षायोपशमिक श्रुतज्ञानी, क्षायोपशमिक अवधिज्ञानी, क्षायोपशमिक मनःपर्ययज्ञानी, क्षायोपशमिक चक्षुदर्शनी, क्षायोपशमिक अचक्षुदर्शनी, क्षायोपशमिक अवधिदर्शनी, क्षायोपशमिक सम्यग्मिथ्यात्वलब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, क्षायोपशमिक संयमा-संयमलब्धि, क्षायोपशमिक संयमलब्धि, क्षायोपशमिक दानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि, क्षायोप-शमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक परिभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि, क्षायोपशमिक आचारधर, क्षायोपशमिक सूत्रकृतधर, क्षायोपशमिक स्थानधर, क्षायोपशमिक समवायधर, क्षायोपशमिक व्याख्या-प्रज्ञप्तिधर, क्षायोपशमिक नाथधर्मधर, क्षायोपशमिक उपासकाध्ययनधर; क्षायोपशमिक अन्तकृतधर, क्षायोपशमिक अनुत्तरौपपादिकदशधर, क्षायोपशमिक प्रश्नव्याकरणधर, क्षायोपशमिक विपाकसूत्रधर,

क्षायोपशमिक दृष्टिवादधर, क्षायोपशमिक गणी, क्षायोपशमिक वाचक, क्षायोपशमिक दशपूर्वधर एवं क्षायोपशमिक चतुर्दशपूर्वधर; ये तथा इनको आदि लेकर और भी जो दूसरे क्षायोपशमिक भाव हैं वह सब तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबन्ध है; यह इस सूत्रका अभिप्राय है ॥ १९ ॥

जो सो अजीवभावबंधो णाम सो तिविहो– विवागपच्चइयो अजीवभावबंधो चेव अविवागपच्चइयो अजीवभावबंधो चेव तदुभयपच्चइयो अजीवभावबंधो चेव ॥ २० ॥

अजीवभावबन्ध तीन प्रकारका है– विपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध, अविपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध और तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध ॥ २० ॥

जो अजीवभाव मिथ्यात्व और अविरति आदिके आश्रयसे अथवा पुरुषके प्रयत्नके आश्रयसे उत्पन्न होते हैं वे विपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध कहे जाते हैं। जो अजीवभाव उक्त मिथ्यात्वादि कारणोंके विना उत्पन्न होते हैं उनका नाम अविपाकप्रत्ययिक, तथा जो उन दोनों ही कारणोंके आश्रयसे उत्पन्न होते हैं उनका नाम तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है।

जो सो विवागपच्चइयो अजीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– पओगपरिणदा वण्णा पओगपरिणदा सद्दा पओगपरिणदा गंधा पओगपरिणदा रसा पओगपरिणदा फासा पओगपरिणदा गदी पओगपरिणदा ओगाहणा पओगपरिणदा संठाणा पओगपरिणदा खंधा पओगपरिणदा खंधदेसा पओगपरिणदा खंधपदेसा जे चामण्णे एवमादिया पओगपरिणद-संजुत्ता भावा सो सव्वो विवागपच्चइओ अजीवभावबंधो णाम ॥ २१ ॥

जो वह विपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है– प्रयोगपरिणत वर्ण, प्रयोगपरिणत शब्द, प्रयोगपरिणत गन्ध, प्रयोगपरिणत रस, प्रयोगपरिणत स्पर्श, प्रयोगपरिणत गति, प्रयोगपरिणत अवगाहना, प्रयोगपरिणत संस्थान, प्रयोगपरिणत स्कन्ध, प्रयोगपरिणत स्कन्धदेश और प्रयोगपरिणत स्कन्धप्रदेश; ये तथा इनको आदि लेकर और भी जो प्रयोगपरिणत संयुक्त भाव होते हैं वह सब विपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध कहलाता है ॥ २१ ॥

वर्णादि नामकर्म विशेषके उदयसे औदारिक शरीरस्कन्धोंमें उत्पन्न होनेवाले वर्णादि रूप पुद्गलपरिणाम तथा हल्दी आदिके प्रयोगसे उत्पन्न होनेवाले वर्णभेद रूप पुद्गलपरिणाम विपाक-प्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है, ऐसा सूत्रका अभिप्राय समझना चाहिये।

जो सो अविवागपच्चइयो अजीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– विस्ससा-परिणदा वण्णा विस्ससापरिणदा सद्दा विस्ससापरिणदा गंधा विस्ससापरिणदा रसा विस्ससा-परिणदा फासा विस्ससापरिणदा गदी विस्ससापरिणदा ओगाहणा विस्ससापरिणदा संठाणा विस्ससापरिणदा खंधा, विस्ससापरिणदा खंधदेसा विस्ससापरिणदा खंधपदेसा जे चामण्णे एवमादिया विस्ससापरिणदा संजुत्ता भावा सो सव्वो अविवागपच्चइओ अजीवभावबंधो णाम ॥ २२ ॥

जो वह अविपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है– विस्रसापरिणत वर्ण, विस्रसापरिणत शब्द, विस्रसापरिणत गन्ध, विस्रसापरिणत रस, विस्रसापरिणत स्पर्श, विस्रसापरिणत गति, विस्रसापरिणत अवगाहना, विस्रसापरिणत संस्थान, विस्रसापरिणत स्कन्ध, विस्रसापरिणत स्कन्धदेश और विस्रसापरिणत स्कन्धप्रदेश; ये तथा इनको आदि लेकर और भी जो इसी प्रकारके विस्रसापरिणत संयुक्त भाव हैं वह सब अविपाकप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है ॥ २२ ॥

जो सो तदुभयपच्चइयो अजीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– पओअपरिणदा वण्णा वण्णा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा सद्दा सद्दा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा गंधा गंधा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा रसा रसा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा फासा फासा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा गदी गदी विस्ससापरिणदा [पओअपरिणदा ओगाहणा ओगाहणा विस्ससापरिणदा] पओअपरिणदा संठाणा संठाणा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा खंधा खंधा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा खंधदेसा खंधदेसा विस्ससापरिणदा पओअपरिणदा खंधपदेसा खंधपदेसा विस्ससापरिणदा जे चामण्णे एवमादिया पओअ-विस्ससापरिणदा संजुत्ता भावा सो सव्वो तदुभयपच्चइओ अजीवभावबंधो णाम ॥ २३ ॥

जो तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है - प्रयोगपरिणत वर्ण और विस्रसापरिणत वर्ण, प्रयोगपरिणत शब्द और विस्रसापरिणत शब्द, प्रयोगपरिणत गन्ध और विस्रसापरिणत गन्ध, प्रयोगपरिणत रस और विस्रसापरिणत रस, प्रयोगपरिणत स्पर्श और विस्रसापरिणत स्पर्श, प्रयोगपरिणत गति और विस्रसापरिणत गति, [प्रयोगपरिणत अवगाहना और विस्रसापरिणत अवगाहना], प्रयोगपरिणत संस्थान और विस्रसापरिणत संस्थान, प्रयोगपरिणत स्कन्ध और विस्रसापरिणत स्कन्ध, प्रयोगपरिणत स्कन्धदेश और विस्रसापरिणत स्कन्धदेश, प्रयोगपरिणत स्कन्धप्रदेश और विस्रसापरिणत स्कन्धप्रदेश; ये तथा इनको आदि लेकर और भी जो प्रयोग और विस्रसापरिणत संयुक्त भाव हैं वह सब तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध है ॥ २३ ॥

अभिप्राय यह है कि प्रयोगपरिणत वर्णादिकोंके साथ जो विस्रसापरिणत वर्णादिकोंका संयोग और समवायरूप सम्बन्ध होता है उस सबको तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबन्ध जानना चाहिये ।

जो सो थप्पो दव्वबंधो णाम सो दुविहो– आगमदो दव्वबंधो चेव णोआगमदो दव्वबंधो चेव ॥ २४ ॥

जिस द्रव्यबन्धको स्थगित कर आये हैं वह दो प्रकारका है– आगम द्रव्यबन्ध और नोआगम द्रव्यबन्ध ॥ २४ ॥

जो सो आगमदो दव्वबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं । जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा

वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थुदि-धम्म-कहा वा जे चामण्णे एवमादिया अणुवजोगा दव्वे त्ति कट्टु जावदिया अणुवजुत्ता भावा सो सव्वो आगमदो दव्वबंधो णाम ॥ २५ ॥

जो वह आगम द्रव्यबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है— स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम; इनके विषयमें वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति और धर्मकथा तथा इनको आदि लेकर जो और भी अन्य अनुपयोग हैं उनमें द्रव्यनिक्षेप रूपसे जितने अनुपयुक्त भाव हैं वह सब आगमद्रव्यबन्ध है ॥

जो सो णोआगमदो दव्वबंधो सो दुविहो— पओअबंधो चेव विस्ससाबंधो चेव ॥ २६ ॥

जो नोआगमद्रव्यबन्ध है वह दो प्रकारका है— प्रयोगबन्ध और विस्रसाबन्ध ॥ २६ ॥

जो सो पओअबंधो णाम सो थप्पो ॥ २७ ॥

जो प्रयोगबन्ध है उसे स्थगित करते हैं उसकी प्ररूपणा आगे की जाएगी ॥ २७ ॥

जो सो विस्ससाबंधो णाम सो दुविहो— सादियविस्ससाबंधो चेव अणादियविस्ससाबंधो चेव ॥ २८ ॥

जो वह विस्रसाबन्ध है वह दो प्रकारका है— सादिविस्रसाबन्ध और अनादिविस्रसाबन्ध ॥

जो सो सादियविस्ससाबंधो णाम सो थप्पो ॥ २९ ॥

जो सादि विस्रसाबन्ध है उसे अभी स्थगित करते हैं ॥ २९ ॥

जो सो अणादियविस्ससाबंधो णाम सो तिविहो— धम्मत्थिया अधम्मत्थिया आगासत्थिया चेदि ॥ ३० ॥

जो वह अनादि विस्रसाबन्ध है वह तीन प्रकारका है— धर्मास्तिकायविषयक, अधर्मास्तिकाय और आकशास्तिकायविषयक ॥ ३० ॥

धम्मत्थिया धम्मत्थियदेसा धम्मत्थियपदेसा, अधम्मत्थिया अधम्मत्थियदेसा, आगासत्थिया आगासत्थियदेसा आगासत्थियपदेसा, एदासिं तिण्णं पि अत्थिआणमण्णोण्ण पदेसबंधो होदि ॥ ३१ ॥

धर्मास्तिक, धर्मास्तिकदेश और धर्मास्तिकप्रदेश; अधर्मास्तिक, अधर्मास्तिकदेश और अधर्मास्तिकप्रदेश; तथा आकाशास्तिक, आकाशास्तिकदेश और आकाशास्तिकप्रदेश; इन तीनों ही अस्तिकायोंका परस्पर प्रदेशबन्ध होता है ॥ ३१ ॥

धर्मास्तिकायके समस्त अवयवसमूहका नाम धर्मास्तिकाय है, इस अवयवीस्वरूप धर्मास्तिकायका जो अपने अवयवोंके साथ सम्बन्ध है वह धर्मास्तिकबन्ध कहलाता है। उस धर्मास्तिकायके

अर्ध भागसे लेकर चतुर्थ भाग तक धर्मास्तिकदेश कहा जाता है, ऐसे धर्मास्तिकदेशोंका जो अपने अवयवोंके साथ सम्बन्ध है उसे धर्मास्तिकदेशबन्ध जानना चाहिये। उक्त धर्मास्तिकायके चतुर्थ भागसे सब ही अवयवोंका नाम धर्मास्तिकप्रदेश तथा उनका जो परस्पर सम्बन्ध है उसका नाम धर्मास्तिकप्रदेशबन्ध है। यही प्रक्रिया अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। इन तीनों ही अस्तिकायोंकेप्रदेशोंका जो परस्पर सम्बन्ध है उस सबको अनादिविस्रसाबन्ध समझना चाहिये।

जो सो थप्पो सादियविस्ससाबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– वेमादा णिद्धदा वेमादा ल्हुक्खदा बंधो ॥ ३२ ॥

जो वह सादिविस्रसाबन्ध स्थगित किया गया था उसका निर्देश इस प्रकार है– विसदृश स्निग्धता और विसदृश रूक्षता बन्ध है - बन्धकी कारण होती हैं ॥ ३२ ॥

यहां मादा शब्दसे सदृशता और विमादा शब्दसे विसदृशता अभिप्रेत है, ऐसा समझना चाहिये।

समणिद्धदा समल्हुक्खदा भेदो ॥ ३३ ॥

समान स्निग्धता और समान रूक्षता भेद है ॥ ३३ ॥

अभिप्राय यह है कि स्निग्ध परमाणुओंका अन्य स्निग्ध परमाणुओंके साथ तथा रूक्ष परमाणुओंका अन्य रूक्ष परमाणुओंके साथ बन्ध नहीं होता है।

णिद्धणिद्धाण बज्झंति ल्हुक्ख-ल्हुक्खा य पोग्गला।
णिद्ध-ल्हुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥ ३४ ॥

स्निग्ध पुद्गलपरमाणु अन्य स्निग्ध पुद्गलपरमाणुओंके साथ नहीं बंधते। इसी प्रकार रूक्ष पुद्गलपरमाणु अन्य रूक्ष पुद्गलपरमाणुओंके साथ नहीं बंधते। किन्तु सदृश और विसदृश ऐसे स्निग्ध और रूक्ष पुद्गलपरमाणु परस्पर बंधको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

अभिप्राय यह है कि समान गुणवाले स्निग्ध परमाणुओंका अन्य स्निग्ध परमाणुओंके साथ तथा समान गुणवाले रूक्ष परमाणुओंका अन्य रूक्ष परमाणुओंके साथ परस्पर बन्ध नहीं होता है। परन्तु स्निग्ध और रूक्ष पुद्गलपरमाणुओंका, चाहे वे रूपी– गुणाविभागप्रतिच्छेदोंसे समान– हों और चाहे अरूपी– उक्त गुणाविभागप्रतिच्छेदोंसे असमान– हों तो भी उनका परस्पर बन्ध होता है।

वेमादाणिद्धदा वेमादाल्हुक्खदा बंधो ॥ ३५ ॥

दो गुणमात्र स्निग्धता और दो गुणमात्र रूक्षता परस्पर बन्धकी कारण है ॥ ३५ ॥

अभिप्राय यह है कि जो स्निग्ध परमाणु उस स्निग्धतामें दो अविभागप्रतिच्छेदों अधिक और हीन हैं उनका परस्पर बन्ध होता है। यही क्रम रूक्ष परमाणुओंके भी परस्पर बन्धमें जानना चाहिये।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण ल्हुक्खस्स ल्हुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स ल्हुक्खेण हवेदि बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥ ३६ ॥

स्निग्ध पुद्गलका दो गुण अधिक स्निग्ध पुद्गलके साथ और रूक्ष पुद्गलका दो गुण अधिक रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध होता है, तथा स्निग्ध पुद्गलका रूक्ष पुद्गलके साथ विषम अथवा सम भी अविभाग प्रतिच्छेदोंके रहनेपर बन्ध होता है। परन्तु जघन्य गुणवाले पुद्गलोंका किसी भी अवस्थामें बन्ध नहीं होता है ॥ ३६ ॥

से तं बंधणपरिणामं पप्प से अब्भाणं वा मेहाणं वा संज्झाणं वा विज्जूणं वा उक्काणं वा कणयाणं वा दिसादाहाणं वा धूमकेदूणं वा इंदाउहाणं वा से खेत्तं पप्प कालं पप्प उडुं पप्प अयणं पप्प पोग्गलं पप्प जे चामण्णे एवमादिया अंगमलप्पहुडीणि बंधण-परिणामेण परिणमंति सो सव्वो सादियविस्ससाबंधो णाम ॥ ३७ ॥

इस प्रकार जघन्य गुणयुक्त पुद्गलको छोड़कर शेष पुद्गल क्षेत्रको प्राप्त होकर, कालको प्राप्त होकर, ऋतुविशेषको प्राप्त होकर, दक्षिण-उत्तररूप अयनको प्राप्त होकर तथा पूरण-गलनस्वरूप पुद्गलको प्राप्त होकर जो अभ्र (वर्षाके अयोग्य मेघ), मेघ (वर्षाके योग्य काले मेघ), सन्ध्या, विद्युत् (आकाशमें मेघोंके चमकनेवाला तेजपुंज), उल्का (आकाशसे नीचे गिरनेवाला अग्निपिण्डके समान तेजपुंज), कनक (वज्र), दिशादाह, धूमकेतु (धूमयष्टिके समान आकाशमें उपलभ्यमान उपद्रव जनक पुद्गलपिण्ड) और इन्द्रधनुषके आकारसे परिणत होते हैं तथा इनको आदि लेकर अन्य भी जो अमंगल आदि स्वरूपसे परिणत होते हैं; उस सबको सादि विस्रसाबन्ध जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

जो सो थप्पो पओअबंधो णाम सो दुविहो-- कम्मबंधो चेव णोकम्मबंधो चेव ॥

जो वह प्रयोगबन्ध स्थगित किया गया था वह दो प्रकारका है-- कर्मबन्ध और नोकर्मबन्ध ॥ ३८ ॥

जो सो कम्मबंधो णाम सो थप्पो ॥ ३९ ॥

जो वह कर्मबन्ध है उसे अभी स्थगित करते हैं ॥ ३९ ॥

जो सो णोकम्मबंधो णाम सो पंचविहो-- आलावणबंधो अल्लीवणबंधो संसिलेस-बंधो सरीरबंधो सरीरिबंधो चेदि ॥ ४० ॥

जो वह नोकर्मबन्ध है वह पांच प्रकारका है-- आलापनबन्ध, अल्लीवनबन्ध, संश्लेषबन्ध, शरीरबन्ध और शरीरिबन्ध ॥ ४० ॥

जो सो आलावणबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो-- से सगडाणं वा जाणाणं वा जुगाणं वा गड्डीणं वा गिल्लीणं वा रहाणं वा संदणाणं वा सिवियाणं वा गिहाणं वा पासादाणं

वा गोवुराणं वा तोरणाणं वा से कट्ठेण वा लोहेण वा रज्जुणा वा बब्भेण वा दब्भेण वा जे चामण्णे एवमादिया अण्णदव्वाणमण्णदव्वेहिं आलावियाणं बंधो होदि सो सव्वो आलावणबंधो णाम ॥ ४१ ॥

जो आलापनबन्ध है उसका यह निर्देश है– जो भारी बोझके ढोनेमें समर्थ गाडियोंका, जहाजोंका, घोड़ा अथवा खच्चरोंके द्वारा खींची जानेवाली गाडियोंका, छोटी गाडियोंका, गिल्लियोंका रथोंका, चक्रवर्ती आदिके चढ़ने योग्य और सब आयुधोंसे परिपूर्ण ऐसे स्यन्दनोंका, पालकियोंका, गृहोंका, भवनोंका, गोपुरोंका और तोरणोंका, काष्ठसे, लोहसे, रस्सीसे, चमड़ेकी रस्सीसे और दर्भसे जो बन्ध होता है वह तथा इनको आदि लेकर और भी जो अन्य द्रव्योंसे आलापित परस्पर सम्बन्धको प्राप्त हुए अन्य द्रव्योंका बन्ध होता है वह सब आलापनबन्ध है ॥ ४१ ॥

जो सो अल्लीवणबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– से कडयाणं वा कुड्डाणं वा गोवरपीडाणं वा पागाराणं वा साडियाणं वा जे चामण्णे एवमादिया अण्णदव्वाणमण्णदव्वेहिं अल्लीविदाणं बंधो होदि सो सव्वो अल्लीवणबंधो णाम ॥ ४२ ॥

जो अल्लीवणबन्ध है उसका यह निर्देश इस प्रकार है कटकोंका, कुड्डोंका, गोवरपीडोंका, प्राकारोंका और शाटिकाओंका तथा इनको आदि लेकर और भी जो दूसरे पदार्थ हैं उनका जो अन्य द्रव्योंसे सम्बन्धको प्राप्त हुए अन्य द्रव्योंका बन्ध होता है वह सब अल्लीवणबन्ध है ॥ ४२ ॥

आलापनबन्धमें जो शकटादिकोंका बन्ध होता है वह काष्ठ, लोह अथवा रस्सी आदि अन्य द्रव्योंके आश्रयसे होता है; किन्तु प्रकृत अल्लीपनबन्धमें कटकादिकोंका वह बन्ध अन्य पृथग्भूत द्रव्योंके विना ही परस्पर होता है। यह इन दोनों बन्धोंमें भेद समझना चाहिये।

जो सो संसिलेसबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो– जहा कट्ठ-जदूणं अण्णोण्णसंसिलेसिदाणं बंधो संभवदि सो सव्वो संसिलेसबंधो णाम ॥ ४३ ॥

जो संश्लेषबन्ध है उसका निर्देश इस प्रकार है जैसे परस्पर संश्लेषको प्राप्त हुए काष्ठ और लाखका जो बन्ध होता है वह सब संश्लेषबन्ध है ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार आलापनबन्धमें बध्यमान पुद्गलोंके अतिरिक्त अन्य लोह वे और रस्सी आदिकी आवश्यकता होती है तथा अल्लीपनबन्धमें पानीकी आवश्यकता होती है उस प्रकार प्रकृत संश्लेषबन्धमें जतु (लाख) और काष्ठ आदि बध्यमान पुद्गलोंके अतिरिक्त अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं रहती, यह इस बन्धकी विशेषता समझनी चाहिये।

जो सो सरीरबंधो णाम सो पंचविहो– ओरालियसरीरबंधो वेउव्वियसरीरबंधो आहारसरीरबंधो तेयासरीरबंधो कम्मइयसरीरबंधो चेदि ॥ ४४ ॥

जो वह शरीरबन्ध है वह पांच प्रकारका है– औदारिकशरीरबन्ध, वैक्रियिकशरीरबन्ध, आहारकशरीरबन्ध, तैजसशरीरबन्ध और कार्मणशरीरबन्ध ॥ ४४ ॥

ओरालिय-ओरालियसरीरबंधो ॥ ४५ ॥

औदारिकशरीरस्वरूप नोकर्मपुद्गलस्कन्धोंका जो अन्य औदारिकशरीररूप नोकर्मपुद्गल-स्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह औदारिक-औदारिकशरीरबन्ध कहलाता है ॥ ४५ ॥

यह एक संयोगसे एक ही भंगरूप शरीरबन्ध है ।

ओरालिय-तेयासरीरबंधो ॥ ४६ ॥ ओरालिय-कम्मइयसरीरबंधो ॥ ४७ ॥

एक ही जीवमें जो औदारिकशरीररूप पुद्गलस्कन्धोंका तैजसशरीररूप पुद्गलस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह औदारिक-तैजसशरीरबन्ध कहलाता है ॥ ४६ ॥ औदारिकशरीररूप पुद्गल-स्कन्धोंका जो कार्मणशरीररूप पुद्गलस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है उसे औदारिक-कार्मणशरीरबन्ध जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

इस प्रकार द्विसंयोगी भंग दो ही होते हैं । कारण यह कि औदारिकशरीरका तैजस और कार्मण शरीरोंके अतिरिक्त अन्य वैक्रियिक एवं आहारक शरीरोंके साथ बन्ध सम्भव नहीं है । यद्यपि मनुष्योंमें औदारिकशरीरके साथ आहारकशरीर कदाचित् पाया जाता है तथापि उस समय चूंकि औदारिकशरीरका उदय नहीं रहता है, अत एव उसे यहां नहीं ग्रहण किया गया है ।

ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरबंधो ॥ ४८ ॥

एक ही जीवमें स्थित औदारिक, तैजस और कार्मणशरीररूप स्कन्धोंका जो परस्पर बन्ध होता है वह औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरबन्ध है । यह त्रिसंयोगी एक ही भंग है ॥ ४८ ॥

वेउव्विय-वेउव्वियसरीरबंधो ॥४९॥ वेउव्विय-तेयासरीरबंधो ॥५०॥ वेउव्विय कम्मइयसरीरबंधो ॥ ५१ ॥

एक ही जीवमें वैक्रियिकशरीररूप पुद्गलस्कन्धोंका जो अन्य वैक्रियिकशरीररूप पुद्गल-स्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह वैक्रियिक-वैक्रियिकशरीरबन्ध है ॥ ४९ ॥ वैक्रियिकशरीरबन्धोंका जो तैजसशरीरस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह वैक्रियिक-तैजसशरीरबन्ध है ॥ ५० ॥ वैक्रियिक और कार्मणशरीरबन्धोंका जो एक ही जीवमें परस्पर बन्ध होता है वह वैक्रियिक-कार्मणशरीर-स्कन्ध है ॥ ५१ ॥

ये वैक्रियिकशरीर सम्बन्धी तीन द्विसंयोगी भंग हैं ।

वेउव्विय-तेया-कम्मइयसरीरबंधो ॥ ५२ ॥

वैक्रियिक, तैजस और कार्मण शरीरस्कन्धोंका जो एक ही जीवमें परस्पर बन्ध होता है वह वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीरबन्ध कहलाता है ॥ ५२ ॥

यह एक वैक्रियिकशरीर सम्बन्धी त्रिसंयोगी भंग है ।

आहार-आहारसरीरबंधो ॥ ५३ ॥ आहार-तेयासरीरबंधो ॥ ५४ ॥ आहार-कम्म-इयसरीरबंधो ॥ ५५ ॥

आहारशरीरस्कन्धोंकी जो एक ही जीवमें अवस्थित अन्य आहारशरीरस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह आहार-आहारशरीरबन्ध है ॥ ५३ ॥ आहारशरीरस्कन्धोंका जो एक ही जीवमें अवस्थित तैजसशरीरस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह आहार-तैजसशरीरबन्ध है ॥ ५४ ॥ आहारशरीर-स्कन्धोंका जो एक ही जीवमें अवस्थित कार्मणशरीरस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह आहार-कार्मणशरीरबन्ध है ॥ ५५ ॥

ये तीन आहारशरीर सम्बन्धी द्विसंयोगी भंग हैं ।

आहार-तेया-कम्मइयसरीरबंधो ॥ ५६ ॥

एक ही जीवमें अवस्थित आहार, तैजस और कार्मण शरीरस्कन्धोंका जो परस्पर बन्ध होता है वह आहार-तैजस-कार्मणशरीरबन्ध है ॥ ५६ ॥

यह एक आहारशरीर सम्बन्धी त्रिसंयोगी भंग है ।

तेया तेयासरीरबंधो ॥ ५७ ॥ तेया-कम्मइयसरीरबंधो ॥ ५८ ॥

एक ही जीवमें अवस्थित तैजसशरीररूप स्कन्धोंका जो अन्य तैजसशरीररूप स्कन्धोंके साथ बन्ध होता है उसका नाम तैजस-तैजसशरीरबन्ध है ॥ ५७ ॥ एक ही जीवमें अवस्थित तैजसशरीरस्कन्धोंका जो कार्मणशरीरस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है वह तैजस-कार्मणशरीरबन्ध कहा जाता है ॥ ५८ ॥

ये तैजसशरीर सम्बन्धी दो भंग है ।

कम्मइय-कम्मइयसरीरबंधो ॥ ५९ ॥

एक जीवमें स्थित कार्मणशरीरस्कन्धोंका जो अन्य कार्मणशरीरस्कन्धोंके साथ बन्ध होता है उसका नाम कार्मण-कार्मणशरीरबन्ध है ॥ ५९ ॥

यह एक भंग कार्मणशरीरबन्ध सम्बन्धी है । इसके अतिरिक्त कार्मण-औदारिकशरीरबन्ध और कार्मण-वैक्रियिकशरीरबन्ध आदि उसके और भी भंग सम्भव हैं, परन्तु वे चूंकि पूर्वमें निर्दिष्ट किये जा चुके हैं, अत एव उनका निर्देश पुनरुक्तिके कारण यहां फिरसे नहीं किया गया है, यह विशेष जानना चाहिये ।

सो सव्वो सरीरबंधो णाम ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त वह सब शरीरबन्ध है ॥ ६० ॥

जो सो सरीरिबंधो णाम सो दुविहो— सादियसरीरिबंधो चेव अणादियसरीरि-बंधो चेव ॥ ६१ ॥

जो वह शरीरिबन्ध है वह दो प्रकारका है— सादिशरीरबन्ध और अनादिशरीरिबन्ध ॥

जो सो सादियसरीरिबंधो णाम सो जहा सरीरबंधो तहा णेदव्वो ॥ ६२ ॥

जो वह सादिशरीरिबन्ध है उसकी प्ररूपणा शरीरबन्धके समान जाननी चाहिये ॥६२॥

शरीरीसे अभिप्राय शरीरधारी जीवका है। उसका जो औदारिक व वैक्रियिक आदि शरीरोंके साथ बन्ध होता है उसे शरीरिबन्ध जानना चाहिये। उसके भंगोंकी प्ररूपणा शरीरबन्धके ही समान है। यथा– औदारिकशरीरसे शरीरिका बन्ध, वैक्रियिकशरीरीका बन्ध, इत्यादि।

जो अणादियसरीरिबंधो णाम यथा अट्ठण्णं जीवमज्झपदेसाणं अण्णोण्णपदेसबंधो भवदि सो सव्वो अणादियसरीरिबंधो णाम ॥ ६३ ॥

जो वह अनादिशरीरिबन्ध है वह इस प्रकार है– जीवके आठ मध्यप्रदेशोंका परस्पर प्रदेशबन्ध होता है, यह सब अनादिशरीरिबन्ध है ॥ ६३ ॥

जिस प्रकार आठों जीवमध्यप्रदेशोंका अनादिकालसे परस्पर प्रदेशबन्ध है उसी प्रकार शरीरधारी प्राणीका अनादि कालसे सामान्यतः कर्म और नोकर्मके साथ बन्ध हो रहा है। इसे अनादिशरीरिबन्ध समझना चाहिये।

जो सो थप्पो कम्मबंधो णाम यथा कम्मेत्ति तहा णेदव्वं ॥ ६४ ॥

जो वह कर्मबन्ध स्थगित किया गया था उसकी प्ररूपणा कर्म अनुयोगद्वारके समान जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

॥ बन्धकी प्ररूपणा समाप्त हुई ॥ १ ॥

२. बंधगाणियोगद्दारं

जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिद्देसो– गदि इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारे चेदि ॥ ६५ ॥

जो वे बन्धक हैं उनका निदश इस प्रकार है– गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ॥ ६५ ॥

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया बंधा तिरिक्खा बंधा देवा बंधा मणुसा बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि सिद्धा अबंधा एवं खुद्दाबंधएक्कारस अणियोगद्दारं णेयव्वं ॥

गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकजीव बन्धक हैं, तिर्यंच बन्धक हैं, देव बन्धक हैं, मनुष्य बन्धक हैं और अबन्धक भी हैं, तथा सिद्ध अबन्धक हैं। इस प्रकार यहां क्षुल्लकबन्धके ग्यारह अनुयोगद्वारों जैसी प्ररूपणा जाननी चाहिए ॥ ६६ ॥

एवं महादंडया णेयव्वा ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार महादण्डक जानना चाहिए ॥ ६७ ॥

॥ बन्धकोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ॥ २ ॥

३. बंधणिज्जाणियोगद्दारं

जं तं बंधणिज्जं णाम तस्स इममणुगमणं कस्सामो वेदणअप्पा पोग्गला, पोग्गला खंध समुद्दिट्ठा, खंधा वग्गणसमुद्दिट्ठा ॥ ६८ ॥

जो वह बन्धनीय है उसका इस प्रकार अनुगमन करते हैं– वेदनास्वरूप पुद्गल हैं, वे वेदनास्वरूप पुद्गल स्कन्धस्वरूप हैं, और वे स्कन्ध वर्गणास्वरूप हैं ॥ ६८ ॥

वग्गणाणमणुगमणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति– वग्गणा वग्गणदव्वसमुदाहारो अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा अवहारो जवमज्झं पदमीमांसा अप्पाबहुए त्ति ॥ ६९ ॥

वर्गणाओंका परिज्ञान कहनेमें प्रयोजनीभूत अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं– वर्गणा, वर्गणा द्रव्यसमुदाहार अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, अवहार, यवमध्य, पद्मीमांसा और अल्पबहुत्व ॥६९॥

अब उक्त आठ अनुयोगद्वारोंमें प्रथम वर्गणाकी प्ररूपणामें प्रयोजनीभूत सोलह अनुयोग-द्वारोंका निर्देश करते हैं–

वग्गणा त्ति तत्थ इमाणि वग्गणाए सोलस अणिओगद्दाराणि– वग्गणणिक्खेवे वग्गणणयविभासणदाए वग्गणपरूवणा वग्गणणिरूवणा, वग्गणधुवाधुवाणुगमो वग्गणसांतर-णिरंतराणुगमो वग्गणओजजुम्माणुगमो वग्गणखेत्ताणुगमो वग्गणफोसणाणुगमो वग्गणफोस-णाणुगमो वग्गणकालाणुगमो वग्गणअंतराणुगमो वग्गणभावाणुगमो वग्गणउवणयणाणुगमो वग्गणपरिमाणाणुगमो वग्गणभागाभागाणुगमो वग्गणअप्पाबहुए त्ति ॥ ७० ॥

अब वर्गणाका प्रकरण है। उसके विषयमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं– वर्गणा-निक्षेप, वर्गणानयविभाषणता, वर्गणाप्ररूपणा, वर्गणानिरूपणा, वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम, वर्गणासान्तर-निरन्तरानुगम वर्गणाओज-युग्मानुगम, वर्गणाक्षेत्राणुगम, वर्गणास्पर्शनानुगम, वर्गणाकालानुगम, वर्गणा-अन्तरानुगम वर्गणाभावानुगम, वर्गणाउपनयनानुगम, वर्गणापरिमाणानुगम, वर्गणाभागाभागानुगम और वर्गणाअल्पबहुत्वानुगम ॥ ७० ॥

वग्गणणिक्खेवे त्ति छव्विहे वग्गणणिक्खेवे– णामवग्गणा ट्ठवणवग्गणा दव्ववग्गणा खेत्तवग्गणा कालवग्गणा भाववग्गणा चेदि ॥ ७१ ॥

उक्त सोलह अनुयोगद्वारोंमें क्रमशः वर्गणानिक्षेपका प्रकरण है। वह वर्गणानिक्षेप छह प्रकारका है– नामवर्गणा, स्थापनावर्गणा, द्रव्यवर्गणा, क्षेत्रवर्गणा, कालवर्गणा और भाववर्गणा ॥७१॥

वग्गणणयविभासणदाए को णओ काओ वग्गणाओ इच्छदि? णेगम-ववहार-संगहा सव्वाओ ॥ ७२ ॥

वर्गणानयविभाषणताका प्रकरण है– कौन नय किन वर्गणाओंको स्वीकार करता है ? नैगम, व्यवहार और संग्रहनय सब वर्गणाओंको स्वीकार करते हैं ॥ ७२ ॥

उजुसुदो ट्ठवणवग्गणं णेच्छदि ॥ ७३ ॥

ऋजुसूत्रनय स्थापनावर्गणाको नहीं स्वीकार करता ॥ ७३ ॥

सद्दणओ णामवग्गणं भाववग्गणं च इच्छदि ॥ ७४ ॥

शब्दनय नामवर्गणा और भाववर्गणाको स्वीकार करता है ॥ ७४ ॥

वग्गणदव्वसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि चोद्दस अणियोगद्दाराणि– वग्गणपरूवणा वग्गणणिरूवणा वग्गणधुवाधुवाणुगमो वग्गणसांतर-णिरंतराणुगमो वग्गणओज-जुम्माणुगमो वग्गणखेत्ताणुगमो वग्गणफोसणाणुगमो वग्गणकालाणुगमो वग्गणअंतराणुगमो वग्गणभावाणुगमो वग्गणउवणयणाणुगमो वग्गणपरिमाणाणुगमो वग्गणभागाभागाणुगमो वग्गणअप्पाबहुए त्ति ॥ ७५ ॥

वर्गणाद्रव्यसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये चौदह अनुयोगद्वार हैं– वर्गणाप्ररूपणा, वर्गणानिरूपणा, वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम, वर्गणासान्तर-निरन्तरानुगम, वर्गणाओज-युग्मानुगम, वर्गणाक्षेत्रानुगम, वर्गणास्पर्शनानुगम, वर्गणाकालानुगम, वर्गणाअन्तरानुगम, वर्गणाभावानुगम, वर्गणाउपनयनानुगम, वर्गणापरिमाणानुगम, वर्गणाभागाभागानुगम और वर्गणाअल्पबहुत्वानुगम ॥ ७५ ॥

वग्गणपरूवणदाए इमा एयपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम ॥ ७६ ॥

वर्गणाकी प्ररूपणामें यह एकप्रदेशिकपरमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा है जो परमाणुस्वरूप है ॥

इमा दुपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम ॥ ७७ ॥

यह दो परमाणुओंके समुदायसे निष्पन्न द्विप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा है ॥ ७७ ॥

एवं तिपदेसिय - चदुपदेसिय - पंचपदेसिय - छप्पदेसिय - सत्तपदेसिय - अट्ठपदेसिय-णवपदेसिय - दसपदेसिय - संखेज्जपदेसिय - असंखेज्जपदेसिय - परित्तपदेसिय-अपरित्तपदेसिय-अणंतपदेसिय-अणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम ॥ ७८ ॥

इस प्रकार त्रिप्रदेशिक, चतुःप्रदेशिक, पञ्चप्रदेशिक, षट्प्रदेशिक, सप्तप्रदेशिक, अष्टप्रदेशिक, नवप्रदेशिक, दशप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक, परीतप्रदेशिक, अपरीतप्रदेशिक, अनन्तप्रदेशिक और अनन्तानन्तप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा है ॥ ७८ ॥

अणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणाणमुवरि आहारदव्ववग्गणा णाम ॥७९॥

उत्कृष्ट अनन्तानन्तप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणाके आगे एक अंककी वृद्धि होनेपर जघन्य आहारद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७९ ॥

आहारदव्ववग्गणाणमुवरि अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ८० ॥

आहारद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर एक अंकका प्रक्षेप करनेपर प्रथम अग्रहणद्रव्यवर्गणामें सर्वजघन्य वर्गणा होती है ॥ ८० ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि तेयादव्ववग्गणा णाम ॥ ८१ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंमें उत्कृष्ट आहारद्रव्यवर्गणाके ऊपर एक अंकका प्रक्षेप करनेपर तैजसशरीरद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८१ ॥

तेयादव्ववग्गणाणमुवरि अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ८२ ॥

तैजसशरीरद्रव्यवर्गणाओंमें उत्कृष्ट तैजसवर्गणाके ऊपर एक अंकका प्रक्षेप करनेपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८२ ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि भासादव्ववग्गणा णाम ॥ ८३ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंमें उत्कृष्ट अग्रहणद्रव्यवर्गणा ऊपर एक अंकका प्रक्षेप करनेपर जघन्य भाषाद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८३ ॥

भासादव्ववग्गणाणुमुवरि अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ८४ ॥

भाषाद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर तृतीय अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८४ ॥

अगहणदव्ववग्गणाए उवरि मणदव्ववग्गणा णाम ॥ ८५ ॥

अग्रहण द्रव्यवर्गणाओंके ऊपर मनोद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८५ ॥

मणदव्ववग्गणाणमुवरि अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ८६ ॥

मनोद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर चतुर्थ अग्रहण द्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८६ ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि कम्मइयदव्ववग्गणा णाम ॥ ८७ ॥

चतुर्थ अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर कार्मणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८७ ॥

कम्मइयदव्ववग्गणाणुमुवरि धुवक्खंधदव्ववग्गणा णाम ॥ ८८ ॥

कार्मणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८८ ॥

धुव्वक्खंधदव्ववग्गणाणमुवरि सांतरणिरंतरदव्ववग्गणा णाम ॥ ८९ ॥

ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर सान्तर-निरन्तर द्रव्यवर्गणा होती है ॥ ८९ ॥

सांतरनिरंतरदव्ववग्गणाणमुवरि धुवसुण्णवग्गणा णाम ॥ ९० ॥

सान्तर-निरन्तरद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर प्रथम ध्रुवशून्यवर्गणा होती है ॥ ९० ॥

धुव्वसुण्णदव्ववग्गणाणमुवरि पत्तेयसरीरदव्ववग्गणा णाम ॥ ९१ ॥

ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ९१ ॥

पत्तेयसरीरदव्ववग्गणाणमुवरि धुवसुण्णदव्ववग्गणा णाम ॥ ९२ ॥

प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर द्वितीय ध्रुवशून्यवर्गणा होती है ॥ ९२ ॥

धुव्वसुण्णदव्ववग्गणाणुमुवरि बादरणिगोददव्ववग्गणा णाम ॥ ९३ ॥

ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ९३ ॥

बादरनिगोददव्ववग्गणाणमुवरि धुवसुण्णदव्ववग्गणा णामं ॥ ९४ ॥

बादरनिगोदवर्गणाओंके ऊपर तृतीय ध्रुवशून्यवर्गणा होती है ॥ ९४ ॥

धुवसुण्णदव्ववग्गणाणमुवरि सुहुमणिगोदवग्गणा णाम ॥ ९५ ॥

ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है ॥ ९५ ॥

सुहुमणिगोददव्ववग्गणाणमुवरि धुवसुण्णदव्ववग्गणा णाम ॥ ९६ ॥

सूक्ष्मनिगोदद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर चतुर्थ ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ९६ ॥

धुवसुण्णवग्गणाणमुवरि महाखंधदव्ववग्गणा णाम ॥ ९७ ॥

ध्रुवशून्यवर्गणाओंके ऊपर महास्कन्धद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ९७ ॥

वग्गणाणिरूवणदाए इमा एयपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणाणाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेद-संघादेण ? ॥ ९८ ॥

वर्गणानिरूपणाकी अपेक्षा एकप्रदेशिक परमाणुपुद्गलवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है, या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ ९८ ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण ॥ ९९ ॥

वह एकप्रदेशिकवर्गणा ऊपरके द्रव्योंके पूर्वोक्त द्विप्रदेशिक आदि उपरिम वर्गणाओंके भेदसे उत्पन्न होती है ॥ ९९ ॥

इमा दुपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेद-संघादेण ? ॥ १०० ॥

यह द्विप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है, या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ १०० ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण हेट्ठिल्लीणं दव्वाणं संघादेण सत्थाणेण भेद-संघादेण ॥

वह द्विप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा ऊपरके द्रव्योंके भेदसे और नीचेके द्रव्योंके संघातसे तथा स्वस्थानमें भेद-संघातसे होती है ॥ १०१ ॥

तिपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा चदु - पंच - छ-सत्त - अट्ठ - णव - दस - संखेज्ज-असंखेज्ज-परित्त-अपरित्त-अणंत-अणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेद-संघादेण ? ॥ १०२ ॥

त्रिप्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा चारप्रदेशी, पांचप्रदेशी, छहप्रदेशी, सातप्रदेशी,

आठप्रदेशी, नौप्रदेशी, दसप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी, परीतप्रदेशी, अपरीतप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी और अनन्तानन्तप्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है, या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ १०२ ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण हेट्ठिल्लीणं दव्वाणं संघादेण सत्थाणेण भेद-संघादेण ॥

वह त्रिप्रदेशिक पुद्गलद्रव्यवर्गणा ऊपरके द्रव्योंके भेदसे, नीचेके द्रव्योंके संघातसे और स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे होती है ॥ १०३ ॥

आहार-अगहण-तेया-अगहण-भासा-अगहण-मण - अगहण-कम्मइय - धुवक्खंधदव्व-वग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ? ॥ १०४ ॥

आहारद्रव्यवर्गणा, अग्रहणद्रव्यवर्गणा, तैजसद्रव्यवर्गणा, अग्रहणद्रव्यवर्गणा, भाषाद्रव्य-वर्गणा, अग्रहणद्रव्यवर्गणा, मनोद्रव्यवर्गणा, अग्रहणद्रव्यवर्गणा, कार्मणद्रव्यवर्गणा और ध्रुवस्कन्धद्रव्य-वर्गणा ये क्या भेदसे होती हैं, क्या संघातसे होती हैं, या क्या भेद-संघातसे होती हैं ? ॥ १०४ ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण हेट्ठिल्लीणं दव्वाणं संघादेण सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥

वे ऊपरके द्रव्योंके भेदसे, नीचेके द्रव्योंके संघातसे और स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे होती हैं ॥ १०५ ॥

धुव्वखंधदव्ववग्गणाणमुवरि सांतर-णिरंतरदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ? ॥ १०६ ॥

ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर सान्तर-निरन्तरद्रव्यवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है, या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ १०६ ॥

सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥ १०७ ॥

वह स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे होती है ॥ १०७ ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण हेट्ठिल्लीणं दव्वाणं संघादेण सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥

वह ऊपरके द्रव्योंके भेदसे, नीचेके द्रव्योंके संघातसे और स्वस्थानकी अपेक्षा भेद संघातसे होती है ॥ १०८ ॥

सांतर-णिरंतरदव्ववग्गणाणमुवरि पत्तेयसरीरदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ? ॥ १०९ ॥

वह सान्तर-निरन्तरद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणा क्या संघातसे होती है या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ १०९ ॥

सत्थाणेण भेद-संघादेण ॥ ११० ॥

वह स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे होती है ॥ ११० ॥

पत्तेयसरीरवग्गणाए उवरि बादरणिगोददव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ? ॥ १११ ॥

प्रत्येकशरीरवर्गणाके ऊपर बादरनिगोदवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है, या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ १११ ॥

सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥ ११२ ॥

वह स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे होती है ॥ ११२ ॥

बादरनिगोददव्ववग्गणाणमुवरि सुहुमणिगोददव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ? ॥ ११३ ॥

बादरनिगोदद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर सूक्ष्मनिगोदद्रव्यवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है या क्या भेद-संघातसे होती है ? ॥ ११३ ॥

सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥ ११४ ॥

वह स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे होती है ॥ ११४ ॥

सुहुमणिगोदवग्गणाणमुवरि महाखंधदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ? ॥ ११५ ॥

सूक्ष्मनिगोदवर्गणाओंके ऊपर महास्कन्धद्रव्यवर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे होती है, या क्या भेदसंघातसे होती है ? ॥ ११५ ॥

सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥ ११६ ॥

वह स्वस्थानकी अपेक्षा भेदसंघातसे होती है ॥ ११६ ॥

तत्थ इमाए बाहिरियाए वग्गणाए अण्णा परूवणा कायव्वा भवदि ॥ ११७ ॥

अब वहां इस बाह्यवर्गणाकी अन्य प्ररूपणा की जाती है ॥ ११७ ॥

तत्थ इमाणि चत्तारि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति– सरीरिसरीरपरूवणा सरीरपरूवणा सरीरविस्सासुवचयपरूवणा विस्सासुवचयपरूवणा चेदि ॥ ११८ ॥

उसकी प्ररूपणामें ये चार अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं– शरीरिशरीरप्ररूपणा, शरीरप्ररूपणा शरीरविस्रसोपचयप्ररूपणा और विस्रसोपचयप्ररूपणा ॥ ११८ ॥

सरीरिसरीरपरूवणदाए अत्थि जीवा पत्तय-साधारणसरीरा ॥ ११९ ॥

शरीरि-शरीरप्ररूपणाकी अपेक्षा जीव प्रत्येकशरीरवाले और साधारणशरीरवाले हैं ॥११९॥

तत्थ जे ते साहारणसरीरा ते णियमा वणप्फदिकाइया, अवसेसा पत्तेयसरीरा ॥

उनमेंसे जो साधारणशरीर जीव हैं वे नियमसे वनस्पतिकायिक हैं तथा शेष जीव प्रत्येकशरीर हैं ॥ १२० ॥

तत्थ इमं साहारणलक्खणं भणिदं ॥ १२१ ॥

उनमें साधारणका यह लक्षण कहा गया है ॥ १२१ ॥

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च ।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणिदं ॥ १२२ ॥

साधारण आहार और साधारण उच्छ्वास-निश्वासका ग्रहण, यह साधारण जीवोंका साधारण लक्षण कहा गया है ॥ १२२ ॥

अभिप्राय यह है कि एक ही शरीरमें अवस्थित जिन अनन्त जीवोंमें एक जीवके द्वारा आहार ग्रहण करनेपर सबका आहार तथा एकके उच्छ्वास-निःश्वास लेनेपर सबका उच्छ्वास-निश्वास होता है वे साधारणवनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं ।

एयस्स अणुग्गहणं बहूण साहारणाणमेयस्स ।
एयस्स जं बहूणं समासदो तं पि होदि एयस्स ॥ १२३ ॥

एक जीवका जो अनुग्रहण अर्थात् पर्याप्तियोंके निष्पादनार्थ जो पुद्गलपरमाणुओंका उपकार है वह बहुत साधारण जीवोंका अनुग्रहण है और इसका भी है तथा बहुत जो अनुग्रहण है वह मिलकर इस विवक्षित जीवका अनुग्रहण है तथा अन्य प्रत्येकका जीवोंका भी है ॥ १२३ ॥

समगं वक्कंताणं समगं तेसिं सरीरणिप्पत्ती ।
समगं च अणुग्गहणं समगं उस्सास-णिस्सासो ॥ १२४ ॥

एक ही निगोदशरीरमें आगे पीछे उत्पन्न होनेवाले अनन्त जीवोंके शरीरकी निष्पत्ति एक साथ होती हैं, अनुग्रहण एक साथ होता है, और उच्छ्वास-निःश्वास भी एक साथ होता है ॥

जत्थेउ मरइ जीवो तत्थ दु मरणं भवे अणंताणं ।
वक्कमइ जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थणंताणं ॥ १२५ ॥

जिस शरीरमें एक जीव मरता है वहां अनन्त जीवोंका मरण होता है और जिस शरीरमें एक जीव उत्पन्न होता है वहां अनन्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १२५ ॥

बादरसुहुमणिगोदा बद्धा पुट्ठा य एयमेएण ।
ते हु अणंता जीवा मूलयथूहल्लयादीहि ॥ १२६ ॥

बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव ये परस्परमें बद्ध और स्पृष्ट होकर रहते हैं। तथा वे (बादर) अनन्त जीव मूली, थूवर और आर्द्रक आदिके निमित्तसे होते हैं ॥ १२६ ॥

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकअपउरा णिगोदवासं णं मुंचंति ॥ १२७ ॥

जिन्होंने अतीत कालमें त्रस पर्यायको नहीं प्राप्त किया है ऐसे अनन्त जीव हैं। वे अतिशय संक्लेशकी प्रचुरतासे निगोदवासको नहीं छोड़ते हैं ॥ १२७ ॥

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वि तीदकालेण ॥ १२८ ॥

एक निगोदशरीरमें अवस्थित जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सबही अतीत कालमें सिद्ध हुए जीवोंसे भी अनन्तगुणे देखे गये हैं ॥ १२८ ॥

निगोद जीव दो प्रकारके हैं-- चतुर्गति-निगोद जीव और नित्यनिगोद जीव । जो जीव देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पुनः निगोदमें जाकर अवस्थित होते हैं वे चतुर्गति-निगोद जीव कहे जाते हैं । और जो जीव सर्वदा निगोदमें ही रहनेवाले हैं वे नित्यनिगोद जीव कहलाते हैं । उन नित्यनिगोद जीवोंके परिणाममें इतनी अधिक संक्लेशकी प्रचुरता होती है कि जिसके कारण वे कभी उस निगोद अवस्थाको छोड़कर त्रस पर्यायको नहीं प्राप्त कर सकते हैं । उन निगोद जीवोंके शरीर असंख्यात लोक मात्र हैं और उनमेंसे प्रत्येक शरीरमें अनन्त जीव रहते हैं, जिनका प्रमाण समस्त अतीत कालमें सिद्ध हुए जीवोंकी अपेक्षा भी अनन्तगुणा है । यही कारण है जो प्रत्येक छह महिने और आठ समयोंमें छह सौ आठ जीवोंके निरन्तर सिद्ध होनेपर भी संसारी जीवोंका कभी अभाव नहीं होता । कारण यह है कि आयसे रहित जिन संख्याओंका व्ययके होनेपर विनाश सम्भव है वे संख्याएँ संख्यात और असंख्यात कही जाती हैं और जिन आयरहित संख्याओंका संख्यात और असंख्यात स्वरूपसे व्ययके होनेपर भी कभी विनाश सम्भव नहीं है वे संख्याएँ अनन्त कही जाती हैं । असंख्यात लोक प्रमाण उन निगोद शरीरोंमेंसे चूंकि एक एक शरीरमें ही जब अनन्त जीव अवस्थित हैं तब निरन्तर व्ययके होनेपर भी कभी संसारी जीवराशिका अन्त नहीं हो सकता है । यह उपर्युक्त दो गाथासूत्रोंका अभिप्राय समझना चाहिये ।

एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति-- संतपरूवणा दव्वपमाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ॥ १२९ ॥

इस अर्थपदके अनुसार यहां ये अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं-- सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ॥ १२९ ॥

संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो-- ओघेण आदेसेण ॥ १३० ॥

सत्प्ररूपणाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है- ओघ निर्देश और आदेशनिर्देश ॥

ओघेण अत्थि जीवा विसरीरा तिसरीरा चदुसरीरा असरीरा ॥ १३१ ॥

ओघसे दो शरीरवाले तीन शरीरवाले, चार शरीरवाले, और शरीररहित जीव हैं ॥१३१॥

विग्रहगतिमें अवस्थित जीवोंके चूंकि तैजस व कार्मण ये दो ही शरीर पाये जाते हैं, अत एव 'द्विशरीर' से यहां उनको ग्रहण किया गया है । जिन जीवोंके औदारिक, तैजस और कार्मण अथवा वैक्रियिक, तैजस और कार्मण ये तीन शरीर पाये जाते हैं उन्हें त्रिशरीर तथा

औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मण अथवा औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण इन चार शरीरोंसे संयुक्त जीवोंको चतुःशरीर जानना चाहिये ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु अत्थि जीवा बिसरीरा तिसरीरा ॥

आदेशसे, गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिकी अपेक्षा नारकियोंमें दो शरीरवाले (विग्रहगतिमें) और तीन शरीरवाले जीव हैं ॥ १३२ ॥

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ १३३ ॥

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें अवस्थित नारकियोंको विग्रहगतिमें द्विशरीर तथा तत्पश्चात् त्रिशरीर जानना चाहिये ॥ १३३ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख - पंचिंदियतिरिक्ख - पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त - पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु ओघं ॥ १३४ ॥

तिर्यञ्चगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिनी जीवोंमें प्रकृत प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १३४ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता अत्थि जीवा बिसरीरा तिसरीरा ॥ १३५ ॥

पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त जीव दो शरीरवाले और तीन शरीरवाले होते हैं उनमें चार शरीर सम्भव नहीं हैं ॥ १३५ ॥

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओघं ॥ १३६ ॥

मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें प्रकृत प्ररूपणा ओघ के समान है ॥ १३६ ॥

मणुसअपज्जत्ता अत्थि जीवा बिसरीरा तिसरीरा ॥ १३७ ॥

मनुष्य अपर्याप्त दो शरीरवाले और तीन शरीरवाले होते हैं ॥ १३७ ॥

देवगदीए देवा अत्थि जीवा बिसरीरा तिसरीरा ॥ १३८ ॥

देवगतिमें देव दो शरीरवाले और तीन शरीरवाले होते हैं ॥ १३८ ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा ॥ १३९ ॥

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी तकके देवोंमें जानना चाहिये ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरेइंदिया तेसिं पज्जत्ता पंचिंदियपंचिंदियपज्जत्ता ओघं ॥ १४० ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंकी तथा पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १४० ॥

बादरएइंदियअपज्जत्ता सुहुमेइंदिया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ता णेरइयभंगो ॥ १४१ ॥

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय एवं इन तीनोंके पर्याप्त व अपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है ॥ १४१ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा तेसिं बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरतेउक्काइयअपज्जत्ता बादरवाउक्काइयअपज्जत्ता सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइयअपज्जत्ता अत्थि जीवा विसरीरा तिसरीरा ॥ १४२ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव; उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, एवं त्रसकायिक अपर्याप्त जीव दो शरीरवाले और तीन शरीरवाले होते हैं ॥ १४२ ॥

तेउक्काइया वाउक्काइया बादरतेउक्काइया बादरवाउक्काइया तेसिं पज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता ओघं ॥ १४३ ॥

अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और उनके पर्याप्त, त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १४३ ॥

जोगाणुवादेण पचमणजोगी पंचवचिजोगी ओरालियकायजोगी अत्थि जीवा तिसरीरा चदुसरीरा ॥ १४४ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, वचनयोगी पांचों और औदारिककाययोगी जीव तीन शरीरवाले और चार शरीरवाले होते हैं ॥ १४४ ॥

विग्रहगतिमें चूंकि उक्त ग्यारह योगवाले जीवोंके अस्तित्वकी सम्भावना नहीं है, अत एव उनके दो शरीर नहीं पाये जाते हैं; यह यहां विशेष जानना चाहिये ।

कायजोगी ओघं ॥ १४५ ॥

काययोगी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १४५ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु अत्थि जीवा तिसरीरा ॥ १४६ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें विग्रहगतिकी सम्भावना न होनेसे उनमें तीन शरीरवाले ही जीव होते हैं– दो शरीरवाले नहीं होते ॥

उक्त तीन योगवालोंके आहारकशरीरके (उदयकी) सम्भावना न होनेसे तथा अपर्याप्त-कालमें विक्रियशक्तिके भी सम्भव न होनेसे उनमें चार शरीरोंकी सम्भावना नहीं है।

आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी अत्थि जीवा चदुसरीरा ॥ १४७ ॥

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीव चार शरीरवाले होते हैं ॥ १४७ ॥

कम्मइयकायजोगी णेरइयाणं भंगो ॥ १४८ ॥

कार्मणकाययोगी जीवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है ॥ १४८ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा ओघं ॥ १४९ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुसंकवेदी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १४९ ॥

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई ओघं ॥ १५० ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले और लोभ-कषायवाले जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १५० ॥

अवगदवेदा अकसाई अत्थि जीवा तिसरीरा ॥ १५१ ॥

अपगतवेदी और अकषायवाले जीव औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीन शरीरोंवाले होते हैं ॥ १५१ ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी ओघं ॥ १५२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

विभंगणाणी मणपज्जवणाणी अत्थि जीवा तिसरीरा चदुसरीरा ॥ १५३ ॥

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव तीन शरीरवाले और चार शरीरवाले होते हैं ॥

आभिणि-सुद-ओहिणाणी ओघं ॥ १५४ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

केवलणाणी अत्थि जीवा तिसरीरा ॥ १५५ ॥

केवलज्ञानी जीव तीन शरीरवाले होते हैं ॥ १५५ ॥

संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा संजदासंजदा अत्थि जीवा तिसरीरा चदुसरीरा ॥ १५६ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयत, सामायिकशुद्धिसंयत, छेदोपस्थानाशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीव तीन शरीरवाले और चार शरीरवाले होते हैं ॥ १५६ ॥

विग्रहगतिकी सम्भावना न होनेसे उनमें दो शरीरवाले नहीं होते।

परिहारविसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खाद-विहार-सुद्धिसंजदा अत्थि जीवा तिसरीरा ॥ १५७ ॥

परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्पराय-शुद्धि-संयत और यथाख्यात-विहार-शुद्धिसंयत जीव तीन शरीरवाले होते हैं ॥ १५७ ॥

असंजदा ओघं ॥ १५८ ॥

असंयत जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १५८ ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी ओघं ॥ १५९ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १५९ ॥

केवलदंसणी अत्थि जीवा तिसरीरा ॥ १६० ॥

केवलदर्शनवाले जीव तीन शरीरवाले होते हैं ॥ १६० ॥

लेस्साणुवादेण किण्ण-णील-काउलेस्सिया तेउ-पम्म-सुक्क-लेस्सिया ओघं ॥१६१॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १६१ ॥

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ओघं ॥ १६२ ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्य और अभव्य जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ १६३ ॥

सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १६३ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठीणं मणजोगिभंगो ॥ १६४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा मनोयोगी जीवोंके समान है ॥ १६४ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी ओघं ॥ १६५ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १६५ ॥

आहाराणुवादेण आहारा मणजोगिभंगो ॥ १६६ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंकी प्ररूपणा मनोयोगी जीवोंके समान है ॥

अणाहारा कम्मइयभंगो ॥ १६७ ॥

अनाहारक जीवोंकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ॥ १६७ ॥

अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ॥ १६८ ॥

अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥

ओघेण सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥ १६९ ॥ असरीरा अणंतगुणा ॥ १७० ॥ बिसरीरा अणंतगुणा ॥ १७१ ॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ १७२ ॥

ओघसे चार शरीरवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १६९ ॥ उनसे अशरीरी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १७० ॥ उनसे दो शरीरवाले जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १७१ ॥ उनसे तीन शरीरवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १७२ ॥

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा बिसरीरा ॥ १७३ ॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ १७४ ॥

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिसे नारकियोंमें दो शरीरवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १७३ ॥ उनसे तीन शरीरवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १७४ ॥

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥ १७५ ॥

इसी प्रकार प्रकृत अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा सातों ही पृथिवीयोंमें जानना चाहिये ॥१७५॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु ओघं ॥ १७६ ॥

तिर्यंचगतिकी अपेक्षा सामान्य तिर्यंचोंमें प्रकृत प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १७६ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख - पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त - पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥ १७७ ॥ बिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ १७८ ॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंमें चार शरीरवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १७७ ॥ उनसे दो शरीरवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १७८ ॥ उनसे तीन शरीरवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १७९ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख अपज्जत्ता णेरइयाणं भंगो ॥ १८० ॥

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है ॥ १८० ॥

मणुसगदीए मणुसा पंचिंदियतिरिक्खाणं भंगो ॥ १८१ ॥

मनुष्यगतिकी अपेक्षा सामान्य मनुष्योंमें प्रकृत अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है ॥ १८१ ॥

मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥ १८२ ॥ बिसरीरा संखेज्जगुणा ॥ १८३ ॥ तिसरीरा संखेज्जगुणा ॥ १८४ ॥

मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें चार शरीरवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १८२ ॥ उनसे दो शरीरवाले संख्यातगुणे हैं ॥ १८३ ॥ उनसे तीन शरीरवाले संख्यातगुणे हैं ॥ १८४ ॥

मणुसअपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ॥ १८५ ॥

मनुष्य अपर्याप्तकोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है ॥ १८५ ॥

देवगदीए देवा सव्वत्थोवा विसरीरा ॥१८६॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥१८७॥

देवगतिकी अपेक्षा देवोंमें दो शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ १८६ ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १८७ ॥

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव अवराइदविमाणवासियदेवा त्ति णेयव्वं ॥ १८८ ॥

इसी प्रकार प्रकृत अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा भवनवासियोंसे लेकर अपराजित विमानवासी देवों तक जानना चाहिये ॥ १८८ ॥

सव्वट्ठिसिद्धिविमाणवासियदेवा सव्वत्थोवा विसरीरा ॥ १८९ ॥ तिसरीरा संखेज्जगुणा ॥ १९० ॥

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें दो शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ १८९ ॥ उनसे तीन शरीरवाले संख्यातगुणे हैं ॥ १९० ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरइंदियपज्जत्ता ओघं ॥ १९१ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ १९१ ॥

बादरेइंदियअपज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ता सव्वत्थोवा विसरीरा ॥ १९२ ॥ तिसरीरा असंखेज्ज-गुणा ॥ १९३ ॥

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त-अपर्याप्त, तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व उनके पर्याप्त-अपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें दो शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ १९२ ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १९३ ॥

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता मणुसगदिभंगो ॥ १९४ ॥

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी प्ररूपणा मनुष्यगतिके समान है ॥ १९४ ॥

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरतेउ-काइय-बादरवाउकाइयअपज्जत्ता सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-अपज्जत्ता सव्वत्थोवा विसरीरा ॥ १९५ ॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोदजीव तथा उनके बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त; बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्त-

अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक एवं उनके पर्याप्त-अपर्याप्त तथा त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंमें दो शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ १९५ ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १९६ ॥

तेउकाइय-वाउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइयपज्जत्ता तसकाइया तसकाइय-पज्जत्ता पंचिंदियपज्जत्तभंगो ॥ १९७ ॥

अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक पर्याप्त तथा त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है ॥ १९७ ॥

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥ १९८ ॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ १९९ ॥

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें चार शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ १९८ ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १९९ ॥

कायजोगी ओघं ॥ २०० ॥

काययोगवाले जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २०० ॥

ओरालियकायजोगिसु सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥ २०१ ॥ तिसरीरा अणंतगुणा ॥

औदारिककाययोगी जीवोंमें चार शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ २०१ ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ २०२ ॥

ओरालियमिस्सकायजोगि वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहार-कायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुअं ॥ २०३ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें एक ही पदकी सम्भावना होनेसे अल्पबहुत्व नहीं है ॥ २०३ ॥

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा तिसरीरा ॥ २०४ ॥ विसरीरा अणंतगुणा ॥

कार्मणकाययोगी जीवोंमें तीन शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ २०४ ॥ उनसे दो शरीरवाले अनन्तगुणे हैं ॥ २०५ ॥

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा पंचिंदियभंगो ॥ २०६ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रियोंके समान है ॥ २०६ ॥

णवुंसयवेदा कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई ओघं ॥

नपुंसकवेदवाले जोवोंकी तथा कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले और लोभकषायवाले जीवोंकी भी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २०७ ॥

अवगदवेद-अकसाईणं णत्थि अप्पाबहुगं ॥ २०८ ॥

अपगतवेदी और अकषायी जीवोंमें एक ही पदके सम्भव होनेसे अल्पबहुत्व नहीं है ॥

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणी ओघं ॥ २०९ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

विहंगणाणीसु सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥२१०॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥२११॥

विभंगज्ञानी जीवोंमें चार शरीरवाले जीव सबसे स्तोक है ॥ २१० ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे ॥ २११ ॥

आभिणि-सुद-ओहिणाणीसु पंचिंदियपज्जत्ताणं भंगो ॥ २१२ ॥

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है ॥ २१२ ॥

मणपज्जवणाणीसु सव्वत्थोवा चदुसरीरा ॥ २१३ ॥ तिसरीरा संखेज्जगुणा ॥

मन:पर्ययज्ञानीयोंमें चार शरीरवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ २१३ ॥ उनसे तीन शरीरवाले जीव संख्यातगुणे हैं ॥ २१४ ॥

केवलणाणीसु णत्थि अप्पाबहुगं ॥ २१५ ॥

केवलज्ञानियोंमें एक ही पदके रहनेसे अल्पबहुत्व नहीं है ॥ २१५ ॥

संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा मणपज्जवणाणि भंगो ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयत, सामायिकशुद्धिसंयत, और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंकी प्ररूपणा मन:पर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २१६ ॥

परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं णत्थि अप्पाबहुगं ॥ २१७ ॥

परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंमें अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है ॥ २१७ ॥

संजदासंजदा विभंगणाणिभंगो ॥ २१८ ॥

संयतासंयतोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है ॥ २१८ ॥

असंजद-अचक्खुदंसणी ओघं ॥ २१९ ॥

असंयत और अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २१९ ॥

लेस्साणुवादेण किण्ण-णील-काउलेस्सिया भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धिया ओघं ॥ २२० ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले तथा

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया पंचिंदिय-पज्जत्ताणं भंगो ॥ २२१ ॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी तथा लेश्याकी अपेक्षा पीत-लेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है ॥ २२१ ॥

केवलदंसणीणं णत्थि अप्पाबहुगं ॥ २२२ ॥

केवलदर्शनियोंमें अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है ॥ २२२ ॥

सुक्कलेस्सिया सव्वत्थोवा विसरीरा ॥२२३॥ चदुसरीरा असंखेज्जगुणा ॥२२४॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ २२५ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें दो शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥ २२३ ॥ उनसे चार शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ २२४ ॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥ २२५ ॥

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी पंचिंदियपज्जत्तभंगो ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है ॥ २२६ ॥

खइयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सव्वत्थोवा विसरीरा ॥ २२७ ॥ चदुसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ २२८ ॥ तिसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो शरीरवाले सबसे स्तोक हैं ॥२२७॥ उनसे चार शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥२२८॥ उनसे तीन शरीरवाले असंख्यातगुणे हैं ॥२२९॥

सम्मामिच्छाइट्ठी संजदासंजदाणं भंगो ॥ २३० ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी प्ररूपणा संयतासंयतोंके समान है ॥ २३० ॥

मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ २३१ ॥

मिथ्यादृष्टियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २३१ ॥

सण्णियाणुवादेण सण्णी पंचिंदियपज्जत्ताणं भंगो ॥ २३२ ॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है ॥ २३२ ॥

असण्णी ओघं ॥ २३३ ॥

असंज्ञियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ॥ २३३ ॥

आहाराणुवादेण आहारएसु ओरालियकायजोगिभंगो ॥ २३४ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंकी प्ररूपणा औदारिककाययोगियोंके समान है ॥

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ २३५ ॥

अनाहारक जीवोंकी प्ररूपणा कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ २३५ ॥

४. सरीरपरूवणा

सरीरपरूवणदाए तत्थ इमाणि छ अणियोगद्दाराणि— णामणिरुत्ती पदेसपमाणाणुगमो णिसेयपरूवणा गुणगारो पदमीमांसा अप्पाबहुए त्ति ॥ २३६ ॥

शरीरप्ररूपणाकी अपेक्षा वहां ये छह अनुयोगद्वार हैं— नामनिरुक्ति, प्रदेशप्रमाणानुगम, निषेक प्ररूपणा, गुणकार, पदमीमांसा और अल्पबहुत्व ॥ २३६ ॥

णामणिरुत्तीए उरालमिदि ओरालियं ॥ २३७ ॥

नामनिरुक्तिकी अपेक्षा जो अवगाहनासे उराल है वही औदारिक शरीर है ॥ २३७ ॥

'उदारमेव औदारिकम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो शरीर उदार— अन्य शरीरोंकी अपेक्षा महती अवगाहनावाला है उसे औदारिक शरीर कहा गया है। इसका कारण यह है कि महामत्स्यके औदारिक शरीरकी जो पांच सौ योजन विस्तृत और एक हजार योजन आयत अवगाहना पायी जाती है उसकी अपेक्षा अन्य किसी भी शरीरकी महती अवगाहना नहीं पायी जाती।

विविहइड्ढिगुणजुत्तमिदि वेउव्वियं ॥ २३८ ॥

विविध गुण-ऋद्धियोंसे युक्त होनेके कारण दूसरा शरीर वैक्रियिक कहा गया है ॥२३८॥

णिवुणाणं वा णिण्णाणं वा सुहुमाणं वा आहारदव्वाणं सुहुमदरमिदि आहारयं ॥

निपुण (मृदु) स्निग्ध और सूक्ष्म आहारद्रव्योंके मध्यमें आहारकशरीर चूंकि सूक्ष्मतर स्कन्धको आहरण (ग्रहण) करता हैं, अत एव उसे 'आहारक' इस सार्थक नामसे कहा गया है ॥ २३९ ॥

तेयप्पहगुणजुत्तमिदि तेजइयं ॥ २४० ॥

तेज (शरीरस्वरूप पुद्गलस्कन्धका वर्ण) और प्रभा (शरीरसे निकलनेवाली कान्ति) रूप गुणसे युक्त होनेके कारण चतुर्थ शरीरको 'तैजस' इस नामसे कहा गया है ॥ २४० ॥

सव्वकम्माणं परूहणुप्पादयं सुह-दुक्खाणं बीजमिदि कम्मइयं ॥ २४१ ॥

'कर्माणि प्ररोहन्ति अस्मिन् इति कार्मणम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो शरीर सब कर्मोंका आधार होकर उनका उत्पादक तथा सुख-दुखका बीज— कारण है उसे 'तैजस' इस नामसे कहा गया है,॥ २४१ ॥

पदेसपमाणाणुगमेण ओरालियसरीरस्स केवडियं पदेसग्गं ? ॥ २४२ ॥

प्रदेशप्रमाणानुगमकी अपेक्षा औदारिकशरीरका कितना प्रदेशपिण्ड है ? ॥ २४२ ॥

अभवसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागा ॥ २४३ ॥

उसका प्रदेशपिण्ड अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग है ॥ २४३ ॥

एवं चदुण्हं सरीराणं ॥ २४४ ॥

जिस प्रकार पूर्व सूत्रमें औदारिकशरीरके प्रदेशोंका प्रमाण अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग निर्दिष्ट किया गया है उसी प्रकार शेष चारों शरीरोंके भी प्रदेशोंका प्रमाण समझना चाहिये ॥ २४४ ॥

णिसेयपरूवणदाए तत्थ इमाणि छ अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति– समुक्कित्तणा पदेसपमाणाणुगमो अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा पदेसविरओ अप्पाबहुए त्ति ॥२४५॥

निषेक प्ररूपणाकी अपेक्षा यहां ये छह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं– समुत्कीर्तना, प्रदेशप्रमाणानुगम, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, प्रदेशविरच और अल्पबहुत्व ॥ २४५ ॥

समुक्कित्तणदाए ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरिणा तेणेव पढमसमय आहारएण पढमसमय तब्भवत्थेण ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं जीवे किंचि एगसमयमच्छदि किंचि विसमयमच्छदि किंचि तिसमयमच्छदि एवं जाव उक्कस्सेण तिण्णिपलिदोवमाणि तेत्तीस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तं ॥ २४६ ॥

समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा जो औदारिकशरीरवाला वैक्रियिकशरीरवाला और आहारकशरीरवाला जीव है उसी प्रथम समयमें आहारक और प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए जीवके द्वारा औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीररूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें बांधा गया है उसमेंसे कुछ प्रदेशाग्र एक समय रहता है, कुछ दो समय रहता है, और कुछ तीन समय रहता है; इस प्रकार उत्कृष्ट रूपसे वह क्रमशः तीन पल्य तेत्तीस सागर और अन्तर्मुहूर्त तक रहता है ॥ २४६ ॥

तेयासरीरिणा तेजासरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं जीवे किंचि एगसमयमच्छदि किंचि विसमयमच्छदि किंचि तिसमयमच्छदि एवं जाव उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि ॥ २४७ ॥

तैजसशरीरवाले जीवके द्वारा तैजसशरीररूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें बांधा गया हैं उसमेंसे कुछ जीवमें एक समय रहता है, कुछ दो समय रहता है और कुछ तीन समय रहता है; इस प्रकार उत्कृष्ट रूपसे वह छ्यासठ सागरोपम काल तक रहता है ॥ २४७ ॥

कम्मइयसरीरिणा कम्मइयसरीरत्ताए जं पदेसग्गं णिसित्तं तं किंचि जीवे समउत्तरावलियमच्छदि, किंचि विसमउत्तरावलियमच्छदि, किंचि तिसमउत्तरावलियमच्छदि, एवं जाव उक्कस्सेण कम्मट्ठिदि त्ति ॥ २४८ ॥

कार्मणशरीरयुक्त जीवने कार्मणशरीरस्वरूपसे जिस प्रदेशाग्रको बांधा है उसमेंसे कुछ प्रदेशाग्र जीवमें एक समय अधिक आवली काल तक, कुछ दो समय अधिक आवली काल तक, और कुछ तीन समय अधिक आवली काल तक; इस क्रमसे वह उत्कर्षतः कर्मस्थिति काल तक रहता है ॥ २४८ ॥

पदेसपमाणाणुगमेण ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरिणा तेणेव पढमसमय आहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण ओरालिय-वेउव्विय आहारसरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं केवडिया ? ॥ २४९ ॥

प्रदेशप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जो औदारिकशरीरवाला, वैक्रियिकशरीरवाला और आहारकशरीरवाला जीव है, उसी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीव द्वारा औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीर रूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें बांधा गया है वह कितना है ? ॥ २४९ ॥

अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो ॥ २५० ॥

वह अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ २५० ॥

जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं केवडिया ? ॥ २५१ ॥ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धामणंतभागो ॥ २५२ ॥

जो प्रदेशाग्र द्वितीय समयमें निषिक्त होता है वह कितना है ? ॥ २५१ ॥ वह अभव्योंसे अणंतगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ २५२ ॥

जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं केवडिया ? ॥ २५३ ॥ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धामणंतभागो ॥ २५४ ॥

जो प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निषिक्त होता है वह कितना है ? ॥ २५३ ॥ वह अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ २५४ ॥

एवं जाव उक्कस्सेण तिण्णिपलिदोवमाणि तेत्तीस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तं ॥

इस प्रकार चार समय और पांच समय आदिके क्रमसे उत्कर्षतः उक्त तीन शरीरोंकी स्थितिके अनुसार क्रमशः तीन पल्योपम, तेतीस सागर और अन्तर्मुहूर्त काल तक निषिक्त उस प्रदेशाग्रके प्रमाणको जानना चाहिये ॥ २५५ ॥

तेजा-कम्मइयसरीरिणा तेजा-कम्मइयसरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं केवडिया ? ॥ २५६ ॥ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो ॥ २५७ ॥

तैजसशरीरवाले और कार्मणशरीरवाले जीवके द्वारा तैजसशरीर और कार्मणशरीररूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयसें निषिक्त होता है वह कितना है ? ॥ २५६ ॥ वह अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ २५७ ॥

जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं केवडिया ? ॥ २५८ ॥ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो ॥ २५९ ॥

जो प्रदेशाग्र द्वितीय समयमें निषिक्त होता है वह कितना है ? ॥ २५८ ॥ अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ २५९ ॥

जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं केवडिया ? ॥ २६० ॥ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो ॥ २६१ ॥

जो प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निषिक्त होता है वह कितना है ? ॥ २६० ॥ वह अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ २६१ ॥

एवं जाव उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि कम्मट्ठिदी ॥ २६२ ॥

इस प्रकार चार समय और पांच समय आदिके क्रमसे तैजसशरीरके छयासठ सागरोपम काल तक तथा कार्मणशरीरके कर्मस्थिति काल तक निषिक्त प्रदेशाग्रके प्रमाणको जानना चाहिये ॥

अणंतरोवणिधाए ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरिणा तेणेव पढमसमय-आहारएण पढमसमय तब्भवत्थेण ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं ॥ २६३ ॥

अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जो औदारिक शरीरवाला, वैक्रियिकशरीरवाला और आहारकशरीरवाला जीव है उसी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवके द्वारा औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीररूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें निषिक्त हुआ है वह बहुत है ॥ २६३ ॥

जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं ॥ २६४ ॥

जो द्वितीय समयमें प्रदेशाग्र निषिक्त हुआ है वह विशेष हीन है ॥ २६४ ॥

जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं ॥ २६५ ॥

जो तृतीय समयमें प्रदेशाग्र निषिक्त हुआ है वह विशेष हीन है ॥ २६५ ॥

जं चउत्थसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं ॥ २६६ ॥

जो चतुर्थ समयमें प्रदेशाग्र निषिक्त हुआ है वह विशेष हीन है ॥ २६६ ॥

एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि तेत्तीस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तं ॥ २६७ ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट रूपसे क्रमशः तीन पल्य, तेतीस सागर और अन्तर्मुहूर्त तक वह विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥ २६७ ॥

तेजाकम्मइयसरीरिणा तेजाकम्मइयसरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं ॥ २६८ ॥ जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं ॥ २६९ ॥ जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं ॥ २७० ॥ एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि कम्मट्ठिदी ॥ २७१ ॥

तैजसशरीर और कार्मणशरीरवाले जीवके द्वारा तैजसशरीर और कार्मणशरीररूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें निषिक्त हुआ है वह बहुत है ॥ २६८ ॥ जो प्रदेशाग्र द्वितीय समयमें निषिक्त हुआ है वह विशेष हीन है ॥२६९॥ जो प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निषिक्त हुआ है वह विशेष हीन है ॥ २७० ॥ इस प्रकार वह क्रमसे छ्यासठ सागर और कर्मस्थितिके अन्त तक विशेष हीन विशेष हीन होता गया है ॥ २७१ ॥

परंपरोवणिधाए ओरालिय-वेउव्वियसरीरिणा तेणेव पढमसमय-आहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण ओरालिय-वेउव्वियसरीरत्ताए जं पढमसमयपदेसग्गं तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण दुगुणहीणं ॥ २७२ ॥

परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जो औदारिकशरीरवाला और वैक्रियिकशरीरवाला जीव है उसी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवके द्वारा औदारिकशरीर और वैक्रियिकशरीररूपसे जो प्रथम समयमें प्रदेशाग्र निक्षिप्त हुआ है उससे अन्तर्मुहूर्त जाकर वह दुगुणा हीन हो जाता है ॥ २७२ ॥

एवं दुगुणहीणं दुगुणहीणं जाव उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ २७३ ॥

इस क्रमसे वह उत्कृष्ट रूपसे तीन पल्य और तेतीस सागरोपम तक दुगुणा हीन होता गया है ॥ २७३ ॥

एगपदेस गुणहाणिट्ठाणंतरमंतोमुहुत्तं, णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २७४ ॥

एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है तथा नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ २७४ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं थोवं ॥ २७५ ॥ णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २७६ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक है ॥ २७५ ॥ उससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ २७६ ॥

आहारसरीरिणा तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण आहारसरीरत्ताए पढमसमए पदेसग्गं तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण दुगुणहीणं ॥ २७७ ॥ एवं दुगुणहीणं दुगुणहीणं जावुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७८ ॥

जो आहारकशरीरवाला जीव है उसी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवके द्वारा आहारकशरीररूपसे जो प्रथम समयमें प्रदेशाग्र निक्षिप्त होता है उससे अन्तर्मुहूर्त जाकर वह दुगुणा हीन होता है ॥ २७७ ॥ इस प्रकारसे वह अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक दुगुणा हीन दुगुणा हीन होता गया है ॥ २७८ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमंतोमुहुत्तं, णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि संखेज्जा समया ॥ २७९ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर संख्यात समय प्रमाण हैं ॥ २७९ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ २८० ॥ एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ २८१ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं ॥ २८० ॥ उनसे एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ २८१ ॥

तेजा-कम्मइयसरीरिणा तेजा-कम्मइयसरीरत्ताए जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणं, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणं ॥ २८२ ॥

तैजसशरीरवाले जीवके द्वारा तैजसशरीररूपसे प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र निक्षिप्त होता है उससे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर वह दुगुणा हीन होता है। इसी प्रकार कार्मणशरीरवाले जीवके द्वारा कार्मणशरीररूपसे जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें निक्षिप्त होता है वह भी पल्योपमके असंख्यातवें भाग स्थान जाकर दुगुणा हीन होता है ॥ २८२ ॥

एवं दुगुणहीणं दुगुणहीणं जाव उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि कम्मट्ठिदी ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट रूपसे वह तैजसशरीरका छ्यासठ सागर और कार्मणशरीरका कर्मस्थितिके अन्त तक दुगुणा हीन दुगुणा हीन होता हुआ गया है ॥ २८३ ॥

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २८४ ॥

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण हैं और नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ २८४ ॥

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि ॥ २८५ ॥ एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं ॥ २८६ ॥

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं ॥ २८५ ॥ उनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ २८६ ॥

पदेसविरए त्ति तत्थ इमो पदेसविरअस्स सोलसवदिओ दंडओ कायव्वो भवदि ॥

अब प्रदेशविरच (कर्मस्थिति अथवा कर्मप्रदेश) अधिकार प्राप्त है। उसमें प्रदेशविरचका यह सोलहपदवाला दण्डक किया जाता है ॥ २८७ ॥

सव्वत्थोवा एइंदियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ २८८ ॥ णिव्वत्तिट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २८९ ॥ जीवणियट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ २९० ॥ उक्कस्सिया णिव्वत्ती विसेसाहिया ॥ २९१ ॥

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवकी पर्याप्तनिर्वृत्ति (जघन्य आयुबन्ध) सबसे स्तोक है ॥ २८८ ॥ जघन्य आयुबन्धरूप उस प्रथम निर्वृत्तिस्थानके आगे समयोत्तर क्रमसे वृद्धिके होनेपर प्राप्त होनेवाले द्वितीय, तृतीय आदि सब निर्वृत्तिस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २८९ ॥ उनसे जीवनीय-स्थान विशेष अधिक हैं ॥ २९० ॥ उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ २९१ ॥

सव्वत्थोवा समुच्छिमस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ २९२ ॥ णिव्वत्तिट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ २९३ ॥ जीवणियट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ २९४ ॥ उक्कस्सिया णिव्वत्ति विसेसाहिया ॥ २९५ ॥

सम्मूर्च्छन जीवकी जघन्य पर्याप्तनिर्वृत्ति सबसे स्तोक है ॥ २९२ ॥ उनसे निर्वृत्ति-स्थान संख्यातगुणे हैं ॥ २९३ ॥ उनसे जीवनीयस्थान विशेष अधिक हैं ॥ २९४ ॥ उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ २९५ ॥

सव्वत्थोवा गब्भोवक्कंतियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ २९६ ॥ णिव्वत्ति-ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ २९७ ॥ जीवणियट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ २९८ ॥ उक्क-स्सिया णिव्वत्ती विसेसाहिया ॥ २९९ ॥

गर्भोपक्रान्तिक जीवकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति सबसे स्तोक है ॥ २९६ ॥ उनसे निर्वृत्तिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ २९७ ॥ उनसे जीवनीयस्थान विशेष अधिक हैं ॥ २९८ ॥ उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ २९९ ॥

सव्वत्थोवा उववादिमस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ३०० ॥ णिव्वत्ति-ट्ठाणाणि जीवणियट्ठाणाणि च दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ३०१ ॥ उक्कस्सिया णिव्वत्ति विसेसाहिया ॥ ३०२ ॥

औपपादिक जन्मवालेकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति सबसे स्तोक है ॥ ३०० ॥ उससे निर्वृत्तिस्थान और जीवनीयस्थान दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं ॥ ३०१ ॥ उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ ३०२ ॥

एत्थ अप्पाबहुअं ॥ ३०३ ॥

अब यहां अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की जाती है ॥ ३०३ ॥

सव्वत्थोवं खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३०४ ॥

क्षुल्लकभवग्रहण सबसे स्तोक है ॥ ३०४ ॥

एइंदियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती संखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

उससे एकेन्द्रिय जीवकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति संख्यातगुणी है ॥ ३०५ ॥

सम्मुच्छिमस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती संखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

उससे सम्मूर्च्छन जीवकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति संख्यातगुणी है ॥ ३०६ ॥

गब्भोवक्कंतियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती संखेज्जगुणा ॥ ३०७ ॥

उससे गर्भोपक्रान्तिक जीवकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति संख्यातगुणी है ॥ ३०७ ॥

उववादिमस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती संखेज्जगुणा ॥ ३०८ ॥

उससे औपपादिक जीवकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति संख्यातगुणी है ॥ ३०८ ॥

एइंदियस्स णिव्वत्तिट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ३०९ ॥

उससे एकेन्द्रिय जीवके निर्वृत्तिस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ३०९ ॥

जीवणियट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ३१० ॥

उनसे जीवनीयस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ३१० ॥

उक्कस्सिया णिव्वत्ती विसेसाहिया ॥ ३११ ॥

उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ ३११ ॥

सम्मुच्छिमस्स णिव्वत्तिट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥ ३१२ ॥

उससे सम्मूर्छन जीवके निर्वृत्तिस्थान संख्यातगुणे हैं ॥ ३१२ ॥

जीवणियट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ३१३ ॥

उनसे जीवनीयस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ३१३ ॥

उक्कस्सिया णिव्वत्ती विसेसाहिया ॥ ३१४ ॥

उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ ३१४ ॥

गब्भोवक्कंतियस्स णिव्वत्तिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ३१५ ॥

उससे गर्भोपक्रान्तिकके निर्वृत्तिस्थान असंख्यातगुणे हैं ॥ ३१५ ॥

जीवणियट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ३१६ ॥

उनसे जीवनीयस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ३१६ ॥

उक्कस्सिया णिव्वत्ती विसेसाहिया ॥ ३१७ ॥

उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ ३१७ ॥

उववादिमस्स णिव्वत्तिट्ठाणाणि जीवणीयट्ठाणाणि च दो वि तुल्लाणि संखेज्ज-गुणाणि ॥ ३१८ ॥

उससे औपपादिक जीवके निर्वृत्तिस्थान और जीवनीयस्थान दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं ॥ ३१८ ॥

उक्कस्सिया णिव्वत्ती विसेसाहिया ॥ ३१९ ॥

उनसे उत्कृष्ट निर्वृत्ति विशेष अधिक है ॥ ३१९ ॥

तस्सेव पदेसविरइयस्स इमाणि छ अणियोगद्दाराणि– जहण्णिया अग्गट्ठिदी अग्गट्ठिदिविसेसो अग्गट्ठिदिट्ठाणाणि उक्कस्सिया अग्गट्ठिदी भागाभागाणुगमो अप्पाबहुए त्ति ॥

उसी प्रदेशविरचितके ये छह अनुयोगद्वार हैं– जघन्य अग्रस्थिति, अग्रस्थितिविशेष, अग्रस्थितिस्थान, उत्कृष्ट अग्रस्थिति, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व ॥ ३२० ॥

सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया अग्गट्ठिदी ॥ ३२१ ॥ अग्गट्ठिदि-विसेसो असंखेज्जगुणो ॥ ३२२ ॥ अग्गट्ठिदिट्ठाणाणि रूवाहियाणि विसेसाहियाणि ॥३२३॥ उक्कस्सिया अग्गट्ठिदी विसेसाहिया ॥ ३२४ ॥

औदारिकशरीरकी जघन्य अग्रस्थिति सबसे स्तोक है ॥ ३२१ ॥ उससे अग्रस्थितिविशेष असंख्यातगुणा है ॥ ३२२ ॥ उससे अग्रस्थितिस्थान रूपाधिक विशेष अधिक हैं ॥ ३२३ ॥ उनसे उत्कृष्ट अग्रस्थिति विशेष अधिक है ॥ ३२४ ॥

एवं तिण्णं सरीराणं ॥ ३२५ ॥

जिस प्रकार औदारिकशरीरके विषयमें पूर्वोक्त चार अनियोगद्वारोंकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार वैक्रियिक, तैजस और कार्मण इन तीन शरीरोंके विषयमें भी उक्त अनियोगद्वारोंकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स जहण्णिया अग्गट्ठिदी ॥ ३२६ ॥ अग्गट्ठिदिविसेसो संखेज्जगुणो ॥ ३२७ ॥ अग्गट्ठिदिट्ठाणाणि रूवाहियाणि ॥ ३२८ ॥ उक्कस्सिया अग्ग-ट्ठिदी विसेसाहिया ॥ ३२९ ॥

आहारकशरीरकी जघन्य अग्रस्थिति सबसे स्तोक है ॥ ३२६ ॥ उससे अग्रस्थितिविशेष संख्यातगुणा है ॥ ३२७ ॥ उससे अग्रस्थितिस्थान रूपाधिक हैं ॥ ३२८ ॥ उनसे उत्कृष्ट अग्रस्थिति विशेष अधिक है ॥ ३२९ ॥

भागाभागाणुगमेण तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि– जहण्णपदे उक्कस्सपदे अजहण्ण-अणुक्कस्सपदे ॥ ३३० ॥

भागाभागानुगमकी अपेक्षा वहां ये तीन अनुयोगद्वार हैं– जघन्यपद विषयक, उत्कृष्ट पदविषयक और अजघन्य-अनुत्कृष्टपद विषयक ॥ ३३० ॥

जहण्णपदेण ओरालियसरीरस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए पदेसग्गं सव्वपदेसगस्स केवडियो भागो ? ॥ ३३१ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ ३३२ ॥

जघन्यपदकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी जघन्य स्थिति सम्बन्धी प्रदेशाग्र सब प्रदेशाग्रके कितनेवें भाग प्रमाण है ? ॥ ३३१ ॥ वह उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ३३२ ॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ३३३ ॥

इसी प्रकार शेष चार शरीरोंके भागाभागको भी जानना चाहिए ॥ ३३३ ॥

उक्कस्सपदेण ओरालियसरीरस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए पदेसग्गं सव्वपदेसग्गस्स केवडिओ भागो ? ॥ ३३४ ॥ असंखेज्जदिभागो ॥ ३३५ ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रदेशाग्र सब प्रदेशाग्रके कितनेवें भाग प्रमाण है ? ॥ ३३४ ॥ वह उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ३३५ ॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ३३६ ॥

इसी प्रकार शेष चार शरीरोंके भी भागाभागकी प्ररूपणा जानना चाहिए ॥ ३३६ ॥

अजहण्ण-अणुक्कस्सपदेण ओरालियसरीरस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए पदेसग्गं सव्वट्ठिदिपदेसग्गस्स केवडिओ भागो ? ॥ ३३७ ॥ असंखेज्जाभागा ॥ ३३८ ॥

अजघन्य-अनुत्कृष्टपदकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी अजघन्य-अनुत्कृष्टस्थितिका प्रदेशाग्र सब स्थितियोंके प्रदेशाग्रके कितनेवें भाग प्रमाण है ? ॥ ३३७ ॥ वह उसके असंख्यात बहुभाग प्रमाण है ॥ ३३८ ॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ३३९ ॥

इसी प्रकार शेष चार शरीरोंके अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थितिके प्रदेशाग्र सम्बन्धी भागाभाग जानना चाहिए ॥ ३३९ ॥

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि— जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ ३४० ॥

अल्पबहुत्व अधिकारमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं जघन्य पदविषयक, उत्कृष्ट पदविषयक और जघन्य-उत्कृष्ट पदविषयक ॥ ३४० ॥

जहण्णपदेण सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं ॥ ३४१ ॥

जघन्यपदकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी अन्तिम स्थितिका प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥

पढमाए ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३४२ ॥

उससे प्रथम स्थितिमें निषिक्त प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३४२ ॥

अपढम-अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३४३ ॥

उससे अप्रथम-अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३४३ ॥

अपढमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३४४ ॥

उससे अप्रथम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३४४ ॥

अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३४५ ॥

उससे अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३४५ ॥

सव्वासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३४६ ॥

उससे सब स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३४६ ॥

एवं तिण्णं सरीराणं ॥ ३४७ ॥

इसी प्रकार वैक्रियिक, तैजस और कार्मण इन तीन शरीरोंके प्रदेशाग्रका जघन्यपदकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये ॥ ३४७ ॥

जहण्णपदेण सव्वत्थोवं आहारसरीरस्स चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं ॥ ३४८ ॥

जघन्य पदकी अपेक्षा आहारकशरीरकी अन्तिम स्थितिमें प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥

पढमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं संखेज्जगुणं ॥ ३४९ ॥

उससे प्रथम स्थितिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३४९ ॥

अपढम-अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३५० ॥

उससे अप्रथम-अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३५० ॥

अपढमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५१ ॥

उससे अप्रथम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३५१ ॥

अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५२ ॥

उससे अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३५२ ॥

सव्वासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५३ ॥

उससे सब स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३५३ ॥

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवं ओरालियसरीरस्स चरिमे गुणहाणिट्ठाणंतरे पदेसग्गं ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा औदारिकशरीरके अन्तिम गुणहानि स्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥ ३५४ ॥

अपढम-अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३५५ ॥

उससे अप्रथम-अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३५५ ॥

अपढमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५६ ॥

उससे अप्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३५६ ॥

पढमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५७ ॥

उससे प्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३५७ ॥

अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५८ ॥

उससे अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३५८ ॥

सव्वेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३५९ ॥

उससे सब गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक हैं ॥ ३५९ ॥

एवं तिण्णं सरीराणं ॥ ३६० ॥

जिस प्रकार औदारिकशरीरके उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार वैक्रियिक, तैजस और कार्मण इन तीन शरीरोंकी भी प्रकृत प्ररूपणा जानना चाहिये ॥

सव्वत्थोवं आहारसरीरस्स चरिमगुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं ॥ ३६१ ॥

आहारकशरीरके अन्तिम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥ ३६१ ॥

अपढम-अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं संखेज्जगुणं ॥ ३६२ ॥

उससे अप्रथम-अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३६२ ॥

अपढमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३६३ ॥

उससे अप्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३६३ ॥

पढमे गुणहाणिट्ठाणंतरे पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३६४ ॥

उससे प्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३६४ ॥

अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३६५ ॥

उससे अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३६५ ॥

सव्वेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३६६ ॥

उससे सब गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३६६ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवं ओरालियसरीरस्स चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं ॥

जघन्य-उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी अन्तिम स्थितिमें प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥ ३६७ ॥

चरिमे गुणहाणिट्ठाणंतरे पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३६८ ॥

उससे अन्तिम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३६८ ॥

पढमाए ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३६९ ॥

उससे प्रथम स्थितिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३६९ ॥

अपढम-अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३७० ॥

उससे अप्रथम-अचरमगुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ३७० ॥

अपढमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७१ ॥

उससे अप्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३७१ ॥

पढमे गुणहाणिट्ठाणंतरे पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७२ ॥

उससे प्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३७२ ॥

अपढम-अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७३ ॥

उससे अप्रथम-अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३७३ ॥

अपढमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७४ ॥

उससे अप्रथम स्थितिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३७४ ॥

अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७५ ॥

उससे अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३७५ ॥

अचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७६ ॥

उससे अचरम स्थितिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३७६ ॥

सव्वासु ट्ठिदीसु सव्वेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३७७ ॥

उससे सब स्थितियों और सब गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥३७७॥

एवं तिण्णं सरीराणं ॥ ३७८ ॥

जिस प्रकार औदारिकशरीरके जघन्य-उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार वैक्रियिक, तैजस और कार्मण इन तीन शरीरोंके भी उक्त अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा जानना चाहिए ॥ ३७८ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवं आहारसरीरस्स चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं ॥३७९॥

जघन्य-उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा आहारकशरीरकी अन्तिम स्थितिमें प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥

पढमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं संखेज्जगुणं ॥ ३८० ॥

उससे प्रथम स्थितिमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ॥ ३८० ॥

चरिमे गुणहाणिट्ठाणंतरे पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ३८१ ॥

उससे अन्तिम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ॥ ३८१ ॥

अपढम-अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं संखेज्जगुणं ॥ ३८२ ॥

उससे अप्रथम-अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ॥ ३८२ ॥

अपढमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८३ ॥

उससे अप्रथम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३८३ ॥

पढमे गुणहाणिट्ठाणंतरे पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८४ ॥

उससे प्रथम गुणहानिस्थानान्तरमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३८४ ॥

अचरिमेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८५ ॥

उससे अचरम गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३८५ ॥

अपढम-अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८६ ॥

उससे अप्रथम-अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३८६ ॥

अपढमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८७ ॥

उससे अप्रथम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३८७ ॥

अचरिमासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८८ ॥

उससे अचरम स्थितियोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥ ३८८ ॥

सव्वासु ट्ठिदीसु सव्वेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु पदेसग्गं विसेसाहियं ॥ ३८९ ॥

उससे सब स्थितियों और सब गुणहानिस्थानान्तरोंमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ॥३८९॥

णिसेयअप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि— जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ ३९० ॥

निषेक सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी प्ररूपणामें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— जघन्य पदविषयक, उत्कृष्ट पदविषयक और जघन्य-उत्कृष्ट पदविषयक ॥ ३९० ॥

जहण्णपदेण सव्वत्थोवमोरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरस्स एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं ॥ ३९१ ॥

जघन्यपदकी अपेक्षा औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरका एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर सबसे स्तोक है ॥ ३९१ ॥

तेयासरीरस्स एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ ३९२ ॥

उससे तैजसशरीरका एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ ३९२ ॥

कम्मइयसरीरस्स एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ ३९३ ॥

उससे कार्मणशरीरका एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ ३९३ ॥

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवाणि आहारसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा आहारशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर सबसे स्तोक हैं ॥ ३९४ ॥

कम्मइयसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ३९५ ॥

उनसे कार्मणशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९५ ॥

तेजासरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ३९६ ॥

उनसे तैजसशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९६ ॥

ओरालियसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ३९७ ॥

उनसे औदारिकशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९७ ॥

वेउव्वियसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि संखेज्जगुणाणि ॥ ३९८ ॥

उनसे वैक्रियिकशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर संख्यातगुणे हैं ॥ ३९८ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवाणि आहारसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि ॥

जघन्य-उत्कृष्टकी अपेक्षा आहारशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर सबसे स्तोक है ॥ ३९९ ॥

ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरस्स एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥४००॥

उनसे औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरका एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ ४०० ॥

कम्मइयसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ४०१ ॥

उनसे कार्मणशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ ४०१ ॥

तेयासरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ४०२ ॥

उनसे तैजसशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ ४०२ ॥

तेयासरीरस्स एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ ४०३ ॥

उनसे तैजसशरीरका एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ ४०३ ॥

कम्मइयसरीरस्स एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ ४०४ ॥

उससे कार्मणशरीरका नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ॥ ४०४ ॥

ओरालियसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि ॥ ४०५ ॥

उनसे औदारिकशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं ॥ ४०५ ॥

वेउव्वियसरीरस्स णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि संखेज्जगुणाणि ॥ ४०६ ॥

उनसे वैक्रियिकशरीरके नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर संख्यातगुणे हैं ॥ ४०६ ॥

एवं णिसेयपरूवणासमत्ता

गुणगारे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि— जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे ॥ ४०७ ॥

अब गुणकारका प्रकरण प्राप्त है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार है— जघन्यद्रव्यविषयक गुणकारक अल्पबहुत्व, उत्कृष्ट द्रव्यविषयक गुणकारक अल्पबहुत्व और जघन्य-उत्कृष्ट द्रव्यविषयक गुणकारक अल्पबहुत्व ॥ ४०७ ॥

जहण्णपदे सव्वत्थोवा ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरस्स जहण्णओ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥ ४०८ ॥

जघन्यपदविषयक अल्पबहुत्वकी प्ररूपणामें औदारिकशरीरकी जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे वैक्रियिक शरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, जिसका गुणकार जगश्रेणिका असंख्यातवां भाग है। उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है और उसका गुणकार जगश्रेणिका असंख्यातवां भाग है ॥ ४०८ ॥

तेजा-कम्मइयसरीरस्स जहण्णओ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाण-मणंतभागो ॥ ४०९ ॥

तैजसशरीर और कार्मणशरीरके जघन्य प्रदेशाग्रविषयक गुणकारका प्रमाण अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग हैं ॥ ४०९ ॥

उक्कस्सपदेण ओरालियसरीरस्स उक्कस्सओ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागो ॥ ४१० ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा औदारिकशरीरका उत्कृष्ट गुणाकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ४१० ॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ४११ ॥

इसी प्रकार शेष चार शरीरोंके प्रकृत अल्पबहुत्वको जानना चाहिये ॥ ४११ ॥

जहण्णुक्कस्सपदेण ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरस्स जहण्णओ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥४१२॥ उक्कस्सओ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥४१३॥ तेजा-कम्मइयसरीरस्स जहण्णओ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ॥ ४१४ ॥ तस्सेव उक्कस्सओ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४१५ ॥

जघन्य-उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरका जघन्य गुणकार जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ४१२ ॥ उन्हींका उत्कृष्ट गुणकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ४१३ ॥ तैजसशरीर और कार्मणशरीरका जघन्य गुणकार अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ॥ ४१४ ॥ उससे उन्हींका उत्कृष्ट गुणकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ४१५ ॥

पदमीमांसाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि– जहण्णपदे उक्कस्सपदे ॥

अब पदमीमांसा प्रकरण प्राप्त है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार हैं– जघन्यपदविषयक मीमांसा और उत्कृष्टपदविषयक मीमांसा ॥ ४१६ ॥

उक्कस्सपदेण ओरालियसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४१७ ॥ अण्णदरस्स उत्तरकुरू-देवकुरू मणुअस्स तिपलिदोवमट्ठिदियस्स ॥ ४१८ ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा औदारिकशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४१७ ॥ जो तीन पल्यकी आयुवाला उत्तरकुरू और देवकुरूका अन्यतर मनुष्य है उसके औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४१८ ॥

आगे १० सूत्रोंमें उक्त मनुष्यकी ही विशेषताको प्रगट करते हैं–

तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्सेण जोगेण आहारिदो ॥

उक्त मनुष्य प्रथम समयवर्ती आहारक होकर– ऋजुगतिसे उत्पन्न होकर– तद्भवस्थ होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट योगके द्वारा आहारको ग्रहण किया करता है ॥ ४१९ ॥

उक्कसियाए वड्ढिए वड्ढिदो ॥ ४२० ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ४२१ ॥

वह उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धिसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है ॥ ४२० ॥ तथा वह सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता है ॥ ४२१ ॥

तस्स अप्पाओ भासद्धाओ ॥ ४२२ ॥ अप्पाओ मणजोगद्धाओ ॥ ४२३ ॥ अप्पा छविच्छेदा ॥ ४२४ ॥

उसका भाषणकाल अल्प होता है ॥ ४२२ ॥ चिन्तनकाल अल्प होता है ॥ ४२३ ॥ उससे छविछेद शरीरको पीड़ा पहुंचानेवाले क्रियाविशेष– अल्प होते हैं ॥ ४२४ ॥

अंतरेण कदाइ विउव्विदो ॥ ४२५ ॥

वह तीन पल्य प्रमाण आयुकालके मध्यमें कदाचित् भी विक्रियाको नहीं किया करता है ॥ ४२५ ॥

थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्स उवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥४२६॥

जीवितकालके स्तोक शेष रहजानेपर वह योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा करता है ॥ ४२६ ॥

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ४२७ ॥

वह अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरोंमें आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहता है ॥ ४२७ ॥

चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्स जोगं गदो ॥ ४२८ ॥

चरम और द्विचरम समयमें वह उत्कृष्ट योगको प्राप्त होता ॥ ४२८ ॥

तस्स चरिमसमयतब्भवत्थस्स तस्स ओरालियसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं ॥

उस अन्तिम समयमें तद्भवस्थ हुए उस जीवके औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४२९ ॥

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सं ॥ ४३० ॥

आकर्षण वश उक्त उत्कृष्ट प्रदेशाग्रमेंसे उत्तरोत्तर एक दो आदि परमाणुओंके हीन होनेपर उसका अनुत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४३० ॥

उक्कस्सपदेण वेउव्वियसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४३१ ॥ अण्णदरस्स आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवस्स बावीससागरोवमट्ठिदियस्स ॥ ४३२ ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा वैक्रियिकशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४३१ ॥ वह बाईस सागरकी स्थितिवाले आरण और अच्युत कल्पवासी अन्यतर देवके होता है ॥ ४३२ ॥

तेणेव पढमसमए आहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्स जोगेण आहारिदो ॥ ४३३ ॥ उक्कस्सियाए वड्ढिए वड्ढिदो ॥ ४३४ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ४३५ ॥

वह प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होकर उत्कृष्ट योगसे आग्रहको ग्रहण किया करता है ॥ ४३३ ॥ उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४३४ ॥ वह अन्तर्मुहूर्त कालमें शीघ्र ही सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता है ॥ ४३५ ॥

तस्स अप्पाओ भासद्धाओ ॥ ४३६ ॥ अप्पाओ मणजोगद्धाओ ॥ ४३७ ॥

उसका सम्भाषणकाल अल्प होता है ॥ ४३६ ॥ उसका चिन्तनकाल अल्प होता है ॥

णत्थि छविच्छेदा ॥ ४३८ ॥ अप्पदरं विउव्विदो ॥ ४३९ ॥

उसके छविच्छेद नहीं होते ॥ ४३८ ॥ वह अतिशय अल्प विक्रिया किया करता है ॥

थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥ ४४० ॥

वह जीवितके स्तोक शेष रह जानेपर योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है ॥

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ४४१ ॥

वह अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरोंमें आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहता है ॥ ४४१ ॥

चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगंगदो ॥ ४४२ ॥

तथा वह चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हो जाता है ॥ ४४२ ॥

तस्स चरिमसमय तब्भवत्थस्स तस्स वेउव्वियसरीरस्स उक्कस्स पदेसग्गं ॥४४३॥

ऐसे उस अन्तिम समयवर्ती तद्भवस्थ हुए जीवके वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४४३ ॥

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा ॥ ४४४ ॥

उक्त उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे भिन्न उसका अनुत्कृष्ट प्रदेशाग्र जानना चाहिये ॥ ४४४ ॥

उक्कस्सपदेण आहारसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं कस्स ? ॥४४५॥ अण्णदरस्स पमत्तसंजदस्स उत्तरसरीरं विउव्वियस्स ॥ ४४६ ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा आहारशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४४५ ॥ वह उत्तरशरीरकी विक्रिया करनेवाले अन्यतर प्रमत्तसंयतके होता है ॥ ४४६ ॥

तेणेवपढमसमए आहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्स जोगेण आहारिदो ॥ ४४७ ॥ उक्कसियाए वड्ढिए वड्ढिदो ॥ ४४८ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ४४९ ॥

वही प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होकर उत्कृष्ट योग द्वारा आहारको ग्रहण किया करता है ॥ ४४७ ॥ वह उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ करता है ॥ ४४८ ॥ वह सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो जाता है ॥ ४४९ ॥

तस्स अप्पाओ भासद्धाओ ॥ ४५० ॥ अप्पाओ मनजोगद्धाओ ॥ ४५१ ॥ णत्थि छविच्छेदा ॥ ४५२ ॥

उसका सम्भाषणकाल अल्प होता है ॥ ४५० ॥ उसका चिन्तनकाल अल्प होता है ॥ ४५१ ॥ उसके शरीरपीडाजनक क्रियाविशेष नहीं होते हैं ॥ ४५२ ॥

थोवावसेसे णियत्तिदव्वए त्ति जोगवमज्झट्ठाणाए मितद्धमच्छिदो ॥ ४५३ ॥ चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ४५४ ॥ चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सयं जोगं गदो ॥ ४५५ ॥

निवृत्त होनेके कालके थोड़ा शेष रह जानेपर वह योगयवमध्यस्थानके ऊपर परमित काल तक रहता है ॥ ४५३ ॥ अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरोंमे वह आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहता है ॥ ४५४ ॥ वह चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त होता है ॥ ४५५ ॥

तस्स चरिमसमयणियत्तमाणस्स तस्स आहारसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं ॥४५६॥

निवृत्त होनेवाले उक्त प्रमत्तसंयतके अन्तिम समयमें आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४५६ ॥

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सं ॥ ४५७ ॥

उससे भिन्न उसका अनुत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४५७ ॥

उक्कस्सपदेण तेजासरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४५८ ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४५८ ॥

अण्णदरस्स ॥ ४५९ ॥ जो जीवो पुव्वकोडाउओ अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु आउअं बंधदि ॥ ४६० ॥ कमेण कालगदसमाणो अधो सत्तमाए पुढविए उववण्णो ॥ ४६१ ॥ तदो उव्वट्टिदसमाणो पुणरवि पुव्वकोडाउएसु उववण्णो ॥ ४६२ ॥

उसका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अन्यतर जीवके होता है ॥ ४५९ ॥ जो पूर्वकोटिकी आयुवाला जीव नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें आयुकर्मको बांधता है ॥ ४६० ॥ फिर जो क्रमसे मरणको प्राप्त होकर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होता है ॥ ४६१ ॥ पश्चात् जो वहांसे निकलकर फिर भी पूर्वकोटिकी आयुवालोंमें उत्पन्न होता है ॥ ४६२ ॥

तेणेव कमेण आउअमणुपालइत्ता तदो कालगदसमाणो पुणरवि अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो ॥ ४६३ ॥ तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्सजोगेण आहारिदो ॥ ४६४ ॥ उक्कस्सियाए वड्ढिए वड्ढिदो ॥ ४६५ ॥ अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ॥ ४६६ ॥ तत्थ य भवट्ठिदिं तेत्तीस सागरोवमाणि आउअमणुपालयित्ता ॥ ४६७ ॥ बहुसो बहुसो उक्कस्सयाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि ॥ ४६८ ॥ बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि ॥ ४६९ ॥

उसी क्रमसे वह आयुका परिपालन करके मरा और फिरसे भी नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ ॥ ४६३ ॥ वह प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होकर उत्कृष्ट योगसे आहारको ग्रहण किया करता है ॥ ४६४ ॥ वह उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ करता है ॥ ४६५ ॥ वह सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालमें सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो जाता है ॥ ४६६ ॥ वहां वह तेतीस सागरोपम काल तक आयुका उपभोग करता हुआ ॥ ४६७ ॥ बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है ॥ ४६८ ॥ बहुत बहुत बार प्रचुर संक्लेश परिणामवाला होता है ॥ ४६९ ॥

एवं संसरिदूण थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्स उवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो ॥ ४७० ॥ चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो ॥ ४७१ ॥ दुचरिम-तिचरिमसमए उक्कस्ससंकिलेसं गदो ॥ ४७२ ॥ चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्स जोगं गदो ॥ ४७३ ॥

इस प्रकार परिभ्रमण करके जो जीवितके स्तोक शेष रहजानेपर योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है ॥ ४७० ॥ जो अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तरोंमें आवलिके

असंख्यातवें भाग मात्र काल तक रहता है ॥ ४७१ ॥ जो द्विचरम और त्रिचरम समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होता है ॥ ४७२ ॥ जो चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त होता है ॥

तस्स चरिमसमयतब्भवत्थस्स तस्स तेजइयसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं ॥ ४७४ ॥

उस चरम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर जीवके तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सं ॥ ४७५ ॥

उससे भिन्न उसका अनुत्कृष्ट प्रदेशाग्र होता है ॥ ४७५ ॥

उक्कस्सपदेण कम्मइयसरीरस्स उक्कस्सयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४७६ ॥

उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४७६ ॥

जो जीवो बादरपुढविजीवेसु वेहि सागरोवमसहस्सेहि सादिरेगेहि ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो जहा वेदणाए वेदणीयं तहा णेयव्वं ॥ ४७७ ॥

जो जीव बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें दो हजार सागरोपमोंसे कम कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहता है, इस क्रमसे जिस प्रकार वेदना द्रव्यविधानमें वेदनाद्रव्यके स्वामीकी प्ररूपणा (देखिये वे. द्र. वि. सूत्र ७-३२) की गई है उसी प्रकार यहां कार्मणशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रके स्वामीकी प्ररूपणा जानना चाहिये ॥ ४७७ ॥

जहण्णपदेण ओरालियसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४७८ ॥ अण्णदरस्स सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स ॥ ४७९ ॥ पढमसमयआहारयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्ण जोगिस्स तस्स ओरालियसरीरस्स जहण्णं पदेसग्गं ॥ ४८० ॥

जघन्य पदकी अपेक्षा औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥४७८॥ वह अन्यतर सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तके होता है ॥ ४७९ ॥ जो कि प्रथम समयवर्ती आहारक होकर तद्भवस्थ होनेके प्रथम समयमें जघन्य योगसे युक्त होता है उसके औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४८० ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णं ॥ ४८१ ॥

उससे भिन्न उसका अजघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४८१ ॥

जहण्णपदेण वेउव्वियसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४८२ ॥ अण्णदरस्स देव-णेरइयस्स असण्णिपच्छायदस्स ॥ ४८३ ॥

जघन्य पदकी अपेक्षा वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४८२ ॥ असंज्ञियोंमेंसे आये हुए अन्यतर देव और नारकी जीवके होता है ॥ ४८३ ॥

पढमसमयआहारयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स तस्स वेउव्वियसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं ॥ ४८४ ॥

उक्त देव और नारकी जब प्रथम समयवर्ती आहारक होकर तद्भवस्थ होनेके प्रथम समयमें जघन्य योगवाला होता है तब उसके वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४८४ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णं ॥ ४८५ ॥

उससे भिन्न उसका अजघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४८५ ॥

जहण्णपदेण आहारसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४८६ ॥ अण्णदरस्स पमत्तसंजदस्स उत्तरं विउव्विदस्स ॥ ४८७ ॥ पढमसमयआहारयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स तस्स आहारसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं ॥ ४८८ ॥

जघन्य पदकी अपेक्षा आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४८६ ॥ वह अन्यतर प्रमत्तसंयतके, जिसने कि उत्तर शरीरकी विक्रियाकी है, उसके वह होता है ॥४८७॥ वह जब प्रथम समयवर्ती आहारक होकर तद्भवस्थ होनेके प्रथम समयमें स्थित होता हुआ जघन्य योगसे संयुक्त होता है तब उसके उस समय आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४८८ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णं ॥ ४८९ ॥

उससे भिन्न उसका अजघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४८९ ॥

जहण्णपदेण तेजासरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४९० ॥ अण्णदरस्स सुहुमणिगोदजीव अपज्जत्तयस्स एयंताणुवड्ढिए वड्ढमाणयस्स जहण्णजोगिस्स तस्स तेयासरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं ॥ ४९१ ॥

जघन्य पदकी अपेक्षा तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४९० ॥ एकान्तानुवृद्धियोगसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले जघन्य योगयुक्त अन्यतर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवके उस तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४९१ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णं ॥ ४९२ ॥

उससे भिन्न उसका अजघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४९२ ॥

जहण्णपदेण कम्मइयसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं कस्स ? ॥ ४९३ ॥ अण्णदरस्स जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणयं कम्मट्ठिदिमच्छिदो एवं जहा वेयणाए वेयणीयं तहा णेयव्वं । णवरि थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति चरिमसमय-भवसिद्धिओ जादो तस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स तस्स कम्मइयसरीरस्स जहण्णयं पदेसग्गं ॥ ४९४ ॥

जघन्य पदकी अपेक्षा कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र किसके होता है ? ॥ ४९३ ॥ अन्यतर जो जीव सूक्ष्म निगोद जीवोंमें पल्यके असंख्यातवें भागसे कम कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहा इस प्रकार जैसे वेदनाअनुयोगद्वारमें वेदनीय कर्मके जघन्य द्रव्यकी प्ररूपणा (सूत्र ७९–१०८)

की गई है वैसे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जीवितव्यके स्तोक प्रमाणमें शेष रहजानेपर जो अन्तिम समयवर्ती भवसिद्धिक हुआ है उस अन्तिम समयवर्ती भवसिद्धिक जीवके कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४९४ ॥

तव्वदिरित्तमजहण्णं ॥ ४९५ ॥

उससे भिन्न उसका अजघन्य प्रदेशाग्र होता है ॥ ४९५ ॥

अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवं ओरालियसरीरस्स पदेसग्गं ॥ ४९६ ॥ वेउव्वियसरीरस्स पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ४९७ ॥ आहारसरीरस्स पदेसग्गमसंखेज्जगुणं ॥ ४९८ ॥ तेयासरीरस्स पदेसग्गमणंतगुणं ॥ ४९९ ॥ कम्मइयसरीरस्स पदेसग्गमणंतगुणं ॥ ५०० ॥

अपल्पबहुत्वकी अपेक्षा औदारिकशरीरका प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है ॥ ४९६ ॥ उससे वैक्रियिकशरीरका प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ४९७ ॥ उससे आहारकशरीरका प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ॥ ४९८ ॥ उससे तैजसशरीरका प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है ॥ ४९९ ॥ उससे कार्मणशरीरका प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है ॥ ५०० ॥

सरीरविस्सासुवचयपरूवणदाए तत्थ इमाणि छ अणियोगद्दाराणि अविभागपलिच्छेदपरूवणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा अंतरपरूवणा सरीरपरूवणा अप्पाबहुए त्ति ॥

अब शरीरविस्रसोपचयप्ररूपणा अधिकारप्राप्त है। उसमें ये छह अनुयोगद्वार हैं– अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, शरीरप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ॥ ५०१ ॥

अविभागपडिच्छेदपरूवणदाए एक्केक्कम्मि ओरालियपदेसे केवडिया अविभागपडिच्छेदा? ॥ ५०२ ॥ अणंता अविभागपडिच्छेदा सव्वजीवेहि अणंतगुणा ॥ ५०३ ॥ एवडिया अविभागपडिच्छेदा ॥ ५०४ ॥

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाकी अपेक्षा औदारिकशरीरके एक एक प्रदेशमें कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं? ॥ ५०२ ॥ उसके एक एक प्रदेशमें सब जीवोंसे अनन्तगुणे अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ॥ ५०३ ॥ इतने अविभागप्रतिच्छेद औदारिकशरीरके एक एक प्रदेशमें होते हैं ॥

वग्गणपरूवणदाए अणंता अविभागपडिच्छेदा सव्वजीवेहि अणंतगुणा एया वग्गणा भवदि ॥ ५०५ ॥ एवमणंताओ वग्गणाओ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागो ॥ ५०६ ॥

वर्गणाप्ररूपणाकी अपेक्षा सब जीवोंसे अनन्तगुणे ऐसे अनन्त अविभागप्रतिच्छेदोंकी एक वर्गणा होती है ॥ ५०५ ॥ इस प्रकार प्रत्येक स्थानमें अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण अनन्त वर्गणायें होती हैं ॥ ५०६ ॥

फद्दयपरूवणदाए अणंताओ वग्गणाओ अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो तमेगं फद्दयं भवदि ॥ ५०७ ॥ एवमणंताणि फद्दयाणि अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो ॥ ५०८ ॥

स्पर्धकप्ररूपणाकी अपेक्षा अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण जो अनन्त वर्गणायें हैं वे सब मिलकर एक स्पर्धक होता है ॥ ५०७ ॥ इस प्रकार एक एक औदारिकशरीरस्थानमें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भाग प्रमाण अनन्त स्पर्धक होते हैं ॥

अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स फद्दयस्स केवडियमंतरं ? ॥ ५०९ ॥ सव्वजीवेहि अणंतगुणा, एवडियमंतरं ॥ ५१० ॥

अन्तरप्ररूपणाकी अपेक्षा एक एक स्पर्धकका कितना अन्तर है ? ॥ ५०९ ॥ सब जीवोंसे अनन्तगुणे मात्र अविभागप्रतिच्छेदोंसे अन्तर होता है । इतना अन्तर होता है ॥ ५१० ॥

सरीरपरूवणदाए अणंता अविभागपडिच्छेदा सरीरबंधणगुणपण्णच्छेदणणिप्पण्णा ॥

शरीरप्ररूपणाकी अपेक्षा शरीरके बन्धनके कारणभूत गुणोंका बुद्धिसे छेद करनेपर उत्पन्न हुए पूर्वोक्त अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ॥ ५११ ॥

छेदणा पुण दसविहा ॥ ५१२ ॥

सामान्यतया छेदन दस प्रकारके हैं ॥ ५१२ ॥ यथा–

णाम ट्ठवणा दवियं सरीरबंधणगुणप्पदेसा य ।
वल्लरि अणुत्तडेसु य उप्पइया पण्णभावे य ॥ ५१३ ॥

नामछेदना, स्थापनाछेदना, द्रव्यछेदना, शरीरबन्धनगुणछेदना, प्रदेशछेदना, वल्लरिछेदना, अणुछेदना, तटछेदना, उत्पातछेदना और प्रज्ञाभावछेदना; इस प्रकार छेदना दस प्रकारकी है ॥

अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स अविभागपडिच्छेदा ॥ ५१४ ॥ वेउव्वियसरीरस्स अविभागपडिच्छेदा अणंतगुणा ॥ ५१५ ॥ आहारसरीरस्स अविभागपडिच्छेदा अणंतगुणा ॥ ५१६ ॥ तेयासरीरस्स अविभागपडिच्छेदा अणंतगुणा ॥ ५१७ ॥ कम्मइयसरीरस्स अविभागपडिच्छेदा अणंतगुणा ॥ ५१८ ॥

अल्पबहुत्वकी अपेक्षा औदारिकशरीरके अविभागप्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं ॥ ५१४ ॥ उनसे वैक्रियिकशरीरके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं ॥ ५१५ ॥ उनसे आहारकशरीरके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं ॥ ५१६ ॥ उनसे तैजसशरीरके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं ॥ ५१७ ॥ उनसे कार्मणशरीरके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं ॥ ५१८ ॥

विस्सासुवचयपरूवणदाए एक्केक्कम्हि जीवपदेसे केवडिया विस्सासुवचया उवचिदा ? ॥

विस्रसोपचयप्ररूपणाकी अपेक्षा एक एक जीवप्रदेशपर कितने विस्रसोपचय उपचित हैं ? ॥ ५१९ ॥

अणंताविस्सासुवचया उवचिदा सव्वजीवेहि अणंतगुणा ॥ ५२० ॥ ते च सव्व-लोगागदेहि बद्धा ॥ ५२१ ॥

एक एक जीवप्रदेशपर अनन्त विस्रसोपचय उपचित हैं जो सब जीवोंसे अनन्तगुणे हैं ॥ ५२० ॥ वे सब लोकोंमेंसे आये हुए विस्रसोपचयोंसे बद्ध हुए हैं ॥ ५२१ ॥

तेसिं चउव्विहा हाणी दव्वहाणि खेत्तहाणी कालहाणी भावहाणी चेदि ॥५२२॥

उनकी चार प्रकारकी हानि होती है-- द्रव्यहानि, क्षेत्रहानि, कालहानि और भावहानि ॥

दव्वहाणिपरूवणदाए ओरालियसरीरस्स जे एयपदेसियवग्गणाए दव्वा ते बहुआ अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५२३ ॥ जे दुपदेसियवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५२४ ॥ एवं तिपदेसिय-चदुपदेसिय-पंचपदेसिय-छप्पपदेसिय-सत्तपदेसिय-अट्ठपदेसिय - णवपदेसिय-दसपदेसिय - संखेज्जपदेसिय-असंखेज्जपदेसिय-अणंतपदेसिय-अणंताणंतपदेसिय वग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५२५ ॥

द्रव्यहानिप्ररूपणाकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी एकप्रदेशी वर्गणाके जो द्रव्य हैं वे बहुत हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५२३ ॥ जो द्विप्रदेशी वर्गणाके द्रव्य हैं वे विशेष हीन हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५२४ ॥ इसी प्रकार त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, पंचप्रदेशी, छहप्रदेशी, सातप्रदेशी, आठप्रदेशी, नौप्रदेशी, दसप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी और अनन्तानन्तप्रदेशी वर्गणाके जो द्रव्य हैं वे विशेषहीन हैं और वे प्रत्येक अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५२५ ॥

तदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण तेसिं पंचविहा-हाणी-- अणंतभागहाणी असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणहाणी असंखेज्जगुणहाणी ॥ ५२६ ॥

तत्पश्चात् अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उनकी पांच प्रकारकी हानि होती है-- अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि ॥ ५२६ ॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ५२७ ॥

इसी प्रकार वैक्रियिक आदि शेष चार शरीरोंकी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ ५२७ ॥

खेत्तहाणिपरूवणदाए ओरालियसरीरस्स जे एयपदेसियखेत्तोगाढवग्गणाए दव्वा ते बहुगा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५२८ ॥ जे दुपदेसियखेत्तोगाढवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५२९ ॥ एवं ति-चदु-पंच-छ-सत्त-अट्ठ-णव-दस-संखेज्ज-असंखेज्ज-पदेसियखेत्तोगाढवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५३० ॥

क्षेत्रहानिप्ररूपणाकी अपेक्षा औदारिकशरीरके जो एकप्रदेश क्षेत्रावगाही वर्गणाके द्रव्य हैं वे बहुत हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५२८ ॥ जो द्विप्रदेशी क्षेत्रावगाही वर्गणाके द्रव्य हैं वे विशेष हीन हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥५२९॥ इसी प्रकार त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, पंचप्रदेशी, षट्प्रदेशी, सप्तप्रदेशी, अष्टप्रदेशी, नवप्रदेशी, दसप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी और असंख्यातप्रदेशी क्षेत्रावगाही वर्गणाके जो द्रव्य हैं वे विशेष हीन हैं और वे अनन्तानन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५३० ॥

तदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण तेसिं चउव्विहा हाणी असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणहाणी असंखेज्जगुणहाणी ॥ ५३१ ॥

उससे अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उनकी चार प्रकारकी हानि होती है— असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि ॥५३१॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ५३२ ॥

इसी प्रकार वैक्रियिक आदि शेष चार शरीरोंकी क्षेत्रहानि समझना चाहिए ॥ ५३२ ॥

कालहाणीपरूवणदाए ओरालियसरीरस्स जे एगसमयट्ठिदिवग्गणाए दव्वा ते बहुआ अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५३३ ॥ जे दुसमयट्ठिदिवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५३४ ॥ एवं ति-चदु-पंच-छ-सत्त-अट्ठ-णव-दस-संखेज्ज-असंखेज्जसमयट्ठिदिवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५३५ ॥

कालहानिप्ररूपणाकी अपेक्षा औदारिकशरीरके जो एक समयस्थितिवाली वर्गणाके द्रव्य हैं वे बहुत हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५३३ ॥ जो दो समयस्थितिवाली वर्गणाके द्रव्य हैं वे विशेष हीन हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५३४ ॥ इस प्रकार तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, संख्यात और असंख्यात समय तक स्थित रहनेवाली वर्गणाके जो द्रव्य हैं वे विशेष हीन हैं और वे प्रत्येक अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥

तदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण तेसिं चउव्विहा हाणी— असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणहाणी असंखेज्जगुणहाणी ॥ ५३६ ॥

उसके आगे अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उनकी चार प्रकारकी हानि होती है— असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि ॥५३६॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ५३७ ॥

इसी प्रकार वैक्रियिक आदि शेष चार शरीरोंकी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिए ॥५३७॥

भावहाणिपरूवणदाए ओरालियसरीरस्स जे एयगुणजुत्तवग्गणाए दव्वा ते बहुआ अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५३८ ॥ जे दुगुणजुत्तवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा

अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५३९ ॥ एवं ति-चदु-पंच-छ-सत्त-अट्ठ-णव-दस-संखेज्ज-असंखेज्ज-अणंत-अणंताणंतगुणजुत्तवग्गणाए दव्वा ते विसेसहीणा अणंतेहि विस्सासुवचएहि उवचिदा ॥ ५४० ॥

भावहानिप्ररूपणाकी अपेक्षा औदारिकशरीरके जो एक गुणयुक्त वर्गणाके द्रव्य हैं वे बहुत हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५३८ ॥ जो दो गुणयुक्त वर्गणाके द्रव्य हैं वे विशेष हीन हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५३९ ॥ इसी प्रकार तीन चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त गुणयुक्त वर्गणाके जो द्रव्य हैं वे विशेषहीन हैं और वे अनन्त विस्रसोपचयोंसे उपचित हैं ॥ ५४० ॥

तदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण तेसिं छव्विहा हाणी– अणंतभागहाणी असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणहाणी असंखेज्जगुणहाणी अणंतगुणहाणी ॥

उससे आगे अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उनकी छह प्रकारकी हानि होती है– अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यात-गुणहानि और अनन्तगुणहानि ॥ ५४१ ॥

एवं चदुण्णं सरीराणं ॥ ५४२ ॥

इसी प्रकार वैक्रियिक आदि शेष चार शरीरोंकी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिए ॥ ५४२ ॥

ओरालियसरीरस्स जहण्णयस्स जहण्णपदे जहण्णओ विस्सासुवचओ थोवो ॥

जघन्य औदारिकशरीरका जघन्य पदमें जघन्य विस्रसोपचय सबसे स्तोक है ॥ ५४३ ॥

तस्सेव जहण्णयस्स उक्कस्सपदे उक्कस्सओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५४४ ॥

उसी जघन्य औदारिकशरीरका उत्कृष्ट विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥ ५४४ ॥

तस्सेव उक्कस्सयस्स जहण्णपदे जहण्णओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५४५ ॥

उसी उत्कृष्ट औदारिकशरीरका जघन्य पदमें जघन्य विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥ ५४५ ॥

तस्सेव उक्कस्सयस्स उक्कस्सपदे उक्कस्सविस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५४६ ॥

उसी उत्कृष्ट औदारिकशरीरका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥ ५४६ ॥

एवं वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरस्स ॥ ५४७ ॥

इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीरकी भी प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिये ॥ ५४७ ॥

जहण्णयस्स जहण्णपदे जहण्णओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५४८ ॥

औदारिकशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सम्बन्धी विस्रसोपचयसे जघन्य वैक्रियिकशरीरका जघन्य विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥ ५४८ ॥

तस्सेव जहण्णयस्स उक्कस्सपदे उक्कस्सओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५४९ ॥

उससे उसी जघन्य वैक्रियिकका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥

तस्सेव उक्कस्सय जहण्णपदे जहण्णओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५५० ॥

उससे उसीके उत्कृष्टका जघन्य पदमें जघन्य विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥ ५५० ॥

तस्सेव उक्कस्सयस्स उक्कस्सपदे उक्कस्सओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५५१ ॥

उससे उसीके उत्कृष्टका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट विस्रसोपचय अनन्तगुणा है ॥ ५५१ ॥

बादरणिगोदवग्गणाए जहण्णियाए चरिमसमयछदुमत्थस्स सव्वजहण्णियाए सरीरोगाहणाए वट्टमाणस्स जहण्णओ विस्सासुवचओ थोवो ॥ ५५२ ॥

शरीरकी सबसे जघन्य अवगाहनामें विद्यमान अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थकी जघन्य विस्रसोपचय स्तोक है ॥ ५५२ ॥

सुहुमणिगोदवग्गणाए उक्कस्सियाए छण्णं जीवणिकायाणं एयबंधणबद्धाणं सपिंडिदाणं संताणं सव्वुक्कस्सियाए सरीरोगाहणाए वट्टमाणस्स उक्कस्सओ विस्सासुवचओ अणंतगुणो ॥ ५५३ ॥

एक बन्धनबद्ध होकर पिण्ड अवस्थाको प्राप्त हुए छह जीवनिकायोंकी सर्वोत्कृष्ट शरीरअवगाहनामें विद्यमान जीवकी उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोदवर्गणाका उत्कृष्ट विस्रसोपचय उससे अनन्तगुणा है ॥ ५५३ ॥

एदेसिं चेव परूवणदुदाए तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि— जीवपमाणाणुगमो पदेसमाणाणुगमो अप्पाबहुए त्ति ॥ ५५४ ॥

इन्हींकी प्ररूपणामें प्रयोजनीभूत वहां ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं— जीवप्रमाणानुगम प्रदेशप्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व ॥ ५५४ ॥

जीवपमाणाणुगमेण पुढविकाइया जीवा असंखेज्जा ॥ ५५५ ॥ आउक्काइया जीवा असंखेज्जा ॥ ५५६ ॥ तेउक्काइया जीवा असंखेज्जा ॥ ५५७ ॥ वाउक्काइया जीवा असंखेज्जा ॥ ५५८ ॥ वणप्फदिकाइया जीवा अणंता ॥ ५५९ ॥ तसकाइया जीवा असंखेज्जा ॥ ५६० ॥

जीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा पृथिवीकायिक जीव असंख्यात हैं ॥ ५५५ ॥ उनसे जल-कायिक जीव असंख्यात हैं ॥ ५५६ ॥ उनसे अग्निकायिक जीव असंख्यात हैं ॥ ५५७ ॥ उनसे वायुकायिक जीव असंख्यात हैं ॥ ५५८ ॥ उनसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं ॥ ५५९ ॥ उनसे त्रसकायिक जीव असंख्यात हैं ॥ ५६० ॥

पदेसपमाणाणुगमेण पुढविकाइयजीवपदेसा असंखेज्जा ॥ ५६१ ॥ आउक्काइय-जीवपदेसा असंखेज्जा ॥ ५६२ ॥ तेउक्कायियजीवपदेसा असंखेज्जा ॥ ५६३ ॥ वाउक्का-इयजीवपदेसा असंखेज्जा ॥ ५६४ ॥ वणप्फदिकाइयजीवपदेसा अणंता ॥ ५६५ ॥ तसका-इयजीवपदेसा असंखेज्जा ॥ ५६६ ॥

प्रदेशप्रमाणानुगमकी अपेक्षा पृथिवीकायिक जीवोंके प्रदेश असंख्यात हैं ॥ ५६१ ॥ उनसे जलकायिक जीवोंके प्रदेश असंख्यात हैं ॥ ५६२ ॥ उनसे अग्निकायिक जीवोंके प्रदेश असंख्यात हैं ॥ ५६३ ॥ उनसे वायुकायिक जीवोंके प्रदेश असंख्यात हैं ॥ ५६४ ॥ उनसे वनस्पतिकायिक जीवोंके प्रदेश अनन्त हैं ॥ ५६५ ॥ उनसे त्रसकायिक जीवोंके प्रदेश असंख्यात हैं ॥ ५६६ ॥

अप्पाबहुअं दुविहं– जीवअप्पाबहुअं चेव पदेसअप्पाबहुअं चेव ॥ ५६७ ॥

अल्पबहुत्व दो प्रकारका है– जीवअल्पबहुत्व और प्रदेशअल्पबहुत्व ॥ ५६७ ॥

जीवअप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवा तसकाइयजीवा ॥ ५६८ ॥ तेउकाइयजीवा असंखेज्जगुणा ॥ ५६९ ॥ पुढविकाइयजीवा विसेसाहिया ॥ ५७० ॥ आउकाइयजीवा विसेसाहिया ॥ ५७१ ॥ वाउकाइयजीवा विसेसाहिया ॥ ५७२ ॥ वणप्फदिकाइयजीवा अणंतगुणा ॥ ५७३ ॥

जीवअल्पबहुत्वकी अपेक्षा त्रसकायिक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ ५६८ ॥ उनसे अग्नि-कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५६९ ॥ उनसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५७० ॥ उनसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५७१ ॥ उनसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५७२ ॥ उनसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ५७३ ॥

पदेसअप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवा तसकाइयपदेसा ॥ ५७४ ॥ तेउकाइयपदेसा असंखेज्जगुणा ॥ ५७५ ॥ पुढविकाइयपदेसा विसेसाहिया ॥ ५७६ ॥ आउकाइयपदेसा विसेसाहिया ॥ ५७७ ॥ वाउकाइयपदेसा विसेसाहिया ॥ ५७८ ॥ वणप्फदिकाइयपदेसा अणंतगुणा ॥ ५७९ ॥

प्रदेशअल्पबहुत्वकी अपेक्षा त्रसकायिक जीवोंके प्रदेश सबसे स्तोक हैं ॥ ५७४ ॥ उनसे अग्निकायिक जीवोंके प्रदेश असंख्यातगुणे हैं ॥ ५७५ ॥ उनसे पृथिवीकायिक जीवोंके प्रदेश विशेष अधिक हैं ॥ ५७६ ॥ उनसे अप्कायिक जीवोंके प्रदेश विशेष अधिक हैं ॥ ५७७ ॥ उनसे वायुकायिक जीवोंके प्रदेश विशेष अधिक हैं ॥ ५७८ ॥ उनसे वनस्पतिकायिक जीवोंके प्रदेश अनन्तगुणे हैं ॥ ५७९ ॥

५. चूलिया

एत्तो उवरिमगंथो चूलिया णाम ॥ ५८० ॥

इससे आगेका ग्रन्थ चूलिका है ॥ ५८० ॥

जो णिगोदो पढमदाए वक्कममाणो अणंता वक्कमंति जीवा । एयसमएण अणंताणंतसाहारणजीवेण घेत्तूण एगसरीरं भवदि असंखेज्जलोगमेत्तसरीराणि घेत्तूण एगो णिगोदो होदि ॥ ५८१ ॥

प्रथम समयमें जो निगोद उत्पन्न होता है उसके साथ अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। यहां एक समयमें अनन्तानन्त साधारण जीवोंको ग्रहण कर एकशरीर होता है। तथा असंख्यात लोक प्रमाण शरीरोंको ग्रहण कर एक निगोद (पुलवी) होता है ॥ ५८१ ॥

विदियसमए असंखेज्जगुणहीणा वक्कमंति ॥५८२॥ तदियसमए असंखेज्जगुणहीणा वक्कमंति ॥ ५८३ ॥ एवं जाव असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए णिरंतरं वक्कमंति जाव उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ ५८४ ॥

दूसरे समयमें असंख्यातगुणे हीन निगोद जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ५८२ ॥ तीसरे समयमें असंख्यातगुणे हीन निगोद जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ५८३ ॥ इस प्रकार उत्कर्षसे आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक असंख्यातगुणी हीन श्रेणि क्रमसे निगोद जीव निरन्तर उत्पन्न होते हैं ॥ ५८४ ॥

तदो एक्को वा दो वा तिण्णि वा समए अंतरं काऊण णिरंतरं वक्कमंति जाव उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ ५८५ ॥

तत्पश्चात् एक, दो और तीन समयसे लेकर उत्कर्षसे आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालका अन्तर करके आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक निरन्तर निगोद जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ५८५ ॥

अप्पाबहुअं दुविहं– अद्धा अप्पाबहुअं चेव जीव अप्पाबहुअं चेव ॥ ५८६ ॥

अल्पबहुत्व दो प्रकारका है– अद्धाअल्पबहुत्व और जीवअल्पबहुत्व ॥ ५८६ ॥

अद्धाअप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवो सांतरसमए वक्कमणकालो ॥ ५८७ ॥ णिरंतरसमए वक्कमणकालो असंखेज्जगुणो ॥५८८॥ सांतरणिरंतरसमए वक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥

अद्धाअल्पबहुत्वकी अपेक्षा सान्तर समयमें उपक्रमणकाल सबसे स्तोक है ॥ ५८७ ॥ उससे निरन्तर समयमें उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा है ॥ ५८८ ॥ उससे सान्तरनिरन्तर समयमें उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ५८९ ॥

सव्वत्थोवो सांतरसमयवक्कमणकाल विसेसो ॥ ५९० ॥

सान्तर समयमें उपक्रमणकाल विशेष सबसे स्तोक है ॥ ५९० ॥

णिरंतरसमयवक्कमणकालविसेसो असंखेज्जगुणो ॥ ५९१ ॥ सांतरणिरंतरवक्कमणकालविसेसो विसेसाहिओ ॥ ५९२ ॥ जहण्णपदेण सव्वत्थोवा सांतरवक्कमणसव्वजहण्णकालो ॥५९३॥ उक्कस्सपदेण उक्कस्सओ सांतरसमयवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥५९४॥ जहण्णपदेण जहण्णगो णिरंतरवक्कमणकालो असंखेज्जगुणो ॥ ५९५ ॥ उक्कस्सपदेण उक्कस्सओ णिरंतरवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥ ५९६ ॥ जहण्णपदेण सांतरणिरंतरवक्कमणसव्वजहण्णकालो विसेसाहिओ ॥ ५९७ ॥ उक्कस्सपदेण सांतरणिरंतरवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥ ५९८ ॥ सव्वत्थोवो सांतरवक्कमणकालविसेसो ॥ ५९९ ॥ णिरंतरवक्कमणकालविसेसो असंखेज्जगुणो ॥ ६०० ॥ सांतरणिरंतरवक्कमणकालविसेसो विसेसाहिओ ॥ ६०१ ॥ जहण्णपदेण सांतरसमयवक्कमणकालो असंखेज्जगुणो ॥ ६०२ ॥ उक्कस्सपदेण सांतरसमयवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥ ६०३ ॥ जहण्णपदेण णिरंतरसमयवक्कमणकालो असंखेज्जगुणो ॥६०४॥ उक्कस्सपदेण णिरंतरसमयवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥६०५॥ जहण्णपदेण सांतरणिरंतरवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥ ६०६ ॥ उक्कस्सपदेण सांतरणिरंतरवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥ ६०७ ॥ उक्कस्सयं वक्कमणंतरमसंखेज्जगुणं ॥ ६०८ ॥ अवक्कम्मणकालविसेसो असंखेज्जगुणो ॥६०९॥ पबंधणकालविसेसो विसेसाहिओ ॥६१०॥ जहण्णपदेण जहण्णओ अवक्कमणकालो असंखेज्जगुणो ॥ ६११ ॥ जहण्णपदेण जहण्णओ पबंधणकालो विसेसाहिओ ॥ ६१२ ॥ उक्कस्सपदेण उक्कस्सओ अवक्कमणकालो विसेसाहिओ ॥ ६१३ ॥ उक्कस्सपदेण उक्कस्सओ पबंधणकालो विसेसाहिओ ॥ ६१४ ॥

उससे निरन्तर समयमें उपक्रमकाल विशेष असंख्यातगुणा है ॥ ५९१ ॥ उससे सान्तर-निरन्तर उपक्रमण कालविशेष विशेष अधिक है ॥५९२॥ जघन्य पदकी अपेक्षा सान्तर उपक्रमणका सबसे जघन्य काल सबसे स्तोक है ॥ ५९३ ॥ उससे उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा उत्कृष्ट सान्तर समय उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ५९४ ॥ उससे जघन्य पदकी अपेक्षा जघन्य निरन्तर उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा है ॥ ५९५ ॥ उससे उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा निरन्तर उपक्रमण काल विशेष अधिक है ॥ ५९६ ॥ उससे जघन्य पदकी अपेक्षा सान्तर-निरन्तर उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ५९७ ॥ उससे उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा सान्तर-निरन्तर उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ५९८ ॥ सान्तर उपक्रमणकाल विशेष सबसे स्तोक है ॥ ५९९ ॥ निरन्तर उपक्रमणकालविशेष असंख्यातगुणा है ॥ ६०० ॥ सान्तर-निरन्तर उपक्रमणकालविशेष विशेष अधिक है ॥ ६०१ ॥ जघन्य पदकी अपेक्षा सान्तर समय उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा है ॥ ६०२ ॥ उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा सान्तरसमय उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ६०३ ॥ जघन्य पदकी अपेक्षा निरन्तरसमय उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा है ॥ ६०४ ॥ उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा निरन्तरसमय उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ६०५ ॥ जघन्य पदकी अपेक्षा सान्तर-निरन्तर उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ६०६ ॥ उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा सान्तर-निरन्तर उपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥६०७॥ उत्कृष्ट

उपक्रमणअन्तर असंख्यातगुणा है ॥ ६०८ ॥ अप्रक्रमणकालविशेष असंख्यातगुणा है ॥ ६०९ ॥ प्रबन्धनकालविशेष विशेष अधिक है ॥ ६१० ॥ जघन्य पदकी अपेक्षा जघन्य अपक्रमणकाल असंख्यातगुणा है ॥ ६११ ॥ जघन्य पदकी अपेक्षा जघन्य प्रबन्धनकाल विशेष अधिक है ॥६१२॥ उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा उत्कृष्ट अपक्रमणकाल विशेष अधिक है ॥ ६१३ ॥ उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा उत्कृष्ट प्रबन्धनकाल विशेष अधिक है ॥ ६१४ ॥ ॥ एवं काल अप्पाबहुअं ॥

जीव अप्पाबहुए त्ति ॥ ६१५ ॥

अब जीव अल्पबहुत्वका प्रकरण है ॥ ६१५ ॥

सव्वत्थोवा चरिमसमए वक्कमंति जीवा ॥ ६१६ ॥ अपढम-अचरिमसमयएसु वक्कमंति जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ६१७ ॥ अपढमसमए वक्कमंति जीवा विसेसाहिया ॥ ६१८ ॥ पढमसमए वक्कमंति जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ६१९ ॥ अचरिमसमएसु वक्कमंति जीवा विसेसाहिया ॥ ६२० ॥ सव्वेसु समएसु वक्कमंति जीवा विसेसाहिया ॥ ६२१ ॥ सव्वत्थोवा चरिमसमए वक्कमंति जीवा ॥ ६२२ ॥ अपढम-अचरिमसमएसु वक्कमंति जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ६२३ ॥ अपढमसमए वक्कमंति जीवा विसेसाहिया ॥ ६२४ ॥ पढमसमए वक्कमंति जीवा असंखेज्जगुणा ॥ ६२५ ॥ अचरिमसमएसु वक्कमंति जीवा विसेसाहिया ॥ ६२६ ॥ सव्वेसु समएसु वक्कमिदजीवा विसेसाहिया ॥ ६२७ ॥

अन्तिम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ ६१६ ॥ अप्रथम-अचरम समयोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१७ ॥ अप्रथम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६१८ ॥ प्रथम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१९ ॥ अचरम समयोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६२० ॥ सब समयोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६२१ ॥ अन्तिम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं ॥ ६२२ ॥ अप्रथम-अचरम समयोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२३ ॥ अप्रथम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६२४ ॥ प्रथम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२५ ॥ अचरम समयमें उत्पन्न होनेवाले जीव विशेष अधिक है ॥ ६२६ ॥ सब समयोंमें उत्पन्न हुए जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६२७ ॥ ॥ जीव-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ॥

सव्वो बादरणिगोदो पज्जत्तो वा वामिस्सो वा ॥ ६२८ ॥

स्कन्ध, अण्डर, आवास और पुलविमें अवस्थित सब बादर निगोद पर्याप्त और मिश्र (पर्याप्त-अपर्याप्त) होते है ॥ ६२८ ॥

सुहुमणिगोदवग्गणाए पुण णियमा वामिस्सो ॥ ६२९ ॥

परन्तु सूक्ष्मनिगोदवर्गणामें नियमसे मिश्र ही होते है ॥ ६२९ ॥

जो णिगोदो जहण्णएण वक्कमणकालेण वक्कमंतो जहण्णएण पबंधणकालेण पबद्धो तेसिं बादरणिगोदाणं तथा पबद्धाणं मरणक्कमेण णिग्गमो होदि ॥ ६३० ॥

जो निगोद जघन्य उत्पत्ति कालके द्वारा उत्पन्न होकर जघन्य प्रबन्धनकालके द्वारा बन्धको प्राप्त हुए हैं उन बादर निगोदोंका उस प्रकारसे बद्ध होनेपर मरणके क्रमके अनुसार निर्गमन होता है ॥ ६३० ॥

सव्वुक्कस्सियाए गुणसेडीए मरणेण मदाणं सव्वचिरेण कालेण णिल्लेविज्जमाणाणं तेसिं चरिमसमए मदावसिट्ठाणं आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं ॥ ६३१ ॥

सर्वोत्कृष्ट गुणश्रेणि द्वारा मरणसे मरे हुए तथा सबसे दीर्घ काल द्वारा निर्लेपनको प्राप्त होनेवाले उन जीवोंके अन्तिम समयमें मृत होनेसे बचे हुए निगोदोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ६३१ ॥

एत्थ अप्पाबहुअं– सव्वत्थोवं खुद्दा भवग्गहणं ॥ ६३२ ॥

यहां अल्पबहुत्व– क्षुल्लकभवग्रहण सबसे स्तोक है ॥ ६३२ ॥

एइंदियस्स जहण्णिया णिवत्ती संखेज्जगुणा ॥ ६३३ ॥ सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया ॥ ६३४ ॥

एकेन्द्रियकी जघन्य निर्वृत्ति संख्यातगुणी है ॥ ६३३ ॥ वही उत्कृष्ट निर्वृत्ति अपने जघन्यसे विशेष अधिक है ॥ ६३४ ॥

बादरणिगोदवग्गणाए जहण्णियाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं ॥

क्षीणकषायके अन्तिम समयमें होनेवाली जघन्य बादर निगोदवर्गणामें निगोदोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ६३५ ॥

सुहुमणिगोदवग्गणाए जहण्णियाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं ॥

जघन्य सूक्ष्म निगोदवर्गणामें निगोदोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ६३६ ॥

सुहुमणिगोदवग्गणाए उक्कस्सियाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं ॥ ६३७ ॥

उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोदवर्गणामें निगोदोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ६३७ ॥

बादरणिगोदवग्गणाए उक्कस्सियाए सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं ॥

उत्कृष्ट बादर निगोदवर्गणामें निगोदोंका प्रमाण जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ॥ ६३८ ॥

एदेसिं चेव सव्वणिगोदाणं मूलमहाखंधट्ठाणाणि ॥ ६३९ ॥

इन सभी निगोदोंका– बादर निगोदोंका– मूल (कारण) महास्कन्धस्थान हैं ॥ ६३९ ॥

अट्ठ पुढवीओ टंकाणि कूडाणि भवणाणि विमाणाणि विमाणिंदयाणि विमाणपत्थडाणि णिरयाणि णिरइंदयाणि णिरयपत्थडाणि गच्छाणि गुम्माणि वल्लीणि लदाणि तणवणप्फदिआदीणि ॥ ६४० ॥

उपर्युक्त महास्कन्धस्थान ये हैं– आठ पृथिवीयां, टंक (पर्वतोंपर खोदी गई वापिकायें, कुटं, तालाब और जिनभवन आदि), कूट (मेरू और कुलाचल आदि), भवन, विमान, ऋतु आदि विमानेन्द्रक, विमानस्तर, नरक, नारकेन्द्रक, नारकप्रस्तर, गच्छ, गुल्म, वल्ली, लता और तृण-वनस्पति आदि ॥ ६४० ॥

जदा मूलमहाक्खंधट्ठाणाणं जहण्णपदे तदा बादरतसपज्जत्ताणं उक्कस्सपदे ॥

जब मूल महास्कन्धस्थानोंका जघन्य पद होता है तब बादर त्रस पर्याप्तकोंका उत्कृष्ट पद होता है ॥ ६४१ ॥

जदा बादरतसपज्जत्ताणं जहण्णपदे तदा मूलमहाक्खंधट्ठाणाणमुक्कस्सपदे ॥

जब बादर त्रस पर्याप्तोंका जघन्य पद होता है तब मूलमहास्कन्धस्थानोंका उत्कृष्ट पद होता है ॥ ६४२ ॥

६. महादंडओ

एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कायव्वो भवदि ॥ ६४३ ॥

अब आगे सब जीवोंमें महादण्डक किया जाता है ॥ ६४३ ॥

सव्वत्थोवं खुद्दाभवग्गहणं । तं तिधा विहत्तं– हेट्ठिल्लए तिभाए सव्वजीवाणं जहण्णिया अपज्जत्तणिव्वत्ती, मज्झिल्लए तिभाए णत्थि आवासयाणि, उवरिल्लए तिभागे आउअबंधो जवमज्झं समिलामज्झे त्ति वुच्चदि ॥ ६४४ ॥

क्षुद्रकभवग्रहण सबसे स्तोक है– वह तीन प्रकारका है– अधस्तन त्रिभागमें सब जीवोंकी जघन्य अपर्याप्तनिर्वृत्ति होती है, मध्यम त्रिभागमें आवश्यक नहीं होते, और उपरिम त्रिभागमें आयुबन्ध यवमध्य होता है । उसे शमिलायवमध्य कहा जाता है ॥ ६४४ ॥

तस्सुवरिमसंखेपद्धा ॥ ६४५ ॥ असंखेपद्धस्सुवरि खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६४६ ॥ खुद्दाभवग्गहणस्सुवरि जहण्णिया अपज्जत्त णिव्वत्ती ॥ ६४७ ॥ जहण्णियाए अपज्जत्तणिव्वत्तीए उवरिमुक्कस्सिया अपज्जत्तणिव्वत्ती अंतोमुहुत्तिया ॥ ६४८ ॥ तं चेव सुहुमणिगोदजीवाणं जहण्णिया अपज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ६४९ ॥

उसके ऊपर असंक्षेपाद्धा-- जघन्य आयुबन्धकाल-- है ॥ ६४५ ॥ असंक्षेपाद्धाके ऊपर क्षुद्रभवग्रहण है ॥ ६४६ ॥ क्षुद्रभवग्रहणके आगे जघन्य अपर्याप्त निर्वृत्ति है ॥ ६४७ ॥ जघन्य अपर्याप्त निर्वृत्तिके आगे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट अपर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ६४८ ॥ वही सूक्ष्मनिगोद जीवोंकी जघन्य अपर्याप्त निर्वृत्ति है ॥ ६४९ ॥

उवरिमुक्कस्सिया अपज्जत्तणिव्वत्ती अंतोमुहुत्तिया ॥ ६५० ॥

जघन्य अपर्याप्त निर्वृत्तिसे उपरिम उत्कृष्ट अपर्याप्त निर्वृत्ति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥

तत्थ इमाणि पढमदाए आवासयाणि होंति ॥ ६५१ ॥

वहां प्रथम समयमें लेकर सूक्ष्मनिगोद जीवोंकी उत्कृष्ट अपर्याप्त निर्वृत्ति तक ये आवश्यक होते हैं ॥ ६५१ ॥

तदो जवमज्झं गंतूण सुहुमणिगोदअपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६५२ ॥

तदनन्तर यवमध्यके व्यतीत होनेपर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकोंके आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण निर्लेपनस्थान होते हैं ॥ ६५२ ॥

तदो जवमज्झं गंतूण बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६५३ ॥

तत्पश्चात् यवमध्य जाकर बादर निगोद अपर्याप्त जीवोंके आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण निर्लेपनस्थान होते हैं ॥ ६५३ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयाणमाउअबंधजवमज्झं ॥६५४॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंका आयुबन्ध यवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयाणमाउअबंधजवमज्झं ॥६५५॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद अपर्याप्त जीवोंका आयुबन्धयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयाणं मरणजवमज्झं ॥ ६५६ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंका मरणयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयाणं मरणजवमज्झं ॥ ६५७ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद अपर्याप्त जीवोंका मरणयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयाणं णिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६५८ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकोंके आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण निर्वृत्तिस्थान होते हैं ॥ ६५८ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयाणं णिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६५९ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद अपर्याप्त जीवोंके आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण निर्वृत्तिस्थान होते हैं ॥ ६५९ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सव्वजीवाणं णिव्वत्तीए अंतरं ॥ ६६० ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सब जीवोंकी निर्वृत्तिका अन्तर होता है ॥ ६६० ॥

तत्थ इमाणि पढमदाए आवासयाणि भवंति ॥ ६६१ ॥

वहां सर्व प्रथम ये आवश्यक होते हैं ॥ ६६१ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण तिण्णं सरीराणं णिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६६२ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर तीन शरीरोंके आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण निर्वृत्तिस्थान होते हैं ॥ ६६२ ॥

ओरालिय वेउव्विय-आहारसरीराणं जहाकमं विसेसाहियाणि ॥ ६६३ ॥

पूर्वोक्त वे औदारिकशरीर वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरके निर्वृत्तिस्थान यथा क्रमसे उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं ॥ ६६३ ॥

एत्थ अप्पाबहुअं— सव्वत्थोवाणि ओरालियसरीरस्स णिव्वत्ति ट्ठाणाणि ॥६६४॥ वेउव्वियसरीरस्स णिव्वत्तिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६६५ ॥ आहारसरीरस्स णिव्वत्तिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६६६ ॥ तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण तिण्णं सरीराणमिंदियणिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६६७ ॥ ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीराणं जहाकमं विसेसाहियाणि ॥ ६६८ ॥

वहां अल्पबहुत्व इस प्रकार है— औदारिकशरीरके निर्वृत्तिस्थान सबसे स्तोक होते हैं ॥ ६६४ ॥ वैक्रियिकशरीरके निर्वृत्तिस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६६५ ॥ आहारशरीरके निर्वृत्तिस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६६६ ॥ तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर तीन शरीरोंके इन्द्रियनिर्वृत्तिस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते है ॥ ६६७ ॥ ये इन्द्रियनिर्वृत्तिस्थान औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरके क्रमसे उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं ॥ ६६८ ॥

एत्थ अप्पाबहुअं— सव्वत्थोवाणि ओरालियसरीरस्स इंदियणिव्वत्तिट्ठाणाणि ॥ ६६९ ॥ वेउव्वियसरीरस्स इंदियणिव्वत्तिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६७० ॥ आहारसरीरस्स इंदियणिव्वत्तिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६७१ ॥ तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण तिण्णं सरीराणं आणापाण-भासा-मणणिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६७२ ॥ ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीराणं जहाकमं विसेसाहियाणि ॥ ६७३ ॥

यहां अल्पबहुत्व– औदारिकशरीरके इन्द्रियनिर्वृत्तिस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ ६६९ ॥ वैक्रियिकशरीरके इन्द्रियनिर्वृत्तिस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६७० ॥ आहारकशरीरके इन्द्रियनिर्वृत्तिस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६७१ ॥ तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर तीन शरीरोंके आनपान, भाषा और मन निर्वृत्तिस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते है ॥ ६७२ ॥ ये निर्वृत्तिस्थान औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरके क्रमसे उत्तरोत्तर विशेष अधिक हैं ॥ ६७३ ॥

एत्थ अप्पाबहुअं– सव्वत्थोवाणि ओरालियसरीरस्स आणापाण-भासा-मणणिव्वत्तिट्ठाणाणि ॥६७४॥ वेउव्वियसरीरस्स आणापाण-भासा-मणणिव्वत्तिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६७५ ॥ आहारसरीरस्स आणापाण-भासा-मणणिव्वत्तिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥६७६॥ तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण तिण्णं सरीराणं णिल्लेवणट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६७७ ॥ ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीराणं जहाकम्मेण विसेसाहियाणि ॥ ६७८ ॥

यहां अल्पबहुत्व– औदारिकशरीरके आनपान, भाषा और मन निर्वृत्तिस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ ६७४ ॥ वैक्रियिकशरीरके आनपान, भाषा और मन निर्वृत्तिस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६७५ ॥ आहारशरीरके आनपान, भाषा और मन निर्वृत्तिस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६७६ ॥ तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर तीन शरीरोंके निर्लेपनस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥ ६७७ ॥ वे निर्लेपनस्थान औदारिकशरीर वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरके क्रमसे उत्तरोत्तर विशेष अधिक हैं ॥ ६७८ ॥

एत्थ अप्पाबहुगं– सव्वत्थोवाणि ओरालियसरीरस्स णिल्लेवणट्ठाणाणि ॥ ६७९ ॥ वेउव्वियसरीरस्स णिल्लेवणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६८० ॥ आहारसरीरस्स णिल्लेवणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६८१ ॥

यहां अल्पबहुत्व– औदारिकशरीरके निर्लेपनस्थान सबसे स्तोक हैं ॥ ६७९ ॥ वैक्रियिक शरीरके निर्लेपनस्थान विशेष अधिक हैं ॥६८०॥ आहारकशरीरके निर्लेपनस्थान विशेष अधिक हैं ॥

तत्थ इमाणि पढमदाए आवासयाणि होंति ॥ ६८२ ॥

वहां सर्वप्रथम बादर और सूक्ष्म निगोद जीवोंके ये आवश्यक होते हैं ॥ ॥ ६८२ ॥

तदो जवमज्झं गंतूण सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तयाणं णिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६८३ ॥

तत्पश्चात् यवमध्य जाकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंके निर्वृत्तिस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥ ६८३ ॥

तदो जवमज्झं गंतूण बादरणिगोदजीवपज्जत्तयाणं णिव्वत्तिट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६८४ ॥

तत्पश्चात् यवमध्य जाकर बादर निगोद पर्याप्त जीवोंके निर्वृत्तिस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥ ६८४ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तयाणमाउअबंधजवमज्झं ॥ ६८५ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंका आयुबन्धयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवपज्जत्तयाणं आउअबंधजवमज्झं ॥ ६८६ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद पर्याप्त जीवोंका आयुबन्धयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तयाणं मरणजवमज्झं ॥ ६८७ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंका मरणयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवपज्जत्तयाणं मरणजवमज्झं ॥ ६८८ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद पर्याप्त जीवोंका मरणयवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६८९ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंके निर्लेपनस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥ ६८९ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६९० ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद पर्याप्त जीवोंके निर्लेपनस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥ ६९० ॥

तम्हि चेव पत्तेयसरीरपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि ॥ ६९१ ॥

वहींपर प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंके निर्लेपनस्थान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥

एत्थ अप्पाबहुगं— सव्वत्थोवाणि सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि ॥

यहां अल्पबहुत्व— सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंके निर्लेपनस्थान सबसे स्तोक हैं ॥६९२॥

बादरणिगोदजीवपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६९३ ॥

बादर निगोद पर्याप्त जीवोंके निर्लेपनस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६९३ ॥

तम्हि चेव पत्तेयसरीरपज्जत्तयाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ॥ ६९४ ॥

वहींपर प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके निर्लेपनस्थान विशेष अधिक हैं ॥ ६९४ ॥

तत्थ इमाणि पढमदाए आवासयाणि हवंति ॥ ६९५ ॥

वहां सर्वप्रथम ये आवश्यक होते हैं ॥ ६९५ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तयाणं समिलाजवमज्झं ॥ ६९६ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवोंका शमिलायवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरणिगोदजीवपज्जत्तयाणं समिलाजवमज्झं ॥ ६९७ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर निगोद पर्याप्त जीवोंका शमिलायवमध्य होता है ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण एइंदियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ६९८ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर एकेन्द्रियकी जघन्य पर्याप्तनिर्वृत्ति होती है ॥ ६९८ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सम्मुच्छिमस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ६९९ ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सम्मूर्च्छिमकी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ६९९ ॥

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण गब्भोवक्कंतियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ७०० ॥

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर गर्भोपक्रान्तिककी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ७०० ॥

तदो दसवाससहस्साणि गंतूण ओववादियस्स जहण्णिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ७०१ ॥

तत्पश्चात् दस हजार वर्ष जाकर औपपादिककी जघन्य पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ७०१ ॥

तदो बावीसवाससहस्साणि गंतूण एइंदियस्स उक्कस्सिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥

तत्पश्चात् बाईस हजार वर्ष जाकर एकेन्द्रियकी उत्कृष्ट पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ७०२ ॥

तदो पुव्वकोडिं गंतूण सम्मुच्छिमस्स उक्कस्सिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ७०३ ॥

तत्पश्चात् पूर्वकोटि जाकर सम्मूर्च्छिमकी उत्कृष्ट पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ७०३ ॥

तदो तिण्णि पलिदोवमाणि गंतूण गब्भोवक्कंतियस्स उक्कस्सिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥ ७०४ ॥

तत्पश्चात् तीन पल्य जाकर गर्भोपक्रान्तिककी उत्कृष्ट पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ७०४ ॥

तदो तेत्तीसं सागरोवमाणि गंतूण ओववादियस्स उक्कस्सिया पज्जत्तणिव्वत्ती ॥

तत्पश्चात् तेतीस सागर जाकर औपपादिककी उत्कृष्ट पर्याप्त निर्वृत्ति होती है ॥ ७०५ ॥

तस्सेव बंधणिज्जस्स तत्थ इमाणि चत्तारि अणियोगद्दाराणि णायव्वाणि भवंति— वग्गणपरूवणा वग्गणणिरूवणा पदेसट्ठदा अप्पाबहुए त्ति ॥ ७०६ ॥

उसी बन्धनीयकी प्ररूपणामें ये चार अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं— वर्गणाप्ररूपणा, वर्गणानिरूपणा, प्रदेशार्थता और अल्पबहुत्व ॥ ७०६ ॥

वग्गणपरूवणदाए इमा एयदेसिया परमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम ॥ ७०७ ॥ इमा दुपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम ॥ ७०८ ॥ एवं तिपदेसिय-चदुपदेसिय-पंचपदेसिय-छप्पदेसिय-सत्तपदेसिय-अट्ठपदेसिय-णवपदेसिय-दसपदेसिय-संखेज्जपदेसिय-

असंखेज्जपदेसिय - अणंतपदेसिय-अणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम ॥७०९॥ तासिमणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणाणमुवरिमाहारसरीरदव्ववग्गणा णाम ॥७१०॥ आहारसरीरदव्ववग्गणाणमुवरिमगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७११ ॥ अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि तेजादव्ववग्गणा णाम ॥७१२॥ तेजादव्ववग्गणाणमुवरि अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७१३ ॥ अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि भासादव्ववग्गणा णाम ॥ ७१४ ॥ भासादव्ववग्गणाणमुवरिमगहण-दव्ववग्गणा णाम ॥ ७१५ ॥ अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि मणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७१६ ॥ मणदव्ववग्गणाणमुवरिमगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७१७ ॥

वर्गणाप्ररूपणाकी अपेक्षा यह एकप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा है ॥ ७०७ ॥ यह द्विप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा है ॥ ७०८ ॥ इस प्रकार त्रिप्रदेशिक, चतुःप्रदेशिक, पंचप्रदेशिक, षट्प्रदेशिक, सप्तप्रदेशिक, अष्टप्रदेशिक, नवप्रदेशिक, दसप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक अनन्तप्रदेशिक और अनन्तानन्तप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें जानना चाहिये ॥ ७०९ ॥ उन अनन्तानन्तप्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर आहारशरीरद्रव्य-वर्गणा होती है ॥ ७१० ॥ आहारशरीरद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥७११॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर तैजसद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७१२ ॥ तैजसद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७१३ ॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर भाषाद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७१४ ॥ भाषाद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७१५ ॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर मनोद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७१६ ॥ मनोद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि कम्मइयदव्ववग्गणा णाम ॥ ७१८ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर कार्मणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७१८ ॥

॥ इस प्रकार वर्गणा परूवणा समाप्त हुई ॥

वग्गणणिरूवणदाए इमा एयपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं गहण-पाओग्गाओ किमगहणपाओग्गाओ ? ॥ ७१९ ॥ अगहणपाओग्गाओ इमाओ एयपदेसिय-सव्वपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणाओ ॥ ७२० ॥

वर्गणानिरूपणाकी अपेक्षा ये एकप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें क्या ग्रहणप्रायोग्य हैं या क्या अग्रहणप्रायोग्य हैं ? ॥ ७१९ ॥ ये एकप्रदेशिक सब परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें अग्रहणप्रायोग्य हैं ॥ ७२० ॥

इमा दुपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं गहणपाओग्गाओ किमगहण-पाओग्गाओ ? ॥ ७२१ ॥ अगहणपाओग्गाओ ॥ ७२२ ॥

यह द्विप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें क्या ग्रहणप्रायोग्य हैं या क्या अग्रहणप्रायोग्य हैं ? ॥ ७२१ ॥ वे अग्रहणप्रायोग्य हैं ॥ ७२२ ॥

एवं तिपदेसिय - चदुपदेसिय - पंचपदेसिय - छप्पदेसिय - सत्तपदेसिय - अट्ठपदेसिय - णवपदेसिय - दसपदेसिय - संखेज्जपदेसिय - असंखेज्जपदेसिय - अणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं गहणपाओग्गाओ किमगहणपाओग्गाओ ॥ ७२३ ॥ अगहणपाओग्गाओ ॥

इस प्रकार त्रिप्रदेशिक, चतुःप्रदेशिक, पंचप्रदेशिक, छहप्रदेशिक, सप्तप्रदेशिक, अष्टप्रदेशिक, नवप्रदेशिक, दसप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें क्या ग्रहणप्रायोग्य हैं या क्या अग्रहणप्रायोग्य हैं ? ॥ ७२३ ॥ वे अग्रहणप्रायोग्य होती हैं ॥ ७२४ ॥

अणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं गहणपाओग्गाओ किमगहणपाओग्गाओ ? ॥ ७२५ ॥ काओ चि गहणपाओग्गाओ काओ चि अगहणपाओग्गाओ ॥

अनन्तानन्त प्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें क्या ग्रहणप्रायोग्य हैं या क्या अग्रहणप्रायोग्य हैं ॥ ७२५ ॥ उनमें कोई ग्रहणप्रायोग्य हैं और कोई अग्रहणप्रायोग्य हैं ॥ ७२६ ॥

तासिमणंताणंतपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणाणमुवरि आहारदव्ववग्गणा णाम ॥

उन अनन्तानन्त प्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर (मध्यमें) आहारद्रव्यवर्गणायें होती हैं ॥ ७२७ ॥

आहारदव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७२८ ॥ आहारदव्ववग्गणा तिण्णं सरीराणं गहणं पवत्तदि ॥ ७२९ ॥

आहारद्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७२८ ॥ आहारद्रव्यवर्गणा तीन शरीरोंके लिये प्रवृत्त होती है ॥ ७२९ ॥

अभिप्राय यह है कि जिसके स्कन्धोंको ग्रहण करके तीन शरीरोंकी निर्वृत्ति होती है उसे आहारद्रव्यवर्गणा जानना चाहिये ।

ओरालिय-वेउव्विय आहारसरीराणं जाणि दव्वाणि घेत्तूण ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरत्ताए परिणामेदूण परिणमंति जीवा ताणि दव्वाणि आहारदव्ववग्गणा णाम ॥

औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीरके जिन द्रव्योंको ग्रहण कर उन्हें औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर, रूपसे परिणमा करके जीव परिणत होते हैं उन द्रव्योंकी आहारद्रव्यवर्गणा संज्ञा है ॥ ७३० ॥

आहारदव्ववग्गणाणमुवरिमगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७३१ ॥

आहारद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७३१ ॥

अगहणदव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७३२ ॥ अगहणदव्ववग्गणा आहारदव्वमधिच्छिदा तेयादव्ववग्गणं ण पावदि ताणं दव्वाणमंतरे अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७३३ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७३२ ॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणा आहारद्रव्य पर अधिष्ठित होकर जब तक तैजसद्रव्यवर्गणाको नहीं प्राप्त होती है तब तक इन दोनों द्रव्योंके मध्यमें जो होती है उसका नाम अग्रहणद्रव्यवर्गणा है ॥ ७३३ ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि तेयादव्ववग्गणा णाम ॥ ७३४ ॥ तेयादव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७३५ ॥ तेयादव्ववग्गणा तेयासरीरस्स गहणं पवत्तदि ॥ ७३६ ॥ जाणि दव्वाणि घेत्तूण तेयासरीरत्ताए परिणामेदूण परिणमंति जीवा ताणि दव्वाणि तेजादव्व-वग्गणा णाम ॥ ७३७ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर तैजसद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७३४ ॥ तैजसद्रव्यवर्गणा किसे कहते है ? ॥ ७३५ ॥ जिस वर्गणासे तैजसशरीरके ग्रहणमें प्रवृत्त होता है उसे तैजस द्रव्य-वर्गणा कहते हैं ॥ ७३६ ॥ जिन द्रव्योंको ग्रहणकर वे उन्हें तैजसशरीररूपसे परिणमाकर जीव परिणमन करते हैं उन द्रव्योंकी तैजसद्रव्यवर्गणा संज्ञा है ॥ ७३७ ॥

तेयादव्ववग्गणाणमुवरिमगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७३८ ॥

तैजसद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७३८ ॥

अगहणदव्ववग्गणा णाम का ॥ ७३९ ॥ अगहणदव्ववग्गणा तेयादव्वमविच्छिदा भासादव्वं ण पावेदि ताणं दव्वाणमंतरे अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७४० ॥

अग्रहणद्रव्य किसे कहते हैं ? ॥ ७३९ ॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणा तैजसवर्गणापर स्थित होकर जब तक भाषाद्रव्यवर्गणाको नहीं प्राप्त होती तब तक उन द्रव्योंके मध्यमें जो वर्गणा होती है उसका नाम अग्रहण द्रव्यवर्गणा है ॥ ७४० ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि भासादव्ववग्गणा णाम ॥ ७४१ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर भाषा द्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७४१ ॥

भासादव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७४२ ॥ भासादव्ववग्गणा चउव्विहाए भासाए गहणं पवत्तदि ॥ ७४३ ॥ सच्चभासाए मोसभासाए सच्चमोसभासाए असच्चमोसभासाए जाणि दव्वाणि घेत्तूण सच्चभासत्ताए मोसभासत्ताए सच्चमोसभासत्ताए असच्चमोसभासत्ताए परिणा-मेदूण णिस्सारंति जीवा ताणि भासादव्ववग्गणा णाम ॥ ७४४ ॥

भाषा द्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७४२ ॥ जो वर्गणा चार प्रकारकी भाषाका ग्रहण होकर प्रवृत्त होती है उसे भाषा द्रव्यवर्गणा कहते हैं ॥ ७४३ ॥ सत्यभाषा, मृषाभाषा, सत्यमृषाभाषा और असत्यमृषाभाषाके जिन द्रव्योंको ग्रहण कर और उन्हें सत्यभाषा, मोषभाषा, सत्यमोषभाषा और असत्यमोषभाषारूपसे परिणमाकर जीव उन्हें निकालते हैं उन द्रव्योंकी भाषा-वर्गणा संज्ञा हैं ॥ ७४४ ॥

भासादव्ववग्गणाणमुवरिमगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७४५ ॥

भाषाद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७४५ ॥

अगहणदव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७४६ ॥ अगहणदव्ववग्गणा भासादव्वमधिच्छिदा मणदव्वं ण पावेदि ताणं दव्वाणमंतरे अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७४७ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७४६ ॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणा भाषाद्रव्यवर्गणासे प्रारम्भ होकर जब तक मनोद्रव्यको नहीं प्राप्त होती है तब तक उन द्रव्योंके मध्यमें जो वर्गणा होती है उसका नाम अग्रहणद्रव्यवर्गणा है ॥ ७४७ ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि मणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७४८ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर मनोद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७४८ ॥

मणदव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७४९ ॥ मणदव्ववग्गणा चउव्विहस्स मणस्स गहणं पवत्तदि ॥ ७५० ॥ सच्चमणस्स मोसमणस्स सच्चमोसमणस्स असच्चमोसमणस्स जाणि दव्वाणि घेत्तूण सच्चमणत्ताए मोसमणत्ताए सच्चमोसमणत्ताए असच्चमोसमणत्ताए परिणामेदूण परिणमंति जीवा ताणि दव्वाणि मणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७५१ ॥

मनोद्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७४९ ॥ मनोद्रव्यवर्गणा चार प्रकारके मनरूपसे ग्रहण होकर प्रवृत्त होती है ॥ ७५० ॥ सत्यमन, मृषामन, सत्यमृषामन और असत्यमृषामनके जिन द्रव्योंको ग्रहणकर और उन्हें सत्यमन, मृषामन, सत्यमृषामन और असत्यमृषामनरूपसे परिणमा कर जीव परिणत होते हैं उन द्रव्योंका नाम मनोद्रव्यवर्गणा है ॥ ७५१ ॥

मणदव्ववग्गणाणमुवरिमगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७५२ ॥

मनोद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७५२ ॥

अगहणदव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७५३ ॥ अगहणदव्ववग्गणा [मण] दव्वमधिच्छिदा कम्मइयदव्वं ण पावदि ताणं दव्वाणमंतरे अगहणदव्ववग्गणा णाम ॥ ७५४ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७५३ ॥ अग्रहणद्रव्यवर्गणा मनोद्रव्यवर्गणासे प्रारम्भ होकर जब तक कार्मणद्रव्यको नहीं प्राप्त होती हैं तब तक उन दोनों द्रव्योंके मध्यमें जो होती है उसका नाम अग्रहणद्रव्यवर्गणा है ॥ ७५४ ॥

अगहणदव्ववग्गणाणमुवरि कम्मइयदव्ववग्गणा णाम ॥ ७५५ ॥

अग्रहणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर कार्मणद्रव्यवर्गणा होती है ॥ ७५५ ॥

कम्मइयदव्ववग्गणा णाम का ? ॥ ७५६ ॥ कम्मइयदव्ववग्गणा अट्ठविहस्स कम्मस्स गहणं पवत्तदि ॥ ७५७ ॥ णाणावरणीयस्स दंसणावरणीयस्स वेयणीयस्स मोहणीयस्स आउअस्स णामस्स गोदस्स अंतराइयस्स जाणि दव्वाणि घेत्तूण णाणावरणीयत्ताए

दंसणावरणीयत्ताए वेयणीयत्ताए मोहणीयत्ताए आउअत्ताए णामत्ताए गोदत्ताए अंतराइयत्ताए परिणामेदूण परिणमंति जीवा ताणि दव्वाणि कम्मइयदव्ववग्गणा णाम ॥ ७५८ ॥

कार्मणद्रव्यवर्गणा किसे कहते हैं ? ॥ ७५६ ॥ कार्मणद्रव्यवर्गणा आठ प्रकारके कर्मके ग्रहणरूपसे प्रवृत्त होती है ॥ ७५७ ॥ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायके जो द्रव्य हैं उन्हें ग्रहणकर और ज्ञानावरणरूपसे, दर्शनावरणरूपसे, वेदनीयरूपसे, मोहनीयरूपसे, आयुरूपसे, नामरूपसे, गोत्ररूपसे और अन्तरायरूपसे परिणमा कर जीव परिणमित होतें हैं उन द्रव्योंका नाम कार्मणद्रव्यवर्गणा है ॥ ७५८ ॥

॥ इस प्रकार वर्गणा निरूपणा समाप्त हुई ॥

पदेसट्ठदा– ओरालियसरीर-दव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंताणंत पदेसियाओ ॥

अब प्रदेशार्थता अधिकारप्राप्त है– औदारिकशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तानन्त प्रदेशवाली होती हैं ॥ ७५९ ॥

पंचवण्णाओ ॥ ७६० ॥ पंचरसाओ ॥ ७६१ ॥ दुगंधाओ ॥ ७६२ ॥ अट्ठ-फासाओ ॥ ७६३ ॥

वे पांच वर्णवाली होती हैं ॥ ७६० ॥ पांच रसवाली होती हैं ॥ ७६१ ॥ दो गन्धवाली होती हैं ॥ ७६२ ॥ आठ स्पर्शवाली होती हैं ॥ ७६३ ॥

वेउव्वियसरीर-दव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंताणंतपदेसिया ॥ ७६४ ॥

वैक्रियिकशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तानन्त प्रदेशवाली होती हैं ॥

पंचवण्णाओ ॥ ७६५ ॥ पंचरसाओ ॥ ७६६ ॥ दुगंधाओ ॥ ७६७ ॥ अट्ठ-फासाओ ॥ ७६८ ॥

वे वैक्रियिकशरीर-द्रव्यवर्गणायें पांच वर्णवाली होती हैं ॥ ७६५ ॥ पांच रसवाली होती हैं ॥ ७६६ ॥ दो गन्धवाली होती हैं ॥ ७६७ ॥ तथा आठ स्पर्शवाली होती हैं ॥ ७६८ ॥

आहारसरीर-दव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंताणंत पदेसियाओ ॥ ७६९ ॥

आहारकशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तानन्त प्रदेशवाली होती हैं ॥

पंचवण्णाओ ॥ ७७० ॥ पंचरसाओ ॥ ७७१ ॥ दुगंधाओ ॥ ७७२ ॥ अट्ठ-फासाओ ॥ ७७३ ॥

वे आहारकशरीर-द्रव्यवर्गणायें पांच वर्णवाली होती हैं ॥ ७७० ॥ पांच रसवाली होती हैं ॥ ७७१ ॥ दो गन्धवाली होती हैं ॥ ७७२ ॥ आठ स्पर्शवाली होती हैं ॥ ७७३ ॥

तेजासरीर-दव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंताणंतपदेसियाओ ॥ ७७४ ॥

तैजसशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तानन्त प्रदेशवाली होती हैं ॥

पंचवण्णाओ ॥ ७७५ ॥ पंचरसाओ ॥ ७७६ ॥ दुगंधाओ ॥ ७७७ ॥ चदु-फासाओ ॥ ७७८ ॥

वे तैजसशरीर-द्रव्यवर्गणायें पांच वर्णवाली होती हैं ॥ ७७५ ॥ पांच रसवाली होती हैं ॥ ७७६ ॥ दो गन्धवाली होती हैं ॥ ७७७ ॥ तथा चार स्पर्शवाली होती हैं ॥ ७७८ ॥

भासा-मण-कम्मइयसरीरदव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंताणंतपदेसियाओ ॥७७९॥

भाषा-द्रव्यवर्गणायें, मनोद्रव्यवर्गणायें और कार्मणशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तानन्त प्रदेशवाली होती हैं ॥ ७७९ ॥

पंचवण्णाओ ॥ ७८० ॥ पंचरसाओ ॥ ७८१ ॥ दुगंधाओ ॥ ७८२ ॥ चदु-फासाओ ॥ ७८३ ॥

उक्त तीनों वर्गणायें पांच वर्णवाली होती हैं ॥ ७८० ॥ पांच रसवाली होती हैं ॥ ७८१ ॥ दो गन्धवाली होती हैं ॥ ७८२ ॥ तथा चार स्पर्शवाली होती हैं ॥ ७८३ ॥

अप्पाबहुगं दुविहं— पदेस-अप्पाबहुअ चेव ओगाहण-अप्पाबहुअं चेव ॥ ७८४ ॥

अल्पबहुत्व दो प्रकारका है— प्रदेश-अल्पबहुत्व और अवगाहना-अल्पबहुत्व ॥ ७८४ ॥

पदेस-अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवाओ ओरालियसरीरदव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए ॥

प्रदेश-अल्पबहुत्वके अनुसार औदारिकशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा सबसे स्तोक हैं ॥ ७८५ ॥

वेउव्वियसरीरदव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७८६ ॥

वैक्रियिकशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७८६ ॥

आहारसरीरदव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७८७ ॥

आहारकशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७८७ ॥

तेजासरीरदव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंतगुणाओ ॥ ७८८ ॥

तैजसशरीर-द्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तगुणी हैं ॥ ७८८ ॥

भासा-मण-कम्मइयसरीरदव्ववग्गणाओ पदेसट्ठदाए अणंतगुणाओ ॥ ७८९ ॥

भाषाद्रव्यवर्गणायें, मनोद्रव्यवर्गणायें और कार्मणशरीरद्रव्यवर्गणायें प्रदेशार्थताकी अपेक्षा अनन्तगुणी हैं ॥ ७८९ ॥

ओगाहण-अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवाओ कम्मइयसरीरदव्ववग्गणाओ ओगाहणाए ॥

अवगाहनाअल्पबहुत्वके अनुसार कार्मणशरीर-द्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा सबसे स्तोक हैं ॥ ७९० ॥

मणदव्ववग्गणाओ ओगाहणाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७९१ ॥

मनोद्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७९१ ॥

भासादव्ववग्गणाओ ओगाहणाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७९२ ॥

भाषाद्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७९२ ॥

तेजासरीरदव्ववग्गणाओ ओगाहणाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७९३ ॥

तैजसशरीरद्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७९३ ॥

आहारसरीरदव्ववग्गणाओ ओगाहणाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७९४ ॥

आहारकशरीरद्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७९४ ॥

वेउव्वियसरीरदव्ववग्गणाओ ओगाहणाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७९५ ॥

वैक्रियिकशरीरद्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७९५ ॥

ओरालियसरीरदव्ववग्गणाओ ओगाहणाए असंखेज्जगुणाओ ॥ ७९६ ॥

औदारिकशरीरद्रव्यवर्गणायें अवगाहनाकी अपेक्षा असंख्यातगुणी हैं ॥ ७९६ ॥

जं तं बंधविहाणं तं चउव्विहं– पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो चेदि ॥ ७९७ ॥

जो वह बन्धविधान है वह चार प्रकारका है – प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ॥ ७९७ ॥

॥ इस प्रकार बन्धन-अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

प रि शि ष्ट

पारिभाषिक शब्दसूची

आ

ग्रन्थगत प्राकृत शब्दोंका स्वरूपभेद

स्वरव्यत्यय

वर्णव्यत्यय	संस्कृत	प्राकृत	सूत्र	त्रि. प्रा. शब्दानु.
उ = इ	पुरुष	पुरिस	१,१,१०१	१।२।५९
उ = ओ	पुद्‌गल	पोग्गल		१।२।६५
ऋ = इ	ऋद्धि	इड्ढि	५,५,९८	१।२।७५
ऋ = उ	ऋजुमति	उजुमदि	५,५,७७	१।२।८०
ऋ = रि	ऋषेः	रिसिस्स	४,१,४४	१।२।९१
ऋ = रि	सदृशः	सरिसो		१।२।९०
ऋ = अ	मृदुनाम	मउवणामं	१,९-१,४०	१।२।७३
ऋ = इ	मृग	मिय	५,५,१५७	१।२।७५
ऋ = उ	मृषावाद	मुसावाद	४,२-८,३	१।२।८५
ऋ = ओ	मृषा	मोस	१,१,५२	१।२।८५
ए = इ	माहेन्द्र	माहिंद	५,५,७०	१।२।४०
ऐ = ए	शैल	सेल	४,१,५२	१।२।१०१
औ = ओ	औदारिक	ओरालिय	१,१ ५६	१।२।१०१
औ = ओ	लौकिक	लोइय	५,५,५१	१।२।१०१

स्वरोंके मध्यगत असंयुक्त व्यंजनका व्यत्यय

वर्णव्यत्यय	संस्कृत	प्राकृत	सूत्र	त्रि. प्रा. शब्दानु.
क-लोप	लौकिक	लोइय	५,५,५१	१।३।८
क = ख	कर्कश	कक्खड	१,९-१,४०	१।३।१०५
क = ख	कुब्ज	खुज्ज	१,९-१,३४	१।३।१२
क = ग	लोकाः	लोगा	१,२,४	१।३।१४
क = य	तीर्थंकर अन्तकृत	तित्थयर अंतयड	१,९-९,२१६	१।३।१० १।२।४०
ख = ह	सुख, द्रोणमुख	सुह, दोणामुमुह	५,५,७९	१।३।२०
ग = य	भगवान्	भयवं	५,५,९८	
ग = य	नगर	णयर	५,५,७९	१।३।१०
ग-लोप	प्रयोग	पओअ	५,६,२३	१।३।८
घ = ह	मेघानाम्	मेहाणं	५,६,३७	१।३।२०
च-लोप	अप्रचुरः	अपउरा	५,६,१२७	१।३।८
च = ज	रुचके	रुजगम्मि	५,५,६४	
च = य	प्रचला	पयला	१,९-१,१६	
ज-लोप	मनुज	मणुअ	५,५,६४	१।३।८
ज = य	भाजन	भायण	५,५,१८	
ट = ड	कूट	कूड	५,३,३०	१।३।३१

वर्णव्यत्यय	संस्कृत	प्राकृत	सूत्र	त्रि. प्रा. शब्दानु.
ठ = ड	पीठानाम्	पीडाणं	५,६,४२	
ठ = ढ	पिठर	पिढर	५,५,१८	१।३।२८
ण = ड	श्रेणी	सेडी	४,२-७,१७५	
ण = ढ	श्रेणय:	सेढीओ	१,२.१७	
त-लोप	गति	गइ	१,१,४	१।३।८
त = ड	प्रतिपद्यत:	पडिवज्जंतस्स	१,९-१,१	१।३।३३
त = द	मति	मदि	५,५,७९	
त = व	उद्योत	उज्जोव	१,९-१,२८	
त = ह्	भरत	भरह्	५,५,६४	१।३।३९
थ = ढ	पृथिवी	पुढवि	१,१,३९	१।३।४७
थ = ढ	प्रथमायाम्	पढमाए	१,२,१९	१।३।४८
थ = ध	पृथक्त्वेन	पुधत्तेण	२,२,१५	१।३।२१
थ = ह्	मैथुन	मेहुण	४,२-८,५	१।३।२०
द-लोप	मृदुक	मउव	१,९-१,४०	१।३।८
द = य	द्विपद	दुपय	५,५,१५७	
द = र	एकादश	एक्कारस	५,६,६६	१।३।४२
ध = ह्	मेधा	मेहा	५,५,३७	१।३।२०
प = व	उपघात	उवघाद	१,९-१,४०	१।३।५५
भ = ह्	शुभ	सुह	१,९-१,२८	१।३।२०
भ = ह्	त्रिभंग	विहंग	५,६,१९	१।३।२०
य-लोप	काय:, कषाय:	काए, कसाए	१,१,४	१।३।८
य = ज	योगे	जोगे	१,१,४	१।३।७४
र = ल	हारिद्र	हालिद्द	१,९-१,३७	१।३।७८
श = ह्	द्वादश	बारह्	१,४,४	१।३।८८
ष = छ	षष्ठ्याम्	छट्ठीए	१,९-९,४९	१।३।९०

संयुक्त व्यंजन

क्त = त्त	तिक्त	तित्त	१,९-१,३९,	१।४।७७
क्त्व = त्त	पृथक्त्वेन	प्रधत्तेण	२,२,१५	
क्र = क्क	शक्र, शुक्र	सक्क, सुक्क	५,५,७०	
क्ल = क्क	शुक्ल	सुक्क	१,१,१३६	१।४।७८
क्ल = क्किल	शुक्ल	सुक्किल	१,९-१,३७; ५,५,१२७	
क्ष = ख	क्षपका:	खवा	१,१,१६-१८	१।४।८
क्ष = क्ख	पक्षी	पक्खी	५,५,१५७	
ग्म = म्म	युग्म	जुम्म	४,२-७,१९८	१।४।४७

वर्णव्यत्यय	संस्कृत	प्राकृत	सूत्र	त्रि. प्रा. शब्दानु.
ग्र = ग	ग्रन्थिम	गंथिम	४,१,६५	१।४।७८
ग्र = ग्ग	विग्रह	विग्गह	१,१,६०	"
ग्रय = ग्ग	अग्रय	अग्ग	५,५,५१	
ज्ञ = ण	ज्ञानी	णाणी	१,१,१४५	१।४।३७
ज्य = ज	ज्योतिष्क	जोइसिय	१,१,९६	
ज्र = ज्ज	वज्र	वज्ज	१,९-१,३६	१।४।९८
ज्र = इर	वज्र	वइर	५,५,१२६	१।४।९८
ञ्च = ण्ण	पञ्चाशत:	पण्णासाए	४,२-६,१०८	१।४।३६
त्त = ट्ट	मृत्तिका	मट्टिय	४,१,७१	१।४।३१
त्त्व = च्च	तत्त्वं	तच्चं	५,५,५१	१।४।६५
त्य = च	त्यक्त	चत्त	४,१,६३	
त्य = च्च	सत्य	सच्च	१,१,४९-५२	१।४।१७
त्य = त	प्रत्येक	पत्तेय	१,१,४१	
त्र = त्त	क्षेत्रे	खेत्ते	१,३,२	१।४।७८
त्र = त्थ	तत्र	तत्थ	१,१,२	२।१।७
त्व = त	त्वक्	तय	५,३,४	
त्स = च्छ	श्रीवत्स	सिरिवच्छ	५,५,५९	
थ्य = च्छ	मिथ्यादृष्टि	मिच्छाइट्ठी	१,१,९	१।४।२१
द्घ = ग्घ	समुद्घात	समुग्घाद	१,१,६०	
द्घ = ह	समुद्घत:	समुहदो	४,२-५,९	
द्ध = ज्झ	विशुद्धता	विसुज्झदा	३,४१	
द्ध = ड्ढ	वृद्धि	वुड्ढी	५,५,६६	१।४।३५
द्भ = ब्भ	सद्भाव	सब्भाव	५,६,८-९	
द्म = म्म	पद्म	पम्म	१,१,१३६	
द्यु = ज्ज	विद्युतां	विज्जूणं	५,६,३७	१।४।२४
द्र = द्द	समुद्र	समुद्द	१,१,१५७	१।४।८०
द्वि = दु	द्विपद	दुवय	५,५,१५७	१।२।४८
ध्य = ज्झ	उपाध्यायानाम्	उवज्झायाणं	१,१,१	१।४।२६
न्म = म्म	जन्मना	जम्मणेण	४,२-४,५९	१।४।४८
न्य = ण्ण	अन्योन्याभ्यास	अण्णोण्णब्भास	१,२,२२	
प्य = प्प	स्थाप्य:	थप्पो	५,६,२४	
प्र = प	प्रमत्त	पमत्त	१,१,१४	
प्र = प्प	अंगमलप्रभृतीनि	अंगमलप्पहुडीणि	५,६,३७	
ब्द = द्द	शब्दादय:	सद्दादओ	४,१,५०	
भ्य = ब्भ	अभ्युत्थित:	अब्भुट्ठिदो	४,२-४,७४	
भ्र = ब्भ	बभ्रेण, दभ्रेण	बब्भेण, दब्भेण	५,६,४१	
म्य = म्म	सम्यक्	सम्मं	५,५,१०८	

वर्णव्यत्यय	संस्कृत	प्राकृत	सूत्र	त्रि. प्रा. शब्दानु.
र्क = क्क	तर्क	तक्कं	५,५,९८	१।४।७८
र्क = क्ख	कर्कश	कक्खड	१,९-१,४०	
र्ग = ग्ग	वर्गः	वग्गो	१,२,९८	
र्घ = ह	दीर्घः	दीहे	४,१,५५	
र्च = च्च	अर्चनीयाः	अच्चणिज्जा	३,४२	
र्ज = ज्ज	वर्ज	वज्ज	१,९-२,१४	
र्ण = ण्ण	उदीर्णा	उदिण्णा	४,२-१०,९	
र्त = ट्ट	परिवर्तम्	परियट्टं	१,५,४	१।४।३०
र्त = त्त	परिवर्तमान	परियत्तमाण	४,२-७,३२	
र्ध = ड्ढ	वर्धमान	वड्ढमाण	४,१,४४	
र्प = प्प	तर्पण	तप्पण	५,५,१८	
र्भ = ब्भ	गर्भोपक्रान्तिकेषु	गब्भोवक्कंतिएसु	१,९-९,१७	
र्म = म्म	कर्म	कम्मं	१,९-१,१	
र्य = ज्ज	पर्याप्तः	पज्जत्ता	१,१,३४	१।४।२४
र्ल = ल्ल	निर्लेपन	णिल्लेवण	५,६,६५२-५३	
र्व = व्व	पूर्व, पर्व	पुव्व, पव्व	५,५,६०	
र्ष = स्स	वर्ष	वस्स, वास	२,२,२; १,९-६,१४	
व्य = व	व्यवहार	ववहार	४,२-२,२	
व्य = व्व	कर्तव्यः	कादव्वो	१,९-४,१	
श्न = ण्ण	प्रश्न	पण्ण	५,६,१९	१।४।६९
ष्ट = ठ	दृष्टिः	दिट्ठी	१,१,९	१।४।१४
ष्ण = ण्ह	कृष्ण	किण्ह	१,९,१३७	१।४।६९
स्क = ख	स्कन्ध	खंध	५,६,६८	१।४।६
स्त = थ	स्तव-स्तुति	थय-थुदि	४,१,५५	१।४।४०
स्थ = ठ	स्थापनाकृतिः	ठवणकदी	४,१,४६	
स्न = न	स्निग्ध	णिद्ध	१,९-१,४०	
स्प = फ	स्पर्श	फास	५,३,२	
स्म = स	स्मृतिः	सदी	५,५,४१	
स्र = स्स	सहस्राणि	सहस्साणि	२,२,२	
स्व = स	स्वस्थानेन	सत्थाणेण	२,६,४	
ह्म = म्ह	ब्रह्म	बम्ह	५,५,७०	१।४।६७
ह्व = ब्भ	जिह्वेन्द्रिय	जिब्भिंदिय	५,५,२६	१।४।५१

गाथासूत्र-पाठ

मंगल-गाथासूत्र

क्रमाङ्क | | पृष्ठाङ्क

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ — १

वेदनाखण्ड

क्रमाङ्क	गाथासूत्र	पृष्ठाङ्क
१	सादं जसुच्च-दे-कं ते-आ-वे-मणु अणंतगुणहीणा । ओ-मिच्छ-के असादं वीरिय-अणंताणु-संजलणा ॥	६२०
२	अट्ठाभिणि-परिभोगे चक्खू तिण्णि तिय पंचणोकसाया । णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा य पयला य ॥	६२०
३	अजसो णीचागोदं णिरय-तिरिक्खगइ इत्थि पुरिसो य । रदि हस्सं देवाऊ णिरयाऊ मणुय-तिरिक्खाऊ	६२१
४	संज-मण-दाणमोही लाभं सुद-चक्खु-भोग भोग-चक्खुं च । आभिणिबोहिय परिभोग विरिय णव णोकसायाइं ॥	६२४
५	के-प-णि-अट्ठ-त्तिय-अण-मिच्छा-ओ-वे-तिरिक्ख-मणुसाऊ । तेया-कम्मसरीरं तिरिक्ख-णिरय-मणुव-देवगई ॥	६२४
६	णीचागोदं अजसो असादमुच्चं जसो तहा सादं । णिरयाऊ देवाऊ आहारसरीरणामं च ॥	६२४
७	सम्मत्तुप्पत्ती वि य सावय-विरदे अणंतकम्मंसे । दंसणमोहक्खवए कसाय-उवसामए य उवसंते ॥	६२७
८	खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा । तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेढीए ॥	६२७

वर्गणाखण्ड

(स्पर्श—अनुयोगद्वार)

क्रमाङ्क	गाथासूत्र	पृष्ठाङ्क
९	एदे सव्वे फासा बोद्धव्वा होंति णेगमणयस्स । णेच्छदि य बंध-भवियं ववहारो संगहणओ य ॥	६८९
१०	एयक्खेत्तमणंतर बंधं भवियं च णेच्छदुज्जुसुदो । णामं च फासफासं भावप्फासं च सद्दणओ ॥	६८९

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
४	३०	उन्हींके	उन्हीं जीवोंके
५	१	उन्हींकी वर्तमान अवगाहनाकी प्ररूपणा की जाती है।	उन्हीं जीवोंके वर्तमान क्षेत्रकी प्ररूपणा करता है।
५	२	उक्त द्रव्योंकी	उक्त जीवोंकी
५	३-४	जिन द्रव्योंके अस्तित्वादिका	जिन जीवोंकी स्थितिका
५	५	उक्त द्रव्योंके	उक्त जीवोंके
५	६	उन्हीं द्रव्योंकी	उन्हीं जीवोंकी
५	१५	ये हैं– जो भाव कर्मोंके	ये हैं– जो भाव कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है, उसे औदयिकभाव कहते हैं। जो भाव
७	३	होता है। इस गुणस्थानमें	होता है और परिणामोंके निमित्तसे कदाचित् मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वको भी प्राप्त हो जाता है। इस गुणस्थानमें
१०	२४	जिसन	जिसने
१३	१६	उक्त पांच	द्वितीयादि चार
१७	२४	कहते हैं। इन छहों	कहते हैं। यह पर्याप्ति भाषापर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। इन छहों
१७	२५	होती है। इन	होती है। यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि यद्यपि एक एक पर्याप्तिके पूर्ण होनेका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, तथापि छहों पर्याप्तियोंकी पूर्णताका समुच्चय काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है। इन
२६	२८	उसमें कपाटरूप	उसमें दण्डसमुद्घातके समय औदारिककाययोग, कपाटरूप
३९	२६	[अण्णाणि णाणेण]	[अण्णाणाणि णाणेण]
४४	६-८	स्वच्छन्द हो, काम करनेमें मन्द हो, वर्तमान कार्य करनेमें विवेक रहित	स्वच्छन्द हो, ऐसे जीवको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
		हो, कला-चातुर्यसे रहित हो, पांच इन्द्रियोंके विषयोंमें लम्पट हो, मानी हो, मायावी हो, आलसी हो, तथा डरपोंक हो, ऐसे जीवको	
४४	९	जो अतिशय	जो काम करनेमें मन्द हो, वर्तमान कार्य करनेमें विवेक-रहित हो, कलाचातुर्यसे रहित हो, पांच इन्द्रियोंके विषयोंमें लम्पट हो, मानी हो, मायावी हो, आलसी हो, डरपोंक हो, अतिशय
५६	१०	भागहरका	भागहारका
५७	८	अर्थ इष्ट नहीं है।	अर्थ इष्ट नहीं है। परमगुरुके उपदेशानुसार अप्रमत्तसंयत जीवोंका प्रमाण दो करोड छयानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन २९६९९१०३ है।
५९	१९	उसप्पिणीहि	उस्सप्पिणीहि
६४	२६	गुनस्थानसे	गुणस्थानसे
७३	६	पडिभागण	पडिभागेण
७७	१०	आणियट्टि	अणियट्टि
७९	२६	ओघ	ओघं
८८	१८	असखज्जदिभागे	असंखेज्जदिभागे
९४	८	पुरिसवेदेसु	पुरिसवेदएसु
९४	१३	णवुंसयवेदेसु	णवुंसयवेदएसु
९९	९	सम्यमिथ्यादृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
१०३	२३	उसके नीचे	मेरुके नीचे
१०७	२३	सासदनसम्यग्दृष्टि	सासादनसम्यग्दृष्टि
१०९	२	भवनवासिय	भवणवासिय
१०९	१८	सम्यमिथ्यादृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
११६	३	कवडियं	केवडियं
१३०	८	जीव मिथ्यात्वको	जीव सम्यग्मिथ्यात्वको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१३७	२५	छह (सूत्र ३९. के अनुसार)	छह (सूत्र ३९ की धवला टीकाके अनुसार)
१३९	२०	-अपज्जता	अपज्जत्ता
१४४	२५	-परियट्ट	- परियट्टं
१४९	७	अपज्जताणं	-अपज्जत्ताणं
१५७	२१	इत्थिवेदेसु	इत्थिवेद्एसु
१५८	२६	णवुंसयवेदेसु	णवुंसयवेद्एसु
१६८	२३	कालाणुयोगद्दार	कालानुयोगद्दार
१७९	२८	अन्तर्मुहूर्त तीन	अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन
१८४	२४	सागरोपमाणि	सागरोवमाणि
१९१	२५	-पुंधत्तेण	-पुधत्तेण
१९२	१६	और अयोगि.	और सयोगि.
१९५	१०	इत्थिवेदेसु	इत्थिवेद्एसु
१९९	१३	अपगतयोगियोंमें	अपगतवेदियोंमें
२०३	११	जोवोंकी	जीवोंकी
२१४	१६	-सामगामंतरं	-सामगाणमंतरं
२१७	१	सम्मग्मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व
२१७	५, १५, १८	सद्वस्थारूप	सद्वस्थारूप
२२०	७	वादेण पंचिंदियपज्जत्तएसु	-वादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु
२२०	९	अनुवादसे पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें	अनुवादसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें
२२१	१६	भाओ	भावो
२२३	७	-शुद्धिसंजदेसु	-सुद्धिसंजदेसु
२२३	२५	चार भावोंकी	चार गुणस्थानवर्ती जीवोंके भावोंकी
२३०	२५	असंसेज्जगुणा	असंखेज्जगुणा
२३१	४	सम्यमिथ्यादृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
२३१	१७	तिरिक्खपंचिंदिय-तिरिक्खपंचिंदिय पज्जत्त-तिरिक्खपंचिंदियजोणिणीसु	तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख -पंचिंदिय-पज्जत्ततिरिक्ख-पंचिंदियजोणिणीसु
२३१	२८	सामन्य	सामान्य
२३२	३, ५, ८, ११	चार तिर्यंचोंमें	चार प्रकारके तिर्यंचोंमें
२४०	१७	संजदासंज्जद	संजदासंजद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
२४९	२०	उमशामक	उपशामक
२५१	१८	जोवोंमें	जीवोंमें
२५६	२९	वीज	जीव
२६२	२	अंतरायं	अंतराइयं
२६२	१४	ये वे	ये
२६३	५	बाह्य पदार्थोंको	बहु आदि पदार्थोंको
२६५	२३	भी एक साथ श्रद्धा	भी समान श्रद्धा
२७२	१७	औदारिकशरिरके	औदारिकशरीरके
२७३	७	रूहिर०	रुहिर०
२७४	९	उज्जोवणाणामं	उज्जोवणामं
२७८	१	अचक्कक्खु०	अचक्खु०
२७९	२	एक्किसे	एक्किस्से
२८२	१	पचण्हं	पंचण्हं
२८२	८, १७, २७	प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त संयतके	अनिवृत्तिकरणसंयतके
२८२	१३	-मेकम्हि	-मेक्कम्हि
२८३	९, १६	संयतके	अनिवृत्तिकरणसंयतके
२८६	८	पचण्हं	पंचण्हं
२८७	४	अप्सत्थविहायगदी	अप्पसत्थविहायगदी
२९०	२०	साधारणसरीर	साधारणशरीर
२९१	४	निमिणं	णिमिणं
२९२	२६	औदारिक शरी आंगोपांग	औदारिकशरीर-आंगोपांग
३०१	२४	कर्मोंकी स्थितिका यह उत्कृष्ट	कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका यह
३०४	१	देवायुका बन्ध	देवायुकी उत्कृष्ट स्थितिका बंध
३०७	१६	प्रमाण होता है।	प्रमाण अर्थात् एक सागरोपम होता है।
३०९	२१	कम्मठिदी	कम्मट्ठिदी
३१०	६	-कोडीओ	-कोडीए
३११	१६	और प्रायोग्य इन चार लब्धियोंकी	प्रायोग्य और करण इन पांच लब्धियोंकी
३११	२६	प्रायोग्यलब्धि है।	प्रायोग्यलब्धि है। अधःकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंकी प्राप्तिको करणलब्धि कहते हैं।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३११	२७	ये चार लब्धियां	प्रारम्भकी चार लब्धियां।
३१२	११	पर्याप्त अवस्थामें ही होता है, न कि अपर्याप्त अवस्थामें;	पर्याप्त ही होता है, न कि अपर्याप्त;
३१३	१७	मूल	मूले
३१३	२२	पण्णारसक मीसु	पण्णारसकम्मभूमीसु
३१३	२४	अढ द्वीप	अढाई द्वीप
३१४	१५	वेदणीयं णामं	वेदणीयं मोहणीयं णामं
३१८	१	उप्पादता	उप्पादेंता
३२२	३	प्रकारसे पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त	प्रकारसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय-तिर्यंच पर्याप्त
३२७	२८	तिरिक्खसासणससम्माइट्ठी	तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी
३३४	३	असण्णीसु	सण्णीसु
३३७	२२	केइंमोहिणाण०	केइमोहिणाण०
३३८	२१	और कोई सर्व	और सर्व
३४१	१०	मुप्पांएंति	मुप्पाएंति
३४२	६	सव्वदुःखाण०	सव्वदुक्खाण०
३४३	२४	,,	,,
३५२	६	नारकी जीव	नारकी यह नाम
३५४	२४	णामं	णाम
३५४	२९	कमक	कर्मके
३५६	२	कैसा	कैसे
३५६	२०	परिहारशुद्धिसंजदो	परिहारसुद्धिसंजदो
३५८	२	परिणामिक	पारिणामिक
३७३	१	-वेदभगो	वेदभंगो
३७३	२२	तक ही रहता	तक रहता
३७८	३	सम्यग्मिथ्याहष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
३८०	८	तियचोंमें	तिर्यंचोंमें
३८८	२०	दंसाणुवादेण	दंसणाणुवादेण
३९८	२६	असंखेज्जा	संखेज्जा
३९८	२७	असंख्यात	संख्यात

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
४०७	३	आणाहारा	अणाहारा
४११	१९	सवलोए	सव्वलोए
४११	२२	अप्पजत्ता	अपज्जत्ता
४२३	१७	सव्वलोगो वा ॥ ८५ ॥	सव्वलोगो ॥ ८५ ॥
४२४	३०	भाग या सर्व	भाग और सर्व
४२९	१४	-भागा देसूणा	भागा वा देसूणा
४३४	३	ससाणसम्माइट्ठी	सासणसम्माइट्ठी
४३६	१२	तियचगतिमें	तिर्यंचगतिमें
४३९	२३	जघण्णेण	जहण्णेण
४४५	४	तियच	तिर्यंच
४५८	१२	सामाइ	सामाइय
४६४	११	क्षुद्रकबान्ध	क्षुद्रकबन्ध
४७०	७	ये उसे	वे उस
४७२	२५	अभ्यन्तर	आभ्यन्तर
४७४	६	सगस्त	समस्त
४७५	४	मिम्छाइट्ठी	मिच्छाइट्ठी
४७६	२	आदज्ज	आदेज्ज
४७७	१	सम्यमिथ्यादृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
४७८	१७	सोलसकषाय	सोलसकसाय
४८०	२७	पंचंणाणावरणीय-	पंचणाणावरणीय-
४८२	९	बारसकपाय	बारसकसाय
४८२	१४	दर्शनावर,	दर्शनावर-
४८८	२	आसादावेदनीय	असादावेदणीय
४९१	२१	-णवुंसयवेदेसु	-णवुंसयवेदएसु
४९२	२८	सादावेदणीयस्स को अबंधो ?	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?
४१६	१	छक्खंडागमे खुद्दाबंधो	छक्खंडागमे बंधसामित्तविचओ
५००	७	सादावेदनीयस्स	सादावेदणीयस्स
५०५	२०	अपच्चाक्खाणावरणीय	अपच्चक्खाणावरणीय
५१०	१३	आकाररुपसे	आकाररूपसे
५१०	१५	नाआगमके	नोआगमके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
५१२	१९	पारे	पोर
५१३	२	बुद्धिपदका	बुद्धि पदका
५१३	९	बीजपदके पार्श्व	बीजपदके उभय पार्श्व
५१४	१७	जब तथा सातसौ	जब रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याएं तथा अंगुष्ठप्रसेनादि सातसौ
५१५	११	रात्रीके	रात्रिके
५१५	२२, २३, २४, २६	मेरू	मेरु
५१६	८	उन विद्याधरोंको ही	ऐसे उन विद्याओंके धारक साधुओंको ही
५१६	१५	जलसे	जलके
५१६	२४	परिणामिके	पारिणामिकीके
५१७	१३	समर्थ नहीं होते	समर्थ होते
५१८	१३	चतुर्थ व शरीरमें षष्ठोपवासादि करते हुए साधुके	चतुर्थ व षष्ठोपवासादि करते हुए साधुके शरीरमें
५१८	२२	ज्ञानोंके सामर्थ्यसे मंदरपंक्ति	ज्ञानोंकी सामर्थ्यसे त्रिभुवनके व्यापारको जाननेवाले होकरके भी मन्दरपंक्ति
५१९	३	ऋषिश्वरोंको	ऋषीश्वरोंको
५१९	**११**	**-बंभचारीणं**	**- बंभचारीणं**
५१९	१४	ब्रम्हका	ब्रह्मका
५३१	१५	मूलकरणकृति और	मूलकरणकृति,तैजसशरीरमूलकरणकृति और
५३७×	२०	नोआगमकर्मवेदना यहां	नोआगमकर्मवेदना
५३९	**१२**	**-वेदना**	**- वेदणा**
५४१	३	चार चार	चार बार
५४१	**१०**	**सत्तणं**	**सत्तण्णं**
५४१	२९, ३०	कर्मस्थिति ज्ञानावरणीयकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण	कर्मस्थितिप्रमाण
५४२	**१**	**अपज्जत्ताभवा**	**अपज्जत्तभवा**
५४२	४	बहुता	बहुतता

× पृष्ठ ५३७ से लेकर पृष्ठ ५८४ के शीर्षक वाक्य असावधानीसे दाहिनी ओरके बायीं ओर, तथा बायीं ओरके दाहिनी ओर छप गये हैं। इसीप्रकार शीर्षस्थानमें दिये गये सूत्रांकोंमें भी उलट-फेर हो गया है। पाठक पढते समय स्वयंही यथार्थ स्थितिका अनुभव करेंगे।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
५४२	११	तप्पाओगेण	तप्पाओग्गेण
५४३	७	मात्रमें	मात्रामें
५४४	२२	स्थानान्तर	-स्थानान्तरमें
५४५	२९	उक्कस्सजोगे	उक्कस्सजोगेण
५४७	१७	आयुबन्धकों	आयुबन्धकोंके
५४८	१९	पलिदोव्वमस्स	पलिदोवमस्स
५५०	१७	पर्यातियोंसे हुआ	पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ
५५०	२२	वह	वहां
५५२	३०	भव स्तोक	भव बहुत और पर्याप्त भव स्तोक
५५३	१९	अट्ठवस्सीओ	अट्ठवस्सिओ
५५४	९	जीवदव्वए	जीविदव्वए
५५४	२७	संसरीदूण	संसरिदूण
५५५	४	अट्ठवस्सीओ	अट्ठवस्सिओ
५५५	१६	-वेयणा जहण्णा	-वेयणा दव्वदो जहण्णा
५५५	१९	उपर्युक्त वेदनाके विरुद्ध उसकी जघन्य वेदना	इससे भिन्न उसकी वेदना
५५६	२७	द्वारा पर्यातियोंसे	द्वारा सभी पर्याप्तियोंसे
५५९	२६	कर्म	कार्य
५६२	१५	अणंतरोवनिधा	अणंतरोवणिधा
५६३	१७	अविभाप्रतिच्छेदोंकी	अविभागप्रतिच्छेदोंकी
५६४	१९	परंपरोनिधानके	परम्परोपनिधाके
५६५	१६	-हाणि	हाणी
५६६×	७	जोगट्ठाणाणि वि	जोगट्ठाणाणि दो वि
५७१	२	तिसमयआहारायस्स	तिसमयआहारयस्स
५७४	५,११	अवगाहना उससे विशेष	अवगाहना विशेष
५७४	८	उक्कसिया	उक्कस्सिया
५७४	१६	णिवत्ति०	णिव्वत्ति०
५७५	१०	उक्कसिया	उक्कस्सिया

* पृ. ५६७ और ५७९ पर भूलसे जो भिन्न खण्ड-द्योतक ॐ इत्यादि ...... लग गये हैं, वे वहां नहीं होना चाहिए, क्योंकि वेदनाखण्ड ५१० से प्रारम्भ होकर ६८७ पृष्ठ पर समाप्त हुआ है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
५८४	९	यथासम्भव वेदनीयकर्मके समान ही	यथासम्भव द्विचरमभव्यसिद्धिक, त्रिचरम-भव्यसिद्धिक आदिके क्रमसे
५९३	३	जाव पढम–	जं पढम–
५९४	१९	-मुहुत्तयाबाधं	-मुहुत्तमाबाधं
५९४	२४	उणया	ऊणया
५९५	५	सागरोपमाके	सागरोपमके
५९५	८	अहुणं	अहुण्णं
५९७	२३	सण्णीमसण्णीणं	सण्णीणमसण्णीणं
५९८	११	सण्णीमसण्णीण -	सण्णीणमसण्णीण–
६००	१०	आणिओगद्दाराणि	अणिओगद्दाराणि
६०१	१७	संकलिट्ठदरा	संकिलिट्ठदरा
६०४	२०	असंख्यातगुणे	संख्यातगुणे
६०६	९	- पाओग्गट्ठाणाणि	- पाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि
६०७	८	पडयि०	पयडि०
६०७	१२	पमाणाणुगमे	पमाणाणुगमेण
६०८	५	ट्ठिदिए	ठिदीए
६०८	१८	प्रकृतिस्थिति	प्रत्येक स्थिति
६०८	२९	विशेष हैं	विशेष अधिक हैं
६१३	९	विषय प्ररूपणा	विषयमें पदप्ररूपणा
६१३	१५	सागारूवजोगेण	सागारुवजोगेण
६१३	२६	अनुयोगबन्ध	अनुभागबन्ध
६१४	१५	अन्तरायके सम्बन्धी	अन्तराय-सम्बन्धी
६१८	१३	अनुयोगद्धार	अनुयोगद्वार
६१८	१५	सव्वत्थोवा	जहण्णपदेण सव्वत्थोवा
६१८	१६	भावकी अपेक्षा	जघन्य पदकी अपेक्षा भावसे
६२०	२०	वीरिय	वीरिय
६२०	२२,२४	ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर	ये प्रकृतियां अनुभागकी अपेक्षा उत्तरोत्तर
६२१	५	अर्थात्	पंच नोकषाय अर्थात्
६२१	१५	अनुभागवाली संयुक्त है	अनुभागवाली है
६२१	३०	अणंतगुणहीणाणी	अणंतगुणहीणाणि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६२२	८	संजतणाए	संजलणाए
६२२	८	अणंतगुणो	अणंतगुणहीणो
६२२	२९	तिण्णि अणंत०	तिण्णि [त्रि तुल्यानि] अणंत०
६२३	११	अरदि	अरदी
६२३	१७	णिद्दा य अणंत०	णिद्दा अणंत०
६२४	१२	ये प्रकृतियां उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हैं	इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है
६२४	१४	-देव-मणुवगई	-मणुव-देवगई
६२४	१७	देवगति और मनुष्यगति	मनुष्यगति और देवगति
६२४	२७	संज्वलन लोभ सबसे	संज्वलन लोभका जघन्य अनुभाग सबसे
६२५	१९	लोगो	मोगो
६२६	२०	मिच्छत०	मिच्छत्त०
६२६	२७	निरयगदी	णिरयगदी
६२७	११	अणंतकम्मसं	अणंतकम्मंसं
६२७	१४	संखेज्जगुणा य सेडीओ	संखेज्जगुणाए सेडीए
६२९	५	अणंताणुबंधिविसं०	अणंताणुबंधि विसं०
६२९	२१	हेट्ठ ट्ठाणपरूवणा	हेट्ठाट्ठाणपरूवणा
६३१	८	जीवोंसे	सब जीवोंसे
६३१	१३	संखेज्जभागवड्ढी	संखेज्जभागपरिवड्ढी
६३२	१०	संखेज्जभागुण०	संखेज्जगुण०
६३४	२६	प्रदेशकी	प्रदेशकी
६३४	२७	असंखेज्जा गुणा	असंखेज्जगुणा
६३५	१	कायट्ठिदि	कायट्ठिदी
६३५	२४	पर्यवान	पर्यवसान
६३६	२	अनतरोपनिधासे	अनन्तरोपनिधासे
६३७	३	णिरंतणट्ठाण०	णिरंतरट्ठाण०
६३७	२१	होंदि	होंति
६४२	२१	पेसुण्ण-अरइ-	पेसुण्ण-रइ-अरइ-
६४३	६	मिमांसक	मीमांसक
६४५	२२	वेद्यते इति	वेद्यते वेदिष्यते इति वा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६४५	२२	वेदन होता है वह	वेदन होता है, या वेदन किया जावेगा, वह
६४६	४	उक्त	इस
६४८	१९	वज्जमाणिया उदिण्णा च	वज्जमाणिया च उदिण्णा च
६४८	२७	उदीण्णा	उदिण्णा
६५०	८	उदिण्णफलपत्तविवागवेयणा	उदिण्णा फलपत्तविवाका वेयणा
६५०	१५	कर्मोंकि	क्योंकि
६५०	२४	अवट्ठिदा	अट्ठिदा
६५०	२५	अवस्थित	अस्थित
६५१	२	है, कारण	है, इस कारण
६५३	९	अनुयोगाद्वार	अनुयोगद्वार
६५४	६	चउव्विहोदव्वदो	चउव्विहो – दव्वदो
६५६	१६	इन स्थानोंमें	इन चार स्थानोंमें
६६०	२३	असंख्यातगुण	असंख्यातगुणी
६६२	३	संखेज्जगुणब्भहिया असंखेज्ज०	संखेज्जगुणब्भहिया वा असंखेज्ज०
६६२	१८	संखेज्जब्भागबहिया	संखेज्जभागब्भहिया
६६४	३	आदि स्थानोंमें	आदि चार स्थानोंमें
६६४	२७	वेदनीयकी अपेक्षा	वेदनीयकी वेदना
६६९	२९	असंख्यातगुणी होती है	असंख्यातगुणी अधिक होती है
६७०	२४	चउव्विहे–	चउव्विहो–
६७१	१	जिस ज्ञानावरणीयकी	जिस जीवके ज्ञानावरणीयकी
६७२	२	उक्कसिया	उक्कस्सिया
६७२	१२	उक्कसा	उक्कस्सा
६७२	२३	इस प्रकार	इसी प्रकार
६७२	२४	सत्ताण्णं	सत्तण्णं
६७६	८	अंतरायवेयणा	अंतराइयवेयणा
६७८	८	छण्णं वेयणा	छण्णं कम्माणं आमवज्जाणं
६८१	३	प्रबद्धार्थसे उक्त तीन गुणित	प्रबद्धार्थतासे गुणित
६८२	१४	-सहस्साओ	-सहस्सिओ
६८३	१५	दुभागूणो	दुभागो
६८३	१७	द्वितीय भाग	दो भाग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६८३	२३	समयप्रबद्धार्थका	समयप्रबद्धार्थताका
६८४	३	द्वितीयभाग	दो भाग
६८४	५	केवडीओ	केवडिओ
६८४	१४	-पच्चासाएण	-पच्चासएण
६८५	१४	पयडिओ	पयडीओ
६८८	२१	बंधफासे चेदि	बंधफासे भवियफासे भावफासे चेदि
६८९	६	णेछदि	णेच्छदि
६९०	८	दव्वमेयक्खेत्तणे	दव्वमेयक्खेत्तेण
६९०	२९	दव्वं सव्वेण	दव्वं सव्वं सव्वेण
६९१	४	गरूवफासो	गरुवफासो
६९१	२८	सव पंच	सव यंत्र
६९३	९	जं सं	जं तं
६९४	१४	विद्दावणं–	विद्दावण–
६९५	६	बारसावतं	बारसावत्तं
६९५	२८	समवधान	समवदान
६९६	२०	च णेच्छादि	च इच्छादि
६९७	२७	घाण–	घ्राण–
६९८	१	घान	धान्य
६९९	१	अत्थोग्गहावरणीयपरूवणा	आभिणिबोहियणाणावरणीयपरूवणा
६९९	१३	आवायावरणीयं	अवायावरणीयं
६९९	१६	आवायावरणीय	अवायावरणीय
६९९	१९	धाराणावरणीयं	धारणावरणीयं
६९९	२०	णोइंदियधारणा–	फासिंदियधारणावरणीयं णोइंदिय-धारणा--
७००	१२	= ३८४ से आगे	इस प्रकार मतिज्ञानके जितने भेद हैं उतने ही आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय-कर्मके प्रकृतिविकल्प जानना चाहिए।
७००	१३	-कम्मस	-कम्मस्स
७०२	९	पुच्छाविधि	पुच्छाविधी
७०२	१०	वेदणायं	वेदं णायं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
७०२	१७	अग्व्यमार्ग	अग्व्य मार्ग
७०३	१	अणेयसंठाणसंठिदाणि	ओहिणाणपरूवणा
७०३	४	संणाणाणि	संठाणाणि
७०३	६	संस्थान स्थित	संस्थित
७०३	११	आदि ज्ञातव्य	आदि काल-भेद ज्ञातव्य
७०३	१५	ज्ञान जघन्य	ज्ञानका जघन्य
७०३	१७	- माविलियंतो	- मावलियंतो
७०३	२१	- पृथत्क्व	- पृथक्त्व
७०३	२८	रूजगम्मि	रुजगम्मि
७०५	५	जो दिसियाणं	जोदिसियाणं
७०५	२६	चोत्थ	चोत्थी
७०६	२४	भी नहीं	भी उत्पन्न नहीं
७०७	१	ओहिविसओ	मणपज्जवणाणावरणीयपरूवणा
७०७	२२	जिसने	जितने
७०८	११	जीविव--	जीविद्-
७०९	१५	तावं	ताव
७११	२	असपत्न विपक्षसे	असपत्न अर्थात् विपक्षसे
७११	५	सम्भंसमं	सम्मं समं
७१२	२	मित्यात्त्व	मिथ्यात्व
७१३	५	॥ ११८ ॥	॥ ११७ ॥
७१३	९	देवगतिनाम और मनुष्यगतिनामकर्म	मनुष्यगतिनामकर्म और देवगतिनामकर्म
७१४	२०	त्तित्तणामं	तित्तणामं
७१४	२४	गरूवणामं	गरुवणामं
७१५	१७	ओगाहणावियप्पेहि	ओगाहणवियप्पेहि
७१७	१५	उवजोग	उवजोगा
७१७	२२	आगमभावकृति	आगमभावप्रकृति
७१९	१	णामबंधपरूवणा	बंधणिक्खेवपरूवणा
७१९	२०	सद्भावनास्थापना	सद्भावस्थापना
७१९	२०	असद्भावसास्थापना	असद्भावस्थापना
७१९	२०	स्थगित	स्थापित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
७२०	३१	जीवभावबन्धभाव	जीवभावबन्ध
७२१	१	णिबंधणाणियोगद्दारे	बंधणाणियोगद्दारे
७२१	८	कसाय वियराग	कसायवीयराग
७२१	१२,२६	दोष	द्वेष
७२१	१४	जीवभाग	जीवभाव
७२४	२५	दुविहा	दुविहो
७२५	२१	आकशास्तिकाय०	आकाशास्तिकाय०
७२५	२२	अधम्मत्थियदेसा	अधम्मत्थियदेसा अधम्मत्थियपदेसा
७२६	३	भागसे सब ही	भागसे लेकर आगेके सब ही
७२६	१७	णिद्धणिद्धाण	णिद्धणिद्धा ण
७२७	१	दुराहिणए	दुराहिएण
७२७	१७	अमंगल	अंगमल
७२९	२३	स्कन्ध	बन्ध
७३१	१	सरीरबंधपरूवणा	बंधगपरूवणा
७३२	२	बंधणिज्जाणियोगगद्दारं	बंधणिज्जाणियोगद्दारं
७३२	४	समुद्दिट्ठा	समुद्दिट्ठा
७३२	१६,१७	वग्गणफोसणाणुगमो वग्गणफोस०	वग्गणफोसणाणुगमो
७३४	१	आहारद्रव्यवर्गणाओंके	उत्कृष्ट आहारद्रव्यवर्गणाके
७३४	४	आहारद्रव्यवर्गणाके	अग्रहणद्रव्यवर्गणाके
७३४	१६	मणदव्ववग्गणामुवरि	मणदव्ववग्गणाणमुवरि
७३४	२४	धुवसुण्णवग्गणा	धुवसुण्णदव्ववग्गणा
७३५	४	बादरनिगोद०	बादरणिगोद०
७३५	६	सुहुमणिगोदवग्गणा	सुहुमणिगोददव्ववग्गणा
७३६	२६	- वर्गणा क्या संघातसे	- वर्गणा क्या भेदसे होती है, क्या संघातसे
७३८	१३	बहुत जो	बहुत जीवोंका जो
७३८	१४	निकलकर	मिलकर
७४९	२५	उसे 'तैजस' इस	उसे 'कार्मण' इस
७५०	१०	अणंतवरोणिधा	अणंतरोवणिधा
७५१	१५,१९	सिद्धामणंतभागो	सिद्धाणमणंतभागो
७५१	२९	समयसे	समयमें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
७५५	१३,२५	जिव्वत्ति	णिव्वत्ती
७६३	२२	नाना प्रदेश०	एक प्रदेश०
७६४	२४	अणंतगुणो ॥ ४१४ ॥	अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो॥४१४॥
७६५	५	- कुरू	- कुरु
७६५	२१	अंतरेण	अंतरे ण
७६५	२८	- स्थानान्तरोंमें	- स्थानान्तरमें
७६६	७	आकर्षण	अपकर्षण
७६६	११	वैक्रियिकशरीरके	वैक्रियिकशरीरका
७६६	१३	पढमसमए	पढमसमय
७६६	१५	पज्जत्तपदो	पज्जत्तयदो
७६६	१७	आम्रहको	आहारको
७६७	५	- मणुकस्सा	- मणुकस्सं
७६७	११	पढमसमए	पढमसमय०
७६८	६	पुढविए	पुढवीए
७६८	१४	वड्ढिए	वड्ढीए
७६८	२५	जाविदव्वए	जीविदव्वए
७७३	४	लोकोंमेंसे आये हुए विस्रसोपचयोंसे बद्ध	लोकमेंसे आकर बद्ध
७७३	५	दव्वहाणि०	दव्वहाणी
७७४	१३	कालहाणी०	कालहाणि०
७७६	३	उक्कस्सय	उक्कस्सयस्स
७७६	९-१०	जघन्य विस्रसोपचय	जघन्य बादरनिगोदवर्गणाका विस्रसोपचय
७७६	१८	पदेसमाणाणुगमो	पदेसपमाणाणुगमो
७७९	१४	अवक्कम्मण०	अवक्कमण०
७७९	२२	अपेक्षा निरन्तर	अपेक्षा उत्कृष्ट निरन्तर
७७९,	२३	उपक्रमणकाल	उपक्रमणका सबसे जघन्य काल
७८०	१	अप्रक्रमणकाल०	अपक्रमणकाल०
७८३	१०	णिललेवण०	णिल्लेवण०
७८४	१	णिव्वत्ति०	णिव्वत्ति०
७८४	१७	वउव्विय०	वेउव्विय०

सिद्धान्त-शब्द-परिभाषा

अनुगामी अवधि– जो अवधिज्ञान जिस भव और जिस क्षेत्रमें उत्पन्न हो उससे दूसरे भव और दूसरे क्षेत्रमें साथ जावे, उसे अनुगामी अवधिज्ञान कहते हैं ।

अनुभागबन्ध– बंधनेवाली कर्मप्रकृतियोंके भीतर सुख-दुःखादिके फल देनेकी जो शक्ति पड़ती है, उसे अनुभाग बन्ध कहते हैं ।

अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान– अनुभागबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थानोंको अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान कहते हैं ।

अन्तर्मुहूर्त– आवलीसे ऊपर और मुहूर्तसे नीचेके कालको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं ।

अन्तःकोडाकोडी– कोटिसे ऊपर और कोटाकोटिसे नीचेके मध्यवर्ती कालको अन्तःकोडाकोडी कहते हैं ।

अपक्रमणकाल– विवक्षित जीवराशि जितने समय तक लगातार उत्पन्न न हो, उतने कालको अपक्रमणकाल कहते हैं ।

अपर्याप्तनिर्वृति– अपर्याप्त जीवोंके योग्य अपर्याप्तियोंकी निर्वृतिको अपर्याप्तनिर्वृति कहते हैं ।

अपर्याप्ति– पर्याप्तियोंकी अर्धनिष्पन्न अवस्थाको अर्थात् अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं ।

अपोहा– जिसके द्वारा संशयके कारणभूत विकल्पका निराकरण किया जाता है, ऐसे ईहाज्ञानको अपोहा कहते हैं।

अभ्याख्यान– कषायके वशीभूत होकर अनिष्ट वचन कहनेको तथा असद्भूत दोषोंके उद्भावनको अभ्याख्यान कहते हैं ।

अरंजन– एक विशेष जातिका मिट्टीका पात्र ।

अर्धपुद्गलपरिवर्तन– एक पुद्गलपरिवर्तनमें जितना समय लगता है, उसके आधे समयको अर्धपुद्गलपरिवर्तन कहते हैं । अर्धपुद्गलपरिवर्तनका काल भी अनन्त वर्ष प्रमाण है ।

अवग्रह– जिसके द्वारा घटादि पदार्थ जाननेके लिए ग्रहण किये जावें, ऐसे ज्ञानको अवग्रह कहते हैं ।

अवधान– अन्य पदार्थोंसे भिन्न करके विवक्षित पदार्थके जाननेको अवधान कहते हैं । यह अवग्रहज्ञानका पर्यायवाची नाम है ।

अवलम्बना– जो ज्ञान अपनी उत्पत्तिके लिए इन्द्रियादिका अवलम्बन लेता है, ऐसे अवग्रहज्ञानका दूसरा नाम अवलम्बना भी है ।

अवलम्बनाकरण– उपरितन स्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षण करके अधस्तन स्थितिमें निक्षेपण करनेको अवलम्बनाकरण कहते हैं ।

अवसर्पिणीकाल– जिस कालमें जीवोंकी आयु, बल, बुद्धि और शरीरकी उंचाई आदि उत्तरोत्तर घटती जावे, उसे अवसर्पिणीकाल कहते हैं ।

अवहारकाल– विवक्षित जीवराशि जितने कालके द्वारा अपहृत हो सकती है उतने कालका नाम अवहारकाल है । यथा– सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान पर्यन्त प्रत्येक जीवराशि पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । इनके द्वारा पल्योपम अन्तर्मुहूर्त कालसे अपहृत होता है । अतः इन पांचोंका अवहारकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र है, जो अंकसंदृष्टिमें क्रमसे ३२, १६, ४ और १२८ अंक प्रमाण तथा पल्योपम ६५५३६ अंक प्रमाण है ।

अवाय– ईहाके द्वारा जाने हुए पदार्थके निश्चय करनेको अवाय कहते हैं ।

अविभागप्रतिच्छेद– एक परमाणुमें सर्वजघन्य रूपसे जो अनुभाग अवस्थित है, जिसका कि बुद्धिसे भी और कोई विभाग या छेद नहीं हो सकता है, उसे अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं।

असंक्षेपाद्धा– सर्वजघन्य विश्रमणकालपूर्वक सबसे छोटे आयुबन्धकालको असंक्षेपाद्धा कहते हैं, जो कि आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है।

असंख्यातगुणवृद्धि– विवक्षित स्थानसे आगे असंख्यातगुणी वृद्धि होनेको असंख्यातगुणवृद्धि कहते हैं।

असंख्यातगुणहानि– विवक्षित स्थानसे आगे असंख्यातगुणी हानि होनेको असंख्यातगुणहानि कहते हैं।

असंख्यातभागपरिवृद्धि– विवक्षित स्थानसे आगे असंख्यातवें भाग प्रमाण वृद्धि होनेको असंख्यातभागपरिवृद्धि कहते हैं।

असंख्यातभागहानि– विवक्षित स्थानसे आगे असंख्यातवें भाग प्रमाण हानि होनेको असंख्यातभागहानि कहते हैं।

असंयमाद्धा– जीव जितने समय तक असंयम अवस्थामें रहता है, उतने कालको असंयमाद्धा कहते हैं।

असातबन्धक– असाता वेदनीयके बन्ध करनेवाले जीवको असातबन्धक कहते हैं।

असाताद्धा (असात-काल)– असाता वेदनीयके बन्धके योग्य संक्लेशकालको असाताद्धा या असात-काल कहते हैं।

आबाधाकाण्डक– कर्मस्थितिके जितने भेदोंमें एक प्रमाणवाली आबाधा होती है, उतने स्थितिभेदोंके समुदायको आबाधाकाण्डक कहते हैं।

आबाधाकाल– बंधनेके पीछे कर्म जब तक उदय या उदीरणारूपसे परिणत होकर बाधा न दे, उतने समयको आबाधाकाल कहते हैं।

आमुण्डा– जिसके द्वारा वितर्कित अर्थका निश्चय किया जावे, उसे आमुण्डा कहते हैं। यह अवायका पर्यायवाची नाम है।

आयुष्कबन्धप्रायोग्यकाल– आयुबन्धके योग्य कालको आयुष्कबन्धप्रायोग्यकाल कहते हैं, जो कि मनुष्य और तिर्यंचोंकी अपेक्षा अपने जीवनके तृतीय भागके प्रथम समयसे लगाकर विश्रमणकालके पूर्व तक होता है।

आवर्त– मन, वचन और कायकी विशुद्धिके परावर्तनके बारोंको आवर्त कहते हैं। यह भाव-आवर्तका स्वरूप है। दोनों हाथोंके अंजुलि-संपुटको प्रदक्षिणाके रूपसे ऊपरसे नीचे घुमाते हुए पुनः ऊपर अंजुलि-संपुटके ले जानेको द्रव्य-आवर्त कहते हैं।

आवली– असंख्यात समयोंकी एक आवली होती है।

आवश्यक– नियत समयपर कर्त्तव्य कार्यके करनेको आवश्यक कहते हैं।

आवासक– गुणितकर्मांशिक और क्षपितकर्मांशिक जीव भव-भ्रमण करते हुए जिन भवावास, अद्धावास, आयु-आवास, योगावास, संक्लेशावास और उत्कर्षणापकर्षणावासको करता है, उन्हें आवासक कहते हैं।

आहारक– औदारिकादि शरीरके योग्य पुद्गलोंके ग्रहण करनेवाले जीवको आहारक कहते हैं।

ईर्यापथकर्म– केवल योगके निमित्तसे बंधनेवाले कर्मको ईर्यापथकर्म कहते हैं।

ईषन्मध्यमपरिणाम– उत्कृष्ट संक्लेशसे कुछ नीचेके मध्यम परिणामोंको ईषन्मध्यमपरिणाम कहते हैं।

ईहा– अवग्रहसे जाने हुए पदार्थोंमें उत्पन्न हुए संशयके दूर करनेके व्यापारविशेषको ईहा कहते हैं।

उत्सर्पिणीकाल– जिस कालमें जीवोंकी आयु, बल, बुद्धि और शरीर आदिकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो; ऐसे कालको उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

उपक्रमणकाल– किसी विवक्षित जीवराशिके लगातार उत्पन्न होनेके कालको उपक्रमणकाल कहते हैं।

उपसम्पत्सांनिध्य– द्रव्यका आश्रय करनेवाले कार्योंके सामीप्यको उपसम्पत्सांनिध्य कहते हैं।

उलुंचन– मिट्टीका एक पात्रविशेष।

ऊहा– जिसके द्वारा अवग्रहसे ग्रहण किये गये अर्थके नहीं जाने गये विशेषकी तर्कणा की जाती है, उसे ऊहा कहते हैं। यह ईहाका पर्यायवाची नाम है।

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर– एक गुणहानिके समयोंमें प्रतिसमय होनेवाली प्रदेशोंकी हानिको एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर कहते हैं।

एकस्थानिक बन्ध– प्रस्तुत ग्रन्थमें यह पद एक गुणस्थानमें बंधने योग्य प्रकृतियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है (३, १७४)। वैसे लतास्थानीय अनुभागबन्धको एकस्थानिक बन्ध कहते हैं।

एकान्तसाकारप्रायोग्यस्थान– जो परिणामस्थान एकान्ततः साकार ज्ञानोपयोगके योग्य होते हैं, उन्हें एकान्तसाकारप्रायोग्यस्थान कहते हैं।

ओज– जिस राशिमें चारका भाग देनेपर एक या तीन अंक शेष रहें उस राशिको ओज कहते हैं।

औदारिकशरीरद्रव्यवर्गणा– जिन पुद्गल-वर्गणाओंके द्वारा औदारिक शरीरका निर्माण हो, उन्हें औदारिकशरीरद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

कर्मनिषेककाल– आबाधाकालसे रहित जो शेष कर्मस्थिति है, उसे कर्मनिषेककाल अर्थात् बंधे हुए कर्मोंके झड़नेका काल कहते हैं।

कर्मस्थिति– कर्मोंकी सर्वोत्कृष्ट स्थितिको कर्मस्थिति कहते हैं।

कलि-ओज– जिस राशिमें चारका भाग देनेपर एक अंक शेष रहे, वह राशि कलि-ओज कहलाती है।

कायस्थिति– विवक्षित किसी एक वनस्पति आदि कायको नहीं छोड़ते हुए लगातार उसी उसी पर्यायके ग्रहण करनेके कालको कायस्थिति कहते हैं।

कार्मणशरीरद्रव्यवर्गणा– जो पुद्गल परमाणु आत्माके राग-द्वेषादिका निमित्त पाकर कर्मरूपसे परिणत होते हैं, उन्हें कार्मणशरीरद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

कृतयुग्म– जिस राशिको चारसे भाजित करनेपर कुछ भी शेष न रहे अर्थात् जिसमें चारका पूरा भाग चला जावे, उस राशिको कृतयुग्म कहते हैं।

कृति– जो राशि वर्ग किये जानेपर वृद्धिको प्राप्त हो और अपने वर्गमेंसे अपने ही वर्गमूलको घटाकर वर्ग करनेपर वृद्धिको प्राप्त हो, उसे कृति कहते हैं।

कोष्ठा– जैसे भाण्डारका कोठा अपने भीतर विविध धान्यादिको पृथक् पृथक् व्यवस्थित रखता है, इसी प्रकार जो बुद्धि कोठेके समान जाने हुए पदार्थका चिरकाल तक स्मरण रखे, उसे कोष्ठा कहते हैं।

क्रियाकर्म– सामायिक आदि आवश्यकोंके समय प्रदक्षिणा, नमस्कार और आवर्त आदि क्रियाओंके करनेको क्रियाकर्म कहते हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व– अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दर्शनको क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व– उक्त सातों प्रकृतियोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दर्शनको क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

क्षुद्रभवग्रहण– सूक्ष्म निगोदिया जीवके सबसे अल्प आयुवाले भवको क्षुद्रभवग्रहणकाल कहते हैं।

क्षेत्रप्रत्यास– जीवकी अवगाहनाके द्वारा व्याप्त क्षेत्रको क्षेत्रप्रत्यास कहते हैं।

गवेषणा– जिसके द्वारा अवग्रहसे ग्रहण किये गये पदार्थके विशेषका अन्वेषण किया जावे, उसे गवेषणा कहते हैं। यह भी ईहाका दूसरा नाम है।

गुणश्रेणीनिर्जरा– अपूर्वकरणादि परिणामोंका निमित्त पाकर प्रतिसमय उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणीके रूपसे जो कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा होती है, उसे गुणश्रेणीनिर्जरा कहते हैं।

गुणहानि– विवक्षित निषेकके परमाणु अवस्थित हानिसे हीन होते हुए जितनी दूर जाकर आधे रह जावें, उतने अध्वान (मार्ग) को गुणहानि कहते हैं।

चतुःस्थानबन्ध– कर्मोंके लता, दारु, अस्थि और शैल रूप चतुःस्थानीय अनुभागके बन्धको चतुःस्थानबन्ध कहते हैं। पुण्यप्रकृतियोंके गुड, खांड, शर्करा और अमृतरूप; तथा पापप्रकृतियोंके नीम, कांजी, विष और हलाहलरूप अनुभागबन्धको भी चतुःस्थानबन्ध कहते हैं।

चिन्ता– पूर्वमें अवधारित अर्थके स्मरण करनेको चिन्ता कहते हैं। यह स्मृतिका पर्यायवाची नाम है।

चूलिका– अनुयोगद्वारोंमें कहनेसे रह गये तत्सम्बद्ध अर्थके वर्णन करनेवाले अधिकारको चूलिका कहते हैं।

छविच्छेद– छवि नाम शरीरका है, उसका नख व शस्त्र आदिसे छेदन-भेदन करनेको छविच्छेद कहते हैं।

जगच्छ्रेणी– सात राजु लम्बी आकाशकी एकप्रदेशपंक्तिको जगच्छ्रेणी कहते हैं।

जगत्प्रतर– जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें सात राजु लम्बी, सात राजु चौड़ी और एक प्रदेश प्रमाण मोटी आकाश-प्रदेश-पंक्तियोंके समुदायको जगत्प्रतर कहते हैं।

जित (श्रुतभेद)– विना किसी रुकावटके अस्खलित गतिसे भावरूप आगममें संचार करनेवाला पुरुष और उसका ज्ञान जित कहलाता है।

जीवगुणहानिस्थानान्तर– योगस्थानोंमें अवस्थित जीवोंकी गुणहानिके क्रमसे उत्तरोत्तर हीन संख्यावाले स्थानोंके अन्तरको जीवगुणहानिस्थानान्तर कहते हैं।

जीवनिक (जीवनीय) स्थान– भुज्यमान आयुके कदलीघातसे जघन्य निर्वृतिस्थानके नीचे जितने समय तक जीव जीवित रहता है, ऐसे आयुकर्मके स्थानोंको जीवनिक या जीवनीय स्थान कहते हैं।

जीवयवमध्य– आठ, सात और छह आदि समयवाले योगस्थानोंकी जो यवाकार रचना होती है, उसमें आठ समयवाले मध्यवर्ती योगस्थानोंपर अवस्थित जीवोंके समूहको जीवयवमध्य कहते हैं।

जीवसमास– जिन धर्मविशेषोंके द्वारा नाना प्रकारके जीव और उनकी विविध जातियोंका संग्रह करके संक्षेपसे ज्ञान कराया जाता है, उन धर्मविशेषोंको जीवसमास कहते हैं। प्रकृतमें वह गुणस्थानका पर्यायवाची नाम है।

जीवसमुदाहार– स्थितिबन्धाध्यवसाय आदि स्थानोंपर जीवोंकी विविध अनुयोगद्वारोंसे मार्गणा करनेको जीवसमुदाहार कहते हैं।

तेजोजराशि– जिस राशिको चारसे भाजित करनेपर तीन शेष रहें उसे तेजोजराशि कहते हैं।

तैजसशरीरद्रव्यवर्गणा– जिन पौद्गलिक वर्गणाओंके द्वारा तैजसशरीरका निर्माण हो, उन्हें तैजसशरीरद्रव्य-वर्गणा कहते हैं।

त्रसनाली– लोकाकाशके ठीक मध्य भागमें अवस्थित एक राजु चौड़ी, एक राजु मोटी और चौदह राजु ऊंची (लम्बी) लोकनालीको त्रसनाली कहते हैं। समुद्घात और उपपादको छोड़कर शेष सभी अवस्थावाले त्रस जीव इसीके भीतर रहते हैं।

त्रि-अवनत (तियोणद)– सामायिक आदि क्रियाकर्म करते हुए आदि, मध्य और अन्तमें भूमिपर विनम्र भावसे बैठने और झुककर वन्दना करनेको त्रि-अवनत कहते हैं।

त्रिस्थानिक बन्ध– लता, दारु और अस्थि रूप त्रिस्थानीय अनुभागबन्धको त्रिस्थानिक बन्ध कहते हैं।

दाहस्थिति– उत्कृष्ट स्थितिके बन्धयोग्य संक्लेशका नाम दाह है, उस दाहकी कारणभूत स्थितिको दाहस्थिति कहते हैं।

देशावधि– तद्भवमोक्षगामी साधुके परमावधि और सर्वावधि ज्ञानके सिवाय शेष चारों गतियोंके जीवोंके होनेवाले एकदेशरूप अवधिज्ञानको देशावधि कहते हैं।

द्विस्थानिक बन्ध– लता और दारु रूप द्विस्थानिक अनुभागबन्धको द्विस्थानिक बन्ध कहते हैं।

धरणी– धरणी अर्थात् पृथ्वी जैसे अपने ऊपर वृक्ष व पर्वत आदिको धारण करती है, उसी प्रकार जो बुद्धि अपने भीतर ज्ञात अर्थको दीर्घ काल तक धारण करे उसे धरणी कहते हैं। यह धारणाका दूसरा नाम है।

धर्मकथा– श्रुतज्ञानके बारह अंगोंमेंसे किसी एक अंगके एक अधिकारके उपसंहारको धर्मकथा कहते हैं।

धारणा– अवायसे जाने हुए पदार्थको चिरकाल तक धारण करनेकी अविस्मरणरूप योग्यताको धारणा कहते हैं।

ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा– सान्तर-निरन्तरद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर और प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणाओंके नीचे मध्यवर्ती ग्रहण करनेके अयोग्य ऐसी पुद्गलवर्गणाओंको ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणा– कार्मणद्रव्यवर्गणाओंके ऊपर और सान्तर-निरन्तरद्रव्यवर्गणाओंके नीचे मध्यवर्ती ग्रहण करनेके अयोग्य ऐसी पुद्गलवर्गणाओंको ध्रुवस्कन्धद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

नयवाद– ऐहिक और पारलौकिक फलकी प्राप्तिके उपायको नय कहते हैं। उसका वाद अर्थात् कथन जिस सिद्धान्तके द्वारा किया जाता है, ऐसे श्रुतज्ञानको नयवाद कहते हैं।

नयविधि– नैगमादि नयोंके द्वारा जीवादि पदार्थोंके स्वरूपका विधान करनेवाले आगमको नयविधि कहते हैं।

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर– नाना गुणहानियोंमें जो उत्तरोत्तर एक गुणहानिसे दूसरी गुणहानिका द्रव्य आधा आधा होता हुआ चला जाता है, उसे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर कहते हैं।

निगोद– जिन अनन्त जीवोंका आहार, श्वासोच्छ्वास, जीवन और मरण एक साथ होता है; ऐसे वनस्पति-कायिक साधारणशरीरवाले जीवोंको निगोद कहते हैं।

निरन्तरअपक्रमणकाल– अन्तर-रहित अपक्रमणकालको निरन्तरअपक्रमणकाल कहते हैं।

निरन्तरउपक्रमणकाल– अन्तर-रहित जीवोंकी उत्पत्तिके कालको निरन्तरउपक्रमणकाल कहते हैं।

निरन्तरसमयउपक्रमणकाल– प्रथम उपक्रमणकाण्डकके कालको निरन्तरसमयउपक्रमणकाल कहते हैं।

निर्लेपनकाल– कर्म-निषेकोंके निर्जीव होनेके कालको निर्लेपनकाल कहते हैं।

निर्वृत्तिपर्याप्त– अपने योग्य पर्याप्तियोंके पूर्ण करनेवाले जीवको निर्वृत्तिपर्याप्त कहते हैं।

निषेक – समागत कर्मवर्गणाओंमेंसे कर्मस्थितिके भीतर एक समयमें दिये जानेवाले द्रव्यको निषेक या कर्मनिषेक कहते हैं।

नैगमनय– जो संग्रह और व्यवहार इन दोनों नयोंके विषयोंको ग्रहण करे, उसे नैगमनय कहते हैं। संकल्पके द्वारा अनिष्पन्न भी वस्तुका प्रतिपादन करनेवाले उपचार-प्रधान नयको नैगमनय कहते हैं।

परम्पराबन्ध – बन्ध होनेके द्वितीय समयसे लेकर कर्मरूप पुद्गलस्कन्धों और जीवप्रदेशोंके बन्धकी जो स्थिति पर्यन्त परम्परा बनी रहती है, उसे परम्पराबन्ध कहते हैं।

परम्परोपनिधा – पूर्व गुणहानिके द्रव्यसे उत्तर गुणहानिका द्रव्य आधा होता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर गुण-हानियोंमें उनके हीयमान द्रव्यके विचार करनेको परम्परोपनिधा कहते हैं।

परिवर्तना – ग्रहण किये हुए अर्थका स्मरण रखनेके लिए उसका हृदयमें पुनः पुनः विचार करना, इसे परिवर्तना कहते हैं।

परिवर्तमानमध्यमपरिणाम – जिन परिणामोंमें स्थित होकर परिणामान्तरको प्राप्त हो, पुनः एक दो आदि समयोंके द्वारा उन्हीं पूर्व परिणामोंमें आगमन सम्भव होता है, ऐसे मध्यमजातीय परिणामोंको परिवर्तमानमध्यमपरिणाम कहते हैं।

परिशातनकृति – विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंकी संचयके बिना जो निर्जरा होती है, उसे परिशातनकृति कहते हैं।

पर्याप्तनिवृत्ति – पर्याप्तियोंकी पूर्णताको पर्याप्तनिवृत्ति कहते है।

पूजा – इन्द्रध्वज, सर्वतोभद्र, अष्टान्हिक इत्यादि महिमाविधानको पूजा कहते है। अर्चा या अर्चना सामान्य पूजनका नाम है और पूजा विशिष्ट पूजनको कहते हैं।

पूर्व – चौरासी लाख वर्षोंको पूर्वांग कहते हैं और चौरासी लाख पूर्वांगोंका एक पूर्व होता है।

पूर्वकोटी – एक करोड पूर्व वर्षोंके समुदायात्मक कालको पूर्वकोटी कहते हैं।

पृच्छाविधि – द्रव्य, गुण और पर्यायके विधि-निषेधविषयक प्रश्नका नाम पृच्छा है, ऐसी पृच्छाका और प्रायश्चित्तका विधान करनेवाले आगमको पृच्छाविधि कहते हैं।

पैशुन्य – क्रोधादिके वश होकर जो दूसरोंके दोषोंको प्रकट किया जाता है उसका नाम पैशुन्य है।

प्रकृतिसमुदाहार – कर्मप्रकृतियोंके वर्णन करनेवाले अनुयोगद्वारोंके समुदायको प्रकृतिसमुदाहार कहते है।

प्रकृत्यर्थता – कर्मोंकी प्रकृतियोंके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वारको प्रकृत्यर्थता अनुयोगद्वार कहते है।

प्रतिष्ठा – जिस बुद्धिके भीतर विनाशके विना अर्थ प्रतिष्ठित रहें उसे प्रतिष्ठा कहते है। यह धारणाका दूसरा नाम है।

प्रतीच्छना – आचार्य भट्टारकोंके द्वारा कहे जानेवाले अर्थके निश्चय करनेका नाम प्रतीच्छना है।

प्रत्यामुण्डा – जिसके द्वारा मीमांसित अर्थका संकोच किया जाय, उसे प्रत्यामुण्डा कहते है। यह अवायज्ञानका पर्यायवाची नाम है।

प्रदेश – आकाशके जितने स्थानमें एक अविभागी पुद्गल परमाणु रहे, उसे प्रदेश कहते हैं।

प्रदेशविरच – आनेवाले कर्मप्रदेशोंकी निषेकरूपसे कर्मस्थितिके भीतर रचना होनेको प्रदेशविरच कहते है।

प्रबन्धनकाल – उपक्रमण और अपक्रमणकालके समुदायको प्रबन्धनकाल कहते है।

प्रवचन – कुतीर्थोंके द्वारा जिनका खण्डन न किया जा सके, ऐसे प्रकृष्ट वचनोंके समुदायरूप द्वादशाङ्ग श्रुतको प्रवचन कहते हैं।

प्रवरवाद – प्रवर नाम रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गका है, उसका वाद अर्थात् कथन करनेवाले आगमको प्रवरवाद कहते हैं।

बादर – बादर नामकर्मके उदय युक्त जीवको बादर कहते हैं।

बादरनिगोद – जिनके बादर नामकर्मका उदय है ऐसे मूली, अदरक, सूरण आदि निगोदिया जीवोंके समुदायको बादरनिगोद कहते हैं।

बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा – जिन पौद्गलिक वर्गणाओंके द्वारा बादर निगोदिया जीवोंके शरीरका निर्माण हो, उन्हें बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

बादरयुग्म – जिस राशिको चारसे भाजित करनेपर दो शेष रहें, उसे बादरयुग्मराशि कहते हैं।

बुद्धि – जो ज्ञान ईहाके विषयभूत पदार्थको ग्रहण किया करता है, उसे बुद्धि कहते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ (पृ ७००) में यह पद अवायज्ञानके लिए प्रयुक्त हुआ है।

भवस्थिति – मनुष्य व तिर्यंच आदि किसी एक भवकी स्थितिको भवस्थिति कहते हैं।

भंगविधि – भंग नाम वस्तुके विनाशका है। वह विनाश उत्पाद और ध्रौव्यका अविनाभावी है। अतः उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप वस्तुके स्वरूपका विधान करनेवाले आगमको भंगविधि कहते हैं।

भंगविधिविशेष – व्रत, शील व संयमादिके भेदोंको भंग कहते हैं। उनकी विधिविशेषके वर्णन करनेवाले

आगमको भंगविधिविशेष कहते हैं।

भाषाद्रव्यवर्गणा – जो पुद्गलवर्गणाएं वचनरूपसे परिणत होती हैं, उन्हें भाषाद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

मति – जानी हुई वस्तुके मनन अर्थात् पुनः पुनः स्मरण करनेको मति कहते हैं।

मनोद्रव्यवर्गणा – मनरूपसे परिणत होनेवाली पौद्गलिक वर्गणाओंको मनोद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

मन्दसंक्लेशपरिणाम – मन्द (अल्प) संक्लेशवाले परिणामोंको मन्दसंक्लेशपरिणाम कहते हैं।

महास्कन्धद्रव्यवर्गणा – आठों पृथिवियां, समस्त विमानपटल और नरकप्रस्तार आदि स्कन्धोंके समुदायरूप वर्गणाओंको महास्कन्धद्रव्यवर्गणा कहते हैं।

महास्कन्धस्थान – समस्त पृथिवियां, कूट, भवन, विमान एवं नरकपटल आदि महास्कन्धके स्थान कहलाते हैं।

मार्गणा – जिन धर्मविशेषोंके द्वारा जीवोंका चौदह गुणस्थानोंमें मार्गण–अन्वेषण–किया जाता है, उन्हें मार्गणा कहते हैं।

मार्गणा – जिसके द्वारा अवग्रहसे जाने हुए पदार्थके विशेषका अनुमार्गण किया जावे, उसे मार्गणा कहते हैं। यह ईहाका पर्यायवाची नाम है।

मार्गवाद – मार्ग नाम पथ या रास्तेका है। नरक, स्वर्ग और मोक्ष आदिके मार्गका कथन करनेवाले आगमको मार्गवाद कहते हैं।

मीमांसा – जिसके द्वारा अवग्रहसे गृहीत पदार्थकी मीमांसा अर्थात् विचारणा की जावे, ऐसे ईहाज्ञानका दूसरा नाम मीमांसा है।

मेधा – जिसके द्वारा पदार्थ जाना जावे ऐसी बुद्धिको मेधा कहते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें यह शब्द अवग्रहके पर्यायवाचीके रूपमें प्रयुक्त हुआ है।

यत्स्थितिबन्ध – अबाधा सहित कर्मकी जो स्थिति बंधी है उसे यत्स्थितिबन्ध कहते हैं।

यवमध्य – यव (जौ) के आकार जो रचना होती है, उसके मध्य भागको यवमध्य कहते हैं।

युति – द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा जीवादि द्रव्योंके संयोगको युति कहते है।

योग – आत्मप्रदेशोंके संकोच-विकोचको योग कहते हैं।

योगयवमध्य – आठ समयवाले योगस्थानोंको योगयवमध्य कहते हैं।

राजु – जगच्छ्रेणीके सातवें भागको राजु कहते हैं।

लब्धि – कर्मोंके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं। अन्तराय कर्मके क्षयसे प्राप्त होनेवाली दानादि शक्तियोंको भी लब्धि कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी प्राप्तिको भी लब्धि कहते हैं।

लव – सात स्तोक प्रमाण कालको लव कहते है।

लोकनाली – लोकके मध्यमें अवस्थित त्रसनालीको लोकनाली कहते हैं।

लोकोत्तरीयवाद – लोकोत्तर शब्दका अर्थ अलोक है। अलोकाकाशके वर्णन करनेवाले आगमको लोकोत्तरीय-वाद कहते हैं।

लौकिकवाद – लोकका अर्थात् षट् द्रव्योंसे भरे हुए ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोकका वर्णन करनेवाले आगमको लौकिकवाद कहते हैं।

वर्ग – किसी विवक्षित राशिको उसी राशिसे गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न होती है, वह वर्ग कहलाती है। एक जीवप्रदेशके यह गणना सम्बन्धी वर्ग है। अनन्त अविभागप्रतिच्छेदोंके पुंजको वर्ग कहते हैं। अथवा, सबसे मन्द अनुभागवाले परमाणुको लेकर उसके एक मात्र अविभागप्रतिच्छेदोंका नाम वर्ग है।

स्पर्शको बुद्धिसे खण्डित करनेपर जो अन्तिम खण्ड हो उसका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। इस प्रमाणसे जितने भी स्पर्शखण्ड हों, वे सभी पृथक् पृथक् वर्ग कहे जाते हैं।

वर्गमूल – वर्गकी मूल राशिको वर्गमूल कहते हैं। जैसे ४×४=१६ होते हैं, तो १६ राशिका ४ यह वर्गमूल है।

वाचना – शिष्योंके पढ़ानेको, तथा जिज्ञासु जनोंके लिए आगमके मूल और अर्थके प्रदान करनेको वाचना कहते हैं।

वाचनोपगत – नन्दा, भद्रा, जया और सौम्या इन चार प्रकारकी वाचनाओंके द्वारा जो श्रुत दूसरोंके ज्ञान करानेमें समर्थ होता है उसे वाचनोपगत कहते हैं।

विज्ञप्ति – जिसके द्वारा तर्कणा किया गया पदार्थ विशेषरूपसे जाना जावे ऐसे अवायज्ञानको विज्ञप्ति कहते हैं।

विष्कम्भसूची – किसी गोलाकार क्षेत्रके मध्यमें एक ओरसे दूसरी ओर तक जितना विस्तार हो उसे विष्कम्भ-सूची कहते हैं।

विस्रसाबन्ध – किसीके प्रयोग विना स्वतः स्वभावसे होनेवाले बन्धको विस्रसाबन्ध कहते हैं। जैसे धर्म, अधर्म आदि द्रव्योंके प्रदेशोंका परस्परमें जो बन्ध है, या स्निग्धसे रूक्षगुणवाले पुद्गलोंका जो स्वतः स्वभाव-से बन्ध होता है, वह विस्रसाबन्ध है।

विस्रसोपचय – औदारिकादि शरीरोंके पुद्गल परमाणुओंके ऊपर स्वतः स्वभावसे प्रतिसमय जो अनन्त पुद्गल परमाणु उपचित होते रहते हैं, उन्हें विस्रसोपचय कहते हैं।

वेद – (श्रुतज्ञान–) वस्तु-स्वरूपके प्रतिपादक या जाननेवाले ऐसे द्वादशाङ्गरूप श्रुतको वेद कहते हैं।

वेदकसम्यक्त्व – जिस सम्यग्दर्शनमें सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे चल, मलिन और अगाढ दोष उत्पन्न हों, उसे वेदकसम्यक्त्व कहते हैं। इसीका दूसरा नाम क्षयोपशमसम्यक्त्व है।

व्यवसाय – ईहाके विषयभूत पदार्थके व्यवसित अर्थात् निश्चित करनेवाले ज्ञानको व्यवसाय कहते हैं। यह अवायका पर्यायवाची नाम है।

श्रेणी – आकाशके प्रदेशोंकी क्रमसे स्थित पंक्तिको श्रेणी कहते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रेणी शब्द जगच्छ्रेणीके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, जो कि सात राजु लम्बी एक प्रदेशपंक्ति कहलाती है।

षट्स्थानपतितवृद्धि-हानि – अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यात-गुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि इन छह प्रकारकी वृद्धियोंके होनेको षट्स्थानपतित वृद्धि कहते हैं। इसी प्रकार अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि और अनन्तगुणहानि इन छह प्रकारकी हानियोंके होनेको षट्स्थानपतित हानि कहते हैं। जहांपर छहों प्रकारकी वृद्धि और हानि ये दोनों ही हों, उसे षट्स्थानपतितवृद्धि-हानि कहते हैं।

समयप्रबद्धार्थता – एक समयमें बंधनेवाले कर्मपिण्डके वर्णन करनेवाले अनुयोगद्वारको समयप्रबद्धार्थता कहते हैं।

समिलामध्य – समिला या शमिला नाम युग (जुआं) की कीलीका है, जिसे देशी भाषामें सैल कहते हैं। दो समिलाओंका मध्यभाग मोटा और दोनों ओरका पार्श्वभाग पतला होता है, इसी प्रकार यवाकार जो रचना होती है, उसे समिलामध्य कहते हैं।

सम्यक्त्वकाण्डक – सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेके वारोंको सम्यक्त्वकाण्डक कहते हैं।

संख्यातगुणवृद्धि – विवक्षित स्थानमें संख्यातगुणी वृद्धि होनेको संख्यातगुणवृद्धि कहते हैं।

संख्यातगुणहानि – विवक्षित स्थानमें संख्यातगुणी हानि होनेको संख्यातगुणहानि कहते हैं।

संख्यातभागपरिवृद्धि – विवक्षित स्थानमें संख्यातवें भागकी वृद्धि होनेको संख्यातभागपरिवृद्धि कहते हैं।

संख्यातभागहानि – विवक्षित स्थानमें संख्यातवें भागकी हानिके होनेको संख्यातभागहानि कहते हैं।

संघातनकृति – विवक्षित शरीरके परमाणुओंका निर्जराके विना जो संचय होता है, उसे संघातनकृति कहते हैं।